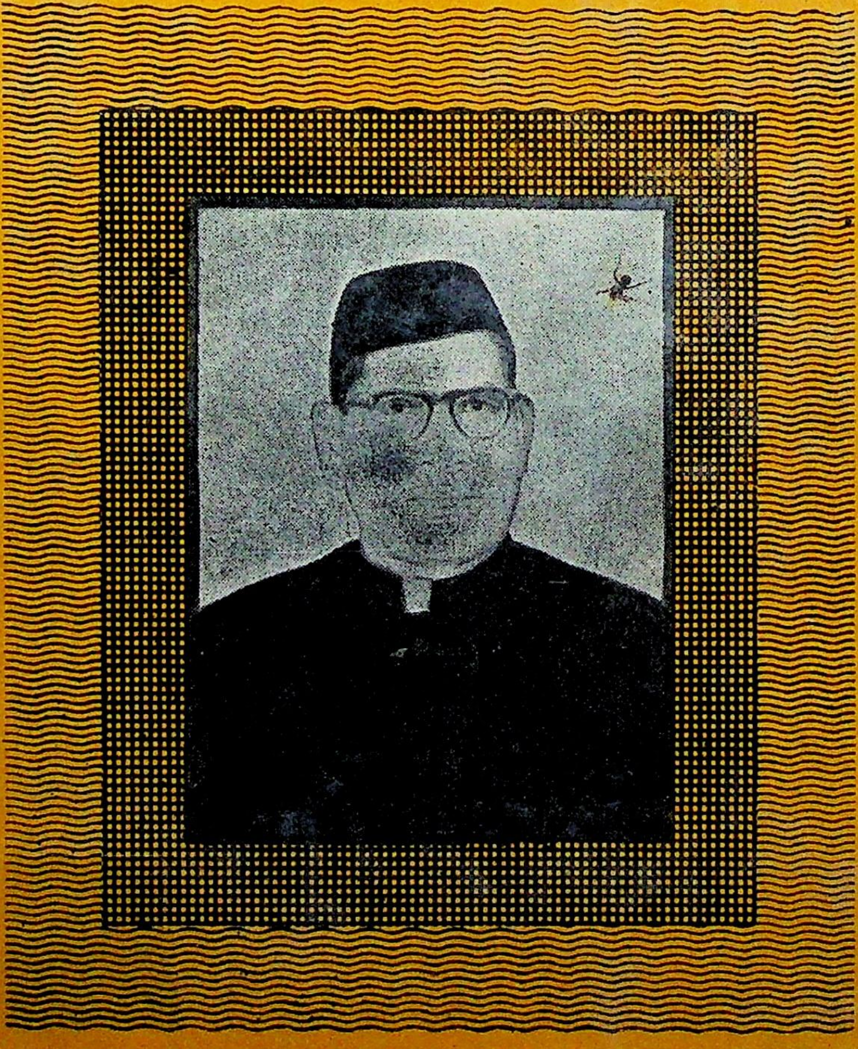
डॉ. किशोरीलाल गुप्त
अभिनन्दन ग्रन्थ



प्रधान संपादक:-

पं. सीताराम चतुर्वेदी

आदरणीय डॉ० गुरु सुरेन्द्र आर्य जी को
सादर

स्नेहप
3/5/90
प्रवक्ता हिन्दी
आदर्श इण्टर कालेज
माट, झाँसी-284303

डॉ० किशोरी लाल गुप्त : अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रधान सम्पादक :

अभिनव भरत आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी

सम्पादक मण्डल

डॉ० किरण मिश्र

डॉ० किशोरी लाल

श्री उदय शंकर दुबे

संयोजक

श्री रवीन्द्र गुप्त

प्रकाशक :

डॉ० किशोरी लाल गुप्त अभिनंदन समिति

सुघवै, वाराणसी

प्रथम संस्करण ११००

प्रकाशन तिथि २५ जून १९८९

मूल्य : ३००।रुपये मात्र

वितरक :

जय भारती प्रकाशन

४४७ पीली कोठी, नईबस्ती

कीटगंज, इलाहाबाद

मुद्रक :

धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस

एस० २६/९३ मीरापुर बसही

शिवपुर, वाराणसी ।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त : अभिनंदन समिति

संरक्षक—श्री श्यामदास शास्त्री

अध्यक्ष—डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

उपाध्यक्ष—डॉ० लक्ष्मी शंकर गुप्त

महामंत्री—श्री रामजी गुप्त 'धीरज'

कोषाध्यक्ष—श्री कोमल प्रसाद गुप्त

सदस्य—१. डॉ० रहमतुल्लाह
२. डॉ० कन्हैया सिंह
३. श्री विजय कुमार राय
४. श्री शंभू नाथ राय
५. डॉ० जय कुमार मुद्गल
६. श्री रामाचार्य पाण्डेय
७. श्री राधेश्याम गुप्त
८. डॉ० विद्याधर मिश्र
९. डॉ० संकठा प्रसाद उपाध्याय

प्रकाशकीय

यह अभिनन्दन ग्रन्थ

डॉ० किशोरी लाल गुप्त हिन्दी के वरिष्ठ एवं श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। इनकी साहित्यिक सेवाओं के समादर के लिए इन्हें यह अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। इस वर्ष गंगा दशहरा (१३ जून ८९) को यह ७३ वर्ष पूर्ण करके ७४ में प्रवेश कर गए। अभिनन्दन समारोह १२ दिन बाद २५ जून को हो रहा है। हमने हिन्दी साहित्य के शोधी एवं समीक्षक, प्राचीन काव्यों के उद्धारक संपादक तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास के संशोधक इस समर्पित साहित्यकार का सम्मान अपना कर्तव्य समझकर किया है। समाज में अभिनंदनीयों का अभिनंदन होना ही चाहिए।

परिमार्जन

ग्रन्थ बड़ी त्वरा में छगा है, अतः इसमें मुद्रण की त्रुटियाँ यत्र तत्र रह जाना स्वाभाविक ही है। यहाँ दो त्रुटियों का परिमार्जन आवश्यक है—

१. पृष्ठ ११ पंक्ति २५ 'सर्वे' के स्थान पर 'सत्वे'

२. पृष्ठ ४६ पंक्ति १० '१९३६' के स्थान पर '१९३५'

अन्य त्रुटियों का परिमार्जन समर्थ पाठक स्वयं करने में सक्षम हैं।

आभार

हम अपने समस्त लेखकों, कवियों के आभारी हैं जिन्होंने इस ग्रंथ के लिए अपने पुष्कल लेख प्रदान किए हैं। हम उन पत्र लेखकों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिनके पत्र यहाँ संकलित हैं, जो अभिनन्दन के लिए नहीं लिखे गये थे, जो अनेक परिचित और अपरिचित विद्वज्जनों द्वारा देश के सुदूर कोने कोने से डॉ० गुप्त को लिखे गए थे, जिसमें डा० गुप्त के जीवन एवं उनकी रचनाओं पर तटस्थ प्रकाश पड़ता है। इन पत्र लेखकों में से अनेक काल-कवलित हो चुके हैं। अधिकांश का स्थायी पता भी अज्ञात है।

श्री अजय कुमार गुप्त मुँगरा बादशाहपुर, श्री धर्मराज मिश्र सुघवै, श्री अरविन्द गुप्त सुघवै ने प्रेस कापी प्रस्तुत करने में योग दिया है। ये सभी धन्यवादार्ह हैं।

रामजी गुप्त 'धीरज'

महामंत्री

आर्थिकी

यह अभिनंदन एक यज्ञ-सदृश है, जिसमें अनेक लोगों ने अपना योगदान किया है। निम्नांकित महानुभावों के हम विशेष अनुगृहीत हैं, जिन्होंने इस यज्ञ में विशेष अर्थ समिधा डाली है—

१. श्री कन्हैयालाल वकील, द्वारावती, आसिफ़ गंज, आजमगढ़	२५०० रु०
२. श्री मेवालाल साहू, मोतीलाल एण्ड ब्रदर्स घोसिया, औराई, वाराणसी —	२००१ रु०
३. श्री कोमल प्रसाद गुप्त एन १/६५ डी–८ शशि नगर कालोनी, नगवा, लंका, वाराणसी	११०० रु०
४. श्रीमती श्यामा गुप्ता एम० ए०, बी० एड० साहित्यरत्न वेदपुरवा, शास्त्रीनगर, गाजीपुर	१००० रु०
५. श्रीमती राधा गुप्ता एम० ए०, शोध छात्रा टीचर्स कालोनी, महुअरिया, मिर्जापुर	१००० रु०
६. रवीन्द्र गुप्त एम० ए०, बी० एड० प्रवक्ता हिन्दी आदर्श इण्टर कालेज, मोठ, झाँसी	१००० रु०
७. डॉ० शीतला प्रसाद गुप्त बी २३/८२ खोजवा बाजार, वाराणसी	१००० रु०
८. श्री इन्द्रासन सिंह प्राचार्य बलदेव डिग्री कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी	१००० रु०
९. श्री फूलचन्द गुप्त, मेसर्स—अजीत इजीनियरिंग वर्क्स (अजीत टेबुल एवं सीलिंग फैन के निर्माता) शिवपुर, वाराणसी फोन ४२४७७	१० १ रु०
१०. श्री राजेन्द्र प्रसाद गुप्त, नवापुरा, गाजीपुर	५०० रु०
११. ,, पन्नालाल गुप्त, सेनपुरा, चेतगंज, वाराणसी	३०० रु०
१२. ,, राधेश्याम गुप्त, स्टेट बैंक परिसर, भदोही वाराणसी	२५१ रु०
१३. ,, राम लोलारख साहू, छतमी, राधास्वामी धाम, वाराणसी	२५१ रु०
१४. ,, जनपद साहू समाज मिर्जापुर	२५१ रु०
१५. श्री छोटे लाल गुप्त अभियंता ११/३ कबीर नगर, वाराणसी	२५१ रु०
१६. श्री महादेव प्रसाद गुप्त, मेसर्स—जीवत राम राजनारायण आयल मिल (श्रीकृष्ण मार्का सरसों तेल के निर्माता) सीके. ५६/७१ ओसानगंज, वाराणसी फोन ६४१४२, ५६५६०	२५१ रु०

जिन्होंने सौ-सौ पचास-पचास रुपयों की बूंद से ४०००० रुपये के अर्थ-सागर को भरा है, जिससे इस ग्रंथ का प्रकाशन संभव हो सका है, हम उन सबको यहाँ धन्यवाद देते हैं।

कोमल प्रसाद गुप्त
कोषाध्यक्ष

अनुक्रम

चित्रावली

१. स्वास्ति

स्वाभिनन्दन

२. व्यक्तित्व

(क) जीवन

(ख) संस्मरण

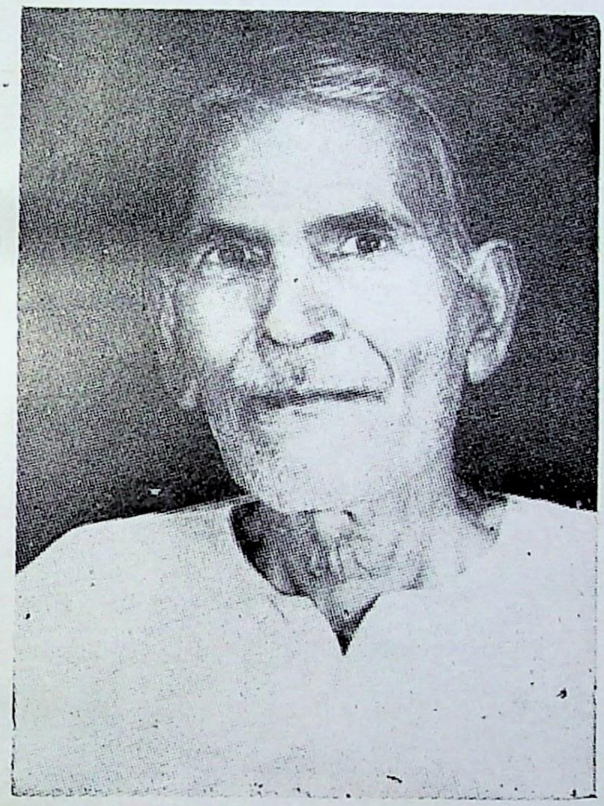
३. कर्तृत्व

४. पत्रों के दर्पण में

इस खण्ड में २०२ पत्र लेखकों के ३०२ पत्र संकलित हैं। पत्र लेखकों की वर्णानुक्रम-सूची आगे दी जा रही है। लेखकों के नामों के आगे अंकित संख्यायें उनके नामों के क्रम की हैं।

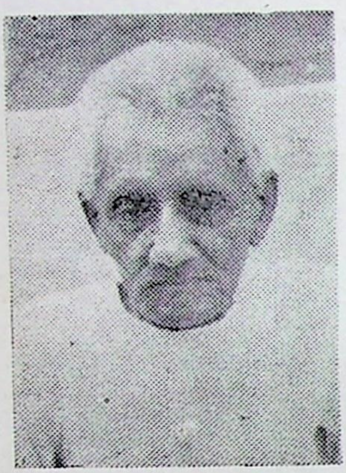
पत्र लेखकों की वर्णानुक्रम सूची

५. लेखांजलि



डॉ० किशोरी लाल गुप्त
(सन् १९८८ ई०)

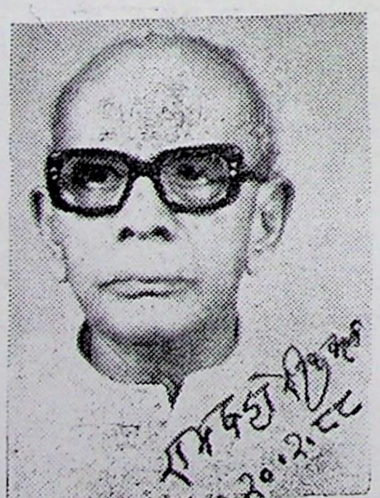
गुरुजन



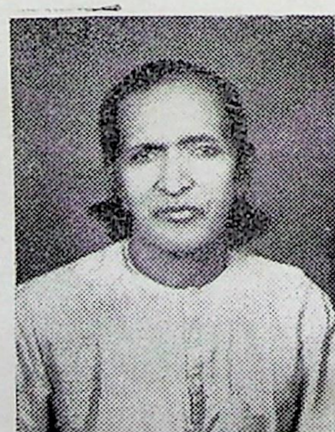
स्व० पं० सर्वजित त्रिपाठी



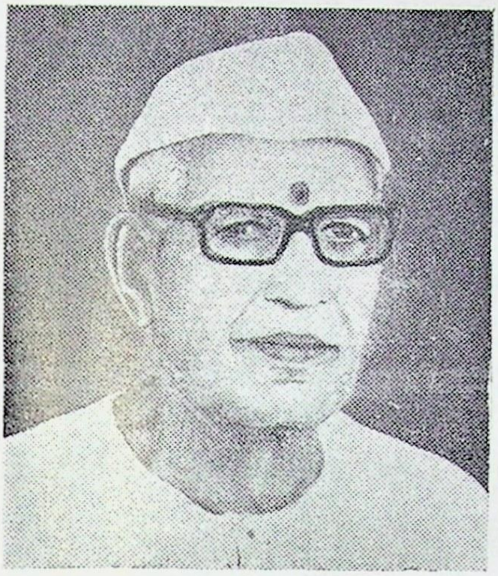
पं० नन्द किशोर त्रिपाठी



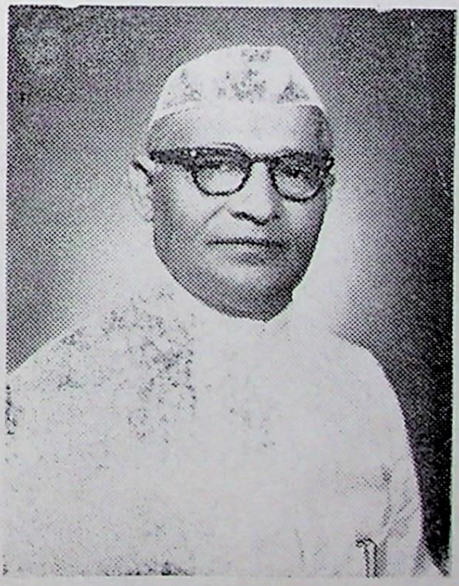
पं० राम बहोरी शुक्ल



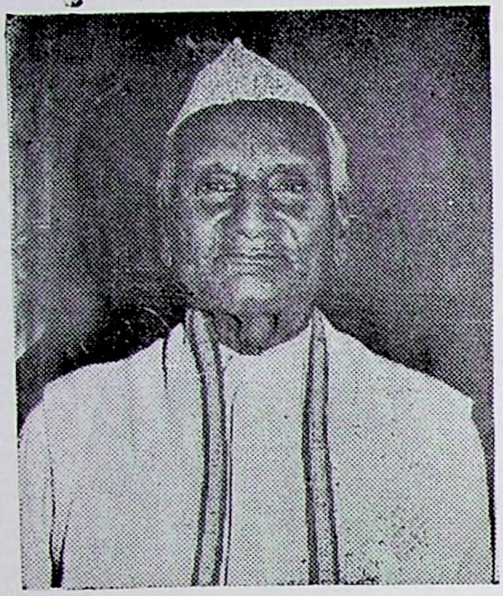
प्रो० पद्म नारायण आचार्य



साहित्य-गुरु
स्व० आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र



अध्यक्ष अभिनंदन समिति
डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

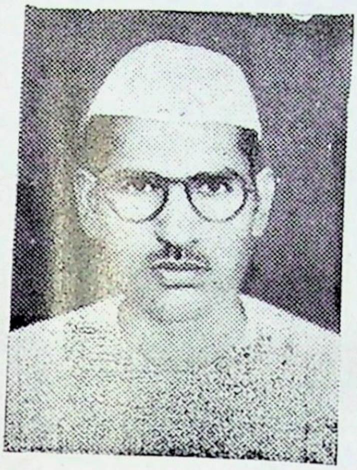


प्रधान संपादक
पं० सीताराम चतुर्वेदी



संरक्षक
श्री श्याम दास शास्त्री

डॉ० गुप्त के विभिन्न अवस्थाओं के चित्र



१९५१ ई०
(शंपा में प्रकाशित चित्र)



१९५३
(श्यामा में प्रकाशित चित्र)



१९६४ ई०



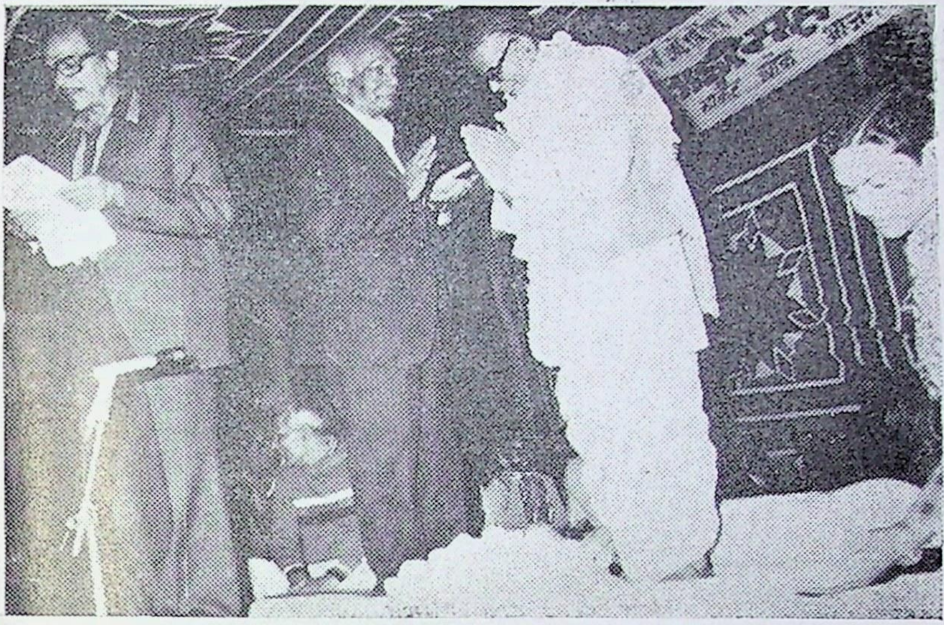
डॉ० श्रीराम वर्मा आजमगढ़ के साथ
१९८८ ई०



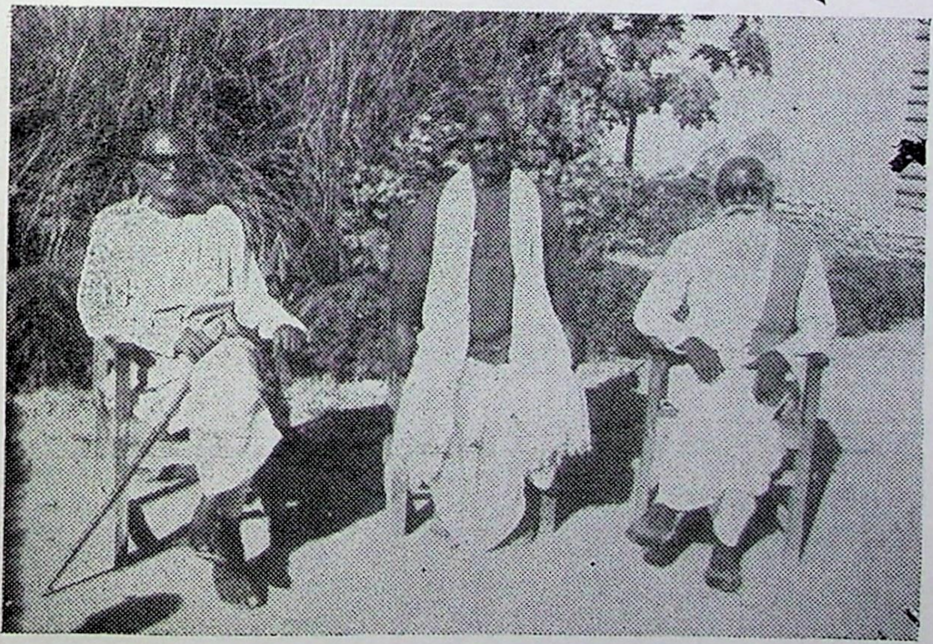
हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ का दीक्षांत समारोह । कुलपति ए० सी० चटर्जी दीक्षांत भाषण करते हुए । डॉ० गुप्त बैठे हुए ।



जमानियाँ में वाराणसी मण्डल की रैली के अवसर पर डॉ० गुप्त अपने ग्रंथ तत्रभवान काशी नरेश को भेंट करते हुए ।



आजमगढ़ में नागरिक अभिनंदन के समय का चित्र १९८२ ई०। श्वेत परिधान में डॉ० गुप्त। सामने खड़े हुए बाबू कन्हैया लाल वकील। माइक पर संचालन करते हुए दान बहादुर सिंह 'सूँड़' फैजाबादी और दाईं ओर स्वतंत्र कुमार गुप्त एडवोकेट।

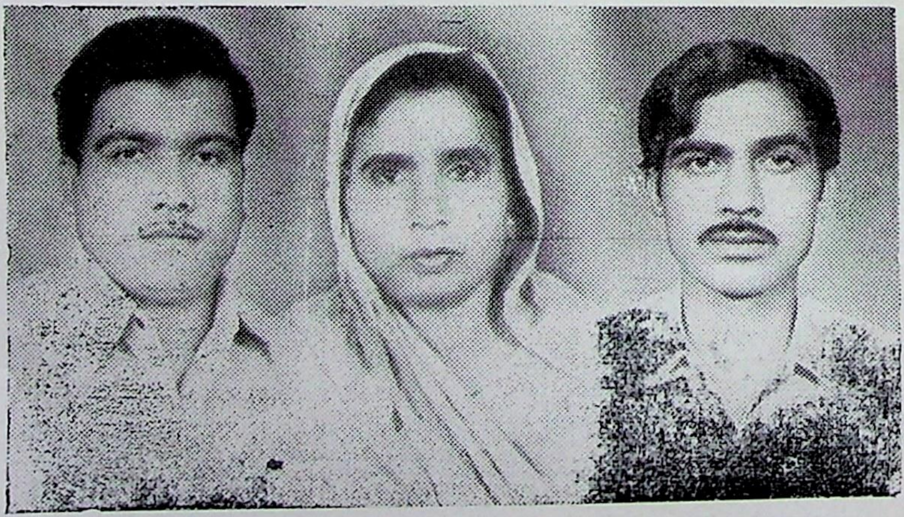


एक ओर छड़ी लिए हुए डॉ० गुप्त, दूसरी ओर श्री रामाचार्य पाण्डेय, मध्य में श्री अमर नाथ मिश्र महंत। बाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी की व्यवस्था समिति के क्रमशः अध्यक्ष, महामंत्री और कोषाध्यक्ष।

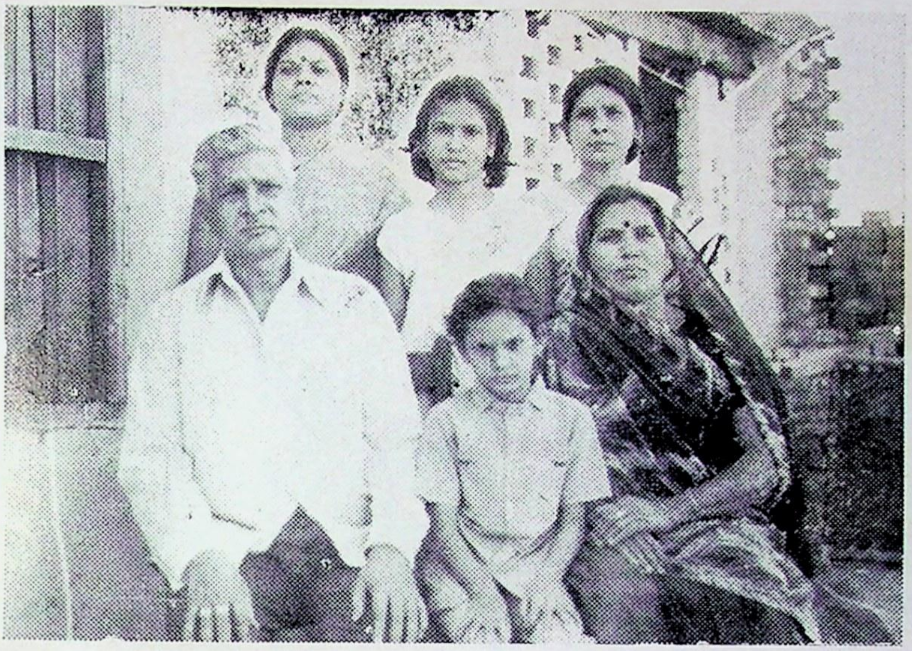
पारिवारिक चित्र



श्रीमती अम्रावती देवी (धर्मपत्नी)–१९८९ ई०



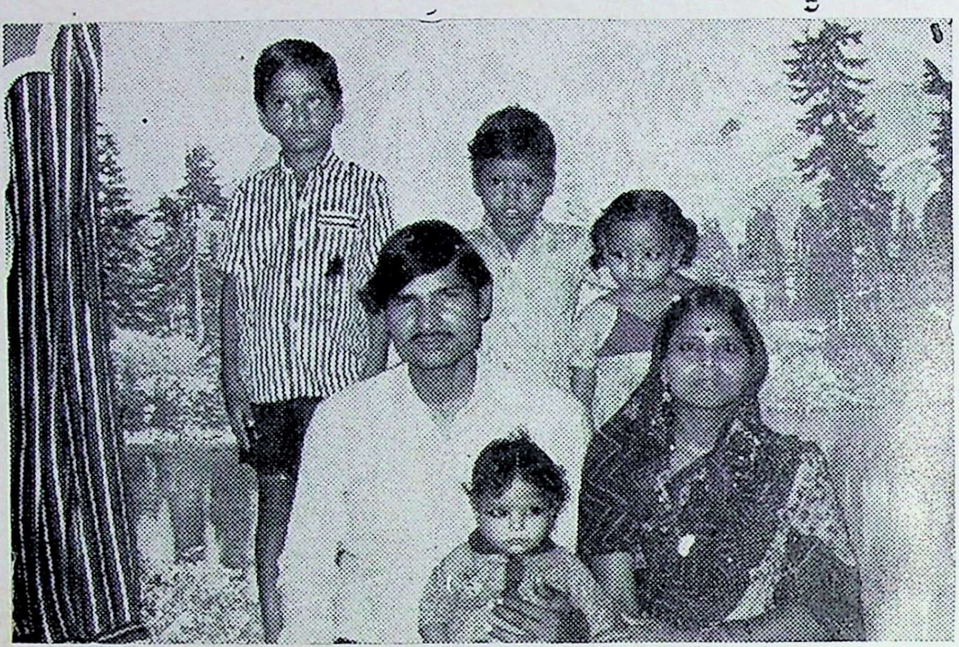
बड़ी पुत्री कलावती देवी (मध्य में) दायें अजय कुमार गुप्त एवं बायें ज्येष्ठ पुत्र आलोक कुमार गुप्त । १९८९ ई०



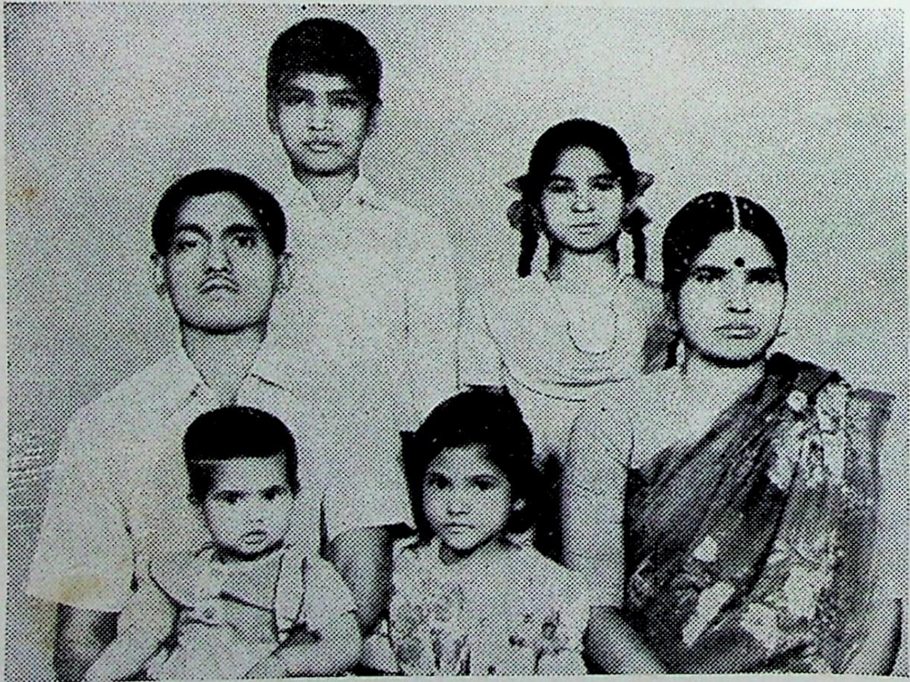
द्वितीय पुत्री श्रीमती श्यामा गुप्ता का परिवार। बैठे हुए बायें से—
राजेन्द्र प्रसाद गुप्त और श्रीमती श्यामा गुप्ता, मध्य में बैठी सबसे छोटी
लड़की लवली। पीछे खड़ी हुई बाये से द्वितीय पुत्री श्रीमती कुमुदलता गुप्त
तृतीय पुत्री कुमारी बबली एवं प्रथम पुत्री श्रीमती कुसुमलता गुप्ता।
१९८९ ई०



ज्येष्ठ पुत्र अभिनव गुप्त का परिवार। बायें से—श्री अभिनव गुप्त,
श्रीमती इन्दिरा गुप्ता (धर्मपत्नी), श्रीमती ऊषा गुप्ता (पुत्र वधू),
ज्येष्ठ पुत्र आनन्द गुप्त एवं कनिष्ठ पुत्र अरविन्द गुप्त।



कनिष्ठ पुत्र रवीन्द्र गुप्त का परिवार। बायें बैठे हुए—रवीन्द्र गुप्त, तृतीय पुत्र शरद गुप्ता मृदुला गुप्त (धर्म पत्नी) पीछे खड़े हुए बायें से—ज्येष्ठ पुत्र राजेश गुप्त, द्वितीय पुत्र राकेश गुप्त, पुत्री कु० रेणु गुप्ता।



चतुर्थ पुत्री श्रीमती राधा गुप्ता का परिवार। बायें से बैठे हुए—श्री बाबा प्रसाद गुप्त, गोद में तृतीय पुत्री कु० अन्नपूर्णा स्वामी, मध्य में द्वितीय पुत्री कु० अपर्णा स्वामी, श्रीमती राधा गुप्ता पीछे खड़े हुए—पुत्र चि० अनूप कुमार स्वामीएवं ज्येष्ठ पुत्री कु० अर्चना स्वामी

सम्पादकीय : उद्गीथ

इस युग में जीवन के सभी क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मान में अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित करने और उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने की प्रथा सी चल पड़ी है। इस झोंक में कुछ ऐसे लोगों का भी अभिनन्दन होने लगा है, जिन्होंने न तो लोक सेवा का ही कोई कार्य किया, न साहित्य सृष्टि की और न अपनी विद्वत्ता तथा चरित्र से जनता को प्रभावित किया, किन्तु डॉ॰ किशोरी लाल गुप्त उन विशिष्ट महानुभावों में हैं, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता, पांडित्य, सद्व्यवहार और सात्विक अध्यवसाय से ऐसा कार्य किया है कि उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करना केवल परिपाटी का पालन करना मात्र ही नहीं, वरन उनके वर्चस्व पूर्ण कृतित्व के प्रति सार्वजनिक कृतज्ञता प्रकट करना भी है। उनके सम्मान में अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित करना इसलिए भी अनिवार्य हो गया है कि सर्व सामान्य को यह ज्ञात हो जाय कि किस प्रकार के उदात्त व्यक्तित्व का किस प्रकार सार्वजनिक सम्मान करना नितान्त अपेक्षित तथा उचित है।

हिन्दी-साहित्य-जगत में अनेक कवि, उपन्यासकार, नाटककार, लेखक, कहानीकार और निबन्धकार हुए हैं, जिन्होंने अपनी साहित्यिक वासना तृप्त करने के लिए अथवा किसी मानसिक उद्वेग से प्रेरित होकर अनेक प्रकार की साहित्यिक रचनायें कीं। उनके गुण और अवगुण का परीक्षण करने वाली प्रबुद्ध जनता ने उनकी रचनाओं का भली प्रकार परीक्षण एवं विश्लेषण करके उनका यथोचित सम्मान किया। किन्तु डॉ॰ किशोरी लाल गुप्त उन इने-गिने मनीषियों में हैं, जिन्होंने एक ओर जहाँ स्रष्टा बनकर मौलिक रचनायें कीं, वहीं दूसरी ओर निष्पक्ष निर्णायक और विवेचक बनकर साहित्य-जगत में व्याप्त अनेक भ्रामक मान्यताओं का निराकरण करके तथ्य की प्रतिष्ठा की। इतना ही नहीं उन्होंने अनेक रचनाओं का पाठ-शोध कर उनकी तर्क-पूर्ण विवेचना करते हुए उनका यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसीलिए वे विशेष अभिनन्दनीय हैं।

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विभिन्न परीक्षाओं में अनेक कवियों और लेखकों पर उनकी जीवनी, रचना-शैली, सिद्धान्त तथा प्रवृत्तियों पर अनेक प्रश्न पूछे जाया करते हैं। उसकी पूर्ति के लिए विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के अनेक प्राध्यापक धुआंधार मिथ्या शब्दाडम्बर से पूर्ण ऐसे आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित करते चले जा रहे हैं, जिनका न तो लेखक के लिए कोई महत्व है, न पाठक के लिए, और न विचारशील तथा अध्ययनशील मनीषियों के लिए। वह सारी सामग्री ऐसी निरर्थक और विचित्र है कि परीक्षार्थी भी उसका कोई लाभ नहीं उठा पाते और उसके भाग्य में

केवल रद्दी में बिकना मात्र ही रह जाता है। किन्तु डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने जिस प्रकार के मौलिक विवेचनापूर्ण, तर्क-पूर्ण और शोध-पूर्ण ढंग से उन कवियों की रचनाओं पर विचार किया है, वे प्रत्येक मनीषी विद्वान के लिए ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणा दायक तो हैं ही, साथ ही उन अनेक जिज्ञासुओं की आतुर जिज्ञासाओं की भी तृप्ति करते हैं, जो किसी भी कृति के पाठ, उसके अर्थ और उसको विशेषता का ज्ञान प्राप्त करना, आनन्द लेना, चाहते हैं।

डॉ० जिशोरी लाल गुप्त ने निम्नांकित अद्भुत ग्रन्थों की रचना की है, जिनका विवरण और उनकी विशेषता संक्षेप में नीचे दो जा रही है—

कविता

डॉ० गुप्त ने अपना साहित्यिक जीवन छात्रावस्था में ही कविता से प्रारम्भ किया था। वे खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा दोनों के समर्थ कवि हैं। खड़ी बोली में उनके ७ ग्रंथ हैं। इनमें उल्लेखनीय है—श्यामा। इसमें ८६ चतुर्दशपदियों का संकलन हुआ है। वे व्रजभाषा के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कवि हैं। इनके पाँच काव्य ग्रन्थ व्रजभाषा में हैं, तीन मौलिक हैं, दो अनूदित। मौलिक काव्यों में राधा और उराहनौ खण्ड काव्य हैं और सोनजुही काव्य-संग्रह है। डॉ० गुप्त ने अमरुक शतक और घट-खर्पर काव्य का व्रजी के सरस कवित्त सवैयों में अत्यन्त ललित अनुवाद किया है। उराहनौ तो रत्नाकर जी की उद्धव-शतक परम्परा का अत्यन्त श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

प्राचीन काव्य ग्रंथों का सम्पादन

डॉ० गुप्त ने प्राचीन सुकवियों के ३६ ग्रन्थों का सम्पादन किया है। प्रत्येक ग्रन्थ के प्रारम्भ में शोधपूर्ण भूमिकायें लगी हुई हैं। इनमें से कुछ विशिष्ट ग्रन्थ हैं—

१. नागरीदास—७५ ग्रन्थ
२. शिवसिंह सरोज
३. हजारा
४. लखमसेन पदमावती कहा—सटीक
५. सुजान शतक–घनानन्द—सटीक
६. मुबारक रचनावली
७. सुन्दर ग्रन्थावली—महाकविराय सुन्दर की रचनाएँ
८. बेनी ग्रन्थावली—असनी के शृंगारी बेनी की रचनाएँ
९. दत्त ग्रंथावली
१०. नेवाज ग्रंथावली
११. गिरिधर कविराय ग्रंथावली
१२. सतसईकार तुलसी ग्रंथावली

१३. हृदयराम ग्रंथावली

१४. सुन्दरी तिलक

समीक्षा ग्रंथ

१. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन

२. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि

३. भूषण मतिराम और उनके अन्य भाई

४. हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ

शोध ग्रंथ

१. सरोज सर्वेक्षण

२. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न सूत्रों का विश्लेषण

३. गोसाईं चरित

४. तुलसी और और तुलसी

५. महाकवि सूर और सूर नवीन

६. प्राकृत पैंगलम् और उसके रचयिता हरिबंभ

इतिहास ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन की प्रसिद्ध पोथी 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' का सटिप्पण अनुवाद ।

२. हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास

३. हिन्दी के नामराशी कवि

४. प्राचीन हिन्दी काव्यों के उद्धारक सम्पादक

५. हिन्दी कविता का इतिहास—८ भाग, ५ भाग लिखित

अनुवाद

१. कामायनी का अंग्रेजी पद्यानुवाद

काव्य संग्रह

१. हिन्दी कवि और काव्य—हिन्दी कविताओं का विशालतम संग्रह, १८ भागों में, ऐतिहासिक कालक्रम से । इसमें हिन्दी की सभी विभाषाओं की रचनाओं का संकलन हुआ है । भाग १७–१८ में तो दक्खिनी और उर्दू का काव्य है ।

विविध

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ग्रंथावली—पाण्डेय जी के राष्ट्रभाषा संघर्ष सम्बन्धी ग्रंथों एवं लेखों का संग्रह, दो बड़ी जिल्दों में । हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी सभी भाषाओं के लेख संकलित हैं ।

जिस व्यक्ति ने इतना महत्वपूर्ण कार्य किया हो, उसे प्रकाश में लाना केवल औपचारिक कर्म मात्र ही नहीं, परिपालनीय धर्म है। इसी विचार से हमने उनके सम्मान के लिए यह अभिनन्दन-ग्रंथ प्रकाशित करने की समीचीन योजना बनाई है, जिसमें निम्नांकित खण्ड होंगे—

१. स्वस्ति
२. व्यक्तित्व
३. कर्तृत्व
४. पत्रों के दर्पण में
५. लेखांजलि

मुझे विश्वास है कि भारतीय वाङ्मय विशेषतः हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध सभी अध्यापक, विद्वान्, लेखक ओर अध्येता जहाँ एक और डॉ० किशोरी लाल गुप्त के अध्यवसाय-पूर्ण जीवन से प्रेरणा प्राप्त करेंगे, वहीं इस अभिनन्दन ग्रंथ के माध्यम से प्रचुर मात्रा में ऐसी सामग्री भी प्राप्त करेंगे, जो उनके चिन्तन को बल देगी, उनकी रचनावृत्ति को उत्साहित करेगी और उनकी विवेचना-वृत्ति को समुचित संबल देगी।

—सीताराम चतुर्वेदी
वेदपाठी भवन
मुज़फ्फर नगर

१. स्वस्ति

अन्वेषकाणां विशिखामणिः वै
विवेचकानां कुलभासकश्च
शिक्षाचराणां परमो गुरुस्स्यात्
किशोरिलालः भुवने विभाति

—श्री श्यामदास
कबीर-कीर्तिमंदिर, काशी

१. शुभ कामना

डॉ० किशोरी लाल गुप्त मेरे बड़े भाई हरिदास गुप्त के साथ १९३८-४० ई० में बी० ए० में पढ़ते थे। पर उनसे हमारा सम्पर्क तब हुआ, जब गुप्त जी एम० ए० में थे। हरिदास जी ही पहले उन्हें हमारे परिवार में लाये। वे क्वार पूर्णिमा के अवसर पर १९४० में पहली बार दशमी के मेले में लालगंज आए। दूसरी बार वे पुनः हरिदास जी द्वारा ही हमारे अनुज गुरु प्रसाद के प्रथम पुत्र की बरही के अवसर पर आए। उस समय (१९४३-४४) वे बी० टी० के छात्र थे। जुलाई १९४८ में वे शिबली कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर आए, जहाँ वे १९६२ ई० तक पूरे चौदह वर्ष रहे। इन चौदह वर्षों में वे हमारे घर के प्राणी से हो गये और हमारे हर सुख-दुख में शामिल रहे। जुलाई १९६२ में वे यहाँ से जमानियाँ चले गये, पर हमारा सम्बन्ध अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। वे हर साल आजमगढ़ आते हैं और मैं भी ब्याह आदि उत्सवों पर उनके यहाँ जाता रहता हूँ। २० नवम्बर १९८२ को हमने उनका आजमगढ़ में सार्वजनिक अभिनन्दन किया था। मुझे यह देखकर परम प्रसन्नता हो रही है कि आज उनका साहित्यिक अभिनन्दन हो रहा है और उन्हें अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामना व्यक्त करता हूँ।

द्वारावती, पुरानी कोतवाली
आजमगढ़

कन्हैया लाल
वकील आयकर, बिक्रीकर

२. आशीः

१. यशस्वी रहें

किशोरी लाल गुप्त १९२५-२६ में प्रारम्भिक पाठशाला बिछिया में कक्षा २ के मेरे विद्यार्थी थे। मैं उस समय उक्त विद्यालय का मुख्याध्यापक था और कक्षा २ और ४ पढ़ाता था। उस समय प्रारम्भिक विद्यालयों की पढ़ाई छह वर्षों की होती थी। अ, ब, १, २, ३, ४। किशोरीलाल सीधे सादे विद्यार्थी थे और एक साधारण साहू वैश्य परिवार के थे। यह पढ़ने लिखने में अच्छे थे और घर के काम काज में भी अपने माता-पिता को योग दिया करते थे। उन दिनों बिछिया में सोमवार और शुक्रवार को सायंकालीन बाजार लगा करता था। इनके बाप जोखू साहू अपने गाँव सुघवै से उसमें परचून की दूकान लेकर आया करते थे। बाजार के दिनों किशोरीलाल स्कूल से सीधे अपने बाप की मदद के लिए दूकान पर चले जाते थे।

उस अल्पावस्था में ही इनमें साहित्य के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। रामचरित मानस का सुन्दर कांड, हनुमान चालीसा, नरोत्तम दास का सुदामा चरित आदि किताबें तब भी इनके पास थीं और इनके बहुत से छंद इन्हें याद थे। उस समय विद्यालय में सूर्य, ग्रामवासी, बालसखा आया करते थे। विद्यालय में छोटा-मोटा एक पुस्तकालय भी था। वे राष्ट्रीय आन्दोलन के दिन थे। भारत-भारती की धूम थी। उसके अनेक अंश विद्यार्थियों को रटा दिए गये थे। कोई भी महत्वपूर्ण बात होने पर विद्यार्थियों को सूचित कर दी जाती थी। इन सबका अप्रत्यक्ष प्रभाव गुप्त जी के निर्माण पर पड़ा था।

किशोरीलाल में गुरुजनों के प्रति बराबर श्रद्धा-भाव रहा है। अब तक वे मेरे घर मुझे देखने कभी-कभी आ जाया करते हैं। वैसे पहले ग्रीष्मावकाश में तो वे हर वर्ष निश्चित रूप से अनेक बार आया करते थे। इन्होंने अपनी एक कृति गिरिधर कविराय ग्रन्थावली मुझे समर्पित की है। उसमें मेरा चित्र भी लगा हुआ है। यह समर्पणोत्सव उसी प्रारम्भिक पाठशाला में १९७८ में मनाया गया, जिसमें गुप्तजी ने मुझसे कक्षा २ में पढ़ा था। इसमें क्षेत्र के अधिकांश शिक्षित और संभ्रांत लोग उपस्थित थे। देहाती क्षेत्र में यह उत्सव अनूठा था। यह है इनकी गुरु-निष्ठा।

गुप्त जी ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में अच्छी उन्नति की। इन्होंने विश्वविद्यालय की उच्चतम उपाधियाँ पी-एच० डी० और डी० लिट्० प्राप्त कीं। यह एक अच्छे डिग्री कालेज के प्रतिष्ठित प्राचार्य हुए। साथ ही साहित्य के शोध-क्षेत्र में भी

इन्हें अच्छी मान्यता मिली। फिर भी इनका स्वभाव ज्यों का त्यों विनयशील बना हुआ है। इन्हें गर्व छू भी नहीं गया।

जब भी मैं किशोरी लाल को देखता हूँ, मुझे बहुत प्रसन्नता होती है और मेरे रोम रोम से इनके लिए आशीर्वाद फूट निकलता है। अभिनंदन के इस अवसर पर मैं अपने प्रिय, सुयोग्य, निरभिमान शिष्य के यशःसौरभ के दिग-दिगन्त में निरन्तर प्रसरित होते जाने की कामना करता हूँ।

यशस्वी रहें, हे प्रभो हे मुरारे।
चिरंजीव डाक्टर किशोरी हमारे॥

चैत्र सुदी रामनवमी २०४५
(२६-३-१९८८)

सर्वजित् त्रिपाठी*
विश्वनाथपुर, वाराणसी

२. भारती का भंडार निरंतर भरते रहें

नहीं चाहिए संगी साथी, नहीं चाहिए अतुलित धन
साथ रहे पेड़ों पत्तों का, बहता शीतल रहे पवन

डा० गुप्त का घर नीम की सुखद छाया में स्थित है। इनके संगी साथी इनके पुस्तकालय के अनमोल ग्रंथ ही हैं। यह पैसे वाले नहीं हैं। इनका तो कहना है—

साई इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

हिन्दी साहित्य के इस असामान्य सेवक का बाल्य जीवन अत्यन्त सामान्य था। इनके पिता श्री जोखू साहु की परचून की छोटी सी चल दूकान थी। इसे लेकर वे हर सोमवार और शुक्रवार को अपराह्न में बिछिया आते थे। बिछिया में प्रारंभिक पाठ-शाला थी, जहाँ मैंने पढ़ा था और गुप्त जी ने भी १९२२-२८ में वहीं पढ़ा। गुप्त जी स्कूल से छूटकर बाजार के दिनों अपने पिता श्री की सहायता के लिए आ जाया करते थे।

---

* डा० गुप्त के इन आदि साहित्य-गुरु का निधन ८९ वर्ष की वय में ४ नवम्बर ८८को अभी हाल ही में हो गया। पिछले चार-पांच वर्षों से वे लकवा ग्रस्त हो गए थे।

जोखू साहु बहुत सीधे आदमी थे। वे नाम-मात्र के मुनाफे पर सौदा बेचते थे। बाजार में कुछ लड़के उनकी दूकान से हल्दी की गांठ या खैर, सोपाड़ी चुरा लेते थे, पर उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता था। दूकान पर काफी भीड़ होती थी, क्योंकि जोखू साहु के यहां काम की प्रायः हर चीज मिल जाया करती थी।

जोखू साहु बनजरवा के सुप्रसिद्ध गायक थे। बनजरवा तेलियों का प्रसिद्ध लोक-प्रबंध है। गायक पद्य जोड़ता चलता है और गाता चलता है। यह एक प्रकार से आशु-कविता है। इस कथा में शृंगार और वीर रस का अद्भुत योग है। साहु लोगों का एक और गीत है पितमा। पितमा वस्तुतः प्रियतमा है। यह विरह गीत है और मुक्तक काव्य है। पुराने जमाने में जब बनजारे (वणिक) लोग अपने-अपने बैलों या ऊँटों पर पण्य सामग्री लादकर चलते थे, तब इन गीतों को गाया करते थे। डा० गुप्त में साहित्य का अंकुर अपने पिता की इस गायकी से ही आविर्भूत हुआ।

गुप्त जी को बाहरी पुस्तकों के पढ़ने का चस्का प्राइमरी स्कूल से ही लग गया था। बिछिया के प्रधानाध्यापक पं० सर्वजित त्रिपाठी ने एक पुस्तकालय खोल रखा था। १९२८ में गुप्त जी ने प्राइमरी पाठशाला की पढ़ाई समाप्त की। गर्मियों की छुट्टियों में वे निकटस्थ गांव बिछिया रोज सबेरे जाते थे। वहां से पुस्तकालय के मंत्री श्री रामनंदन सिंह के यहां से एक किताब ले जाते थे, दिन भर पढ़ते थे, दूसरे दिन उसे लौटाकर दूसरी किताब ले जाते थे। इसी समय इन्होंने गांधी गौरव, प्रतापी प्रताप, तोष कृत सुधानिधि आदि ग्रंथ पढ़े। इसी पुस्तकालय के नाते श्री रामनंदन सिंह से उनकी प्रगाढ़ मैत्री हुई, जो उनकी मृत्यु तक (१९४३ ई०) बराबर बनी रही।

गुप्त जी ने १९३१ में गोपीगंज से मिडिल पास किया। इस वर्ष ग्रीष्मावकाश में वे एक दिन मेरे घर आए अंग्रेजी अनुवाद सीखने के लिए। अंग्रेजी अनुवाद का पहला पाठ इन्होंने मुझसे पढ़ा—अंग्रेजी में पहले कर्ता, फिर क्रिया, तदनन्तर कर्म आदि।

१९३२ में मैं बी०ए० पास करके लवेट हाई-स्कूल ज्ञानपुर में सहायक अध्यापक हुआ, उस समय गुप्त जी उक्त विद्यालय के स्पेशल बी के विद्यार्थी थे। उक्त कक्षा में इन्हें मुझसे पढ़ने का योग मिला। यह १९३२ से १९३६ तक मेरे विद्यार्थी रहे।

लवेट हाई-स्कूल ज्ञानपुर में पढ़ते समय ही गुप्त जी को कविता लिखने का चस्का लगा। ज्ञानपुर में साल भर में एक कवि सम्मेलन हुआ करता था। इसमें लवेट हाई-स्कूल के अध्यापक श्री रघुनाथ प्रसाद एवं श्री जगदम्बा प्रसाद अच्छा योग देते थे। इनसे प्रेरणा पाकर गुप्त जी और इनके कुछ साथी तुकबंदी करने लगे। इन लड़कों के सरदार गुप्त जी ही थे। यही सभी लड़कों की कविताएँ ठीक कर दिया करते थे। वह युग कवित्त सवैयों का था। ये लोग भी कवित्त सवैया लिखा करते थे। इनमें इतना

उत्साह था कि इन्होंने एक 'विद्यार्थी साहित्यवर्द्धिनी सभा' बना ली थी । इस सभा की बैठकें विद्यालय के समय के अनन्तर एक कक्ष में हुआ करती थीं । इसके लिए आवश्यक था कि प्रधानाचार्य की अनुमति प्राप्त हो । प्रधानाचार्य श्री बिशुन लाल कौल सुलझे हुए व्यक्ति थे । उन्होंने कहा कि कोई अध्यापक इस सभा का उत्तरदायित्व ले ले, तो मैं अनुमति दे दूँगा । किशोरीलाल और कुछ छात्र-कवि मेरे पास आये । मैंने उत्तर-दायित्व लेना स्वीकार कर लिया और सभा चल निकली, समस्याएं दी जातीं, स्वतन्त्र विषय भी निर्धारित होते । छात्र-कवि अपनी रचनाएं पढ़ते और आनन्द लेते । किशोरी लाल गुप्त के निर्माण में इस सभा का पर्याप्त योग है ।

इस विद्यालय में पहले एक अध्यापक राम सहाय लाल जी जौहरी थे । वे हिन्दी के परम प्रेमी थे । उन्होंने 'हिन्दी' नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली थी। इसमें छात्रों के लेख एवं कविताएं हुआ करती थीं । जौहरी जी का अल्प आयु में ही निधन हो गया । पत्रिका बंद हो गयी । बाद में उस समय के ज्ञानपुर के साहित्यकार पं० महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर' के सम्पादकत्व में 'हिन्दी' के दो अंक मुद्रित भी हुए थे ।

साहित्य प्रेमी इन लड़कों ने हस्तलिखित पत्रिका 'हिन्दी' को पुनः निकालना प्रारम्भ किया । इस पत्रिका के संपादक दूसरे लोग ही हुए, पर गुप्त जी इसमें खूब लिखते थे और गुप्त जी के साहित्यिक निर्माण में इस पत्रिका का भी बहुत बड़ा हाथ है । गुप्त जी ने क्वींस कालेज वाराणसी में पढ़ते समय (१९३६-३८) हस्तलिखित 'हिन्दी' का सम्पादन स्वयं किया । यह क्रम हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० में पढ़ते समय भी चलता रहा । हिन्दी का 'प्रसाद अंक' (जनवरी १९४०) तो साहित्य की अच्छी खासी निधि है ।

किशोरी लाल गुप्त पढ़ते समय एकदम बेलौस आदमी थे । वे किसी की टीका टिप्पणी की परवाह नहीं करते थे । एक बार रेडक्रास की ओर से सन लाइट साबुन आया और कुछ विद्यार्थियों को कपड़ा साफ करने के लिए दिया गया । गुप्त जी अपनी कक्षा के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी थे । पर उन्होंने किसी की परवा न करते हुए साबुन लिया और सबके सामने अपने कुछ कपड़े साफ किए । तब गुप्त जी नवें दर्जे में पढ़ते थे ।

जब यह दसवें दर्जे में पढ़ते थे, बनारस कमिश्नरी के कमिश्नर पन्नालाल आई. सी. एस. का पदार्पण विद्यालय में हुआ । उनके सम्मान में एक एकांकी प्रस्तुत किया गया । गुप्तजी ने उसमें चपरासी का पार्ट लिया, बिना किसी हिचक के ।

पढ़ते समय गुप्त जी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं थे । यह छात्रावास में रहते थे । यहां वह पूर्णरूपेण 'फ्री' थे । मेस में इन्हें भोजन के लिए कुछ देना नहीं पड़ता था। विद्यार्थी सहायक सभा से उन्हें इतना मिल जाता था, जिससे यह विद्यालयीय शुल्क आदि दे सकें ।

विश्वविद्यालय में इनको अर्द्ध शुल्क मुक्ति मिली थी, शेष शुल्क इन्हें देना ही था। इस अवसर पर इनके गाँव के धनाढ्य रईस बाबू राम शरण सिंह ने सौ-सौ रुपये करके दो बार ब्याज-मुक्त ऋण दिया था, जिसे गुप्त जी ने जब वे कमाने लगे, उनके मर जाने पर, उनके सुपुत्र को वापस किया। इस समय भदोही के श्री राधेश्याम गुप्त ने अपने सहपाठी गुप्त जी के लिए कोष का काम किया था। जब गुप्त जी का एम. ए. का अंतिम वर्ष था, राधेश्याम जी विश्वविद्यालय छोड़ चुके थे। यह एक वर्ष गुप्त जी के लिए कठिन साधना का वर्ष था। इस समय इन्होंने कुछ दिन केवल पके टमाटर पर बिताया था। इस समय इनकी सहायता इनके एक दूसरे मित्र श्री श्रीनाथ पांडेय दलपति पुर ने की। पांडे जी ने जो सहायता की थी, उसे वापस नहीं ली। राधेश्याम जी ने उदारता पूर्वक उसे वापस लेने की महती कृपा की।

गुप्त जी का साहित्यकार छात्र-जीवन में ही अपने पथ पर चल पड़ा। इण्टर में पढ़ते समय इन्होंने वाजिरा और अलका जैसे कथा काव्य लिख डाले थे। विश्वविद्यालय में पढ़ते समय इन्होंने एक दिन में शा के 'डार्क लेडी आफ द सानेट्स' का अनुवाद कर डाला था। एक सप्ताह में दो नाटक प्रस्तुत कर दिये थे। यह सब डा० गुप्त की प्रतिभा का प्रमाण है। नेपोलियन बोनापार्ट कहता था--

With Homer in my pocket and sword hanging by my side, I shall carve out my way in the world.

आज वे उच्चकोटि के समीक्षक, वरिष्ठ शोधकर्ता, प्राचीन काव्यों के कुशल सम्पादक एवं व्रज भाषा के श्रेष्ठ कवि हैं। इनका घर हमारे घर से दो मील की ही दूरी पर है। हमारी भेंट प्रायः होती रहती है। उनकी साहित्यिक गतिविधियों का पता चलता रहता है। ये अनवरत साधनारत हैं। इनकी लेखनी बराबर चलती जा रही है। यह सतत चलती रहे। वे स्वस्थ रहते हुए सौ शरदों तक निरन्तर सक्रिय रहें और माँ भारती के भंडार को बराबर भरते रहें, यही मेरा आशीर्वाद है।

सच है—

क्रिया सिद्धिः सत्वे, भवतु महतां नोपकरणे

—**नन्द किशोर त्रिपाठी**, बी०ए०, बी० टी०
विश्वनाथपुर, वाराणसी

३. स्नेहाशीष

प्रभु ने परम अनुग्रह करके जीविका-अर्जन करने के निमित्त शिक्षक का काम दिया था। कोई बत्तीस वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में विविध पदों पर रहकर, मुझे सहस्रों छात्रों का अध्यापक कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनमें अनेक जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में यशस्वी हुए। जैसे मैं अध्यापन के साथ ही साहित्य रचना में भी यथाशक्य लगा रहा और सेवा से निवृत्त होने पर अब भी कुछ न कुछ लेखन कार्य करता रहता हूँ, वैसे ही मेरे कुछ शिष्य भी अध्यापन तथा साहित्य-रचना भी करते रहे, कुछ केवल साहित्यसर्जन ही करते रहे। इनमें पहले वर्ग के जिन शिष्यों ने समुचित प्रतिष्ठा पायी है, उनमें डा० किशोरी लाल गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० अन्यतम हैं।

वैसे तो मानव दुर्बलता है कि वह अपने से बढ़कर किसी को देखना नहीं चाहता, परन्तु इस प्रवृत्ति में एक अपवाद है। गुरु को अपने शिष्य को अपने से अधिक प्रतिष्ठित होते देख जो सुख मिलता है, वह अनिर्वचनीय होता है। मुझे भी डा० किशोरी लाल के प्रति ऐसा ही आनन्द निरन्तर अनुभव होता आया है। जब से मैंने इनको अध्यापन के क्षेत्र में प्राध्यापक, प्राचार्य होते देखा तथा इनकी कृतियों की प्रशंसा सुनी, तब से मुझे इनसे अपना सम्बन्ध बहुत ही अच्छा लगने लगा। मैं सदैव यह सोचा करता हूँ, कि यद्यपि मैंने इन्हें केवल १९३६ से १९३८ तक क्वींस कालेज, वाराणसी में इण्टरमीडिएट कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा दी है, फिर भी ये मेरे यशस्वी शिष्य हैं और इनकी उन्नति, प्रतिष्ठा एक प्रकार से मेरी ही प्रतिष्ठा है।

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत।

मुझे स्वभावतया सबकी उन्नति से हार्दिक सुख मिलता है। यह प्रभु की देन है। फिर जिनसे आत्मीय सम्बन्ध है, डा० किशोरी लाल जैसे उन प्रिय शिष्यों की उन्नति से और ही आनन्द मिलता है।

मुझे इस बात का हर्ष है कि कविता, निबन्ध, नाटक आदि की रचना में चि० किशोरी लाल ने जो मौलिक प्रतिभा प्रदर्शित की है, उससे कहीं अधिक उन्होंने शोध विषयक अपनी कृतियों में प्रकट की है। पुराने साहित्यकारों से उनकी रचनाओं में जो भूलें, भ्रांतियाँ हो गयी थीं, उन्हें सुधारने में डा० किशोरी लाल ने जो कार्य किये हैं, वे बड़े महत्त्व के हैं। उनकी पकड़ अचूक होती है। वे जो कुछ कहते हैं, उसके लिए समुचित प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। उनका अध्ययन गम्भीर और विस्तृत है। उनका

'हिन्दी कविता का इतिहास' इस क्षेत्र की असाधारण रचना प्रमाणित होगा। इससे हिन्दी साहित्य के इतिहास के रचयिताओं में उनको जो प्रतिष्ठा मिलेगी, वह चिर-स्थायी होगी।

देखने में अत्यन्त साधारण लगनेवाले, मृदुभाषी और सरल डा० किशोरी लाल के भीतर कितना गहरा ज्ञान छिपा है, यह उनसे बातें करने पर तुरन्त प्रकट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति सचमुच 'विद्या ददाति विनयम्' के जीते जागते स्वरूप होते हैं। मैं प्रभु श्रीराम से प्रार्थना करता हूँ कि चि० किशोरी लाल स्वस्थ रहें और अपनी अमर कृतियों से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहें।

—रामबहोरी शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०
साकेत २५२/२ अलोपी बाग
इलाहाबाद—२११००६

४. जीवेत शरदः शतम्

पहले हिन्दी पुस्तक-लेखन और प्रकाशन दोनों सेवा-भाव से प्रारम्भ हुए थे। हिन्दी में पुस्तक-लेखन कभी भी व्यवसाय नहीं बना। दो चार लोगों ने भले ही कुछ पैसा कमा लिया हो, पर हिन्दी में पुस्तक-लेखन के ही भरोसे रहकर किसी की रोजी-रोटी नहीं चल सकती। यही बात पुस्तक-प्रकाशन के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। अब प्रकाशन सेवा-कार्य नहीं रह गया है। वह व्यवसाय बन चुका है। लागत का आठ-गुना दस-गुना दाम रखना सामान्य बात हो गई है। अब प्रकाशक सामान्य जनता के लिए ग्रंथ नहीं प्रकाशित करता। वह सरकारी खरीद या पुस्तकालयीय खरीद के लिए छापता है। यहाँ उसे चालीस प्रतिशत कमीशन देना पड़ता है, साथ ही और कुछ पत्र-पुष्प क्रेता-देवता को चढ़ाना पड़ता है। पर इसमें क्रेता-देवता का दोष नहीं है, अपने माल की बिक्री के लिए उसे पूजा देनी पड़ती है। सरकार का दोष भारी कमीशन लेने का है। इससे पुस्तकों के दाम बहुत बढ़ गये हैं और सामान्य पाठक इन्हें स्वयं क्रय करने की इच्छा रहते हुए भी अपनी क्रय-शक्ति से बाहर पा रहा है। फलतः पुस्तकें प्रकाशित होते हुए भी अप्रकाशित सी रह जा रही हैं, पाठकों तक नहीं पहुँच पा रही हैं। जो पुस्तकें पहले छपी थीं और जिनका मूल्य पाठक की क्रयशक्ति के भीतर था, अब उनका भी दाम १५ रु० से ३५ रु०, फिर ५५ रु० हो गया है। सौ-सौ पृष्ठों की छोटी-छोटी पुस्तकों के मूल्य सत्तर अस्सी रुपये हो गये हैं। पुस्तकों की यह व्यावसायिकता दिल्ली से प्रारम्भ हुई है और इसके मूल में एक ओर तो सरकारी कमीशन की ऊँची

दर है, दूसरे प्रकाशक का लोभ है। खरीद में कमीशन की यह प्रक्रिया समाप्त होनी चाहिए और पुस्तकों के मूल्य-निर्धारण के लिए कुछ सामान्य नियम निर्धारित होने चाहिए।

किताबों के दाम जो इतनी तेजी से बढ़े हैं, इससे लेखक को क्या लाभ है? प्रकाशक को तो निश्चय ही इससे लाभ है, तभी वह यह जघन्य कृत्य करता है। पहले जब मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी, ग्रंथ हाथ से लिखे जाते थे, तब ग्रंथ-दान भी परम पुण्य कृत्य माना जाता था। आज तो दान की कौन कहे, पैसा देने पर भी ग्रंथ पहुँच के बाहर हो रहे हैं। लेखक को १५ प्रतिशत स्वामित्व देने का वादा किया जाता है। कभी-कभी यह वादा लिखित भी होता है और कानून के अनुसार होता है; पर इसका पालन नहीं होता। प्रकाशक प्रारम्भ के दो-तीन वर्षों तक तो कुछ दे देता है, फिर यह कहकर कि किताबें बिकतीं नहीं, लेखक चाहे तो अपनी समस्त शेष पुस्तकें किसी निर्धारित मूल्य पर खरीद ले, रायल्टी देना बन्द कर देता है। पहले तो लेखक खरीदने में असमर्थ है, फिर भी यदि वह इन्हें खरीद भी सके, तो इनका क्या करेगा? यदि वह मुद्रित करा कर बेचने की व्यवस्था कर सकता, तो वह स्वयं प्रकाशक न बन जाता?

इतना सब हो जाने पर भी उच्चकोटि के साहित्य के लिए प्रकाशक नहीं मिलते। प्रकाशक ऐसी रचना चाहता है, जो बाजार में आते ही साल दो साल में बिक जाय। उसे लागत मूल्य निकालने के लिए प्रतीक्षा न करनी पड़े।

प्रकाशन की ऐसी विकट स्थिति में वे लेखक धन्य है, जो प्रकाशन की चिंता न करते हुए अपने लेखन-पथ पर अनवरत गति से बढ़ते जाते हैं। ऐसे ही लेखकों में डा० किशोरी लाल गुप्त हैं। इन्होंने अपने पचास से अधिक वर्षों के साहित्यिक जीवन में १२५ ग्रंथ लिखे हैं और ७२ वर्ष की वय में भी योजनाबद्ध ढंग से लिखते जा रहे हैं। इनके कुल २७ ग्रंथ प्रकाशित हैं, जिन्होंने इन्हें अच्छा यश प्रदान किया है। ये ग्रंथ ऐसे हैं जो डा० गुप्त की विद्वत्ता, स्वाध्याय—रुचि तथा सुरुचि का संकेत करते हैं। प्राचीन कवियों पर काम करने वाले लोग इनके सरोज सर्वेक्षण का निरंतर उपयोग करते हैं।

डा० गुप्त हिन्दी के अनुसंधित्सुओं के लिए अज्ञात नहीं हैं। पर हमारी सरकार की दृष्टि उनके इस विशद साहित्य पर नहीं पड़ी है। वहाँ इनके सम्बन्ध में कुछ कहने सुनने वाला कोई नहीं जान पड़ता। अब तक इन्हें भी उत्तर प्रदेश सरकार के हिन्दी संस्थान का पुरस्कार मिल जाना चाहिए था। पर वहाँ कोई पुछाने वाला चाहिए। सरकार को सबकी खोज खबर रखनी चाहिए।

डा० गुप्त के अप्रकाशित ग्रंथों में एक है—हिन्दी कवि और काव्य। इसमें १८ बड़ी जिल्दों में ऐतिहासिक काल क्रम से हिन्दी के अधिकांश कवियों का चयन एवं संचयन किया गया है। कवि संख्या दो हजार से अधिक होगी और कुल पृष्ठ-संख्या बारह हजार से अधिक। इसमें पुरानी हिन्दी, मैथिली, ब्रजबुली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, खड़ी बोली, दक्खिनी, रेखता, उर्दू सभी का समावेश है। इसे डा० गुप्त ने पचीसों वर्ष के स्वाध्याय से प्रस्तुत किया है। यदि यही काम सरकार की कोई संस्था कराती, तो लाखों रुपये का व्यय होता और ऐसा अद्भुत काव्य संग्रह तब भी प्रस्तुत न हो पाता।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है—हिन्दी कविता का इतिहास, जो आठ जिल्दों में प्रस्तुत होना है और जिसके पाँच खंड लिखे जा चुके हैं। इस समय डा० गुप्त इसी कार्य में लगे हुए हैं।

तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य सूर सम्बन्धी है। इनका एक शोध ग्रंथ है—महाकवि सूरदास और सूर नवीन। गुप्तजी इन दोनों सूरदासों के दो अलग-अलग सूरसागर स्वीकार करते हैं। उनका अन्तिम ध्येय इन दोनों सूरसागरों का अलग-अलग सम्पादन करना है।

इन तीनों कामों में से कोई भी एक किसी भी साहित्यकार को सुयश प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। साहित्य-पथ का यह पथिक प्रकाशन की चिंता न करता हुआ, पुरस्कारों की प्रतीक्षा के लिए न विरमता हुआ, तीन सौ रुपयों की सामान्य पेंशन पर किसी प्रकार जीवन-यापन करता हुआ, निरंतर हिन्दी साहित्य के इतिहास को निर्भ्रांत करता चल रहा है।

मुझे गर्व है कि यह साहित्य-साधक मेरा शिष्य रहा है। इसने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० में १९३८–४० में जहाँ आचार्य पं० रामचन्द्रशुक्ल से पढ़ा है, वहीं मुझसे और आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से भी। वे दोनों आचार्य अब इन्हें आशीः देने के लिए नहीं हैं। मैं गद्गद हृदय से अपने इस सुयोग्य शिष्य को आशीः देता हूँ कि वह कम से कम मेरी इस समय की उम्र तक अवश्य जीवित रहे और उसकी लेखनी निर्मल निर्झरिणी सी अनवरत प्रवाहित होकर हिन्दी साहित्य के अभावों को पूर्ण करती रहे।

जीवेत शरदः शतम्।

—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, एम० ए, डी० लिट्०
औरंगाबाद, वाराणसी

५. आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के आशीः

आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र डा० किशोरी लाल गुप्त के साहित्य-गुरु थे। डा० गुप्त को प्राचीन काव्य ग्रंथों के संपादन की प्रेरणा आचार्य मिश्र से मिली थी। आज मिश्र जी इस धराधाम पर नहीं हैं, यदि वे जीवित होते तो अपने शिष्य का यह अभिनन्दन देख उन्हें हार्दिक हर्ष होता और वे अपना लिखित आशीः स्वयं देते। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों में डा० गुप्त को आशीः दिया है। उन्हीं उद्धरणों से यह लेख प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) रसखानि २०१६

रसखानि के द्वितीय संस्करण (रथयात्रा सं० २०१६) में गुप्तजी को आचार्य मिश्र ने यह धन्यवाद दिया है—

"धन्यवाद।

इस नवीन संस्करण में यथास्थान कुछ परिष्कार भर कर दिया है। प्रकीर्णक में दो छन्द बढ़ाए गये हैं। एक तो मुझे प्राचीन होली विषयक संग्रह में मिला है और दूसरा श्री किशोरी लाल गुप्त से प्राप्त हुआ है। गुप्त जी ने मुझे रसखानि के दो छन्दों के संबंध में यह सूचना भेजी है कि वे अन्य के नाम पर 'राग रत्नाकर' में मिलते हैं। रसखानि के और भी कई छंद दूसरों के नाम पर चढ़ गये हैं। मैंने जिन छंदों का संग्रह किया है, उनमें से अधिकांश कवि के नाम पर मिलने वाले संग्रहों के आधार पर। अब जब तक कोई पक्का प्रमाण न मिल जाए, इन्हें रसखानि का ही मानना समुचित प्रतीत होता है। उक्त सूचनाओं के लिए श्री गुप्त जी आशीर्वादार्ह और धन्यवादार्ह भी हैं।"

प्रसंग-प्राप्त छंद यह है—

मग हेरत धूंधरे नैन भए, रसना रटि वा गुन गावन की
अँगुरी गिनि हारि थकी सजनी, सगुनौती चलै नहिं पावन की
पथिकौ कोउ ऐसो जु नाहि कहैं, सुधियौ रसखानि के आवन की
मनभावन आवन सावन में कही, औधि भई डग बावन की

रसखानि के तृतीय संस्करण में 'प्रवर्धित संस्करण' के अन्तंगत मिश्र जी ने पुनः लिखा—

"कुछ छंद विविध संग्रहों से ढूंढ खोज कर पहले ही मेरे कई शिष्यों ने मुझे दे रखे थे—सर्वश्री डा० किशोरी लाल गुप्त, रामबली पाण्डे, बटे कृष्ण ।

× × ×

प्रकीर्णक में जितने छंद संकलित हैं, उनमे से ३ से ८ तक श्री किशोरी लाल गुप्त ने खोज के विवरणों से संग्रहीत करके मुझे दिये हैं ।"

प्रसंग-प्राप्त छंद निम्नलिखित हैं—

अब धीरज क्यों न धरौ सजनी, प्रिय तो तुमसों अनुरागेइगो।
जब जोग वियोग को आनि बनै, तब जोग वियोग को भागेइगो।
निहचै निरधार धरौ जिय मैं, 'रसखानि' सबै रस पागेइगो।
जिनके मन सौं मन लागि रहै, तिनके तन सौं तन लागेइगो ॥३॥

जब तें इन सौत सवागनि ने, मुख सों मुख जोरि लियो रस री।
निसि द्यौस रहै अधरानि धरी, नित गावति है पिय के जस री।
मधुरे मधुरे सुर बाजत है, इन प्रान लिए सबके कस री।
हम तौ ब्रज को बसिबोई तज्यौ, ब्रज बैरिनि बांसुरी तु बसु री ॥४॥

सुगंध लगाइकै ऊबि मरौं, प्रिय जानत हैं तन की सुकुमारी।
हार चमेली को नोक लगै, प्रिय लाज करौं पहिरौं तन सारी।
और अभूषन का बरनौं, प्रिय लागत पाउँ महावर भारी।
मेरे सुभाव को जानौ नहीं, रसखानि कपूर मलै समता री ॥५॥

आए कहा करि कै कहियै, वृषभान लली सौं लला दृग जोरत।
ता दिन तें अँसुवान की धार, रही बहि, जद्यपि लोग निहोरत।
बेगि चलौ रसखानि बलाय ल्यौं, क्यों अभिमानन भौंह मरोरत।
प्यारे पुरंदर होइ न, प्यारी अबै पल आधिक मैं ब्रज बोरत ॥६॥

श्रीमुख यौं न बखानि सकै, वृषभानु सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखानि तु ज्ञान सम्हार, तरैनि निहारि जु रीझनहारो।
चारु सिंदूर को लाल रसाल, लसै ब्रजबाल के भाल टिकारो।
गोद में मानों विराजत है, घनश्याम के सारे कँ राम को सारो ॥७॥

सास अहो बरजौ बिटिया, जो बिलोके अलोक लगावत है।
मोसू कहै जु कहूँ वह बात, कहो वह कौन कहावत है।
चाहत काहु के मूड़ चढ़यो, 'रसखानि' झुके झुकि आवत है।
जब तें वह ग्वाल गली मै नच्यो, तब ते मोहिं नाच नचावत है ॥ ८ ॥

(ख) भूषण २०१६

भूषण द्वितीय संस्करण (सं० २०१६ महाशिवरात्रि) के अनुवचन में पंडित जी डा० गुप्त के सम्बन्ध में यह लिखते हैं—

"प्राचीन काव्यधारा में नदीष्ण मेरे प्रिय शिष्य डाक्टर किशोरी लाल गुप्त ने कुछ प्रमाणों के आधार पर शिवभूषण के कर्ता का नाम खोज निकालने की सूचना पत्रों में दी थी। उन्होंने किसी पुराने संग्रह के आधार पर यह बताया था कि उनका नाम ब्रजभूषण था। उसी के उत्तरार्ध को कवि ने उपाधि या छाप के रूप में प्रयुक्त किया। पर इधर साक्षात्कार होने पर और चर्चा चलाने पर उन्होंने उसकी प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट किया। श्री गुप्त निरंतर प्राचीन काव्य संग्रहों के आलोड़न में दत्तचित्त रहते हैं। इसलिए उन्होंने भूषण कवि के दो नयें छंद और खोज निकाले हैं। वे लिखते हैं—

'बिहारी सतसई के आजम शाही क्रम के कर्ता हरजू मिश्र के वंशज पंडित दया शंकर मिश्र के पास से मुझे एक हस्तलिखित संकलन ग्रंथ देखने को मिला है। उक्त संकलन पंडित आह्लाद मिश्र का किया हुआ है। यह प्रति भी उन्हीं पंडित जी की लिखी हुई है और अतीव जीर्ण शीर्ण हालत में है। उक्त पंडित जी का देहावसान १८५६ ई० में हुआ था। पंडित दयाशंकर मिश्र जी के प्रपितामह पं० शीतला प्रसाद जी आह्लाद मिश्र के चचेरे भाई थे। उक्त पोथी में आह्लाद जो ने अपने पूर्वज अकबरी दरबार के प्रसिद्ध जगन्नाथ मिश्र, आजमगढ़ के राजा आजम खां, अजमत खां एवं महावत खां के दरबारी एवं गुरु पं० बल्देव मिश्र, बिहारी सतसई के आजमशाही क्रम के कर्ता हरजू मिश्र तथा देवी भागवत को महापुराण सिद्ध करके वेदमणि की उपाधि प्राप्त करने वाले नीलकण्ठ मिश्र तथा अन्यपूर्वजों की रचनाओं के साथ अन्य अनेक सुकवियों के भी कुछ छंद संकलित कर दिये हैं। इस संकलन में महाकवि भूषण के भी दो छंद है, जो एकदम नये हैं।

एक छंद शांत रस का है। यह भूषण का शांत रस संबंधी द्वितीय प्राप्त छंद है—

जासों प्रीति चाही, तासों कीजै न अरथवाद,
मीत बनिता के पीछे कीजै न नजरि है।
याही ते असुर योगी छाने नैन चितवन,
जानत हैं नीके करि हर और हरि हैं।
भूषन भनै रे मन सिद्ध से सनेह करु,
श्रीपति रिसाने ते बिपति तोपै परिहै।
साधना-निपुन नर भव-सुख भोग करि,
विमुख सुगमता से भवनिधि तरिहै।

दूसरा छंद शिवा जी संबंधी है—

एक ओर गोवा ते फिरंगी जंगी भट भिरे
दान फैलो समुद लौं जाकी बाँह छांह सों।
एक ओर रन घेरि मुलुक दबाय लीन्हों
भूषन लगै न गाई सांझि औ सुबाह सों।
ऐसो काल पाय के बिकल ह्वै भूपाल सबै,
कौन भट भिरै बल सिंधुर अथाह सों।
एक ओर सिवराज एदिल सों लरो करै
एक ओर टक्कर दिली के नरनाह सों।

इसी अनुवचन में पृष्ठ १३ पर मिश्र जी लिखते हैं—

"इस संस्करण के प्रस्तुत करने में जिनसे सहायता मिली है, उनमें से सबसे अधिक साधुवाद और आशीर्वाद के भाजन हैं सर्व श्री किशोरी लाल गुप्त, राम बली पाण्डे, रामादास। श्री गुप्त ने नवीन छंद खोज कर दिये।"

(ग) हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, २०२२

हिन्दी साहित्य का अतीत भाग—२ में द्वितीय वर्धित संस्करण के अन्तर्गत मिश्र जी लिखते हैं—

"इस संस्करण में कुछ सन्, संबतों तथा विवरण में संशोधन शिष्यों के नूतन अनुसंधान के परिणाम-स्वरूप करना पड़ा है। विशेषतया सहायता श्री किशोरी लाल गुप्त, एम० ए० पी-एच० डी०, डी० लिट्०, से मिली है। कुछ संशोधन-वर्धन नये हस्त लेखों के मिल जाने से करना पड़ा है, सर्व श्री किशोरी लाल गुप्त, बटे कृष्ण, जनार्दन चेलेर एतदर्थं आशीर्वादार्ह हैं।"

ठाकुर के प्रकरण में आचार्य मिश्र पाद टिप्पणी में पृष्ठ ७३७ पर लिखते हैं—

"इधर कालिदास हजारा के संबंध में मेरे प्रिय शिष्य श्री किशोरी लाल गुप्त ने जो सामग्री संकलित की है, उससे प्रमाणित होता है कि किसी परवर्ती रचना को कालिदास हजारा मान लिया गया है। इस स्थापना के अनुसार प्राचीन ठाकुर का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इस प्रकार दो ही ठाकुर बच रहते हैं—एक असनी वाले रीति वद्ध कवि और दूसरे जैतपुर वाले रीति मुक्त स्वच्छन्द कवि।"

(घ) नरोत्तमदास २०३१

नरोत्तम दास का प्रकाशन सभा की आकर ग्रंथमाला में हुआ है। इसमें डा० गुप्त के संबंध में आदरणीय मिश्र जी लिखते हैं—

"ध्रुव चरित की उपलब्धि का श्रेय सबसे पहले डा० किशोरी लाल गुप्त को है जिन्होंने मुझे बताया कि 'रसवंती' में इसके कुछ छंद छपे थे। 'रसवंती' मेरे पास क्रम-वद्ध कभी नहीं आई। इसलिए मुझे उसका पता नहीं था। 'रसवंती' से संकलन संशोधन पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' ने करके पूर्णाहुति दे दी। काशी निवासी के लिए 'गुप्त' और 'प्रवासी' जैसे शिष्यों का ही तो सहारा रह गया है। वे भूरि-भूरि साधुवादों के भाजन हैं और विश्वास है कि जिस परम्परा को निभाने में मैं मर खप रहा हूँ, उसे अपने दीर्घ कालिक जीवन में मरने न देगें। बालू की भीति के समांतर इनका सुदृढ़ दुर्ग बनेगा।"

इस बीच सिद्ध हो गया है कि प्रस्तुत 'ध्रुव-चरित्र' गँधौली के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं व्रज भाषा प्रेमी कृष्ण-विहारी मिश्र परिवार के एक लड़के का लीला विलास है और प्रवासी जी भी दिवंगत हो गए।

(ङ) बोधा २०३१

बोघा के संपादकीय में आचार्य मिश्र लिखते हैं—

"अँगरेजी में जिसे 'मिशन' कहते हैं, उसके बिना हिन्दी साहित्य का उद्धार नहीं हो सकता। व्यावसायात्मिका बुद्धि से यहाँ काम नहीं चल सकता है। काम चले, तो काम का न होगा। संतोष यही है कि कुछ युवक जो उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, ऐसे अवश्य दिखाई दे रहे हैं, जो इसी भावना से काम करते हुए मुझे जान पड़ते हैं, जैसे डाक्टर किशोरी लाल गुप्त (प्राचार्य, जमानिया, महाविद्यालय) एवम् डाक्टर किशोरीलाल प्राध्यापक रणजित सीताराम पंडित इण्टर विद्यालय नैनी, इलाहाबाद। संतोष इसीलिए है कि इसका संक्रमण आगे की पीढ़ी में हो गया है। यह प्रवाह चलता रहेगा, खंडित न हो सकेगा, ऐसा विश्वास हो गया है। अलमतिविस्तरेण।"

प्रसन्नता की बात है कि डा० किशोरी लाल गुप्त के प्रति आचार्य श्री का यह विश्वास और आशीर्वाद सफल हो रहा है और उन्होंने कुछ ग्रंथों और ग्रंथावलियों का संपादन प्रस्तुत कर लिया है।

—श्रीमती राधिका गुप्त, एम० ए०, बी० एड०

वाराणसी

३. जन्म-बधाई

(१)

[जन्म-दिवस पर भक्त जी द्वारा प्रेषित एक समग्र पत्र]

ॐ

गंगा दशहरा

आज किशोरी लाल गुप्त, अवतरित हुए गंगा के संग
सुधा-सलिल सँग कविता-जीवन, भव में भरने लगा तरंग
जन्म-पर्व पर उन्हें बधाई, देकर 'भक्त' माँगता वर
बढ़े अनंत-काल तक जीवन, गंगा सा वे रहें अमर

–भक्त

(११–६–६८)

२. जन्मोत्सव

(क)

विक्रम के संवत उन्नीस सौ तिहत्तर में
गंगा दसहरा, रवि भये, तरु काम सों
राधिका अराधि, साधि संतन को सेवा व्रत,
पायो सुत रत्न, प्यारी पतिनी ललाम सों
गोद भरी मातु की, प्रमोद पितु उर भर्यो,
पाय सुखधाम सुत नैन अभिराम सों
दीसन असीसन कौं आईं तिय झौरि-झौरि,
साहु जी की पौरि दौरि-दौरि ग्राम-ग्राम सों

(ख)

जन्म की पत्रिका सोधि कै सारद, लग्न सुजोग बिचारि लुभानी
लाल किशोरी के भाल पै अच्छत रोरी लगाइ कै, कंठ समानी
रूप अनूप निहारि सलोने को, आसिरबाद दियो वरदानी
"राखैं सदा मनुहार सों, प्यार सों, लाड़िले लाल कों राधिका रानी"

—सूरत सहाय लाल 'ध्रुव'

अध्यक्ष, शैदा साहित्य मंडल, आजमगढ़

४. वंदन

१. साधना के नाम

डॉ० श्री हरि, एम० ए०, पी-एच० डी०

देह दे दी तपस्या को
और सारी आयु लिख दी
साधना के नाम !

निर्झरों ने पीढ़ियाँ सींचीं
कि थी वाणी तुम्हारी,
लेखनी, या बसन्तों ने
सजा दी यह कुसुम क्यारी ?

सरल मन की कामनायें
दीं सृजन के देवता को,
रह गये निष्काम।
साधना के नाम।

रचा तुमने, या तुम्हें
रचता हुआ इतिहास आया,
तुम कभी युग तक गये या
युग तुम्हारे पास आया ?

देश, जाति, समाज के निधि,
हे किशोरी लाल! तुमको
बार बार प्रणाम।
साधना के नाम।

—स्वावलम्बन सेकेण्ड फ्लोर
मामलातदार बाड़ी, छठा रास्ता
मलाड (पच्छिम), बम्बई (महाराष्ट्र)

२. अभिनन्दन

जनप्रिय, अति उदार, विनयी व्यक्तित्व, अमल मन,
सरस्वती के साधक तुम, आराधक गुरु-जन;
हिन्दी वन के भ्रमर, अहर्निशि करते गुंजन
भरते हो भंडार, राष्ट्रभाषा का निशि-दिन

सहज, सरल, निष्कपट, भाव मय, मंजुल जीवन,
बुद्धिमान की बुद्धि; मधुर भाषा के मधुवन;
प्राध्यापक, प्राचार्य पदों का सफल निर्वहन,
काशी–गौरव, ज्ञानवंत, सुधवै-जन-रंजन;

सहज प्रेम, सौहार्द भाव, सुन्दर निर्मल मन,
मिलते सबसे, अति उदार चेतस् स्वरूप बन;
निर्भय, नव आदर्श पंथ का, कर अवलंवन,
राग-द्वेष से रहित, भरा भंडार ज्ञान-धन;

सतत तपस्वो, जुटा साधना के संसाधन,
श्रम से करते हो समृद्ध, भाषा का आँगन;
जन-जन में फैली सुकीर्ति तव उज्ज्वल पावन,
कविता-शोध महान समालोचन - अन्वेषण;

हिन्दी के साहित्य-जगत में, अभिनव चिंतन,
भाव-मयी कल्पना सुरभि, फैली ज्यौं चन्दन;
श्रम से, क्रम से, कृतियों का विस्तार आकलन,
बदल दिया इतिहास, छोड़कर सारे बंधन;

भारतेन्दु के परवर्ती, कवियों का मंथन,
तुलसी, गिरधर, जयशंकर प्रसाद अवगाहन;
घन आनंद 'सुजान शतक' सुन्दर-विलास भन
'सूर नवीन' औ सूर महाकवि का संपादन;

'शंपा' 'श्यामा' आदि काव्य, व्रज-भाषा रंजन;
रचना-रत, साहित्य-सृजन करते, दुर्बल तन!
बाल्मीकि आश्रम, बनकट, सीता-निर्वासन
लव-कुश जन्म-स्थान, राम-सेना संघर्षण;

सुरसरि-तमसा-तट-संगम-स्थल आदि विलोकन,
सुदि अषाढ़ नवमी मेला में सीता-पूजन;

युगों पुरानी कथा पूज्य थल का संयोजन,
तथ्यपूर्ण तर्कों से करके खंडन-मंडन;
तुमने निश्चित किया, आदि कवि का यह तप वन,
और किया लव-कुश-विद्यालय का संस्थापन;
रहा शिष्य सम्बन्ध, इसी नाते मेरा मन,
करता शत-शत नमन, और शत-शत चिर वन्दन,
शब्द कहाँ कर पाते तव पावन यश-गायन,
'गुप्त किशोरी लाल' तुम्हारा चिर अभिनंदन।

प्रधानाचार्य
महाबीर इं० का० बिछिया-बनकट
वाराणसी

शमशेर बहादुर सिंह
गुरु पूर्णिमा सं० २०४५

३. पत्र-पुष्प

जिनके अनिन्द्य चरणों पर, झुकते हैं अगणित प्राणी
उसका बंदन करती है कवि की कविता कल्याणी
पर भावों की भीड़ों से, मंथर हैं कंठ हमारे
बाहर न निकल पाते हैं स्वागत को छंद तुम्हारे
गौरव गायक भारत के वाणी के पूज्य पुजारी
तुमने श्रम से सींची है, कविताओं की फुलवारी
'शंपा' 'श्यामा' राधा' से, हिन्दी की ज्योति जगाई
संस्कृति की शाश्वत धारा, में स्नात सुरभि लहराई
जिसके सुरभित अंचल में, हँसते सुमनों की माला
छलकाती नित्य रहेगी, चिर संचित मधु का प्याला
साधना सिद्ध वाणी के, तुमने जो राह दिखाई
प्रेरणा सदा कवियों ने, जीवन भर उससे पाई
दीपक सा जलकर तुमने, अज्ञान तिमिर बिनसाया
माँ के पुनीत मंदिर में, पूजा का थाल सजाया
हे वंदनीय अभ्यागत, हे काव्य कला के स्वामी
तुमको प्रणाम करते हैं, हम भक्त-वृंद-अनुगामी

—वेद प्रकाश द्विवेदी

२ नवम्बर १९८८

मनोरमा-प्रकाश-निकेतन
साहित्य सदन, सेठवा
मालीपुर, फैजाबाद (उ०प्र०)

४. परिचय-प्रशस्ति

जनपद काशी, ग्राम सुधवै निवासी,
जोखू साहु सद्म सुत भयो, साधु सत्य काम सों।
जीवन को लच्छ मोच्छ मानि मन माँहि सदा,
चाहत लहन ताहि धर्म अर्थ काम सों।
दरस परस सीतावट को करत रहै,
लगन लगाइ राख्यौ राधा घनस्याम सों।
वाल्मीकि आश्रम अटन ना घटन पायो,
राखत पुनीत प्रीति सीतामढ़ी धाम सों।

—सूरत सहाय लाल 'ध्रुव'
आजमगढ़

५. प्रणाम

(शैदा साहित्य-मंडल आजमगढ़ की ओर से)

यहीं प्रकाशित हुई—धरा की ही अनुकम्पा—
'राधा' बाधा-हरनि कृष्ण की, 'श्यामा' 'शंपा'।
'शैदा' 'भक्त' समान मित्रगण हुए तुम्हारे।
शिष्य आज भी करते हैं गुण गान तुम्हारे।
आजमगढ़ की धरा को, वाणी का बरदान है।
उसके सेवक का सदा, यहाँ हुआ उत्थान है।
काव्य तुम्हारा सुरभित शीतल ज्यों चंदन है।
प्रेम जगत में विचरण को विरचा स्पंदन है।
खोज पूर्ण अभिलेखों की है धरी धरोहर।
गद्य, पद्य, अनुवाद रचा, टीका अति मनहर।
संत, सरल-चित, विमल मति, पावन चरित ललाम है।
शैदा की यह गोष्ठी, करती तुम्हें प्रणाम है।

६. अक्षत-चंदन

शब्द-शिल्प का तुम्हें समर्पित, होता अक्षत चंदन
समालोचना गंध सुवासित, है कविता का उपवन
विद्वद्वर हैं आप हमारे, साहू - कमल - दिवाकर
करें किशोरी लाल गुप्त का, साहित्यिक अभिनन्दन।

—**डा० राम भरोसे साहू**, एम० ए०, पी-एच० डी०,
हिन्दी विभागाध्यक्ष, विवेकानंद महाविद्यालय
दिवियापुर; इटावा।

५. पूर्वाभिनन्दन

१. संवर्द्धना

[भक्त गोष्ठी के तत्वावधान में ६ दिसम्बर १९५४ को हुए 'राधा' समर्पणोत्सव के अवसर पर, आर्य समाज मन्दिर आजमगढ़ में, अध्यक्ष पद से, महाकवि गुरु भक्त सिंह 'भक्त' द्वारा पठित]

'भक्त गोष्ठी' हार के, 'गुप्त' तरल अनमोल
'भक्त' हुआ, 'शैदा' हुआ, जग, सुन इनके बोल । १।
कालिंदी चूमा करे, जब तक व्रज की भूमि
अपनी 'राधा' की रहे, लोक-लोक में धूम । २।

२. अखिल भारतीय कामायनी सम्मेलन

डा० किशोरी लाल गुप्त की संवर्द्धना

विद्वद्वर,

आज कामायनी सम्मेलन के निश्चित कार्यक्रम में आपकी सम्बर्द्धना करना एक कर्तव्य माना गया है, क्योंकि आपने कामायनी के विचार और विवेचन में उल्लेखनीय योग दिया है। आपने पहली बार 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' उपस्थित करके कामायनी के अध्ययन की सोपान-परम्परा स्थिर की है। फिर आपने सबसे पहले अंग्रेजी में कामायनी का अनुवाद करके हमलोगों की प्रशंसा पाई। आपने कामायनी और कामायनीकार के सम्बन्ध में लिखकर, पढ़कर और पढ़ाकर जो काम किया है, वह जानकारों के लिए बहुत सन्तोष की बात है।

शिष्य प्रवर,

कहा जाता है कि आधुनिक साहित्य का विशेषज्ञ प्राचीन हिन्दी काव्य में नहीं रम पाता। उसी प्रकार प्राचीन का विशेषज्ञ आधुनिक में तन्मय नहीं हो पाता। पर आपके गुरु जन इन दोनों में आपका सम अधिकार देख कर परम प्रसन्न होते हैं। ऐसे योग्य शिष्यों से ही कामायनी का स्वाध्याय बढ़ेगा।

कविवर,

आप आलोचना और शोध के क्षेत्र में अभी-अभी डॉक्टर पदवी से सम्मानित हुए हैं, पर उससे बड़ा पक्ष है आपका काव्य-प्रणयन। आपके शोध कार्य को मर्मज्ञों ने ऐतिहासिक महत्व का माना है। पर हमें आपकी कविता में जो सूझ और शक्ति दिखाई पड़ी है, वही आपके समग्र जीवन का मूल तत्व है। इससे आज हम आपकी

आलोचना और रचना दोनों की प्रशंसा एक ही वाक्य में करते हैं कि आप 'शक्तिशाली' हैं।

हम हैं आपकी दीर्घायु की कामना करने वाले
अखिल भारतीय कामायनी सम्मेलन के सदस्य

वेणी शंकर झा — स्थान-काशी — पद्म नारायण आचार्य
स्वागताध्यक्ष — दिनांक ३-१-५८ — संयोजक

३. यही किशोरी लाल गुप्त था

[पी-एच० डी० की उपाधि से अलंकृत होने पर शिवली कालेज आजमगढ़ की विद्वत् परिषद में डा० किशोरी लाल गुप्त की संवर्द्धना में श्री कृष्ण कुमार मिश्र एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) प्रवक्ता हिन्दी द्वारा पठित]

२०-१-१९५८

मातृ देवता सरस्वती-गृह, विभा-स्नात मंगल दीपों से
नवल प्रवाल प्रसून विमंडित, गूँज रहा मङ्गल गीतों से
मृदु सुकण्ठ रागिनी लहरती, उद्वेलित कर रही प्राण मन
विविध मधुर स्वन बाद्य-प्रवर्तन, उन्मद भाव कर रहे सर्जन
जननी का आनन्द उच्छलित, लख अपना सुत उच्च प्रतिष्ठित
आज फलित सब हुआ अभीप्सित, उसकी कोख असीम गौरवित
हुआ स्फुरित जो ज्ञान सुप्त था, हुआ प्रकट जो लाल लुप्त था
साहित्यिक कृतिकार निपुण वह, यही किशोरी लाल गुप्त था
क्षौम वसन, भूषा समलंकृत, आसीमन्त चरण आरंजित
कंचन थाल लिए कर जननी, करती सुवन-भाल तिलकांकित

४. शोध-सम्राट डॉ० किशोरी लाल गुप्त

एम० ए०, पी-एच० डी०

को

सादर

खग-कुल मौन हुआ कुछ गाकर, दिन की खतम कहानी
साँझ सलोनी सजो-बजी, पर भरा आँख में पानी
बरसों सरसों के सँग डोले, खलती आज विदाई
जाने किसने तेल छिड़ककर, चुपके आग लगाई
कली 'किशोरी लाल' प्रफुल्लित, 'शंदा' थे मधुपाई
जनपद सारा 'भक्त' बना था, गाते 'सूंड़' बड़ाई

'गुप्त' खड़ी बोली के प्यारे, घन-आनन्द व्रजी के।
'शिव सरोज' के साधक बोलो, क्या होगा अब जी के।
'राधा' के प्रत्येक पृष्ठ पर, चित्रित रहे 'कन्हैया'।
अब तक रही पिलाती गोरस, तुम्हें 'वैद' की गइया।
स्नेही तुम हो, स्नेह 'कला' में, 'श्यामा' में चलता है।
घर पर, दर पर, काव्य दीप में, 'शंपा' सा जलता है।
आजमगढ़ सीपी के मोती, तुम्हें पड़ा बिक जाना।
'बाबू राम' 'विनोद' न मानें, आह भरें अष्ठाना।
'सुधवै' बे-सुध, 'बेखुद' बैठा, 'ज्ञानपुरी यह प्यासी।
'गोपीगंज' रंज में डूबा, 'काशी' बड़ी उदासी।
देकर बीड़ा 'विजय नरायण', सदा पान सा फेरे।
'भोला' मुख चंदन सा लेकर, फिरते साँझ सबेरे।
'बाज बहादुर' का घर सूना, 'शिवली' का आँगन है।
प्रीति 'प्रभाकर' 'प्रतिभा' सूनी, सूना 'कला भवन' है।
स्वाभिमान, 'प्रसाद' की कविता, 'मंजु' हृदय 'अभिनव' है।
'भारतेन्दु' से भव्य लग रहे, राजनीति उद्भव है।
मन मसोस 'मुखराम' रह गये, बोले 'अम्बु' मुबारक।
तुमको प्यारी लगे 'जमनियाँ', सदा रहे सुखकारक।

द्वारावती, पुरानी कोतवाली
आजमगढ़
२२-४-६२

सूंड़
संयोजक—भक्त गोष्ठी
आजमगढ़

(५)

वाणी के वरद पुत्र डा० किशोरी लाल जी गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

के

कर-कमलों में

सादर

परम शोधक,

आज आपको विदा करते हुए हम दुःखातिरेक का अनुभव कर रहे हैं। आपका स्नेहिल आशीर्वाद सदैव इस परिषद के लिए सुरक्षित रहा है तथा आपकी छाया में यह परिषद पल्लवित तथा पुष्पित हुई है।

आपने माँ भारती की सेवा-साधना का जो व्रत अपनाया है, निश्चय ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है। आजमगढ़ जनपद आपकी सेवाएँ कभी नहीं भूल सकता एवम् सदा ऋणी रहेगा।

आप जहां भी रहें, प्रसन्न और स्वस्थ रहें तथा 'केवल साहित-राधा-अराधा' में तन्मय रहें।

जीवन पथ है चलना होगा
जीवन तप है जलना होगा

हम हैं
सदस्य गण

१. डा० बद्री नारायण शुक्ल, अध्यक्ष तरुण साहित्य परिषद आजमगढ़
२. शिव प्रसाद शर्मा 'अंबु', प्रधानमन्त्री २८ मई १९६२ ई०

(६)

श्री दुर्गादत्त चुन्नीलाल सागरमल खंडेलवाल महाविद्यालय
मऊनाथभंजन (आजमगढ़) की
हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य-परिषद के उद्घाटन समारोह के अवसर पर
माननीय श्री डा० किशोरी लाल गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
के
कर-कमलों में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

समादरणीय सुयोग्य साहित्य-सेवी डा० साहब,

आपने अपने जीवन काल में विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापक रूप में रहकर अपनी अध्यापनकला, योग्यता, अभूतपूर्व विद्वता एवं साहित्य गोष्ठियों के द्वारा हिन्दी-प्रेमियों का जो उपकार किया है, उससे हम लोग पूर्ण रूप से परिचित हैं। आजमगढ़ नगर में संस्थापित 'हरिऔध कला-भवन' आपके ही सत्प्रयासों का परिणाम है, जो सम्प्रति स्वर्गीय हरिऔध जी की कीर्ति को सर्वत्र प्रसारित कर रहा है।

हिन्दी साहित्य के उद्भट विद्वान, लेखक, कवि, आलोचक एवं चिंतक,

आपने अपने असाधारण अध्यवसाय, विद्वत्ता, शोध-शीलता एवं साहित्य-चिंतन के द्वारा अपनी अनुपम एवं अप्रतिम कृतियों की पुष्पांजलियों से भगवती भारती के मन्दिर में मातृभाषा हिन्दी देवी की जो अद्भुत अर्चना की है, उससे सम्पूर्ण हिन्दी-जगत्

पूर्णरूपेण लाभान्वित हुआ है तथा भविष्य में भी आपकी प्रखर प्रतिभा से समुद्भूत भाव-राशियों को प्राप्त करने का इच्छुक है।

सुमधुर सौजन्य शाश्वत सौहार्द समन्वित साहित्य-आराधक,

आपका स्वभाव निरन्तर कोमल, मुख-मुद्रा सतत प्रसन्न, हृदय वदान्यता से गौरवान्वित एवं मूर्ति मानवता की प्रतीक है, जिसके सम्पर्क में आकर प्रत्येक प्राणी अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करने के लिए लालायित हो जाता है। आपने अपना अमूल्य समय देकर हमारे मध्य परिषद का उद्घाटन करते हुए, अपनी मधुरिमामयी वाणी से हमें पूर्णकाम बनाने का जो कष्ट बहन किया है, उसके लिए हम लोग चिरंतन आभारी के रूप में आपको अनेकानेक हार्दिक धन्यवाद देते हैं। ईश्वर आपको चिरायु बनावे।

हम हैं–

दि०—२५-२-६७ **श्री दुर्गादत्त चुन्नीलाल सागरमल खंडेलवाल**

महाविद्यालय के छात्र-गण

(७)

लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

१२-९-७१

'कामायनी पर्यालोचन' का उपहार

(श्री) किशोरीलाल गुप्ताय, विदुषाङ्कुल मौलये।
कामायन्याः समीक्षेयं, मित्रप्रेम्णा प्रदीयते॥

आश्विन कृ० ८ संवत् २०२८ शनिवार

(८)

अभिनन्दन-पत्र

माननीय डा० किशोरी लाल गुप्त, प्राचार्य हिंदू महाविद्यालय

जमानियाँ, गाजीपुर के कर-कमलों में सादर

समर्पित

वरेण्य अतिथि,

मानवता के महान उद्बोधक गोस्वामी तुलसीदास के चतुश्शती समारोह के इस पावन पूत अवसर पर आप जैसे कर्मठ एवं प्रबुद्ध मानव के आतिथ्य में मन की कमनीय कली अभिनव अनुराग से आप्लावित हो उठी है।

सरस्वती-सपूत,

मनःवाणी के धनी, माँ शारदा के वरद पुत्र, आपने हिन्दी साहित्य में काव्य जगत का आलोड़न-विलोड़न कर जिन महती मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है, ज्ञान पिपासु संभ्रमित मानव को तुष्ट-पुष्ट कर, वे नई अभिव्यक्ति को मुखरित तथा अभिप्रेरित करने में पूर्ण समर्थ हैं।

शिक्षा-जगत के अंशुमाली,

आपकी क्षिप्र प्रतिभा के बाल-रश्मि की सुनहली किरणें सुषुप्त एवं अचेतन प्रज्ञा को प्रबुद्ध कर, शिक्षा-जगत में जिस उत्साह एवं उमंग की स्वर्णिम आभा बिखेर रही हैं, उससे बौद्धिक वर्ग का अंतरंग अलौकिक स्पंदन से विमुग्ध, शुभ्र आलोक से उद्भासित, नव विहान के निनाद से निनादित हो उठा है।

हे मानव-धर्म के पुजारी,

आधुनिक जीवन के विविध व्यापारों में व्याप्त व्यापक वितंडावाद से विपन्न मानव हृदयों के आर्तस्वरों के मध्य समन्वय एवं संतुलन के आप जैसे उद्घोषक की उदात्त तथा संप्रेषणीय गति से गतिमान हो, समाज अपने अभिप्रेत की प्राप्ति में सतत संलग्न है।

कृपालु किशोर,

आपकी महान महिमा की सौहार्द-सलिला से पूरित मंदाकिनी के अजस्र प्रवाह में इस जनपद का म्रियमाण जीवन अवगाहन कर, अदम्य साहस के साथ नव-जीवन की ओर उन्मुख हो, नई आशा के अकल्पित आनन्द से आह्लादित है। इस दारिद्रय-दैन्य-प्रताड़ित, सदा से उपेक्षित, जनपद के नौनिहालों की जीवन-मरुभूमि में, आपकी सक्रिय सहानुभूति की सरसता से जिस हरीतिमा की सर्जना हो रही है, यह जनपद तदर्थ सदैव कृतज्ञ रहेगा।

इस कर्मरत जीवन मार्ग के निष्ठावान पथिकों को प्रभूत पाथेय के रूप में मंजुल मधूर संदेशों की प्राप्ति की उत्सुकता में, आप जैसे मनस्वी, उदारचेत्ता, परिपक्व पौरुष का, इस सरस्वती-सदन के प्रांगण में हम शत-शत हृदयों से सादर अभिनन्दन करते हैं।

हम हैं
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
नवली, गाजीपुर के
शिक्षक एवं शिक्षार्थी

दिनांक ८–९–१९७३ ई०
वसंत पंचमी

(९)

प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण करने के अवसर पर

डा० किशोरी लाल गुप्त, एम० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी) पी-एच० डी०, डी० लिट्०

के कर-कमलों में सानुनय समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

साधना के शिखर,

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' यह लोकोक्ति आपके जीवन में सर्वथा सिद्ध होती हैं, क्योंकि बहुमुखी प्रतिभा के बीज जो क्रमशः पल्लवित एवं पुष्पित होकर सुमधुर फलों से लदकर आज समवेत 'डाक्टर-वृक्ष' के रूप में विदग्ध जनों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं, छात्रावस्था में ही अंकुरित देखे जा सकते हैं।

वाग्देवी के अथक उपासक,

आपने अपनी उत्तरोत्तर अध्ययन-लिप्सा, असाधारण अध्यवसाय तथा समस्त सरस भावों से उद्वेलित भावुक हृदय से विकसित अप्रतिम कृति-पुष्पांजलियों से भगवती भारती के पावन मंदिर में प्रतिष्ठित मातृ भाषा हिन्दी की जो पावन अभ्यर्चना की है, सम्पूर्ण हिन्दी जगत उससे सुरभित, आप्यायित एवं महिमान्वित हैं।

कविता-कामिनी-कांत-किशोर,

प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक खड़ी बोली का विशेषज्ञ प्राचीन हिन्दी काव्य में कौशल नहीं प्राप्त करता है, उसी प्रकार प्राचीन हिन्दी साहित्य का मर्मज्ञ विद्वान आधुनिक में नहीं रम पाता है। पर दोनों पर आपका सफल समान अधिकार भावुकों को विस्मय विमुग्ध बना देता है। खड़ी बोली में ग्रंथित अनेक कृतियों के साथ व्रजभाषा में लिखित' 'उराहनौ' नामक खंड काव्य हिन्दी भाषा की भ्रमर गीत-परंपरा की आकर्षक एकावली हैं, जिसे आपने कविता किशोरी को सजाने के लिए रच-पचकर अट्ठारह वर्षों में पिरोया है।

सारस्वत-खनि के अनुपम लाल,

अपनी गवेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर आपने अनेक ग्रंथ रत्नों को विकरित कर हिन्दी के अनेक तमसाच्छन्न भागों को प्रकाशित कर महान उपकार किया है। उससे एक ओर जहाँ हिंदी साहित्य की समृद्धि हुई हैं तथा अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ है और अनेक वैदुष्य पूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं, वहाँ दूसरी ओर जिज्ञासु साहित्य सेवियों के लिए वे अडिग प्रकाश-स्तंभ बन गये हैं।

जन-मानस-प्रिय हंस,

छल-छिद्र से रहित आपका कोमल स्वभाव, सतत प्रसन्न मुख-मुद्रा, वदान्यता-वलित आडंबर-शून्य मनस्वी व्यक्तित्व, स्पृहणीय मानवता के प्रतीक हैं, जिससे आकृष्ट होकर सर्व साधारण अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करने के लिए लालायित हो उठता है।

प्राचार्य प्रवर,

आपने अपने १४ वर्षों के स्थिति-काल में अपनी उदारतापूर्ण शासन-क्षमता, शांति-स्थापना के सत्प्रयासों के द्वारा इस महाविद्यालय की जो बहुमुखी प्रगति की है, वह इस युग के लिए वस्तुतः अनुकरणीय तथा उपयुक्त है। महाविद्यालय के इतिहास में भारतीय इतिहास के 'गुप्त काल' की भाँति, यह काल स्वर्ण-युग के रूप में सदा स्मरणीय रहेगा।

भावज्ञ,

आज आपकी विदा-बेला पर हम दुःखातिरेक से अभिभूत हैं, किन्तु परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आपकी सुध में बेसुध बना, आपके चिर-प्रवास से दुर्मनायित वाराणसी का 'सुधवै', भविष्य में आपके लिए स्थायी शुभ समृद्धि का आश्रय बने, जहाँ आप स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हुए चिरकाल तक अपनी साहित्यिक अर्चनाओं से वाग्देवी को आप्यायित करते रहें।

हम हैं
आपकी ही सुखद छाया में पले
हिन्दू महाविद्यालय
जमानियां (गाजीपुर)
परिवार के सदस्य गण

जमानियां
दिनांक १६ फरवरी १९७६ ई०

१०. डॉ० किशोरी लाल गुप्त

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

के

सम्मान में सादर समर्पित

अभिनन्दन पत्र

माँ वाणी के वरद पुत्र, हिन्दू-हिन्दी-उद्घोषक
सुधी समीक्षक, काव्य-कलाधर, शोध ग्रंथ के लेखक

तुम्हें दिशा दे, यह जनपद था फूला नहीं समाया
'भक्त' 'लक्ष्मी' 'शैदा' ने, आशिष-जल से नहलाया

सुकवि 'सूँड़' ने गले लगाया, 'वैभव' ने गुण गाया
'अंबु' 'कन्हैया लाल' 'श्याम', 'जामी' ने हैं अपनाया

नेहरू समिति तुम्हारा करती है, स्वागत अभिनंदन

इस अवसर पर सभी वर्ग का, स्वीकारो शत वंदन

दिनांक
२० नवम्बर १९८२

हम हैं।
पदाधिकारी एवं सदस्य गण–
जनपद नेहरू स्मृति कवि सम्मेलन सनिति
आजमगढ़

रचयिता
शिव प्रसाद शर्मा 'अंबु'

प्रस्तुतकर्ता
स्वतन्त्र कुमार गुप्त एडवोकेट

११. साहित्य-मनीषी डॉ० किशोरी लाल गुप्त

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० के

कर-कमलों में सादर

रजत-पत्र

आधुनिक युग के स्तंभ, महाकवि, श्रेष्ठ समालोचक, निबंधकार, हिन्दी साहित्य के इतिहास के एक मात्र अधिकारी विद्वान, प्राध्यापक, प्राचार्य एवं मानवीय गुणों के आगार डा० किशोरीलाल गुप्त का सादर अभिनंदन है।

दिनांक
२० नवम्बर १९८२
नेहरू स्मृति कवि सम्मेलन समिति

हम हैं
विद्वान; पत्रकार, अधिवक्ता
तथा नागरिक
आजमगढ़

१२. अभिनन्दन-पत्र

हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वान, प्रधान–संपादक 'साहु-मित्र',
डा० किशोरी लाल गुप्त, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ग्राम–सुववै, जिला–वाराणसी के
कर कमलों में सादर समर्पित

आदरणीय,

त्रैलोक्य से न्यारी पतित पावनी माँ जगदम्बा गंगा के तट पर बसी हुई काशी नगरी एवं तीर्थंराज प्रयाग जहाँ तीनों माताओं (गंगा, यमुना, सरस्वती) का अद्भुत संगम है, ऐसे दो महान तीर्थों के बीच बसी हुई अति प्राचीन नगरी मीरजापुर (लक्ष्मी पुर) जिस पर माँ जगदम्बा अंबा की अपूर्व छत्र-छाया विराजमान है, के हम सब नगरवासी एवं जनपद मीरजापुर के समस्त बंधु-बांधव एत्र होकर अत्यंत हर्षोल्लास के साथ अपने मुख्य अतिथि डा० किशोरी लाल गुप्त डी० लिट्० का शुभ अभिनंदन करते हुए गौरवान्वित हो रहे हैं।

सरस्वती के वरद पुत्र,

आप हिन्दी साहित्य के विद्वान एवं मनीषी हैं। अपने सतत जागरूक चिंतन द्वारा आपने हिन्दी को सँजोया एवं मणि मुक्ताओं से पिरोकर विभूषित किया है। हिन्दी-भाषी आपके कृतित्व के सदा आभारी रहेंगे।

प्रेरणा स्रोत !

आप हमेशा से साहू-समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। साहू-समाज ने आपसे बहुत कुछ पाया है और भविष्य में आपसे जीवन-पर्यन्त बहुत कुछ पाने की लालसा रखता है। आप ऐसे सपूत को पाकर साहू-समाज धन्य हो गया। विश्व-रचयिता परम पिता परमात्मा से आपके दीर्घायु की कामना समस्त साहू-परिवार बड़े विनीत स्वर में करता है।

ऋषि-कुल-परम्परा के प्रतीक

हम अकिंचन प्राणी अभिनंदन करना क्या जानें, परन्तु हमें पूर्ण आशा है कि जिस प्रकार भगवान श्री राम ने भावना के वशीभूत होकर शबरी के जूठे बेर को ग्रहण किया, उसी प्रकार हमारा अभिनंदन स्वीकार कर हमें अनुगृहीत करेंगे।

हम हैं
संरक्षक, अध्यक्ष एवं सदस्यगण
साहू समाज मीरजापुर

(२३-११-८८, कार्तिक पूर्णिमा २०४५)

२. व्यक्तित्व

"कवि की कविता समझने से लाभ होता है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन कविता के बजाय कवि को अगर समझ लिया जाय, तो उससे भी अधिक लाभ होता है। कविता कवि की कीर्ति है और वह तो हमारे हाथ के निकट ही है, पढ़ते ही समझ जाते हैं; लेकिन जो व्यक्ति उस कीर्ति को छोड़ गया है, वह किस गुण के कारण तथा किस प्रकार इस कीर्ति को छोड़कर गया है, यही समझना होगा।"

—वंकिम चन्द्र चैटर्जी

१. डा० किशोरी लाल गुप्त : जीवन-यात्रा

डा० गुप्त के जीवन-परिचय को प्रामाणिक बनाने के लिए मैंने प्रश्न किए हैं और डा० गुप्त ने उत्तर दिए हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि उनके उत्तर, जहाँ तक संभव हो, उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किए जायँ। मुझे यह साक्षात्कार-विधि ही सुकर लगी। अस्तु।

प्रश्न—आपका जन्म कब और कहाँ हुआ ?

उत्तर—मेरा जन्म जिला बनारस के सुधवै नामक ग्राम में, गंगा दशहरा रविवार के दिन, जून १९१६ ई० में हुआ। यद्यपि घर अपनी ही जगह पर है, पर राजनीति ने अब गाँव मंगापट्टी बना दिया है।

प्रश्न—आपने शिक्षा कब-कब और कहाँ-कहाँ से प्राप्त की?

उत्तर—प्राइमरी शिक्षा १९२२ से १९२८, प्राइमरी स्कूल बिछिया, वाराणसी।

मिडिल—१९२८–१९३१, गोपीगंज, वाराणसी।

हाई स्कूल—१९३१–१९३६, लवेट हाईस्कूल ज्ञानपुर, वाराणसी।

इण्टर—१९३६-१९३८, क्वींस कालेज वाराणसी।

बी० ए० आनर्स—१९३८–१९४०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी। तुलसी पर आनर्स।

एम० ए० (अंग्रेजी)—१९४०–१९४२, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

एम० ए० (हिन्दी)—१९४२–१९४३, प्रथम श्रेणी, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय, वाराणसी।

बी० टी०—१९४३–१९४४, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पी-एच० डी०—१९५७, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

डी० लिट्०—१९६२, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रश्न—आपकी शादी किस उम्र में हुई थी और उसके प्रति आपके क्या मनोभाव थे ?

उत्तर—मेरी शादी नौ वर्ष की उम्र में हुई, उस समय मैं कक्षा एक का विद्यार्थी था। पत्नी की उम्र ६ वर्ष की थी। ब्याह करने के लिए बरात नहीं गयी थी, डोला आया था। उस समय विवाह केवल एक खेल मात्र था।

प्रश्न—इतनी कम उम्र में शादी होने से क्या आप की शिक्षा प्रभावित नहीं हुई ?

उत्तर—प्रभावित होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। विवाह के सात वर्ष बाद गौना हुआ, अप्रैल १९३२ में। मैं उस समय लवेट हाईस्कूल ज्ञानपुर में पढ़ता था। हर शनिवार को घर आता था और सोमवार को ज्ञानपुर चला जाता था।

प्रश्न—आपने कब और कहाँ से कार्यभार सँभाला ?

उत्तर—१९४२ में अंग्रेजो से एम॰ ए॰ करने के पश्चात् २३ सितम्बर १९४२ से १७ दिन तक रामनगर में, तदनंतर दशहरा बाद से १४ मई १९४२ तक ज्ञानपुर में अध्यापन कार्य किया। १९४४ में ग्यारह दिनों तक दिलदार नगर, गाजीपुर के मुस्लिम ऐंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल में अध्यापन किया। तदनंतर ८ अगस्त १९४४ से १४ मई १९४५ तक कुँवर दयाशंकर एडवर्ड मेमोरियल इण्टर कालेज बरेली में अंग्रेजी का लेक्चरर रहा। जुलाई १९४५ में १ महीने के लिए महानन्द मिशन इण्टर कालेज गाजियाबाद में हिन्दी का प्रवक्ता रहा। तदनन्तर श्री रामचन्द्र कन्हैयालाल इण्टर कालेज फीरोजाबाद (आगरा) में तीन वर्षों तक अंग्रेजी का प्रवक्ता रहा। २३ जुलाई १९४८ से ३० जून १९६२ तक शिबली नेशनल डिग्री कालेज आजमगढ़ में हिन्दी का प्रोफेसर और अध्यक्ष रहा। १ जुलाई १९६२ से २७ नवम्बर १९७५ तक हिन्दू डिग्री कालेज, जमानियाँ (गाजीपुर) का प्राचार्य रहा।

प्रश्न—आपने लगभग २७ वर्षों तक अध्यक्ष एवं प्राचार्य के रूप में कार्य किया, तो क्या आप बता सकते हैं कि आपने कितनी ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन किया ?

उत्तर—मैं अत्यन्त कोमल स्वभाव का हूँ और साथ ही अनुशासन-प्रिय भी हूँ। प्राचार्य काल में मुझसे कोई भी शक्ति गलत कार्य नहीं करा सकी। हिन्दू डिग्री कालेज में छात्र-संघ नहीं था। लड़कों के कहने पर मैंने तुरन्त छात्र-संघ की स्थापना कर दी। लेकिन एक वर्ष के अन्दर छात्र-संघ के रूप को देखकर मैंने निडर भाव से छात्र-संघ तोड़ दिया और बहुत दिन तक उस विद्यालय में छात्र-संघ नहीं रहा। सन् १९८७–८८ में वहाँ पुनः छात्र-संघ बना है। छात्रों को सदैव मैंने अपना लड़का माना। जो कुछ उनके लिए उचित ढंग से किया जा सकता था, मैं सदैव उनकी सहायता करने के लिए तैयार रहा। केवल दो वर्षों में कुछ उद्दण्ड छात्र आ गये थे। उनसे थोड़ी परेशानी यदा-कदा अवश्य हुई। यही दिन छात्र-संघ के थे। यह परेशानी स्थायी नहीं थी।

प्रश्न—आप किस सन् में कार्यमुक्त हुए ?

उत्तर—२८ नवम्बर १९७५ से सेवा निवृत्त हूँ और तब से घर पर रहता हूँ। खूब लिखता हूँ, खूब घूमता हूँ। पढ़ने का कोटा पूरा हो चुका है, जो कुछ लिखता हूँ, उसके सम्बन्ध में ही पढ़ता हूँ।

प्रश्न—आपका पारिवारिक जीवन कैसा है ?

उत्तर—मेरा पारिवारिक जीवन सुखी है। छोटा लड़का पर्याप्त कमाता है। वह आदर्श इण्टर कालेज मोठ में हिन्दी का प्रवक्ता है और अपनी पत्नी और चार बच्चों सहित वहीं रहता है। छह लोगों का इसका परिवार सुखी है। बड़ा लड़का मेरे साथ रहता है। वह खेती का काम देखता है। मुझको १५० + १५७ रु० ५० पैसा पेंशन मिलती है। इसी में मेरा परिवार सन्तुष्ट है। बड़े लड़के और बड़ी बहू अध्यवसायी और सन्तोषी हैं। बड़ा पुत्र समाचार-पत्र वितरक है और बड़ी बहू घर पर सिलाई बुनाई का कुछ काम कर लेती है। गुजर होता चला जा रहा है, किसी प्रकार का असन्तोष नहीं है। परमात्मा खाना-कपड़ा देता जा रहा है, इसकी कमी नहीं है। वैभव पूर्णता न हो, यह दूसरी बात है।

प्रश्न—आपके समान आपका कोई लड़का या लड़की विद्याव्यसनी नहीं हुआ, क्या इसके लिए आप स्वयं जिम्मेदार हैं ?

उत्तर—जहाँ तक विद्या व्यसन का प्रश्न है, यह परमात्मा की देन है और जहाँ तक शिक्षित होने का प्रश्न है—दो लड़कियाँ एम० ए० हैं। एक लड़का भी एम० ए० है। उसी लड़के में साहित्य के प्रति थोड़ी रुचि है। बच्चों को शिक्षित बनाने की जिम्मेदारी माता-पिता पर है, उनको विद्याव्यसनी या साहित्यकार बनाने की नहीं।

प्रश्न—कहा जाता है कि पुरुष को उन्नति के शिखर तक पहुँचाने में किसी न किसी स्त्री का हाथ अवश्य होता है। यह बात आपके लिए कहाँ तक सत्य है ?

उत्तर—हाँ, है। मेरे भाग्योदय में मेरी पत्नी का बहुत बड़ा हाथ है। वे बहुत ही सीधी हैं। उन्होंने घर की स्थिति देखते हुए कभी भी गहने, कपड़े की माँग नहीं की। जो कुछ था उसी से सन्तोष किया। जब मैं छुट्टियों में घर आता था, वे भी रुपये दो की मदद करती थीं, जो उस समय बहुत था। अगर उस समय उन्होंने बाधा डाली होती, तो शायद मैं इतना आगे नहीं बढ़ पाता।

प्रश्न—सेवा-निवृत्त होने पर आपको किस प्रकार की अनुभूति हुई ? और बाद के जीवन को आपने किस प्रकार समायोजित किया ?

उत्तर—सेवा निवृत्त होने पर मेरे पास कोई बैंक बैलेंस नहीं था, न है। मन में यह परेशानी अवश्य थी कि अब काम कैसे चलेगा। वह मानसिक परेशानी दो साल तक रही, अब निश्चिन्त हूँ। दिन जैसे-तैसे बीत रहे हैं। थोड़े दिन और हैं, वे भी सन्तोष रूपी कल्पतरु के नीचे बीत जायेंगे। वस्तुतः मन ही कल्पतरु है।

प्रश्न—आपने लेखन-कार्य कब से प्रारम्भ किया और आप की प्रथम रचना कौन सी है ?

उत्तर—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी से एम० ए० करते समय लघु शोध

निबन्ध लिखना पड़ता था। उसके लिए 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' नामक शोध-प्रबन्ध १९४२–४३ में ३ महीने में लिखा। इसमें पूर्ण रूप से समीक्षा है, किन्तु छायावादी कविता के विकास के सम्बन्ध में शोधकार्य भी है। पर मूलत: शोध की प्रवृत्ति १९५५ से जगी। ब्रज भाषा काव्य की कविताओं का संकलन प्रस्तुत करते समय शिवसिंह सरोज को बार-बार उलटना पड़ा और उसकी भूलें बार-बार दिखाई पड़ीं और उन्हीं भूलों ने 'सरोज सर्वेक्षण' नाम का ग्रंथ लिखने के लिए प्रेरित किया। इसमें एक हजार कवियों पर विचार हुआ है। ग्रंथ हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित है और पुराने कवियों पर काम करने के लिए एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। सन् १९५८ से सारा जीवन ही शोधकार्य में व्यतीत हो रहा है। यों मेरी प्रथम पुस्तक 'वाजिरा' नामक खंडकाव्य है, जो इंटर के प्रथम वर्ष में पढ़ते समय नवम्बर-दिसम्बर १९३६ में लिखा गया था।

प्रश्न—आप की प्रथम पुस्तक कब छपी ?

उत्तर—आजमगढ़ पहुँचने पर प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हुआ। १९५१ में मेरे कवित्त सवैयों का संग्रह "शम्पा" नाम से प्रकाशित हुआ।

प्रश्न—आपकी कितनी पुस्तकें प्रकाशित हैं और कितनी अप्रकाशित ?

उत्तर—मेरी २७ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, सरोज सर्वेक्षण, शिवसिंह सरोज, नागरी दास, तुलसी और और तुलसी आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अप्रकाशित ग्रंथों की संख्या १०० के लगभग है। इसमें हिन्दी कवि और काव्य नामक संग्रह १८ जिल्दों में है, जो सम्भवत: विश्व की किसीभाषा का सबसे बड़ा काव्य संग्रह है। इसके बाद दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी कविता का इतिहास है, जो ८ जिल्दों में है। अष्टछापी सूरदास और सूर नवीन ग्रंथ हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित होने जा रहा है।

प्रश्न—इन ग्रंथों में आप का सबसे प्रिय ग्रंथ कौन सा है और क्यों ?

उत्तर—सरोज सर्वेक्षण। इस ग्रंथ में हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रमुखतम आधार की पक्की छान-बीन की गई है। मैं अपने इस कार्य से पूर्णत: संतुष्ट हूँ।

प्रश्न—आप कवि भी हैं और कविता की तीन पुस्तकें बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। उसके बाद आप का कोई कविता संग्रह प्रकाशन में नहीं आया। क्या आप बता सकते हैं कि कब और क्यों काव्य-रचना में आप ने रुचि कम कर दी ?

उत्तर—विद्यार्थी जीवन ही मेरी ललित गद्य-पद्य रचनाओं का रचना-काल है। १९३२ से १९४४ तक। इसके बाद तो ललित गद्य छूट गया, लेकिन कविताओं से पिंड नहीं छुटा। १९५५ से मेरा शोधकार्य प्रारम्भ हुआ, तब से कविता लिखने का समय ही मेरे पास नहीं रहा। इधर उद्धव शतक की परम्परा में १०९ कवित्त सवैयों का ब्रज भाषा में खण्डकाव्य लिखा है, जिसको लिखने में १८ वर्ष लग गए (१९५२-१९७० तक)। पुस्तक का नाम 'उराहनो' है।

प्रश्न—आप की जीवन-यात्रा में बाधक तत्त्व किस रूप में आप के समक्ष आये ?

उत्तर—विद्यार्थी जीवन में कोई विशेष बाधा नहीं आयी और न अध्यापन कार्य करते समय। कार्यमुक्त होने के पश्चात् इधर दो वर्षों से पड़ोसियों के कारण परेशानी हो रही है।

प्रश्न—आपकी भावी साहित्यिक योजनाएँ क्या हैं ?

उत्तर—मैं अपने अधूरे कार्यों को ही पूरा करना चाहता हूँ। इस समय मैं दो सूरों की सम्मिलित सम्पत्ति को अलग करने में लगा हूं। महाकवि सूर ने कृष्ण लीला सम्बन्धी फुटकल पद ही लिखे थे, जो उनके जीवन के अन्तकाल में या मृत्यु के अनन्तर 'सूर सागर' नाम से संकलित हुए। इसमें कृष्ण की जन्म लीला, गोकुल और वृन्दावन लीला, मथुरा लीला, भ्रमर गीत तथा विनय के पद हैं। कुल सम्भवतः सवा दो हजार पद हैं। सूर नवीन फुटकरिया कवि नहीं थे, योजनाबद्ध कार्य करने वाले कवि थे। साहित्य लहरी, सूर सारावली और 'स्कन्धात्मक सूर सागर' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। मेरे जीवन की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा इन दो सूर सागरों को अलग करने की है।

प्रश्न—आपकी आर्थिक स्थिति आप की प्रगति में कहाँ तक बाधक बनी ?

उत्तर—मैं अपनी पुस्तकों का प्रकाशन नहीं देख सका। यदि मैं अर्थ-पुष्ट होता, तो सम्भवतः मेरा अपना प्रकाशन होता।

प्रश्न—आप को योजनाएँ आवश्यकता को उपज हैं या आपके सपनों को साकार करने का माध्यम ?

उत्तर—सपना तो ललित साहित्य वाले देखते हैं। मेरा शोध-कार्य सपने की वस्तु नहीं है। मेरे शोध-कार्य और प्राचीन काव्यों के सम्पादन का एक ही लक्ष्य रहा है, हिन्दी साहित्य के इतिहास का संशोधन। वह भी प्राचीन साहित्य का। इसीलिए मैं हिन्दी कविता का इतिहास लिख रहा हूँ।

प्रश्न—आप लगभग पचास वर्ष से साहित्य सेवा कर रहे हैं। क्या वह सब कुछ आप को मिला, जो एक साहित्यकार को मिलना चाहिए ?

उत्तर—मैं ऐसा नहीं कह सकता कि मुझे सब कुछ मिला। जो कुछ प्रकाशित है, उससे पर्याप्त यश मिला। पर अर्थ नहीं मिला। साथ ही कुछ लोगों से अनायास विरोध भी मिला।

प्रश्न—'कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन' गीता की इस उक्ति का पालन आपने अपने जीवन में कहाँ तक किया ?

उत्तर—परमात्मा पर पूरा विश्वास है, आस्तिक हूँ, नास्तिक नहीं हूँ। काम करने से चूकता नहीं हूँ, फल तो निश्चय ही ईश्वर के हाथ है। उसी के आधार पर एक साधारण निर्धन परिवार में जन्म लेने पर भी उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त की और हाई स्कूल से अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर डिग्री कालेज का प्राचार्य तक बना।

प्रश्न—साहित्य-सर्जना आप की दृष्टि में स्वभावगत है या अभ्यास मूलक ?

उत्तर—ललित साहित्य की रचना स्वभावगत है। वैसे तो अभ्यास की सतत आवश्यकता पड़ती है ही। शोधकार्य श्रमसाध्य है, उसमें निरन्तर लगे रहने का अभ्यास होना चाहिए। सच्चे शोधी के लिए यह कार्य भी स्वभावगत हो जाता है, यहाँ तक कि शोध सामग्री अपने आप सामने आने लगती है।

प्रश्न—नई कविता के सम्बन्ध में आप की क्या धारणा है ?

उत्तर—नई कविता के सम्बन्ध में मेरी वही धारणा है, जो छायावाद के सम्बन्ध में पुराने महारथियों की थी। काव्य गद्य में हो सकता है, कविता गद्य में नहीं हो सकती।

प्रश्न—कविता और काव्य में आप किस प्रकार का भेद मानते हैं ?

उत्तर—कविता सदैव पद्य में, छन्द-वद्ध, होती है। वह चाहे तुकान्त हो या अतुकान्त अथवा मुक्त छन्द हो। काव्य के अन्तर्गत कविता आ जाती है, जिसे पद्य काव्य कहते हैं। गद्य काव्य उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध आदि काव्य हैं, किन्तु कविता नहीं हैं क्योंकि पद्यवद्ध नहीं हैं।

प्रश्न—वर्तमात विज्ञान युग में रस, अलंकार, छन्द, शब्द सामर्थ्य का क्या स्थान, महत्त्व एवं उपयोगिता है।

उत्तर—बिना रस के कोई काव्य सम्भव नहीं है। रस का अर्थ ही है काव्यानन्द। जिस काव्य को पढ़कर आनन्द नहीं मिला, रस नहीं आया, वह व्यर्थ है। छन्द तब तक उपयोगी बना रहेगा, जब तक कविता का प्रचलन रहेगा। जहाँ तक अलंकारों की बात है, अनेक अलंकार हमारे लोक-जीवन में व्याप्त हैं, जैसे उपमा आदि। अन्य चमत्कारिक अलंकारों की उपयोगिता भले ही कम हो जाय, पर उपमा की उपयोगिता बनी ही रहेगी।

प्रश्न—आप का स्वास्थ्य पूर्ववत नहीं दिखता, इसकी सुरक्षा के लिए आप क्या कर रहे हैं ?

उत्तर—जून १९८७ में ७१ वर्ष का हो गया। ७२वाँ चल रहा है। तभी से शरीर में कुछ शैथिल्य आ गया है और अब मैं अपने को वृद्ध समझने लगा हूं। दूध, दही, दवा इन तीन 'द' का सेवन कर रहा हूँ।

प्रश्न—आपके जीवन में ऐसा क्या है, जिसे चाह कर भी आप पूरा नहीं कर सके ?

उत्तर—अपने समस्त ग्रन्थों को प्रकाशित रूप में नहीं देख सका।

प्रश्न—अब अन्तिम प्रश्न। आप अपना वंश-कक्ष पूरा दे दीजिए।

उत्तर—मेरे मकान में वह शिलालेख लगा हुआ है।

तीन पीढ़ियाँ

मखना देवी—हरख साहु

सतना देवी—जोखू साहु

सजना देवी—किशोरीलाल गुप्त

प्रश्न—एक प्रश्न और। अपने वंशजों की सूची भी दे दें—

उत्तर— किशोरी लाल गुप्त

कलावती देवी मार्च १९३५ | श्यामा देवी मार्च १९३७ | अभिनव गुप्त अक्टू. १९४० | शंगा देवी अक्टू. १९३८ निधन १९७५ दिसम्बर २३ | रवींद्र गुप्त अक्टू. १९५२ | राधा देवी १५मई१९५४

अभिनव गुप्त — आभा उर्फ वसुधा | आनंद गुप्त | अरविन्द गुप्त

रवींद्र गुप्त — राजेश | राकेश | रेणु | शरद

प्रस्तुति—**डा० कमला सिंह**

१६५/९ आजाद नगर

साउथ मलाका, इलाहाबाद

२. जीवन का तिथि-क्रम

[श्री अभिनव गुप्त]

१९१६— जेठ सुदी दसमी (गगा दशहरा) सं० १९७३, रविवार, सायंकाल सूर्यास्त होते-होते जन्म ।

१९२५ जून—नौ वर्ष की वय में, कक्षा १ में पढ़ते समय, ग्रीष्मावकाश में विवाह ।

१९२२-२८—प्रारंभिक पाठशाला विछिया में अध्ययन ।

१९२८-३१—मिडिल स्कूल गोपीगंज में अध्ययन । १९३१ में मिडिल, प्रथम श्रेणी ।

१९३१-३५—लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर, बनारस स्टेट में अध्ययन । हाई-स्कूल १९३६, प्रथम श्रेणी ।

१९३६ मार्च—प्रथम सन्तान कलावती का जन्म, नवीं कक्षा में पढ़ते समय ।

१९३६-३८—क्वींस कालेज वाराणसी में इण्टर में अध्ययन । इण्टर १९३८, द्वितीय श्रेणी ।

१९३७ मार्च—द्वितीय पुत्री श्यामा का जन्म । ११वीं में पढ़ते समय ।

१९३८-४०—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० आनर्स, तुलसी पर आनर्स, १९४०, द्वितीय श्रेणी ।

१९४०-४२—का० हि० वि० वि० से एम० ए० अंग्रेजी, १९४२, द्वितीय श्रेणी ।

१९४० पितृपक्ष—प्रथम पुत्र अभिनव गुप्त का जन्म, एम० ए० पहले वर्ष में पढ़ते समय ।

१९४२-४३ (i) २३ सितम्बर से ९ अक्टूबर तक मेस्टन हाई स्कूल राम नगर में सहायक अध्यापक, १७ दिन ।

(ii) दशहरा के बाद से १४ मई ४३ तक सहायक अध्यापक, लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर ।

(iii) १९४३ में हिन्दी से प्रथम श्रेणी में एम० ए० ।

१९४३-४४— काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० टी० ।

१९४४-४५—(i) जुलाई अंतिम सप्ताह एवं अगस्त प्रथम सप्ताह कुल ११ दिन, मुस्लिम ऐंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल दिलदार नगर (गाजीपुर) में सहायक अध्यापक ।

(ii) ८ अगस्त ४४ से १४ मई ४५ तक कुंवर दयाशंकर एडवर्ड मेमोरियल इण्टर कालेज बरेली में अंग्रेजी का प्रवक्ता ।

१९४५ जुलाई—हरिजन महानंद मिशन इण्टर कालेज गाजियाबाद में हिन्दी का प्रवक्ता। एक माह।

१९४५-४८—श्री रामचन्द्र कन्हैया लाल इण्टर कालेज फीरोजाबाद (आगरा) में अंग्रेजी का प्रवक्ता।

१९४६ अगस्त—माता का निधन।

१९४७ जून—प्रथम पुत्री कलावती का विवाह. मुँगरा बादशाहपुर, जौनपुर में।

१९४८-६२—१४ वर्ष, शिवली कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग का अध्यक्ष।

१९४८ अक्टूबर—तृतीय पुत्री शंपा का जन्म।

१९४९ मार्च—(फागुन बदी ६) पिता श्री का निधन।

१९५२—द्वितीय पुत्र रवीन्द्र का जन्म।

१९५४ मार्च—द्वितीय पुत्री श्यामा का विवाह, गाजीपुर में।

१९५४, १५ मई—चतुर्थ पुत्री राधा का जन्म।

१९५७—(i) आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी०। शोध का विषय—शिवसिंह सरोज में दिए गये तथ्यों एवं तिथियों का सर्वेक्षण।

(ii) 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' पर उत्तर प्रदेशीय सरकार से ५००) का पुरस्कार।

१९५८—गृह निर्माण, आंशिक। गृह-प्रवेश भी इसी बर्ष।

१९६०—(i) गृह निर्माण पूर्ण।

(ii) प्रथम पुत्र अभिनव गुप्त का बिबाह मार्च में, कोपागंज, आजमगढ़ में।

१९६२-७६—(i) हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ, गाजीपुर में प्राचार्य। १ जुलाई ६२ से २७ नवम्बर ७५ तक।

(ii) दिसम्बर १९६२ में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त। शोध का विषय—'हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध सूत्रों का विश्लेषण—भक्तमाल से ग्रियर्सन तक।

(iii) फाल्गुन वदी ३, १६ फरवरी १९६४ तृतीय पुत्री शंपा का विवाह, मझवा जिला मिर्जापुर में।

(iv) पितृपक्ष १९७० में गया में पिंड दान।

(v) १९७१, मई ३१, बड़ी बहू का निधन।

(vi) जून १९७३ चतुर्थ पुत्री राधा का विवाह, मिरजापुर में।

(vii) अक्टूबर १९७३, चि० अभिनव गुप्त की सगाई जौनपुर में।

(viii) जून १९७४, द्वितीय पुत्र रवीन्द्र गुप्त का विवाह, अफजूगंज, सुल्तान गंज (भागलपुर), बिहार में।

(ix) नवंबर २७, १९७५ को कार्यमुक्त।

(x) २३ दिसम्बर १९७५ को शंपा की मृत्यु।

१९७६—८८ तक-(१) १७ फरवरी ७६ से घर पर रहकर साहित्य-सेवा में रत।

(२) १४ जनवरी ७७ से एक माह तक प्रयाग में महाकुम्भ के समय कल्पवास, १४ जनवरी ७८ से भी एक माह तक कल्पवास।

(३) जनवरी १९७९—अखिल भारतीय तैलिक वैश्य महासभा के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए सपत्नीक मदुराई गमन। इस अवसर का लाभ उठाते हुए तिरुचिरापल्ली, श्री रंगम, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, त्रिवेंद्रम, तिरुपति आदि दक्षिणी तीर्थों की यात्रा।

(४) जनवरी १९८० शांति निकेतन, कलकत्ता, गंगासागर, जगन्नाथ पुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर, कटक, वैद्यनाथ धाम की तीर्थ यात्रा।

(५) १९८२, नम्बर २० सार्वजनिक अभिनन्दन, नेहरू स्मृति कवि सम्मेलन के मंच पर, श्री कृष्ण पाठशाला, इण्टर कालेज आजमगढ़ के परिसर में।

(६) जून १९८७ से वृद्धता की अनुभूति।

(७) २३ नवम्बर १९८८ (कार्तिक पूर्णिमा सं० २०४५) मीरजापुर जनपदोय साहू समाज की ओर से अभिनन्दन।

●

३. डा०गुप्त के जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाएँ

[**श्री अजय कुमार गुप्त** एम० ए०, बी० एड०]

हर व्यक्ति के जीवन में कुछ विशिष्ट घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें वह भूल नहीं पाता। डा० गुप्त के जीवन में भी ऐसी कुछ घटनाएँ घटी हैं, जिनकी प्रसंग आने पर गुप्त जी बराबर चर्चा करते हैं। ऐसी कुछ घटनाओं की चर्चा यहाँ की जा रही है।

१. आनर्स-कथा १९४०

गुप्त जी ने १९४० ई० में बी० ए० आनर्स किया। उस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आनर्स के लिए निम्नांकित नियम थे—

१. जिस विषय में आनर्स करना है, उसके तीनों प्रश्न-पत्रों को मिलाकर प्रथम श्रेणी के अंक मिलने चाहिए थे।

२. आनर्स का एक अलग प्रश्न-पत्र होता था, जिसमें प्रथम श्रेणी पाना आवश्यक था। उस समय हिन्दी में आनर्स के लिए तुलसी या प्रसाद का विशेष अध्ययन करना आवश्यक था।

३. शेष दो विषयों में, जिनमें एक अंग्रेजी साहित्य था, अलग-अलग कम से कम द्वितीय श्रेणी के अंक प्राप्त करना आवश्यक था।

गुप्त जी ने दो वर्षों तक प्रसाद साहित्य का पूर्ण अध्ययन स्वतः किया। दूसरे वर्ष तुलसी के अध्यापन की भी व्यवस्था की गयी थी। जनवरी ४० में गुप्तजी को पता चला कि प्रसाद पर प्रश्न-पत्र नहीं बना है। अध्यक्ष आचार्य पं० रामचन्द्र जी शुक्ल से बात करने पर ज्ञात हुआ कि एक प्रश्न-पत्र बनाने पर विश्वविद्यालय को सौ रुपये खर्च करने पड़ते हैं और परीक्षा शुल्क के केवल पाँच रुपये मिलेंगे। विश्वविद्यालय यह खर्च वहन करने के लिए तैयार नहीं है। शुक्ल जी ने यह उत्तर रजिस्ट्रार श्री गंगा प्रसाद मेहता से पूछकर दिया था।

मार्च में किसी पर्व पर गुप्त जी की भेंट दशाश्वमेघ सट्टी में श्री मेहता जी से हो गयी। उन्होंने उनसे अपनी बात कही। उस पर मेहता जी ने कहा कि क्या प्रश्न करने का स्थान यह सट्टी ही है। जो कुछ कहना हो कार्यालय में आकर कहो। तुम तुलसी पर अध्यापन-कक्ष में उपस्थित नहीं रहे हो। चाहो तो तुलसी वाले प्रश्न-पत्र में बैठ जाओ, मैं उपस्थिति से तुम्हें मुक्त कर देता हूँ।

गुप्त जी ने कहा, दो साल तक मैंने प्रसाद पढ़ा। तुलसी को तो पढ़ा ही नहीं, काम कठिन है। देखा जायगा।

अप्रैल में बी० ए० की परीक्षाएँ हुई। १४ अप्रैल तक अंग्रेजी और हिन्दी के प्रश्न-पत्र हो गये। गुप्त जी ने १५ अप्रैल को पुस्तकालय की काशनमनी पांच रुपये वापस ली और वहीं पाँच रुपये आनर्स के परीक्षा-शुल्क के रूप में जमा कर दिये। एक सप्ताह तक कोई परीक्षा नहीं थी। तीसरे विषय प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की परीक्षा २४ अप्रैल को समाप्त हुई। परीक्षा-श्रम से थोड़ा विराम लेने के लिए गुप्त जी एक दिन के लिए गाँव चले गये। घर से लौटने पर उन्होंने तुलसी का अध्ययन प्रारम्भ किया। आनर्स की परीक्षा ४ मई को थी। गुप्त जी के पास स्वाध्याय के लिए जबलपुर के विनायक प्रसाद का रामचरित-मानस का सटीक संस्करण था। बजरंग बली गुप्त की 'तुलसी रचनावली' (मानसेतर एकादश ग्रंथ), आचार्य शुक्ल का 'गोस्वामी तुलसीदास' तथा डा० माता प्रसाद गुप्त का एक लघु ग्रंथ 'तुलसी सन्दर्भ' था।

उस समय गुप्त जी संकट-मोचन के निकट भैरव-लाज में रहते थे। वे प्रतिदिन स्नान करने के उपरांत संकट-मोचन हनुमान मन्दिर में अपनी मानस की पोथी लेकर

चले जाते थे । मनोयोग पूर्वक वे मानस का पारायग करते थे, जैसे हनुमान जो को सुना रहे हों । शेष ग्रंथ एवं आलोचना वे लाज पर ही पढ़ा करते थे । गुप्त जी के तीन प्रश्न बहुत सुन्दर हुए । पहला तो अर्थ लिखने वाला प्रश्न था; दूसरा था रस, अलंकार, छन्द वाला । ये दोनों प्रश्न तो जैसे उन्हें तैयार ही नहीं करने थे । तीसरा प्रश्न था-- तुलसी ने विभिन्न लोगों की योग्यता को ध्यान में रखते हुए एक ही राम कथा अनेक रूपों में लिखी है । इसका बहुत अच्छा विवेचन इण्टर में पढ़ते समय हिन्दी के अध्यापक पं० राम बहोरी जी शुक्ल ने कर दिया था। वह विवेचन यहाँ काम आया । शेष दो में भी उच्च द्वितीय श्रेणी के अंक मिले होंगे और कमी प्रथम तीन प्रश्नों के अधिक अंकों ने पूरी कर दी होगी ।

अन्ततः गुप्त जी को संकटमोचन की कृपा से तुलसी पर आनर्स प्राप्त हुआ । उस वर्ष हिन्दी में आनर्स पाने वाले एक मात्र छात्र गुप्त जी ही थे ।

२. डोनेशन परिकथा, १९५०

हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते समय बी० ए० एवं एम० ए० में गुप्त जी को केवल अर्द्ध-शुल्क-मुक्ति प्राप्त थी । निर्धनता थी । शुल्क दिया नहीं जा सकता था । साल में केवल एक बार दशहरा-बड़ा दिन के बीच दूसरे टर्म में नाम कटा रहता था, छात्र पढ़ते रहते थे । कुछ उदार प्राध्यापक उपस्थिति भी ले लिया करते थे । जो अनुशासन-प्रिय थे, वे उपस्थिति नहीं लेते थे । जनवरी के तीसरे टर्म में नाम पुनः लिख लिया जाता था । नये सत्र में कहने-सुनने पर फिर नाम लिख लिया जाता था और पढ़ने वालों को कोई असुविधा नहीं होती थी । विश्वविद्यालयीय परीक्षा के पहले सभी देय दे देने पड़ते थे । गुप्त जी के साथ भी ऐसा हुआ । १९४० में बी० ए० की बकाया फीस सौ रुपये से अधिक हो गयी थी । गुप्त जी देने में असमर्थ थे । वह अधिकारियों से मिले और उन्होंने कुल देय के बराबर ऋण स्वीकृत कर दिया । न कुछ लिया, न कुछ दिया । सब काम कागज पर हो गया ।

यही बात १९४२ में एम० ए० के लिए भी हुई । यहाँ भी पुनः ऋण स्वीकृत हुआ । कागज पर ही ऋण मिला और कागज पर ही शुल्क का समायोजन हो गया ।

समय बीतता गया । गुप्त जी कुछ कमाने-धमाने भी लगे । १९५० में उन्होंने विश्वविद्यालय का लगभग ढाई सौ रुपये का ऋण चुकता कर देना चाहा और वे विश्वविद्यालय कार्यालय गये । उन्होंने ऋण वापसी की चर्चा की । कागज पत्र ढूंढ़े गये । कुछ पता नहीं चला । अन्ततः संबद्ध अधिकारी ने कहा कि जो रुपये आप देना चाहते हैं, दे दीजिए । इससे ऋण वापसी तो न होगी, परन्तु इसे आपका डोनेशन मान लिया जायगा । गुप्त जी ने रुपये दे दिये और उन्हें डोनेशन की रसीद मिल गई । यही नहीं वे उन्हें तत्कालीन प्रो-वाइस चांसलर प्रोफेसर दे के पास ले गये और

गुप्त जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि हमारे विश्व विद्यालय का एक ऐसा भी छात्र है, जो पूर्व प्रदत्त ऋण वापस करने आया है। प्रोफेसर डे ने भी प्रशंसा की।

इस उदार दृष्टिकोण से काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय विद्यादान करता रहा है। कुछ पता नहीं, अब भी ये सुविधाएँ वहाँ हैं या नहीं। गुप्त जी रिनिया बन कर गये थे, दाता बन कर लौटे।

३. गुप्त जी ने दुभाषिये का काम किया, १९६०

१९६० में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल वेंकटगिरि बराह गिरि आजमगढ़ आये। हरिऔध कला भवन में उनका जनता के समक्ष भाषण होना था। बहुत पहले से तत्कालीन जिलाधीश श्री वीरेन्द्र सिंह कटारा के सामने दुभाषिये का सवाल था। अततः लोग शिबली कालेज के प्रिंसिपल श्री शौकत सुल्तान के माध्यम से डा० गुप्त के पास पहुँचे और दुभाषिये का कार्य कर देने के लिए आग्रह किया। गुप्त जी का खयाल था कि राज्यपाल अपना अंग्रेजी भाषण कर लेंगे, तदनन्तर उनकी बात को हिन्दी में कहना होगा। ऐसा करने में बहुत सी बातें छूट भी सकती हैं। डा० गुप्त ने सोचा कि मैंने आजमगढ़ में पिछले १२ वर्षों में बड़ा यश कमाया है, दुभाषिये का काम ठीक से न कर सका तो बड़ी किरकिरी होगी। अतः उन्होंने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया।

दुभाषिये की खोज जारी रही। कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिला, जो अंग्रेजी और हिन्दी दोनों पर समान रूप से अधिकार रखता हो। जब दो ही तीन दिन रह गए, तब लोगों ने गुप्त जी से पुनः संपर्क स्थापित किया। अब तक उन्हें मालूम हो गया था कि राज्यपाल का भाषण टंकित होगा। वह एक-एक वाक्य पढ़ेंगे और तत्काल हिन्दी अनुवाद करना होगा। गुप्त जी को इसमें कोई खतरा नहीं जान पड़ा और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक अपनी स्वीकृति दे दी।

हरिऔध कला भवन का प्रशाल पूरा भरा था। महामहिम राज्यपाल का आसन लगा था। एक ओर दुभाषिये की कुर्सी और मेज अलग से लगे हुए थे। राज्यपाल एक-एक वाक्य पढ़ते जाते थे, गुप्तजी सड़ासड़ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते जाते थे, जैसे माँ शारदा उनकी वाणी पर विराजमान थीं।

उस दिन डा० गुप्त को बड़ी-बड़ी प्रशंसा मिली। सबसे बड़ी प्रशंसा तो प्राचार्य शौकत सुल्तान से मिली। उन्होंने डा० गुप्त को शाबासी दी और कहा आपने कालेज की नाक रख ली।

आजमगढ़ में गुप्त जी के इस दुभाषिया रूप को लोग बहुत दिनों तक नहीं भुला सके।

४. योग्य व्यक्ति तो अब आया है, १९६२

डा० गुप्त दिसम्बर १९६२ में डी० लिट्० की उपाधि लेने आगरा गये। इस सिलसिले में वे अपने मित्र प्रो० जय कुमार मुद्गल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग बाबू शिवनाथ अग्रवाल डिग्री कालेज मथुरा के साथ आगरा कालेज आगरा के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री जगन्नाथ तिवारी के निवास-स्थान पर शुद्ध दर्शन के लिए गये। जव ये दोनों महानुभाव तिवारी जी के कक्ष के दरवाजे पर पहुँचे, तब उन्होंने सुना कि तिवारी जी किसी को खरी-खरी सुना रहे हैं। वे लोग दरवाजे पर बाहर थोड़ी देर के लिए रुक गये। तदनन्तर बैठक में प्रविष्ट हुए। तिवारी जी एक सज्जन को फटकार रहे थे। डा० गुप्त को देखते ही बोले—योग्य व्यक्ति तो अब आया है। इनकी लिखी पुस्तक भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि के आधार पर मैं भारतेन्दु का अध्यापन करता हूँ। यदि ये चाहें तो मैं इन्हें पी-एच० डी० का गाइड बना सकता हूँ। आपने जोड़ तोड़ करके, अपने परीक्षकों से मिल-मिलाकर डी० लिट० की उपाधि पा ली और योग्य बन गये।

उक्त सज्जन तिवारी जी के पास इसलिए गए थे कि वे उन्हे पी-एच० डी० का गाइड बना दें। उन दिनों नियम था कि पी-एच० डी० का गाइड वही व्यक्ति हो सकता था, जो या तो किसी स्नातकोत्तर महाविद्यालय में विभागाध्यक्ष हो, वह स्वयं पी-एच० डी० हो अथवा न हो, अथवा पी-एच० डी० उपाधिधारी वह व्यक्ति जो स्नातकोत्तर कक्षाएँ पढ़ाता हो। तीसरी कोटि में वे व्यक्ति आते थे, जो अध्यापक हों या न हों, पर अपने विषय के मान्य विशिष्ट विद्वान हों। उक्त सज्जन प्रथम दो कोटियों में नहीं आते थे, अतः तृतीय कोटि में अपना नामांकन चाहते थे। तिवारी जी उसी पर उन्हें झाड़ रहे थे।

तिवारी जी के मुँह से निकले अपने सम्बन्ध के इस वाक्य को कि योग्य व्यक्ति तो अब आया है, डा० गुप्त अत्यन्त महिमामय मानते हैं।

५. पं० मोहन वल्लभ पंत का अभिमत, १९६५

मोहन वल्लभ पंत आनन्द में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे और लाला भगवान दीन जी के शिष्यों में थे। एक बार आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के आवास पर डा० गुप्त की भेंट पंत जी से हो गई। दोनों एक दूसरे से अपरिचित थे। मिश्र जी ने दोनों का परस्पर परिचय कराया। तब पंत जी ने कहा, मैं इनके कर्तृत्व से परिचित हूँ। 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' प्रसाद के मेरे अध्यापन का आकर ग्रन्थ है। ग्रंथ बहुत अच्छा लिखा गया है।

डा० गुप्त पं० मोहन वल्लभ पंत के इस अभिमत को अपने लिए अत्यन्त मूल्यवान मानते हैं।

६. महाकवि गुरु भक्त सिंह 'भक्त' का अभिनन्दन

१० अगस्त १९६८

प्रकृति के पुजारी महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' का जन्म भादौं कृष्ण २ सं० १९५० को जमानियाँ में हुआ था। डा० किशोरी लाल गुप्त १ जुलाई १९६२ को हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ के प्राचार्य होकर आए। यहाँ आने पर उनके मन में अपने अग्रज-मित्र भक्त जी का अभिनन्दन करने की इच्छा हुई। यह अभिनन्दन समारोह १० अगस्त १९६८ को भक्त जी के ७५ वर्ष के हो जाने पर मनाया गया।

इस अवसर पर दो गोष्ठियाँ हुई। एक तो जमानियाँ कस्बे में, जहाँ पर पहले गंगा-तट पर अस्पताल था, जिसमें भक्त जी के पिता ठाकुर कालिका सिंह चिकित्साधिकारी थे और जहाँ भक्त जी का जन्म हुआ था। यहाँ अब एक बढ़ई की झोपड़ी है। यहों जमानियाँ कस्बे के संभ्रांत नागरिक कालिका प्रसाद जायसवाल (स्वर्गीय) की अर्थ-सहायता से चत्वर का निर्माण हुआ और नूरजहाँ तथा विक्रमादित्य के रचयिता महाकवि गुरुभक्त सिंह के जन्म-स्थान का स्मारक मर्मर पर अंकित एक शिला-लेख लगा दिया गया। यह गोष्ठी प्राचीन सिक्कों के विशेषज्ञ अध्येता विश्व प्रसिद्ध विद्वान् डा० परमेश्वरी लाल गुप्त की अध्यक्षता में संपन्न हुई। यह गोष्ठी दिन में हुई थी।

दूसरी गोष्ठी हिन्दू इण्टर कालेज के हाल में हुई। यही मुख्य समारोह था। इसमें सर्व प्रथम हिन्दू इण्टर कालेज के प्रधानाचार्य पं० भीष्मदत्त त्रिपाठी ने कवि को प्रिय चुनरी वाली राजपूती पाग बाँधी, तदनन्तर डा० किशोरी लाल गुप्त ने उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया। ग्रन्थ दो भागों में है। पहला भाग है—गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : व्यक्ति, यह मुद्रित है। इसकी प्रतियाँ प्रमुख उपस्थित व्यक्तियों में वितरित की गई थीं। दूसरा भाग है—गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : कवि। यह हस्तलिखित रूप में ही एक हरे वस्त्र में लपेट कर भेंट किया गया था।

रात में कवि गोष्ठी हुई। इस समारोह में आजमगढ़ से भक्त जी, उनके पुत्र द्वय, हरिऔध कला-भवन आजमगढ़ के महामंत्री श्री विजय नारायण सिंह, पटना से डा० परमेश्वरी लाल गुप्त, जौनपुर से प्रसिद्ध गीतकार श्रीपाल सिंह 'क्षेम' आदि पधारे थे।

यह समारोह करके गुप्त जी को परम मानसिक शांति प्राप्त हुई थी। इस संबंध में वे लिखते हैं—

"इस प्रकार के साहित्यिक आयोजन या तो स्वयं-प्रेरित हो रहे हैं अथवा स्वार्थ-प्रेरित। मैंने शुद्ध धर्म-प्रेरित होकर इस पुण्य कार्य में हाथ लगाया था। इसकी पूर्ति होते देख मुझे चतुर्पुरुषार्थों में से प्रथम की सुखद प्राप्ति हो रही है, ऐसी तरल अनुभूति मेरे मानस में आज कहीं हो रही है।"

भक्त जी का यह अभिनन्दन-आयोजन भी गुप्तजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है।

७. शिबली-जन्म-दिन की अध्यक्षता

डा० गुप्त शिबली नेशनल कालेज आजमगढ़ में १९४८ से १९६२ तक पूरे चौदह वर्षों तक हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। जुलाई ६२ में वे हिन्दू डिग्री कालेज, जमानियाँ के प्राचार्य होकर चले आये, जहाँ वे नवम्बर ७४ तक रहे। डा० गुप्त आजमगढ़ में रहते समय प्राध्यापक एवं साहित्यकार के रूप में परम प्रख्यात थे। प्राचार्य शौकत सुल्तान भी इनकी कद्र करते थे।

बात नवम्बर १९७३ की है। डा० गुप्त उन दिनों गोरखपुर विश्व विद्यालय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य के। उसकी नवम्बर वाली मीटिंग में वे भाग लेने के लिए गोरखपुर गए हुए थे। उसमें सम्मिलित होने के लिए शिबली कालेज के प्राचार्य श्री शौकत सुल्तान भी गये हुए थे। वहाँ उन्होंने डा० गुप्त से कहा कि इसी १८ को शिबली डे है। आप आजमगढ़ होते हुए वापस जा रहे हैं न ? उसमें अवश्य सम्मिलित हों। डा० गुप्त को आजमगढ़ से मोह है। वे आजमगढ़ जाने का कोई अवसर छोड़ना नहीं चाहते। उन्होंने स्वीकृति दे दी। शिबली डे की सदारत के लिए प्रायः अलीगढ़ विश्व विद्यालय से कोई विद्वान प्रोफेसर आया करते थे। उस साल भी कोई विद्वान आने वाले थे। डा० गुप्त भी उस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। दैवयोग से उक्त सदर साहब नहीं आ सके। प्रिंसिपल शौकत साहब उठे और बोले—आज के जलसे की सदारत के लिए मैं गोरखपुर विश्व विद्यालय की एक्जीक्यूटिव कौसिल के मेम्बर अपने पुराने सहयोगी और हिन्दी के प्रख्यात विद्वान डा० किशोरी लाल गुप्त का नाम प्रस्तावित करता हूँ। डा० गुप्त के लिए यह प्रस्ताव अप्रत्याशित था। अतः उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। संभवतः वे पहले हिन्दू थे, जिसने इस वार्षिक समारोह की अध्यक्षता की।

डा० गुप्त इसे भी अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण और महिमामय दिन मानते हैं।

८. प्रो० मैकग्रैगर से भेंट, १९७९

लंदन विश्व विद्यालय के हिन्दी के प्रो० मैकग्रैगर अपनी शोध के सिलसिले में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में टिके हुए थे। डा० गुप्त तब तक कार्य-मुक्त हो चुके थे। दैवयोग से वे भी गाँव से वाराणसी आए हुए थे और वे भी सभा में पहुँच गये। सह-सचिव शंभुनाथ वाजपेयी ने कहा, गुप्त जी, प्रो० मैकग्रैगर सभा में टिके हुए हैं। क्या आप उनसे मिलना चाहेंगे ? गुप्त जी ने कहा--मिल लेने में क्या बुराई है ?

दोनो व्यक्ति मैकग्रैगर साहब के कक्ष के दरवाजे पर पहुँच गये। मैकग्रैगर साहब द्वार-देश पर आ खड़े हुए। डा० गुप्त तो जानते ही थे कि वे किससे मिल रहें है मैकग्रैगर साहब की अभिज्ञता के लिए वाजपेयी जी ने डा० गुप्त का परिचय दिया—'डा० किशोरी लाल गुप्त'। मैकग्रैगर साहब ने गुप्त जी को सिर से पैर तक

भली भाँति देखा और जिज्ञासा की, 'शिव सिंह सेंगर ?' डा० गुप्त ने कहा, 'हाँ हाँ, शिव सिंह सेंगर ही।' मैकग्रैगर साहब ने प्रसन्न होकर कहा, 'मैंने आपका सरोज सर्वेक्षण पढ़ा है। क्या आप भी काशी के ही रहने वाले हैं ?' डा० गुप्त ने कहा–'मैं काशी नगर का तो नहीं हूँ, काशी जनपद के एक देहात का रहने वाला हूँ। यदा कदा काशी आ जाता हूँ और काशी आने पर सभा में आ जाना भी सहज है। ''

९. बनिया आलोचक

सुप्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र से डा० गुप्त का १९४८ से ही संपर्क रहा है। प्रारंभ में दो तीन प्रश्नों को लेकर मिश्र जी ने डा० गुप्त का विरोध किया था। मिश्र जी का 'सेनापति कर्ण' घनाक्षरी के चरणों के उत्तरार्द्ध के १५ वर्णों के वर्णिक छंद में लिखा गया है। एक गोष्ठी में गुप्त जी ने कह दिया कि यह वर्णिक छंद है। इस पर मिश्र जी ने कहा, 'नहीं, यह मात्रिक छंद है। यही आप बी०ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं ?'

दूसरी बार डा० गुप्त ने एक कवि गोष्ठी में ब्रज भाषा में एक कविता पढ़ी। इसमें 'ने' का प्रयौग हुआ था। मिश्र जी ने कहा–ब्रज भाषा में 'ने' का प्रयोग नहीं हौता। गुप्त जी इस बार भी चुप लगा गये। पर उन्होंने 'ब्रजी में 'ने' का प्रयोग' शीर्षक एक अत्यन्त शोधपूर्ण निबंध लिखा और उसमें 'मिश्र जी' को 'मित्र जी' नाम से उल्लिखित किया। वे इस निबंध को लेकर मिश्र जी के आजमगढ़ निवास पर गये और इसे अत्यंत गंभीरता-पूर्वक सुना गये। मिश्र जी ने कहा, 'तुम बड़े बदमाश हो।'

तब से मिश्र जी गुप्त जी को बराबर आचार्य कहने लगे। मिश्र जी की मृत्यु के अनन्तर डा० गुप्त उनके त्रयोदशाह में काशी गए। मिश्र जी के बड़े सुपुत्र श्री विश्वंभर नाथ मिश्र सरकारी वकील आजमगढ़ ने कहा––पिता जी आपको आचार्य कहते थे और श्रेष्ठ आलोचक मानते थे। वे कहते थे कि गुप्त जी बनिया हैं, इस लिए वे इतनी अच्छी समीक्षा लिखते हैं। मैंने पूछा कि बनिया और समीक्षक से क्या संबध है। पिता जी ने कहा—है, वें एक-एक बात की नाप तौल कर कहते हैं, न जरा इधर, न जरा उधर। वह खरी कहेंगे, पर मीठे शब्दों में, बनिया में दोनों गुण होने चाहिए–नाप तोल में उसे ठीक होना चाहिए, साथ ही उसका मधुरभाषी होना भी अत्यत आवश्यक हैं। गुप्त जी में दोनों गुण हैं।'

१०. सार्वजनिक अभिनन्दन
२० नबम्बर १९८२

आजमगढ़ के श्री कन्हैया लाल जी वकील आयकर-विक्रीकर डा० गुप्त के बहुत पुराने मित्र हैं, सन् १९४० से ही, जब गुप्त जी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में एम० ए० के छात्र थे। उसी वर्ष कन्हैया लाल जी वकील हुए थे। १९४८ में शिबली

कालेज में आ जाने पर दोनों मित्रों का नित्य का मिलना जुलना हो गया। १९६२ में गुप्त जी के आजमगढ़ छोड़कर जमानियां चले जाने पर भी वह मैत्री अबाध रूप से प्रगाढ़ बनी रही और गुप्त जी हर साल आजमगढ़ आते जाते रहे हैं।

कन्हैया लाल जी जब १९८२ में जनपद साहू समाज के अध्यक्ष थे, तब उन्होंने डा० गुप्त का आजमगढ़ में सार्वजनिक अभिनन्दन करने की योजना बनाई। इस योजना में हास्य रस के सुप्रसिद्ध कवि दान बहादुर सिंह 'सूंड़' ने भी योग दिया। सूंड़ जी हर साल जवाहर लाल नेहरू के जन्म दिवस पर १४ नवम्बर को नेहरू स्मृति कवि सम्मेलन का आयोजन विशाल पैमाने पर करते रहे हैं। नेहरू जी के नाम से संवद्ध होने के कारण इस कवि सम्मेलन को अधिकारियों का भी पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। सूंड़ जी इस कवि सम्मेलन में हर वर्ष किसी-न-किसी कवि साहित्यकार का अभिनन्दन करते रहे हैं। जब सूंड़ जी को मालूम हुआ कि कन्हैया लाल जी डा० गुप्त का अभिनन्दन करने जा रहे हैं, तब उन्होंने उनसे कहा, आप अभिनन्दन करेंगे उसमें चार छह सौ लोग शामिल होंगे। अच्छा हो यह सार्वजनिक अभिनन्दन नेहरू कवि सम्मेलन के मंच पर हो। वहाँ लगभग बीस हजार की भीड़ में यह अभिनन्दन अधिक महिमामय हो जाएगा। कन्हैया लाल जी ने सूंड़ जी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

उस वर्ष यह कवि सम्मेलन किन्हीं कारणों से २० नवम्बर को हुआ था। इस अवसर पर शिव प्रसाद शर्मा 'अम्बु' का लिखा पद्यवद्ध अभिनन्दन पत्र स्वतन्त्र कुमार गुप्त वकील ने पढ़ा। अभिनन्दन की अध्यक्षता तत्कालीन जिलाधीश भास्कर जी ने की। इस अवसर पर विभिन्न नागरिकों एवं अधिकारियों द्वारा डा० गुप्त को उस समय के मूल्य में लगभग साढ़े चार हजार की सामग्री भेंट की गयी। अब उसका मूल्य नौ हजार से अधिक होगा।

गुप्त जी को निम्नांकित पदार्थ दिये गये—

१. १० ग्राम की स्वर्ण मुहर, जिस पर गुप्त जी का नाम अंकित है।
२. २० भर की चाँदी की तश्तरी, जिस पर प्रशस्ति अंकित है।
३. १० चाँदी के ढले हुए नामांकित सिक्के।
४. नोटों की माला, दो-दो रुपयों के ५० नोट, बीच में चाँदी का एक रुपये का सिक्का।
५. टी सेट—स्टेनलेस स्टील के ६ प्याले, एक तश्तरी, एक जग।
६. एक कटोर दान-तीन कटोरों वाला।
७. एक ब्रीफ केस।
८. एक कम्बल २१० रू० का।
९. एक रेशम की चादर २०५ रू० की।

१०. एक सदरी ऊनी।

११. कुर्ते के लिए एक रेशम-खण्ड।

१२. खद्दर के कुर्ते और पाजामे का कपड़ा।

जिलाधीश ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—यहाँ इस मंच से हर साल किसी न किसी कवि का सम्मान किया जाता रहा है, पर ऐसा अभिनन्दन किसी का नहीं हुआ, जिसे सोना भी दिया गया हो, चाँदी भी दी गई हो, पात्र दिए गए हों, ऊन, रेशम, खद्दर, सभी दिये गए हों, साथ ही मान पत्र भी। निश्चय ही आज का सम्मानित व्यक्ति कोई विशिष्ट व्यक्ति है।

यह करिश्मा बाबू कन्हैया लाल का था, जो प्रभावशाली वकील हैं, नगर पालिका के सदस्य रह चुके हैं। इस कार्य में उनकी पूर्ण सहायता उनके मुसलमान मुवक्किलों, साहु समाज के संभ्रांत नागरिकों एवं स्वर्णकार समाज के लोगों ने की थी। नेहरू कवि सम्मेलन का तो मंच भर था। हाथी के दाँत शोभा की वस्तु हैं भी।

११. यह अभिनन्दन ग्रन्थ

डॉ० गुप्त २८ नवम्बर १९७५ को कार्य-मुक्त हुए। उनके हाई स्कूल और इण्टर के सहपाठी, हिन्दी विभाग राजकीय देवसिंह बिष्ट स्नातकोत्तर महाविद्यालय नैनीताल के प्राध्यापक, डॉ० संकटा प्रसाद उपाध्याय ने उसके बाद ही किसी समय १९७६ या ७७ में डॉ० गुप्त से कहा कि अब आपको अभिनन्दन ग्रंथ दिया जाना चाहिए। डॉ० गुप्त ने कहा—अभी समय नहीं आया है।

इसके एकाध साल बाद ही बाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी वाराणसी की व्यवस्था समिति के महामन्त्री और डॉ० गुप्त के उक्त संस्था के सहयोगी श्री रामाचार्य पाण्डे ने यही प्रस्ताव दुहराया। उन्हें भी डॉ० गुप्त ने वही उत्तर दिया—अभी सयय नहीं आया है।

मार्च १९८७ में डॉ० विद्याधर मिश्र अध्यक्ष हिन्दी विभाग रानीगंज बर्दवान कबीर कीर्ति मन्दिर काशी में डा० गुप्त से मिले और अभिनन्दन ग्रंथ का प्रस्ताव किया। इसके कुछ पहले श्री राम जी धीरज अपने माता सुखदायी विद्यालय, नाटी इमली वाराणसी की वार्षिक पत्रिका का एक विशेषांक डॉ० गुप्त के नाम निकालना चाहते थे। डॉ० लक्ष्मी सागर गुप्त, रीडर हिन्दी विभाग काशी विद्यापीठ ने कहा, यह बचकाना काम क्या करते हो, चाहते हो तो अभिनन्दन ग्रंथ दो। ये परिस्थितियां ऐसी बनीं कि कबीर कीर्ति मन्दिर के आदरणीय सभासदों ने भी इस पर बल दिया और डॉ० गुप्त सहमत हो गये। तैयारियां होने लगी और उसी का फल यह अभिनन्दन ग्रंथ और समारोह है। यह डॉ० गुप्त के महिमामय क्षणों में अन्यतम है।

४. हस्तलिखित 'हिन्दी' का डा० गुप्त के निर्माण में योग

(श्री राधेश्याम गुप्त, बी० ए०)

बात सन् ३१ की है। ज्ञानपुर के लवेट हाई स्कूल (अब श्री विभूति नारायण इंटर कालेज) के छात्रावास में जुलाई में साधारण नाक नक्स का एक साँवला लड़का आया। छात्रावासियों को जब पता चला कि यह लड़का मिडिल स्कूल से छात्र-वृत्ति लेकर आया हैं, बनारस स्टेट के सभी लड़कों में प्रथम आया है और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हैं, तब वे उससे सन्मान पूर्वक व्यवहार करने लगे। यही किशोरी लाल थे। तब तक वे 'गुप्त' नहीं हुए थे। यह तो मेरा भतीजा कन्हैया लाल गुप्त था, जो १९३२ में भदोही से अंग्रेजी के साथ मिडिल पास कर लवेंट में आया और छात्रावासी हुआ, जिसने इनके नाम के साथ 'गुप्त' यह कह कर जुड़वाया कि के० एल० गुप्त मैं, के० एल० गुप्त आप। गुप्त जी मेधावी थे, परिश्रमी थे, हँसमुख तो वे थे ही, विनोदी भी थे। ये विशेषताएँ उनमें अब भी बनी हुई हैं।

हमसे पहले लवेट हाई स्कूल में एक हिन्दी प्रेमी अध्यापक श्री राम सहाय लाल जौहरी थे। वे 'हिन्दी' नाम से विद्यार्थियों की एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे। छात्रों के इसी गिरोह में श्री कमला शंकर सिंह (बाद में निराला जी से सम्बन्धित), श्री शिव देव उपाध्याय 'सतीश' (बाद में कलकत्ता के विश्वमित्र के सम्पादक), श्री व्रज किशोर वर्मा 'श्याम' (सुकवि एवं पत्रकार) आदि थे। जौहरी जी अल्पायु में ही दिवंगत हो गए। उनके निधनोपरांत 'हिन्दी' के दो अंक मुद्रित रूप में भी प्रकाशित हुए। इस मुद्रित 'हिन्दी' के संपादक ज्ञानपुर-वासी प्रसिद्ध साहित्यकार पं० महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर' थे। जब हम लोग ज्ञानपुर में छात्र थे, तब यह पत्रिका समाप्त हो चुकी थी।

१९३२ में हमने इस मृत हस्तलिखित 'हिन्दी' को पुनरुज्जीवित किया। मेरे अग्रज श्री राम धनी गुप्त इसके प्रथम सम्पादक हुए। बाद में इसका सम्पादन मेरे हाथों में आया। सम्पादन क्या-संकलन समझिए। लेखकों से उन्हींकी हस्तलिपि में लेख कविता इत्यादि लेकर संकलित कर दिया जाता था।

इसी पत्रिका के माध्यम से हमारा जो परिचय हुआ, कालान्तर में वह मैत्री में परिवर्तित होगया। पत्रिका के चार प्रमुख लेखक थे-सर्व श्री किशोरी लाल गुप्त, संकटा प्रसाद उपाध्याय, श्रीनाथ पाण्डेय और इन पंक्तियों का लेखक मैं, राधेश्याम गुप्त।

हिन्दी के उस स्वर्ण युग में नई नई पुस्तकें नई नई साजसज्जा के साथ निरन्तर आ रही थीं। हम लोग उन्हींके अनुकरण पर निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी और गद्य काव्य पर कलम चलाया करते थे। उस समय किशोरी लाल जी की मुख्य विधा कविता थी। वे प्रायः अच्छी कविताएँ लिखा करते थे। मुझे स्मरण आता है कि उन्होंने उक्त पत्रिका में 'फक्कड़स्य लक्कड़म्' नाम का एक स्तम्भ लिखना शुरू किया था, जिसमें हास्य व्यंग्य के टुकड़े हुआ करते थे।

इन्होंने एक कबित्त रचा था, जिसमें विभिन्न घोलों द्वारा लिटमस पेपर के रंग परिवर्तन की जानकारी पद्यबद्ध की गयी थी। यह रचना 'हिन्दी' में निकली थी और विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई थी। उसी समय से किशोरी लाल जी विद्यार्थियों में 'कवि जी' नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। अब भी इन्हें 'कवि जी' कहने वाले कुछ मित्र हैं।

अच्छे कवि होने के साथ गुप्त जी अच्छे गद्य लेखक भी थे। इन्होंने जनवरी १९३६ से कहानियाँ भी लिखनी शुरू कीं। उस समय यह दसवें दर्जे के छात्र थे। उदय प्रताप कालेज वाराणसी के हिन्दी प्रवक्ता श्री मारकंडेय सिंह द्वारा उसी वर्ष छात्र-गल्प-प्रतियोगिता प्रारम्भ की गयी थी। उसमें गुप्त जी ने भी भाग लिया था। बाद में यहाँ से पुरस्कृत कहानियों का एक संग्रह 'मधुचक्र' नाम से मुद्रित और प्रकाशित हुआ। गुप्त जी के अच्छे कहानी लेखक होने का यह प्रमाण है कि इस 'मधुचक्र' में इनकी पत्र शैली में लिखित कहानी 'चकमा' भी सन्निविष्ट है

हस्तलिखित 'हिन्दी' का गुप्त जी के साहित्यिक निर्माण में बड़ा हाथ रहा है। इस बात को स्वयं गुप्त जी भी स्वीकार करते हैं। हाई स्कूल जीवन का एक ही अंक हमारे पास सुलभ हैं। वह है अक्तूबर १९३५ का अंक। उस समय हम लोग दसवें दर्जे के छात्र थे। इसमें गुप्त जी की चार लघु रचनाएँ हैं--दो कविताएँ और दो भावोच्छ्वास पूर्ण गद्य। कविताओं में एक है 'पपीहे के प्रति'। यह ब्रज भाषा में विरचित एक अन्यन्त सरस सवैया है। गुप्त जी प्रारम्भ से ही ब्रज भाषा में लिखते आ रहे हैं और वे आज ब्रज-भाषा के सुकवि हैं। दूसरी कविता है 'प्रियतम'। यह खड़ी बोली में है। 'एक चित्र' गद्य काव्य है। इसमें उषा का मनोहर चित्र है। 'मेरी मित्र मंडली' एक लघु निबन्ध है। इसमें पाँच मित्रों का एक-एक दो-दो वाक्यों में रेखा चित्र है। इनमें से चार जीवित हैं। एक विन्ध्येश्वरी प्रसाद लाल दिवंगत हो गये। तीन हैं—डा० संकटा प्रसाद उपाध्याय, श्री श्रीनाथ पाण्डेय अवसरप्राप्त तहसीलदार और मैं। पाँचवें गुप्त जी हैं। इन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा था--

'पाँचवाँ मैं हूँ, और मैं, मैं ही हूँ।'

यह निबन्ध उस समय छात्र मंडली में बहुचर्चित हुआ था।

हाई स्कूल करने के बाद उपाध्याय जी, पाण्डेय जी, गुप्त जी क्वींस कालेज वाराणसी चले गये और मैं हिन्दू विश्वविद्यालय। क्वींस कालेज से भी इन मित्रों ने हिन्दी का प्रकाशन जारी रखा। अब इसके सम्पादक थे संकटा प्रसाद उपाध्याय। कार्य सब गुप्त जी करते थे। इस समय का कोई भी अंक सुरक्षित नहीं रह गया है।

१९३८ में इण्टर करने के बाद संकटा प्रसाद जी एवं श्री नाथ जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय चले गये। किशोरी लाल जी हिन्दू विश्वविद्यालय आ गये, जहाँ मैं पहले से ही था। हम लोगों ने 'हिन्दी' का प्रकाशन हिन्दू विश्वविद्यालय से भी करने का निश्चय किया। किशोरी लाल जी ने एकरूपता लाने के लिए पूरी पत्रिका स्वहस्तलिपि में निकालने का भार उठाया। साज-सज्जा एवं अलंकरण श्री आनन्द सिंह विष्णोई के जिम्मे रहा, जो क्वीन्स कालेज में गुप्त जी के सहपाठी थे। शीघ्र ही पत्रिका ने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के साहित्यिक अभिरुचि वाले विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित कर लिया और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बन गयी।

उस समय के प्रमुख साहित्यकार विद्यार्थी थे—(१) अर्जुन चौबे काश्यप, (२) सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, (३) ब्रह्मदेव शर्मा 'पागल' (४) कृष्णाचार्य, (५) कृष्ण देव नारायण सिंह, (६) रामेश्वर खण्डेलवाल 'तरुण', (७) गंगा रत्न पाण्डेय, (८) भगवती प्रसाद सकलानी, (९) गंगा शरण रतूड़ी, (१०) आनन्द सिंह विष्णोई, (११) मंगला प्रसाद पाण्डेय, (१२) कृष्ण दत्त वाजपेयी, (१३) हूब नारायण त्रिपाठी, (१४) केदार नाथ शुक्ल, (१५) राम लाल सिंह, (१६) मोती बी० ए०, (१७) किशोरी लाल गुप्त, (१८) राधेश्याम गुप्त।

छात्र-जीवन से निकल कर बाद में ये सभी मित्र उच्चपदस्थ हुए।

प्रयाग विश्वविद्यालय के हमारे मित्र श्री संकटा प्रसाद उपाध्याय, श्री श्रीनाथ पाण्डेय एवं त्रिभुवन नाथ श्रीवास्तव आदि बराबर अपनी रचनाएँ भेजते रहते थे। हमें प्रोत्साहित करने के लिए हमारे विद्वान प्राध्यापक आचार्य श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं पद्मनारायण जी आचार्य भी इसमें अपने लेख देने की कृपा करते रहते थे।

१३३८–४० में बी० ए० में पढ़ते समय किशोरी लाल जी को अपनी विभिन्न साहित्यिक प्रवृतियों को विकसित करने का अच्छा अवसर मिला और उन्होंने इस अवसर का सम्यक् सदुपयोग किया। कविता, कहानी, आलोचना, एकांकी सभी विधाओं पर उन्होंने सफलता पूर्वक कलम चलायी।

इस समय 'हिन्दी' के कुल पाँच अंक निकले, जिनमें चार अंक सुरक्षित हैं। हैं। इनमें गुप्त जी की निम्नांकित रचनायें हैं। कुछ तो स्वयं इनके नाम से हैं, कुछ अन्य मित्रों के नाम से, कुछ छद्म नामों से।

सितम्बर १९३८ प्रथक अंक :

१. चतुर्दशपदी—निबन्ध, रचना विधान पर विचार ।
२. यौवन का प्रथम चरण—कविता (मेरे नाम से) ।
३. अनुरोध —चतुर्दशपदी-'श्री ए' के छद्म नाम से ।
४. अजातशत्रु—'प्रसाद का एक विद्यार्थी के छद्म नाम से। अजातशत्रु की कथा ।
५. मेरी दाढ़ी—हास्य रसात्मक लेख, दढ़ियल के छद्म नाम से ।
६. भाव प्रतिविम्ब—महाकवि केशव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हरिऔध के काव्य में भावसाम्य ।
७. छींटे—'क' के छद्म नाम से ।

मार्च १९३९—तृतीय अंक :

१. विपर्यय—एकांकी ।
२. प्रसाद के गीत उनके नाटकों में—प्रसाद के गीतों की उनके नाटकों में उपयुक्तता पर समीक्षात्मक लेख ।
३. कवि की सुहाग रात—चतुर्दशपदी—'ए' के छद्म नाम से ।
४. वो० एच० यू० की कुछ काव्य कृतियाँ— साथी कवियों के अप्रकाशित काव्य संग्रहों का परिचय ।
५. ध्रुव स्वामिनी—प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक की कथा—प्रसाद का एक विद्यार्थी के छद्म नाम से ।

सितम्बर १९३९ चतुर्थ अंक :

१. बरवै—शोधपूर्ण लेख, हिन्दी में बरवै साहित्य का इतिहास ।
२. विद्रोह—एकांकी ।
३. सुहाग रात—चतुर्दशपदी—श्री 'ए' के नाम से ।

जनवरी १९४० पंचम अंक-प्रसाद अंक :

१. कामायनी के छन्द—लेख ।
२. प्रलय की छाया—समीक्षा ।
३. प्रसाद के नाटकों का वर्गीकरण—विन्ध्येश्वरी प्रसाद मछली शहर के नाम से ।
४. कहानी लेखक प्रसाद—राधेश्याम गुप्त के नाम से ।
५. प्रसाद की प्रथम और अंतिम कहानियाँ—राधेश्याम गुप्त के नाम से ।
६. उद्गार—चतुर्दशपदी—प्रसाद की स्मृति में ।
७. प्रसाद काव्य-प्रासाद तक पहुँचने के मेरे सोपान—'प्रसाद साहित्य का एक विद्यार्थी' नाम से ।

८. अलका—चन्द्र गुप्त नाटक की एक पात्री अलका के नाम से अमित्राक्षर छन्द में रचित एक कथा काव्य ।

९. प्रसाद के कुछ गीत और उनका अंग्रेजी रूपान्तर—'प्रसाद साहिय का एक विद्यार्थी नाम से ।

१०. कामना—प्रसाद के 'कामना' नाटक की कथा श्रीनाथ पाण्डेय के नाम से ।

११. प्रसाद की दश सर्व श्रेष्ठ कहानियाँ ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी गुप्त जी की लिखी हुई हैं :—

१--प्रसाद की साहित्य साधना, २--व्रज भाषा के सुकवि प्रसाद, ३--प्रसाद के नाटकों की भाषा, ४--प्रसाद के कहानी संग्रह, ५--प्रसाद पर आलोचना-साहित्य, ६--प्रसाद की निग्रंथ रचनाएँ, ७--चित्राधार ।

हिन्दी विभाग के सहयोग और प्रोत्साहन से हमारी पत्रिका का प्रसाद अंक वृहत्काय निकला था । प्रो० पद्म नारायण आचार्य, प्रो० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के भी लेख इसमें हैं । दूरस्थ शान्ति-निकेतन के आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी लेख इसमें है । प्रसाद की कामायनी पर प्रथम स्वतन्त्र ग्रंथ लिखने वाले, उदय प्रताप कालेज वाराणसी के हिन्दी प्रवक्ता, श्री विजय शंकर मिश्र के भी उक्त ग्रंथ का एक अध्याय इसमें दिया गया था । हिन्दी विभाग के एम० ए० के लिए अनिवार्य शोध-प्रबन्धों में से प्रसाद के चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी पर लिखे गये प्रबन्धों के भी अंश इसमें दिये गये थे । यह सब सामग्री प्रो० पद्म नारायण जी आचार्य के सहयोग से ही प्राप्त हो सकी थी ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी आयोजन श्री किशोरी लाल गुप्त के अथक परिश्रम से ही सम्भव हो सके थे । वे अब पूर्ण प्रसादमय हो चुके थे । उन्होंने अजात शत्रु की वाजिरा और चन्द्रगुप्त की अलका को लेकर खण्ड काव्य लिख लिये थे । प्रसाद के नाटकों की कथाएँ भी उन्होंने प्रस्तुत की थीं । प्रसाद काव्य की प्रेरणा से ही उन्होंने सुष्ठु सानेटों (चतुर्दशपदियों) की रचना प्रारम्भ कर दी थी । उनकी अनेक कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद भी कर डाले थे । इस प्रकार एक आधुनिक साहित्य महारथी का उन्होंने पूर्ण अध्ययन कर लिया था और यह अध्ययन हिन्दी के प्रसाद अंक के लिए हुआ था । इस अंक की ख्याति भी पर्याप्त हुई थी । इसके आधार पर चलकर आगे गुप्त जी ने एम. ए. का शोध प्रबन्ध प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन लिखा । हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो महत्व पूर्ण गवेषणायें उन्होंने कीं और कामायनी का जो अंग्रेजी रूपान्तर किया, उन सब की नींव 'हिन्दी' द्वारा ही पड़ी थी ।

स्टेट बैंक परिसर
भदोही

५. 'चरैवेति' के पथिक

गुप्त रहकर भी प्रकाश बिखेरते—
ज्ञान-गरिमा का, सरस साहित्य का;
''चरैवेति''-परंपरा के प्रिय पथिक
हों शतायु सुहृद् किशोरी लाल जी।

स्वनामधन्य किशोरीलाल जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मेरे सहपाठी थे। महामना मालवीय जी के इस पुनीत आश्रम में मुझे चार वर्ष अध्ययन का सौभाग्य मिला। इण्टर की परीक्षा कानपुर के बी० एन० एस० डी० कालेज से पास करने के बाद मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ने की तैयारी पक्की कर ली थी। जब मैं जून, १९३८ में दौलतपुर (मेरे गाँव रायपुर के निकट) गया कि श्रद्धेय पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का पुनीत आशीर्वाद, प्रयाग जाने हेतु, प्राप्त कर लूँ, तब उन्होंने प्रसन्न मन से उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया। पर उन्होंने प्रयाग की जगह काशी को प्रस्तावित किया। द्विवेदी जी की आज्ञा मेरे लिए सर्वोपरि थी। वे उन दिनों अस्वस्थ थे, हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पंडित मदन मोहन मालवीय जी के नाम उन्होंने मेरे लिए स्वयं एक पत्र लिखकर मुझे दिया।

जुलाई ३८ में महामना जी के श्री चरणों में उपस्थित होकर मैंने द्विवेदी जी का पत्र उन्हें दिया। उनके पूछने पर द्विवेदी जी की अस्वस्थता भी बतायी, जिसे सुनकर महामना जी के नेत्र छलछला आये। यह देख मुझे इन दोनों महान् विभूतियों के पारस्परिक सहज स्नेह भाव का परिचय मिला। मालवीय जी ने मुझे शीघ्र बी० ए० में प्रवेश लेकर पढ़ने का आदेश दिया और कहा कि समय-समय पर मैं उनसे मिलता रहूँ।

उन दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा विहारके अधिकांश छात्र हिन्दू विश्वद्यालय में पढ़ने आते थे। देश के अन्य क्षेत्रों तया विदेशों के कई छात्र भी वहाँ विविध विषयों में शिक्षा-प्राप्ति के निमित्त आया करते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय का वातावरण देश की अन्य युनिवर्सिटियों जैसा न था। यहाँ अपने विषयों के प्रकांड पंडित प्रायः सरल वेशभूषा में रहते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय का वातावरण तक्षशिला, नालंदा, काशी, वलभी आदि के प्राचीन विद्या केन्दों-जैसा था। शिक्षक और शिक्षार्थी सभी काशी और महामना जी के पवित्र परिवेश तथा उदात्त उद्देश्यों से प्रभावित थे। अधिकांश अध्यापक विद्यार्थियों को अपनी संतान-जैसा मानकर उन्हें पूर्ण शिक्षित

बनाने के प्रयास में रत रहते थे। शिष्यजन गुरुओं के प्रति श्रद्धानत रहते थे। १९३८ से ४२ तक के मेरे अध्ययनकाल में एक दिन भी किसी भी वर्ग द्वारा विश्वविद्यालय में कोई हड़ताल नहीं हुई। ज्ञान-सत्रों में अपने बीते दिनों का जब भी मुझे स्मरण आता है, तब भरे कंठ से यही कहना पड़ता है--"ते हि नो दिवसा गताः।"

उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र प्रायः मध्यम या निम्नवर्गीय परिवारों के होते थे। बहुतों के पहनावे, आचार-विचार सादे-सीधे थे। भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्र-सेवा के प्रति वे समर्पित थे। मेरे कई साथी धोती-कुर्ते में रहते थे। अनेक ऐसे थे जिनके सिर पर टोप-टोपी और पैरों में चप्पल-जूते कभी नहीं देखे गये। कई ने प्रण कर लिये थे कि अध्ययन के बाद शेष जीवन देश-सेवा में लगायेंगे। कुछ ने यह ठान लिया था कि एम० ए०, एम० एस-सी० आदि करने के पहले विवाह बंधन में नहीं बँधेंगे। कुछ आजीवन ब्रह्मचारी रहने के व्रतधारी थे। अनेक छात्रों को देखकर शिवजी के गणों की याद आती थी।

श्री किशोरीलाल से मेरा परिचय १९३८ में ही हो गया था। उनमें कई असाधारण लक्षण थे—बोलना कम, काम अधिक, जब बोलना हो तो साहित्य की ही बात करना। साहित्यिक संयोजन की बात इन दिनों बहुत सुनायी देती है, पर उसे व्यावहारिक रूप देने की बात किशोरीलाल गुप्त उन दिनों भी जानते थे। हममें से अनेक के वे प्रेरणा स्रोत थे।

बी० ए० के बाद एम० ए० में गुप्त जी ने अंग्रेजी विषय लिया और मैंने प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति। इसके बावजूद हम लोगों के साहित्यिक संपर्क नहीं टूटे। एम० ए० के बाद हम दोनों अलग-अलग दिशाओं में जा लगे। उनके भाग्य में सरस साहित्य, अध्यापन-अध्ययन आया, और मेरे भाग्य में पुराने पत्थरों से जूझना। फिर यदा-कदा पत्राचार और कभी अकस्मात मधुर मिलन। मेरा संचरण उत्तर प्रदेश से मध्यप्रदेश में हो गया, पर उन्होंने भगवान् शिव, राम और कृष्ण की भूमि नहीं छोड़ी।

१९५७ में गुप्त जी पी-एच० डी० की उपाधि लेने आगरा पधारे। मैं उस समय मथुरा संग्रहालय में था। मित्र के नाते वे मेरे यहाँ भी पधारे। पी-एच० डी० उनको शिव सिंह 'सरोज' के सर्वेक्षण पर मिली थी। अब वे शिव सिंह सरोज का सम्पादन भी कर देना चाहते थे। मेरे पास 'सरोज' के एक प्राचीन संस्करण की किंचित् खंडित प्रति थी, जो उनके सम्पादन कार्य में सहायक हो सकती थी। उनके माँगने पर तुरन्त मैंने उक्त पोथी उन्हें दे दी। गुप्त जी ने सिद्ध किया कि मेरी पोथी सरोज का द्वितीय संस्करण थी। कार्य हो जाने पर उन्होंने मेरी प्रति सुरक्षित ढंग से वापस कर दी। यह भी हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रभाव था। अपना ग्रंथ छपने पर उन्होंने उसकी प्रति भी मुझे भेज दी। यह उनका विशेष औदार्य था।

पिछले पैंतालिस वर्षों में गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य की विविध सेवाएँ कीं, जो हमारे इतिहास में अमर रहेंगी। शिवसिंह और ग्रियर्सन के अलभ्य ग्रंथों को उन्होंने नये रूपों में प्रस्तुत किया। हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास, नागरीदास एवं गिरिधर कविराय-ग्रंथावली, कालिदास का हजारा, सुन्दर-विलास आदि पुराने ग्रंथों का नये वैज्ञानिक ढंग से उन्होंने सम्पादन किया। तुलसी, भूषण-मतिराम, भारतेन्दु आदि कवियों पर उनके लिखे हुए समीक्षात्मक ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी हैं। हिन्दी भाषा के विविध रूपों तथा साहित्य पर उनके गवेषणात्मक निबन्धों ने हिन्दी का भण्डार भरा है।

गत चौबीस जुलाई १९८७ को प्रयाग में उनके नामराशि विद्वान् डॉ० किशोरीलाल की कृपा से गुप्त जी से मेरी भेंट हुई। मेरे लिए यह अन्यन्त हर्ष का अवसर था। हम त्रिदेवों को उस दिन कुछ समय साथ बिताने का अवसर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभाकक्ष में मिला। इसके लिए हम श्री हरिमोहन मालवीय जी के अनुगृहीत हैं। यह देखकर सुख मिला कि गुप्त जी की वेशभूषा और मृदु व्यवहार में इतने लम्बे व्यवधान से भी अन्तर नहीं आ पाया है।

कृष्णदत्त वाजपेयी
५५ पद्माकर नगर, मकरोनियाँ, सागर

६. छात्र-वत्सल गुरु डा० किशोरी लाल गुप्त : कुछ संस्मरण

शिक्षा सत्र १९४२-४३ में मैं लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर मे कक्षा ८ का छात्र था और विद्यालय के छात्रावास का अन्तेवासी था। उसी वर्ष अंग्रेजी विषय से एम० ए० उपाधिधारी एक नये अध्यापक थोड़े दिनों के लिए विद्यालय में नियुक्त होकर आये। हम सभी के सौभाग्य से वे सहायक अधीक्षक के रूप में छात्रावास में ही रहने लगे और हमें उनके निकट पहुँचने का सहज सुयोग मिल गया।

छात्रों की आपसी काना-फूसी से ही इन नये अध्यापक का नाम (श्री किशोरी लाल गुप्त) और योग्यता का परिचय मिला। इनकी सादगी और वेश-भूषा देखकर बड़ा बिस्मय हुआ। अंग्रेजी विषय का एम. ए. और इतना सरल ! खादी का कुर्ता और पैजामा ? वह भी उन दिनों जब इस वेष में रहना राज्य के प्रति विरोध माना जाता था।

विद्यालय की पाक्षिक साहित्यिक सभा में प्रस्तुत करने के लिए मुझे 'लहर है' समस्या की पूर्ति करनी थी। मैंने जैसे-तैसे एक धनाक्षरी बनाई और अपने नये अध्यापक के पास उसके संस्कार-संशोधन हेतु पहुँच गया। गुरुवर ने न केवल उस कविता का संस्कार किया, अपितु किसी शब्द का बदलाव क्यों कर रहे हैं, यह भी समझाया। इन्होंने बताया कि काव्य-रचना में एक ही भाषा अथवा बोली के शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये। मिली जुली भाषा में की गई रचना अच्छी नहीं होती।

अर्धवार्षिक परीक्षा में इन्होंने हम लोगों की अंग्रेजी के द्वितीय प्रश्नपत्र की उत्तर पुस्तकों का मूल्यांकन किया। हमारे एक सहपाठी को इस प्रश्न पत्र में कुल पाँच अंक मिले थे। परन्तु उसकी उत्तर पुस्तक के मुख पृष्ठ पर ५—५=० लिखा हुआ था। हम सभी यह जानने के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित थे कि उत्तर तुस्तक के भीतर प्राप्त अंक मुख पृष्ठ पर शून्य कैसे हो गए। अध्यापक ने इंगित किया—'जिस छात्र को ग्रामर (Grammar) शब्द की सही वर्तनी भी नहीं आती, उसे पाँच अंक भी नहीं पाना चाहिए। छात्र ने अपनी उत्तर पुस्तक के मुख पृष्ठ पर Grammer लिखा था।

वर्ष १९४९-५० में जब मैं अपने गृहनगर भदोही के एक विद्यालय में अध्यापक बना, तो वहाँ एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया। उसमें भाग लेने के लिए जब मैंने गुरुवर श्री गुप्त से आग्रह किया, तब उन्होंने आजमगढ़ से पधार कर उसमें भाग लिया। अन्य रचनाओं के साथ इन्होंने चार सवैयों में जो प्रेम-रहस्य का निरूपण प्रस्तुत किया, उसे सुनकर सभी श्रोता झूम उठे। बाद में ये सवैयें इनके एक काव्य-संग्रह 'शम्पा' में प्रकाशित हुए।

आजमगढ़ के शिबली कालेज में हिन्दी विभाग का अध्यक्ष और प्राध्यापक रहते हुए इन्होंने अनेक शोध परक रचनायें हिन्दी जगत को दीं और अपनी मान्यताओं में दृढ़ता अर्जित की। इनके शोध ग्रंथों की मान्यता स्वरूप इन्हें पी-एच० डी० और डी० लिट० की उपाधियों से विभूषित किया गया।

हिन्दी के विख्यात नाटककार स्व० लक्ष्मीनारायण मिश्र की एक अपूर्ण काव्य-कृति 'सेनापति कर्ण' में प्रयुक्त वर्णिक छन्दों की चर्चा करने पर मिश्रजी ने डॉ० गुप्त पर कटाक्ष किया—'ऐसे ही छात्रों को पढ़ाते हो? 'सेनापति कर्ण' में मात्रिक छन्द प्रयुक्त हैं।' डॉ० गुप्त ने शील का निर्वाह करते हुए उस समय कोई विवाद नहीं किया। बाद में लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'रसवन्ती' के 'निराला' विशेषांक में प्रकाशित अपने 'निराला के मुक्त छन्द और उनका रचना-विधान' निबन्ध में लिखा :—

'आगे चलकर हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी इसी छन्द (अतुकान्त वर्णिक छन्द जिसके प्रत्येक चरण में १५ वर्ण होते हैं) का उपयोग अपने अपूर्ण महाकाव्य 'सेनापति कर्ण' में किया।'

इस प्रकार इन्होंने मिश्रजी के कटाक्ष का परोक्ष खण्डन करते हुए अपनी मान्यता की पुष्टि की ।

ब्रज भाषा में 'ने' के प्रयोग को लेकर भी एक कवि सम्मेलन में स्व० लक्ष्मी नारायण मिश्र ने ही डॉ० गुप्त को टोका । परम शीलवान डॉ० गुप्त ने उस समय तो बहस टाल दी, पर बाद में 'ब्रजी में ने का प्रयोग' निबन्ध लिखकर यह प्रतिपादित किया कि ब्रज भाषा के गद्य, पद्य, बोलचाल, भाषा की समस्त विधाओं में 'ने' का प्रयोग होता है । इन्होंने स्वयं ही अपना यह लेख स्व० मिश्र जी को पढ़कर सुनाया, जिसके पश्चात् वे गुप्त जी को आचार्य कहने लगे ।

सन् १९८३ में बाराबंकी में कविवर 'मधु' जी के यहाँ प्रकाशनाधीन 'कविलाल और उनका काव्य' पर इनकी दृष्टि पड़ी । इस पुस्तक से सम्बद्ध मेरा नाम देखकर इन्हें चार दशकों पूर्व का अपना एक छात्र (लेखक) स्मरण हो आया । इन्होंने कृपा पूर्वक इसकी भूमिका में हिन्दी काव्य जगत के 'लाल' उपनामधारी कवियों की दीर्घ परम्परा का उल्लेख किया और विवेच्य कवि 'लाल' के विषय में कुछ प्रामाणिक बातों पर प्रकाश डाला ।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने दीर्घ काल तक अध्यापन कार्य करके जमानिया डिग्री कालेज के प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण किया । अब भी वह अपने ग्राम सुधवै में रहकर अपना समय माँ सरस्वती की आराधना में ही व्यतीत कर रहे हैं । वे अपने छात्रों के प्रति सदैव बड़े सदय और वत्सल रहे हैं । परोक्ष में भी चर्चा आने पर वह अपने छात्रों के विषय में आज भी अपनी सुरुचि की अभिव्यक्ति करते रहते हैं ।

ईश्वर करे, हमारे ये गुरुवर डॉ० किशोरी लाल गुप्त दीर्घजीवी हों, उनकी लेखनी बराबर गतिशील रहे, किसी भी प्रकार की दीनता उन्हें छू भी न सके ।

१७, अवधपुरी, पो० सर्वोदयनगर — **कमला कान्त राय**

लखनऊ — २-७-८८

७. डा० के गुप्त संस्मरण

मुझे शिब्ली कालेज आजमगढ़ से इंटरमीडिएट करने का सुअवसर मिला था । उस समय जनपद में वह अकेला इंटर कालेज था । इसका नाम उस समय शिब्ली जार्ज इंटर कालेज था । यह नाम तत्कालीन कार्य कारिणी द्वारा दिया गया था, क्योंकि यह सर्व विदित है कि सन १८८४ ई० में ही अल्लामा शिब्ली नोमानी ने इसका नाम नेशनल स्कूल रखा था । सन १८८४ में किसी विद्यालप का 'नेशनल' नाम

देना अदम्य साहस का कार्य था; दूसरे शब्दों में कट्टर राष्ट्रीयता और राष्ट्र-भक्ति का प्रतीक था। इस नाम की महत्ता और गरिमा इसीसे आँकी जा सकती है कि सर सैयद अहमद खाँ ने उन्हीं दिनों एक विद्यालय का निर्माण अलीगढ़ में किया था, जिसका नाम था—"ऐंग्लो मोहम्डन वर्नाक्यूलर स्कूल"। नेशनल नाम तत्कालीन अंग्रेज शासकों के लिये विशेष रूप से आपत्तिजनक था।

इंटरमीडिएट के पश्चात सन १९४४-४५ में मुझे काशी हिन्दू विश्व विद्यालय जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहीं से बी० ए०, एम० ए० और एल-एल० बी० किया। परम श्रद्धेय आदरणीय गुरुवर आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, अध्यक्ष हिन्दी विभाग ने मुझे अध्यापन कार्य करने हेतु प्रेरित और प्रोत्साहित किया था और उसमें सफलता के लिए आशीर्वाद भी दिया था, किन्तु इतने पर भी मन ने मनमानी की और मैंने वकालत पेशे को वरीयता दी। जनपद के प्रसिद्ध एडवोकेट स्वर्गीय श्री मिर्जा मुरुतुजा बेग और श्री शाह अलाउल हक मेरे कचहरी के गुरु थे।

ज्योंही स्वतंत्र रूप से वकालत करने का अधिकार माननीय हाई कोर्ट इलाहाबाद से सन् १९५२ ई० में प्राप्त हुआ और मैंने कार्य आरंभ किया, त्योंही घरेलू परिस्थितियाँ प्रकारान्तर से विवश करने लगीं और मेरी वकालत करने की अभिलाषा धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। मुझे लगा कि घर के लिये तत्काल आर्थिक सहयोग करना मेरा परम पुनीत और नैतिक कर्त्तव्य है। ऐसी परिस्थिति में कुछ सोच नहीं पा रहा था कि क्या किया जाय। नियति नटी की गति को किसने जाना, वह अदृश्य रूप से कार्य करती है। कलक्ट्री कचहरी आजमगढ़ में अपने विस्तर पर बैठा था। स्वर्गीय गुरुवर मोहम्मद मोजम्मिल कचहरी के कार्य से ही वहाँ गये थे। शिष्य होने के नाते मुझे देख कर बहुत प्रसन्न हुये और बातचीत के दौरान मैंने वतलाया कि काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से बी० ए०, एम० ए० और एल-एल० बी० करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। एम० ए० का विषय हिन्दी जानते ही उन्होंने कहा कि कालेज में हिन्दी विभाग में एक प्रवक्ता की जगह है, प्रार्थना पत्र दे दीजिये, आप कालेज के पुराने छात्र हैं, चुन लिये जायेंगे। कमेटी अपने छात्रों पर ध्यान दे रही है।

मुझे परम श्रद्धेय गुरुवर मोहम्मद मोजम्मिल साहब के सुझाव भरे आदेश पर आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, तत्कालीन अध्यक्ष हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, की स्मृति हो आई, क्योंकि उन्होंने ही सर्व प्रथम मुझे अध्यापन कार्य के लिये प्रेरित किया था। बाबू बटेश्वर राय, ग्राम मँदुरी और श्री मंजूर अहमद मुख्तार, ग्राम बिन्दवल के सहयोग से शिब्ली नेशनल कालेज के तत्कालीन मैनेजर एवं जनपद के वरिष्ठ एडवोकेट स्वर्गीय श्री मोहम्मद सफी साहब के यहाँ पहुँचा। मेरा परिचय श्री मंजूर अहमद मुख्तार ने दिया। पहले ही परिचय में मैनेजर साहब ने मुझे हिन्दी विभाग के प्रवक्ता पद पर चुन लिये जाने हेतु आश्वस्त कर दिया।

डा० किशोरी लाल गुप्त उस समय शिब्ली नेशनल कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। उन्हें मेरे बारे में अब तक कोई सूचना नहीं थी। २० जुलाई सन् १९५३ को मैनेजर साहब के आदेशानुसार तत्कालीन प्राचार्य स्वर्गीय श्री शौकत सुल्तान साहब के आफिस में यह जानने के लिये कालेज गया कि हिन्दी प्रवक्ता का चुनाव किस तिथि को और किस समय होगा। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। हिन्दू विश्व विद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने और साथ ही कालेज का पुराना छात्र होने के नाते प्रसन्नता व्यक्त की, किन्तु उनकी गंभीरता बनी रही और उन्होंने पुनः पूछा कि मैनेजर साहब से आपकी भेंट हो चुकी है ? मैने कहा, हाँ। तब उन्होंने कहा कि जब आप यहाँ के पुराने छात्र हैं, तो बतलायें कि २२ नम्बर का कमरा कहाँ हैं ? मैने कहा कि पश्चिमी भवन का दक्षिणी कक्ष। तब प्राचार्य महोदय ने कहा कि अभी ५ मिनट रुकिये, बी० ए० भाग दो (हिन्दी) का क्लास वहीं लगेगा, जाइये क्लास लीजिये। बड़े बाबू नजीर अहमद ने तुरन्त मुझे एक उपस्थिति रजिस्टर दिया, तब तक घंटा लग गया। सोचने लगा कि कोर्स के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यदि यह कहूँ कि कल से क्लास लूँगा तो ठीक नहीं होगा। उपस्थिति रजिस्टर लेकर तनहा कक्ष नं० २२ की ओर बढ़ा। ध्यान किया महामना मालवीय जी का और आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के लगातार १५ दिनों के क्लास लेक्चर का, जो कबीर पर अपने ढंग का नवीनतम था। स्मृति में पूरा लेक्चर स्पष्ट था। क्लास में पहुँचते ही उपस्थिति ली। कुछ छात्र परिचित थे, किन्तु अधिकांश अपरिचित।

मैंने साहस के साथ पूछा कि क्या पढ़ाया जाय। छात्रों को यह जानकर बड़ी उत्सुकता हुई कि मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र हूँ। सबने एक स्वर से कहा कि कुछ नयी बात बतलाइये। मेरे लिए यह कहावत चरितार्थ हुई कि "जोई रोगिया भावे, सोई बैद फुरमावे।" मैं कोर्स की पुस्तक से हट कर ही कुछ कहना चाहता था, क्योंकि उसके बारे में कोई जानकरी नहीं थी। उधर कबीर पर पर्याप्त नयी सामग्री मेरी स्मृति में थी। कबीर पर चर्चा प्रारंभ हुई। क्लास में छात्रों को बात इतनी रुचिकर लगी कि पूरा क्लास स्तब्ध होकर पूरे पीरियड भर मुझे सुनता रहा और यही चर्चा फिर अगले दिन भी चलाने की माँग हुई। मैंने उनकी कबीर विषयक जिज्ञासा अपनी अल्प बुद्धि से कुछ अंश तक अवश्य पूरी की; ऐसा मुझे लगा। इसके पश्चात कोर्स संबंधी जानकारी हो गई और उसके अनुसार चलने लगा।

हाँ, तो पहले दिन अपना क्लास समाप्त होने पर ज्यों ही फुरसत मिली, अपने अध्यक्ष डा० किशोरी लाल गुप्त से भेंट के लिया गया। उन्होंने मिलते ही सर्व प्रथम मुझे नमस्कार किया और कहा कि 'राय साहब, मैं आपसे डरता हूँ।' मैं उनके नमस्कार और इस वाक्य से सहम गया और अपने को लज्जित महसूस किया, फिर तनिक रुक कर पूछा कि आप ऐसा क्यों कहते हैं ? आप मेरे अध्यक्ष हैं। मैं कुछ दुःखी सा हुआ,

तब डा० गुप्त ने तुरत मेरे कंधे पर हाथ रखा और कहा यह सब मनोरंजन मात्र था, आपको मैं छोटा भाई मानता हूँ और बड़े भाई से आप जब चाहें, जो भी कार्य हो, निःसंकोच कहें, सब पूरा होगा। हम सबको छात्रों के हित में विभाग का कार्य मिल जुल कर करना है। खूब पढ़िये और पढ़ाइये। जहाँ कहीं बाधा पड़े, मुझसे पूछिये।

डा० किशोरी लाल गुप्त के प्रथम एक दो वाक्यों से मुझे जरूर झटका लगा किन्तु जैसा उन्होंने कहा था कि यह तो मनोरंजन मात्र था, तो सचमुच ये वाक्य मनोरंजन ही के थे। उन्होंने जो मुझे छोटा भाई होने का आश्वासन दिया था, उसे किस हद तक निभाया, इस प्रसंग में यह चर्चा अति आवश्यक हैं। डा० किशोरी लाल गुप्त सन् १९६२ में प्राचार्य पद को सुशोभित करने हिन्दू डिग्री कालेज, जमानियाँ, गाजीपुर चले गये। उनके स्थान पर हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर मेरी पदोन्नति की गई। समय बीतता गया। सन् १९७० से स्नातकोत्तर कक्षाओं को खोलने और पी-एच० डी० की उपाधि लेने की होड़ सी लग गई। सन् १९७० में शिब्ली नेशनल कालेज में भी हिन्दी विभाग, स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन कार्य करने लगा। स्नातकोत्तर स्तर पर विभाग के अध्यक्ष के लिए रीडर एवं अध्यक्ष पद पर चुनाव होने लगा, जिसके लिये पी-एच० डी० होना और साथ ही एम० ए० कक्षाओं के अध्यापन अनुभव का होना अनिवार्य था, किन्तु विश्वविद्यालय-स्तर से स्नातक-स्तर के कार्यरत विभागाध्यक्षों के लिये छूट थी, जिसका लाभ स्नातक-स्तर के विभागाध्यक्षों को मिलने लगा।

मेरे कालेज में १९-१२-७१ को रीडर एवं अध्यक्ष पद के चुनाव के लिए तिथि निश्चित थी। गोरखपुर विश्वविद्यालय से तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० गोपीनाथ तिवारी, चुनाव पेनल के विशेषज्ञ थे। डा० तिवारी पी-एच० डी० पर विशेष बल देते थे। मैंने तब तक पी-एच० डी० पूर्ण नहीं किया था। शोध कार्य परम आदरणीय डा० रामचन्द्र तिवारी के निरीक्षण में चल रहा था। इधर प्राचार्य शौकत सुल्तान ने मुझसे खुले शब्दों में कहा कि 'राय साहब आपको हो रीडर और अध्यक्ष होना है। अत्यधिक परिश्रम करके शीघ्र ही पी०-एच० डी० की डिग्री ले लीजिये।'

यहाँ देखना यह है कि महान् पुरुष अपनी बात निभाने के लिए कितना यत्न करते हैं और इसके लिये कैसे अपने विश्वास-पात्रों का उपयोग करते हैं। उक्त निश्चित चुनाव तिथि के लगभग दो सप्ताह पूर्व ही शौकत साहब ने डा० किशोरी लाल गुप्त, पी-एच० डी० एवं डी० लिट०, प्राचार्य हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ गाजीपुर को सूचित कर दिया था कि वे भी शिब्ली कालेज के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष पद के चुनाव हेतु अभ्यर्थी रूप में प्रार्थना-पत्र दे दें। चुनाव के समय पी-एच० डी० डिग्री के अभाव में यदि रामपतिराय शर्मा न चुने जा सकें, तो डा० गुप्त ही चुन लिये जायेंगे, क्यों कि वे पी-एच० डी० ही नहीं डी० लिट० भी हैं। डा० गुप्त के चुन लिये जाने पर, द्वितीय स्थान पर राय साहब का चुनाव हो जायेगा।

डा० गुप्त को ज्वाइन करना नहीं है। अतएव कुछ प्रतीक्षा के बाद राय साहब को अर्थात् मुझे द्वितीय स्थान पर होने के नाते ज्वाइन करा दिया जायेगा। इस प्रकार राय साहब रीडर एवं अध्यक्ष हो जायेंगे। डा० कन्हैया सिंह रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग डी० ए० वी० महाविद्यालय आजमगढ़ ने भी मेरे लिये अपने ढंग से पहल की थी।

'जहाँ चाह वहाँ राह' की कहावत कैसे अक्षरशः चरितार्थ हुई, देखते ही बनता है। रीडर एवं अध्यक्ष पद हेतु चयन प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही सर्व प्रथम डॉ० किशोरी लाल गुप्त (प्राचार्य हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ, गाजीपुर) साक्षात्कार हेतु बुलाये गये। इसके बाद मेरा नम्बर आया। मैंने भी साक्षात्कार में पूछे गये प्रश्नों का संतोष-जनक उत्तर दिया। कार्यरत विभागाध्यक्षों के लिये कुछ विशेष छूट जो विश्वविद्यालय गोरखपुर की तरफ से मिली थी, उसी छूट के आधार पर पेनल विशेषज्ञ डॉ० गोपी नाथ तिवारी ने डॉ० किशोरी लाल गुप्त से कहा कि 'गुप्त जी, आप डी० लिट० अवश्य हैं किन्तु, स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्यापन का अनुभव आपके पास नहीं है, दूसरे इस समय आप शिब्ली कालेज के कार्यरत विभागाध्यक्ष भी नहीं हैं। आप बाहर से आये अभ्यर्थी हैं, इसलिये विश्वविद्यालय प्रदत्त छूट का लाभ आपको न मिलकर श्री रामपति राय शर्मा को मिलेगा, जो इस समय न तो पी-एच० डी० हैं और न उनके पास स्नातकोत्तर-कक्षाओं के अध्यापन का अनुभव ही है। इस समय कार्यरत विभागाध्यक्ष होने के नाते शिब्ली नेशनल-कालेज के स्नातकोत्तर स्तर के हिन्दी विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष पद पर श्री रामपतिराय शर्मा का चयन होगा, डॉ० गुप्त का नहीं हो पायेगा। इतना सुनते ही डाँ० गुप्त ठहाका मार कर हँसने लगे, और रोम-रोम से नैसर्गिक प्रसन्नता उमड़ पड़ी। डॉ० तिवारी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि निर्णय अपने विपक्ष में होने पर ऐसी प्रसन्नता और सहज प्रफुल्लता क्यों? उधर प्राचार्य शौकत सुल्तान अलग ही विशेष प्रसन्न मुद्रा में थे। पेनल विशेषज्ञ डॉ० गोपीनाथ तिवारी को यह पहेली समझ में नहीं आई, और उन्होंने डॉ० गुप्त से पूछ ही दिया कि चुनाव का निर्णय अपने विपक्ष में होने पर भी आप इतने प्रसन्न क्यों हैं? तब डॉ० गुप्त ने गुप्त रहस्य का रहस्योद्घाटन करते हुये कहा कि यह सब प्राचार्य शौकत सुल्तान की लीला है। उन्होंने मुझे अभ्यर्थी रूप में राय साहब (रामपतिराय शर्मा) की रक्षा के लिये आमन्त्रित किया था; और उस कार्य को आपने स्वयं कर दिया। यही मेरी हार्दिक प्रसन्नता का कारण है कि जिस कार्य के लिये मैं निमित्त रूप था, उसे आपने सहज ढंग से कर दिया। इससे बढ़ कर मेरे लिये प्रसन्नता क्या होगी? एक ओर राय साहब मेरे छोटे भाई के रूप में हैं और दूसरी ओर शौकत साहब का आदेश। एक ही साथ दो-दो कार्य हुए। इतना ही नहीं मैनेजर की हैसियत से श्री इम्तेयाज अहमद (वरिष्ठ एडवोकेट) भी इसी कार्य को तहेदिल से चाहते थे। डॉ० तिवारी को डाँ० गुप्त द्वारा प्राचार्य शौकत सुल्तान और मैनेजर श्री इम्तेयाज अहमद के ऊँचे विचारों को जानकर महान आश्चर्य हुआ और

उन दोनों ही अधिकारियों के प्रति उनके मन में सहज ही श्रद्धा उत्पन्न हो गई, जो वास्तविक रूप में मानवता की पुकार थी।

प्राचार्य शौकत सुल्तान मेरे पक्ष मे निर्णय होते ही डॉ० गुप्त को साथ लेकर अपने कक्ष से बाहर आ गये और खुले शब्दों में डॉ० गुप्त से कहने लगे—'आज मेरी ख्वाहिश पूरी हो गई कि राय साहब रीडर-हेड चुन लिये जांय। वे चुन लिये गये। यही मेरी चाह थी।'

इस प्रकार यह प्रमाणित हो गया कि डॉ० गुप्त किसी का भला करने के लिये अपने सम्मानित स्थान से नीचे उतरने में भी हिचकते नहीं हैं—एक डिग्री कालेज का प्राचार्य एक विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष पद के लिये अभ्यर्थी होने का स्वाँग करे, क्या यह अपने स्तर से नीचे आना नहीं है? सच है परोपकार के मार्ग में स्तर के ऊँचे नीचे होने की भावना बाधक नहीं होती। महानता का यही लक्षण है।

डा० किशोरी लाल गुप्त मानवीय गुणों से अधिकाधिक संपन्न हैं। कवि के रूप में उनका स्थान विशेष महत्व का है। ब्रज भाषा काव्य के रचयिताओं में जीवित कवियों में उनका प्रमुख स्थान है। प्रसाद की कामायनी स्वतः क्लिष्ट है। उसका अंग्रेजी काव्य के रूप में अनुवाद डा० गुप्त के यश, ख्याति और विद्वत्ता की चरम सीमा है। प्रसाद के ही शब्दों में डा० गुप्त के अथक प्रयासों की सीमा नहीं है—

इस जीवन का लक्ष्य नहीं है,
श्रान्त भवन में टिक रहना।
बढ़ते चलना उस सीमा तक,
जिसके आगे राह नहीं॥

ड० गुप्त के शोध कार्य को देखते हुए प्रसाद जी के विचार सटीक चरितार्थ हो रहे हैं। उनके शोध प्रबन्धों के अतिरिक्त, हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी गहन शोध की शृंखला ज्वलन्त प्रमाण है। आलोचना के क्षेत्र में आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने भी इनको मान्यता दी है। जगह-जगह श्रम-साध्य लेखों की सराहना भी की है।

हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं पर इनका प्रबल अधिकार है। इनका गंभीर ज्ञान अथाह सागर की तरह इन्हें शान्त और संयत रखता है। कोई ज्ञान-पारखी ही इनके गंभीर ज्ञान को उद्वेलित कर लाभ उठा सकता हैं। इनमें दिखावा रंचमात्र नहीं है। इनका भाषा संबन्धी ज्ञानगांभीर्य पूरे जन समूह के समक्ष सहसा उमड़ कर कैसे वेग से प्रवाहित होने लगा, इसके पीछे एक चुनौती है उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर वी० वो० गिरि के आजमगढ़ आगमन पर कला-भवन में उनके अंग्रेजी भाषण का तत्काल हिन्दी रूपान्तर करना। अधिकारी वर्ग की दृष्टि जनपद के विद्वानों की ओर

मुड़ी, किन्तु कोई हल न निकला। प्राचार्य शौकत साहब के यहाँ बार-बार फोन आने लगा। कोई विकल्प नहीं मिला। शौकत साहब ने अन्त में डा० किशोरी लाल गुप्त को बुलाया और पूरे जनपद के समक्ष ललकार भरी प्रस्तुत चुनौती को सुनाया। डा० गुप्त का साहस गरज उठा। उन्होंने चुनौती को स्वीकार कर लिया। जनपद के अधिकारी वर्ग में हर्ष की लहर लहरा उठी। सभा में उपस्थित विद्वानों को मुख्य अतिथि रूप में पधारे गवर्नर महोदय के अंग्रेजी भाषण को सुनने की उतनी अभिलाषा और जिज्ञासा नहीं थी, जितनी उस व्यक्ति को, उस मेधावी पुरुष को देखने के लिये थी, जो गवर्नर के अंग्रेजी भाषण को तुरन्त हिन्दी भाषा में प्रवाह के साथ रूपान्तरित करने के लिये मंच पर खड़ा था। सच पूछिये तो पूरे मंच की गरिमा, जनपद की गरिमा, उसी एक व्यक्ति से थी। उस व्यक्ति विशेष को डा० किशोरी लाल गुप्त के नाम से जाना जाता है, जिसने शिब्ली नेशनल कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद को गौरवान्वित करते हुये उसमें चार चाँद लगा दिया, जिससे शिब्ली कालेज और प्राचार्य शौकत सुल्तान दोनों ही धन्य हो उठे। शिब्ली कालेज की वह ऐतिहासिक देन आज भी लोगों को स्मृति दिला कर कालेज के प्रति श्रद्धाभाव से नत कर देती है। उस दिन स्वर्गीय अल्लामा शिब्ली नोमानी की आत्मा भी आह्लादित हुई होगी, इसमें सन्देह नहीं।

डा० गुप्त मानवीय गुणों के आगार हैं। कवि के रूप में मंच पर जाने के लिए उन्होंने कभी सौदा नहीं किया। जब कि ऐसा प्रायः होता है। ब्रजभाषा के कवियों में उनका स्थान हैं। भौतिक वैभव और प्रशासनिक तामझाम से सदा दूर रहे। एक बार समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्री विश्राम राय की ओर से नगर पालिका आजमगढ़ के सदस्य रूप में निर्विरोध रूप में चुने जाने का प्रस्ताव उनके सामने आया, उन्होंने नम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

डा० गुप्त प्रलोभन और झूठी मान-मर्यादा से सदा दूर रहे। साहित्य क्षेत्र ही उनका साधना-स्थल रहा। शिब्ली कालेज में रहते, या कालेज से बाहर सफर में, मेले मैं, बाजार में, स्टेशन पर, बड़े शहरों के गुदड़ी बाजारों में—जहाँ कहीं भी कुछ काम लायक उपयोगी पुस्तक पाते, अपने ही पैसे से खरीद लेते, और कालेज पुस्तकालय में डाल देते, पैसा भले ही बाद में मिलता था। वे पुस्तकालय को ज्ञानोपयोगी पुस्तकों से भरना भली भाँति जानते थे। आज भी शिब्ली कालेज के हिन्दी विभाग का पुस्तकालय उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप, उसी पद्धति पर निरन्तर चल कर, पूरे कालेज में अपना विशेष स्थान रखता है।

डा० गुप्त पढ़ने के लिये पढ़ते हैं। साधना ही उनका साहस है। अध्ययन के प्रति निरन्तर जिज्ञासु भाव रखना उनके व्यक्तित्व की अद्भुत विशेषता हैं। ऐसे महान व्यक्तित्व के संपर्क में लगभग १० वर्ष निरन्तर रहने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह

सही अर्थ में मेरे जीवन का भाग्य-सूचक था। इनकी अगाध विद्वत्ता और असीम सरलता देख कर आचार्य गुरुवर केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डा० भगवती प्रसाद सिंह और डा० रामचन्द्र तिवारी स्मरण हो आते हैं। उनका मुझपर सदैव छोटे भाई का सा स्नेह रहा। मैं आजीवन उनका कृतज्ञ हूँ, आभारी हूँ, और हूँ सतत अनुगृहीत।

रामपति राय शर्मा
भू० पू० रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
शिब्ली नेशनल कालेज, आजमगढ़।

८. आजमगढ़ के मेरे साथी डा० गुप्त

श्री किशोरी लाल गुप्त (अब डाक्टर किशोरी लाल गुप्त) से १९४८ के पूर्व मेरा कोई भी परिचय नहीं था। अनजाने उनको शिवली नेशनल कालेज, वाजमगढ़ लाने में मेरी तुच्छ सी भूमिका थी। १९४८ के बीच सत्र में डिग्री कालेज के लिये हिन्दी विभाग के अध्यक्ष की आवश्यकता पड़ी। प्राचार्य वशीर अहमद सिद्दीकी ने सभी प्रार्थना पत्र देखने के बाद मुझसे राय ली और कहा कि एक अभ्यर्थी मेरी अपनी स्टेट (बनारस स्टेट) का है, जो फिरोजावाद में अँग्रेजी की प्रवक्ता है, उसको बुलाऊँ तो कैसा रहेगा। मैंने अपनी सहमति दी और यह भी कहा हिन्दी लिटरेचर के लिए अँग्रेजी लिटरेचर का ज्ञान अच्छा रहेगा। अभ्यर्थी हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों में M. A. हैं। मैं टाइम टेबुल बनाने में प्राचार्य की सहायता किया करता था। इस नाते कालेज में बीच-बीच में प्राचार्य से भेंट हुआ करती थी और वह अक्सर मुझे बुला लिया करते थे।

किराये का मकान भी जो गुप्त जी ने लिया, वह मेरे मकान से केवल पचास गज की दूरी पर था। कोट के चौराहे से उत्तर पूर्व वाली पटरी पर गुप्त जी का मकान था और पश्चिम पटरी पर थोड़ा और उत्तर की ओर मेरा मकान। गुप्त जी के मकान के ठीक सामने पश्चिम पटरी पर एक दर्जी का मकान था, जो बहुत ही सोधा तथा शरीफ था।

कालेज से २ बजे के बाद गुप्त जी घर पर आ जाते थे और अपना लिखने का काम ५ बजे शाम तक जारी रखते थे। यों कालेज जाने के पहले भी दस बजे दिन तक लिखने का काम करते थे। मैं छुट्टियों मे तो २ बजे दिन से ही तथा अन्य दिनों ४ बजे शाम के बाद गुप्त जी के धर पर आ जाया करता था। नित्य ५ बजे शाम को मैं श्री गुप्त जी के साथ बाजार सब्जी वगैरह खरीदने जाया करता था। किसी रोज कन्हैया लाल गुप्त, किसी रोज विश्वनाथ लाल 'शैदा', किसी रोज विजय नारायण सिंह मन्त्री हरिऔध कलाभवन, किसी रोज गुरु भक्त सिंह भक्त, किसी रोज दान बहादुर सिंह सूँड़ इत्यादि

के यहाँ साहित्य-चर्चा तथा कवि-गोष्ठी के लिये जाया करते थे और आठ नौ बजे तक घर आते थे। मैं स्वयं न तो कवि ही था, न साहित्य-मर्मज्ञ, किन्तु श्री गुप्त के साथ मैं भी थोड़ा बहुत रस ले लेता था। महीने में जब बड़ी कवि गोष्ठी होनी होती थी, तब हम लोग घर से खा पीकर जाते थे।

श्री गुप्त जी अधिकतर ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। उन्होंने शम्पा, राधा, श्यामा इत्यादि कविता पुस्तकों का नामकरण अपनी लड़कियों के नाम पर किया है। हिन्दी में गद्य की बड़ी-बड़ी पुस्तकें भी लिखी हैं, जो एम० ए० क्लास के विद्यार्थियों के लिये तथा शोध करने वाले छात्रों के लिये उपयोगी है। शिब्ली कालेज ही में रह कर श्री गुप्त ने पी-एच० डी० की उपाधि तथा बाद में डी० लिट० की उपाधि ली। श्री गुप्त बहुत ही सामाजिक थे। आजमगढ़ जिले तथा दूसरे जिलों के बहुत से अध्यापकों तथा छात्राओं ने एम० ए० (हिन्दी) इन्हीं की प्रेरणा तथा सहायता से किया, क्योंकि गुप्त जी जब तक शिबली कालेज मे रहे, तब तक यहाँ कोई पोस्ट ग्रेजुएट कालेज नहीं था। शिबली नेशनल कालेज में पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई १९७० से शुरू हुई। गुप्त जी इसके बहुत पहले ही १९६२ में हिन्दू डिग्री कालेज जमानिया (गाजीपुर) में प्राचार्य पद पर चले गये थे।

मैं जब गुप्त जी के घर पर जाता था, तब कभी-कभी हल्की फुल्की बातें भी हो जाती थीं। कभी-कभी हमलोग छुट्टियों में पिकनिक पर कार्तिक के महीने मे आँवला वृक्ष के नीचे मिलकर भोजन बनाते खाते थे।

शिबली कालेज से श्री गुप्त जी के जमानिया जाने के बाद शादी व्याह इत्यादि मौकों पर ही भेंट होती थी। १९६४ मे मेरे बड़े पुत्र ज्ञानप्रकाश के विवाह मे श्री गुप्त तथा 'शैदा' जी सोंढ़री बरात में गये। बरात में रात्रि में जब नाचने गाने वालों ने शिव विवाह तथा जानकी मङ्गल गाना शुरू किया, तब सभी बराती खास कर 'शैदा' जी तथा गुप्त जी झूम उठे।

गुप्त जी कार्तिक पुर्णिमा का स्नान प्रायः दोहरी घाट या बड़हलगंज में सरयू में किया करते थे। इस अवसर पर वे एक दिन पहले मेरे गांववाले घर पर रात्रि-वास करते थे। हम लोग कभी-कभी गोविंद साहब, दुर्वासा मेले में भी जाया करते थे। गुप्त जी को घूमने का शौक रहा है और इस शौक की पूर्ति प्रायः मेले ठेले में हुआ करती थी।

मुझे गर्व है कि डा० गुप्त जैसा सौम्य विद्वान मेरा मित्र है। मैं उनके स्वस्थ एवं सक्रिय जीवन को कामना करता हूँ।

बाबूराम राय
अवकाश प्राप्त रीडर तथा अध्यक्ष गणित विभाग
शिबली नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
आजमगढ़

९. आजमगढ़, डा० गुप्त और मैं

डा० किशोरीलाल गुप्त पूर्व प्राचार्य हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ (गाजीपुर) के निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर मुझे तब मिला, जब मैं २३-१०-५६ को शिबली नेशनल कालेज आजमगढ़ में भौतिक विज्ञान का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। डा० गुप्त उस समय उसी कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। कुछ माह व्यतीत होने पर मैं उन्हींके मुहल्ले में रहने लगा। तब तो सायंकाल प्रतिदिन हम लोग साग सब्जी का झोला लटका कर निकल जाते थे और देवी-दर्शन कर कभी वैद्य जी (शिव शंकर पांडेय) कभी शैदा जी, कभी हरिऔध कला भवन के महामंत्री विजय नारायण सिंह और कभी भक्त जी (गुरु भक्त सिंह भक्त) के यहाँ पहुँच जाते थे। कभी कभी सूंड जी से भी मुलाकात हो जाती थी। माह में एक बार साहित्यिक गोष्ठी या तो हरिऔध कला भवन में या भक्त जी के यहाँ या श्री कन्हैयालाल वकील के यहाँ हो जाती थी। कभी-कभी ये विद्वान लोग मेरे यहाँ भी एकत्र होकर कवि-गोष्ठी करते थे। मैं तो विज्ञान का शिक्षक, स्वभावतः अपने ही विषय और खेलकूद में व्यस्त रहने वाला व्यक्ति था। किन्तु डा० गुप्त ने मेरे अन्दर भी साहित्यिक अभिरुचि पैदा कर दी और मैं अच्छा श्रोता बन गया। इन महानुभावों के सौजन्य से मुझे हल्दीघाटी के रचयिता पं० श्याम नारायण पाण्डेय और महापंडित राहुल सांकृत्यायन के भी दर्शन हुये और उनके पास बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्हीं दिनों श्री कृपा नारायण श्रीवास्तव आई० ए० एस० जिलाधिकारी थे। उन्हें भी डा० गुप्त ने और उनके समुदाय ने हरिऔध कला भवन का शुभेच्छु बना दिया। थोड़े ही समय में उन्होंने डी० ए० वी० डिग्री कालेज आजमगढ़ की नींव डलवाई और वहाँ से जिलाधिकारी इटावा होकर चले आये। यहाँ भी आकर उन्होंने के० के० कालेज की स्थापना की सक्रिय भूमिका निभाई, जहाँ मैं १९६६ से १९८७ तक प्राचार्य रहकर रिटायर हुआ। डा० गुप्त, मैं और प्रो० बाबू राम राय एक ही मुहल्ले में रहते थे और अक्सर सायंकाल को मिलते अवश्य थे। वहीं प्रो० कृष्ण कुमार मिश्र भी रहते थे।

डा० गुप्त ने मेरे उग्र स्वभाव को बहुत कुछ विनम्र बनाने का प्रयास किया, जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। जब मैं १९६१ में तिलक राष्ट्रीय महाविद्यालय कटनी (म० प्र०) का प्राचार्य नियुक्त हुआ, तब डा० गुप्त ने मुझे सफलता के कुछ मूलमन्त्र बताये। उनमें एक यह भी था—प्रो० सिंह प्रिंसिपल बनने का यह मतलब नहीं कि अध्ययन और अध्यापन से मुक्ति पा ली जाय। डा० गुप्त का यह मंत्र मैं रिटायर-मेन्ट तक पढ़ता रहा। वह स्वयं भी प्राचार्य-काल में अध्यापन करते रहे और साथ-साथ

अपने लेखन-कार्य को भी चलाते रहे। यह लेखन-कार्य प्राचार्य बनने के बाद प्रायः समाप्त ही हो जाता है। मैं एक बार सन् १९७०-७१ में जमानियाँ गया और डा० गुप्त के साथ दो दिन ठहरकर उनकी कार्य-प्रणाली, प्रशासनिक क्षमता और दैनिक कार्य-क्रमों से प्रभावित हुआ। एकबार मेरे और प्रबन्ध-तंत्र के बीच विवाद हुआ। मैंने डा० गुप्त को लिखा तो उन्होंने मुझे चेतावनी दी कि यह मेरा आदेश, संदेश और निर्देश है कि ....। फलतः मैं उस समय तो बला टाल ले गया। जब कभी डा० गुप्त को मथुरा वृन्दावन आना हुआ अथवा किसी कार्य से आगरा विश्व विद्यालय आना हुआ, तब उन्होंने मेरे ऊपर स्नेह रखने के कारण इटावा अवश्य ही रुकना चाहा। यह अवसर उन्हें ३-४ बार मिला। वैसे पत्र-व्यवहार तो प्रायः होता ही रहता है। और मुझे छोटा भाई मानते हुये समय समय पर मेरी कठिनाइयों में वे मेरी सहायता करते रहे हैं।

प्राचार्य बन जाने के बाद भी जब कभी मुझे मुशायरा सुनने, कवि सम्मेलन देखने और किसी वृहद समारोह में जाने की इच्छा हुई, तब मैंने स्टेज पर अथवा V. I. P. में बैठने के बजाय पीछे सामान्य जनता मैं बैठना या खड़ा होना पसन्द किया और निस्संकोच भाव से जब तक चाहा सुना और जब चाहा खिसक लिया। व्यर्थ के सम्मान का आकांक्षी मैं नहीं रहा। यह सब डा० गुप्त के संपर्क का फल है। डा० गुप्त को मैंने आडंबर रहित पाया और उनके इस गुण का भी अनुकरण किया। डा० गुप्त का आदर्श सादा जीवन और उच्च विचार है। मैं भी डा० गुप्त की भाँति एक self made man हूँ। फर्क इतना ही है कि मैं तो प्राचार्य बनकर रिटायर हो गया और लोग मुझे भूल जायेंगे, लेकिन डा० गुप्त प्राचार्य बनकर रिटायर हो जाने के बाद भी अपनी साहित्यिक कृतियों के बल पर अमर रहेंगे।

डा० गुप्त को हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य पर समान अधिकार प्राप्त है। महामहिम वी० वी० गिरि जब गवर्नर थे, तब आजमगढ़ पधारे। उनका भाषण अंग्रेजी में होना था। उस समय आजमगढ़ में कोई दुभाषिया जो गर्वनर की अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर कर सके, उपलब्ध नहीं था। हमारे प्राचार्य मिर्जा शौकत सुल्तान ने डा० गुप्त को आग्रह करके भेज दिया। उस समय मैंने और अनेक प्रबुद्ध विद्वानों ने डा० गुप्त की उस अद्वितीय प्रतिभा की भूरि भूरि प्रशंसा की। आजमगढ़ के सभी नागरिकों ने जो सम्मान डा० गुप्त को दिया, वह अविस्मरणीय है। शिबली कालेज को भी वैसा गर्व का अनुभव कभी नहीं हुआ था।

अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम रखने वाले, साहित्य की साधना में अनवरत संलग्न, मनस्वी डा० किशोरी लाल गुप्त के सुखी दीर्घ जीवन की मैं कामना करता हूँ।

प्रो० वद्री प्रसाद सिंह
भूतपूर्व प्राचार्य के० के० कालेज
इटावा

१०. डा० किशोरी लाल गुप्त, संस्मृतियों के आईने में

विद्याधर "मंजु"

इकहरा-छरहरा सुगठित शरीर, शुभ्र-सुशोभित भाल पर मर्यादा की कतिपय रेखाएँ, विद्वत्ता विषय-बोध की खिड़कियों से झाँकती हुयी आँखें, सौम्य और सहज स्वभाव, शालीनता, सहजता की सरल मूर्ति, ऐसे कुछ और बनता है डा० किशोरी लाल जी गुप्त का सरल व्यक्तित्व। सरल, सहज जीवन, कृत्रिमता से दूर, एक दम स्वाभाविक। बनावट, दिखावट को कहीं भी स्थान नहीं। खुला हृदय, जैसे कोई खुली हुई पुस्तक, सुहास से युक्त मुखमण्डल, अधरों पर स्मिति की झिलमिलाती आभा को आँखमिचौनी आदि। आप जब भी इनसे मिलिए, आपको अपने अपनत्व के स्नेह-बन्धन में बाँधे बिना नहीं रहेंगे।

डा० साहब से, आजमगढ़ के शिबली नेशनल डिग्री कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष के पद पर, कार्य-रत रहकर, स्वतंत्र भारत की भावी पीढ़ी का नव-निर्माण करते समय ही, इन पंक्तियों के लेखक का प्रथम-परिचय हुआ, जो आन्तरिकता एवं प्रगाढ़ता में परिणत हुआ। मंजु को 'मंजु' बनाने में डा० साहब का विशेष हाथ था। मुझे ये बहुत स्नेह देते रहे हैं और आज भी इनका स्नेह मेरे ऊपर बराबर बना हुआ है।

काशी की धरती से उपजा यह व्यक्तित्व, आजमगढ़ की गलियों में रच-बस गया था। १९४८-६२ के आजमगढ़ के साहित्यिक इतिहास पर दृष्टि जाते ही, जहाँ ठहर सी जाती है, वह-स्थान डा० किशोरी लाल जी गुप्त का ही रहा है। इन्होंने अपने उस समय के सफर को बड़ी शालीनता और सरलता से तै किया है। 'भक्त गोष्ठी' के वे एक अनमोल रत्न रहे। उस गोष्ठी के समस्त सदस्य, जैसे भारतीय-संस्कृति के अमर गायक स्व० श्री विश्वनाथ लाल जी 'शैदा,' डा० किशोरी लाल जी गुप्त, हास्य-रसावतार श्री "सूंड़" फैजाबादी, श्री जामी चिरैयाकोटी, महातमराय विनोद, शतानन्द उपाध्याय, हरिहर पाठक, सौहन, शिवप्रसाद शर्मा "अम्बु" आदि राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित भावना से दत्त-चित्त रहा करते थे। भक्त गोष्ठी के मन्त्री श्री शिवशंकर वैद्य की दूकान पर प्रति सन्ध्या बैठक हुआ करती। डा० किशोरी लाल जी तुरन्त अपनी रचनाएँ सुनाने लगते थे। फिर बारी-बारी से सभी सदस्य अपनी रचनाएँ सुनाते थे। कोई उस गोष्ठी का संचालक नहीं बनाया जाता था। सब लोग

स्वतःचालित हो जाते थे। बड़ा आनन्द था। गोष्ठी के मूर्धन्य सदस्य भक्त जी, शैदा जी, डा० साहब, 'सूँड़' जी, डा० कन्हैया सिंह जी, श्री मुखराम सिंह जी ने एक नीति निर्धारित कर रक्खी थी कि राष्ट्रभाषा के प्रचार और प्रसार के निमित्त जनपद के ग्रामीण इलाकों में भी कवि-सन्मेलन आयोजित किए जायँ। 'सूँड़' जी सम्मेलनों के मुख्य संयोजन कर्त्ता और संचालक थे। उनके पास आवेदन आते और निश्चित तिथि पर 'गोष्ठी' वहाँ जाती, रस-वर्षा करती और रात में ही पुनः सब नगर लौट आते। बड़ा अपनत्व था।

यों तो डा० साहब ने और कई विद्यालयों में अपनी सेवाएँ दी थीं, किन्तु यदि मैं यह कहूं कि वास्तविक रूप से आजमगढ़ ही उनका साधना-स्थल रहा, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यहीं पर उनकी कविता की तीन रचनाएँ—'शम्पा' खड़ी बोली के एक सौ इक्यावन कवित्त सवैयों का संग्रह, 'श्यामा' छियासी चतुर्दशपदियों का संग्रह तथा 'राधा' व्रजभाषा का खंड-काव्य--प्रकाश में आई। यों तो साहित्य के सभी रूपों, गीत-काव्य, खण्डकाव्य, नाटक, कहानी, गद्य काव्य, निबन्ध, टीका, समीक्षा, अनुवाद आदि में उन्होंने अपने श्रद्धा-सुमन माँ 'भारती' को चढ़ाए, किन्तु उन्होंने आजमगढ़ में समीक्षा तथा शोध पर आश्चर्यजनक कार्य किया। साहित्य के आदिकाल से लेकर वर्तमान काल के साहित्यकारों के ऊपर शोध-कार्य करके आपने ठोस निर्णय दिए। अधिकतर विवादास्पद समझे जाने वाले विषयों पर उन्होंने अपने निर्णायक निबंध हरिऔध पत्रिका में प्रकाशित किये। साहित्य जगत ने इन्हें देखा और सराहा। अधिकतर ऐसे शोध-निबन्ध वे "ग्रंथकीट" के नाम से ही लिखा करते थे। वे 'हरिऔध' पत्रिका के सम्पादक थे और उसमें ये शोध-निबन्ध प्रकाशित होते रहते थे।

जिस समय किसी कवि-सम्मेलन के मंच पर वे अपना काव्य-पाठ 'राधा' के इस छंद से प्रारम्भ करते कि 'बाछरू की रसी लै कर एक में', तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूंज उठता था। लगता था कि जैसे व्रज-प्रदेश का ही कोई रस-सिद्ध कवि, डा० साहब के रूप में अवतरित हो आया है। कहना यह चाहता हूँ कि जहाँ एक ओर इन्होंने खड़ी बोली में अधिकार पूर्वक लिखा, वहीं व्रजभाषा पर भी इनका पूर्ण अधिकार था। इसमें संदेह नहीं कि ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं।

आजमगढ़ में रहते हुए; इन्होंने जहाँ समर्पित भावना से साहित्य-सेवा की, वही वे संशोधन-परिमार्जन कर्त्ता भी थे। आजमगढ़ के किसी भी कवि की, कोई नयी रचना यदि प्रकाशन चाहती थी, तो उसे पहले डा० किशोरी लाल जी के समक्ष प्रस्तुत होना पड़ता था। वे उसमें आवश्यक संशोधन-परिमार्जन तो करते ही थे, अपनी सम्मति भी दे दिया करते थे।

आज मैं उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ संस्मरण देता हूँ, जो कदाचित आप को भी भले लगें।

अनुवाद के लिए जब कोई भी तैयार नहीं हुआ

आजमगढ़ के हरिऔध-कला-भवन में, तत्कालीन राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि, (जो बाद में राष्ट्रपति के भी पद पर आरूढ़ हुए थे) का भाषण था। जिले की समस्त प्रशासनिक इकाइयों के प्रतिनिधि, साहित्यकार, पत्रकार, विद्वान, मनीषी एकत्र थे। उनके अंग्रेजी भाषण के हिन्दी रूपान्तर के लिए एक सुयोग्य व्यक्ति की तलाश थी। कोई भी अपने मन से तैयार नहीं हुआ। तब लोगों ने डा० किशोरी लाल गुप्त से निवेदन किया कि जिले के सम्मान का प्रश्न है और आनाकानी करते हुए भी इन्हें निवेदन स्वीकार करना पड़ा। कला-भवन में दो माइक लगाए गए। एक पर श्री वी०वी० गिरि जी तथा दूसरे पर शिबली नेशनल डिग्री कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० किशोरी लाल जी गुप्त खड़े हुए। गिरि जी का भाषण प्रारम्भ हुआ। वे अपने टंकित भाषण का एक-एक वाक्य पढ़ते जाते थे, डा० साहब साथ-सथ हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत करते जाते थे। प्राय: एक घंटे के भाषण का हिन्दी रूपान्तर तत्काल सफल और सुचारु रूप से करके डा० किशोरी लाल जी ने आजमगढ़ की नाक रख ली। भाषण की समाप्ति पर सर्व प्रथम श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा "वेल, वंडरफुल"। फिर तो बधाइयों का ताँता लग गया। बाद में एक दिन मैंने डा० साहब से पूछा "क्या आपके मन में डर नहीं था, रूपान्तर के लिए अपने को प्रस्तुत करने में ?" तो डा० साहब ने बताया 'मंजु' जी, सच बात तो यह है कि डर मुझे भी लग रहा था। मैं सोचता था कि कहीं बारह वर्षों की तपस्या इसी में भंग न हो जाय और लोगों के उपहास का पात्र न बन जाऊँ, किन्तु माँ भारती को मन ही मन प्रणाम करके जा डटा और माँ भारती ने मुझे साहस प्रदान किया। मैं सफल रहा।

जब मेरी अध्यक्षता में, महाकवियों ने कविता पाठ किया

एक बार आजमगढ़ के लालगंज इण्टर कालेज में एक वृहत कविसम्मेलन का आयोजन किया गया। डा० किशोरी लाल जी उस आयोजन के मुख्य और सक्रिय सहयोगी थे। निश्चित तिथि और समय पर भक्त-गोष्ठी के सदस्यों के अतिरिक्त, बाहर से आए कवियों ने भी उसमें भाग लिया था। कालेज के बड़े हाल में सम्मेलन की व्यवस्था थी। मंच पर कवियों के आसीन हो जाने पर अध्यक्ष का चुनाव होना था। डा० किशोरी लाल जी ने 'सूँड़' जी से कुछ संकेतात्मक बातें की। 'सूँड़' जी ने अध्यक्ष पद के लिए मेरा नाम प्रस्तावित कर दिया। तुरन्त ही डा० साहब ने उठकर हार्दिक समर्थन किया। मैं तो आश्चर्य चकित था। बड़े-बड़े दिग्गजों के रहते हुए भी एक अत्यन्त ही कनिष्ट व्यक्ति को जो अपने को साहित्यिक सुदामा समझने में भी संकोच की गन्ध पाता था, अध्यक्ष पद पर बैठा दिया। फिर भी बात खुले आम कही गयी थी।

किसीको कोई एतराज नहीं हुआ। कवि-सम्मेलन का संचालन 'सूँड़' जी ने किया, जिसमें महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त', श्री विश्वनाथ लाल जी शैदा, डा० किशोरी लाल गुप्त, सूँड़ फैजाबादी, जय कुमार मुद्गल, चन्द्रशेखर मिश्र, पं० रूपनारायण त्रिपाठी, महातमराय विनोद, हरिराम द्विवेदी आदि प्रायः पन्द्रह सोलह कवियों ने कविता पाठ किया। 'सूँड़' जी के संचालन में रात भर, चार बजे भोर तक, रस बरसता रहा और रसज्ञ श्रोता भींगते रहे। आज मैं यह कहने में कोई संकोच नहीं करूँगा कि वह कवि-सम्मेलन सफल तो रहा ही—जमा भी खूब था। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भक्त गोष्ठी के सदस्य समर्पित भावना से कार्य करते थे और स्नेह-बन्धन में बँधे रहते थे। ऐसे हैं डा० किशोरी लाल गुप्त। मैं उनका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

दोहरी घाट का एक कवि सम्मेलन

एक प्रसंग और है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वाञ्चल के जिलों के पत्रकारों का एक सम्मेलन आजमगढ़ के दोहरी घाट में हुआ। इसमें इलाहाबाद, वाराणसी, आजमगढ़ गोरखपुर, गाजीपुर, जौनपुर, बलिया आदि अन्य जिलों के पत्रकार सम्मिलित हुए थे।

समापन के दिन एक कवि-सम्मेलन का आयोजन था। उस सम्मेलन में, आजमगढ़ के साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता सभी उपस्थित थे। तत्कालीन-जिलाधीश श्री वीरेन्द्र सिंह कटारा की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। 'सूँड़' जी संचालक थे। अध्यक्ष की बगल में पं० श्याममारायण पाण्डेय और श्री गुरु भक्त सिंह 'भक्त' बैठे हुए थे। सूँड़ जी ने तीन-चार कवियों को बुलाने के पश्चात मुझे बुलाया। मेरे पहले के कवियों ने श्रृंगार परक रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। श्रोताओं में कुछ सुगबुगाहट होने लगी थी। आदरणीय "शैदा" जी ने सूँड़ जी को टोंका भी, किसी दूसरे को बुलाओ; पर तब तक मैं मंच पर जा चुका था। मैंने एक कविता पढ़ी। जब अन्तिम बन्द पढ़ ही रहा था कि डा० साहब ने तालियाँ बजाते हुए मुझे प्रोत्साहित किया और वाह वाह के नारे लगे। मैं तो हक्का-बक्का हो गया। तब तक डा० साहब ने और बाबू मुखराम सिंह जी ने एक ही साथ मुझे अन्तिम बन्द फिर से पढ़ने को कहा। मैं पढ़ने लगा—

सावधान ! शंकर भस्मासुर फिर आया कैलास पर,
उठो, त्रिशूल सँभालो, अपने दुश्मन को ललकार दो।
अभी बन्द है नयन तुम्हारा, वही तीसरा खोल दो,
मर्यादा प्रभुता त्रिशूल की, और तेज ही तोल दो।
आज जागरण की बेला है, तुम समाधि में लीन हो ?
अपने विषधर का विष लेकर, पंचशील में घोल दो।
फिर देखो अस्तित्व तुम्हारा, क्या ठुकराया जायगा ?

अभी इतना ही पढ़ा था कि डा० गुप्त पुनः ताली बजाने लगे और फिर सारा पंडाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। फिर तो जब भी कोई राजनेता या विद्वान या मुख्य अतिथि आजमगढ़ आता, मुझसे यही कविता पढ़वायी जाती रही। मैं समझता हूँ कि यह डा० किशोरी लाल जी का ही चमत्कार था कि यह कविता कितने समाचार-पत्रों ने माँग-माँग कर छापी। वाराणसी के 'आज' के व्यंग-चित्रकार श्री कांजी लाल जी ने तो इस पर अपना एक व्यंग कार्टून भी बनाया। यह अपनी प्रशस्ति नहीं है। आप अन्यथा न समझें। यह कविता चीनी आक्रमण के पहले ही सुनाई गयी थी। इसमें तत्कालीन प्रधान मन्त्री और परराष्ट्र मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू को ही लक्ष्य कर सम्बोधित किया गया था, जो पंचशील के प्रति बड़े ही आश्वस्थ थे। इतिहास गवाह है कि बाद में 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा व्यर्थ हो गया और "भाई बनि के भोंकले पिठिया में कटरिया, नजरिया भारत देसवा पै गड़ल" परिणाम से आप सभी लोग परिचित हैं।

मजाकिया मिजाज

डा० किशोरी लाल गुप्त यों तो मजाक-पसन्द व्यक्ति नहीं हैं, पर जब उन पर मजाक थोप दिया जाता था, तब वे उसका उत्तर भी सटीक और बेबाक दिया करते थे। इस प्रसंग का भी एक संस्मरण आपके सम्मुख प्रस्तुत है। डा० साहब आजमगढ़ के, कोट महल्ले में एक कोठी लेकर रहा करते थे। उनके पास दूर-दूर से लोग मिलने के लिए आते रहते थे। उनमें साधारण बात-चोत के दौरान मजाक भी चला करता था। मनोविनोदी डा० साहब अपने उत्तरों से लोगों को अधिकतर निरुत्तर कर दिया करते थे।

एक बार एक व्यक्ति ने वार्तालाप के दौरान डा० साहब से कहा, "मैं तो बेवकूफों से बात नहीं करता।" डा० साहब ने तुरन्त कहा, "मैं तो कर लेता हूँ"। उससे कुछ कहते ही नहीं बना।

एक बार १५ अगस्त के अवसर पर राजकीय सभा का आयोजन था। जिले की सभी प्रशासनिक इकाइयों के अधिकारी, साहित्यकार, पत्रकार तथा नेता आदि उपस्थित थे। एक मुंसफ क्षेत्रपाल सिंह पहले कवि भी थे। जब उनसे कविता-पाठ के लिए कहा गया, तब उन्होंने कहा, "भाई, अब तो तेली का बैल हो चुका हूँ।" डा० साहब भी निकट ही बैठे हुए थे। उन्होंने तुरन्त कहा, "मुंसफ साहब, मालिक की निंदा मत कीजिए, क्योंकि आपका मालिक आप के ही पास बैठा हुआ है।" मुंसफ साहब की क्या हालत हुई होगी, स्वतः समझ सकते हैं।

एक बार तो मैं भी उनके मजाक का शिकार बन गया, यद्यपि वे मुझे अपने परिवार के सदस्यों की तरह ही स्नेह देते थे। बात ऐसे हुयी कि जब आजमगढ़ से वे जमानियाँ हिन्दू डिग्री कालेज के प्राचार्य के रूप में जाने लगे, तब उनके सन्मान में आजमगढ़ की सभी साहित्यिक संस्थाओं द्वारा गोष्ठियाँ आयोजित की गई थीं।

उनको भाव-भीनी विदाई दी गई थी। उसी संदर्भ में, "तरुण साहित्य परिषद" द्वारा भी एक दिन गोष्ठी का आयोजन किया गया। उस दिन सबसे पहले 'मंजु' जी को ही कविता-पाठ करना पड़ा। उन्हींकी विदाई के संदर्भ की ही एक रचना मैं प्रस्तुत करने लगा। पंक्ति कुछ ऐसे थी—

'मर्यादाओं के तोरण से, शुभ्र-सुशोभित भाल !
आजमगढ़ के छोड़ 'बिरिज' को, चले किशोरी लाल !'

इतना ही पढ़ा था कि, उन्होंने तुरन्त ही फुसफुसाकर मुझसे कहा कि—"वाह 'मंजु' जी, आजमगढ़ का बिरिज" ? और किशोरी लाल छोड़ चले ? मैं कट कर रह गया, जब इनके अर्थ का मर्म समझ में आया। मौका पाकर वे कभी किसी को भी नहीं छोड़ते थे, भले हो कोई तिलमिला जाये।

एक बार ऐसी बनी कि होली के अवसर पर, मुझे आजमगढ़ के साहित्यकारों, पत्रकारों तथा कुछ नेताओं के प्रति अपने भावों द्वारा उनपर 'रंग के कुछ छींटे' डालने को कहा गया। मैंने उसे सहर्ष स्वीकार किया।

मैंने एक काल्पनिक देवता के स्थान पर, बारी-बारी से, सबको बुलवाया और 'देवता' से ही कुछ वरदान स्वरूप कहलवाया। जब डा० साहब की बारी आई, तब मुझे अवसर मिला। मैंने लिखा—

"ए सम्पादक जी ! एकरे बाद, एक मनई, पाजामा, कुरता, सदरी पहिरले, टोपी लगवले बाबा के आगे आयल। हाथ जोरि के खड़ा भयल। माथा झुकवलै, बकी बाबा तब ध्यान में लीन रहलैं, ऊ तकलैं नाहीं। ऊ मनई वैसही खड़ा रहल। जब बाबा ध्यान से जगलैं, तब पुछलैं, का चाहत बाटे ? तोरी पूजा से हम संतुष्ट हई, माँगि ले जवन चाहु। लेकिन ऊ मनई बोलल नाय। तब बाबा मुसकियाय के कहलैं कि जो, तैं जिनगी भर 'किशोरी' रहबे। बकी ऊ मनई फिर उहीं खड़ै रहि गयल। बाबा कहलैं, समझि गइली, अच्छा जो तोरे 'लालो' होई। वकी ऊ मनई फेर उहीं जमल रहि गयल। बाबा कहलैं कि अब का चाहत बाटे ? जाते काहे नाहीं, तोरी भक्ती से हम बहुत खुस हई। जो अब ई बात गुप्तै रही।"

यह मेरी घृष्ठता थी। किन्तु फिर भी उन्होंने उस होली अंक के 'संदेश' की बड़ी सराहना की। वह पूरा लेख, गाँव की भाषा में, "निठुरी भइया की अटपटी चिट्ठी" के नाम से "संदेश" में छपा था। दूसरा कोई सम्भवत. मुझे अमर्यादित कहकर भर्त्सना करता, किन्तु यह भी डा० साहब की महानता ही थी।

डा० साहब जब भी आजमगढ़ कन्हैया लाल जी वकील के यहाँ आते हैं, तब हमारे घर भी आ जाते हैं और अपनी मधुर स्मृतियों की एक छाप छोड़ जाते हैं। मैं उनके जीवन के स्वस्थ, सुखी भविष्य के प्रति प्रभु से प्रार्थी हूं। प्रभु उनको शतायु करें और वे अपनी सेवाओं से माँ भारती की सेवा करते रहें।

—आजमगढ़

११. डा० गुप्त और सम्बन्ध-निर्वाह

मत कहो यार, प्यार मुश्किल है
प्यार आसाँ, निबाह मुश्किल है

डा० किशोरी लाल गुप्त के लिये न प्यार मुश्किल है, न निवाह। लोग छोटी-छोटी बातों में सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। दो दिन पहले जिसे अपना हितैषी और परम मित्र कहते नहीं अघाते, उसीकी निन्दा करते पाये जाते हैं। मगर वाह रे किशोरी लाल गुप्त! इन्होंने जिससे भी नाता जोड़ा, जोड़ा, तोड़ा नहीं।

आजमगढ़ के इनके कुछ मित्र अब इस संसार में नहीं रहे, फिर भी अपनी मित्रता और सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुये वे उनके परिवार वालों से सम्बन्ध बनाये हुए हैं। वर्ष में एक या दो बार अवश्य ही अपने बिछुड़े हुये मित्रों के परिवार वालों से मिल लेते हैं और उनका हाल-चाल पूछ लेते हैं। आजकल के अर्थ-प्रधान व्यस्त जीवन में कौन ऐसा हैं, जो अपना समय और पैसा लगा कर अपने सम्बन्धों को इस प्रकार निभाता है। यह गुप्त जी का एक विशेष गुण है, जो अनुकरणीय हैं।

सरदारगर्दी होने पर ही अपने और पराये की सच्ची पहचान होती है। जब तक घर के मुखिया जीवित रहते हैं, तब तक तो आने जाने वालों का ताँता लगा ही रहता है, चाहे खुशी का अवसर हो या मातम का।

सरदारगर्दी होने पर अरथी उठाने के लिये भी आदमी दिखाई नहीं देते। लोगों का सम्बन्ध प्राण-पखेरू निकलते ही समाप्त हो जाता हैं। कुछ लोग तो जीवन के अन्तिम दिनों में ही अशक्त समझ कर मिलना जुलना छोड़ देते हैं।

कवि की पैनी दृष्टि जीवन की इन छोटी-छोटी घटनाओं को ओर भी जाती है और वह उन्हें वाणी दिये बिना नहीं छोड़ता। स्वर्गीय श्री विश्वनाथ लाल "शैदा" ने लिखा :—

अभी आँख आगे हूँ, इससे–
तुम भी करते याद मुझे
अभी आँख ओझल हो जाऊँ
फिर न करोगे याद मुझे
किन्तु किसी का दोष नहीं कुछ,
दुनियाँ का व्यवहार यही

तो पं० राम चरित उपाध्याय जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कहा:—

बिना बुलाये जो आते थे
जो आकर कुछ ले जाते थे
कभी नहीं आते वे भूल
जीवन की घड़ियाँ दुख मूल

यह है जीवन का कटु सत्य, जिसे नकारा नहीं जा सकता।

खैर

रहिमन विपदा हू भली, जो थोड़े दिन होय
हित अनहित या जगत में, जानि परैं सब कोय

इस परिवर्तनशील संसार में सब कुछ बदलता है, आदमी बदल जाता है, तो आश्चर्य क्या। भाव और विचार एक से नहीं रहते। मित्रता और सम्बन्ध निभाना सबका काम नहीं।

कहना न होगा कि मेरे पिता स्वर्गीय श्री विश्वनाथ लाल "शैदा" और डा० किशोरी लाल गुप्त का परिचय एक विद्वान और साहित्यकार के रूप में ही हुआ और यह सम्बन्ध दिन पर दिन गहरा होता गया।

डा० किशोरी लाल गुप्त जुलाई १९४८ में स्थानीय शिब्ली नेशनल डिग्री कालेज आजमगढ़ में हिन्दी के विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त हुये। विभागाध्यक्ष पद का निर्वाह करते हुए १९६२ में हिंदू डिग्री कालेज जमानियाँ गाजीपुर में प्राचार्य पद पर नियुक्त हो जाने पर ३० जून को आजमगढ़ छोड़ कर चले गये। वहाँ से सेवामुक्त होने पर साहित्य-सेवा और तीर्थाटन ही इनका जीवन बन गया है। इन दो कार्यों से समय निकाल कर भूली पहचान ताजी कर लेते हैं।

जिन दिनों गुप्त जी आजमगढ़ आये, उन दिनों नगर का साहित्यिक वातावरण अच्छा था। हिन्दी के दो सिद्ध-हस्त कवि नगर में ही निवास करते थे। एक थे हिन्दी के वड्सवर्थ के नाम से विभूषित महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' और दूसरे थे भारतीय संस्कृति के अमर गायक कविर्मनीषी श्री विश्वनाथ लाल "शैदा"। भक्त का श्रृंगार, शैदा का दर्शन, पाण्डेय जी का ओज और सूंड़ का हास्य नगर के काव्य मंच को सफल बनाने के लिये पर्याप्त था। साहित्यकारों में श्रद्धा, प्रेम विश्वास और व्यवहार-कुशलता का गुण विद्यमान था। लोग छोटे बड़े का भेद-भाव छोड़ कर एक दूसरे के यहाँ आया जाया करते थे। "शैदा" जी के व्यक्तित्व ने पूर्वांचल के सभी साहित्यकारों को एक सूत्र में बाँध रक्खा था। आये दिन काव्य गोष्ठियों और विचार गोष्ठियों का आयोजन हुआ करता था। विचार गोष्ठियों में साहित्यिक विधाओं पर खुल कर चर्चायें होती थीं। किसी एक साहित्य अथवा साहित्यकार के विषय में लोग अपनी अपनी विचार धारा

व्यक्त करते थे। इससे लोगों को बिना प्रयास के ही बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त हो जाती थीं। हरिऔध-कलाभवन का निर्माण भी इन्हीं दिनों हुआ।

डा० किशोरी लाल जी के आ जाने से लोगों को संशोधन कार्यों में काफी मदद मिली! गुप्त जी नवोदित साहित्य सेवियों से भी घुल मिल कर बातें किया करते थे। उन्हें भाषा व्याकरण और पिंगल सन्बन्धी दोषों की जानकारी कराते हुये अपनी राय और संशोधन देकर उन्हें ऊपर उठाने का प्रयास करते रहे। हिन्दी में 'इसलाह' की कमी है, जिसके कारण हिन्दी का उतना विकास नहीं हो सका, जितना होना चाहिये था। गुप्त जी ने इस कमी की पूर्ति करते हुये लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उनके चले जाने से यह कमी खटकती है।

पिता जी की मृत्यु के तीन वर्ष बाद १९८६ में हमने एक पत्र लिखा गुप्त जी के नाम। 'शैदा-साहित्य-मण्डल के अध्यक्ष श्री सूरत सहाय जी 'ध्रुव' की एक पुस्तक 'मानस के पाठ भेद' तैयार है। मैं चाहता हूँ कि प्रकाशन के पूर्व आप इसे देख लें और आवश्यक संशोधन भी कर दें। इस कार्य के लिये हम लोग आपके यहाँ आ जायँ या आप ही कुछ समय के लिये आजमगढ़ आ जायँ और यह कार्य कर दें। अपनी सुविधा के अनुसार समय निश्चित करें।'

पत्र पाते ही वे स्वयं चले आये और आते ही कहा, राजीव, तुम्हारा पत्र मिल गया। पत्रोत्तर देने से अच्छा समझा कि मैं स्वयं चल कर मिल लूं। इसी बहाने भेंट भी हो जायगी और पुस्तक के विषय में बात चीत भी।

मुझे लिवा कर वे सूरत सहाय जी के घर गये। वहीं तय किया गया कि पुस्तक का वाचन, विचार-विमर्ष और संशोधन का कार्य कबीर-कीर्ति-मन्दिर वाराणसी में हो। आवश्यकता होने पर आवश्यक सामग्री के साथ ही साथ अन्य विद्वान भी उपलब्ध हो सकेंगे। दिन और समय निश्चित हो गया। हम लोग आजमगढ़ से और वे अपने गाँव सुधत्रै से चल कर पहुँच गये। वहाँ शान्तिपूर्ण वातावरण में वाचन, विचार-विमर्ष और संशोधन का कार्य सम्पन्न हुआ।

वाचन और संशोधन के समय श्री शम्भू नाथ राय, बी० यच० यू०, श्री उदय शंकर दूबे, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पं० रामाचार्य पाण्डेय, महामंत्री वाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी वाराणसी और अन्य दो एक लोग होते थे। कभी कभी गणपति शंकर, प्राच्य इतिहास मन्दिर भावनगर गुजरात भी आ कर बैठते थे। वे भी इसी मन्दिर में ठहरे थे। गुप्त जी के प्रभाव से ही इन विद्वानों ने इतना समय दिया। इन लोगों से हम लोगों का पहला परिचय था।

गुप्त जी कलम लेकर बैठ जाते थे औ सस्वर पढ़ते जाते थे। सन्दिग्ध स्थानों पर रुक कर विचार-विमर्ष होता था और फिर आवश्यक संशोधन करते हुये आगे बड़ जाते थे। बीच में विश्राम, फिर वही कार्य-क्रम। दिन तो दिन, रात में भी कुछ समय तक यह कार्य क्रम

चलता था। जिस कार्य को हम लोग पन्द्रह बीस दिनों में भी सम्भव नहीं समझते थे, उसे गुप्त जी ने चार दिनों में पूरा कर दिखाया। इस अवस्था में इतना परिश्रम कर पाना उनकी साहित्य-साधना का ही फल है।

जब कभी हम लोग देर तक बैठे रह जाते, तब कबीर कीर्ति मन्दिर के महन्त जी चाय नाश्ता भेज देते। उनके यहाँ हर सुविधायें मिलीं, इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

गुप्त जी सुबह शाम थोड़ी देर टहलने के लिए निकलते थे। इसी बीच उन्होंने कई लोगों से हमलोगों का परिचय कराया, जिनमें डा० गणेश राम मल्लिक की याद बराबर आती है, वे बंगाली हैं, देवी उपासक हैं, उन्होंने देवी का भव्य मन्दिर बनवा कर ट्रस्ट स्थापित किया है और लाखों की सम्पत्ति ट्रस्ट के नाम कर दी है। गुप्त जी के साथ जब हम लोग उनके यहाँ पहुँचे, तब उन्होंने घर में चाय का आदेश दिया। परिचय कराते समय गुप्त जी ने मानस के पाठ-भेद की बात चलाई। फिर क्या था उन्होंने पन्द्रह बीस मिनट में ही राम के विषय में बहुत कुछ बताया। हमने अनेक कथा वाचकों को सुना है, परन्तु मल्लिक जी ने जिस प्रकार राम के विषय में बताया, अन्य-कथावाचकों में नहीं मिला।

कबीर कीर्ति मन्दिर में संशोधन कार्य समाप्त होने पर हमारे आग्रह पर ही गुप्त जी दो साहित्यकारों के साथ आजमगढ़ आये, एक थे पं० गणपति शंकर जी, दूसरे रामाचार्य जी।

दूसरे दिन ही "शैदा-साहित्य-मण्डल" के तत्वावधान में श्री सूरत सहाय जी "ध्रुव" की एक काव्य पुस्तक "जिज्ञासा" का प्रकाशनोत्सव था। गुप्त जी हमलोगों की जीप में ही आये, मगर ठहरे श्री कन्हैया लाल एडवोकेट के यहाँ। वे जब भी आजमगढ़ आते हैं, उन्हींके यहाँ ठहरते हैं। उन्होंने इस नियम को नहीं तोड़ा। कन्हैया लाल के बड़े भाई गुप्त जी के सहपाठी और मित्र थे।

दूसरे दिन नियत समय पर गुप्त जी ने प्रकाशनौत्सव समारोह में भाग लिया। इस अवसर पर डा० रहमत उल्लाह, डा० कन्हैया सिंह, डा० प्रशान्त, डा० रामकुमार वर्मा, ओमप्रकाश मिश्र, प्रो० मयंक, सुखनन्दन राम एडवोकेट और श्री दान बहादुर सिंह सूंड ने पुस्तक के विषय में अपने विचार व्यक्त किए। डा० किशोरी लाल गुप्त जी ने मानस के पाठ-भेद पर भी प्रकाश डाला और ध्रुव जी को आशीर्वचन देते हुये अपने शब्दों को विराम दिया। गुप्त जी का यह स्नेह, यह व्यवहार पारिवारिक सम्बन्धों की याद दिलाता है।

गुप्त जी जुलाई १९४८ से जून सन ६२ तक आजमगढ़ में रहे। इस बीच मैं कई बार उनके निवास पर गया। जब भी उनके यहाँ पहुँचा, उन्हें एक ढीले ढाले

बसखटे पर बैठ कर कुछ लिखते पढ़ते ही पाया। बसखटे के ऊपर, नीचे और चारों ओर जमीन पर अव्यवस्थित रूप से पड़ी हुई पुस्तकें और कागज के पन्ने देखे। एक बार पूछ देने पर उत्तर मिला, बार-बार पुस्तकों के लिये उठना पड़ता है। समय और परिश्रम बचाने के खयाल से मेरी सारी पुस्तकें चारपाई के इर्द गिर्द पड़ी रहती हैं। इन्हें कोई छूता नहीं।

गुप्त जी अध्ययनशील व्यक्ति हैं। इन्होंने अपनी काव्य पुस्तक "राधा" में लिखा है –

"जीवन मैं हमनै न करयो कछू
केवल साहित-राधा अराधा"

स्व० श्री विश्वनाथ लाल "शैदा" ने इस पुस्तक की व्याख्यात्मक-आलोचना लिख छोड़ी है, जो अभी अप्रकाशित है। प्रकाशित होने पर 'राधा' की सही पहचान हो सकेगी।

"शैदा" जी ने अपनी आत्म-कथा 'जीवन की भूलें' में लिखा है कि अध्यापन कार्य से बढ़कर ससार में और कोई पेशा नहीं, वशर्ते कि अध्यापक जीवन भर कुछ न कुछ पढ़ते रहने का व्रत निभा सके। गुप्त जी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं।

गुप्त जी के साथ टहलने में मजा आता है। रास्ते भर साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली बातों पर प्रकाश डालते चलते हैं। प्रश्न, उत्तर और समाधान के बीच थकान और दूरी का बोध नहीं हो पाता। रास्ते में धार्मिक या ऐतिहासिक स्थान पड़ने पर उसके विषय में बताते चलते है। किसी प्राचीन साहित्यकार का घर पड़ जाने पर उसकी कृतियों के बारे में भी प्रकाश डालते हैं। मन ऊबता नहीं।

गुप्त जी आजमगढ़ से चले गये, मगर आजमगढ़ भूले नहीं। वे अपने सम्बन्धों को पूर्ववत बनाये हुये हैं। जब भी आजमगढ़ आते हैं, अपने शिष्यों से मिलने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी उनके घरों तक चले जाते हैं और खड़े-खड़े दो टूक बात करके चल देते हैं।

श्री विद्याधर 'मंजु' एक जू० हा० स्कूल के रिटायर्ड प्र० अ० हैं। इनका गाँव नगर से आठ कोस की दूरी पर है। समय रहने पर गुप्त जी उनसे मिलने चले जाते हैं।

नवम्बर ८७ में कोपागंज से आजमगढ़ आते समय रास्ते में ही सठिगाँव उत्तर गये, श्री गोवर्धन जी से भेंट करने के लिये। श्री गोवर्धन पं० चन्द्रबली पाण्डेय जी के भतीजे हैं। मिल कर लौटने लगे, तब गोवर्धन जी उनके साथ ही शहर आये और जब तक वे रहे, तब तक उनके साथ बने रहे।

आप इन सब बातों से समझ सकते हैं कि गुप्त जी अपने सम्बन्धों को सहेजने-सँजोने में कितने माहिर हैं । सम्बन्ध निभाने की कला सीखना हो, तो गुप्त जी से सीखें । पद और प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने पर लोग छोटों से मिलना हेय समझते हैं, परन्तु इनके सहज-स्वभाव को देख कर कहना ही पड़ता है :—

बरसहिं जलद भूमि नियराये
यथा नवहिं वुध विद्या पाये ।

—कृष्ण मोहन लाल 'राजीव'
अनन्तपूरा, आजमगढ़

१२. हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा

डा० श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

स्वर्गीय विश्वनाथ लाल 'शैदा' आजमगढ़ के साहित्य-सेवियों में उस समय एक वरिष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे । वे आरम्भ में उर्दू शैली के एक सिद्ध-हस्त शायर थे, पर अपने गुरुदेव स्व० हरिऔध जी के शिष्यत्व में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचनात्मक प्रतिभा को हिन्दी की ओर मोड़ दिया था । शुद्ध तत्सम-निष्ठ हिन्दी में उनकी रचनात्मकता की एक साख बन चुकी थी । स्व० शैदा जी का व्यक्तित्व अपने ढंग का निराला और बेजोड़ था । उनके हृदय में साहित्यकार एवं कवि-मात्र के लिए निश्छल स्नेह और प्रोत्साहक आत्मीयता का जो विरल भांडार था, वह उनके अन्तिम श्वासों तक अक्षय ही बना रहा । उनके विशेष आग्रह पर मैं आजमगढ़ के एक कवि सम्मेलन में सम्मिलित हुआ ।

रात्रि कवि सम्मेलन में बीती । प्रातः शैदा जी का दर्शन करने के लिए उनके अनन्तपुरा-निवास पर गया, तो उन्होंने छूटते ही कहा, क्षेम, चलो आज तुम्हें एक वास्तविक साहित्य-साधक से भेंट कराऊँ । वशंवद की भाँति मैं उनके साथ चल पड़ा । कुछ गलियों और मुख्य राजमार्ग को पार कर हम एक पक्के मकान के सामने खड़े हो गये । आदरणीय शैदा जी ने नीचे से पुकार लगाई, 'अरे गुप्त जी, देखिये आपके यहाँ कौन-कौन दर्शनार्थी आये हैं ।' भवन के ऊपरी तल से सीढ़ियों को पार करता हुआ और 'आया, आया' शब्दों में अत्यन्त निश्छल एवं विमुक्त स्वागत-भाव के साथ जो सरल, तरल और सजल व्यक्तित्व उतरा, उसने ऊँचे स्वर की हँसी के साथ हमें अपने आलिंगनों में भर लिया । लम्बा छरहरा और इकहरा गेहुँवाँ शरीर, श्वेत और घर

के धुले खद्दर के कुर्ते पैंजामे में काया को निश्चिंत छोड़े हुए अपने छोटे-छोटे बालों वाले शिर को झुकाकर उसने उच्छल हास्य के साथ, आदर्य शैंदा जी का भी विनम्र अभिवादन किया। निश्छल अपनत्व, सादे जीवन और उच्च विचार के आदर्श को सहज ही अपने में प्रतिमूर्त किए हुए उस व्यक्तित्व ने हमारे मन को अभिभूत कर दिया था। एक पर एक मुक्त-हँसी के छल्ले, निष्प्रदर्शन ठहाके और सहज अपनत्व के पारदर्शी व्यवहार ने जिसे शरीरायित किया था, वही थे किशोरी लाल गुप्त, जो उस समय शिबली महाविद्यालय में हिन्दी के अध्यक्ष थे एवं अपनी विद्वत्ता तथा सुपरिष्कृत व्रज भाषा की छन्दोरचना के कारण, काशी से लेकर पूरे पूर्वांचल में रेखांकित हो उठे थे। वार्ता के परिचय-क्रम में शैंदा जी चाय की चुस्कियों के साथ बताते जा रहे थे, 'किशोरी लाल गुप्त स्थानीय शिबली कालेज में डा० पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ 'कमल' के पश्चात् नियुक्त हुए हैं। इनके व्रज भाषा के छन्दों का क्या कहना, ऐसे छन्द तो रत्नाकर-परम्परा में निष्णात कोई सिद्ध कवि ही रच सकता है और विद्वत्ता में भी क्या कहना। इनकी अद्‌भुत शोध-दृष्टि और समर्पित-अनुसंधान-साधना आज हिन्दी के प्राध्यापकों और शोधकों में अत्यन्त विरल ही दिखाई पड़ती है। मैं तो इनका भक्त हो गया हूं।'

छूटते ही मुक्तहासी गुप्त जी ने कहा, 'चलिए, अपने नगर में अब एक से दो-दो भक्त हो गये।' उनका विनोदपूर्ण संकेत स्व० गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की ओर था। एक सम्मिलित ठहाका लगा और रंचक संकुचित होकर छूटते ही शैंदा जी ने भी कहा, 'अरे, मैं तो आपका भक्त हूँ, मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि मैं 'भक्त' जैसा सरस्वती पुत्र हो सकूं? गुप्त जी, महाकवि भक्त होना खेल नहीं है। अकिंचन तो गुरुदेव हरिऔध जी की चरण-रज पाकर ही अपने को धन्य मानता है। हाँ, आप जैसे गम्भीर शोधी विद्वान और साधक रचनाकार अपने पास मुझे बैठने देते हैं और स्नेह करते हैं, यही मुझ जैसे हिन्दी-प्रेमी के लिए क्या कम है, कहते-कहते शैंदा जी कुछ गम्भीर और भावयुक्त हो गये थे।

गुप्त जी के पुत्र और उनकी पुत्री ने हिल-मिल कर हम लोगों का पारिवारिक आतिथ्य किया। पूज्य शैंदा जी के आग्रह पर एक लघु काव्य गोष्ठी भी गुप्त जी के आवास पर सम्पन्न हुई। मुझे निर्देश मिला, तो मैंने अपना वही गीत सुनाया, जो बाद में मेरी प्रथम प्रकाशित गीत पुस्तक 'जीवन -तरी' में संगृहीत भी हुआ—

लो नयन मिले, झुक गई पलक,
कूलों पर घन-रस बरस गया।

इस 'घन-रस' पद पर भी कुछ विनोद हुआ, क्योंकि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक, प्रखर विद्वान और व्रज-भाषा-काव्य के धुरन्धर समर्थक, साथ ही छायावादी काव्य और उससे विकसित छायावादोत्तर खड़ी बोली-

गीत-धारा को आड़े हाथों लेने वाले, गुरुवर डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' इस गीत में आये 'घन रस' शब्द के आधार पर मुझे उसी प्रकार प्रायः विनोद में 'घन-रस' ही कहकर कक्षा में पुकारा करते थे, जिस प्रकार वे स्व० गोपी कृष्ण शर्मा 'गोपेश' को उनके गीत 'मैं चलता हूँ तो तारे भी चलते हैं' शीर्षक को परावृत्त कर 'मैं चलता हूं तो जूते भी चलते हैं' कहकर व्यंगोक्ति किया करते थे।

गुप्त जी व्रज-भाषा के सुकवि हैं। हमे उनका 'राधा' काव्य में प्रकाशित वह बहुचर्चित छन्द उनके ही मुख से सुनने का सौभाग्य मिला, जो 'खंजन नैन सदा रस माते' से आरम्भ होकर उस अमर पंक्ति से समाप्त होता है, जिसमें उन्होंने अनुपम निष्ठा के साथ कहा है कि मूल राधा से कविवर विहारी लाल ने अपनी 'सतसई' के आरम्भ में अपनी बाधा हर लेने की प्रार्थना की है, तो वे राधा उनकी बाधा का स-कृपा हरण करें, पर अपने बाधा-हरण के लिए तो वे 'विहारी की राघा' से ही अपेक्षा करते हैं—

राधा बिहारी की बाधा हरौ,
हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा।

मूल बाधा-हारिणी तो कृष्ण-प्रिया एवं भगवान की ह्लादिनी शक्ति रूपा श्रीवरा 'राधा' ही हैं। पर श्री राधा जी की छवि-भंगिमा और श्री कृष्ण-राधा की प्रेम-लीला में उनके प्रणय-व्यापार की जो मधुरिमा कविवर विहारी लाल के काव्य में अवतरित हुई है, गुप्त जी का भावयोगी कवि उस पर ही निछावर है।

कृष्ण लीला का वह सन्दर्भ भी सहृदय काव्य-रसिकों का अतीव हृदय-हार बना है, जिसमें गो-दोहन के समय श्री राधा जी गोपाल का सहयोग करती हैं, तो कृष्ण विभोरता में कई दुग्ध-धारें दुग्ध-पात्र के अतिरिक्त राधा की ओर ही फेर देते हैं। एक ही छन्द में कविवर गुप्त गो-दोहन के रमणीय व्यापार का अपने बिम्ब तो देते ही हैं, पर उस बिम्ब के भीतर से ऐसी मनोरम व्यञ्जनाएँ भी उकेर देते हैं, जो हिन्दी राधा-कृष्ण-काव्य के अनेक पूर्व काव्य-सन्दर्भों के साथ, महाकवि विहारी के भाव-भीने व्यापार चित्रों को भी सुगन्धित कर देती हैं। सहज ही गुप्त जी इस सहजोक्तितम काव्योक्ति में व्यञ्जना के सहारे अर्थ के कई-कई रस-भीने स्तरों को छू देते हैं।

विहारी की सतसई का आरम्भिक स्तुति-परक दोहा पुष्कलतया प्रसिद्ध है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय॥

विहारी रत्नाकर में इसकी टीका करते हुए महाकवि रत्नाकर ने श्लेष के सहारे कई-कई अर्थ प्रस्तुत किए हैं, जो अपने वैविध्य में साहित्य के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों की बहुज्ञता एवं परिचय-चारुता का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अलंकारों के

परिवर्तन और समास-विपर्यय के साथ सम्पुटित यह विशदार्थता हिन्दी काव्य-प्रेमियों में अत्यन्त प्रशंसित हुई है। क्या वर्ण विज्ञान, क्या आयुर्वेद, क्या अनुभूति भेद के साथ सम्बद्ध काव्यांग शास्त्र सभी एकत्र चित्रायित, रसायित हो उठे हैं।

एक सिद्ध कवित्व के साथ गुप्त जी एक सूक्ष्मदर्शी आचार्यत्व का भी वहन करते हैं। उन्हें भी अपने काव्यारम्भ में श्री राधा की वन्दना करनी थी। जिस राधा के रूपभाव और रसामृत के चित्रण में भक्ति-काल से लेकर रीति कालतक के अनेकानेक रस-सिद्ध कवियों ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगा दी, जहाँ सूरदास, नन्ददास, देव, विहारी, मतिराम आदि से लेकर भारतेन्दु, सत्य नारायण 'कविरत्न' और महाकवि रत्नाकर तक ने लेखनी तोड़ देने की उमंग प्रदर्शित कर दी हो, वहीं कविवर किशोरी लाल को भी अपनी पंक्ति रखनी थी। गुप्तजी एक अतीव हृदय-सम्पन्न कवि-प्रतिभा के साथ काव्य-शास्त्र के भी धर्मी-मर्मी विद्वान हैं। ऐसी स्थिति में अपनी राधा वन्दना के लिए उन्होंने अपने छन्द को जिस चतुर्थ पंक्ति पर लाकर पूरा किया, वह साधारण कवि-कर्म की बात नहीं है—

राधा बिहारी की बाधा हरौ, हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा,

अतीव सहज और निश्छल भाव से, श्री राधा के साथ रचनाकार ने अपने ध्यातव्य कविवर विहारी लाल की भी स्तुति-अभिशंसा उड़ेल दी। 'विहारी की राधा' अंश में राधा के साथ जो 'विहारी की' पद विशेषक रूप में जड़ दिया गया, वह राधा-वन्दना और विहारी प्रस्तवन के अनुषंग-अभिषंग के बीच से उसी प्रकार जगमगा उठा है, जिस प्रकार सुदीप्त-प्रदीप सुवर्ण की अगुष्ठिका के बीच से कोई मरकतरत्न चमक उठा हो। साथ ही कवि ने भक्ति-धर्म में अपना कवि-धर्म भी व्यक्त एव व्यंजित कर दिया है।

छन्द की यह पंक्ति मेरे लिए कविवर गुप्त का स्मृति-मंत्र बन गयी है। कदाचित ही हुआ हो कि डा० गुप्त मिले हों और काव्य तक आते आते हमारा संस्पर्श 'विहारी की राधा' पंक्ति से न हो पाया हो। उन्हें जो काव्य-सहृदयता और सर्जक सहृदता मिली है, उसे देखते हमें उनका पितृप्रदत्त नाम किशोरी लाल सदैव ही अंतरंग अर्थों में नितान्त सार्थक प्रतीत हुआ है। वे हमारे अग्रज और वयोज्येष्ठ ही नहीं, ज्ञान-ज्येष्ठ भी रहे हैं। फिर भी उन्होंने हमें बराबर अपनी सख्यता ही दी है। उसका दुरुपयोग भी कभी कदा हो गया है। एक बार हमने उनसे कहा, 'तो गुप्तजी, आप किशोरी के साथ साथ हैं कि 'लाल' के साथ या उभय के द्वन्द्व में हैं?' उनसे तत्काल ठहाके के साथ उत्तर मिला, 'अरे भाई, द्वन्द्व में आप लोग शोभित हों, मैं तो एक सादा और निर्द्वन्द्व व्यक्ति हूं' पराजित से हम एकबारगी निरुत्तर हो जाते रहे। शब्दाधिकार के साथ शब्द-क्रीड़ा उनके वाक्कौशल का एक स्मरणीय पक्ष रहा है।

जब हम प्रथम बार परिचित हुए थे, तब गुप्त जी अपनी परिपक्व यौबनावस्था में थे। वे पुत्र पुत्री सम्पन्न एक दायित्वशील गृहस्थ भी थे, पर उनके मन में जो प्रत्यग्रता और टटकापन मैंने तब अनुभव किया था, परवर्तीकाल में भी उसकी न्यूनता कभी भी रंच मात्र आभासित नहीं हुई। एक सहजता, निश्छल आत्मीयता, शुद्ध आयुर्वेदिक शाकाहारी विनोद-प्रियता तथा निःस्वार्थ सद्भावना, जो तब उनके पारदर्शी मानस में गंगा की धार सी प्रवाहित मिली थी, वह कभी भी और किंचित भी मैली नहीं मिली। कह सकते हैं कि उनकी समूची व्यक्तिमत्ता, अपने गम्भीर पाण्डित्य और सरस कवित्व के सास्तित्व, संत कबीर की वह चादर है, जो निरन्तर 'जस की तस' रही है। किसी के प्रति मनोमालिन्य या ईर्ष्या-द्वेष कभी भी उनकी वाणी या व्यवहार में प्रतिभासित होता नहीं मिला। वे सबके प्रति सम्मानशील, अभीष्ठ मर्यादा-बद्ध और स्नेह-सौजन्य-पूर्ण मिले। सहिष्णुता और लोक-तान्त्रिक आचारशीलता इतनी कि भरसक किसी का विरोध उन्हें सहज ग्राह्य नहीं रहा। जब कभी अवसर मिला वे अपने विचारों के सबल और सप्रमाण प्रतिपादन की सीमा से बाहर होते नहीं दिखे। व्यवहार की यह सुनम्यता जब मत-प्रतिपादन और दृष्टि-निर्धारण के स्तर पर खड़ी होती थी, तब वे सभी प्रकार वाक्छल से ऊपर उठ कर अपने प्रामाणिक चिंतन में सदैव निःसंशय और दो टूक वक्तृत्व के साथ रहे। उन्हें ऐसा कभी नहीं पाया की वे अर्थवाद या भाववाद की भाषा में बोले हों। वे साहित्य के इतिहास के प्रगाढ़ अध्येता, अन्तःस्पर्शी मीमांसक एवं समर्पित अनुसंधाता रहे हैं। जिस विषय पर बोलते या लिखते रहे हैं, अपने स्तर से उसकी पूर्ण परख करने के पश्चात् ही वे प्रवचन में प्रतिभाग लेते रहे हैं।

—जौनपुर

१३. डा० गुप्त के साथ दो वर्ष

डा० किशोरी लाल गुप्त के साथ मुझे लगातार दो वर्ष रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। १९६२ ई० में मैं हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके इण्टर की पढ़ाई के लिए बाबू जी (डा० किशोरी लाल गुप्त) के पास ही गया। उसी वर्ष बाबू जी ने भी हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ, गाजीपुर का प्राचार्य पद सुशोभित किया था।

तृण विहीन लम्बे क्रीड़ा स्थल के दक्षिण तरफ मेरे जितनी ऊँची दो आयताकार कटीली झाड़ियों की ढंग से कटी बाड़ों के पीछे लाल गेरू से रँगी हुई दुमंजिली बिल्डिग, जिसके ठीक बीचोबीच सफेद पोर्टिको किसी लाल दैत्य के दाँतों की तरह निकला हुआ, जिसे देख कर मैं बुरी तरह डर गया। डर कर मैंने अपने पिताजी का हाथ मजबूती से पकड़ लिया था। मेरे मस्तिष्क में अपने कस्बे कोपागंज के थाने की लाल गेरू

से रँगी और आजमगढ़ की कचहरियों एवं जिला जेल की लाल इमारतें, जहाँ चार वर्ष पहले एक कत्ल के मुजरिम के रूप में कुछ महीने बन्द बड़े भाई की याद ताजा हो गई। ऐसी थी जमानियां के कालेज की बिल्डिंग, जहाँ मैं पढ़ने गया था। डरावनी रूप रेखा को देख बुरी तरह भयभीत मैं अपने पिता जी के साथ बाबू जी के क्वार्टर पर पहुँचा, जो क्रीड़ा-स्थल के पश्चिमी किनारे पर स्थित था। लेकिन कमरे पर पहुँचते ही चिर-परिचित ठहाकों ने हमारा स्वागत किया। डर कुछ दूर हुआ।

उसी दिन शाम को बाबू जी मेरे पिता जी के साथ बाजार घूमने आये। साथ में डिग्री कालेज के वाइस प्रिंसिपल श्री नवल किशोर जी भी थे। बाजार घूमा गया, सब्जी वगैरह खरीदी गयी। क्वार्टर पर लौटते ही कालेज के प्रबन्धक श्री गोवर्धन दास जायसवाल दो एक लोगों को लेकर आगे चले आये और दोहाई देने लगे कि ये आप क्या कर रहे हैं। बाबूजी आश्चर्य चकित हो गये कि उन्होंने कौन सा अपराध कर दिया। यह ज्ञात होने पर कि आप बाजार गए थे, वे और भी अचम्भित हुए, बोले, अरे भाई मैं तो आजमगढ़ में रोजाना ही कालेज से लौटने पर बाजार जाता था। सौदा सुलुफ खरीदता और इसी बहाने अपने इष्ट मित्रों से हाल समाचार लेता देता घर लौट आता था। प्रबन्धक का यह तर्क कि यहाँ पर 'प्रिंसिपल साहब' बाजार नहीं जाते, जो सामान मँगाना हो, चपरासी भेजकर मँगाते हैं, बाबू जी के गले नहीं उतर रहा था। काफी तर्क-वितर्क हुआ। मुझे जहाँ तक याद पड़ता है कि उन्होंने समझा भी दिया कि इस तरह बाजार आने जाने से कालेज की गरिमा नष्ट नहीं होगी, लेकिन फिर भी वे लोग नहीं माने। उनकी सुविधा के लिए बाबू जी मान गये कि अब आगे वे बाजार नहीं जायेंगे। लेकिन इसके बावजूद भी उन्होंने किसी चपरासी या अन्य से अपनी बाजार वाली सेवाओं का कार्य नहीं कराया। जब तक मैं था, सब्जी वगैरह लाता रहा। मेरे चले आने पर उनके छोटे पुत्र रवीन्द्र गुप्त लाने लगे।

दूसरों की असुविधाओं का ख्याल रखना, अपने लिए कोई सुविधा न चाहना, उनका स्वभाव रहा है। महीनों वे सुबह शाम लोटा लेकर लैट्रिन के लिए आम लोगों की तरह कालेज के पश्चिम तरफ नहर के किनारे खेतों में जाते रहे। शायद यह प्रबन्धक की नजर में नहीं आया। इस असुविधा को उन्होंने नहीं कहा। जब उनकी मँझली पुत्री शम्पा आई, तब उसे असुविधा होती देख, उन्होंने तत्काल कहा और उसी दिन प्रबन्ध भी हो गया।

रहने का मकान एकदम बेकार था। ढंग के दो छोटे कमरे थे, जिसमें एक में बाबूजी अपने पुस्तकों से घिरे रहते थे, दूसरे में शम्पा रहती। बाबूजी के कमरे के उत्तर तरफ बरामदा व उसके बगल में एक कमरा था जिसमें से होकर अन्दर जाया जाता था। बस यही पक्की छत से ढके थे, बाकी सब या तो खुला या टीन से ढका था। खुद असुविधा झेलते रहे। लेकिन मुझे याद नहीं कि कभी कुछ कहा हो। जो कुछ बाद में बना, वह बाबू जी ने स्वयं अपने पैसे से बनवाया।

बाबू जी का रहन सहन एक दम सादा था। उस साल शुरू में कुछ महीने मैंने उन्हें पैंट-बुशर्ट पहनते देखा था। बाद में वह पैंट बुशर्ट बक्से की शोभा बन गया। वे अपनी पुरानी वेश-भूषा नें आ गये। पैंजामा, कुरता, सदरी। जाड़े में काली शेरवानी व टोपी बढ़ जाती।

घर पर जांघिया बन्डी में ही रहते थे, बला से कोई मिलने आये। बिस्तर पर बैठ कर ही लिखते थे। एक दफ्ती पर कागज रखकर जंघा पर रख कर लिखते थे। लिखने के लिए कुर्सी मेज पर नहीं बैठते थे। मेहमानों के लिए दो आराम कुर्सियाँ व दो एक साधारण कुर्सियाँ रखी थीं।

मैंने उन्हें कभी सोते देखा ही नहीं। सबेरे उठता तो देखता कि बाबूजी अपने कमरे मे पढ़ लिख रहे हैं। सामने टेबुल पर बुझी लालटेन रखी हुई है। जब जरूरत समझते, उठते, शौच हो आते। फिर बैठ जाते। जब कालेज का समय होता, तभी उठते, दातून, मंजन करते। सरसों का तेल पूरे शरीर पर खुद ही लगाते, तौलिया जांघिया लेकर आंगन में आते। जाड़े में बाहर ही धूप में नहाते। नहाने व पीने के लिए पानी कुआँ से आता था, जो कालेज के सामने था। एक बाल्टी पानी में नहा लेते। नहाकर अपना जांघिया खुद ही फींचते। यह देखकर मुझे बहुत ही ताज्जुब हुआ। मेरे घर पर पुरुष अपना कोई वस्त्र नहीं साफ करते थे। घर की औरतें या लड़कियां यह कार्य करती थीं। भोजन बनाने का कार्य शम्पा के आने के पूर्व कालेज का एक चपरासी करता था और वहीं खाता भी था, जबकि और लोगों के यहाँ विपरीत नियम था। वे सबेरे चावल, दाल, सब्जी, रोटी, मौसमी सलाद आदि भोजन करके, कपड़ा पहन व हाथ में कोई पुस्तक लिए हमेशा समय से कालेज जाते।

मैं कालेज से लौटकर देखता कि बाबू जी आकर फिर बिस्तरे पर जम गये हैं। शाम को अक्सर ही नवल किशोर जी आते, तब ही उनका काम रुकता, बात चीत होती, हम लोग भी शरीक होते, खूब जोरदार ठहाका लगाकर हँसा करते, लालटेन जलाकर कमरे में रख दी जाती। आगन्तुकों के जाने के बाद उनका कार्य उसी तरह पूर्ववत चलने लगता। रात को रोटी सब्जी खाते थे। अन्तिम रोटी चीनी से खाते। एक कटोरा दूध उसी समय खाते या पीते। खाना खाकर अपने कमरे में जाकर फिर पढ़ने लिखने लग जाते। पता नहीं कब सोते। उसी वर्ष उन्हें डी० लिट्० की डिग्री मिली। वैसे तो कोई न कोई बाहरी व्यक्ति अक्सर आता रहता। एक बार नूरजहाँ महाकाव्य के प्रख्यात प्रणेता गुरुभक्त सिंह 'भक्त' भी मेरे रहते समय आए, पैंट, शर्ट, कोट और सिर पर राजस्थानी पगड़ी। मैंने किसी बड़े कवि को पहली बार बाबू जी के यहाँ ही देखा। बाबू जी का आवास क्या था, सरस्वती की साधना का मंदिर था।

—उत्तमचन्द

कोपागज, आजमगढ़

१४. प्राचार्य डा० किशोरी लाल गुप्त

हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ में जाने के पूर्व डॉ० किशोरी लाल गुप्त शिबली नेशनल कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। आपकी विद्वत्ता, प्रतिभा, सज्जनता एवं सर्जनात्मकता की प्रसिद्धि चारों तरफ फैल चुकी थी। आपका चयन मार्च, १९६२ में हिन्दू डिग्री कालेज के प्राचार्य के रूप में हुआ। जुलाई ६२ में आपके कार्य-भार ग्रहण करने के पश्चात यह महाविद्यालय प्रगति-पथ पर तेजी से अग्रसर होने लगा। मेरी नियुक्ति अगस्त १९६२ में अर्थशास्त्र प्रवक्ता के रूप में आपके कर कमलों द्वारा इस महाविद्यालय में हुई। मेरे साथ श्री हूब नारायण त्रिपाठी, प्रवक्ता संस्कृत विभाग ने भी कार्यभार ग्रहण किया। मुझे सन् १९६२ से जुलाई १९६५—लगभग तीन वर्षों तक डॉ० गुप्त के निर्देशन एवं संरक्षण में कार्य करने का सुअवसर एवं सौभाग्य प्राप्त हुआ। डॉ० गुप्त की उदारता, सरलता, प्रशासन-कुशलता एवं सबसे बढ़कर उनकी निरन्तर एवं कठिन अध्ययनशीलता ने हम सभी प्राध्यापकों को प्रभावित किया। उस समय कुल अध्यापकों की संख्या केवल ८ थी, किन्तु जब २८नवम्बर को १९७५ में डॉ० गुप्त ने अवकाश ग्रहण किया, तब यह संख्या बढ़कर १६ हो गयी थी। कार्यभार ग्रहण करते समय छात्र संख्या मात्र ८४ थी, किंतु १९७५ में यह संख्या ५०० हो गई थी।

डॉ० गुप्त प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं। इन्होंने अध्यापकों को निरन्तर परिश्रम करने एवं अध्ययनशील रहने के लिए प्रोत्साहित किया। प्राचार्य कालेज में हो या बाहर, कक्षाएँ नियमित चलने लगीं। अध्यापन का स्तर सुधरा। अध्यापकों को पद की गरिमा एवं स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। पहले अध्यापकों को १० से ४ बजे तक अनिवार्य रूप से महाविद्यालय में रुकना पड़ता था। डॉ० गुप्त ने यह व्यवस्था की कि जब जिसकी कक्षाएँ हों, आये और अध्यापन करे। इसके पूर्व डिग्री कालेज के अध्यापक इण्टर कालेज में भी पढ़ाने के लिए जाते थे। उन्हें इण्टरमीडिएट कालेज, यहाँ तक कि जूनियर हाईस्कूल की परीक्षाओं में भी पर्यवेक्षक का कार्य करना पड़ता था। डॉ० गुप्त ने इसपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया। डॉ० गुप्त ने महाविद्यालय में विज्ञान एवं शिक्षा संकाय (बी० एड०) खोलने हेतु अथक प्रयत्न किया। सन् १९६५ में विज्ञान संकाय की मान्यता प्राप्त हो गई और कक्षाएँ भी चलने लगीं। बी० एड० के लिए भी पेनल का निरीक्षण हुआ था, किन्तु भ्रष्टाचार के भय से आपने कोई विशेष सक्रियता नहीं दिखाई। अतः बी० एड० की कक्षाएँ प्रारम्भ न हो सकीं। १९६४ में महाविद्यालय में गोरखपुर विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का केन्द्र निर्धारित हुआ। डॉ० गुप्त ने परीक्षाओं का संचालन जिस कुशलता एवं ईमानदारी के साथ किया, वह

अद्वितीय है। निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा थोड़ी सी गड़बड़ी होने पर आपने स्पष्ट रिपोर्ट भेजकर परीक्षा केन्द्र को समाप्त करवा दिया। कुछ वर्षों तक हिन्दू महाविद्यालय के छात्रों को मुगलसराय एवं गाजीपुर परीक्षा देने के लिए जाना पड़ा। डॉ० गुप्त जितने सरल-सीधे एवं उदार हैं, उतने ही सिद्धान्तों एवं नैतिक मूल्यों की रक्षा के मामले में कठोर भी। जाने से पहले छात्रों एवं अभिभावकों के आश्वासन पर उन्होंने पुनः परीक्षा केन्द्र करवाया। छात्रों के अनुरोध पर छात्र-संघ की स्थापना की। छात्र-संघ की विफलता देखकर डॉ० गुप्त ने इसे एक ही साल बाद साहसपूर्वक सदा के लिए भंग कर दिया। अब वहाँ इतने वर्षों के अन्तराल के बाद सन् १९८८ में छात्र संघ की पुनः स्थापना हुई है।

हिन्दू डिग्री कालेज ग्रामीण अंचल में अवस्थित है। प्रारम्भ में यहाँ न तो अध्यापक कक्ष था और न तो छात्राओं के लिए कामन रूम की व्यवस्था थी। पुस्तकालय के नाम पर कुछ नहीं था। डॉ० गुप्त के कार्यकाल में महाविद्यालय को स्थायी मान्यता एवं अनुदान प्राप्त हुआ। आपने अलग अध्यापक कक्ष की व्यवस्था की। पुस्तकालय को समृद्ध किया। अपनी बहुत सी निजी पुस्तकें पुस्तकालय को दान में दीं। छात्राओं के बैठने के लिए प्राचार्य कक्ष में ही अलग व्यवस्था की। डॉ० गुप्त प्राचार्य के रूप में इतने सीधे एवं सरल थे कि प्रत्येक छात्र, अध्यापक एवं कर्मचारी बिना किसी झिझक के सीधे आपसे मिल सकता था। वे समस्याओं का तुरत निराकरण करते थे। इसलिए छात्रों को किसी कार्य के लिए एक जुट होकर झुंड बनाकर कभी जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, सवर्ण एवं अनुसूचित सभी वर्ग के अभिभावकों को ये समान सम्मान एवं आदर प्रदान करते थे। अभिभावकों के आने पर आप उठकर उनका सम्मान करते थे और कक्ष से जाते समय उन्हें पुनः उठकर सम्मान प्रदान करते थे। यह थी उनकी सहजता एवं सरलता। निर्धन एवं मेधावी छात्रों को शुल्क-मुक्ति एवं आर्थिक सहायता देने में आप बड़े उदार थे। छात्राओं, शिक्षकों एवं सैनिकों के पाल्यों को आर्थिक सहायता अवश्य देते थे। इससे इस ग्रामीण एवं पिछड़े अंचल में उच्च शिक्षा के प्रसार में काफी सहायता मिली। डॉ० गुप्त के पूर्व महाविद्यालय में एक भी हरिजन छात्र स्नातक नहीं हो सका था। आपके आने के बाद इनकी संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

डॉ० गुप्त ने जमानियाँ जैसे पिछड़े क्षेत्र में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का सृजन किया। आपके पास देश के मूर्धन्य साहित्यकार आते थे। आपने कई उच्च-कोटि के सम्मेलन, साहित्यिक गोष्ठियाँ, सेमिनार आयोजित करवाए। महाविद्यालय के दीक्षान्त समारोहों में भी आप साहित्यकारों को ही आमन्त्रित करते थे, न कि राजनीतिज्ञों को। सत्य बात को आप दो टूक कहते थे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र,

पं० सीताराम चतुर्वेदी, महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त', लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', श्री शतानन्द उपाध्याय, पं० चन्द्रशेखर मिश्र, पं० श्यामनारायण पाण्डेय, श्री विश्वनाथ लाल 'शैदा', हरिऔध कला भवन के महामंत्री श्री विजय नारायण सिंह, प्रोफेसर राजाराम शास्त्री, डॉ० गोपाल त्रिपाठी, प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल इत्यादि साहित्यकारों एवं चिन्तकों को जमानिया जैसी छोटी जगह पर लाने एवं उनके द्वारा शिक्षकों एवं छात्रों को उद्‌बोधित कराने का श्रेय डॉ० गुप्त को है। कुलपतियों में डा० ए० सी० चटर्जी, डॉ० पी० टी० चांडी, प्रोफेसर मदन मोहन को डॉ० गुप्त महाविद्यालय में लाये। डॉ० गुप्त अध्यापकों को निरन्तर पिकनिक, शैक्षिक परिभ्रमण, पुस्तकों के संग्रह एवं अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करते थे।

डॉ० गुप्त के व्यक्तित्व की कुछ बेजोड़ विशेषताएँ थीं। आप निरन्तर अध्ययनरत रहते थे। कार्यालय में भी अध्ययनरत रहते थे, किन्तु इससे किसी कार्य में व्यवधान एवं विलम्ब नहीं होता था। मृदुभाषी होने के साथ-साथ वाक्‌पटु भी थे। बीच-बीच में हास-परिहास भी कर लेते थे, जिससे इनके आस-पास का वातावरण सदैव उन्मुक्त एवं प्रफुल्लित बना रहता था। जमानियाँ का इलाका सामन्तों एवं सवर्णों का क्षेत्र है। बरुइन के बाबूओं की भीड़ इण्टर कालेज के प्रधानाचार्य श्री भीष्म दत्त त्रिपाठी के निवास पर जुटती थी। दरबार लगता था। परन्तु डॉ० गुप्त को दरबार लगाने या करने की फुर्सत नहीं रहती थी। पिछड़ी जाति का होने के कारण यहाँ उनका पैर जमाना अत्यन्त दुष्कर था, किन्तु अपनी योग्यता, व्यवहारकुशलता, सरलता, सहजता एवं मृदुता के कारण डॉ० गुप्त का चौदह वर्षों का लम्बा कार्यकाल अत्यन्त शान्ति, सम्मान एवं सफलता के साथ व्यतीत हुआ। बीच के दो वर्षों में, कुछ शरारती छात्रों के कारण जिनपर निहित स्वार्थ वाले चंद अध्यापकों एवं अभिभावकों का वरदहस्त था, डॉ० गुप्त को यदा-कदा किंचित मानसिक परेशानी उठानी पड़ी थी। यह डॉ० गुप्त के धैर्य की परीक्षा का काल था।

डॉ० गुप्त वज्र के समान कठोर किन्तु फूल के समान कोमल थे। न्याय एवं सत्य की रक्षा के लिए वे हर खतरा उठाने के लिए तैयार रहते थे। मैंने प्रबन्ध समिति के एक सदस्य के पुत्र को नकल करने से रोका। इसके लिए मुझे एकबार नहीं, तीन माह में तीन बार साक्षात्कार देना पड़ा। डॉ० गुप्त ने इस अन्याय का घोर विरोध किया। मेरे खाने-रहने की व्यवस्था अपने यहाँ की। उनके सतत प्रयास के फलस्वरूप ही मेरी सेवा बच पायी। इसी बीच मेरी नियुक्ति स्नातकोत्तर महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा) में विभागाध्यक्ष के रूप में हो गयी। मैं जमानियाँ से नहीं जाना चाहता था, किन्तु डॉ० गुप्त ने मेरी विदाई का तुरत आयोजन करके मुझे अश्रुपुरित नेत्रों से विदा किया। इसके तुरत बाद मैं स्नातकोत्तर महाविद्यालय गाजीपुर में चला आया। मुझे जमानियाँ प्रबन्ध-तन्त्र से पुनः जमानिया चले आने का निमन्त्रण मिला, किन्तु डॉ० गुप्त

ने एक संरक्षक की भाँति मुझे चाहते हुए भी न आने की सलाह दी। आज भी जब कभी वे गाजीपुर आते हैं, मुझे दर्शन अवश्य देते हैं। डॉ० गुप्त का जीवन सतत संघर्षशील एवं सक्रिय सन्त का जीवन है। आज भी वे ७३ वर्ष की आयु में साहित्य-साधना में बिना यश, सम्मान, प्रचार की परवाह किये जुटे हुए हैं, अनेक साहित्यिक एवं धार्मिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। ऐसे साहित्य-साधक, मनीषी एवं सन्त को मेरा शत-शत नमन।

—डॉ० रमाशंकर लाल
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर

१५. प्रातिभ कवि, विद्वान लेखक एवं सहज मानव

डा० किशोरी लाल गुप्त

डाक्टर किशोरी लाल गुप्त को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की सूचना पाकर मेरी ही तरह बहुतों को प्रसन्नता हुई होगी। बम-गोली और मिसाइल के इस युग में कलम चलाने वालों को कौन पूछता है। वैसे कहने के लिए हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के पाठकों-प्रेमियों एवं रचनाकारों-विद्वानों की एक भारी जमात में डा० किशोरीलाल गुप्त का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। गुटबन्दी, चमचागिरी और राजनीतिक कतर-ब्योंत से सर्वथा तटस्थ रह कर डा० किशोरीलाल गुप्त सन् १९३६ से लेकर आज तक जिस अध्यवसाय, लगन एवं निष्ठा से नित नूतन कृतियों द्वारा माँ भारती के साहित्य-भण्डार की श्रीवृद्धि में तत्पर हैं, आप को यह एकान्त साधना अपने में एक मिसाल है।

डा० गुप्त ने काव्य, समीक्षा, शोध, अनुवाद, व्याख्या, संपादन आदि विविध विधाओं में अब तक १३१ ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें २७ ग्रंथ मुद्रित हो चुके हैं। इनमें अधिकांश चर्चित एवं प्रशंसित हैं। मूल रूप से श्री किशोरीलाल गुप्त प्रातिभ कवि हैं, यह तथ्यय उनकी गद्य रचनाओं से भी स्थल-स्थल पर प्रकट होता है। आपने कुल बारह काव्यों की रचना की है, जिनमें सात हिन्दी खड़ी बोली के हैं, शेष पाँच ब्रजभाषा में हैं। ब्रजभाषा में आपकी अद्भुत पैठ देखकर आश्चर्य होता है। अवधी भाषी क्षेत्र में जन्म एवं भोजपुरी अवधी क्षेत्रों में ही विशेष रूप से रमने-विचरने के बावजूद ब्रज-भाषा पर आपका एकाधिकार ऐसे समय में रहा है, जब कि इस भाषा में काव्य-रचना का प्रचलन लगभग नहीं के बराबर था और हिन्दी खड़ी बोली के साथ ही आंचलिक

बोलियाँ के प्रति तेजी से आकर्षण बढ़ रहा था। भाषा के साथ ही कविता नयी जमीन की तलाश कर रही थी और कोमलकान्त पदावली के व्यामोह को तोड़कर कवि कुछ नयी, अनकही बातें प्रस्तुत करने के लिए उद्यत था। गुप्त जी का 'सोनजुही' काव्य उसी कोटि की रचना है। सोनजुही का अर्थ है सो (वही) न (नहीं) जु (जो) ही (थी)। अब तक व्रजी में जैसी कविता होती रही है, यह वैसी नहीं है।

'सोनजुही' के माध्यम से कवि जो चुनौती देता है, उसका पूरी तरह निर्वाह भी करता है। इस काव्य में गुप्त जी के ढाई सौ स्फुट छन्द संगृहीत हैं, जो रसानन्द की वर्षा करने के साथ ही अपने नाम को सार्थक करते हैं। काव्यानुरागियों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि रीति-कालीन काव्य-संसार में ब्रजभाषा का जितना मंथन हो चुका था, फिर उसमें नये सिरे से कुछ कहना सामान्य बात नहीं थी। आपके इस साहस एवं उपलब्धियों को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

व्रजभाषा में 'राधा' आप का प्रथम खण्ड काव्य है, जिसके सभी १०८ छन्द काव्यमाला को पूरी करने में मनकों का कार्य करते हैं। इस काव्य में राधा का जो मोहक चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कवि की मौलिक अभिव्यक्ति काव्य को उत्कृष्ट रूप प्रदान करती है। आप द्वारा विरचित 'उराहनौ' खण्ड काव्य ब्रजभाषा का दूसरा उद्धवशतक है, जिसमें गोपियाँ उद्धव को उनके संदेश पर उलाहना देती हैं। अनेक गोष्ठियों-कविसम्मेलनों के माध्यम से गुप्तजी की ये कृतियाँ अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय रही हैं।

डाक्टर गुप्त ने ब्रजभाषा में संस्कृत के दो काव्यों 'अमरूक शतक' एवं 'घट-खर्पर काव्य' का पद्यानुवाद प्रस्तुत कर बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है। ये कृतियाँ आपकी विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय देती हैं। इसी प्रकार आप के हिन्दी खड़ी बोली के सभी काव्य अभीष्ट भावाभिव्यक्ति में सर्वथा समर्थ हैं, जिनके व्यापक स्तर पर प्रकाशन एवं प्रसारण की अपेक्षा है।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' सिद्धान्त के अनुसार कविवर किशोरीलाल गुप्त एक विलक्षण प्रतिभासंपन्न गद्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में स्थापित हैं। आपके प्रकाशित ग्रन्थों की सर्वत्र सराहना हुई है, जो बड़े ही प्रामाणिक एवं खोजपूर्ण हैं।

हमें इस बात का दुःख है कि ऐसे यशस्वी रचनाकार का हम आज अभिनन्दन कर रहे हैं, जब कि वे अपने जीवन की ढलान पर हैं, जहाँ सुखद उमंगों को सँभाल पाने में भी शरीर सक्षम नहीं रह जाता। समाज द्वारा साहित्यकार की उपेक्षा कोई नई बात नहीं है, किन्तु सच्चा साधक उसकी कभी भी अपेक्षा नहीं रखता, यद्यपि उसकी कृतियाँ सदा अभिनन्दित होती रहती हैं। एक समर्पित साधक तो सदा अपने ताने-बाने में उलझा

रहता है। उसे अपनी सर्जना के अतिरिक्त कुछ भी प्रभावित नहीं करता। अतः निन्दा अथवा स्तुति में वह कोई रुचि नहीं लेता। रचनाकार को इसीलिए स्रष्टा कहा गया है, जिसकी कल्पना का मोहक संसार दृश्य जगत् से कहीं अधिक यथार्थ, जीवन्त और स्थिर होता है, जिसे बुद्धि और विवेक की आँखों से कभी भी देखा जा सकता है।

हमें इस बात का गर्व है कि डाक्टर किशोरीलाल गुप्त जैसे महान साधक ने हमारे क्षेत्र में जन्म लिया है, जिन्हें मैं बचपन से ही जानता पहचानता हूँ। मेरे जीवन की प्रेरक विभूतियों में डा० गुप्त भी एक रहे हैं। मेरे बाल्यकाल सम्भवतः छठे दशक में किशोरी लाल जी धवल खादी के कुर्ते-पाजामे में सौम्य सुदर्शन रूप में एक बार मेरे गाँव (मिश्रधाम-तिलठी) अपने एक स्वजातीय मित्र से मिलने गए थे। उन दिनों वे तन-मन से कवि लगते थे। मुझे खूब याद है, आप की कविताएँ सुनने के लिए लोग जुट गए थे और विवश होकर आपको कविताएँ सुनानी पड़ी थीं। आपने अपने 'राधा' काव्य के कुछ छन्द बड़े प्रेम से सुनाए, पर मेरी बाल-बुद्धि छन्दों की गहराई क्या समझ पाती, स्वर माधुरी एवं लयात्मकता में हम खोये बिना न रह पाते।

राधा बिहारी की बाधा हरौ,
हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा।

जैसी कुछ पंक्तियाँ मुझे तभी से याद हैं। उस पंक्ति का रसानन्द मुझे वर्षों बाद मिला, जब कविवर बिहारी का दोहा-मेरी भव बाधा हरो ‥ ‥‥पढ़ने में आया। आपकी प्रतीक्षा हम गाँव में बराबर करते, किन्तु उनका आना बहुत कम होता।

अध्ययन-काल के बाद जब मैं वाराणसी आया और पत्रकारिता में लग गया, तब डा० गुप्त जमानियाँ डिग्री कालेज के प्राचार्य पद को सुशोभित कर रहे थे और हिन्दी के एक जाने माने लेखक के रूप में स्थापित हो चुके थे। उनका वाराणसी आना-जाना बराबर लगा रहता। इस अवधि में हमें उनके दर्शन बहुधा होते रहे। विविध ग्रन्थों के लेखन-सम्पादन एवं मुद्रण के कार्यों में वे नागरी प्रचारिणी सभा तथा अन्य संस्थाओं एवं विद्वानों-मित्रों से सम्पर्क बनाये रखने में अत्यधिक व्यस्त रहने के बावजूद हमें दर्शन देना न भूलते।

इस अवधि में अपने महाविद्यालय में कई बार कवि सम्मेलन का आयोजन कर डा० गुप्त ने हमें बुलाया। पं० श्यामनारायण पाण्डेय, लालधर त्रिपाठी प्रवासी, राहगीर, चन्द्रशेखर मिश्र, डा० श्याम तिवारी, अभयनाथ तिवारी जैसे अनेक मान्य कवियों का जमानिया में बहुधा जमावड़ा होता रहा, जहाँ पहुँचकर हम डा० गुप्त के आत्मीय स्नेह में खो जाते। उनके द्वारा उपस्थित किये गये सहज स्नेहिल वातावरण में हम पारिवारिक सुख का अनुभव करते। कवि-सम्मेलन के बाद बहुधा उनके आवास पर गोष्ठी जमती, जहाँ हम खुलकर कविताओं का आनन्द लेते। उन सुखद घड़ियों

की याद आने पर आज भी मन सुखद कल्पनाओं में खो जाता है। हम उभरते रचना-कारों को प्रेम से सुनते और प्रशंसा करते डा० गुप्त कभी न अघाते। उनका मानना है कि कवि सम्मेलनों की अपेक्षा काव्यगोष्ठियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं। हमारे आग्रह पर वे स्वयं भी अपनी कविताएँ सुनाते।

जमानियाँ की ही एक काव्य गोष्ठी में एक बार डा० साहब ने केवल तीन कवियों को आमन्त्रित किया। यह गोष्ठी उनके आवास पर ही सम्पन्न हुई। जहाँ तक मैं समझता हूँ यह अवसर मेरे लिए अभूतपूर्व था, जब हमें डा० गुप्त का अध्ययन-कक्ष देखने का मौका मिला। उनका सारा कक्ष ग्रंथों एवं फाइलों से भरा हुआ था। अलग-अलग फाइलों में करीने से रखी गई स्वलिखित पूरे-अधूरे अनेक ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ उन्होंने स्वयं निकाल-निकाल कर दिखाईं। कोई योजनाबद्ध संस्था भी इतना कार्य नहीं कर सकती थी, जिसे अकेले डा० गुप्त ने कर डाला था।

आज उनके द्वारा लिखे गये १३१ ग्रन्थों की वृहद् सूची देखकर मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि व्यवस्थित रूप से योजना बनाकर विश्वास-पूर्वक कार्य करने की उनकी प्रवृत्ति रही है। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं अभिनव भरत प० सीताराम चतुर्वेदी जैसे विद्वानों के आप योग्य शिष्य हैं, जिन्होंने स्वयं सैकड़ों ग्रंथों की रचना की है।

ऐसे प्रातिभ कवि, विद्वान, लेखक एवं सहज मानव के रूप में लोकप्रिय डा० किशोरी लाल गुप्त के अभिनन्दन पर हम अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने के साथ बाबा विश्वनाथ से प्रार्थना करते हैं कि आप स्वयं उल्लासमय दीर्घ-जीवन प्राप्त कर साहित्य-साधना में इसी प्रकार तत्पर रहें।

जगदीश चन्द्र मिश्र
साहित्यकार प्रेस, भदैनी, वाराणसी

१६. डा० किशोरी लाल गुप्त, मेरे गुरु, मेरे अभिभावक

बचपन में अपने जनपद आजमगढ़ के गाँव से शहर आकर पढ़ने वाले अग्रजों से शिबली कालेज, जिसे जार्ज कालेज भी कहते थे, के प्राध्यापक डा० किशोरी लाल गुप्त का नाम सुनता था। वे लोग उनकी सादगी की प्रशंसा करते थे। सबके मन में आदर एवं सम्मान की भावना रहती थी। उनके अंग्रेजी एवं हिन्दी ज्ञान की कहानियाँ

सुनाया करते थे। उनकी अध्ययन-क्षमता की बातें मैं विस्फारित नयनों से सुना करता था। संयोग से मैं भी शिबली कालेज का छात्र हुआ। वहीं मुझे आपके दर्शन करने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। साधारण कुर्ता पायजामा पहने, पुस्तक बगल में दबाये आप को देखता था। आप की कक्षा में जाने पर, आप का व्याख्यान सुनकर, बड़ा आकर्षण पैदा हुआ। सीधी सादी बाणी में स्पष्टता एवं वोधगम्यता रहती थी। धीरे धीरे आप के व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता ने मुझे प्रभावित किया और मेरे मन में आप के प्रति आदर एवं श्रद्धा की भावना उत्पन्न हुई। परन्तु दो बर्षों का अन्तराल व्यतीत हो जाने पर भी मेरा आप से निकट सम्पर्क नहीं हुआ।

१९६६ में मणिपुर से जमानियाँ आया। आप हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ में प्राचार्य थे। मैं गणित विभाग का अध्यक्ष हुआ। सहयोगियों से काम लेने का ढंग तथा निरपेक्ष भाव से महाविद्यालय का संचालन देखकर मुझे बहुत कुछ सीखने तथा समझने का अवसर प्राप्त हुआ। गम्भीर विषय को आप निरहंकार भाव से ग्रहण करते थे। विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने में आप दक्ष हैं।

जमानियाँ-प्रवास के दौरान आप मेरे अभिभावक रहे। आपने हमेशा अच्छे कार्यों के लिये प्रोत्साहन दिया तथा त्रुटियों के लिए स्नेहिल सुझाव दिया। गलत कार्यों से साफ इनकार करते थे और संबंधित व्यक्ति बिना नाराज हुये वापस जाता था। आप शुद्ध अध्यापक, संवेदनशील प्रशासक तथा अच्छे मानव हैं। आजमगढ़ जनपद में आज भी लोग आप को याद करते हैं तथा आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। आपके समस्त शिष्यों की तरफ से मैं आप की वन्दना करता हूँ।

—इन्द्रासन सिंह
प्राचार्य बलदेव डिग्री कालेज
बड़ागाँव, वाराणसी

१७. मेरे सुहृद अनुज डा० किशोरी लाल गुप्त

आज से चालीस वर्ष पूर्व जिसका प्रथम साक्षात्कार अकिंचन अमोले से विकास की प्रक्रिया में पल्लवित होते हुए अब एक फलदार वृक्ष बन गया है, उस सुहृद के व्यक्तित्व ओर कृतित्व पर सम्यक् प्रकाश डालना मेरे लिए सुगम कार्य नहीं हैं। इसके लिए अनुकूल फलक, वशवर्ती तूलिका और रंग-मिश्रण की कला की कुशलता अपेक्षित है। ये तीनों मेरी ग्राह्यता की परिधि से दूर हैं। ऐसे कद्दावर व्यक्तित्व को चित्रित करने के लिए जिन वजनदार शब्दों की खोज कर रहा हूँ, वे अदृश्य जल-सफरी हो

रहे हैं। कविता से काम चलने का नहीं। कविता में कल्पना के साथ नृत का योग नहीं बैठ पाता। मेरा अभिप्रेत है—अपने सुहृद के आकर्षक व्यक्तित्व का सटीक रेखांकन।

अपने लोगों के सम्बन्ध में लिखना सहज नहीं होता। कथ्य जहाँ असंतुलित हुआ, जग-हँसाई सुरसा का मुँह बन जाती है। डा० किशोरी लाल गुप्त मेरे सुहृद हैं, अनुज हैं। अनुज और अग्रज के रिश्ते में स्नेह और श्रद्धा की घुसपैठ है। किन्तु सुहृद दो अस्तित्वों को एक में चिपकाकर स्वर्ण मुद्रा बना देता है। ऐसी ही स्थिति मेरे और किशोरी लाल के बीच की है। किशोरी भी गुप्त, किशोरी के लाल भी गुप्त। मैं भी गुप्त, मेरा सुहृद भी गुप्त। 'मैं' और 'वह', दोनों एकाकार हो गये हैं। एक दूसरे के परिचय और पहिचान के लिए दोनों के मध्य कोई सीमा-रेखा नहीं रह गई है। भृंगी कीट की भाँति अपने स्वरूप में परिवर्तित कर लेना डा० किशोरी लाल के व्यक्तित्व का चुम्बकीय धर्म है। अपने सगे-सम्बन्धियों और सम्पर्क में आने वाले सुहृद जनों को वे अलगाव का तनिक भी भान नहीं होने देते।

उर्दू के सुविख्यात महाकवि दाग ने अपने सन्देश-वाहक को निर्देशित करते हुए कहा था—

"अगर नामोनिशाँ पूछे तो ऐ कासिद! बता देना।
तखल्लुस दाग़ है, औ आशिकों के दिल में रहते हैं।"

उस्ताद दाग की सर्जनात्मक संस्कृति फ़ारसी कल्चर के फलक पर उकेरी गई थी; किन्तु किशोरी लाल तो व्रजभाषा-साहित्य की भावुकता और कलात्मकता के उत्पाद की लालिमा में खिले हुए हैं। 'दाग़' बनकर, हृदय के गह्वर में बैठकर नहीं; वरन् समूचे परिचित पर्यावरण पर कविवर विहारी लाल की लाली बनकर व्यक्त हैं, छाये हुए हैं।

डा० किशोरी लाल गुप्त नर्मदेश्वर महादेव की वह बटिया हैं, जो नर्मदा के तीव्र प्रवाह में युगों-युगों तक रगड़ खाकर सुचिक्कन बनी है; जिसकी स्निग्धता की समता कलाकार की छेनी से चिकनाई गयी कृत्रिम बटिया किसी भी स्तर पर नहीं कर सकती। ये विषमताओं के साँचे में ढलकर उभरे हुए सुपूत हैं। इन्होंने जीवन में कभी भी हार नहीं मानी। परिस्थितियों की उभरी छाती को गुदगुदाते हुए, उसको प्रदत्त पीड़ा में आनन्दानुभूति करते हुए, जीवन के पल-क्षण को इन्होंने निरन्तर गति दी है। थकान और सिहरन इनके गत्यावरोध में एक पल के लिए भी सक्षम न हो सकीं। ऐसे मनीषी के अभिनन्दन में मेरे हल्के फुल्के शब्द लड़खड़ा रहे हैं।

अपनी बात कहाँ से प्रारम्भ करूँ और कहाँ पूर्ण विराम दूं, निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ। लगता है—प्रारम्भ कहीं से कर सकता हूँ। अपने सुहृद के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के जिस पहलू को पकड़ लूँ, वहीं से अथ है; किन्तु इति के मिलने का कोई

विन्दु नहीं। जिस स्थान पर पहुँचकर लेखनी आगे बढ़ने की क्षमता खो बैठे, वहीं अधूरा विराम है। डा० किशोरी लाल गुप्त ने चक्रवातों से लड़ते हुए सन् १९४२ में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके विद्यालयी शिक्षा पूरी की। रोजी रोटी के लिए सन् ४२ से ६२ के बीच. बीस वर्षों तक ज्ञानपुर, बरेली, फिरोजाबाद और आजमगढ़ में बालकों के मास्टर साहब बनकर जीविका चलाते रहे और जीवन के क्षणों को साहित्यिक परिधान पहिनाते रहे। सन् १९६२ में गाजीपुर जनपद के जमानियाँ हिन्दू डिग्री कालेज में प्रिन्सिपल बनकर आये और वहीं से नियमित जीविकोपार्जन-वृत्ति की समाप्ति हुई। जीविकोपार्जन की अवधि में विषम परिस्थितियाँ आईं, किन्तु इन्होंने अपनी नैतिकता का अवमूल्यन नहीं होने दिया। स्वविवेक से जो निश्चय किया, उस पर अडिग रहे; जिसका दृढ़तम आधार था—विश्वासों के प्रति अटूट आस्था। जीवन का विषमतम संघर्ष व्यक्ति को मानव और दानव के खानों में बाँट देता है। संघर्ष में किशोरी लाल जी मानवत्व की प्रतिमूर्ति बनकर उभरे। बाह्याडम्बर को पीठ देकर सादा जीवन और उच्च विचारों के प्रामाणिक प्रतीक बन गये। खान-पान और रहन-सहन में महात्मा गांधी के अनुयायी बने और साथ ही बन गए भारतीय संस्कृति के महान पक्षधर। प्रतिबद्धता शून्य होते हुए भी सांस्कृतिक मान्यताओं के लिए प्रतिबद्धता का भाव रखते हैं। विपत्ति के साँचे में ढला–निखरा इनका विवाद शून्य व्यक्तित्व, मैत्री के निर्वहन की सुगन्ध से चर्चित, अत्यन्त आकर्षक बन गया है। इनकी आकृति में गुरुत्व की छाप है; विद्वत्ता के भार से नेत्रों में नमन है तथा वाणी में संयम की गुरुता हैं।

डा० किशोरी लाल गुप्त खोजी मस्तिष्क वाले बहुश्रुत, बहुज्ञ और अध्ययनशील प्राणी हैं। ये अन्धी गुफाओं में विलीन अनेक प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का यश वहन करने वाले विद्वानों की अगली पंक्ति में आसीन हैं। सरस हृदय कवि के साथ-साथ रचनाकारों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखनेवाले असंपृक्त सफल समीक्षक हैं। हिन्दी में समूची विधाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले यदि एक रचनाकार की खोज की जाय तो वह एक मात्र डा० किशोरी लाल गुप्त के रूप में ही पाया जायेगा। इनके कृतित्व का प्रसार अनियन्त्रित गंगा की बाढ़ जैसा है। इन्होंने अब तक १३० अनमोल ग्रंथों की रचना की है; जिनमें २७ प्रकाशित हो चुके हैं। रचनाएँ हल्की-फुल्की नहीं हैं। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ग्रंथावली १५०० पृष्ठों में विरचित है। हिन्दी कविता का इतिहास आठ किश्तों में लिखा जा रहा है। ५ जिल्दें आकार पा चुकी हैं। दो हजार पृष्ठों से अधिक लिखा जा चुका है। 'हिन्दी कवि और काव्य' के आकार पर प्रकाश डालने का लोभ मैं नहीं संवरण कर पा रहा हूँ। सन् १९५२ में प्रारम्भ किया हुआ यह विशालकाय ग्रंथ १८ भागों में समाप्त हुआ है। सामग्री कुल १२००० पृष्ठों में समेटी गयी है। इस विद्वान लेखक के लिखने की क्षमता अकूत है, कयास से बाहर की है।

डा० किशोरी लाल गुप्त ने साहित्य की हर विधा पर लेखनी चलाई है और सफलता पायी है। ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में उल्लेखनीय काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। कवित्त और सवैया इनकी झोली के छन्द हैं। सधे छन्द और मँजी भाषा इनकी काव्य रचनाओं की विशेषता है। सफल अनुवाद-कर्त्ता हैं। अनुवाद मौलिकता का भ्रम पैदा करता है। अनेक संस्कृत ग्रंथों का पद्यानुवाद किया है। अंग्रेजी भाषा में प्रसाद जी की 'कामायनी' का पद्यानुवाद इनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिमा पर स्पष्ट उभरी हुई मुहर है। बहुचर्चित शोध समीक्षक हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों में इन्होंने अपनी पहिचान बनाई है। 'हिन्दी कवि और काव्य' तथा 'हिन्दी कविता का इतिहास' इनके गम्भीर अध्ययन तथा अथक अध्यवसाय के परिचायक हैं। साथ ही एक अच्छे ललित निबन्धकार, मनोवैज्ञानिक कहानीकार एवं सुरुचिपूर्ण नाटककार हैं। हाथी के सर्वांग से परिचित व्यक्ति ही हाथी के आकार का चित्रण कर सकता है। एक अंग टटोल कर हाथी को व्याख्यायित करना मात्र हास्यास्पद है।

डा० किशोरी लाल की काव्य-रचनाओं में सौन्दर्यात्मक अनुशीलन है। इनकी शोध-कृतियों में भी सौन्दर्य बोध ने मूर्त होकर उन मूल्यों के वाहक का काम किया है, जो अन्यथा पूरी तरह से लुप्त हो गए होते। इन्होंने जो कुछ लिखा है, मौलिक है, और बुद्धि-ग्राह्य है। इनके लेखन की विशेषता यह है कि इन्होंने बाह्य सामग्री को अपने निजी मस्तिष्क का रूप दे दिया है। इन्होंने कथ्य सामग्री प्रतीकों और अनुभूतियों द्वारा आरोपित सीमाओं के अन्तर्गत अपनी लेखन-कला में कुछ ऐसा नयापन पैदा किया है, जिसने कला के क्षेत्र में मानवीय स्वातंत्र्य के अर्थ को स्पष्ट कर दिया है। ये सुरुचि-पूर्ण रचनाकार हैं, यह तथ्य इनकी खड़ी बोली तथा ब्रज भाषा दोनों की रचनाओं में देखा जा सकता है, इनकी रचनायें रुचिशील पाठक को नए मूल्यों की ग्राह्यता प्रदान करती हैं। आलोचक के रूप मे मैंने इनको रचनाकार के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलते पाया है। इनकी समीक्षक-दृष्टि पूर्ण उदार-वादी है। रचनाकार के साथ इनकी संवेदनशीलता अन्तर्धारा की तरह लुप्त नहीं है, वरन् इनका मरहमी मूल्यांकन पूर्ण बुद्धिग्राह्य है।

डा० किशोरी लाल गुप्त आज के साहित्य-जगत में एक सर्जनात्मक जीवन जी रहे हैं। ये अपने साहित्यिक अस्तित्व की एक प्रतीक आकृति हैं। अपने निजी विचारों के आधार पर इन्होंने एक मुक्त पुरुष का स्वरूप पा लिया है। इन्होंने स्वेच्छानुकूल लेखनी चलायी है; अतः इनकी कृतियाँ महत्वपूर्ण हो गई हैं। ये स्वनियोजित रचनाकार हैं; अतः इनका सर्जनात्मक मस्तिष्क पूर्ण अनुशासित है। जीवन के अनेक टेढ़े-मेढ़े गलियारों से इनको निकलना पड़ा है। इन सम-विषम परिस्थितियों ने इनको आत्मा-विष्कार की स्थिति में पहुँचा दिया है। इसीका प्रतिफल है कि अपनी अपूर्व रचना-धर्मिता को अग्रसारित करते हुए नवीन कृति का ताना-बाना करने लगते हैं। यह स्थिति

इनको निरन्तर सक्रिय बनाये हुए है। यही प्रवृत्ति इनके मूल में बैठी हुई इनको परिचालित करती रहती है, ऐसा मेरा अपना चिन्तन है।

मैं डा॰ किशोरी लाल गुप्त के सर्जनात्मक व्यक्तित्व की धारणा को आदर देते हुए इनकी प्रतिभा को सश्रद्ध नमन करता हूँ। मुझे यह स्वीकारने में तनिक संकोच नहीं कि मैंने इनको जिस रूप में देखा है, जैसा सुना है और जो कुछ लिखा है, वह अपूर्ण है। ये मेरी कल्पना से पर्याप्त ऊँचाई पर स्थित हैं। अतः उर्दू के सुपरिचित शायर जिगर, मुरादाबादी के इस शेर को—

"जलवा बकदर जर्फे नजर देखते रहे; क्या देखते हम उनको, मगर देखते रहे।" उद्धृत करके मेरी लेखनी रुक रही है। स्नेह श्रद्धा की पुष्पांजलि से मैं अपने सुहृद-अनुज का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ, साथ ही कामना करता हूँ, इनके शतायु होने की।

श्री कृष्णराय हृदयेश
हृदयेश-पथ, नखास
गाजीपुर।

१८. अनवरत एक शोधक

इलाहाबाद से जिस व्यक्ति को मैंने पहला पत्र आजमगढ़ भेजा था, वह 'हिन्दी साहित्य कोश' के लिए रामस्वरूप जी के कहने पर 'शिवसिंह-सरोज' से संबद्ध उसके शोधक डॉ॰ किशोरी लाल गुप्त को। उस समय वे शिब्ली नेशनल कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष थे। प्रायः दिग्गज विद्वान् जिज्ञासुओं के अनवरत पत्रों के बाद कहीं चुटकी भर पंक्तियों में उन्हें निपटा कर छुट्टी पा लेते हैं या अनुत्तरित उपेक्षित छोड़ भी देते हैं। लेकिन सर्वथा अपरिचित गुप्त जी ने अविलंब उत्तर ही नहीं दिया, जिज्ञासा का पूरा समाधान भी किया।

मेरे बचपन के एक सहपाठी मिश्र जी शिब्ली में बी॰ ए॰ के मेधावी छात्र थे। गर्मियों में एक बार इलाहाबाद से गाँव आने पर उनके गाँव उनसे मिलने गया। दिन भर उन्हींके साथ रहा। मिश्र जी ने मुझे अपने कालेज की पत्रिका दिखाई। उस पत्रिका में 'कामायनी' का अंग्रेजी मीटर में बड़ा सधा अनुवाद पहली बार देखकर प्रीतिप्रद विस्मय हुआ। अनुवादक थे वही शोधक डॉ॰ किशोरी लाल गुप्त। मेरे लिए यह अजूबे की एक साथ दो बातें थीं : एक तो यह कि 'कामायनी' का इंग्लिश में अनुवाद कैसे संभव है? दूसरी बात यह कि हिन्दी का शोधवृत्ति का नीरस प्राणी सरस

छंदों में इंग्लिश में 'कामायनी' जैसी जटिल कृति का अनुवाद कैसे कर सकता है। यों भी एक भाषा से दूसरी भाषा में रचना की संपूर्ण आत्मा सुरक्षित रह पाती है, इसमें मुझे आज तक संदेह है। लेकिन वह अनुवाद मुझे विस्मय-विभोर कर गया।

सन् ७१ में जब मैं अध्यापन के लिए आजमगढ़ आया, कृपा पूर्वक प्राचार्य डॉ० शिवनारायण लाल श्रीवास्तव ने हरिऔध कला भवन के मंत्री श्री विजयनारायण सिंह को पत्र लिखकर उसके 'अतिथि भवन' में मकान न मिलने तक मेरी आवास-व्यवस्था करा दी। उस अतिथि-कक्ष में मुझे 'हरिऔध' नामक एक पत्रिका के नौ अंक मिले, जिसके अवैतनिक संपादकों में डा० किशोरीलाल गुप्त जी थे। अन्य संपादकों में प्रयाग विराजे पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र और अनेक भाषाविद, विधिवेत्ता, कवि श्री शैदा जी भी थे। यह पत्रिका अक्तूबर १९५७ ई० में निकली थी। मैं रोज ये अंक पढ़ने लगा। और उपलब्ध सारे अंक पढ़ गया। रवीन्द्र भ्रमर, क्षेम जी और शतानंद की कविताएँ, महापंडित केशव प्रसाद मिश्र का प्रसाद पर लेख, हरिऔध जी संबंधी पत्राचार, भक्त जी से गुप्तजी का साक्षात्कार, नूरजहाँ पर आचार्य द्विवेदी और आचार्य शुक्ल के लेख और आधुनिक साहित्य पर उत्तेजक-आकर्षक टिप्पणियाँ देखकर मैं पत्रिका और शैदा जी तथा गुप्त जी के संपादन पर मुग्ध उनके दर्शनों के लिए व्यग्र हो उठा। 'हरिऔध' में गुप्त जी, शैदा जी, गिरीश जी, वार्ष्णेय जी, कालिका सिंह, अष्ठाना जी और एक 'ग्रंथकीट' (संभवतः गुप्त जी ही) के आलोचनात्मक, इतिहासात्मक, शोधात्मक, भाषा परक लेखों के अतिरिक्त मायकोव्स्की, तॉल्स्तॉय की अनूदित रचनाएँ और सेठ गोविंददास द्वारा लिखित हरिऔध जी पर स-पत्र संस्मरण, महादेवी जी के चित्रों पर एक लेख और स्वास्थ्य संबंधी लेख भी थे। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय पर सम्पादकीय, हिन्दी पर राजगोपालचारी का लेख, 'चार' पर हरिऔध जी का प्रसिद्ध निबंध और अल्लामा हाली का लेख मेरे लिए विमुग्धकारी थे। श्री मुखराम सिंह द्वारा लिखित प्रसिद्ध शायर सुहेल से पहली बार परिचय हुआ। श्रीरामकृष्ण मणि त्रिपाठी को मैंने 'हरिऔध' से ही जाना। डा० कन्हैया सिंह भी गुप्त जी के संपादन में प्रकाशित थे। आजमगढ़ की गंगा-जमुनी संस्कृति के प्रति आकर्षण और उसकी परंपराओं का ज्ञान हरिऔध' से ही हुआ। बाद में तीन अंक डा० कन्हैया सिंह ने भी निकाले।

शाम को हरिऔध पुस्तकालय में श्री फूलवदन सिंह जैसे स्वतंत्रता-सैनिक से, जो पुस्तकालयाध्यक्ष थे, मेरी जिज्ञासाओं का शमन होता था। उन्हींसे विदित हुआ कि गुप्त जी अब शिब्ली से अवकाश प्राप्त कर जमानियाँ चले गये हैं—प्राचार्य होकर, कि गुप्त जी ही 'हरिऔध' की सामग्री एकत्र करते, लिखवाते, बिसर जाने वाली चीजें प्रकाशन के लिए ढूंढ़ निकालते और स्वयं संपादन का संपूर्ण कार्य करते। उनकी शोधक किंतु उदार दृष्टि संपादन में भी दिखायी देती। फूलबदन जी ने 'भक्त-गोष्ठी' का भी जिक्र किया, जिसमें गुप्त जी, शैदा जी, भक्त जी, विजयनारायण जी तथा उदीयमान

कवि-कथाकार भाग लेते थे। इन्होंने मुझे अपना लिखा दो खंडों में प्रकाशित आजमगढ़ के शहीदों का इतिहास भी पढ़ने को दिया। बाद में मयंक जी से मालूम हुआ कि भक्त जी आजमगढ़ में ही रहते हैं—बहुत पास। उनके यहाँ गुप्त जी प्रायः आते हैं। दोनों में गहरी छनती है। दोनों मित्र हैं और अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार संस्मरणों के आकर हैं, तन्मय होते ही नहीं, तन्मय करते भी हैं। मयंक जी ने ही भक्त जी से, शैदा जी से, विजयनारायण जी से और अंततः गुप्त जी से मिलाया भी। मयंक जी से ही ज्ञात हुआ कि गुप्त जी व्रजभाषा के कवि भी हैं। उनकी कविताएँ मैंने पढ़ीं भी। उनके शोध-लेख और इतिहास संबंधी ग्रंथ तो क्रमशः पढ़ता ही था। पर देखकर वे इतने सामान्य, इतने सरल लगे कि एक बार विश्वास तक नहीं हुआ कि यह व्यक्ति हिन्दी और अंग्रेजी का एम० ए० है, हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास और उसके लेखक ग्रियर्सन पर गंभीर गवेषणा कर चुका है, अनेक शोध-ग्रंथ रच चुका है, भक्त जी पर एक पुस्तक संपादित कर चुका है और भक्त जी क्यों फिदा हैं इस दंतखोड़े बुढ़वे पर; पर जनाब, बात होते ही, वचन-वक्रता, लक्षणा और व्यंजना, एक से एक नयी खोज पूर्ण जानकारियाँ उस सामान्य को असामान्य, उस सरल को ज्ञान संपन्न, उस सहज को जिज्ञासु-केन्द्रित गरिमा से मंडित कर देने लगती थीं। यह स्थिति अद्यावधि एवं सतत है। वे अब वाल्मीकि आश्रम के सर्वस्व हैं—वास्तविक सर्वस्व।

भक्त जी के साथ वे कृपापूर्वक मेरे घर पर पधारे थे। एकाध बार उन्हें बुढ़ापे में सीढ़ियाँ चढ़ने का भी कष्ट उठाना पड़ा था। वे प्रायः अपने अभिन्न मित्र प्रसिद्ध सेल्स-टैक्स एडवोकेट श्री कन्हैया लाल जी गुप्त के यहाँ रुकते है। हर पीढ़ी उन्हें श्रद्धा देती है और उनके दर्शन तथा वार्ता-सुख का आनन्द प्राप्त करती है। वे सहज सुलभ हैं, क्योंकि निरभिमानता की प्रतिमूर्ति हैं। मुझे आजमगढ़ में उनके अभिनंदन में भाग लेने का भी सौभाग्य प्राप्त है और उन्हींके संचालन में भक्तजी के प्रति स्वयं का लिखा अभिनंदन-पत्र भी पढ़ने का सुयोग मिला है। उन्होंने मुझे अपनी एक पुस्तिका भी भेंट की है और मेरे घर अपना जूठन भी गिराया है। उन्हें दाल नहीं पसन्द है।

यह एक अद्भुत संयोग है कि उनके और क्षेम जी के साथ एक समारोह में भी सम्मिलित होने का सुअवसर मुझे मिल चुका है। वह प्रातःकाल उनकी बातों की कविजनोचित व्यंजनाओं के कारण मुझे सदा स्मरण रहेगा। उनकी तुकांत, अनुप्रासात्मक व्यंजनाचारु बतकही अमृत-कुंड-सी अर्थ-संभार से उन्हींकी तरह विनीत किंतु अगाध होती है। ऐसा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र में ही देखा।

वे कभी-कभी मेरे विभाग में भी आने की कृपा करते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहासों के इतिहास और सूरदास पर छात्रों को संबोधित करते हुए हम अध्यापकों को भी नयी जानकारियाँ देते रहे हैं। सूर कई हुए हैं, प्रमाण सहित उन्हीं से जाना।

एक अद्‌भुत संयोग और। मैं अपने कविता-संग्रह 'शब्दों की शताब्दी' के प्रूफ-संशोधनार्थ स्मृति-प्रकाशन के मालिक अपने मित्र के यहाँ ठहरा था। एक दिन रात को डा० किशोरी लाल गुप्त वहाँ आये। मेरे मित्र ने उन्हें भोजन कराया। गुप्त जी ने सहज प्रसन्न सनातन मुद्रा में बताया कि स्मृति-प्रकाशन से उनकी कई पुस्तकें एक साथ छप रही हैं। फिर बताया कि मैं यहाँ केवल रात्रि में भोजन करता हूँ। सम्मेलन के सत्यनारायण कुटीर में ठहरा हुआ हूँ। मैंने अपनी किताब की चर्चा की। तपाक से हँसते हुए बोले : मैं नये कवियों को नहीं पढ़ता। मैंने भी हँसते हुए कहा : घबरायें नहीं, न कविताएँ सुनाऊँगा, न पुस्तक भेंट करूँगा।

दूसरे दिन सत्यनारायण कुटीर गया। थे नहीं। मैंने थोड़ी ही प्रतीक्षा की कि मूली, गाजर, धनिया, सोवा हाथ में लिये गुप्त जी हाजिर। बोले : सुबह गंगा-स्नान करने जाता हूं और इस समय यही मेरा आहार होता हैं। मुझे यह आहार पवित्र, सुस्वादु और स्वास्थ्यप्रद प्रतीत होता है। फिर बोले : फिर दिन भर काम करता हूँ।

ऐसे कामी अब विरल हैं, जिनके प्रति न केवल श्रद्धाभिभूत बना रहा जा सके, वल्कि जो जीवन, आचरण, चिन्तन, कर्म और शब्द-शब्द से प्रेरणा के जीवन स्रोत बने रह सकें। गुप्त जी ऐसे ही चिरन्तन विद्यमान गतिमान प्रेरणा-स्रोत हैं—जीवित और जीवन्त--स्वयं ही नहीं—सबके लिए।

—श्रीराम वर्मा

ए-९, पन्नालाल कालोनी
सिविल लाइन्स
आजमगढ़-२७६००१

१९. अत्यद्‌भुत प्रतिभा

डॉ० किशोरी लाल गुप्त मेरे अग्रज एवं सहपाठी हैं, मिडिल स्कूल स्तर से लेकर विश्व विद्यालय स्तर तक। उनकी दुबली-पतली क्षीण सी काया में जाने कहाँ से इतनी प्रतिभा आ समाई है? वे अति अद्‌भुत मेधा के धनी साहित्यकार हैं।

श्री गुप्त जी का जन्म वाराणसी के सुघरै ग्राम में एक साधारण परिवार में १९१६ ई० में हुआ। प्रारंभ में घर की स्थिति साधारण काम-चलाऊ सी थी। लक्ष्मी एवं सरस्वती की प्रतिद्वंदिता तो सर्व विदित ही है, किन्तु लक्ष्मी की अकृपा श्री गुप्त के अध्ययन एवं विद्यार्जन में आड़े न आ सकी—वे कभी भी विचलित एवं निराश नहीं

हुए । अपनी प्रतिभा ,लगन तथा अध्यवसाय के बल-बूते उन्होंने सर्वोच्च स्तर को शिक्षा की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की ।

श्री गुप्त ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्थागत छात्र के रूप में बी० ए० आनर्स, एम० ए० (अंग्रेजी) तथा बी० टी० की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम० ए० (हिन्दी) की भी परीक्षा उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय से ही व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। बी० ए० आनर्स भी उन्होंने वहीं से १९४० ई० में किया। उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय में आनर्स को परीक्षा के लिए मार्ग-निर्देशन एवं पठन-पाठन के लिए कोई सुचारु व्यवस्था न थी। बी० ए० की परीक्षा-के उपरान्त मात्र १० दिनों के स्वाध्याय के बल पर श्री गुप्त ने बी० ए० आनर्स कर लिया, जो उस समय एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। कालान्तर में उन्होंने हिन्दी में ही पी-एच० डी० एवं डी० लिट० की उपाधियाँ भी प्राप्त कर लीं।

संस्कृत एवं उर्दू में भी श्री गुप्त को अच्छा ज्ञान प्राप्त है।

साधारण आर्थिक स्थिति के बावजूद श्री गुप्त का पारिवारिक वातावरण शान्त, सरल एवं मधुर रहा है। माता-पिता के इकलौते पुत्र होने के नाते उनका भरपूर स्नेह उन्हें सदा सुलभ रहा है। पिताजी सौम्य प्रकृति के एक सुशील व्यक्ति थे, जो सदा अपने पारिवारिक धन्धों में लगे रहते थे और उसीसे उनके परिवार का भरण-पोषण भली-भाँति हो जाता था। माता जी का स्वभाव मृदु एवं स्नेहिल था। यदा-कदा उनका साक्षात्कार होने पर स्नेहमय मृदुल आशीष की जो वर्षा होती थी, वह अद्यावधि भी भुलाए नहीं भूलती। हम प्रायः एक दूसरे के यहाँ जाते आते रहे हैं, जिससे घनिष्ठता एवं पारिवारिक वातावरण बन गया था। श्री गुप्त अपने निजी परिवार, पत्नी एवं बच्चों के प्रति भी सदा प्रसन्न एवं सुखी रहे हैं। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि की उन्होंने अच्छी व्यवस्था की थी। अब तो सभी बच्चे सयाने एवं स्वावलम्बी हो चले हैं।

श्री गुप्त स्वयं भी सरल, सुशील, उदार एवं मिलनसार प्रकृति के महामानव हैं। आर्थिक उलझनों पर भी उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। दूसरों की ही यथासंभव सहायता उन्होंने सदा की। वे एक सामाजिक प्राणी हैं। वे अपने मित्रों, सहयोगियों एवं परिचितों से बराबर मिलते-जुलते रहते हैं। इस वृद्धावस्था में भी वे साहित्यिक आयोजनों, गोष्ठियों आदि में सम्मिलित होने में कोई कोताही नहीं करते। साहित्यिक संरचना, परीक्षाओं की सफलता संबंधी उनका मार्ग-दर्शन एवं सहयोग सदा ही स्तुत्य रहा है। उनकी इस उदार प्रवृत्ति से अनेक लोग लाभान्वित हो चुके हैं और हो रहे हैं।

विद्याध्यायन के बाद कुछ दिनों तक श्री गुप्त इधर-उधर की कई शिक्षा-संस्थाओं में अल्प काल तक कार्यरत रहे। उसके बाद वे फिरोजाबाद के एक इण्टर कालेज में

अंग्रेजीके प्राध्यापक नियुक्त हो गये। वहाँ तीन वर्षों तक सेवा करने के बाद वे शिवली डिग्री कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हो गये। एक लम्बी अवधि तक वहाँ कार्य करने के बाद वे हिन्दू डिग्री कालेज जमानिया, गाजीपुर के प्राचार्य पद पर नियुक्त हो गये। वहीं से वे १९७५ ई० में सेवा-निवृत्त हुए। इस प्रकार शिक्षा-जगत की लम्बी एवं यशस्वी सेवा द्वारा उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्यों की एक लम्बी कतार खड़ी कर दी।

साहित्य की ओर श्री गुप्त का रुझान बाल्यकाल से, प्राथमिक विद्यालय स्तर से ही रहा है। इसकी प्रेरणा उन्हें अपने तत्कालीन गुरुजनों एवं अध्यापकों से मिली जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। अवसर आने पर वे प्रायः इनकी चर्चा ससम्मान कर अपने को गौरवान्वित मानते हैं।

विद्यार्थी जीवन में ही श्री गुप्त हस्त लिखित "हिन्दी" पत्रिका का सम्पादन अपने कुछ मित्रों के सहयोग से करते थे। हाई स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक यह योजना सफलता पूर्वक चलती रही। उसमें उच्चकोटि की रचनाओं का ही समावेश होता था, जो आज भी प्रासंगिक एवं उपादेय हैं।

साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर श्री गुप्त ने सफलता पूर्वक लेखनी चलाई है---कविता, कहानी, एकांकी, साधारण निबंध, समालोचनात्मक लेख, शोध संबंधी साहित्य आदि। वे रचनायें सामयिक एवं उच्च स्तर की हैं। उनकी विशद-व्याख्या यहाँ संभव नहीं है। कवितायें मुख्यतः खड़ी बोली में हैं, जिनमें विभिन्न एवं नवीन छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है। कुछ कवितायें व्रज भाषा में भी हैं। कविताओं के कई ग्रंथों का प्रकाशन भी हुआ है—कवितायें सुबोध एवं हृदय स्पर्शी हैं। उनके कुछ उच्च कोटि के प्रकाशित ग्रंथों का साहित्य जगत में बड़ा सम्मान हुआ है। यों तो श्री गुप्त की सभी प्रकाशित अप्रकाशित रचनायें उच्च स्तर की एवं स्तुत्य हैं, किन्तु प्राचीन साहित्य संबंधी उनका शोध कार्य एवं तद्विषयक प्रकाशन कार्य साहित्य की अपूर्व देन हैं। इस प्रकार के उनके कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। अब तक श्री गुप्त ने १३१ ग्रंथों का प्रणयन किया है जिनमें मात्र २७ प्रकाशित हो सके हैं।

श्री गुप्त जी प्रचार एवं प्रसार की दुनिया से प्रायः दूर ही रहे हैं। सम्प्रति प्रकाशन की जटिल समस्या से प्रायः सभी अवगत हैं। इसी कारण श्री गुप्त जैसे मेधावी, प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार का अपेक्षित प्रचार एवं प्रसार न हो सका।

इस वृद्धावस्था में भी श्री गुप्त की पवित्र साहित्य-सरिता अजस्र गति से गतिमान है, कोई व्यवधान उन्हें स्वीकार नहीं है। स्थानीय सीतामढ़ी (वाराणसी) के बाल्मीकि आश्रम को उजागर कर शासन द्वारा उसे पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित

करने की योजना के कार्यान्वियन में भी श्री गुप्त की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। वे उस संस्था के अध्यक्ष हैं।

सरस्वती के ऐसे वरद-पुत्र मेधावी एवं प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार के प्रति समाज एवं साहित्य जगत चिरऋणी रहेगा।

अन्त में मैं श्री गुप्त जी के प्रति 'जीवेत् वर्षं शतम्' की कामना करता हूँ।

—केदार नाथ शुक्ल
भूतपूर्व प्रिंसिपल राजकीय इंटर कालेज,
तिउरानी टोला, मीरजापुर
११-१-८८

२० साहित्य-रसिक डॉ० किशोरीलाल गुप्त

[नर्मदेश्वर चतुर्वेदी]

डॉ० किशोरी लाल गुप्त स्वभाव से ही साहित्यिक रसिकता से ओतप्रोत हैं और उनकी यह रसिकता ही उन्हें सहृदय जनों के मानस में स्नेह-सम्मान का अपना स्थान दिला देती हैं। साहित्य-चर्चा में वे प्रायः इतने तन्मय हो जाते हैं कि अन्य विषयों के लिए उन्हें अवकाश ही नहीं मिल पाता और कभी-कभी तो वे नितान्त निजी आवश्यकताओं की सुध-बुध तक गँवा बैठते हैं। उनकी यह धुन और लगन कई रूपों में पायी जाती है। अपनी सुरुचि की भावप्रवणता एवं प्रामाणिकता के प्रवाह में वे सजग भाव से शोध-कार्य की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। इसके लिए उन्हें अन्वेषण और अध्ययन का आश्रय लेना पड़ता है, जिसके लिए वे सर्वथा सक्षम हैं। वे नई सामग्री की टोह में रहते हैं और पता चल जाने पर उसे यथाशीघ्र उपलब्ध करने के लिए अपनी अन्य आवश्यकताओं में कटौती करने को अनायास ही तैयार एवं तत्पर हो जाते हैं। वे अपनी धुन के इतने धनी हैं कि उन्हें अपनी सुख-सुविधाओं तक की चिन्ता नहीं रह जाती।

साहित्य में भी डा० गुप्त की रुझान जितनी रीति-काव्य के प्रति है, उतनी किसी अन्य साहित्यिक विधा या प्रवृत्ति की ओर नहीं। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी चित्तवृत्ति जितनी रूपासक्त श्रृंगार में रमती है, उतनी भाव-सौन्दर्य में नहीं। भाव से अधिक भाव-भंगिमा उनके चित्त को लुभाती है। इस

प्रकार वे मूलतः कला-पक्ष के रसिक ठहरते हैं। नायक-नायिका भेद और नख-शिख वर्णन का आकर्षण भी उनकी इसी मनोवृत्ति का द्योतक है। उन्हें रस से भी अधिक अलंकार प्रिय हैं। इस उक्ति का अभिप्राय यह कदापि नहीं कि अन्य रसों के प्रति उनके मन में वितृष्णा है। ऐसा मानना उन्हें गलत समझना होगा। उनके बारे में निर्भ्रान्त रूप से हम यही कह सकते है कि उनका मन जितना शृंगार-रस में रमता हैं उतना अन्य रसों में नहीं। इसका कारण उनकी व्यक्तिगत रुचि से कम महत्वपूर्ण उनका शास्त्रीय संस्कार नहीं है, जो उन्हें गुरु-परम्परा से प्राप्त है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का स्नेहसिक्त सान्निध्य उन्हें इस ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा बराबर प्रदान करता रहा हैं। इसका स्वरूप रोति-विज्ञान और शैली-विज्ञान से भिन्न और स्वतंत्र है। इसका अपना शास्त्र है।

शास्त्रीयता का यह आग्रह काशी की अपनी विशेषता बन गयी है। शास्त्र-निष्ठा और साधना-प्रियता वहाँ के संस्कार में रच-पच गई है। परन्तु उनकी साधना अभ्यास की उपज न होकर, विश्वास मूलक रही है। इस प्रकार रीति काव्याभ्यास धर्म-साधना का स्थान नहीं ग्रहण कर सकता है। धर्म-साधना मात्र चित्त-वृत्तियों का व्यापार नहीं है। वह चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने का साधन है। ऐसे लोगों को अनुभूति की अपेक्षा अभिव्यक्ति अधिक प्रिय है, जो कला-पक्ष से कहीं अधिक भाव-पक्ष का संबल हैं। भावोद्रेक बदलते सामाजिक सन्दर्भों द्वारा स्फूर्त है, जब कि कला-पक्ष विभिन्न श्रोतों द्वारा उपार्जित। इस प्रकार कला जहाँ कृत्रिम है, वहीं भाव स्वाभाविक। इन दोनों के सान्निध्य, साहचर्य और सहयोग से सृष्टि-विधान द्वारा सौन्दर्य प्रस्फुटित होकर निखार पाता है। सौन्दर्य सहज है और शृंगार अलंकरण आश्रित। यहां रुचि, संस्कार और स्वभाव का अन्तर स्पष्ट है। संस्कृति स्वभाव की प्रेरणा द्वारा प्राप्त होती हैं, जबकि रुचि और संस्कार में कुरुचि तथा कुसंस्कार उत्पन्न होने की सम्भावना निहित रहती है। संस्कृति में ऐसा कुछ नहीं।

लाला भगवान दोन के प्रमुख शिष्यों में देवाचार्य जी, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री मुरारी लाल केडिया के अतिरिक्त मेरे चचेरे भाई श्री रमाकान्त चौबे भी थे, जिन्होंने मिलजुलकर "भूषण ग्रंथावली" का संपादन किया था। इनमें से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की शिष्य-परंपरा में किशोरी लाल जी भी हैं। जहाँ तक स्मरण है, उनके स्थान पर ही गुप्त जी से सर्व प्रथम मेरी भेंट हुई थी। उस दिन आचार्य जी के घर में कोई पारिवारिक समारोह था, जिसमें सम्मिलित होने के लिए भैया (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी) ने मुझे बलिया से भेजा था। वह समारोह क्या था, साहित्यकारों का पूरा जमावड़ा था। यह परिचय दिनोंदिन गहराने लगा और हम उत्तरोत्तर निकट आने लगे। रीति-काव्य में मेरी उतनी रुचि नहीं थी, जितनी राष्ट्रीय कविताओं अथवा भक्ति-काव्य में। रीति-काव्य में मुझे उस जीवन संघर्ष की प्रेरणा का अभाव दीखता था,

जो मुझे सदा प्रिय रहा हैं। वह मुझे सुख-सुविधा भोगी लोगों की छाया दिखाई देता रहा है। उससे अच्छी तो वह प्रेममूलक अथवा स्वच्छन्द रचनाएँ लगती रही हैं, जिनमें त्याग तथा उत्सर्ग की भावनाएं अनुप्राणित रही हैं। परन्तु इससे हमारे संपर्कों अथवा संबंधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है, क्योंकि हम यह जानते और मानते हैं कि साहित्य में मनुष्य की विभिन्न वृत्तियों का ही निदर्शन है, चाहे वह पैत्रिक हो या शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक हो या सौन्दर्यनिष्ठ आध्यात्मिक।

डॉ० किशोरी लाल जी जिन दिनों विद्यार्जन कर रहे थे, उन दिनों काशी में प्रसाद जी तथा प्रेमचन्द जी का तेज तप रहा था और अलंकारवादी लाला भगवान दीन एवं रसवादी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की तूती बोल रही थी। दोनों की ही अपनी-अपनी शिष्य मंडलियाँ थीं और दोनों के ही अपने-अपने खेमे थे। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में शीर्ष-स्थान पर थे और दोनों में से किसी एक के सम्पर्क या सान्निध्य में आना बड़े गर्व और गौरव की बात थी। इनका प्रिय पात्र बनना तो विरले को ही सुलभ था, यद्यपि बहुतों ने अपने-अपने बारे में बहुत गलतफहमियां पाल रखी थीं। लाला भगवान दीन के प्रिय शिष्य आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का प्रिय पात्र बनने का सुयोग डॉ० किशोरी लाल जो गुप्त को मिला, जिन्हें आचार्य जी के मरणोपरान्त उनका सहज ही उत्तराधिकार प्राप्त हो गया है। ऐसे समर्पित साहित्यकार का अहेतुक स्नेह मुझे सहज ही सुलभ हो गया, जो मेरी अक्षय निधि बन गया है।

२२१ चक, इलाहाबाद-३

२१. वाल्मीकि आश्रम और डा० गुप्त

(श्री रामाचार्य पाण्डेय, मंत्री वाल्मीकि आश्रम-व्यवस्था समिति सीतामढ़ी, डीघ, वाराणसी)

डा० किशोरी लाल गुप्त का सीतामढ़ी से सम्बन्ध उनके बचपन में ही बन गया था। सीतामढ़ी के पश्चिम बनकट नामक गाँव में इनका ननिहाल रहा है। इनकी माँ को मेले-ठेलों से कोई विशेष लगाव नहीं था। वह केवल एक मेला देखती थीं। वह था आषाढ़ सुदी नौमी को लगने वाला सीतामढ़ी का मेला। यहाँ वे हर साल आती थीं। लालच नैहर के सभी लोगों माँ, बाप, भाई, बहन और इतर जनों से भेंट का था। इस मेले में बालक किशोरी लाल अपनी माँ के साथ बराबर आया करते थे और सीता माता के इस स्थान से बाल्यावस्था में ही उनका भावात्मक सम्बन्ध बन गया था।

जब गुप्त जी बड़े हुए, उन्होंने इस स्थल के सम्बन्ध में चिंतन-मनन प्रारम्भ किया। यह स्थल सीतामढ़ी नाम से ही जन-साधारण में प्रसिद्ध है। गुप्त जी ने महर्षि वाल्मीकि की महत्ता का अनुभव करते हुए इस स्थल का नाम 'वाल्मीकि आश्रम : सीता· मढ़ी' रखा और इसी नाम से उन्होंने ३२ वर्ष की वय में एक लघु शोध-निबन्ध लिखा था, जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५३, अंक ३-४, सम्वत् २००५ में प्रकाशित हुआ। गुप्त जी का यह प्रथम शोध लेख है। इसी वर्ष गुप्त जी जुलाई ४८ में शिवली कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर आये थे।

इस शोध लेख में गोस्वामी तुलसीदास की कवितावली उत्तर काण्ड, कबित्त १३८, १३९, १४० के आधार पर इस स्थल को वाल्मीकि आश्रम सिद्ध किया गया है और कवितावली की—

वारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि—

को परम प्रमाण रूप में स्वीकार किया गया है। इस लेख में डा० गुप्त केवल तुलसी तक सीमित हैं। यह लेख किंचित भावोच्छ्वास पूर्ण भी है। यह लेख शुद्ध शोध-चिंतन की दृष्टि से लिखा गया था। बाद में इसमें वाल्मीकि रामायण का भी प्रमाण जुड़ गया।

संवत् २०३१ में मानस चतुश्शती समारोह की योजनाएँ जोर शोर से सम्प्रसारित हुईं। इस दिशा में डा० गुप्त ने अपने ढंग से योग दिया। सम्वत् १६२८ में गोसाईं तुलसीदास वाल्मीकि आश्रम में आये थे, यहीं तीन दिन रुककर उन्होंने कवितावली के तीनों कवित्त लिखे थे और यहीं उन्हें भाषा में रामायण—रामचरित मानस—लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। काशी, अयोध्या, चित्रकूट के समान ही सीतामढ़ी का भी गोस्वामी जी के जीवन से विशेष सम्बन्ध है। अतः मानस चतुश्शती समारोह के अवसर पर सीतामढ़ी की भी अच्छी चर्चा होनी चाहिए। इस दृष्टि से डा० गुप्त ने कार्य आरम्भ किया।

पहला काम उन्होंने यह किया कि काशी से अभिनव भरत आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी को उनके परिकर के साथ कार पर भाद्रपद शुक्ला तीज, हर तालिका के दिन (१० सितम्बर १९७२ ई०) इस आश्रम में लाए। उन्होंने महन्त जी से चतुर्वेदीजी का परिचय कराया। यहाँ गुप्त जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित अपना लेख पढ़कर एक स्पष्ट पृष्ठ-भूमि बनाई। चतुर्वेदी जी ने काशी वापस जाकर एक लेख लिखा—'वाल्मीकि आश्रम, जहाँ लवकुश का जन्म हुआ था'। यह लेख जनवार्ता (काशी २४ सितम्बर), आज (काशी), भारत (प्रयाग २४ सितम्बर), नव भारत (नागपुर, दीपावली विशेषांक १९७२), स्वतन्त्र भारत (लखनऊ) में प्रकाशित

हुआ। चतुर्वेदी जी के इस लेख की चतुर्दिक चर्चा चली और हमारे वाल्मीकि आश्रम के प्रचार में इससे प्रचुर सहायता मिली।

डा० गुप्त ने १९७३ में 'वाल्मीकि आश्रम:सीतामढ़ी' नामक एक लघु पुस्तिका प्रकाशित की। प्रकाशक था—साहित्य सेवक कार्यालय, जालपा देवी वाराणसी-१। इसमें मुख्य अंश तो डा० गुप्त का पूर्व लेख ही है, जो अब भवानी दास के गोसाई चरित (स० १८२५) एवं तथाकथित वेनीमाधव दास के मूल गोसाइँ चरित (१९०० ई०) के आधार पर किंचित परिवर्धित हो गया है। परिशिष्ट में चतुर्वेदी जी वाला लेख भी दे दिया गया है।

गुप्त जी १९७७ ई० से प्रयाग के माघ मेले में हर साल सपत्नीक कल्पवास करते हैं। इस मेले में उन्होंने साधु सन्तों में अपनी यह पुस्तिका हर साल वितरित की है। अब उनके पास इसकी एक ही प्रति रह गई है।

मानस चतुश्शती समारोह का एक समायोजन ज्ञानपुर के साहित्यकारों एवं अधिकारियों, विशेषकर एस० डी० एम० शम्भुनाथ जी की प्रेरणा से चैत सुदी नौमी को वाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी में हुआ। इस अवसर पर मेरी प्रेरणा से श्री रामदेव अम्बष्ट ने डा० गुप्त को मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित होने के लिए आहूत किया। डा० गुप्त हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ से पधारे और इस समारोह में अपना योग दिया।

चैत राम नौमी का यह मेला कई वर्षों तक सोत्साह चला। इसके दूसरे वर्ष १९७४ के आयोजन में डा० गुप्त पुनः सीताराम जी चतुर्वेदी को यहाँ लाये। पहली बार तो चतुर्वेदी जी गुप्त जी के प्रयास से अज्ञात रूप से ही आये थे। इस बार भी डा० गुप्त के प्रयास से ही आये, पर सुज्ञात रूप में। इस समारोह में उक्त समय के क्षेत्रीय सांसद अजीज इमाम भी मीरजापुर से पधारे थे। यहीं चतुर्वेदीजो ने भरी सभा में स्पष्ट घोषणा की थी कि गोस्वामी जी की मुहर 'बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि' के रूप में जिस स्थान पर लग चुकी है, उसे उसके अधिकार से कोई च्युत नहीं कर सकता।

डा० गुप्त अपने साहित्यिक मित्रों को इस स्थल पर लाने का प्रयास करते रहते हैं। १९७४ ई० में आषाढ़ की नौमी के मेले में यह मथुरा के प्रसिद्ध प्रो० जय कुमार मुद्गल को लाए थे। मुद्गल जी गुप्त जी के छोटे पुत्र चि० रवीन्द्र गुप्त के विवाह में सम्मिलित होने के लिए पधारे थे। गुप्त जी के प्रयास से आजमगढ़ के आयकर के प्रसिद्ध अडवोकेट श्री कन्हैया लाल भी यहाँ पधारे। हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र भी गुप्त जी द्वारा यहाँ लाये गये। वे एक रात यहाँ रहे भी। मिश्र जी को डा० गुप्त यहाँ दो उद्देश्यों से लाये थे। एक तो उनका सेनापति कर्ण या कालजयी काव्य अधूरा रह गया है। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद उनकी कलम ही नहीं

उठी। ग्रंथ के सवा आठ सर्ग लिखे जा चुके हैं। केवल पौने दो सर्ग लिखे जाने शेष थे, जो सदा के लिए अनलिखे ही रह गये। यदि मिश्र जी स्थायी रूप से आदि कवि के इस आश्रम में महीने दो महीने रह जाते, तो निस्सन्देह उनका काव्य पूरा हो जाता। दूसरे गुप्त जी चाहते थे कि मिश्र जी सीता-वनवास को लेकर एक नाटक लिख दें, जो हाई स्कूल या इण्टर के पाठ्यक्रम में आ जाए। इससे हमारे इस आश्रम का पूरा प्रचार प्रसार हो जाता। पर यह कार्य भी नहीं हो सका और मिश्र जी दिवंगत हो गये। इस वर्ष डा० गुप्त भागलपुर के अपने समधी श्री आनंदी साहू को भी आश्रम में ले आये थे।

१९७४ में मैं इस क्षेत्र से जनसंघ की ओर से एम० एल० ए० का चुनाव लड़ रहा था। इस चुनाव-चक्र में ही मैं इस स्थल के सम्पर्क में आया। ज्ञात हुआ कि यह स्थल आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है, सीता की निर्वासन-स्थली है, लवकुश की जन्म-भूमि है। पर मुझे इसका प्रमाण नहीं मिल रहा था। इसी बीच डा० गुप्त की पुस्तिका उन्हींसे मिली और मुझे परम प्रमाण मिल गया। मुझे संतोष हो गया।

१९७४ ही में हम लोगों ने यहाँ लवकुश विद्यापीठ की स्थापना की, जिसमें दसवें कक्षा तक की पढ़ाई होती हैं। इस विद्यालय को स्थायी मान्यता दिलाने में डा० गुप्त का पूर्ण योग रहा है।

लगभग उसी समय से ही, १९७४ से ही, यहाँ वाल्मीकि व्यवस्था समिति नामक एक पंजीकृत संस्था हैं, जो उक्त विद्यालय चलाती है और आश्रम के अभ्युत्थान के लिए बराबर चिंतन-मनन में रत रहती है। डा० गुप्त इस समिति के अध्यक्ष हैं, मैं मुख्य मंत्री हूँ और पं० अमर नाथ मिश्र महन्त कोषाध्यक्ष हैं।

डा० गुप्त अब ७३ वर्ष के हो गये हैं। यह साइकिल भी चलाना नहीं जानते। इनका घर भी आश्रम से प्राय: १२-१३ किलोमीटर दूर है। फिर भी आश्रम के कार्य क्रमों में यह बराबर सम्मिलित होते रहते हैं। आषाढ़ में मेले के अवसर पर जो नव-दिवसीय कार्यक्रम हमने चलाया है, उसमें भी यह बराबर बने रहते हैं ओर आश्रम जीवन का निर्वाह करते हैं। पहले कभी-कभी इनके पुत्र-रत्न श्री अभिनव गुप्त इन्हें साइकिल पर पहुँचा जाया करते थे, पर अधिकांशत: गुप्त जी बराबर पद-यात्रा करके यहाँ पहुँचते थे। वे अब इस साल से कुछ शक्तिहीन हो गये हैं। फिर भी अभी २ अप्रैल ८८ को सांसद पशुपति नाव सुकुल के यहाँ आने पर गुप्त जी आश्रम में पधारे और उत्सव की अध्यक्षता की। उनमें सरलता है, साथ ही मनोबल भी बहुत है। गुप्त जी का सहयोग एवं मार्गदर्शन बराबर मिलता रहे, यही हमारी परम प्रभु से प्रार्थना है।

जगापुर पँड़ान, बैरी बीसा,
वाराणसी

२२. अभिनन्दनीय डा० गुप्त

[त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु']

काव्य, कहानी, एकांकी, नाटक, निबन्ध, टीका, अनुवाद, भूमिका, आलोचना, शोध, सम्पादन-सम्बन्धी अपनी महाकृतियों के द्वारा डा० किशोरी लाल गुप्त ने जो विशिष्ट सामग्री साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत की है, उसे सुधी समाज अच्छी तरह जानता है और वह सब उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचायक है।

आर्ष-परम्परा के पोषक, डा० गुप्त जी दंद फंद के व्यवहार से दूर रहने वाले सहनशील, सौम्य, सज्जन, सहृदय एवं संकोची प्रकृति के व्यक्ति हैं। चलते समय उनकी निगाह जमीन की ही ओर रहती है। उनके भावुक कवि एवं प्रखर आलोचक, कुशल अन्वेषक और जिज्ञासु अध्येता तथा काव्य मर्मज्ञ आदि सभी रूपों को निकट से देखने का मुझे भी अवसर मिला है। वे मुझे अपना लेखनी-मित्र मानते हैं, यह मेरा सौभाग्य है।

४ मई सन् १९८३ ई० की बात है, प्रातः साढ़े चार बजे मैं मात्र ३ ही घण्टे के लिए अपने एक आवश्यक-परिवारी काम से उ० प्र० के भू० पू० सूचना निदेशक, श्री ठाकुर प्रसाद सिंह से मिलने-हेतु लखनऊ जा चुका था। मेरे जाने के कुछ ही देर बाद डा० गुप्त मुझसे मिलने हेतु मेरे आवास पर आ पहुँचे। यथोचित अभिवादन के पश्चात् सभी परिवारी सदस्यों ने उनका स्वागत-सत्कार किया। परिवार के मध्य बैठे वे परिवारी सुख लूट रहे थे। लगभग ७ बजे का समय रहा होगा, लालगंज (रायबरेली) निवासी पं० व्रजनन्दन जी पाण्डेय भी आ गये। वे भी उस बैठक में शामिल हुए। मेरे बड़े सुपुत्र चि० राकेश शर्मा ने पंडित जी को और डा० गुप्त को एक दूसरे से परिचित कराया। दोनों परस्पर आत्मीयता से मिले। साहित्यिक चर्चा होने लगी। दोनों में तर्क-वितर्क भी होता रहा। किसी बात को लेकर एकाएक पंडित जी डा० साहब पर क्रुद्ध हो गये, कहने लगे—"तुम व्यापार करने वाले बनिया, साहित्य की बात क्या जानो।" डा० साहब शान्त थे।

घर पर आये हुए अतिथि के साथ यह व्यवहार। इसे देख, परिवार में सन्नाटा छा गया। मैं आ ही रहा था, दरवाजे से कुछ दूर, आँखों में आँसू भरे, हमारे छोटे सुपुत्र चि० श्रीश शर्मा मिले। घटना की जानकारी पाते ही मैं उछलते हुए अपने कमरे में जा पहुँचा। दोनों को प्रणाम करते हुए कहा—"आप लोग क्षमा कीजिएगा, मुझे

आने में कुछ विलम्ब हो गया।" डा० साहब बोले—"पंडित जी के आ जाने से मुझे आपकी अनुपस्थिति खटक नहीं रही थी। बैठे-बैठे पं० जी के वार्तालाप से आनन्दित होता रहा हूँ।"

गर्मी का महीना था ही, मेरे आने के बाद पं० जी मेरे मकान के उस भाग में चले गये, जहाँ वह प्रायः विश्राम किया करते थे। डा० साहब को अकेला पाकर पंडित जी की बात को छेड़ते हुए जब हमने उनसे क्षमा माँगी तब उनका उत्तर था—'मधु जी! ऐसे बूढ़-बुजुर्गों की फटकार भाग्यशाली को ही मिलती है। इन्हें, सब नहीं पा सकते। इसलिए मुझे जरा भी बुरा नहीं लगा, मैं तो उनकी कृपा का पात्र हूँ। पंडित जी का नाम कई बार सुन चुका था, सौभाग्य से उन्हें देखने और समझने का अवसर आपके यहाँ मिल ही गया। आप पंडित जी का पूरा परिचय और उनको कुछ कविताएँ हमें देने को कृपा कीजिएगा, जिसे हम अपने लिखे जा रहे बड़े ग्रंथ में स्थान देंगे।" डा० साहब ने पंडित जी के साथ चित्र भी खिंचवाया। ऐसे हैं हमारे अभिनंदनीय, डा० किशोरी लाल जी गुप्त।

—बाराबंकी

२३. विपुल साहित्य के भण्डार--डॉ० किशोरी लाल गुप्त

[डॉ० शशिवर्धन शर्मा 'शैलेश']

डॉ० किशोरी लाल गुप्त—एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, एक ऐसे व्यक्तित्व की पहचान है, जो हिन्दी साहित्य में तनिक भी रुचि रखने वाले अथवा साहित्य से सम्बन्धित व्यक्ति के लिए अपरिचित नहीं है। डॉ० किशोरी लाल गुप्त नाम है एक ऐसी बहुमुखी प्रतिभा का, जिसमें एक साहित्यकार, लेखक, कवि सभी रूप एक साथ विद्यमान हैं। ऐसे बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ने जिस भी किसी विषय पर लिखा, पूर्ण अधिकार के साथ लिखा। इस कथन में किसी प्रकार की शंका अथवा सन्देह को स्थान नहीं।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त से मेरा परिचय एक ऐसी स्थिति में हुआ था, जिसे मैं तो क्या कोई अन्य व्यक्ति भी भुलाये नहीं भूल पायेगा। वे क्षण मुझे आज भी स्मरण हैं, जब डा० किशोरी लाल गुप्त जी का पहला पत्र मुझे मेरे प्रश्नोत्तर के रूप में

प्राप्त हुआ था। इस पत्र ने मेरे लिए 'डूबते को तिनके का सहारा' लोकोक्ति को चरितार्थ किया था। वैसे भी तत्कालीन परिस्थितियाँ मेरे लिए किसी अग्नि-परीक्षा से कम नहीं थीं।

मैं 'श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के व्यक्तित्व और कृतित्व' पर नागपुर विद्यापीठ से पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोधकार्य प्रारम्भ कर चुका था। इस विषय में महाकवि भक्त जी से मेरा पत्राचार भी मात्र दो पत्रों के रूप में हुआ था, लेकिन मैं इसे अपना दुर्भाग्य ही कहूँगा कि इतने वयोवृद्ध विश्वस्तर के साहित्यकार का मैं अपने जीवन में दर्शन तक नहीं कर पाया। इसका मुझे आजीवन खेद रहेगा। कारण मात्र यही था कि विद्यापीठ से मेरे इस विषय को न जाने किन कारणों से स्वीकृति नहीं मिल पा रही थी और जब चौदह माह पश्चात विषय की स्वीकृति मिली, तव मैंने आजमगढ़ जाकर श्रद्धेय श्री भक्त जी के दर्शन लाभ करने तथा सत्संग का भरपूर लाभ उठाने का कार्यक्रम बनाया। तद्हेतु मैंने एक पत्र श्रद्धेय भक्त जी को लिखा भी था, परन्तु प्रत्युत्तर में श्री भक्त जी के पत्र के स्थान पर उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री आनन्द कुमार सिंह का पत्र मिला—वह भी भक्त जी के शोक पूर्ण दुःखद मृत्यु समाचार के साथ। उसी पत्र में सन्दर्भ दिया था डॉ० गुप्त का श्री आनन्द कुमार सिंह ने।

डॉ० गुप्त से मैंने पत्राचार सामान्य रूप से एक शोधार्थी के रूप में किया था। उस समय मैंने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि यही सामान्य पत्राचार मेरे लिए भविष्य में असाधारण रूप से संग्रहणीय बन जायेगा। कई एक पत्रों के आदान-प्रदान के पश्चात् मैंने सुधवै जाना तय कर लिया और गया भी। समय था मई-जून १९८४ का। परन्तु वहाँ पहुँचने पर मैंने पाया कि मैं किसी साधारण पुरुष के घर नही आया, अपितु वह घर मुझे किसी देवस्थान से कम नहीं प्रतीत हुआ, क्योंकि वहाँ तो सरस्वती का विपुल भण्डार भरा पड़ा था। विभिन्न विषयों पर कई हजार की संख्या में साहित्यिक तथा अन्य विषयों की पुस्तकें संगृहीत थीं। घर में प्रवेश करते ही मैं यह सोचने को विवश हो गया कि मैं डॉ० किशोरी लाल गुप्त के ही घर 'अमरावती' में आया हूँ अथवा गलती से किसी पुस्तकालय में। बस, यहीं से मेरी कल्पना ने एक सामान्य पुरुष के स्थान पर एक असाधारण एवं अप्रतिम साहित्यकार की वास्तविकता को स्वीकारना आरम्भ किया, क्योंकि इससे पूर्व मेरा कभी किसी महान साहित्यकार से सामुख्य तो क्या पत्राचार तक नहीं हुआ था। जैसे-जैसे दिन व्यतीत हुए, मेरी धारणा दृढ़ से दृढ़तर होती गयी। ईश्वर ने मुझे जैसे बिना माँगे अकल्पनीय बरदान दे दिया था। वहाँ मुझे न केवल अपने शोध से सम्बन्धित अमूल्य सामग्री उपलब्ध हुई, अपितु सहायक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ। 'अमरावती' नामक इस देवालय में मुझे लगभग एक पखवाड़ा रहने का सुख सौभाग्य मिला। इस अवधि में मैंने पाया स्नेह एवं परिवार के सदस्य सी ममता और वात्सल्य।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जब मैं सुधवै पहुँचा, डा० गुप्त अत्यन्त आवश्यक कार्य से १२ दिनों के लिए वाराणसी चले गये थे, पर वे सारी सामग्री अलग निकालकर मेरे लिए रख गये थे और मेरे सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था कर गये थे।

आज भी मैं अपनी शोध सफलता का समस्त आधार श्रद्धेय बाबू जी डॉ० किशोरी लाल गुप्त को ही मानता हूँ और इसका श्रेय भी श्रद्धेय बाबू जी को ही जाता है, जिनके पुस्तकालय से मुझे न केवल अमूल्य पठन सामग्री उपलब्ध हुई, अपितु मैंने अविस्मरणीय मार्ग-दर्शन भी पाया, जो कदाचित् अन्यत्र नहीं, अपितु स्वर्गीय श्री भक्त जी के पुत्रों तथा आजमगढ़ के अन्य मित्र साहित्यकारों से भी मिल पाना दुष्कर था। मेरे विचार में इसका कारण कदाचित् यही रहा होगा कि डॉ० गुप्त न केवल एक अध्यापक, साहित्यकार, शुभ चिंतक अथवा मित्र हैं, अपितु एक भविष्य-द्रष्टा भी हैं। तभी तो उन्होंने अपने परम आदरणीय महाकवि श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के साहित्य एवं उस साहित्य पर संकलित सामग्री वैसी ही हस्तलिखित पाण्डुलिपि के रूप में १५–१६ वर्षों से सहेज कर रखी थी, जो स्वर्गीय श्री भक्त जी को उनके ७५वें जन्म-दिवस पर अभिनन्दन ग्रंथ के रूप में भेंट की गयी थी। यह विपुल सामग्री आज भी सुरक्षित है, जो डॉ० गुप्त की दूरदर्शिता को प्रमाणित करती है। डॉ० गुप्त को यह पूर्वानुमान है कि उनके द्वारा संकलित सामग्री भविष्य में कहीं न कहीं अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगी। डा० गुप्त का यह सत्कार्य मुझे अमरीका के प्रथम राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन का स्मरण करवा देता है, जिनका कथन था—"अपने घर की निकृष्टतम वस्तु भी घर से बाहर नहीं फेंकनी चाहिए। न जाने कब वही वस्तु तुम्हारे लिए दुर्लभ हो जाय।" इसी कथन को प्रमाणित करती है डा० गुप्त द्वारा लिखित शोधपूर्ण पुस्तक 'तुलसी और और तुलसी' जिसमें उन्होंने दुर्लभ विपुल सामग्री एकत्र की है, जिस पुस्तक ने भविष्य के शोधार्थियों के लिए नवीन आयाम प्रस्तुत किये हैं, जो गोस्वामी तुलसीदास की साहित्य-सम्बन्धी भ्रांतियों तथा अनिश्चितताओं को अधिक स्पष्ट करने के साथ एक निश्चित दिशा प्रदान करती है।

इसी सन्दर्भ में मुझे स्मरण आ रहा है कि जिस समय मैं सुधवै में वास कर रहा था, तभी श्रद्धेय बाबू जी को 'किताब महल', इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित शोध-पूर्ण इस कृति 'तुलसी और और तुलसी' की कुछ प्रतियों का पार्सल आया था। सौभाग्य से मुझे भी इस पुस्तक पर दृष्टिपात करने का अवसर मिला था, जिसमें कठिन परिश्रम से संकलित की गई शोध-पूर्ण सामग्री यही संदेश दे रही है कि साहित्य के नाम पर रची गयी सामग्री किसी भी स्थिति में नष्ट नहीं होनी चाहिए, यथासंभव उसकी सुरक्षा की जानी चाहिए, भले ही उसका रूप बदल जाए। मेरे अपने मत में डॉ० गुप्त ने 'तुलसी और और तुलसी' एक ऐसा ग्रंथ साहित्यकारों और शोधार्थियों के

सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिसने एक लम्बे समय से गोस्वामी तुलसीदास के बारे में चले आ रहे कुछ भ्रमों का न केवल निवारण किया है, अपितु कुछ अर्थों में गोस्वामी तुलसीदास की सही छवि को स्पष्ट कर स्थायित्व भी प्रदान किया है।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने इस प्रकार के एक नहीं अनेक शोध-पूर्ण एवं समीक्षात्मक ग्रंथ तथा लेख लिखे हैं, जिनसे न केवल भावी पीढ़ी को भविष्य के शोध कार्यों के लिए सही एवं स्पष्ट दिशा-निर्देश मिलेगा, अपितु प्रेरणा भी मिलती रहेगी। इस प्रकार की शोधपूर्ण प्रवृत्ति को मैं श्रद्धेय डा० गुप्त का लेखन-व्यसन तो नहीं कह सकता, लेकिन इसे किसी व्यसन से कम भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि व्यसनी व्यक्ति अपनी व्यसन-पूर्ति के हित में बिल्कुल नहीं तो एक सीमा तक अपने घर-परिवार की जिम्मेदारियों से विमुख सा होता जाता है, लेकिन डॉ० गुप्त के स्वभाव में मुझे ऐसी कोई दुष्प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं हुई, अपितु उन्होंने परिवार के वरिष्ठ संरक्षक की तरह परिवार के सदस्यों की इच्छाओं का आदर एवं सुख-सुविधाओं को प्रथम वरीयता दी है। अपने ज्येष्ठ पुत्र के मातृहीन पुत्र तथा पुत्री के लिए स्वयं माँ के अभाव की पूर्ति करते हुए उनका घर परिवार बसाया है। अपने इन कर्तव्यों की पूर्ति ने न तो उन पर किसी प्रकार का मानसिक दबाव ही डाला है और न किसी प्रकार शरीर को ही प्रभावित किया है। उक्त सन्दर्भ में आयु के इस मान में भी मैंने उनमें किसी प्रकार की शारीरिक के साथ मानसिक शिथिलता का आभास तक नहीं पाया, अपितु एक सजगता एवं शालीनता ही पायी है, साथ ही उद्देश्यपूर्ति के लिए एक निश्चयात्मक दृढ़ता भी। डॉ० गुप्त की इसी दृढ़ता के सम्मुख मुझे स्मरण हो आती हैं डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन' की वे पंक्तियाँ, जो उन्होंने स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और जननायक श्री जवाहर लाल नेहरू के कठोर परिश्रम, एकनिष्ठ दृढ़ निश्चय से प्रेरित होकर लिखी थीं—

'हमें बदलनी होगी तब तो यौवन की परिभाषा।'

इससे आगे अन्तिम पंक्तियों के रूप में अन्य कुछ लिखना तो मात्र औपचारिकता निभाने जैसा ही होगा। मुझमें इस प्रकार की औपचारिकता निभाने का न तो साहस ही है और न कोई धृष्टता करना ही चाहूंगा। परन्तु परम पिता परमेश्वर से इतनी प्रार्थना अवश्य है कि हिन्दी साहित्य जगत के शीश को ऐसे सौम्य, शालीन, परम विद्वान एवं अनुभवी व्यक्ति के वरद-हस्त से पर्याप्त विलंब से वंचित करे, जिससे भावी पीढ़ी को साहित्य सम्बन्धी सही मार्ग-दर्शन का सौभाग्य मिलता रहे। ऐसे वरिष्ठ साहित्यकार के शतायु होने की कामना सहित इति!

क्वा० नं० ७/७४/३, टाइप-II

दिनांक २५ जुलाई १९८८

डिफेंस परिसर, अम्बाझरी,
नागपुर-४४००२१

२४. बाबा घर पर

[श्री अरविन्द गुप्त]

बाबा रिटायर होने के बाद, फरवरी १९७६ से घर पर ही गाँव में रह रहे हैं। बाबा ने अपने लिए बहुत बढ़िया पुस्तकालय बना रखा है। उनका अधिकांश समय किताबों के साथ बीतता है। वे किसी के यहाँ बिना काम के नहीं जाते। उनके यहाँ कभी ही कभी कोई किसी काम से आ गया, तो आ गया। बाबा की सोसाइटी उनकी किताबें ही हैं। जब भी उन्हें महीने दो महीने में कभी मित्रों से मिलने की इच्छा होती है, वे बनारस या इलाहाबाद चले जाते हैं। वहाँ वह अपने मित्रों से तो मिलते ही हैं, और भी अपने कई काम कर आते हैं। वे कभी भी केवल किसी एक काम से इलाहाबाद या बनारस नहीं जाते। उनके साथ हमेशा दो-चार काम लगे रहते हैं।

हमारा गाँव सुधवै बनारस जिले में है। यह बनारस से ७६ किलोमीटर पश्चिम और इलाहाबाद से ५५ किलोमीटर पूरब है। छोटी लाइन का जंगीगंज स्टेशन हमारे घर से ३ किलोमीटर दक्षिण है और हमारा गाँव पिच रोड द्वारा जी० टी० रोड से जुड़ा हुआ है। जी० टी० रोड यहाँ से $1\frac{1}{2}$ किलोमीटर दक्षिण है। आने जाने के सभी साधन—रोडवेज की बस, निजी बसें, मिनी बसें, इक्का, रिक्सा, टेम्पो, जीप—सुलभ हैं और हमारे घर के पास ही मिल जाते हैं। इसलिए कहीं आने जाने में कोई दिक्कत नहीं है।

बाबा रोज सबेरे उठकर सड़क पर दक्खिन ओर हवा खाने चले जाते हैं। लौटकर वे अपने लिखने के काम में लग जाते हैं। बाबा लिखते ज्यादा हैं, पढ़ते कम हैं। वे कहते हैं कि मैंने अपने पढ़ने का कोटा पूरा कर लिया है, अब लिखना ही लिखना है। उनका कहना है कि यदि लिखने के लिए कोई नई बात हो, तभी लिखो। पिसे को मत पीसो। उससे कोई लाभ नहीं।

दस साढ़े दस बजे जब बुढ़िया माई कहती हैं कि भोजन तैयार है, नहा लीजिए; तब बाबा लिखना छोड़कर उठते हैं, नहाते हैं, भोजन करते हैं और 'आज' अखबार पढ़ते हैं। बारह से दो बजे के बीच दोपहर में बाबा रोज आराम करते हैं, सोते हैं। इसके बाद डाक आ जाती है और चिट्ठियाँ पढ़ने के बाद यदि बहुत जरूरी हुआ तो तुरन्त जवाब लिख देते हैं, नहीं तो चिट्ठियाँ पड़ी रहती हैं, इकट्ठी होती जाती हैं और वे महीने में दो-तीन बार एक साथ आठ-आठ दस-दस चिट्ठियों का जबाब देते हैं। वे अपने पास हमेशा पोस्टकार्ड लिफाफा रखते हैं; परन्तु वे ज्यादातर पोस्टकार्ड ही लिखते हैं।

इसके बाद वे घंटे डेढ़ घंटे फिर लिखने पढ़ने का काम करते हैं। दिन की दिमागी थकावट मिटाने के लिए वे शाम को फिर घूमने निकलते हैं। सबेरे वे घूम घाम कर सीधे घर लौट आते हैं, कहीं रुकते नहीं। शाम को वे परभू मिसिर या हरिहर मिसिर के यहाँ बैठ कर गप्प लड़ाते हैं और अँधेरा होते होते घर आ जाते हैं।

बाबा रात में पढ़ने लिखने काम प्रायः नहीं करते। शाम को वे जल्दी भोजन करते हैं और जल्दी ही सो जाते हैं। भोजन के आधा घंटा बाद इन्हें नींद आ जाती है। जब कभी लिखने का काम अधिक रहता है, तब वे जाड़े की लम्बी रातों में कभी-कभी एक बजे दो बजे ही उठ जाते हैं, बिजली जला लेते हैं और लिखने या पढ़ने बैठ जाते हैं। यदि नींद न आई, तो वे लगातार तीन घंटे काम करते हैं और तब नींद न आने पर भी बिजली बुझाकर लेट जाते हैं और दस मिनट में उन्हें नींद आ जाती है। शाम को वे कभी भी देर तक नहीं जगते और रात के कार्य-क्रमों में वे कहीं जाना पसन्द नहीं करते।

जब कभी बाबा लिखने का कोई बड़ा काम समाप्त कर लेते हैं, तब वे अच्छे उपन्यास भी पढ़ते हैं। नहीं तो वे उतना ही पढ़ते हैं, जो लिखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बाबा के दो ही शौक है—पढ़ना-लिखना और घूमना। वे हर साल प्रयाग के माघ मेले में हमारी बुढ़िया मां के साथ संगम स्नान के लिए लगभग एक महीने तक टिकते हैं। बाबा का यह माघ मेला धार्मिक उतना नहीं है, जितना साहित्यिक। मेले में बाबा नियमित रूप से संगम स्नान करते हैं और दिव्य भोजन करते हैं। वे कहीं कथा-वार्ता सुनने नहीं जाते। यहाँ भी वे कोई न कोई साहित्यिक काम करते रहते हैं। यहाँ रहकर वे साहित्य सम्मेलन का पूरा फायदा उठाते हैं।

बाबा हर साल कहीं न कहीं की यात्रा करने जाते हैं। काशी, प्रयाग, मीरजापुर, गाजीपुर, जमानिया, जौनपुर, आजमगढ़ तो उनके घर के शहर हैं। मोंठ जिला झाँसी में हमारे चाचा रवीन्द्र गुप्त आदर्श इण्टर कालेज में हिन्दी के प्रवक्ता हैं। बाबा उनके यहाँ जाकर बीसों दिन रहते हैं। पर वे मोंठ में बहुत कम रहते हैं। वहाँ से वे दतिया, झाँसी, उन्नाव (सूर्य मन्दिर), सोनगिरि, ग्वालियर, स्योंढ़ा, भाण्डेर, मऊ रानी पुर, ओरछा, समथर, एरछ, उरई, कालपी आदि जगहों पर गये हैं। यहीं रहते समय वे एक बार 'विराटा की पद्मिनी' वाला विराटा का किला देखने गये थे, जो बेतवा नदी के मध्य में टीले पर स्थित है।

१९७९ जनवरी में बाबा बुढ़िया माई, गाजीपुर वाली बुआ और चाचा-चाची के साथ रामेश्वर, कन्या कुमारी, त्रिवेन्द्रम, मदुराई, श्री रंगम, तिरुचिरापल्ली, तिरुपति बाला जी गये।

जनवरी १९८० में वे शांति निकेतन, कलकत्ता, गंगा सागर, जगन्नाथ पुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर, कटक, वैद्यनाथ धाम गए। इस बार भी बुढ़िया माई, चाचा-चाची उनके साथ थे।

घूमने का शौक बाबा का पुराना है। वे बहुत दिनों से घूमते आ रहे हैं। वे कई कई बार चित्रकूट तथा मथुरा वृन्दावन गये हैं। हरद्वार, देहरादून, हृषीकेश, लक्ष्मण झूला, सहस्रधारा, नैमिषारण्य, अयोध्या, पुष्कर, जयपुर, अजमेर, अमरकंटक वे हो आये हैं। बम्बई से वापसी में वे नासिक, पंचवटी, ब्रह्मगिरि (गोदावरी का उद्‌गम स्थल), वर्धा, नागपुर, गाडरवारा भी हो आये हैं।

बाबा हर साल आषाढ़ सुदी प्रतिपदा से नौमी तक बाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी में रहते हैं। यहाँ वे गंगा स्नान करते हैं, माँ जानकी और महर्षि वाल्मीकि का दर्शन करते हैं, और दोनों समय कथा-वार्ता सुनते हैं। बाबा को यह आश्रम परम प्रिय है। बाबा ने सिद्ध किया है कि यहाँ माँ जानकी ने अपने निर्वासन के दिन बिताये, यहीं राम की रावण-विजयिनी सेना लवकुश नामक दो वीर बालकों द्वारा पराजित हुई, यहीं सीता जी धरती में समा गईं और यहीं महर्षि बाल्मीकि ने आदि काव्य रामायण की रचना की। इस स्थान का दर्शन वे अपने अतिथियों को बड़े शौक से कराते हैं।

शोध के सम्बन्ध में अनेक शोधार्थियों के पत्र बाबा के पास आते रहते हैं। दूर दूर से भी कुछ शोधार्थी घर पर आ जाते हैं। बाबा उनके रहने, खाने-पीने और पढ़ने-पढ़ाने की सारी सुविधा कर देते हैं। बरहद (भिण्ड, मुरैना) के श्री राजेन्द्र शर्मा सरदार कवि पर काम करने के लिए यहां आठ दस दिन रहे। नागपुर के श्री शशिवर्धन शर्मा 'शैलेश' गुरुभक्त सिंह 'भक्त' पर कार्य करते समय यहाँ प्रायः दस दिन रहे। फिरोजाबाद के हरीबाबू गुप्त भी श्री चन्द्रबली पाण्डेय पर कार्य करते समय यहाँ आये थे। डा० विद्याधर मिश्र तो प्राचीन काव्य 'राम प्रताप' के सम्पादन के सम्बन्ध में दो वर्ष लगातार पूजा की छुट्टियों में बीस-बीस दिन तक आते रहे। ये रानीगंज बर्दवान में हैं और पड़ोसी गाँव भगवान पुर के रहने वाले हैं। यह रोज अपनी फटफटी से साढ़े दस बजे आते थे और पाँच बजे शाम को चले जाया करते थे।

हमारे घर पर एक-एक करके साहित्य के तीन-तीन महारथी पधार चुके हैं। महाकवि गुरुभक्त सिंह तो बाबा के आजमगढ़ के मित्रों में थे। वे यहाँ शम्पा बुआ की शादी एवं गया जी के भोज में आये थे। आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी एवं सुप्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र तो वाल्मीकि आश्रम के सम्बन्ध में हमारे यहाँ आये।

घर रहकर बाबा शिक्षा-कार्य में थोड़ा बहुत योग देते हैं। वे लव-कुश विद्यापीठ सीतामढ़ी, छविराजी माता सेवक विद्यालय पुरे नगरी और किसान बालिका

विद्यालय नौधन के अध्यक्ष हैं। १५ अगस्त को वे कहीं-न-कहीं झण्डा फहराने जाते हैं। २६ जनवरी को तो हर साल माघ मेला प्रयाग में रहते हैं।

यद्यपि बाबा रिटायर्ड हैं। पर उनके पास काम बहुत है। वे खाली नहीं बैठते, कभी-कभी वे मुझे गणित, अंग्रेजी, हिन्दी आदि पढ़ा देते हैं। मुझे पढ़ाने के लिए भी उनके पास समय नहीं रहता। सबेरे घूमने जाते हैं, तब मुझे पढ़ाने के लिए अपने साथ लेते जाते हैं।

बाबा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा है। पिछले एक साल से अब वे अपने को बूढ़ा समझने लगे हैं। खाने-पीने में वे अत्यन्त संयमी हैं। वे कोई नशा नहीं करते। न बीड़-सिगरेट, न पान-सुपारी, न चाय ही। चाय और पान वे कभी-कभी ग्रहण कर लेते हैं, पर नियमित नहीं। बाबा को दही बहुत प्रिय है। उन्हें भोजन के समय दोनों बार थोड़ा-थोड़ा दही चाहिए। उन्हें मीठे का भी कोई आग्रह नहीं है। अब वे दन्त-विहीन से हो रहे हैं। वे दूर देखने के लिए चश्मा लगाते हैं और अब कई वर्षों से लिखने-पढ़ने में चश्मे का उपयोग नहीं करते। बाबा अब तख्ते पर ही सोते हैं और तख्ते पर ही बैठ कर या लेट कर लिखते पढ़ते हैं। लिखने पढ़ने के लिए वे कुर्सी मेज का प्रयोग कभी भी नहीं करते। बाबा ने बहुत लिखा है। यह सब लेखन-कार्य चारपाई पर ही हुआ है और सबेरे के तीन घण्टों में हुआ है।

अब बाबा कभी-कभी सूरदास का यह पद गाया करते हैं—

'अब मैं जानी देह बुढ़ानी'

—सुधवै, वाराणसी

२५. नैष्ठिक एवं ईमानदार साहित्यकार डा० गुप्त

[**श्री विश्वनाथ त्रिपाठी**, ना० प्र० सभा, काशी]

१९६५ ई० का उत्तरार्ध था। उस समम मैं नागरी प्रचारिणी सभा के 'हिन्दी शब्द-सागर' के संशोधन-परिवर्धनार्थ स्थापित कोश-विभाग में कार्य-रत था। एक दिन एक सज्जन कुर्ता धोती पहने, सिर पर गाँधी टोपी लगाये आये। परस्पर नमस्कार का आदान प्रदान हुआ और वे प्रवासी जी के पास बैठ गये। उनकी प्रवासी जी से कुछ बातें होती जा रही थीं और उनकी लेखनी भी रह रह कर चल उठती थी। मैं तटस्थ अपने काम में लगा था। उन्होंने प्रवासी जी के सम्मुख यह दोहा प्रस्तुत किया—

औसर इण नर पंच सर, चौ सर हर पर धार।
सतर अतर बस कर अडर, कँवर भँवर बर बार ॥

और कहा कि इस दोहे का ठीक अर्थ मुझे नहीं लगा, कुछ लोगों से पूछा भी, पर मनस्तोष न हो सका। आप लोग इसका अर्थ लगा दें। यह कह कर उन्होंने पुनः यह दोहा पढ़ा। इस बीच प्रवासी जी ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा, "देखिये, संस्कृत, हिन्दी, वेदादि के महा विद्वान सामने बैठे हैं। वे ही इसका अर्थ लगा सकते हैं।" मैंने समझा यह मुझ पर व्यंग है और मैंने पुनः एक बार दोहा सुनकर उसका अर्थ कागज के एक टुकड़े पर लिख दिया और उनसे कहा, "आप पहले इन लोगों से पूछ लें, मैंने दोहे का अर्थ लिख दिया है। इसके अलावा दूसरा अर्थ नहीं हो सकता, पर मैं इसे सबके बाद ही दूँगा।" उचित समाधान न पाकर उक्त सज्जन मेरे पास आये और मैंने अपना लिखा वह कागज उनकी ओर बढ़ा दिया। ऐसा मैंने इसलिए किया कि मेरे मित्र गण यह न कह सकें कि मैं भी यही कहना चाहता था या दूसरे शब्दों में मैंने भी यही कहा था।

मैंने दोहे का अर्थ स्पष्ट किया— काम देव के पाँच बाण हैं-— (१) अरविन्द (२) अशोक (३) चूत (आम) (४) नव मल्लिका (५) नीलोत्पल (नीलकमल)।

इन पाँच में से 'चौ सर' को, प्रथम चार वाणों (अरविन्द, अशोक, चूत, नव मल्लिका) को तो काम देव ने हर (शिव) पर धारण करा दिया, शिव पर चला दिया। अब उसके पास एक ही वाण, पाचवाँ सर (नीलोत्पल) बच रहा। उस पाचवें वाण नीलकमल को उसने इस नर (श्री कृष्ण) में अवस्थित कर दिया है। 'औसर' का अर्थ है अनुहार का स्थान। यह कँवर (कुंवर) जिसके वर वार (श्रेष्ठबाल) भँवर के सदृश काले हैं, अडर (निडर) हो कर, सतर (टेढ़े) और अतर (सीधे) सभी को अपने बस में कर रहा है।

'कँवर भँवर वर वार' का यह अर्थ भी हो सकता है—मुख के ऊपर इस नर के सुन्दर बाल ऐसे लगते हैं, जैसे कमल के ऊपर भ्रमर।

जब वे सज्जन विदा हो गये, तब जिज्ञासा करने पर पता चला कि वे डा० किशोरी लाल गुप्त थे, जो हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ के प्राचार्य हैं। इन्होंने सभा के लिए नागरीदास का सम्पादन किया है। अब उसकी भूमिका प्रस्तुत कर रहे हैं।

यही मेरा गुप्त जी से प्रथम साक्षात्कार था। कालान्तर में उन्होंने जब नागरी दास ग्रन्थावली मुझे भेंट की, तब मैंने देखा कि गुप्त जी ने उक्त दोहे का वही अर्थ लिखा और कोश विभाग के हम मित्रों का एतदर्थ उल्लेख कर दिया था।

यहाँ मुझे एक बात कहनी है कि डा० गुप्त प्राचीन काव्यों के सम्पादन में अर्थ पर अत्यन्त ध्यान रखते हैं, अर्थ-प्राप्ति के लिए वे अपने मित्रों से बराबर पूछ-ताछ कर

लिया करते हैं; साथ ही वे उनका नामोल्लेख भी सादर कर देते हैं। यह है उनकी अर्थ-संग्रह के प्रति लगन और निष्ठा तथा नैतिक ईमानदारी। जो चीज जहाँ से मिली, उनका उक्त उल्लेख सराहनीय है।

उसके बाद से सभा में आने पर गुप्त जी मुझसे बराबर मिल लेते हैं। जब भी वह काशी आते रहे हैं, सहायक मंत्री (स्वर्गीय) शम्भु नाथ बाजपेयी से उनके कक्ष में काफी देर तक वार्तालाप होता रहा है। कभी-कभी मुझे भी बुला लिया जाता। वार्ता काफी देर तक चलती, बेकार गप्पबाजी नहीं, साहित्यिक और जानकारी से परिपूर्ण।

अक्तूबर १९७० में डा० गुप्त ने प्रो० पद्म नारायण आचार्य के अग्रज से श्री संप्रदाय में दीक्षा ली। तब से वे यदा-कदा अपने गुरु की पुत्री डा० किरण मिश्र और उनके पति श्री बैजनाथ जी मिश्र से मिलने भदैनी आ जाया करते हैं। मिश्र जी के यहाँ आने पर वे समीपस्थ मेरे भी निवास तक आ जाने की कृपा करते हैं और कुछ साहित्यिक वार्ता भी हो जाती है।

कोश-विभाग का कार्य समाप्त हो जाने के अनन्तर मेरी नियुक्ति नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सहायक सम्पादक पद पर हो गई। गुप्त जी से जब भी मैंने पत्रिका के लिए लेख माँगे, उन्होंने उदारता पूर्वक अविलंब अपने लेख दिये। वे पत्रिका के विशेषांकों के लेखक हैं। प्रायः प्रत्येक विशेषांक में उनका कोई न कोई लेख अवश्य छपा है।

गुप्त जी संस्मरणों के भंडार हैं। यदि उनके संस्मरण लिपिबद्ध किये जायँ, तो अनेक रोचक नवीन तथ्य प्रकाश में आयेंगे।

डा० गुप्त की हिन्दी के प्रति सतत अर्चना, लगन और सेवा आज के नवयुवक साहित्यकारों के लिए अनुकरणीय है। सीधी-सादी वेश-भूषा, मृदु भाषा, सरल और उदार चित्त वाले गुप्त जी की गर्व-रहित वाणी का आकर्षण किसे आकृष्ट नहीं करता। वे संत हैं। उनके सम्बन्ध में मुझे गोस्वामी जी का यह दोहा रह रह कर याद पड़ जाता है—

बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोइ॥

और बरबस अन्तःकरण अपनी ही मौन ध्वनि से गुंजित हो उठता है—बन्धुवर डा० किशोरी लाल गुप्त 'शरदः शतम् जीवेत्।'

—बी० २।५० भदैनी,
वाराणसी।

२६. किशोरी लाल गुप्त—एक संस्मरण

—डॉ० लक्ष्मी नारायण गुप्त

जुलाई १९४८ की बात है, जब आजमगढ़ शहर में बाबू उदित नारायण जी साहु के घर पर श्री किशोरी लाल जी गुप्त (उस समय उन्हें डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि नहीं मिली थी) से मेरी पहली भेंट हुई और तदनन्तर विभिन्न अवसरों पर विभिन्न स्थानों में मुलाकात होती रही है और आज तक सम्पर्क और सम्बन्ध बना हुआ है। घनिष्ठता बढ़ने पर मैंने उन्हें समीप से और अन्दर से समझने का प्रयास किया और जो कुछ समझ पाया, वह उनके अभिनन्दन के अवसर पर हृदय से निकाल रहा हूँ।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त भारतीय संस्कृति के पूर्ण प्रतीक और पालन करने वाले हैं। सादा जीवन, उच्च विचार और निरन्तर अध्यवसाय पूर्ण अध्ययन इनके जीवन का लक्ष्य रहा है और इसका निर्वाह आजीवन वह कर पाये, यह इनकी महानता का परिचायक है। यही बुद्धिजीवियों, अध्येताओं, सृजन-कर्ताओं का आदर्श भी हैं। धोती-कुरता अथवा लम्बा कोट और खद्दर का पायजामा इन्होंने तन पर रखा और उस सादगी को गम्भीरता अनुपम रही, जिसे साधारण दृष्टि से निरख पाना सम्भव नहीं है, यह मेरा विश्वास है। अपने समाज में ऐसे रत्न विरले ही मिलेंगे।

डॉ० गुप्त पारिवारिक जीवन यापन करते हुए छात्रावास्थ से ही हिन्दी की सेवा में लगे रहे और आज तक लगे हुए हैं। इसके फलस्वरूप खड़ी बोली एवं ब्रजभाभा में शुरू से ही वे कुछ न कुछ कविता लिखते रहे और आज उनके सैकड़ों ग्रंथ रचे जा चुके हैं, जो काव्य-संग्रह, काव्यग्रन्थ सम्पादन, समीक्षा, साहित्य के इतिहास, अनुवाद, शोध ग्रन्थ, गवेषगात्मक लेख संकलन से सम्बधित है। जीवन संर्घषरत, अध्यापन और बाद में प्राचार्य के कार्य में जुटे रहते हुए भी, इतने बड़े साहित्य सृजन कार्य को पूरा करने की क्षमता असाधारण व्यक्तित्व का बोध हमें कराती है। अपने समाज में ऐसे महान व्यक्तित्व को पाकर हम अपने आपको गौरवान्वित समझते हैं और उसके सामने श्रद्धा-सम्मान प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य होता है।

डा० किशोरी लाल जी को मैंने सदैव हँसते पाया और वह जिससे जब भी मिलते हैं, सदा उसके नाम के आगे सम्मान सूचक 'जी' लगा कर बात करते हैं। महान व्यक्ति आत्मैव सभी को महान समझता हैं और आदर प्रदान करता है। यह गुण डा० साहेब में है, जो हम सबके लिए अनुकरणीय है, यदि हमें भी समाज में उच्चस्थान प्राप्त करना है।

डॉ० गुप्त का हँसमुख स्वभाव और दूसरों को सम्मान देने का भाव प्राकृतिक दिखाई देता है। फलस्वरूप उनमें आपस में बात-चीत करते हुए विनोद-हास्य भी अपने आप प्रकट हो जाता है। इससे समयानुकूल वातावरण की अगतिशीलता हट जाती हैं और मन्थरता प्रवाहशील बन जाती है, उस समय सभी लोग अपने को बातचीत के प्रवाह में बहते हुए आनन्दित हो उठते हैं। ऐसे कई अवसर मुझे मिले, जब डॉ० गुप्त की हास्य-विनोद प्रवृत्ति का पूरा-पूरा आनन्द प्राप्त हुआ और मन हलका अनुभव करने लगा।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने शिबली कालेज आजमगढ़ में अध्यापन करते हुए अपनी पी-एच० डी० और डी० लिट्० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं, जो एक महान् गौरव की बात है। यह उनके अथक परिश्रम का परिचय प्रस्तुत करता है। अभी दिनांक २३-१०-१९८८ को अकस्मात मेरी भेंट इलाहाबाद में डॉ० साहब से एक सम्बन्धी के यहाँ हो गई। मुझे मालूम हुआ कि इस समय वे हिन्दी कविता का इतिहास लिख रहे हैं और इसे समाप्त कर लेने पर वे महाकवि सूर के श्री कृष्ण लीलात्मक सूरसागर तथा सूर नवीन के द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर का संपादन करना चाहते हैं। यह सुनकर मेरा माथा थोड़ी देर के लिए ठनका कि ७३ वर्ष का यह वृद्ध आज भी वह परिश्रम करने को तैयार है, जो हमारे नवजवान करने में हिचकते हैं, असमर्थता प्रकट करते हैं। ऐसे नवजवानों को डॉ० किशोरी लाल गुप्त से कुछ, बहुत कुछ सीखना चाहिए और जीवन में कुछ करके दिखाने का मौका ढूंढना चाहिए, तभी वे समाज के सृजनकारी सदस्य सिद्ध हो सकते हैं।

डॉ० किशोरी लाल जी का मानसिक और शारीरिक सयम भी सराहनीय है। शरीर तो दुबला-पतला है और एकहरा बदन है, परन्तु आन्तरिक क्षमता संयम के कारण अतुलनीय है, जिससे वह इतने वर्षों तक लगातार कार्य करते हुए स्वस्थ जीवन धारण किए हुए हैं। उनके संयमपूर्ण जीवन से स्पष्ट है कि सृजन करने में यह एक वरदान है और प्राचीन वैदिक प्रार्थना का संकेत मिलता है—जीवेत शरदः शतम्। डा० गुप्त ने जो कुछ साहित्य समाज को प्रदान किया है, उसकी हमें रक्षा करनी हैं। उनके लिए हमें परमात्मा से प्रर्थना करनी है कि वह शतायु हों, पथ पर प्रकाश फैलावें, जिससे हम सभी इनके आदर्शों के पीछे-पीछे चलते हुए अपने जीवन को सफल बना सकें।

—इलाहाबाद

२७. प्रेरणा के स्रोत डा० गुप्त

[श्री राम रक्षा त्रिपाठी]

श्रद्धेय डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त के विषय में मैं कुछ लिखूं, तो छोटे मुँह बड़ी बात होगी। तथापि इतना अवश्य कहूँगा कि श्री गुप्त जी का नाम आज लोग बड़े गौरव के साथ मूर्त आदर्श के रूप में लेते हैं। नव-युवकों में प्रेरणा के लिए उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं डॉ० किशोरी लाल गुप्त की तरह ऊँचा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मार्ग के ढेलों की ठोकरों की परवाह न करो। तुम्हें अवश्य ही लक्ष्य सिद्धि प्राप्त होगी।

अन्त में वह घटना अवश्य लिखूँगा जिसने बिना दर्शन के भी मुझे आपका भक्त बना दिया था। सम्भवतः तब मैं १०/११ वर्ष का बालक था। गाँव के प्राथमिक विद्यालय में पढ़ रहा था। हमारे आदरणीय बड़े भैया पं० भगवती प्रसाद जी तिवारी (जो कि प्राथमिक शिक्षा के समय श्री गुप्त जी के सहपाठी थे) ने मेरी अध्ययन रुचि से प्रसन्न होकर किसी अतिथि से मेरी प्रशंसा में कहा था कि यह मेरा भाई एक दिन अवश्य ही डॉ० किशोरी लाल गुप्त जैसा बनेगा।

बस तबसे लेकर आप आज तक मेरे लिये प्रेरणा-स्रोत बने रहे। यद्यपि मैं आपकी तरह नहीं बन पाया। किन्तु ऊँची शिक्षा का प्रेरणा-स्रोत मानकर कुछ आगे बढ़ पाया।

आज भी आपका अत्यन्त विनम्र और सहज स्वभाव बरबस सबको लुभाता रहता है।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी।

२८. डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित का एक पत्र

[डा० दीक्षित को श्री प्रकाश द्विवेदी ने गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ में कुछ लिखने के लिए कहा था। इसी सन्दर्भ में डा० दीक्षित ने प्रकाश जी के नाम यह पत्र दिल्ली से भेजा था। इसे यहाँ समग्रतः ज्यों का त्यों दे दिया जा रहा है।]

स्थायी निवास :
'कलापी'
१६२/५ बी० १ सी० बानेर मार्ग
औंध, पुणे–४११००७ (महाराष्ट्र)

दिल्ली निवास :
ई ए–३७ (एस० एफ०एस०
जी–८ एरिया
राजौरी गार्डेन एक्सटेंसन
नयी दिल्ली–११००६४
फोन–५४५४५६५ (निवास)
१९–१–१९८९

प्रिय श्री 'प्रकाश' जी,

सस्नेह नमः !

नव वर्ष की शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

आपने डा० किशोरी लाल गुप्त के अभिनंदन-हेतु ग्रंथ के प्रकाशन और तत्सम्बंधी मेरी एक टिप्पणी माँगी थी। डॉ० गुप्त मेरे बहुत पुराने मित्र हैं। मैं १९४८ से १९६२ तक गोरखपुर में था, तो वे आजमगढ़ और जमानियाँ में थे और अनेक सन्दर्भों में स्नेह-साहचर्य के विकास और प्रवर्द्धन के अवसर मिलते रहे। उनके काव्य भी उनकी ओर से सप्रेम भेंट स्वरूप प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला। उन्होंने शिवसिंह सरोज का सरोज सर्वेक्षण करके पुनरुद्धार कर दिया और हिन्दी-साहित्य को प्रामाणिक तथा नवीन सूचनाओं से समृद्ध किया। यही काम उन्होंने ग्रियर्सन के हिन्दी-साहित्य के इतिहास को लेकर किया। कालिदास कृत 'हजारा' का संपादन करके उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रंथ को, जिसे देखने को बहुतेरे हिन्दी-पाठक और विद्वान तरसते रहे, प्रकाशित किया और खोज की परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ा। भाई गुप्त जी सरल हृदय और प्रेममूर्ति व्यक्ति हैं। निष्ठा और पूर्ण समर्पण-भाव से साहित्य की सेवा करते हुए वे निरभिमान और तटस्थ बने रहे। आज के जमाने में ऐसा कठिनाई से ही कोई मिलता है। वे शतायु हों और साहित्य में नये अध्याय जोड़ते रहें, यही कामना है। उनकी कविता पुस्तकें मेरे पास यहाँ होतीं, तो उनके कवित्व के विषय में भी कुछ लिखता, पर वे सब पूना में बँधी पड़ी हैं—विवशता है। आपके पत्र से पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। कृपया उन्हें मेरा नमस्कार कहें, उनका पता लिखें, और मेरी इन पंक्तियों को उनके अभिनन्दन में स्वीकार करके स्थान दें।

शेष भगवत्कृपा। आशा है, सपरिवार सानन्द हैं।

शुभैषी

आनन्द प्रकाश दीक्षित

श्रीयुत प्रकाश द्विवेदी
मनोरमा-शिक्षा-निकेतन
साहित्य-सदन, सेठवा
मालीपुर, फैजाबाद
(उ० प्र०)

३. कर्तृत्व

A man is judged, not by what he enjoys, but by what he does.

(किसी मनुष्य का मूल्यांकन उसके वैभव-विलास से नहीं किया जाता, उसके कृतित्व एवं कार्यों से किया जाता है ।)

१. ग्रन्थ-सूची

[रवीन्द्र गुप्त एम० ए०, प्रवक्ता हिन्दी, आदर्श इन्टर कालेज मोठ, झाँसी]

(१) प्रकाशित ग्रन्थ

(क) आजमगढ़ काल १९४८-६२

१. शंपा—खड़ी बोली के १५१ कवित्त सवैये, अभिनव प्रकाशन, आजमगढ़, अक्टूबर १९५१

२. भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि, साहित्य रत्न भंडार, आगरा- १९५२

३. श्यामा—८६ चतुर्दशपदियाँ, अभिनव प्रकाशन, आजमगढ़- नवम्बर १९५२

४. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन—साहित्य रत्नमाला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस- जनवरी १९५३

५. तीन काव्यांग-(छात्रोपयोगी)—अभिनव प्रकाशन, आजमगढ़- १९५३

६. राधा—व्रज भाषा कवित्त, सवैयों में रचित खण्ड काव्य—अभिनव प्रकाशन, आजमगढ़- नवम्बर १९५४

७. काव्य प्रवेश (छात्रोपयोगी)—अभिनव प्रकाशन, आजमगढ़- अगस्त १९५६

८. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१९५६

९. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी- नवम्बर १९५७

(ख) जमानियाँ काल—१९६२-१९७५

१०. गोसाईं चरित— वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी- मार्च १९६४

११. भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई—विद्या मन्दिर, वाराणसी- जून १९६४

१२-१३. नागरीदास—भाग १, २, आकर ग्रन्थमाला, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी- दिसम्बर १९६५

१४. हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ—हरिऔध कला भवन, आजमगढ़-८ अप्रैल १९६६

१५. सरोज सर्वेक्षण—शोध प्रबंध-पी-एच० डी०, हिन्दुस्तानी अकेडमी, इलाहाबाद- मार्च ६७

१६. गुरु भक्त सिंह 'भक्त' : व्यक्ति—भक्त अभिनन्दन समिति, जमानियाँ– १० अगस्त १९६८

१७. शिव सिंह सरोज—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग– मार्च ७०

१८. वाल्मीकि आश्रम-सीतामढ़ी—साहित्य सेवक कार्यालय, जालपा देवी, वाराणसी– जनवरी १९७३

१९. सुन्दर विलास (सटीक)—सन्त सुन्दर दास कृत,—कल्याण दास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी– दिसम्बर १९७३

(ग) सुधवै, गृह-निवास काल—१९७६ से अब तक

२०. हरिऔध पद्यामृत—हिन्दी साहित्य कुटीर-वाराणसी— १९७६

२१. नूरजहाँ-मीमांसा—भक्त कर्माबाई एजुकेशनल ट्रस्ट, वाराणसी–२४ जनवरी १९७७

२२. गिरिधर कविराय ग्रन्थावली—मधु प्रकाशन, ४२ ताशकंद मार्ग, इलाहाबाद– दिसम्बर ७७

२३. सुजान शतक—मधु प्रकाशन, इलाहाबाद– दिसम्बर ७७

२४. हजारा—स्मृति प्रकाशन, बाग शहरारा, इलाहाबाद– जनवरी ७८

२५. हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद–१९७८

२६. कर्माबाई—भक्त कर्माबाई एजुकेशनल ट्रस्ट, वाराणसी– मार्च १९७९

२७. तुलसी और और तुलसी—किताब महल, इलाहाबाद– २९ फरवरी १९८४

(घ) ग्रंथों की वर्गीकृत सूची

(१) काव्य-ग्रंथ

(क) खड़ी बोली काव्य :

१. वाजिरा—खण्ड काव्य, ९० कवित्त ।

२. झेलम तट पर अलका—देशभक्ति पूर्ण लघुप्रबन्ध, २१३ अतुकान्त चरण ।

३. रूपा–२४१ अतुकान्त चरणों का लघु प्रेम-प्रबन्ध ।

४. शम्पा—१५१ कुटकर कवित्त–सवैये ।

५. श्यामा—८६ चतुर्दशपदियाँ ।

६. पायल—५४ गीत, १५ गजलें ।

७. अलम्बुषा—१०० कविताएँ, एवं १ दर्जन अंग्रेजी कविताओं के पद्यानुवाद

(ख) ब्रजभाषा काव्य :

१. राधा—१०९ कवित्त सवैयों में लिखित खण्ड काव्य

२. सोनजुही—२५० फुटकर कवित्त सवैये।

३. अमरुक शतक—संस्कृत काव्य का कवित्त सवैयों में अनुवाद।

४. उराहनौ—१०९ कवित्त-सवैयों में उद्धवशतक-परम्परा का खण्डकाव्य।

५. घटखर्पर काव्य—ब्रजभाषा, खड़ी बोली एवं अंग्रेजी में पद्यानुवाद।

(२) ललित गद्य रचनाएँ

(क) कहानी :

१. कभी-कभी—३५ कहानियाँ, १३ गद्य गीत, १ ललित निबन्ध।

(ख) नाटक :

१. सप्तरंग—७ एकांकी।

२. चतुर्दशपदियों की श्यामा—जार्ज बर्नर्ड शा के द डार्क लेडी आफ द सानेट्स का अनुवाद।

३. प्रतिशोध—आल्ह खण्ड के प्रारम्भिक अंश पर आधारित नाटक।

४. विध्वंस—आल्ह खंड के अन्तिम अंश पर आधारित नाटक।

(ग) संस्मरण :

१. कहाँ गये वे लोग।

(३) हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद

१. कामायनी—अंग्रेजी अनुवाद।

(४) प्राचीन काव्य ग्रंथों का सम्पादन

१. बजी ठनी जी की पदावली। २. शिवसिंह सरोज।

३. नागरी दास, भाग १ पदावली। ४. नागरी दास, भाग २ पदेतर ग्रन्थ।

५. हजारा। ६. रस कल्लोल—आचार्य तुलसी कृत,।

७. लखमसेन पदमावती कहा—दामोकृत, सटीक। ८. मुबारक रचनावली।

९. तिलशतक—जुगतराय कृत। १०. आनन्द तिलक—महानन्द कृत।

११. श्रृंगार शतक—शेख शाह मुहम्मद कृत, सटीक।

१२. विरह शतक—चम्पा कृत, सटीक।

१३. बड़े नागरीदास को वाणी। १४. कालिदास त्रिवेदी ग्रन्थावली।

१५. सुजान शतक—घनानन्द कृत, सटीक।

१६, सुन्दर ग्रन्थावली—महाकविराय सुन्दर कृत।

१७. इश्क दरियाव—राम नारायण रसरासि कृत ।
१८. वेनी ग्रन्थावली—असनी बाले शृंगारी बेनी वाजपेयी कृत ।
१९. अटक पचीसी—देवीदास कृत, सटीक ।
२०. रसभूषण—रामनाथ वाजपेयी कृत वरवै छन्दों में लिखित नायिका-भेद
२१. उदयनाथ त्रिवेदी 'कविन्द' ग्रन्थावली । २२. रसार्णव—सुखदेव मिश्र कृत रसग्रंथ ।
२३. सुन्दरी तिलक—भारतेन्दु कृत । २४. दत्त—ग्रन्थावली ।
२५. हनुमान बनारसी और उनका काव्य । २६. रस-वृष्टि ।
२७. गंगा बाई की पदावली । २८. न्यामत खाँ जान और उनके चार वरवै ग्रन्थ ।
२९. नेवाज ग्रन्थावली । ३०. गिरिधर कविराय ग्रन्थावली ।
३१. हृदयराम ग्रन्थावली । ३२. सतसईकार तुलसी ग्रन्थावली ।
३३. सूरजदास और उनकी पदावली । ३४. सूरश्याम और उनकी पदावली ।
३५. सूरसागर (कृष्णलीलात्मक संस्करण)—महाकवि सूरदास कृत ।
३६. सूरसागर (स्कन्धात्मक संस्करण)—सूर नवीन कृत ।

(५) सम्पादित गद्य-ग्रन्थावली

१-२. आचार्य चंद्रबली पाण्डेय ग्रन्थावली—दो भागों में । (राष्ट्र भाषा सम्बन्धी समस्त हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ग्रन्थों और लेखों का संकलन)

(६) समीक्षाग्रंथ

१. प्रसाद चिन्तन—प्रसाद सम्बन्धी २५ फुटकर लेख ।
२. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन ।
३. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि ।
४. भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि ।
५. सूरसागरका छन्दः शास्त्रीय अध्ययन ६. भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई ।
७. हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ—(सम्पादित) ।
८. गुरु भक्त सिंह भक्त : व्यक्ति (सम्पादित) ।
९. गुरु भक्त सिंह भक्त : कवि (सम्पादित) । १०. नूरजहाँ मीमांसा—(सम्पादित) ।
११. गोस्वामी तुलसीदास : जीवन और काव्य के विविध परिदृश्य ।
१२. आधुनिक हिन्दी साहित्य समीक्षा । १३. आजमगढ़ के साहित्यकार ।

(७) शोध

१. सरोज सर्वेक्षण—पी-एच० डी० का शोध प्रबन्ध ।
२. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध सूत्रों का विश्लेषण—भक्तमाल से ग्रियर्सन तक । डी० लिट्० का शोध प्रबन्ध ।

३. गोसाईं चरित--भवानी दास कृत । ४. शिवसिंह सरोज : एक अध्ययन ।
५. प्राकृत पैंगलम और उसके रचयिता हरिवम्भ । ६. वाल्मीकि आश्रम : सीतामढ़ी ।
७. कर्माबाई । ८. तुलसी और और तुलसी ।
९. संधान--आदिकाल और भक्तिकाल सम्बन्धी शोध निबन्ध ।
१०. अनुसंधान--रीति कालीन शोध निबन्ध ।
११. महाकवि सूर और सूर नवीन ।

(८) हिंदी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ

१. हिंन्दी के काव्य-संग्रह
२. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन कृत द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान का सटिप्पण अनुवाद ।
३. हिन्दी के पिंगल ग्रन्थ ४. काशी की हिंन्दी साहित्य परम्परा
५. हिंदी साहित्य के इतिहासों का इतिहास ६. सूर साहित्य सूची
७. हिन्दी के नामराशी कवि ८. हिन्दी के प्राचीन काव्यों के उद्धारक सम्पादक
९—१३ हिन्दी कविता का इतिहास ।
भाग १ : आदिकाल । भाग २ : भक्तिकाल-भक्तिकाव्य
भाग ३ : भक्तिकाल-भक्तीतरकाव्यभाग ५ : रीतिकाल-भक्तिकाव्य,
भाग ६ : रीतिकाल-बिभिन्न विभाषा काव्य

(९) हिन्दी कवि और काव्य

१. आदि काल २. भक्तिकालीन राम-काव्य कृष्ण काव्य
३. भक्ति कालीन कृष्ण काव्य—वल्लभ सम्प्रदाय
४. भक्तिकालीन नाथ, संत, सूफी, जैन काव्य
५. भक्तिकालीन भक्तीतर काव्य ६. रीतिकालीन कृष्ण काव्य
७. रीतिकालीन राम, संत, सूफी, जैन काव्य ८. अठारहवीं शती के ५० प्रमुख कवि
९. अठारहवीं शती के गौण कवि १०. उन्नीसवीं शती के ५० प्रमुख कवि
११. उन्नीसवीं शती के गौण कवि १२. रीतिकाल का प्ररोह (१९००-३०)
१३. भारतेन्दु और द्विवेदी युग १४. छायावाद के प्रमुख कवि
१५. छायावाद के गौण कवि १६. वर्तमान काल (अपूर्ण)
१७. दक्खिनी, रेखता, उर्दु का काव्य, गालिब तक
१८. आधुनिक उर्दू काव्य, हाली से आज तक (अपूर्ण)

(१०) संग्रह-ग्रन्थ

(क) गद्य-संग्रह

१. प्रसाद साहित्य का विहगावलोचन—'हिंदी' के प्रसाद अंक में सन्निविष्ट विविध विद्वानों के ३० समीक्षात्मक लेख।

२. हरिऔध-गद्यामृत। ३. देव समीक्षा

(ख) पद्य-संग्रह

१. प्रसाद-काव्य-दोहन २. भारतेन्दु कवितावली

३. भारतेन्दु पदावलो ४. हरिऔध पद्यामृत

५. अपभ्रंस काव्य संग्रह ६. वरवै-विलास ७. दोहा-कोष

८. हिन्दी काव्य में गंगा ९. हिन्दी काव्य में यमुना

(११) टीका ग्रन्थ

१. प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ २. कबीर दोहावली की टीका

३. सुन्दर विलास—संत सुन्दरदास के 'सवइया' ग्रन्थ की टीका

(११) विविध

१. तीन काव्यांग २. काव्य प्रवेश ३. निवन्ध विविधा।

●

(३) डा० गुप्त के निर्ग्रन्थ शोध-निबन्ध

१. संधान

(आदिकाल और भक्तिकाल सम्बन्धी शोध-निबन्ध)

आदिकाल

१. क्या शंकराचार्य हिन्दी के कवि थे ?

२. हिन्दी का तथाकथित प्रथम कवि : पूष

३. अपभ्रंस की 'अम्मीये' और व्रजी की 'माई'

४. संदेश-रासक में कुछ पुराने छन्द

५. वीसलदेव रासो की छन्द–समस्या

६. नरपति नाल्ह का एक और काव्य : उरगानौ

७. सन्देश रासक का छन्दोविधान

८. गुरु गोरखनाथ की सबदी का साहित्यिक विश्लेषण

९. 'आनन्द-तिलक' सम्बन्धो समस्यायें और उनका समाधान

भक्तिकाल-

१. मैथिल कवि उमापति का पारिजात-हरण और उसका एक हिन्दी अनुवाद
२. प्राकृत पैंगलम के रचयिता हरिबंभ
३. गाजीपुर जनपद के एक प्राचीन कवि : ईश्वरदास
४. मंझन कवि की जन्म-भूमि : चुनार
५. दामो का 'सप्ततारिका नक्षत्र'
६. अष्टादश भार वनस्पति
७. स्वामी रामानन्द का एक नवीन पद
८. ज्ञान-चौंतीसा
९. तीसा जन्त्र
१०. उलटबांसी और अलंकार-शास्त्र
११. विप्रमतीसी
१२. संत साहित्य में 'सुरति'
१३. संत साहित्य में 'निरति'
१४. क्या मतिसुन्दर कबीर साहब के शिष्य थे?
१५. जम्भो जी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य
१६. 'भक्तमाल' एक व्यक्ति की रचना नहीं
१७. तानसेन का एक नवीनोपलव्व ध्रुपद
१८. रहीम की आयु : ७० वर्ष भी, ७२ वर्ष भी
१९. पुखी कवि
२०. बालचन्द्र बत्तीसी का छन्द-निर्णय
२१. हृदयराम और हनुमन्नाटक
२२. मलूकदास : तीन नहीं, एक

२. भक्तिकालीन कृष्ण काव्य

१. शुक्ल-पूर्व सूर सबन्धी शोध एवं समीक्षा
२. 'सूर सागर के छन्द-दोष और पाठ शोधन' : एक पर्यालोचन
३. सूर काव्य में गिरिधर तत्त्व–
४. सूर के कबित्त
५. अष्टछाप ही क्यों : सप्तछाप या नौ छाप क्यों नहीं ?
६. अष्टछापी कवियों के कुछ नवीन पद
७. 'जुगल मानचरित' के कर्त्ता कौन कृष्णदास ?
८. गोसाईं गोकुलनाथ 'बल्लभ' का पद-साहित्य
९. स्वामी हरिदास संस्कृत के कवि नहीं थे।
१०. 'जय श्री हित हरिवंश' के 'जय श्री' पर विचार
११. श्री भट्ट, हरिव्यास देव और परशुराम देव के रचना-काल पर विचार
१२. श्री भट्ट सम्बन्धी भ्रामक उल्लेख
१३. ब्रज भाषा के भक्त सुकवि विद्यापति
१४. हित चौरासी और नरबाहन
१५. रसोपासना पर मुग्ध मुस्लिम भक्त

३. गोस्वामी तुलसी दास

४. अनुसंधान

भक्तिकालीन रीति-साहित्य

रीतिकाल

८. शिवसिंह सरोज के सम्पादन में कुछ नये पाठों की कल्पना ९. सेंगर सुकवि
१०. शिवसिंह सरोज के गूढ़ छन्दों के अर्थ—
(क) कूट, (ख) श्लेष, (ग) रूपकातिशयोक्ति, (घ) सूक्ष्म अलंकार, (ङ) यमक, (च) मुद्रा, (छ) प्रश्नोत्तर

६. त्रिधा

(क) भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी नाटक

१. भारतेन्दु-पूर्व तथाकथित जन नाटक
२. नेवाज के आश्रयदाता आजमशाह तथा उनकी शकुन्तला के रचनाकाल एवं नाटकत्व पर विचार
३. व्रजी का प्रथम नाटक : आनन्द रघुनन्दन ४. उर्दू का प्रथम नाटक : इन्दर सभा
५. व्रजी का तृतीय नाटक : नहुष
६. खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम नाटक : राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा अनूदित शकुन्तला

(ख) प्राचीन काव्यों की सम्पादन-समीक्षा

१. लाल दास कृत हरि चरित्र–सम्पादक नलिन विलोचन शर्मा
२. कुतबन कृत मृगावती–सम्पादक डॉ० शिव गोपाल मिश्र
३. जायसी कृत कन्हावत के दो संस्करण
४. मंझन कृत मधुमालती–सम्पादक डॉ० शिवगोपाल मिश्र
५. पुहकर कृत रस रतन–सम्पादक डा० शिव प्रसाद सिंह
६. छिताई वार्ता–सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त
७. छन्दोहृदयप्रकाश–सम्पादक डा० विश्वनाथ प्रसाद
८. अलंकार प्रकाश–सम्पादक कैप्टन शूर वीर सिंह
९. राजधर सतसई–सम्पादक मोहन लाल गुप्त
१०. देव-ग्रन्थावली–सम्पादक डा० लक्ष्मीधर मालवीय

(ग सिद्धान्त-निरूपण

१. अनुसन्धान की सरसता २. पद और सबद
३. श्लेष और मुद्रा ४. ज्येष्ठा कनिष्ठा
६. गुरुमुखी में लिखित हिन्दी काव्यों के नागरी लिप्यंतरण की समस्या
७. अर्थ करने में मूल-पाठ की सौन्दर्य-रक्षा
८. हिन्दी के प्राचीन कवियों की साहित्य-सर्जना और उनकी कुंठा का स्वरूप
९. अनिश्चयवाचक संख्याओं के प्रयोग के नियम

७. आधुनिक साहित्य—शोध और समीक्षा

(क) भारतेन्दु युगीन साहित्य

१. सुख सागर : हिन्दी गद्य के विकास की एक उपेक्षित कड़ी
२. हिन्दी भारतो के सपूत भारतेन्दु
३. भारतेन्दु की काव्य-धारा
४. भारतेन्दु रचित संक्रान्ति के पद
५. भारतेन्दु की कजलियाँ
६. हिन्दी का प्रथम ज्ञात काव्य विद्रूप : भारतेन्दु कृत बन्दर सभा
७. भारतेन्दु का श्रीनाथ द्वारा संबंधी एक पत्र
८. कवि-वचन-सुधा
९. नाटिका की कसौटी पर चन्द्रावली
१०. प्रताप नारायण मिश्र के कुछ असंकलित छन्द
११. बाबा सुमेर सिंह साहबजादे
१२. तुलसी दत्त ओझा जोघपुर वाले
१३. भारतेन्दु युग के एक अख्यात निबन्धकार : वृजजीवनदास गुजराती
१४. कवि श्याम सेवक के गद्यवत पद्य-लेखन का एक अभिनव प्रयोग

(ख) द्विवेदी युगीन साहित्य

१५. हिन्दी गद्य एवं पद्य के संस्कर्ता आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी
१६. लाला भगवानदीन और हिन्दी साहित्य का इतिहास
१७. पं० रामचरित उपाध्याय
१८. घटखर्पर काव्य
१९. खड़ी बोली के पाणिनि पं० कामता प्रसाद गुरु और उनका साहित्य
२०. पं० कामता प्रसाद गुरु का खड़ी बोली काव्य
२१. कविता-कामिनीकान्त की 'वसन्तसेना'
२२. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' और उनका युग
२३. रामनरेश त्रिपाठी की काव्य-कला
२४. उग्र जी की प्रथम कृति : महात्मा ईसा
२५. हिन्दी में 'वन्दे मातरम्' के प्रथम प्रयोक्ता आचार्य शुक्ल
२६. प्रकृति को आलम्बनत्व देने वाले आचार्य
२७. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : कवि
२८. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काव्यों की काल-सीमायें
२९. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के ऐतिहासिक निष्कर्ष : अनुसन्धान के निकष पर
३०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ
३१. राष्ट्र भाषा संघर्ष में आचार्य शुक्ल का योगदान
३२. मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य
३३. छन्द की तलाश में राष्ट्रकवि
३४. मैथिलीशरण गुप्त और अतुकान्त छन्द
३५. दिवोदास : एक प्रेरक काव्य

३६. गुप्त जी के बुद्ध सम्बन्धी काव्य ग्रन्थ ३७. कृष्णार्जुन युद्ध : समीक्षा
३८. एक भारतीय आत्मा का प्रारम्भिक काव्य ३९. चतुर्वेदी जी की कहानियों के कथ्य
४०. सौ शरदों तक जीने वाले साहित्यकार : सन्तराम बी० ए०
४१. चन्द्रबली पाण्डे : व्यक्तित्व तथा भाषा शैली
४२. आचार्य चन्द्रबली पाण्डे की उर्दू सम्बन्धी शोध
४३. निराला के मुक्त छन्द और उनका रचना-विधान
४४. पन्त के 'बादल' की छायावादी प्रवृत्तियाँ
४५. पन्त जी की प्रकृति सम्बन्धी तीन कवितायें
४६. डा० रामकुमार वर्मा का प्राचीन काव्यों के संपादन में योग

८. जयशंकर प्रसाद

(क) प्रवेश

१. श्रद्धांजलि २. प्रसाद-काव्य प्रासाद तक पहुँचने के मेरे विविध सोपान
३. प्रसाद की साहित्य-साधना ४. प्रसाद पर आलोचना साहित्य

(ख) काव्य

५. कामायनी के कुछ शब्द ६. कामायनी के छन्द
७. प्रलय की छाया ८. प्रसाद के गीतों का वर्गीकरण
९. व्रज भाषा के सुकवि प्रसाद

(ग) नाटक

१०. प्रसाद के नाटकों का वर्गीकरण ११. भरत वाक्य
१२. नाटकों की भाषा १३. कामना : वस्तु
१४. अजातु शत्रु का कथानक १५. स्कन्द गुप्त नाटक की कथा

(घ) कहानी

१६. कहानी लेखक प्रसाद १७. प्रसाद की प्रथम एवं अन्तिम कहानियाँ
१८. प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

(ङ) निबन्ध

१९. प्रसाद के निबन्धों का पूर्व पक्ष

(च) विविध

२०. ऐतिहासिक तत्व और प्रसाद २१. प्रसाद की निर्ग्रन्थ रचनाएँ
२२. चित्राधार २३. प्रसाद के कुछ गीतों का अंग्रेजी रूपान्तर

९. गुरु भक्त सिंह 'भक्त'

१. गुरु भक्त सिंह भक्त : जीवन का तिथिक्रम २. भक्त-साहित्य-सूची

३. भक्त जी से मेरा प्रवर्धमान साहित्य
४. भक्त-गोष्ठी
५. भक्त जी की प्रथम रचना
६. भक्त जी का उर्दू काव्य
७. भक्त जी का व्रज भाषा काव्य
८. भक्त जी के लोक-गीत
९. भक्त जी का प्रारम्भिक खड़ी बोली कव्य : १९१९
१०. भक्त जी की संशोधन प्रवृत्ति
११. भक्त-भ्रमर
१२. भक्त जी का प्रथम नाटक : प्रेम पाश - १९१९
१३. भक्त जी की प्रारम्भिक शब्दालंकार-योजना
१४. भक्त जी का द्वितीय नाटक : तसनीम : १९२०
१५. भक्त जी के काव्य-संग्रह
१६. नूरजहाँ कुछ तथ्य
१७. नूरजहाँ में नायक-नायिका-निरूपण
१८. नूर की प्रतिबोधिका नारी कहो यह कौन ?
१९. नूरजहाँ के छन्द
२०. विक्रमादित्य की कथा वस्तु
२१. विक्रमादित्य का हास्य चरित्र : वीरसेन
२२. विकमादित्य की सांग्रामिकता
२३. विक्रमादित्य के छन्द
२४. क्या विक्रमादितण नूरजहाँ से श्रेष्ठ काव्य नहीं है ?
२५. भक्त जी की काव्य-कला
२६. भक्त-काव्य पर आलोचना साहित्य
२७. भक्त जी के हरिऔध सम्वन्धी कुछ संस्मरण
२८. भक्त जी के ग्रन्थों के समर्पण और उनके पाँच प्रिय जन
२९. विक्रमादित्य के परिप्रेक्ष्य में भक्त जी का काव्य-कौशल

१०. वर्तमानकालीन साहित्य

(क) साहित्यकार

१. साहित्य वाचस्पति प्रभुदयाल मीतल
२. डा० रामलखन शुक्ल के तीन ऐतिहासिक उपन्यास
३. अमल धवल कवि 'श्रीश'

(ख) कतिपय ग्रंथ (समीक्षिका)

४. हिन्दी शब्द सागर की कुछ भूलें।
५. फेरि मिलिबो--अनूप शर्मा
६. रूप की धूप- गुलाब
७. गंगाश्रम--रामजीदास कपूर
८. बुद्ध काव्य में एक सद्वृद्धि : महाज्योति-हृदयेश गाजीपुर
९. सप्त सागर : परिचय—हृदयेश गाजीपुर
१०. उद्धव दूत : भ्रमरगीत परम्परा का एक अन्यतम काव्य-श्री प्रकाश द्विवेदी
११. डा० ऋषिदेव राय की दो काव्य मुक्तक मालाएँ : दिव्यगंधा और कादम्बरी
१२. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका--डा० शम्भूनाथ सिंह
१३. रीतियुगीन और आधुनिक स्वच्छन्द काव्य धारायें-डा० श्रीमती कमला सिंह
१४. चिन्तामणि कवि और आचार्य-डा० विद्याधर मिश्र

२. डा० गुप्त की प्रथम प्रकाशित रचनायें

(रमाकांत गुप्त 'अंबर' मुगरा, बादशाहपुर, जौनपुर)

डा० किशोरीलाल गुप्त प्रारंभ से ही प्रकाशन-भीरु रहे हैं। उनकी रचनाओं का प्रकाशन रामभरोसे ही हुआ है। स्वयं अपनी ओर से प्रकाशकों के क्षिप्राशोस के लिए वे नहीं दौड़े। इसीलिए उनके प्रकाश में आने में थोड़ा विलम्ब हुआ।

डा० गुप्त की प्रथम प्रकाशित रचनाएँ १९३८ की हैं, जब वे इंटर द्वितीय वर्ष में क्वीन्स कॉलेज वाराणसी के विद्यार्थी थे। इस समय तक वे मूलतः कवि ही थे। इनके एक सहपाठी थे, काशी के कैलास नाथ कक्कड़, जो बाद में किसी बैंक में कार्यरत रहे। कक्कड़ जी के कुछ मित्रों ने 'आलोक' नामक एक शौकिया मासिक पत्रिका निकाली। कक्कड़ जी इस पत्रिका में प्रकाशन के लिए गुप्त जी की कविताएँ ले गये थे। इसके फरवरी १९३८ के अंक में गुप्त जी के निम्नांकित दो छंद प्रकाशित हुए। गुप्त जी ने अपनी इंटर की समस्त गद्य पद्य की रचनाओं को कालक्रम से एक पोथी में लिख रखा है। इस पोथी में प्रकाशन की यह सूचना अंकित हैं।

पुष्प-विकास

(१)

कलिका खड़ी जोहती बाट रही,
छिप बात की, आँख बिछाए हुए
मलयानिल ने झकझोर दिया
अवगुंठन आ शरमाए हुए
कलिका हिली औ मुसकाई जरा,
कह, आए हुए, मनभाए हुए
छलिया छल भागा, गई रही ही
कली विस्मय से मुँह बाए हुए

सुधवै २२-१०-३६

(२)

उषा थी बिखेर रही अंशुमालि स्वागत को
प्राची की नभस्थली पै हलके गुलाल लाल
झूम-झूम एक दूसरे का मुँह चूम-चूम,
घूम-घूम कलिकाएँ खेलती थीं डाल-डाल

इतने में चुपके से आकर प्रभाकर ने
उनपर डाल दिया छिपकर कर-जाल
उर में समाईं नहीं फूली मुसकाईं फिर
ज्यों ही गुदगुदी छूटने से हुईं वे विहाल

सुधवै ३१-५-१९३७

आलोक के अगले ही अंक में 'झेलम तट पर अलका' का एक अंश प्रकाशित हुआ था। यह अतुकांत छंदों में लिखित एक लघु प्रबंध है।

इसके बाद १० वर्षों तक गुप्त जी की कोई भी गद्य पद्य रचना कहीं नहीं प्रकाशित हुई। उन्होंने एतदर्थ कोई प्रयास ही नहीं किया। जुलाई १९४८ में गुप्त जी शिबली कालेज आजमगढ़ में हिंदी विभाग के अध्यक्ष होकर आए। आजमगढ़ आने के अनंतर ही उनके प्रकाशनों का क्रम प्रारंभ हुआ। इसी समय के आस-पास काशी वासी इनके सजातीय अग्रज-मित्र श्री रामकृष्ण लाल वकील ने 'साहु मित्र' नामक एक स्वजातीय पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। रामकृष्ण लाल जी के अनुरोध से इसके प्रायः हर अंक में गुप्तजी की कोई न कोई साहित्यिक रचना प्रकाशित होती रही। साहित्यिक पत्रिकाओं में एकाध कविता लखनऊ की माधुरी में प्रकाशित हुई और एक लेख 'कामायनी के कुछ शब्द' आगरा के 'साहित्य-संदेश' में।

आजमगढ़ आने पर गुप्तजी का संपर्क यहाँ के साहित्यकारों में श्री गुरुभक्त सिंह भक्त, श्री विश्वनाथ लाल शैदा, श्री दान बहादुर सिंह सूँड़ फ़ैजाबादी से हुआ। इनके साथ स्थानीय एवं जनपदीय कवि सम्मेलनों में आने जाने का क्रम प्रारंभ हुआ। अग्रज शैदा के आग्रह एवं अनुज सूँड़ के दुराग्रह से उन्होंने अपनी कविताओं के प्रकाशन की बात सोची। इसके लिए उन्होंने अपना शौकिया प्रकाशन भी खोला, अपने बड़े पुत्र अभिनव गुप्त के नाम पर अभिनव-प्रकाशन। इस प्रकाशन से उन्होंने पांच लघु पुस्तकें निकालीं। तीन कविता की और दो छात्रोपयोगी रस, अलंकार, छंद संबंधी। इनका प्रकाशन क्रम है—

१. शंपा—१५१ कवित्त, सवैये, खड़ी बोली में — अक्टूबर १९५१
२. श्यामा—८६ चतुर्दश पदियाँ — नवम्बर १९५२
३. तीन काव्यांग—बी. ए. के लिए — नवम्बर १९५३
४. राधा—व्रजभाषा के १०९ कवित्त सवैयों में विरचित खंडकाव्य, नवम्बर १९५४
५. काव्य प्रवेश—इंटर के लिए — नवम्बर १९५६

यहाँ यह ध्यान देना है कि शंपा, श्यामा, राधा नामकरण गुप्त जी की लड़कियों के

नामों के आधार पर है—शंपा तीसरी लड़की २३ दिसंबर १९७५ में २९ वर्ष की वय में दिवंगत हो गई। श्मामा दूसरी लड़की, जो गाजीपुर में है, एम. ए., बी. एड., साहित्यरत्न है। गाजीपुर नगरपालिका के एक मिडिल स्कूल में अध्यापिका हैं। राधा गुप्त जी की चौथी लड़की है, जो १९५४ में ही पैदा हुई। राधा के प्रकाशन के चंद महीनों पहले। यह लड़की भी एम. ए. है और मीरजापुर में है।

आजमगढ़ आने पर ही गुप्त जी का संपर्क नागरी प्रचारिणी सभा काशी से बना और नागरी प्रचारिणी पत्रिका में उनका प्रथम लेख 'बाल्मीकि आश्रमः सीतामढ़ी' १९४८ में ही किसी समय प्रकाशित हुआ। तदनंतर उनका दूसरा लेख भारतेंदु जन्म शती अंक, वर्ष ५५, सं. २००७, अंक १–२ में छपा–भारतेंदु और उनके पूर्ववर्ती कवि। आगरा के 'साहित्य संदेश ने अपने भारतेंदु अंक में इस लेख की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस पर गुप्त जी ने फरवरी १९५१ में 'भारतेंदु और उनके परवर्ती कवि' नाम से एक और लेख लिखा। ये दोनों लेख 'भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि' नाम से साहित्य रत्न भंडार आगरा से १९५२ में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। यह गुप्त जी का दूसरा प्रकाशित ग्रंथ है। प्रथम ग्रंथ 'शंपा' है।

काशीवासी श्री मंगला प्रसाद पांडेय गुप्त जी के इंटर, बी ए., एम. ए., के सहपाठी एवं घनिष्ट मित्र थे। वे 'आज' में आ गए थे और 'आज' के साहित्यिक साप्ताहिक 'समाज' में थे। पांडेय जी के संपर्क के कारण गुप्त जी की रचनाएँ 'आज' और 'समाज' में आने लगी थीं।

प्रो० पद्मनारायण जी आचार्य के संपर्क के कारण श्री रामचंद्र वर्मा ने 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' छापा जनवरी १९५३ में। १९५६ में हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी ने गुप्त जी का प्रसिद्ध समीक्षा ग्रंथ 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' तथा १९५७ में ग्रियर्सन की पोथी का अनुवाद 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से प्रकाशित किया। हिंदी प्रचारक काशी द्वारा इन दो ग्रंथों के प्रकाशन से गुप्त जी संपूर्ण हिंदी जगत में प्रकाशित हो गए।

३. डा० किरोरीलाल गुप्त के कहानी संग्रह 'कमी कभी' पर

दो शब्द

(डा० विवेकीराय, गाजीपुर)

विद्वान् व्यक्ति की संवेदनशीलता में कुछ और ही रंगत होती है। क्वार के महीने की कड़ी धूप में बादलों की छाया की भाँति वह सुखद रोमांच प्रदान करती

है । वह मान की जमीन को अपनी छुअन से यहाँ-वहाँ गुदगुदाती, अनुरंजित करती अथवा उत्प्रेरित करती चलती है । कुछ ऐसी ही स्थिति डा० किशोरी लाल गुप्त के एकलौते कहानी संग्रह 'कभी कभी' की है । यद्यपि वे विद्यार्थी जीवन की रचनायें हैं, तथापि इनकी अन्तरंग प्रोढता देखकर लगता है कि कच्ची उमर की इन रचनाओं पर जैसे परिपक्व हाथ लगा है । इन रचनाओं के भीतर पूरी आधी शताब्दी के समय का अन्तराल समाया हुआ है, इसलिए समय के उतार-चढ़ाव को संवेदनायें पाठकों को गुदगुदाती हैं ।

कुल उनचास कहानियों के इस संकलन में यद्यपि छोटी-बड़ी हर प्रकार की कहानियाँ हैं, तथापि प्रमुख आकर्षण इनमें लघु कथाओं का ही है । ये लघु कथायें बहुत ही चुस्त हैं और कहानी-कला की समग्रता से परिपूर्ण हैं । शिल्पवैविध्य इन कहानियों की अतिरिक्त विशेषता है । आरंभ की लघु कथा में प्रकृति को ही पृष्ठभूमि बनाया गया है और उषा, समीर, चन्द्रमा और निशा के माध्यम से जो बात कही गयी है वह मानव-जीवन के लिए एक संदेश बन जातो है । यह 'उषा' शीर्षक प्राकृतिक रोमांस ऐसा लगता है कि कहानी के बहाने एक गीत प्रस्तुत किया गया है । कहानी लेखक गुप्त जी के भीतर जो भावुकता है, वह कुछ कहानियों में निखर कर उन्हें अतिरिक्त अनुरंजन की विशेषताओं से परिपूर्ण कर देती है । उनके भीतर जो कवित्व का उत्कर्ष उनकी साहित्यिक-साधना के आरंभिक दौर में देखा गया, उसका प्रभाव इस संकलन की कहानियों पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है और प्रखर कवित्व-पांडित्य के भीतर से छना सहज-सरल कल्पना-प्रसार वाली ये कहानियाँ बहुत ही साफ-सुथरी तथा आकर्षक बन जाती हैं ।

किशोरी लाल जी की ये कहानियाँ सन् १९३६ और ४० के बीच की लिखी हुई हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि इन पर प्रेमचन्द युगीन कहानी लेखकों का और उस युग का प्रभाव पड़ा है। इतना होते हुए भी इन कहानियों के भीतर निहित संवेदनाओं में आदर्शों के प्रति शत प्रति शत वही दृष्टि नहीं है, जो उस युग के कहानी लेखकों की है। अति काल्पनिक तराश की जगह कहानी लेखक ने व्यावहारिक जोवन को प्रधानता दी है । आधुनिक कथा-समीक्षक इसे ही कहानी की प्रामाणिकता अथवा भोगे हुए जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति कहते हैं । इसका यह अर्थ भी नहीं कि प्रस्तुत संकलन को कहानियों में आधुनिक दृष्टि है । इसकी तो आशा भी नहीं की जा सकती, किन्तु यह भी सत्य है कि इन कहानियों के स्वाद में बासीपन नहीं है । चूंकि लेखक के कथनानुसार ये कहानियों एक बैठक में एक कहानी के हिसाब से पूर्ण होती गयी हैं, इसलिए इनके प्रवाह, कसाव, चुस्त रूप और संगति-संगठन में कहीं कोई कसर नहीं रह गई है । आधुनिक कहानियों की एकरस विरसता से ऊबे पाठकों

को निश्चित रूप से इन कहानियों में एक विशेष प्रकार का सुरुचि पूर्ण स्वाद मिलेगा।

'कभी-कभी' की कहानियों के निर्माण में कथाकार ने जिस बात पर विशेष रूप से नजर रखी है, वह है अनुरंजन का तत्त्व। 'चंदा', 'पाखंड', 'रंगीन सपना' और 'नयी बहू' आदि काहानियाँ इसका प्रमाण हैं। तत्कालीन कथा-शिल्प की विविध धाराओं से परिचित होने के कारण कथाकार ने प्रायः उन सबका सफल प्रयोग कर संकलन को एकरस होने से बचा लिया है। 'दूर ही दूर' शीर्षक कहानी निरमोही और सुधा की आत्मकथाओं के ताने-बाने से बुनी गयी है। इसी प्रकार 'चकमा' में पत्रात्मक शिल्प का प्रयोग है। विभा और केशव कहानी में पत्रों के माध्यम से जुटते-टूटते हैं और अपने को खोलते हैं। कुछ कहानियों का सृजन शेरो-शायरी के वातावरण में करके लेखक ने सीमोल्लंघन भी किया है, परन्तु मूलभूत जमीन को अर्थात् उसके कहानीपन को फिर भी वह बनाये रखता है।

किशोरी लाल जी की कहानियों में सामाजिक और मानवीय दृष्टि प्रधान है। इस दृष्टि में प्रसाद की भावुकता तथा प्रेमचन्द्र की व्यावहारिक और पारिवारिक आदर्श-निष्ठा का संयोग है। उनमें कहीं-कहीं पारिवारिक और नैतिक मूल्यों की वकालत की गयी है। ऐसा लगता है कि अपनी इस दृष्टि को रचनात्मक रूप प्रदान करते हुए लेखक इस बात के लिए सजग और सावधान रहता है कि कहीं वह उपदेशक या सुधारक का रूप न ले ले। कहानी की संवेदना व्यंग्य रूप में कहानी के भीतर से ही उभरे, इसके लिए लेखक संवाद, दृश्य-परिदृश्य-विधान और उचित घटनात्मक संयोजन करता है। कहानियों को वह अपने आरोपों या आग्रहों से कहीं बोझिल नहीं होने देता है। उनका चुस्त, संक्षिप्त, हलका, खनहन और साफ-सुथरा रूप, (कहीं-कहीं खुरदरा और अनगढ़ रूप भी) पाठकों को आदि से अन्त तक अनुरंजित करता है। सिद्धहस्त कहानी लेखकों के शिल्प से हटकर हुई कुछ कहानियों की प्रस्तुति स्वाद-गन्ध और रूप-रंग में कुछ भिन्न होने के कारण कुछ अतिरिक्त स्वाद से पूर्ण हो जाती है और कुल मिला कर पाठकों का भरपूर मनोरंजन करती है।

शोध-समीक्षा से सम्बन्धित कुल सत्ताइस महत्त्वपूर्ण, मानक, गंभीर और मौलिक ग्रन्थों के रचयिता, प्रसाद, भारतेन्दु, तुलसी, भूषण मतिराम, और मध्यकाल के विशिष्ट आलोचक अन्वेषक और हिन्दी साहित्य के इतिहासों के इतिहास के अन्वेषक किशोरी लाल का प्रस्तुत कहानी-संग्रह अनेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक कृतित्व जैसा आकर्षक है। उनके अनुसंधान ग्रन्थों की ही भाँति आशा है इस रचनात्मक अवदान का हिन्दी-साहित्य संसार में आदर होगा।

विवेकीराय

बड़ीबाग, गाजीपुर, उ० प्र०
२६-१-८८

४. डा० किशोरी लाल गुप्त के नाटक

(डा० श्यामधर तिवारी, श्रीनगर गढ़वाल)

डा० किशोरी लाल गुप्त उच्च कोटि के विद्वान लेखक, समालोचक, शोधी सुधी के रूप में विख्यात हैं। पर अपने साहित्यिक जीवन के उषःकाल में उन्होंने ललित गद्य साहित्य--कहानी और नाटक-की भी रचना की थी, जो अप्रकाशित पड़ा है और जिससे हिन्दी संसार अनभिज्ञ है।

डा० गुप्त ने कुल ७ एकांकी एवं दो पूर्ण नाटक लिखे हैं। पहला एकांकी 'भोलापन या भूलापन' है, इसकी रचना क्वींस कालेज वाराणसी में इंटर के द्वितीय वर्ष में पढ़ते समय १३ नवम्बर १९३७ को हुई। यह हस्तलिखित 'हिन्दी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के अनन्तर डा० गुप्त पहले वर्ष १९३८-३९ में सुन्दरपुर गाँव में रहते थे। यह वही सुन्दरपुर है, जो हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रथम कुल-पति सर सुन्दर लाल के नाम पर बसाया गया था और जिनके नाम पर उक्त विश्व-विद्यालय का सुप्रसिद्ध अस्पताल है। यहाँ के एकान्त जीवन में रह कर डा० गुप्त ने शा के समस्त नाटकों का स्वाध्याय किया और उसके 'दी डार्क लेडी आफ द सानेट्स' का 'चतुर्दशपदयों की श्यामा' नाम से एक दिन में अनुवाद किया। सुन्दर पुर के इस जीवन में डा० गुप्त ने ५ एकांकी लिखे—

१. परीक्षा	७-१२-३८
२. विपर्यय	११-२-३९
३. विद्रोह	१४-३-३९
४. प्यार	२०-३-३९
५. अफवाह	३०-३-३९

बी० ए० के द्वितीय वर्ष में पढ़ते समय गुप्त जी सुन्दरपुर छोड़कर लवेट हाई-स्कूल ज्ञानपुर के अन्य साथी छात्रों के साथ रहने के लिए संकट मोचन स्थित भैरव लाज पर चले गये। यहाँ सावन के महीने में उन्होंने आल्ह खण्ड का नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित संस्करण पूर्ण मनोयोग से पढ़ा और दो पूर्ण नाटक लिखे।

१—प्रतिशोध—(क) प्रथम अंक १७ अगस्त ३९, प्रभात

(ख) द्वितीय अंक १६ अगस्त ३९, पूर्वरजनी

(ग) तृतीय अंक १९ अगस्त ३९, प्रभात

इस नाटक को आल्ह खण्ड का प्रारम्भ कहा जा सकता है।

२. विध्वंश--(क) प्रथम अंक (तृतीय दृश्य को छोड़) २३-८-३९, रात्रि
(ख) प्रथम अंक तृतीय दृश्य, द्वितीय अंक के प्रथम दो दृश्य—२४-८-३९ रात्रि
(ग) द्वितीय अंक के दृश्य ३,४,५,६—२५-८-३९, प्रातः
(घ) द्वितीय अंक दृश्य तथा तृतीय अंक–२६-८-३९, रात्रि।

विध्वंस आल्ह खण्ड का अन्त है।

प्रतिशोध की रचना तीन दिन में और विध्वंस की चार दिन में हुई। इससे स्पष्ट है कि डा० गुप्त विद्यार्थी जीवन में ही कितने प्रतिभाशाली, परिश्रमी और क्षिप्र गति से काम करने वाले थे। दोनों रचनाएँ सशक्त है।

'सिंदूर का मोह' गुप्त जी का अन्तिम एकांकी है, जो १६ अगस्त १९४२ को पण्डित लाज, संकट मोचन में रहते समय रचा गया। १९४२ में गुप्त जी ने अंग्रेजी में एम० ए० किया। यह ९ अगस्त को घर से वाराणसी पहुँचे। उसी दिन महात्मा गाँधी का 'करो या मरो' संघर्ष प्रारम्भ हुआ। गुप्त जी को जब कहीं नौकरी नहीं मिली, तब हिन्दी से एम० ए० करने के लिए स्वाध्याय की दृष्टि से वे काशी आये। इसी स्थिति में उन्होंने अपना यह श्रेष्ठ एकांकी रचा। इन सातों एकांकियों का संकलन 'सप्त रंग' नाम से हुआ है।

आगे इन रचनाओं का परिचय कालक्रम से दिया जा रहा है।

(क) सप्त-रंग

(१) भोलापन या भूलापन

'भोलापन' एकांकी डॉ० गुप्त का प्रथम एकांकी है। इसमें एक ग्रेजुएट युवक आनन्द, जिसे अनू के नाम से पुकारा जाता है, के जीवन की आर्थिक विपन्नता का चित्रण है और जिसके यौवन, सौन्दर्य और भोलेपन के प्रति, सरला नाम की षोड़सी युवती आकर्षित होती है। यही एकांकी की कथा का आद्यन्त है। एकांकी की कथावस्तु कुल ५ दृश्यों में विभक्त है, किन्तु वस्तु संगठन शृङ्खलाबद्ध है।

प्रस्तुत एकांकी कथ्य एवं रंगमंचीय शिल्प-टेकनीक की दृष्टि से एक सफल एकांकी है। कथा-विकास के अन्तर्गत ग्रेजुएट आनन्द आर्थिक अभाव के कारण १५) पर एक रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर के घर पर डाक लाने, चिट्ठी-पत्री खोलने, शाक-सब्जी लाने, किसी के घर आने पर खातिर करने और ऐसे ही अनेक काम करने के लिए, नौकरी स्वीकार कर लेता है। वहाँ पर डिप्टी कलेक्टर की संस्कृत-हृदया षोड़सी लड़की सरला, आनन्द के मोहक, भोले, स्वस्थ, सरल, सौन्दर्य-समन्वित व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित होती है। वह अपने प्रणय-भाव को प्रकट करने के ब्याज से, कोयल के 'कुहू-कुहू' करने और पपीहे के 'पी-कहाँ, पी-कहाँ' करने का आशय आनन्द बाबू से

पूछती है । आनन्द उसकी जिज्ञासा को तुष्ट करने के लिए स्पष्ट करता है कि कोयल के 'कुहू कुहू' के मधुर स्वर में—'एक प्यास होती है, एक टीस होती है, एक वेदना होती है, एक प्रश्न होता है, वह अपने सुनने वालों से पूछती है—'क्या प्रेम करोगे' और इसी प्रकार पपीहा 'पी-कहाँ, पी-कहाँ' कहकर 'अपने पी को खोजता' है। निश्चय ही, सरला भी सांकेतिक ढंग से 'क्या प्रेम करोगे, जैसे भाव को आनन्द तक पहुँचाना चाहती है । इसी स्थल पर, सरला के इस कथन में कि 'तुम बहुत भोले जान पड़ते हो आनन्द' शीर्षक का बीज-बिन्दु स्पष्ट हुआ है ।

कथा- क्रम में, सरला बीमार आनन्द की सेवा सुश्रुषा भी करती है तथा आनन्द बाबू की माँ से घुलती-मिलती है । उधर घर जाने पर, सरला की माँ, सरला से गोपाल के पिता द्वारा सरला-गोपाल के विवाह करने की चर्चा करती है। सरला अपनी माँ से विवाह की बात अपने बी० ए० करने तक टालने और आनन्द बाबू को देखने के लिए अपनी माँ को प्रेरित करती है । वह आनन्द बाबू के बी० ए० होने, इलाहाबाद के प्रसिद्ध एडवोकेट लक्ष्मी बाबू के मित्र होने तथा ८०) की नौकरी इलाहाबाद में मिलने की सूचना देती है ।

सरला की माँ आनन्द के विषय में स्वगत चिन्तन करती है—'आनन्द कोई बुरा तो है नहीं, जैसा सरला बताती है । गोपाल से लाख गुना अच्छा है । आनन्द के लिए सरला के हृदय में स्थान है, वह गोपाल को पसन्द नहीं करती, गोपाल के साथ विवाह होने से उसकी जिन्दगी चौपट हो जायेगी ।' उक्त कथन से सरला-आनन्द के भावी सुखमय जीवन का संकेत प्राप्त होता है । एकांकी के अन्तिम दृश्य में आनन्द, सरला से 'किंग रीडर' पढ़ाने का आग्रह करता है । सरला उसके मधुर व्यंग्य को समझकर, उसका मुख बन्द कर देती है और कहती है कि 'मैं तो समझती थी तुम बड़े भोले हो ।' यहीं पर एकांकी का पटाक्षेप हो जाता है । सरला के अन्तिम कथन में, शीर्षक का औचित्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है । शीर्षक एकांकी के समग्र भावों को अभिव्यंजित करने में पूर्णतः सक्षम है ।

'भोलापन' एकांकी में द्वन्द्व की उदग्रता नहीं है, प्रत्युत् द्वन्द्व शनैः शनैः पात्रों की मानसिकता के साथ मन्द-मन्थर-गति से संचरित हुआ है । रंग-निर्देश स्पष्ट है—यथा 'मकान के बरामदे में एक बीस वर्ष का युवा, ५५ वर्ष की बूढ़ी माँ के सामने खड़ा है, उसके बाल बड़े-बड़े किन्तु रूखे हैं, उनमें तैल की स्निग्धता नहीं है, 'एक लम्बी आह छोड़ती हैं' 'सरला एक षोड़सी, एक सजे ड्राइंग रूम में कुर्सी पर बैठी है' 'सिर झुकाये हुए ही' 'सिर हिलाते हुए' 'अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में' 'मुसकराते हुए' 'बात काटकर' 'एक ठंडी आह भरकर' 'आश्चर्य दबाते हुए' 'सलज्ज भाव से प्रस्थान' 'सुसज्जित प्रकोष्ठ में विद्युद्दीप से कमरा प्रकाशित' आदि ध्वनि-संकेतों, प्रकाश-व्यवस्था, पात्र-मुद्रा,

वेश-भूषा, रंग-सज्जा से एकांकी के अभिनीत होने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इन संकेतों से एकांकीकार की रंग-कला एवं नाट्य-सज्जा सम्बन्धी विस्तृत जानकारी का परिज्ञान प्राप्त होता है।

प्रस्तुत एकांकी की कथा औत्सुक्य से युक्त होकर पदे-पदे पाठकों प्रेक्षकों को जिज्ञासा का समाधान करती हुई अग्रसरित हुई है। कथा का प्रारम्भिक ठहराव अन्तिम भाग तक आते-आते क्षिप्रता से परिपूर्ण है। पात्राधिक्य नहीं है, कुल चार पात्रों से कथा-वितान-विस्तृत हुआ है। अनू-सरला और सरला की माँ और सरला के वार्तालाप उक्त एकांकी के संवाद के प्राण हैं, संवादों में स्वाभाविकता है, पैनापन है। पात्र-चरित्रांकन और कथा-विकास करने में ये संवाद बहुत महत्त्व के हैं। एकांकी की भाषा पात्र-प्रसंगानुकूल तो है ही, रंग-मंच के अनुकूल और जन-सामान्य के निकट भी है। एकांकी में स्थान-संकेत के स्पष्ट निर्दिष्ट होने, समय-संकेतों के संकेतित होने तथा कार्य का घटना-घटित होते हुए सुसम्पादित होने से संकलनत्रय का सम्यक निर्वाह है। कुल मिलाकर डॉ० गुप्त का 'भोलापन' एकांकी, कलात्मक तत्त्वों से संयुक्त है।

●

(२) 'परीक्षा'

'परीक्षा' एकांकी का शुभारम्भ, छायावादी भावनाओं एवं विशेषताओं के युक्त—प्रकृति के मनोरम रूप, प्रेम के वायवी स्वरूप, मानवीकरण की सघनता, मनोरम कल्पना से युक्त भाषा की चित्रविधायिनी शक्ति से हुआ है। एकांकी का प्रारम्भिक रंग-निर्देश ही 'वाटिका के एक कोने में चम्पक''''हरित पत्रांक में'''' तपाए कुन्दन-सा''''मन्द मन्द समीर का सञ्चार''''प्राची के दिगन्त से अरुण की पहली किरण'''' कोमलता का मांसल रूप'—से संयुक्त होकर, भावों के सूक्ष्म स्पन्दन को रूपायित करने वाला है।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त का प्रस्तुत एकांकी कुल तीन दृश्यों में विभक्त है। एकांकी की कथा का मुख्य वैशिष्ट्य, प्रकृति के उपादानों में मानवीय भावनाओं का निवेशन है। घटना-व्यापार प्रातः से सान्ध्यकाल तक घटित होते हुए दिखाया गया है।

एकांकी के प्रथम दृश्य में प्रभात किरण का चम्पक कली को जागरित करने का भावनामय प्रयास है। 'बीती विभावरी जाग री' कहकर, किरण कोमल करों से गुद-गुदाती हुई चम्पा को जाग्रत करती है, जिससे चम्पा खिलखिलाकर हँस पड़ती है। जब तक चम्पक कली, किरण से प्रश्न करती, तब तक किरण 'केवल इन्हें ही जगाना है' का उपालम्भ देती हुई 'ओसों के यहाँ मणियों की माला पहुँचानी है' कहकर प्रस्थान करती है। इसके उक्त कथन में जैसे एकांकी कथा की क्षिप्रता का संकेत है।

सौरभ से सिक्त समीर भी चम्पक कली के रूप-लावण्य की प्रशंसा करता है। समीर को कली के 'स्वर्गीय सौन्दर्य से' विक्षिप्त होने की आशंका है, किन्तु 'मैं सदा-गति हूँ' कहकर प्रशंसात्मक भाव से समीर चला जाता है। चम्पा भी अपनी प्रशंसा सुनकर, गौरव में अभिभूत-लज्जा भाव से युक्त हो जाती है।

एकांकी के द्वितीय दृश्य में समीर और अलिन्द का संवाद है। अलिन्द स्वयं कमलिनी के पराग से पुता हुआ है, किन्तु वह समीर के सौरभ से लदने की भावना, उसकी शीतलता, मन्थर गति व मस्ती के विषय में जिज्ञासा प्रकट करता है। समीर नाना-विध पहेली बुझाता हुआ अपनी सुगन्धि-मस्ती का राज (न तो पाटल से, न वासन्ती-सरसों से, न किंसुक से, न कञ्जकली से, न मौलसिरी से, न गेंदे से मानता है, अपितु)—'रूपसी रँगीली भीनी चम्पा की डाली सूनी पड़ी है' कहकर अलिन्द के मन में भी आग लगाकर चल देता है। एकांकीकार ने उक्त स्थल पर पाठकों की जिज्ञासा को भी अलिन्द की जिज्ञासा से जोड़ा है। पाठक भी समीर की पहेली में एक मस्ती ही नहीं, स्वयं भी डूबने-उतराने लगता है।

तृतीय दृश्य में चम्पा को एक षोड़सी बाला-सी मादकता से परिपूर्ण दिखाकर, अलिन्द को उसकी ओर आकर्षित होते हुए दिखाया गया है। दोनों एक-दूसरे के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं। उच्छृङ्खलता के स्तर पर, अलिन्द चम्पा के कौमार्य का उपभोग करना चाहता हैं, किन्तु चम्पा उसकी गम्भीर निर्बलता पर आक्रोश व्यक्त करती है —'हटो यहाँ से, जाकर कहीं और यह मुँह काला करो, उच्छृंखल !' यहीं पर एकांकी का पर्यवसान हो जाता है। ऐसे ही स्थल पर 'विषादमयी सन्ध्या का प्रवेश होता है। चम्पा पङ्खड़ियों के द्वार बन्द कर लेती है। आँसू के मिस चम्पा के मुख पर ओस की बूँदें छा जाती हैं।'

डॉ० गुप्त ने सांकेतिक ढंग से चम्पक की वेदना, उसकी उदासी और ओस के मिस उसके आँसू को अभिव्यञ्जित किया है। उसकी खिन्नता प्रतीक रूप से विषादमयी सन्ध्या के प्रवेश से ही संकेतित है।

'परीक्षा' एकांकी का अन्त भी प्राकृतिक भावनायय स्पन्दन से ही हुआ है। एकांकी में एक ओर चम्पा के माध्यम से संयत, उदात्त एवं शाश्वत-मर्यादित प्रेम का डॉ० गुप्त ने वर्णन किया है, तो दूसरी ओर अलिन्द जैसे मानवों के उच्छृङ्खल वासना-त्मक प्रेम पर प्रहार भी किया है।

प्रस्तुत एकांकी की भाषा, काव्यमयी एवं आलंकारिक शब्द-शक्ति से युक्त है। शब्द-चयन में एकांकीकार के छायावादी छवि रूप का प्रभाव स्पष्टतः अंकित है। लेखक के गवेषणात्मक साहित्य-लेखन का व्यक्तित्व, पाठकों के ज्ञान का वर्द्धन भी करता चलता है। संस्कृत-साहित्य और रीतिकालीन साहित्य के शृङ्गार वर्णनेतर छायावादी

वायवी सौन्दर्य का उत्कृष्ट स्वरूप, इस एकांकी की साहित्यक कलात्मकता को गौरव प्रदान करता है। प्रकारान्तर से यह एकांकी, गुप्त जी के गौरव का स्तम्भ है। संक्षेप में बहुत-कुछ कहने की शक्ति एकांकी में सन्निहित है।

'परीक्षा' एकांकी बहुत भावमय बन पड़ा है। भावनाओं का चित्रमय बिम्बन, एकांकी का सर्वस्व है। इसकी भाषा और उसकी अभिव्यंजना शक्ति पर मुग्ध हुए बिना, कोई रह ही नहीं सकता। स्थान-स्थान पर सूक्तियों के प्रयोग से, एकांकीकार के गहन चिन्तन एवं जीवन की विशद अनुभूतियों का ज्ञान प्राप्त होता है। मानवीय-संवेदना का संस्पर्श एकांकी का अभिप्रेत है, जिसमें लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। प्रस्तुत एकांकी को टी० वी० एवं रेडियों पर भी प्राकृतिक उपादानों से सज्जित एवं ध्वनि-प्रभावों से सम्पृक्त कर कमेण्ट्री के रूप में दर्शाया एवं प्रसारित किया जा सकता है। इससे एकांकी का अपेक्षित एवं आशातीत स्वरूप उभर कर आ सकता है। एकांकी का शीर्षक 'चम्पक कली' भी हो सकता है, जो कथा के मर्म को आद्यन्त समाहित किये हुए हैं। एकांकी की कथा कुल १२ घंटे की है, जो प्रातः काल के प्रभात किरण से प्रारम्भ होकर सान्ध्यकालीन विषाद पर समाप्त होती है। उसमें घटना-बाहुल्य की अपेक्षा भाव-घनत्व अधिक है। किरन, चम्पा, समीर और अलिन्द पात्र के रूप में अवतरित हैं। एकांकी में प्रकृति के माध्यम से जीवन में व्याप्त दृप्त प्रेम का संयत स्वरूप अंकित हुआ है। एकाध स्थल पर गीति-योजना से प्रेम का मादक रूप भी स्पष्ट हुआ है। उक्त एकांकी डॉ० गुप्त के एकांकियों और एकांकी जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है।

●

(३) विपर्यय

'विपर्यय' एक सामाजिक समस्याग्रस्त एकांकी है। इसमें प्रेम एवं परिणय की पारस्परिक परिणति पर गम्भीर किन्तु सहज चिन्तन है, जो एकांकीकार की नाट्य प्रतिभा एवं उसके वर्णन कौशल का परिचायक है।

प्रस्तुत एकांकी का शुभारम्भ सान्ध्यकालीन प्रकृति के मनोरम रूप से हुआ है। रंगमंचीय सज्जा का स्पष्ट संकेत है। पर्दा उठने पर शशिबाला को अध्ययनरत होते हुए दिखाया गया है। वहीं पर उसका प्रेमी मनोज भी प्रवेश करता है। युवक मनोज की इस टिप्पणी से कि 'क्या नष्ट हो जाता हैं शशि ?' जैसे वाक्य से एकांकी की पूर्व चिन्ता-धारा और घटना का संकेत प्राप्त होता है। शशिबाला 'शा' के इस कथन से कि 'जिससे प्रेम करो, उसी से परिणय न करो अन्यथा सर्वदा के लिए क्रीतदासी हो जाओगी' वस्तुतः इस प्रकार अपना अस्तित्व नष्ट हो जाता हैं' से मनोज की उत्सुकता को शान्त करती है, किन्तु कथा-विकास-सूत्र भी यही वाक्य बनता है!

मनोज और शशि प्रेम एवं परिणय के पारस्परिक प्रभाव-दुष्प्रभाव का विश्लेषण करते हैं। इसी मूल भित्ति पर एकांकी की कथावस्तु का विकास हुआ है। चिन्तन-क्रम में मनोज संस्कृत-साहित्य, रीतिकालीन साहित्य, और उर्दू साहित्य की स्वकीया-परकीया के प्रेम व परिणय की परिधि में अपने विचारों का तर्कपूर्ण समर्थन करता है और वर्णित साहित्यों की उत्पत्ति को सार्थक महत्व भी प्रदान करता है। यहां पर एकांकीकार की समालोचक-दृष्टि स्पष्टतः मुखरित हुई है। मनोज की दृष्टि में अपने प्रेमियों से परिणय न कर पाने की व्यथा से, वैवाहिक स्थिति में भी उनका परकीया प्रेम स्वाभाविक परिणति है।

सम्पूर्ण एकांकी में दो वैवाहिक दम्पत्ति हैं, जो अपने वर्तमान दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट हैं। एक युग्म मनोज और चम्पा का है और दूसरा हरीश और उसकी पत्नी का। मनोज अपनी पत्नी चम्पा से असन्तुष्ट है, क्योंकि उसकी पत्नी घूंघट काढ़ने वाली है, जब कि उसे शशिबाला-सी सुशिक्षित, परी-सी, खुलें विचारों वाली स्त्री की आवश्यकता है। दूसरी ओर हरीश बाबू असन्तुष्ट हैं कि—'मुझे तो चाहिए एक घूंघट वाली स्त्री'। वह अपनी पत्नी से असन्तुष्ट हैं कि वह खुले विचारों वाली आधुनिका है। यह विचित्र विपर्यय है कि एक व्यक्ति उसी भाव से सन्तुष्ट है और दूसरा उसी से असन्तुष्ट। एकांकी का शीर्षक अपनी सार्थकता स्वयं सिद्ध कर देता हैं।

एकांकी में निहित भाव-व्यंजना हरीश एवं मनोज की पत्नी चम्पा के इस संवाद में सन्निहित है :—

हरीश—कितने आदर्श की नारी है। देखते ही आत्मा तृप्त हो गई। चम्पा तुम कितनी सुन्दर हो। मुझे देखते ही तुम्हारा घूँघट निकाल लेना मुझे कितना भला लगा। मनोज तुमसे असन्तुष्ट है। वह अपनी भाभी-सी बीबी चाहता है और मैं तुम-सी। काश समाज बदलने की आज्ञा देता।

चम्पा—वही तो नहीं हो सकता।

उपर्युक्त संवाद से बहुत सारे सामाजिक व्यक्तियों की व्यथा का निदान हो सकता हैं, किन्तु 'वही तो नहीं हो सकता।' यह एक भावी प्रत्याशा मात्र है। एकांकी के अन्तराल में दूसरों की वेदना 'मैं वह ठीका उससे तय करूँगी, जिससे मेरा प्रेम न होगा'— वस्तुतः एक नये प्रेम की लाश पर परिणय का व्यापार होने की सूचना देता है।

एकांकी की कथा चिर परिचित सामाजिक घटना पर आधारित है। कथ्यगत नावीन्य न होने पर भी डॉ० गुप्त के एकांकीकार ने कथा की भाषा-शैली एवं प्रस्तुतीकरण के ढंग से एकांकी के मर्म को उद्घाटित किया है। एकांकी की भाषा संवेदना-

सम्प्रेषित करने में पूर्ण सक्षम है। कथा-वितान एकबारगी फैलाव लिये हुए है। एकांकी संक्षिप्त है, किन्तु भावोत्पादक। भाषा एवं शब्द-चयन जन साधारण के अनुकूल है। एकांकी सहज ही रंगमंच पर अभिनीत हो सकता है।

(४) 'विद्रोह'

'विद्रोह' एकांकी डॉ० गुप्त का सामाजिक एकांकी है। इसमें अनमेल विवाह के कारण अभिशप्त एक २५ वर्षीय विधवा नारी, तरुणी के विद्रोह की करुण-कथा अंकित है। यह विधवा तरुणी रूप-यौवन-सम्पन्न समाज-उपेक्षित नारी है, जिसका विवाह एक दुधमुंहे केदार के साथ हुआ है। काम-बुभुक्षा एवं अतृप्त काम-पिपासा की शांति हेतु वह भ्रष्ट आचरण वाली बन जाती है। एतदर्थ घर पर उसका सदैव झगड़ा रहता है। उस पर अपने पति की हत्या का आरोप भी है। इस पर भी वह अपने विद्रोही स्वर को समाज तक सम्प्रेषित करती है। उक्त बातें सम्पूर्ण एकांकी के कथ्य में अभिव्यञ्जित हैं।

एकांकी के प्रमुख पात्र कैलास बाबू, जो स्वयं एक युवा हैं, को यह बातें तरुणी से ही ज्ञात होती हैं कि वह क्यों ऐसा आचरण करती है। कथान्तर्गत तरुणी ककड़ी के खेत में एक बूढ़ी स्त्री के पास आयी हुई है और वहीं पर कैलास बाबू की मुलाकात भी उससे होती है। यह मौका पाकर (बूढ़ी स्त्री को नमक पीसने भेजकर) कैलास बाबू को उलाहना देती है कि वे होली में उसके यहाँ रंग खेलने क्यों नहीं जाये ? 'तबीयत खराब थी' जैसे वाक्य से झूठ का आश्रय लेकर कैलास बाबू उसके वैधव्य की ओर संकेत करते हैं। वह इसे बहाना ही मानती है। इस पर कैलास बाबू स्पष्ट करते हैं कि होली में रंग-गुलाल विधवा के साथ खेलना सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। ऐसे ही क्षण विधवा तरुणी विद्रोह भरे स्वर में समाज और समाज के न्याय को चुनौती देती है—'तुम्हारी समाज बाबू! आप जानते हैं मेरी शादी दुधमुंहे केदार से हुई। दुधमुंहा ही कहना चाहिए, जब वह मेरे किसी काम का नहीं। और ऐसी हालत में क्या होना चाहिए, आप सोच लीजिए। और जो होना चाहिए, वही हुआ। मेरी तृप्ति होनी चाहिए। मैंने तो यह ठान लिया है कि जितने घर हो सकेंगे नाश करूँगी। समाज ने मेरा नाश किया है। मैं उसका नाश तो नहीं कर सकती, पर उसे हानि अवश्य पहुँचाऊँगी। मेरे पास रूप है बाबू! रूप।'

इस विद्रोह के बाद तरुणी वैचारिक स्तर पर चिन्तन-मनन करने हेतु कैलास बाबू को समय देती है —'जो कुछ मैंने कहा है उस पर विचार करना बाबू। अगर मैं बिलकुल गलत हूँगी, तब तो आप जैसा कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ, नहीं तो जो पथ मैं

पकड़ रहो हूँ, वही ठीक है। मेरी बात लेकर आप एकाध किताब लिखें, शायद समाज की आँखें खुल जायें। कैलास बाबू के रूप में एकांकीकार ने अपने दायित्व को पूरा किया। अब उद्देश्यगत संकेत है कि समाज इस अभिशप्त सामाजिक बुराई एवं नारी की दशा पर चिंतन और भावात्मक बदलाव करे, जिससे इस नारकीय यातना से नारी को मुक्ति मिले। केवल खान-पान और रहन-सहन की सामाजिक उच्चता ही समाज के लिए अपेक्षित नहीं है, अपितु इन सबसे बढ़ कर मानसिक भूख (काम-परितोष) की परितृप्ति भी आवश्यक है। इससे मानसिक सन्तुलन बना रहता है। इस तथ्य को भी कथ्य के स्तर पर डॉ० गुप्त ने 'विद्रोह' एकांकी में रेखांकित किया है।

'विद्रोह' एकांकी की कथा रंग-कलात्मक वैशिष्ट्य से युक्त है। ग्राम्य जीवन के यथार्थ को ग्राम्य परिवेश के अनुकूल प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत रंग-निर्देश एकांकी के मर्म को व्यञ्जित करने में सहायक हुआ है। एकांकी की घटना मात्र सूर्यास्त से पौन घण्टे पूर्व से सन्ध्या के गहराते अँधेरे तक घटित होती है। वातावरण निर्माणक भाषा एवं संवादों की स्वाभाविक प्रखरता से एकांकी की कथा में सांद्रता आ गयी है। एकांकी को संक्षिप्त कथा के तीन-चार पात्रों की योजना से प्रभावी बनाया यया है। तरुणी का चरित्र सामाजिक व्यंग्य के कारण स्वाभाविक स्पष्ट और विश्वसनीय बन पड़ा है। इसका तेजस्वी व प्रखर व्यक्तित्व आरोपित न होकर स्वाभाविक रूप से प्रभावी है। समग्र रूप से प्रस्तुत एकांकी रंगमंचीय विधान के अनुकूल है और कथ्य के सम्प्रेषण में प्रभावोत्पादक भी।

●

(५) 'प्यार'

'प्यार' डॉ० गुप्त का एक सामाजिक एकांकी है। इसमें दो बहनों के (कमला व सरला के) एक ही व्यक्ति के साथ हुए प्रणय व परिणय की कथा का अंकन है। एकांकी की समग्र अभिव्यंजना प्यार के अनोखेपन में निहित है।

रंगमंच पर एकांकी का प्रारम्भ उदास कमला के द्वारा पर्स से दस रुपये निकाल कर डॉ० रमानाथ को देने, डॉ० के जाने तथा सरला के प्रवेश होने से होता है। सरला कमला से छह वर्ष छोटी विधवा नारी है। उनकी अवस्था २१ वर्ष की है। वह कमला से जीजा के स्वास्थ्य के विषय में जानकारी चाहती है। कमला ने स्पष्ट किया कि वे अब नही रहे। सरला द्वारा बोमारी के कारण का क्लू (clue) पूछने पर कमला ने बताया कि डॉ० ने बीमारी का कारण 'हृदय पर किसी तरह की चोट पहुँची है अथवा किसी बहुत बड़ी निराशा का सामना करना पड़ा है, जिसमें इनकी बुरी हार

हुई है'—बताया है। अन्तिम समय में वे यह भी कहते रहे कि 'छिः तुम ऐसे हो। फिर कभी मुँह न दिखाना'। कमला के मुख से उक्त कथन को सुनकर सरला का मुख पीला पड़ जाता है। थोड़े समय में कमला के हटने पर वह शव की श्वेत चादर हटाकर शव का मुख चूम लेती है और मृत जीजा की मुख-आभा की प्रशंसा करती है। कमला सरला के इस आचरण को लक्षित करती है।

कमला के आग्रह करने पर सरला जीजा के प्रति उद्भूत अपने प्रारम्भिक प्यार को प्रकट करती है कि वह उन्हें चाहती थी। जीजा के अग्रसरित होने पर उसने प्यार का समर्पण भी किया है, किन्तु वैधव्य के कारण स्वयं को धिक्कारा भी है, साथ ही उन्हें भी फटकारा है। फटकार की भाषा वही है—'छिः तुम ऐसे हो, फिर कभी मुँह न दिखाना'। सम्भवतः ग्लानि व क्षोभ से जीजा को यह बात गहरी निराशा और हृदय के ऊपर आघात जैसे चुभी व लगी। इसे एकांकीकार ने पूर्व ही पृष्ठभूमि के रूप में स्पष्ट कर दिया है। सरला को इस बात का गहरा दुःख है कि क्या ही दुःखद विडम्बना हैं कि जीजा जी फिर कभी मुँह न दिखा सके।

कमला को इस बात का बेहद गर्व है कि उसका पति इतना आकर्षक व सुन्दर था कि कोई भी नारी उसकी ओर आकर्षित हो जाती। वह सरला से भी स्पष्ट स्वीकार करती है कि यदि वह जानती तो वह अपनी बहन सरला का विधवा विवाह कराकर अपने पति के साथ उसे रख लेती और उसे प्रतिद्वन्द्विनी की अपेक्षा पूरक के रूप में रखती। ऐसा करने से कम-से-कम इस दुःखद यातना का शिकार न होना पड़ता। 'आज तुम दुःखी और मैं भी व्यथित। काश, 'छिः तुम ऐसे हो' का अर्थ मैं समझ पाये होती।' कमला के इस अप्रत्याशित अकुंठ स्वर को सुनकर सरला स्वयं को ही मृत्यु का कारण (नागिन) मानकर प्रेमासिक्त हो जाती है। एक बार पुनः वह शव का चुम्बन करना चाहती है।

उधर कमला सरला के इस उत्कृष्ट प्यार को देखकर सरला को अपनी बाँहों में पकड़कर चूमने लगती है। 'तुम वही हो, जिसे वे प्यार करते थे'। यहीं पर एकांकी का अन्त हो जाता है। एकांकी का शीर्षक 'छिः तुम ऐसे हो'। और भी सार्थक वेदना उभारने वाला होगा।

हिन्दी एकांकी-जगत में 'प्यार' एकांकी जैसा कोई एकांकी देखने को नहीं मिलता। प्यार का ऐसा अनोखा और विस्मयकारी भाव अन्यत्र दुर्लभ है। कथा की घटना एक बहुचर्चित लोक-प्रसंग 'जीजा-साली' प्रकरण पर आधारित है, किन्तु इसमें चुहल की अपेक्षा मार्मिकता अधिक है, एक आन्तरिक पीड़ा है, एक टीस है, जिससे पाठक-दर्शक ही मर्माहत नहीं होते, अपितु स्वयं उसकी बहन कमला भी सहज स्वीकृति प्रदान करती है। दोनों बहनों का चरित्र स्पष्टता, मृदुता एवं स्वाभाविकता से सम्पृक्त

है । दोनों का ही चरित्र असीमित प्रभाव को छोड़ने वाला है । रंगमंचीय कलात्मकता, साहित्यिक गौरव एवं जीवन की मूल संवेदना को सम्प्रेषित करने में 'प्यार' एकांकी एक नयी दिशा व विचार देने में सक्षम है । उक्त एकांकी का वातावरण व सम्वाद मृत्यु की भयावहता की अपेक्षा मृत्युजन्य व्यथा को नयी चेतना व नई राह देने में अग्रसरित है । एकांकी को अभिनय व पठन दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

●

(६) 'अफवाह'

'अफवाह' एकांकी धार्मिक वितण्डाबाद और साम्प्रदायिक दंगे का पर्दाफास करने वाला एकांकी है । इसमें अफवाह-रूप में प्राप्त हिन्दू-मुस्लिम दंगे पर लोगों के वैचारिक स्तर एवं उनकी उत्तेजित भावना को एकांकीकार ने मार्मिक ढंग से व्यञ्जित किया है । अफवाह का सिलसिला कैसे चलता है, उसकी शुरुआत, उसका प्रचार-प्रसार और उसका विकास कैसे होता है—इस समस्यागत भावना को एकांकी का मूल संवेद्य विन्दु बनाया गया है ।

एकांकी का श्रीगणेश तीन युवकों के संवाद से हुआ है । सेटिंग-विधान और रंग-निर्देश से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण एकांकी की घटना एक ही बैठक में घटित होते हुए दिखाई गई है । घटना की वैचारिक मीमांसा की गयी हैं । लेखक ने काशी में हो रहे अफवाही दंगे का सजोव व मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । अलईपुर में हिन्दुओं की दुर्दशा, दशाश्वमेध घाट पर मुसलमानों के घेराव, कुँजड़िन के तरकारी-खाने में दो बनारसी सांड़ों, जिनमें एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान है के लड़ने और तज्जन्य दंगे के शुरू होने का आँखों देखा हाल जैसा वर्णन एकांकी की कथा का आधार वना है । दंगे के चश्मदीद गवाह प्रो० खोलकर के नौकर से वे लोग इस सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, किन्तु 'अफवाह' एकांकी का व्यंग्य तब उभर कर पाठकों व दर्शकों के सामने आता है, जब प्रो० खोलकर की चिट पाने पर कि उनका नौकर 'एक सप्ताह की छुट्टी पर है, वारह की शाम तक आ जायेगा'—तीनों युवकों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगती हैं । उनकी इस निराधार अफवाही आशंका का निवारण हो जाता है कि प्रो० खोलकर का नौकर दशाश्वमेध की घटना में तो था नहीं—'वह तो दंगा शुरू होने से पहले ही घर चला गया था' । इससे पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि अफवाहों के निराधार प्रकाशन करने से समाज को क्षति हो सकती है ।

एकांकीकार डॉ० गुप्त का यह विचार स्वागत योग्य है कि 'जनता को बड़ी तकलीफ हुई है । जरा उनकी सोचिये, जिनके घर कल, पाखाना नहीं है, जो रोज कुँआ खोदते और रोज पानी पीते हैं' । यह सर्वग्राह्य विचार है ।

'अफवाह' एकांकी की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है, किन्तु अपनी संक्षिप्तता में ही वह पाठकों के मर्म को स्पर्श करने व मूल संवेदना को संप्रेषित करने में सक्षम हैं। पात्र तीन ही हैं, किन्तु उनके पारस्परिक संवाद से ही मूल समस्या व भावना का रहस्योद्घाटन कराया गया है। अफवाह में घात-प्रतिघात और द्वन्द्व की रोचक व सार्थक प्रस्तुति हुई हैं। एकांकी में कार्य संकलन एक बैठक और एक स्थान व समय पर सम्पादित होने से संकलनत्रय का निर्वाह भी हुआ है। लेखक ने व्यंग्य को उभारकर समाज को आगाह भी किया है। स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों एवं मुहावरों से कथन में जान आ गयी है। लेखक का यह व्यंग्य कि 'कौन कहता है कि काशी के पण्डित अब भी कूप मण्डूक हैं'। बड़ा ही प्रखर प्रहार करने वाला है। कुल मिलाकर 'अफवाह' एकांकी में अपने प्रतिपाद्य को सम्प्रेषित करने में एकांकीकार डॉ० गुप्त को पूर्ण सफलता मिली है।

(७) 'सिन्दूर का मोह'

'सिन्दूर का मोह' डॉ० गुप्त का एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें एक युवती की वेदना सिन्दूर के मोह के रूप में व्यक्त हुई है। इस एकांकी की कथा सुन्दरी, उन्नर और कुसुमी के पारस्परिक वार्तालाप से निर्मित हुई है।

प्रस्तुत एकांकी का घटना-स्थल है—अन्तर्वेद वेतुली तट स्थित शिव मन्दिर; और समय है—विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का एक मनोरम प्रभात। षोड़सी बाला सुन्दरी के विषादयुक्त गीत 'पर्वत की बीहड़ घाटी में खिल मुरझाया फूल' से कथा का शुभारम्भ हुआ है। इस गीत-योजना में एकांकी के समग्र कथ्य का भावमय प्रतीकात्मक रूप सन्निहित है।

एकांकी की नायिका सुन्दरी को कुसुमी से ज्ञात होता है कि पूजन-हेतु अन्य फूलों के साथ कनक-कुसुम नहीं चुना जा सका, क्योंकि किसी साहसिक व्यक्ति ने उसे पहले ही तोड़ लिया है। साहसिक व्यक्ति कौन है ? इस पर दोनों चर्चा कर हो रही हैं कि एक चतुर्दश वर्षीय बालक शिव-मन्दिर से आता हुआ दिखाई पड़ा। बालक किशोर वय, सुन्दर है। वार्तालाप के दौरान वह कुसुमी को अपना परिचय देते हुए बताता है कि उसका नाम उन्नर है, तिलरी गढ़-निवासी सुखेनसाहु का वह भानजा है। अपने पिता के साथ व्यावसायिक मार्ग देखने आया हुआ है। वेतुली तट के पार टिका हुआ है और इस पार के शिव के स्वर्ण-कलश को देखने के लोभ को संवरण न कर पाने के कारण वह यहाँ आया हुआ है। मालिन की लड़की कुसुमी अपनी सखी का परिचय देती है कि वह अन्तर्वेद के सुन्दर साहु की इकलौती बेटी हैं।

बड़े ही नाटकीय ढंग से कुसुमी उन्नर को 'विवाह का खेल' खेलने के लिए

तैयार करती है। उन्नर गणेश के शरीर के सिन्दूर को लेकर खेल खेलने के लिए उद्यत होता है, किन्तु अपनी अवस्था को सुन्दरी की अवस्था से छमक बताकर विवाह को अनुचित बताता है तथा माता को इस खेल में न सम्मिलित किये जाने पर आपत्ति करता है। उन्नर दो बातों से प्रभावित होता है—प्रथम जैसे ही उसे यह विदित होता है कि सुन्दरी सुन्दर साहु की बेटी है। वही सुन्दर साहु जी किसी का श्वसुर बनना नहीं चाहते, तब वह आन्तरिक गर्व से अभिभूत हो जाता है कि ऐसा करके वह इस गौरव का भागी बन जायेगा। द्वितीय—वह सुन्दरी की इस वेदना से —'दोनों भाभियाँ ताने देती हैं। यह जवानी कहाँ समायगी। पैर पृथ्वी पर पड़ते नहीं। पैरों की लाली में महावर की लाली बिना लोच कहाँ। सीमान्त की शोभा सिन्दूर है न कि अवतंस। तभी से मुझे सिन्दूर का मोह-सा हो गया है। वैसे मैं कुमारी रह लेती, पर सुनते-सुनते कान पक गये,—मर्माहत हो जाता है। वह निश्चय भरे स्वर में कहता है—'तुम दुःखी हो देवि ! मैं तुम्हें सिन्दूर-दान करूँगा।' उसकी माँग में सारा का सारा सिन्दूर डाल देता है। 'देव प्रतिमा साक्षी है। मैंने तुम्हें पत्नी बनाया।' लौटते समय कन्नौज ले जाने का वह वचन देता है, किन्तु सुन्दरी पितृ-प्रण और बल को समझकर उन्नर को आने से मना करती है—'न आना प्रियतम, जानते हो मुझे सिन्दूर का मोह है। जिस सिन्दूर से आज मैंने यह माँग भरी है, चाहती हूँ यह सदैव ऐसी ही भरी रहे। यहाँ आकर उस सिन्दूर को जिसका दान अभी तुमने किया है, छीन मत लेना प्रियतम।'उन्नर अपने वचन की रक्षा करने के लिए कि 'मैं दुर्बल नहीं हूँ⋯⋯सुन्दर साहु को अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी होगी'-कहकर प्रस्थान करता है। यहीं पर एकांकी का अन्त हो जाता है।

'सिन्दूर का मोह' एकांकी कथ्य-शिल्प एवं टेकनीक की दृष्टि से डा० गुप्त का सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट एकांकी है। इस प्रकार का प्रणपूर्ण कथ्य-बोध ऐतिहासिक काल खंड में प्रायः देखने को मिलता है। एकांकी में औत्सुक्य जिज्ञासा और द्वन्द्व का सफल चित्रण हुआ है। संकलनत्रय का पूर्ण निर्वाह हुआ है। एकांकीकार को अपने प्रतिपाद्य सुन्दरी को 'सिन्दूर का मोह' क्यों हुआ था के प्रस्तुतीकरण में पूरी सफलता मिली है। सुन्दरी का वेदनामय और उन्नर का साहसी व्यक्तित्व सुन्दर बन पड़ा है। एकांकी का प्रारम्भिक गीत 'पर्वत की बीहड़ घाटी में खिल मुरझाया फूल' है। इसकी सार्थकता इतने में है कि उन्नर सुन्दरी के जीवन की नीरसता को सरस कर उसका 'उपकार' करता है। रंगमंचीय सेटिंग, रंग-निर्देश, स्वर-ध्वनि के आरोह-अवरोह, मुद्रा-चेष्टा आदि भंगिमाओं से एकांकी अभिनय-पठन व प्रसारण में अपेक्षित एवं आशातीत सफलता पाने का अधिकारी है।

समग्रतः डॉ० गुप्त के एकांकी रंग-शिल्प व तकनीक तथा कथ्य की दृष्टि से एकांकी जगत की निधि हैं।

(ख) 'प्रतिशोध' नाटक

'प्रतिशोध' डॉ० गुप्त का प्रथम नाटक है। इस नाटक की कथावस्तु कुल तीन अंकों में विभक्त हैं। प्रथम अंक में ५ दृश्य, द्वितीय में ७ दृश्य तथा तृतीय में ३ दृश्य अर्थात् सम्पूर्ण नाटक में कुल १५ दृश्यों की योजना हुई है। नाटक में कुल १० पुरुष पात्र और ७ स्त्री पात्र हैं। इनमें कुछ पात्र प्रमुख और कुछ गौण हैं। प्रस्तुत नाटक के नायक आल्हा के छोटे भाई उदय सिंह और नायिका जम्वै की कन्या विजयश्री है।

'प्रतिशोध' नाटक की कथा ऐतिहासिक है। इसमें मूल आल्ह खण्ड के रचयिता महाकवि जगनिक द्वारा वर्णित आल्हा व उदयसिंह की वीरता, पराक्रम और उनके कौशलपूर्ण शौर्य का वर्णन है। पात्र/घटनाएँ और प्रसंग प्रायः सभी मूल आल्ह खण्ड के ही हैं, किन्तु नाट्यकार ने नाटकीय कौशल से उसे और भी अधिक रोचक और विश्वसनीय बनाया है।

'प्रतिशोध' नाटक की कथावस्तु का प्रारम्भ राजा परिमर्दिदेव की राजसभा के दृश्य से होता है, जिसमें राजा महाकवि जगनिक की प्रशंसा करता है कि वह भी किसी काव्य की रचना करे, जिससे अमर हो जाये। राजा यह भी सलाह देता है कि जिस भाषा में वह रचना कर रहा है, वह उसे त्याग दे, क्योंकि वह भाषा शिष्ट जनोचित नहीं है। जगनिक 'वीर' छन्द में काव्य-रचना के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए राजा को आश्वस्त करता है। ऐसे ही क्षण नाटकीय ढंग से राजा के साले उरई के सरदार माहिलराय का प्रवेश होता है। वह राजा को उलाहना देते हुए आक्रोश व्यक्त करता है—'आपने उदय सिंह को साँड़ पाल रखा हैं।' उसके इस कथन से नाटक के संघर्ष की सूचना प्राप्त होती है। राजा परिमर्दिदेव, उदयसिंह की चंचलता और उसके मृगया-प्रेम का जिक्र करते हैं, जिससे माहिलराय और भी भड़क उठता है। वह उदयसिंह के इस व्यवहार पर आग उगलते हुए कहता है-'अगर उसे मृगया इतनी प्रिय है, तो वह अपने शत्रुओं का आखेट क्यों नहीं करता। करिङ्गाराव ने दशहरिपुर लुटवा लिया, आग लगवा दी, यशराज व वत्सराज को कोल्हू में पेरवा दिया। उनकी खोपड़ियाँ आज भी किसी सपूत की आशा में उस बरगद की जटाओं से लटक रही हैं। पपीहा-सा घोड़ा, पचशब्दा-सा हाथी, वह प्रसिद्ध नौलखाहार सभी तो वह ले गया। लाखा पातुर आज उसके दरबार का शृङ्गार हो रही है और यह घर में वीर बन रहा है।' ऐसे ही क्षण नाटकीय मोड़ तब आता है, जब उदयसिंह सभी बातों को सुन लेता है और वेग से प्रवेश कर राजा परिमर्दिदेव से जानने की जिद करता है कि उसका 'पितृहन्ता' कौन है? राजा न केवल स्वयं बात टाल देते हैं, अपितु माहिलराय को भी बात टाल देने का संकेत कर देते हैं। 'पितृहन्ता' कौन हैं? इसे जानने की प्रबल

इच्छा से उदयसिंह के मन में प्रतिशोध की भावना जाग्रत होती है । यहीं से नाटक की 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था और 'बीज' नामक अर्थप्रकृति और 'मुख' नामक सन्धि का बीजारोपण होता है ।

उदयसिंह अपनी माता केवल देवी से भी अपने 'पितृहन्ता' का नाम ज्ञात करना चाहता है । माता भी उदयसिंह के किशोर वय को देखकर टाल देती है । किन्तु उदयसिंह की जिद और प्राणान्त करने की भावना देखकर वह पहले माहिलराय को चुगुली की प्रवृत्ति पर प्रहार करती है और बाद में उदयसिंह को सभी घटना बता देती है कि किस प्रकार करिङ्गाराव ने उसके पिता को मारा था, दशहरिपुर को लूटा था, कीमती वस्तुओं को ले गया था । उसने अपनी चूड़ी न उतारने की प्रतिज्ञा भी सुनाई कि 'इन्हें तभी उतारूँगी, जब मेरा कोई सुयोग्य पुत्र इसका भीषण प्रतिशोध ले लेगा ।' उदय सिंह ने भी माता को क्षत्रियोचित गरिमा के अनुकूल आश्वस्त किया कि 'मैं वह प्रतिशोध लूँगा, जिसे इतिहास सदा स्मरण रखेगा ।' यहाँ से नाटक की कथा प्रतिपाद्य के अनुरूप संघर्षोन्मुखी हो जाती है ।

कथा-संगठन की दृष्टि से 'प्रयत्न' कार्यावस्था और 'विन्दु' अर्थप्रकृति का प्रारम्भ तब होता है, जब उदयसिंह प्रयत्नपूर्वक आल्हा को युद्ध करने के लिए तैयार कर लेता है । तदनुरूप दशहरिपुर में आल्हा, उदयसिंह, मलखान, देवा और मीरा ताल्हन युद्ध की मन्त्रणा करते हैं और योगी-वेश में शत्रु-पक्ष का भेद जानने का उपक्रम करते हैं । वे सभी राजा परिमर्दि देव से राय लेकर माड़ौगढ़ पर चढ़ाई करने का अभियान करते हैं । माता देवल भी इन लोगों के साथ जाती है । यहाँ पर प्रतिशोध लेने की पूरी योजना क्षिप्रगति से सम्पन्न हो जाती है । नाटक के प्रथम अंक का समापन भी यहीं पर हो जाता है ।

नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में माड़ौगढ़ के राजपथ पर पाँचों वीरों को योगी-वेश में गान करते हुए दिखाया गया है । तदुपरान्त नाटककार ने नाटकीय कौशल के साथ, माड़ौगढ़ की रानी कुशला के द्वारा बाँदी रूपा के बिलम्ब से आने के कारण पूछने से, कथा को आगे बढ़ाया है । बाँदी पाँचों योगियों की मनमोहनी छवि, सहज-सरल अकृत्रिम रूप की प्रशंसा करती है । रानी कुशला योगियों को लाने के लिए बाँदी को भेजती है । बाँदी योगियों को बुलाकर सिंहद्वार पर लाती है और सूचना देने के लिए रानी के पास जाती है । इसी बीच घोड़े के हींसने, पचशब्दा हाथी के चिग्घाड़ने की ध्वनि को आल्हा उदयसिंह को बताता है कि ये दोनों उसीके घोड़े-हाथी हैं । रूपा के लौटने पर उदयसिंह बरगद की जटाओं में लटकी हुई खोपड़ियों के विषय में पूछता है । रूपा इन खोपड़ियों को करिङ्गाराव की यश-पताका बताती है । उदयसिंह दार्शनिक भाव से कहता है—'ऐसा जान पड़ता है कि मानों यह कपाल कह

रहे हों, यदि हमारे भी कोई सपूत होगा, तो वह इसका बदला लेगा।' यहाँ भी उदयसिंह के मन में प्रतिशोध की भावना मन-ही-मन सुलग रही है। रूपा मार्ग दिखाती हुई योगियों को रानी कुशला के पास पहुँचाती है। रानी उन लोगों के योगी होने के कारण सुनती है। वह अपनी बेटी विजयश्री को भी बांदी से बुलवाती है। विजयश्री पान का बीड़ा लगाकर लाती है। उदयसिंह सभी बीड़े मुँह में रख लेता है। वह विजयश्री के रूप-सौन्दर्य को देखकर मूर्छित हो जाता है। उधर विजयश्री भी मूर्छित हो जाती है, किन्तु रानी केवल उदयसिंह की मूर्छा को देख पाती है। वह भोगी कहकर योगियों को बुरा-भला कहती है। रूपा बाँदी से करिङ्गाराव को बुलाने के लिए कहती है, किन्तु मलखान मूर्छित होने का कारण पान के तम्बाकू के लगने और अपनी योगसिद्धि का बल दिखाकर बाँदी को रोकता है और पानी के छींटे से उदयसिंह को चैतन्य करता है। रानी पुनः योगियों की बातों में आकर उनकी प्रशंसा करती है और योगियों की माँग के अनुसार नौलखाहार विजयश्री से दिलवा देती है। विजयश्री के हाथ का हार देते समय, उदयसिंह के हाथ से स्पर्श हो जाता है। उसके शरीर में कम्पन हो जाता है और दोनों की आँखें भी मिल जाती हैं। विजयश्री उदयसिंह को नाम से पुकारकर अपने पुरातन परिचय का हवाला देती है और तभी से उदयसिंह के प्रति अपने हृदयाकर्षण की बात बताती है। उदयसिंह भी अपने छद्मवेश-धारण करने का कारण बताता है कि वह करिङ्गाराव से प्रतिशोध लेने आया हुआ है, किन्तु विजयश्री के निवेदन करने पर, उदयसिंह वचन देता है कि यदि वह अपहृत वस्तुओं को लौटा देता है, तो वह उसे नहीं मारेगा और उसके पिता का भी वध नहीं करेगा।

माड़ौगढ़ के राजदरबार में राजा जम्बै युद्ध की आशंका का जिक्र करता है, तभी पाँचों योगियों का अलख जगाते हुए प्रवेश होता है। राजदरबार के अनुरूप आचरण न करने पर करिङ्गाराव क्रुद्ध होता है, किन्तु योगियों के तर्कयुक्त शीतल वचनों से राजा प्रसन्न होता है। योगी गीत-गायन करते हैं। राजा लाखापातुर से भी गीत गवाता है, जिस पर प्रसन्न होकर उदयसिंह धीरे से नौलखाहार उसे दे देता हैं। वह गायन के व्याज से उन्हें प्रस्थान कर जाने का संकेत करती है। योगियों के जाने के पश्चात् राजा हार देख लेता है। राजा के पूछने पर लाखा पातुर हार योगियों द्वारा प्रदत्त अनुग्रह बताती है। सशंकित होकर राजा, करिङ्गाराव को नौलखाहार लाने के लिए राजमहल भेजता है, हार न पाकर करिङ्गाराव भेद और षडयन्त्र जानकर योगियों को ढूंढ़ निकालता है। वहीं पर उसकी और उदयसिंह की प्रच्छन्न भाव से ठन जाती है। करिङ्गाराव चल देता है, किन्तु मन-मस्तिष्क से वह महोबा के षडयन्त्र को ताड़ लेता है। यहाँ पर नाटक की कथा आसन्न यौद्धिक भूमिका की प्रचण्डता को आमन्त्रित करने की सूचना देती है। उक्त स्थल पर नाटक की कथा का द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है।

तृतीय अंक में माड़ौगढ़ के अन्तःपुर में विजयश्री एवं रूपा बाँदी वार्ता करती हैं। रूपा विजयश्री से उसके विषाद का कारण पूछती है। विजयश्री माड़ौगढ़ पर विपत्ति के बादल के मँडराने, महोबा के बनाफरों द्वारा चढ़ाई किये जाने और आसन्न युद्ध की जानकारी देती है। इसी क्षण करिङ्गाराव विजयश्री से युद्ध का विजय तिलक लगवाने आता है और उसे उदयसिंह आदि की धृष्टता एवं उनकी शर्तों का आक्रोशपूर्ण वर्णन करता है। विजयश्री उनकी शर्तों को मानकर युद्ध टालने के लिए अनुनय करती है, किन्तु करिङ्गाराव इसे क्षत्रियोचित गरिमा के प्रतिकूल बताकर तिलक लगवाने के लिए उद्यत होता है। बाँदी के हाथ से थाल थामते समय थाल छूट जाती है, जिससे एक कर्कश ध्वनि होती है। यह अशुभ का संकेत है, जिससे भावी अशुभ की सूचना प्राप्त होती है। विजयश्री और रूपा बाँदी के प्रारम्भिक संवाद से भी विजयश्री के भावी दुःखद जीवन का भावमय संकेत प्राप्त होता हैं। इससे कथा के मर्म का उद्‌घाटन तो होता ही है, नाटककार की प्रतिभा का भी परिचय प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् युद्ध का भयंकर रूप उभर कर आता है। उदयसिंह प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व में झूलते हुए करिङ्गाराव से युद्ध करता है, उधर आल्हा भी जम्बै को मारकर उसके पुत्र को 'पितृहीन' कर देता है। यह दोनों बातें और दोनों की मृत्यु की सूचना खून से लथपथ मलखान और देवा देते हैं। इतना ही नहीं, बरगद के पास माता देवल के पहुँचने की सूचना भी इन्हीं लोगों से ज्ञात होती है।

नाटक का अन्तिम दृश्य अत्यन्त कारुणिक और हृदय-विदारक है। बरगद के वृक्ष के पास सभी पात्र एकत्र हुए। माता देवल आज अपने को सपूती मान रही हैं। आल्हा भी प्रसन्न हैं, किन्तु उदयसिंह के हृदय में एक वेदना घर कर गयी है। वह अपने और विजयश्री के मूक प्रणय की हाहाकारी वेदना की चर्चा जगनिक से करते हैं। जगनिक, माता देवल और आल्हा से विजयश्री को कुलबधू के रूप में स्वीकार करने का आग्रह करते हैं, किन्तु शत्रु-कन्या मानकर दोनों उस आग्रह को अस्वीकार कर देते हैं। फलतः वहाँ आयी हुई विजयश्री का आहत तेज फुंकार उठता है—'मैं किसी के गले पड़ी वस्तु भी नहीं होना चाहती। मेरा उन पर रोष नहीं। वह प्रतिशोध ही लेने आये थे, मुझे लेने नहीं। फिर मैं क्यों जाऊँगी। मैं अपने को लूट की वस्तुओं से बहुत उच्च समझती हूँ।' ऐसा कहकर वह कटार पेट में भोंक लेती है। उदयसिंह उसे थाम लेता है और सार्वजनिक महत्त्व देते हुए 'तुम मेरी परिणीता हो' कहकर अपेक्षित महत्त्व और गौरव प्रदान करता है। उदयसिंह के इस व्यवहार से वह अपने को धन्य समझती है। उदयसिंह को दुःख है कि 'हमारे इस प्रतिशोध से संसार की एक स्वर्गीय और निरीह कुसुम-कलिका का अवसान हो गया।' आल्हा भी उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से अपने को अपराधी मानते हैं और उनके इस अभिशाप को कि 'आपके घर में शत्रु-कन्याएँ ही

आएँगी, जेठ जी। मेरी यह बात खूंट बाँध लीजिए' को वे शिरोधार्य कर लेते हैं। वेदना के असह्य होने पर उदयसिंह के धड़ाम से गिरने पर नाटक का अन्त हो जाता हैं।

स्पष्टतः 'प्रतिशोध' नाटक की ऐतिहासिक (११७० ई०) कथा मूल आल्ह खण्ड के इतिवृत्त पर आधारित है। कथा में वीर एवं शृंगार रस की अप्रतिम व्यंजना हुई है। डॉ० गुप्त ने बहुत सी कथाओं, प्रसंगों एवं घटनाओं को सांकेतिक रूप से अनुस्यूत कर दिया है। यह उनके नाटकीय कौशल कौर प्रतिभा का वैशिष्ट्य ही है। नाटक के पात्र, प्रसंग और घटनाएँ प्रायः सभी ऐतिहासिक हैं, किन्तु नाटककार ने अपनी कल्पना-शक्ति से रोचकता, जिज्ञासा और औत्सुक्य की वृद्धि कर उसे रंगमंच के अनुकूल बताया है। नाटक के प्रथम अंक की कथा महोबा औंर दशहरिपुर से सम्बन्धित है तथा द्वितीय और तृतीय अंक की कथा माड़ौगढ़ में घटित होती है। जहाँ तक दृश्य-विधान का प्रश्न है—दृश्य-परिवर्तन और रंग-सेटिंग में बहुत अन्तर नहीं करना पड़ेगा। नाटक के अधिकांश दृश्य राजदरबार, प्रकोष्ठ, राजमार्ग और युद्ध के ही हैं—अस्तु थोड़ा बहुत परिवर्तन करने से समय की बचत भी होगी और नाटक-कथा के रसास्वादन में व्याघात भी उत्पन्न नहीं होगा। नाटककार ने पात्रों की वेश-भूषा, रहन-सहन, बोल-चाल और रंग-निर्देश को स्पष्ट कर दिया है, जिससे नाटक-मंचन और अभिनय में समस्या उत्पन्न नहीं होगी। नाटक की कथा में डॉ० गुप्त ने इतिहास की मूल आतमा को अक्षुण्ण रखा है।

नाटक के प्रायः सभी पात्र नाटक की मूल संवेदना प्रतिशोध से जुड़े हुए है। नायक उदयसिंह का व्यक्तित्व विद्रोही स्वभाव से संयुक्त होकर, पराक्रम, शौर्य और वीरता का पुञ्ज बन पड़ा है। उसके कर्त्तव्य और प्रणय की उदग्र भावना उसके व्यक्तित्व का सम्मोहक पक्ष है। नायिका विजयश्री का प्रेम और कर्तव्य, एक उच्चकोटि की क्षत्राणी राजकन्या के अनुरूप है। माता देवल देवी की प्रतिशोधी वृत्ति, उसकी मानसिक वेदना की भयंकरता और तज्जन्य आक्रोश की स्वाभाविक परिणति है। आल्हा की दूरदर्शिता, वैचारिकता और पराक्रम वीरोचित गरिमा से मण्डित है। अन्य पात्रों में करिङ्गाराव का विद्रोही स्वभाव, पराक्रमपूर्ण वाचालता, उसकी राजयुवकोचित प्रतिभा और उत्साह के अनुकूल है। राजा परिमर्दि देव, मलखान, जम्बै तथा रानी कुशला व मल्हना आदि का चरित्र सुन्दर बन पड़ा है। रूपा बाँदी और लाखा पातुर की प्रत्युत्पन्नमति और वाक्चातुरी उनके व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्ष को उभारने वाली है। नाटककार ने चरित्रांकन में पात्रों की दुर्वलता-सबलता को महत्त्व दिया है, जिससे वे पात्र जन-सामान्य के मनोभावों को संस्पर्श करने में सहायक हुए हैं।

नाटक के संवाद वीरोचित भावनाओं, विचारों और पात्रों के अनुकूल हैं। कथा-विकास और चरित्रांकन में ये संवाद महत्त्पूर्ण भूमिका प्रदान करने वाले हैं। नाटक

का वातावरण-ऐतिहासिक, मनोभूमि व वैचारिक संस्पर्श को लिए हुए है, इससे नाटक की मूलात्मा की रक्षा भी हुई है। भाषा नाटक की मूल संवेदना 'प्रतिशोध' की भावना के अनुरूप है। वीरोचित भावना और गरिमा को पूर्णता प्रदान करने में भाषा ओज गुण से युक्त है और श्रृंगार की योजना में भावोचित लालित्य पूर्ण एवं माधुर्य गुणों से युक्त है। स्थान-स्थान पर सूक्तियों, मुहावरों और जगनिक के उद्धरणों से कथानक में चार-चाँद लग गया है। पात्रों के द्वन्द्व को उभारने में लेखक को अपेक्षित सफलता मिली है। जीवन में 'प्रतिशोध' की भावना को दिखाकर और उसके परिणाम को भी दिखाकर नाटककार ने मानव-भाव-विरेचन करने में, अपेक्षित अभीष्ट हासिल किया है। ऐतिहाकिक नाटकों में डॉ० गुप्त के 'प्रतिशोध' नाटक का उल्लेख करना, हिन्दी नाटक इतिहास की कोष-वृद्धि में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(३) 'विध्वंस' नाटक

'विध्वंस' नाटक की आधार-भूमि भी मूल आल्ह खण्ड पर ही आधारित है। इसमें कुल तीन अंक और १८ दृश्य हैं। कथानक में दिल्ली, महोबा, कान्यकुब्ज, उरई और दशहरिपुर में घटित घटनाओं को समाहित किया गया है। डॉ० गुप्त ने अपनी उर्वर कल्पना एवं प्रखर मेधा-शक्ति से कथा-विस्तार को सुसंगठित किया है। नाटक में कुल १२ पुरुष पात्र और ५ स्त्री पात्र हैं। कथानक की दृश्य-योजना भी लगभग 'प्रतिशोध' नाटक की ही भाँति हुई है। इसमें भी सुविधानुसार राज दरबार, उद्यान, प्रकोष्ठ और युद्धस्थल के दृश्य-विधान हैं।

'विध्वंस' नाटक की कथा का शुभारम्भ दिल्ली के राजप्रासाद के एक प्रकोष्ठ में बैठी हुई दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला के गीत से होता है। बेला के हृदय में यौवनावस्था में ही विराग और उदासी घर कर गयी है। चतुर परिचारिका इस उदासी का कारण दिल्ली और महोबा के मध्य बढ़ती हुई शत्रुता को मानती है। कारण यह है कि बेला का विवाह महोबा के राजा के पुत्र ब्रह्मा सिंह से हुआ है, किन्तु उसका गौना अभी नहीं हुआ है। बेला मानती है कि कोई भी अपने यहाँ लड़की की पैदाइश अच्छा नहीं मानता। सभी बहनोई बनना चाहते हैं, कोई भी साला बनना नहीं चाहता। उसके पिता और भाई भी इसी कारण उसे शत्रुवत दृष्टि से देखते हैं। वह राजकुमारी होने में अपने नारी होने की सार्थकता और गौरवानुभूति नहीं करती। अपने जीवन को व्यर्थ मानती है।

नाटकीय दृश्य-परिवर्तन के साथ, दिल्ली के दरबार में रायपिथौरा पृथ्वीराज चौहान से चुगुलखोर माहिल महोबा के राजा परिमर्दिदेव के विषय में चुगुली

करते हैं कि महोबा के चन्देल नरेशों के पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे हैं। फलतः कन्नौज-विजय के दम्भ और स्वाभिमान से पूर्ण पृथ्वीराज चौहान, माहिल की सलाह से कूट-नीतिक चाल चलकर महोबा के सामन्तों के घोड़ों को माँगने का उपक्रम करते हैं और न देने की स्थिति में युद्ध करने की स्थिति में आते हैं। संघर्ष का स्वरूप उभरने लगता है।

इधर घर पर, उरई का युवराज अभयसिंह, जो माहिल का पुत्र है, अपने पिता की चुगुलखोर प्रवृत्ति से क्षुब्ध और खिन्न है। तभी दिल्ली से माहिल आते हैं और पुत्र के क्षुब्ध और दुःखी होने का कारण पूछते हैं। पुत्र स्पष्टतः उनकी चुगुलखोरी की प्रवृत्ति को अपनी खिन्नता का कारण बताता है, जिससे पिता-पुत्रमें कहासुनी हो जाती है। माहिल उसे अपने यहाँ से निष्कासित कर देते हैं। उधर महोबा में परिर्मादिदेव सभासद गणों और आल्हा-उदयसिंह से राय लेते हैं कि रायपिथौरा को उनके द्वारा माँगे गये घोड़ों को देकर, आसन्न युद्ध को टाला जा सकता है, किन्तु उदयसिंह तीखे स्वर में राजा की इच्छा का प्रतिकार करता है और घोड़ा न देकर युद्ध करने के लिए सलाह देता है। आल्हा भी उदयसिंह का समर्थन करता है। राजा क्रूद्ध होकर आल्हा-उदयसिंह को देश से निष्कासित कर देता है। ऐसे क्षण में माहिल आते हैं और राजा के इस कृत्य का समर्थन करते हैं। आल्हा-उदयसिंह दशहरिपुर आकर माता देवल से परामर्श लेकर गुण-ग्राहक कन्नौज के राजा जयचन्द के यहाँ चले जाते हैं। यहीं पर प्रथम अंक की कथा समाप्त हो जाती है। कथानक में माहिल की कुटिल नीति व पात्रगत मनोभावों के उद्वेग से हल्की-सी द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न होती है।

द्वितीय अंक में महोबा के राजप्रासाद में माहिल और रानी मल्हना, विचार-विमर्श मग्न हैं। माहिल राय पिथौरा की शर्त व माँग को बताता है और न मानने व देने की स्थिति में युद्ध का संकेत देता है। मल्हना अपनी कमजोरी समझते हुए भी कि अब मलखान नहीं हैं, आल्हा-उदयसिंह जा चुके हैं, नहीं तो क्या राय पिथौरा की हिम्मत होती कि जिसके यहाँ हमारे बेटे की शादी हुई है, वह मेरी चन्द्रावली का डोला माँगे— स्पष्ट मना कर देती है कि जब तक महोबा में क्षत्रिय हैं, राय पिथौरा की शर्त नहीं मानी जायेगी। विचार-विमर्श के अन्तराल में माहिल का निस्कासित पुत्र अभयसिंह आ जाता है और पिता के दुष्कृत्यों का पर्दाफाश करता है। वह राय पिथौरा से युद्ध करने के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है। पिता-पुत्र में पुनः वाद-विवाद हो जाता है।

दृश्य परिवर्तन के साथ, चन्द्रावली आकर माता मल्हना से हठ करती है कि सावन के पर्व पर वह अपनी जरई 'कीर्तिसागर' में डुबोयेगी। रायपिथौरा के सम्भावित युद्ध की आशंका से, मल्हना मना कर देती है, किन्तु जगनिक अपनी शूरता का उल्लेख कर 'जरई' डुबवाने का भार स्वयं अपने ऊपर लेता है। उधर कन्नौज में उदयसिंह को

महोबा की घनीभूत स्मृति आ जाती है। वह कन्नौज के युवराज लक्ष्मणसिंह से 'मदन-ताल' व 'कीर्तिसागर' के माहात्म्य का वर्णन करता है और लक्ष्मणसिंह के कहने पर वहाँ की छटा दिखाने को तैयार हो जाता है।

घटना-क्रम से 'कीर्तिसागर' स्थल पर माहिल का पुत्र अभयसिंह चन्द्रावली की रक्षा करते हुए राय पिथौरा के सामंत चामुण्डराय के हाथों मारा जाता है। घटना-स्थल पर माहिल मृत-पुत्र की दशा देखकर स्वयं को दोषी मानता है और युद्ध को रोकने के प्रयत्न में संलग्न होता है। दूसरे ही दृश्य में 'कीर्तिसागर' के स्थल पर जगनिक बाँधे गये हैं और चन्द्रावली को चामुण्डराय पदाति शिविर तक चलने के लिए विवश करता है। चन्द्रावली उदयसिंह का स्मरण करती है। अचानक नाटकीय मोड़ आता है और उदयसिंह और लक्ष्मणसिंह योगी वेश में आकर चन्द्रावली की रक्षा करते हैं, जिसकी जगनिक भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

उधर महोबा में राजा परिमर्दिदेव चिन्तामग्न हैं। रायपिथौरा के सैनिकों से दुर्ग चार मास से घिरा हुआ है। मल्हना और चन्द्रावली के कहने पर, राजा परिमर्दि-देव जगनिक को कन्नौज भेजते हैं। जगनिक, माता देवल के प्रयास से व स्वयं समझा-बुझाकर आल्हा-उदयसिंह को महोबा जाने हेतु तैयार कर लेते हैं।

आल्हा-उदयसिंह और जगनिक, कन्नौज नरेश जयचन्द्र से महोबा जाने हेतु सलाह लेते हैं। प्रतिशोध और प्रतिहिंसा से परिपूर्ण जयचन्द्र, रायपिथौरा के बढ़ते चरण को अवरुद्ध करने के लिए अपने पुत्र युवराज लक्ष्मणसिंह (लाखनसिह) के नेतृत्व में सेना भेज देते हैं। यहीं पर द्वितीय अंक की कथा समाप्त हो जाती है और संघर्ष की प्रबल भूमिका की तैयारी का संकेत मिल जाता है।

तृतीय अंक में अन्तःपुर में दुःखी बेला के गीत को सुनकर परिचारिका संकेत करती है कि देवि ! महाराज रायपिथौरा महोबा से पराजित होकर आ चुके हैं, उन्हें यह गीत गरल जैसा लगेगा। बेला प्रसन्न होकर पूछती है कि क्या तब अपने विवाहित वर ब्रह्मा सिंह से मिलने की आशा की जाय।

विजयोत्सब के रूप में, राजा परिमर्दिदेव, आल्हा, उदयसिंह और लक्ष्मणसिंह का राजदरबार में स्वागत करते हैं और इन लोगों की सलाह पर ब्रह्मासिंह का गौना कराने का संदेश रायपिथौरा को भिजवा देते हैं। यहाँ से नाटक के प्रबल संघर्ष की आकांक्षा का संकेत प्राप्त होता है। आगे की घटना में भयंकर युद्धजन्य विध्वंस का स्वरूप वर्णित है।

दिल्ली के युद्ध क्षेत्र में राय पिथौरा और लक्ष्यणसिंह अपनी-अपनी शान और प्रतिशोध का आख्यान करते हुए युद्ध में संलग्न होते हैं। दिल्ली के युवराज नाहरसिंह और महोबा के युवराज ब्रह्मासिह वाक् युद्ध करते हैं। ब्रह्मासिह आहत हो जाते हैं,

जिससे लक्ष्मणसिंह नाहरसिंह का पीछा करते हैं। उदयसिंह घायल ब्रह्मासिंह के पास उदास-खिन्न भाव से खड़े हुए हैं। कथाक्रम में दिल्ली के अन्तःपुर में बिखरे केशों वाली बेला को, उदयसिंह और लक्ष्मणसिंह ब्रह्मासिंह के विश्वस्तमित्र और भृत्य के रूपमें, ब्रह्मासिंह के अन्तिम दर्शनार्थ चलने हेतु तैयार कर लेते हैं। ब्रह्मासिंह बेला के प्रति अपने निश्शेष प्यार को प्रकट करता है। और बेला के भावी वैधव्य की दशा को सोचकर दुःखी हो जाता है। बेला प्रतिशोध-भावना से भर कर प्रतिज्ञा करती है कि जिसने चन्देलवंश का नाश किया है, उस चौहान वंश का दीपक नाहरसिंह का नाश वह स्वयं करेगी। ब्रह्मासिंह के रोकने पर भी वह उनका चरण-स्पर्श लेकर नाहरसिंह का विध्वंस करने के लिए चल देती है। इस विध्वंस के रूप को नाटककार ने 'दूसरे महाभारत' की संज्ञा दी है।

नाटक के अन्तिम दृश्य में पुरुष वेश में बेला नाहरसिंह को मौत के घाट उतार देती है। चामुण्डराय जगनिक को धराशायी कर देता है। पृथ्वीराज लक्ष्मणसिंह को मृत्यु-शय्या पर सुला देता हैं। लक्ष्मणसिंह की मृत्यु को सहन न कर पाने की स्थिति में, उदयसिंह चामुण्डराय से युद्ध करते हुए धराशायी हो जाता है। चिता को दिखाकर 'सती बेला की जय' से बेला और ब्रह्मासिंह के निधन की सूचना प्राप्त हो जाती है।

उधर माहिल भी अपने पुत्र की मृत्यु से संतप्त होकर कटार भोंककर मृत्यु को प्राप्त होता है। सिरसागढ़ के मलखान की मृत्यु का वर्णन कथा में संकेतस्वरूप हो ही चुका है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में प्रतिशोध की ज्वाला से दग्ध सभी राजाओं के राज-युवकों—ब्रह्मासिंह, लक्ष्मणसिंह, नाहरसिंह, उदयसिंह की मृत्यु से उनके वंश-प्रदीप सदा सदा के लिए बुझ जाते हैं, साथ ही अनेक जाने-माने शूर-वीर उदयसिंह, मलखान और अन्य मृत्युकी गोद में सदा-सदा के लिए सो जाते हैं। यहाँ समूल वंश-विध्वंस की लीला को दिखाकर नाटककार ने हिंसा, प्रतिशोध, दम्भ, विद्वेष और घात-प्रतिघात की चरम परिणति को समाज के लिए अहितकर बताया है। वस्तुतः प्रस्तुत नाटक प्रतिशोधजन्य विध्वंस की महागाथा है।

नाटक का शीर्षक 'विध्वंस' सार्थक और भाव-संवाहक है। जहाँ तक नाटक की रंग-दृष्टि व सृष्टि का प्रश्न है—डा० गुप्त को मूल संवेदना उभारने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कथा में जितनी उदग्रता है, प्रतिहिंसा-प्रतिशोध की ज्वाला है—तदनुकूल रंग-योजना हुई है। नाटक का रंग-निर्देश, पात्रों के हाव-भाव, वेश-भूषा, आचार-विचार तत्कालीन ऐतिहासिक घटना के अनुरूप है। कथा-संगठन शृंखलाबद्ध व सुगठित है। पात्रों का उज्ज्वल पक्ष उभर कर सुन्दर बन पड़ा है। सभी पात्र अपने-अपने पराक्रम और शौर्य से स्वाभाविकता से सम्पन्न हैं, आरोपित नहीं। संवादों में स्वाभाविक

व्यंजना और मानव मनोभावों का सहजोद्गार है। वातावरण ऐतिहासिक काल खण्ड (११८०-८२) से सम्पृक्त होकर विश्वसनीयता प्रदान करने वाला है। भाषा वीरोचित एवं शृंगार भाव के अनुकूल है। विध्वंस की ज्वाला क्यों धधकती है, इसका अन्त कैसा भयावह और त्रासदीजनक होता है—इस मूल अभिप्रेत को प्रस्तुत करने में डॉ० गुप्त समग्ररूपेण सफल रहे हैं। नाटक में अपेक्षित द्वन्द्व है, जिससे पात्रों के कर्त्तव्य, वैयक्तिक प्रेम, राष्ट्र प्रेम, मान-अपमान का उभरता स्वरूप पाठकों को प्रभावित करता है। 'विध्वंस' नाटक हिन्दी नाट्य जगत् के लिए एक उपलब्धि है।

—बिछिया बनकट, वाराणसी

५. चतुर्दशपदियों की श्यामा

[कामता नाथ उपाध्याय, एम० एस–सी०, बी० टी०, भूतपूर्व प्रधानाचार्य हिंदू इन्टर कालेज, अतर्रा, बाँदा]

शेक्सपियर अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार हैं। वह महारानी एलिजाबेथ के युग में हुए। इनके कुल ३६ नाटक हैं। नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने दो कथा काव्य वेनस एण्ड अडोनिस तथा रेप ऑफ लूक्रेसी एवं १५४ चतुर्दशपदियाँ (सानेट) भी लिखीं।

शेक्सपियर के सानेट १६०९ ई० में प्रथम बार एक चोर प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हुये और मिस्टर डब्लू० एच० को समर्पित हुये और कहा गया कि यह डब्लू० एच० ही इन सानेटों की मूल प्रेरणा हैं। यह डब्लू० एच० हेनरी रिथस्ले साउथेम्पटन के अर्ल थे। ये सानेट १५९३–१५९७ के बीच लिखे गये।

शेक्सपियर के समस्त सानेट दो खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम खण्ड में १ से लेकर १२६ तक के सानेट हैं। ये सभी डब्लू० एच० के प्रेम से लबालब हैं। दूसरे खण्ड में १२७ से लेकर १५४ तक के सानेट हैं। इनमें एक डार्क लेडी की प्रेमपूर्ण झिड़कियाँ हैं। यह डार्क लेडी कौन है? कुछ लोगों का अनुमान है कि यह मेरी फिटन है और यह शेक्सपियर की प्रियतमा थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि मेरी फिटन शेक्सपियर की प्रियतमा नहीं थी। यह लेडी रिच थी जिसकी पहिचान मेरी फिटन के रूप में की जाती है। यह विलियम हरबर्ट पेम्ब्रोक के अर्ल की प्रिया थी। शेक्सपियर ये सानेट पेम्ब्रोक की ओर से उसे लिखा करता था। यह काली नहीं थी, गोरी थी, इसके केवल बाल काले थे, मखतूल के तार से थे, ब्लैक बायर।

सानेट १२७, १३०, १३१, १३२, १४४, १४७ और १५२ में इस लेडी के डार्क होने का उल्लेख है।

सानेट १२७ में लिखा है 'अतः मेरी प्रिया की भौंहें द्रोण काक सी काली हैं।[१]

सानेट १३० में लिखा है 'यदि बाल तार हों, तो काले तार उसके बराबर हैं।"[२]

सानेट १३१ में लिखा है 'मेरी दृष्टि में तुम्हारी श्यामलता सुन्दरतम है। तुममें कहीं भी कालिमा नहीं है, केवल तुम्हारे कृत्यों में कालिमा है। इन्हीं काले कृत्यों ने तुम्हें काले होने की बदनामी दी है[३]।"

सानेट १३२ में लिखा है 'मैं तुम्हारी आँखों को प्यार करता हूँ[४]।' आगे 'तब मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि सौंदर्य स्वयं श्यामल है और वे सभी सदोष हैं, जिनमें तुम्हारे चेहरे की श्यामलता का अभाव है[५]।'

सानेट १४४ में लिखा है 'मेरे दो प्रेमपात्र हैं, एक सुख देने वाला, दूसरा निराशा और दुख देने वाला। ये दोनों दो अशरीरी शक्तियों से हैं, जो मुझे सदा नचाते रहते हैं। एक नेक देवदूत एवं सुन्दर सत्पुरुष है, दूसरी दुष्ट प्रेतात्मा एक काले रंग वाली नारी है[६]।'

सानेट १४७ में लिखा है 'मैंने तुम्हें सुन्दर घोषित किया है और तुम्हें कान्तिभरी माना है, यद्यपि तुम नरक सी काली एवं रात जैसी साँवली हो[७]।'

---

1. Therefore my mistress' brows are raven black—127.
2. If hairs be wires, black wires grow on her head—130.
3. Thy black is fairest in my judgements place.
   In nothing thou art black save in thy deeds.
   And thence thy slumber, as I think, proceeds,—131.
4. Thine eyes I love, and they ....
   ....
   Have but on black.... ....132.
5, Then will I swear beauty herself is black,
   And all they foul that thy complexion lack—132.
6. Two loves I have, of comfort and despair.
   Which like two spirits do suggest me still,
   The better angel is a man right fair,
   The worser spirit is a woman coloured ill—144.
7. For I have sworn thee fair, and thought thee bright.
   Who art as black as hell as dark as night—147.

सानेट १५२ में लिखा हैं 'मैंने तुम्हारे सुन्दर होने की शपथ खाई है, यह शपथ सत्य के पूर्ण विपरीत है, यह घोर असत्य है, मैं झूठी शपथ खाने का अपराधी हूँ[1]।'

शा का नाटक 'द डार्क लेडी आफ द सानेट्स'

चतुर्दशपदियों की इस श्यामा पर अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा गया है। आधुनिक युग के परम प्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार जार्ज बर्नाड शा ने इस पर एक लघु नाटक ही लिख दिया—'द डार्क लेडी आफ द सानेट्स'। इसके द्वारा नए युग के श्रेष्ठतम नाटककार ने पुराने युग के श्रेष्ठतम नाटककार के प्रति प्रकारांतर से श्रद्धांजलि चढ़ाई है।

नाटक में एक ही दृश्य है। टेम्स नदी के तट पर स्थित लंदन के राजमहल का बाह्य प्रदेश। सोलहवीं सदी का अंतिम समय (सन् १५९३–९७)। ग्रीष्म ऋतु की रात के ग्यारह बजे हैं।

नाटक में केवल चार पात्र हैं—प्रहरी, शेक्सपियर, महारानी एलिजाबेथ, मेरी फिटन या चतुर्दशपदियों की श्यामा। नाटक में एक ही दृश्य है, पर यह चार खंडों में बँटा सा है—प्रथम खंड में प्रहरी और शेक्सपियर हैं, द्वितीय खंड में शेक्सपिय और महारानी एलिजाबेथ हैं, तृतीय खंड में शेक्सपियर, महारानी और श्यामा, चतुर्थ में पुनः महारानी और शेक्सपियर।

प्रथम खंड में राजमहल पर एक प्रहरी पहरा देता हुआ टहल रहा है। इसी समय अचानक शेक्सपियर ११ बजे रात वहाँ आ जाता हैं। प्रहरी पूछता है-आप कौन हैं। इस पर शेक्सपियर स्पष्ट कहता हैं कि आज की रात इसी समय पर, मुझे एक श्यामा रमणी ने यहाँ मिलने के लिए बुलाया था। मैंने उसे तुम्हें देने के लिए उसे ग्लोब थिएटर के चार टिकट दे दिये थे। इस पर प्रहरी कहता है—बुरा हो उसका, उसने मुझे दो ही दिए। तब शेक्सपियर उसे उत्कोच में सोने का एक सिक्का देता है। प्रहरी परम प्रसन्न हो जाता है। वह शेक्सपियर को सलाह देता है कि वह नशे में और कभी वहाँ आने का दुस्साहस न करे, क्योंकि उक्त श्यामा की वहाँ प्रतिरात्रि में किसी न किसी के साथ पूर्व नियुक्ति रहती है। शेक्सपियर यह जानकर दुःखी होता है कि उसकी यह श्यामा प्रिया दुर्बल नारी है। इसी समय उसे यह भी बताया जाता है कि लार्ड पेम्ब्रोक भी उससे प्रेम करते हैं और चांदनी रात में उस पर चतुर्दशपदियाँ बनाते हैं। लार्ड पेम्ब्रोक शेक्सपियर के मित्र थे। यह सूचना शेक्सपियर के लिए दूसरा आघात थी। प्रहरी के अनुसार शेक्सपियर अत्यन्त भद्र पुरुष है। मनुष्य उसकी ओर सहज ही आकृष्ट हो जाता है, क्योंकि वह सर्वथा उन्हीं के जैसा सोचता है।

---

1. For I have sworn thee fair more perfumed,
   To swear against the truth, so foul a lie—152.

इसी बीच प्रासाद का सिंहद्वार खुलता है और उत्तरीय में लिपटी निद्राभिभूत महारानी आती हैं। वे निद्रा में टहलती रहती हैं और बातें भी करती रहती हैं। प्रहरी दूर चला जाता है। मंचपर महारानी और शेक्सपियर रह जाते हैं। दोनों एक दूसरे से पूर्णतया अपरिचित।

एलिजाबेथ ने मेरी ट्यूडर को मरवा दिया था। उसीका रक्त जैसे उसके हाथ में लगा हुआ था। वह उसी धब्बे को सोते समय हाथ मलमल कर मिटा देना चाहती थी और कह रही थी कि मलयानिल की संपूर्ण सुगंध उसे नहीं मिटा पायेगी। संयोग से एलिजा-बेथ के द्वारा बध की गई राजकुमारी का नाम मेरी था और चतुर्दशपदियों की श्यामा का भी मेरी (फिटन)। शेक्सपियर ने इस निद्राभिभूता को अपनी श्यामा ही समझा क्योंकि वह उत्तरीयालिंगित थी। शेक्सपियर उसे इस दशा में पाकर बांह पकड़कर झकझोर देता है। रमणी जाग जाती है, पर प्रायः बेहोश हो जाती है। शेक्सपियर उसे अपनी भुजाओं में बाँध लेता है। एलिजाबेथ को स्वयं आश्चर्य होता है कि वह निद्रालु टहलती रही और बोलती रही। शेक्सपियर उसे महारानी न जानकर राजदरबार की कोई रमणी ही समझता रहा, जैसी उसकी श्यामा थी। इसीलिए वह उससे प्रगल्भतापूर्वक प्रेमाभिनय करने लगा और उसकी कटि के चारों ओर अपनी भुजाएँ लपेट लीं।

इसी समय पीछे से श्यामा आई। शेक्सपियर को इस मुद्रा में पा वह सिंहिनी सी क्रुद्ध हो गई और उनपर झपट पड़ी। उसने दोनों को दो-दो चाँटे जड़ दिये। शेक्स-पियर तो गिर गया। एलिजाबेथ ने अपना उत्तरीय उतार फेंका और तब प्रगट हो गया कि वह उत्तरीयालिंगिता कौन है? एलिजाबेथ ने मेरी फ़िटन से पूछा कि वह कौन है? मेरी ने कहा कि एक अभिनेता। एलिजाबेथ ने कह दिया—तुम्हें इस नीच कुलोद्भूत से प्रेम करने में लाज नहीं लगी। इस पर शेक्सपियर तिलमिला उठा और उसने अपने वंश को ट्यूडर वंश से श्रेष्ठ बताया। शेक्सपियर की सत्यवादिता ने रानी को रुष्ट कर दिया, पर उसकी एक उक्ति ने उसे प्रसन्न भी कर दिया। शेक्सपियर ने रानी के रूप की प्रशंसा कर दी और कह दिया कि वह अपने बुद्धिबल से नहीं, अपने रूप-बल से इंगलैण्ड की महारानी है। महारानी ने मेरी को चले जाने का आदेश दिया। यहाँ तृतीय खण्ड समाप्त होता है।

चतुर्थ खंड में महारानी और महाकवि पुनः मंच पर दुकेले रह जाते हैं। महारानी शेक्सपियर को राज्यसभा का सभ्य नियुक्त करती हैं। शेक्सपियर उनसे एक राष्ट्रीय अभिनयागार बनवा देने का निवेदन करता है। पर एलिजाबेथ अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई कहती है कि आज से तीन सौ वर्ष बाद की प्रगतिशील पीढ़ी ही

यह राष्ट्रीत अभिनयागार बनवा सकेगी । अभी समय नहीं आया है । यहाँ नाटक समाप्त हो जाता है ।

इस नाटक में शेक्सपियर की प्रेम-प्रगलभता, अपने उच्च कुलीन होने का गर्व, अपने काव्य की अमरता का पूर्ण विश्वास व्यक्त है । इसमें यह भी दिखाया गया है कि वह किस प्रकार दूसरों की सुन्दर उक्तियाँ सुनकर उन्हें नोट कर लेता था और अपने नाटकों में उनका उपयोग करता था ।

डॉ० गुप्त और द डार्क लेडी आफ द सानेट्स

किशोरी लाल गुप्त १९३८–३९ में काशी हिंदू विश्व विद्यालय में बी० ए० प्रथम वर्ष के छात्र थे । यह सुन्दरपुर नामक गाँव में रहते थे । इस वर्ष इन्होंने शेक्सपियर के सानेटों और जार्ज बर्नार्ड शा के नाटकों को रस ले ले कर पढ़ा । शा का द डार्क लेडी आफ द सानेट्स नामक लघु नाटक इन्हें इतना रुचा कि इन्होंने इसका पूर्ण अनुवाद २९-१-३९ को एक दिन में कर दिया । इससे इनकी रुचि, इनकी प्रतिभा एवं इनकी शक्ति का पता चलता है ।

जार्ज बर्नार्ड शा की उक्त पुस्तक का हिन्दी भावानुवाद बड़े सुन्दर ढंग से मौलिक जैसा किया गया है, यह केवल अनुवाद जैसा नहीं प्रतीत होता । प्रतिभा के धनी डॉ० किशोरीलाल गुप्त अपने जीवन के आरम्भ से ही प्रखर बुद्धि वाले रहे हैं । उन्हें बाल्यकाल से ही हिन्दी भाषा से अनुराग उत्पन्न हो गया था, जिसका परिणाम है कि वे हिन्दी के प्रख्यात् विद्वान हुये तथा हिन्दी में सैकड़ों पुस्तकों की रचना की, जिनमें से कुछ महाविद्यालयों की कक्षाओं में अध्ययन-अध्यापन हेतु स्वीकृति की गई है । वे जमानिया डिग्री कालेज गाजीपुर के प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् भी हिन्दी के शोध छात्रों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं । हिन्दी के क्षेत्रीय विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लेना, विषय से सम्बन्धित सम्मेलनों में आदर पाना, उनके लिये साधारण सी बात है । उनकी लेखनी को निरन्तरता बनी हुई है, बहत्तर वर्ष की उम्र में भी उनका लिखने पढ़ने का क्रम बना हुआ है । भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे विद्वान् मनीषी को हमारे बीच चिरकाल तक बनाये रक्खे ।

—नवधन, ऊज, वाराणसी

●

५. डा० किशोरीलाल गुप्त की प्रारंभिक कविताएँ

(सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव)

हिन्दी वाङ्मय के बहुमुखी प्रतिभा-वाले डा० किशोरी लाल गुप्त गद्य और पद्य को दोनों विधाओं में रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं । ये मौन तपस्वी की तरह साहित्य-सेवा में ही जीवन-यापन करना अपना ध्येय समझते हैं । इन्होंने मुख्यतः आलोचना-क्षेत्र में श्रेयस्कर कार्य किया है, परन्तु कविता, लेख, कहानी, अनुवादादि की रचनाओं

से भी हिन्दी का भण्डार भरा है, । इस शताब्दी के चौथे दशक के आरम्भ से ही ये कविताएँ लिखने लगे थे और तब इनके काव्य-लेखन का शैशव-काल ही था ।

सुधवै ग्राम, वाराणसी के निवासी श्री किशोरी लाल गुप्त जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० के छात्र थे, तब मेरा इनसे प्रथम साक्षात्कार हुआ था । मैं तब इतना ही जान सका था कि साहित्य के प्रति इनकी गहरी अभिरुचि है । अंग्रेजी और हिन्दी विषयों में एम० ए० करने के पश्चात् वे पी-एच०डी० एवं डी० लिट्० उपाधियों से भी विभूषित हो गये ।

शिबली डिग्री कालेज, आजमगढ़ में अध्यापन करने के पश्चात् ये ज़मानिया डिग्री कालेज, गाजीपुर में प्राचार्य हो गये और अब अवकाश प्राप्त कर अपने गाँव में ही रह रहे हैं, किन्तु काशी नगरी का मोह इन्हें यहाँ बहुधा खींच लिया करता है, तब ये काशी के कबीर कीर्ति मंदिर में आकर ठहर जाते हैं । कभी कभी यह अन्य प्रमुख नगरों की यात्रा पर भी चले जाते हैं ।

आज इसी साहित्यकार मनीषो की कतिपय प्रारम्भिक रचनाओं की ओर मैं पाठक-गण का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि किस प्रकार एक लघु अंकुर ही किसी बड़े विटप की भविष्य-वाणी किया करता है । लगभग पचीस वर्ष पूर्व इन्होंने मुझे हिन्दी में अंकित सानेटों का एक संकलन भेंट-स्वरूप दिया था, जिसे देखकर इनकी कवित्व-शक्ति का आभास मिला था । इनकी अनेक आलोचनाओं को देखने और सुनने का सुअवसर भी मुझे मिला था तथा अब भी मिलता रहता है ।

संप्रति इनकी तीन पांडुलिपियाँ मेरे समक्ष विद्यमान हैं, यथा 'अलंबुषा', 'पायल' और तीसरी बिना नाम की । पहले तो 'अलंबुषा' नाम को देखते ही मैं चौंक पड़ा था क्योंकि मैंने कहीं 'अलंबुष' राक्षस का नाम पढ़ा या सुना था, परन्तु संतोष न होने पर जिज्ञासा के कारण शब्दकोष देखने से 'लज्जावती' अर्थ भी मिला । अतः यही नाम काव्य-लालित्य के अनुरूप समीचीन प्रतीत होता है । 'पायल' नाम भी रूमानी विचार-धारा के अनुकूल ही है और तीसरा संग्रह बिना किसी नाम का है ।

सन् १९३३ से लगभग १९५० तक की कविताओं का अवलोकन करने से उनमें अधिकतर रीतिकालीन प्रभाव का दिग्दर्शन होता है । कवि ने शृंगार-रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर बड़ी विदग्धता से रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । लब्धप्रतिष्ठ आलोचक डा० नगेन्द्र ने एक स्थल पर कहा है, 'रीतिकालीन शृंगार का मूलाधार ऐंद्रिक रसिकता है, प्रेम नहीं । अतः यह उपभोग-प्रधान है ।' परन्तु इस कवि का भावोद्रेक सहज प्रेम की ओर इंगित करता है और ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी कविताएँ सायास न होकर अनायास ही हृदय से निःसृत हुई हैं:—

'किसके होठों की लाली के प्यासे अधर हमारे,
चुभते हैं उर में ये किसके नयन-कोर रतनारे ?

किसके अलक-जाल में आकर मेरा मन बिलसा है,
किसकी बातों को सुन-सुन कर हिय हरसा हुलसा है ?

स्वभावतः युवाकाल में भावुकता से मन प्रायः आच्छन्न रहता है, परन्तु प्रेम की सात्विकता और सुरुचिपूर्ण अभिव्यंजना के मणि-कांचन-संयोग से रचना का सौन्दर्य बढ़ जाता है। इस प्रकार शृङ्गार-रस की कविताएँ इनकी तीनों पांडुलिपियों में भरी पड़ी हैं। परन्तु कवि की सात्विकता का आभास भी उसके इस कथन से मिलता है जब वह नारी के प्रति कह उठता है 'मेरी श्रद्धा बनी रहे नित।' वास्तव में स्त्री केवल भोग्या नहीं है, वह पुरुष के लिए संबल भी है, जिसके सहारे मनुष्य कंटकाकीर्ण पथ पर भी चलने में समर्थ हो जाता है। नारी तो अपनी उपेक्षाओ की चिंता न कर सदा सहचारिणी होकर हित ही करने में व्यस्त रहती है;—

'उस साँवलिया के चरणों में,
मेरी श्रद्धा बनी रहे नित,
जिसने रहते हुए विलग भी
किया सदा मेरा हित पर हित'

संयोग के साथ ही इस कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का भी यत्र-तत्र मार्मिक चित्रण किया है और वह वियोग भी कवि के लिए हितकारी ही सिद्ध हुआ है, क्योंकि आँसुओं के बादल ने बरस कर उसके हृदय के कोने-कोने को हरा-भरा कर दिया है--

'चिर निवास तेरे सँग होता
तो होता कितना उपकार।
जब तेरे विरहानल से भी
हुआ भला मेरा सजनी।'

अभी ऊपर मैंने कहा है इस कवि की प्रारंभिक कविताएँ उस अंकुर के समान हैं जो भविष्य में एक महान् वृक्ष बन जाता है, तो इस संदर्भ में यह भी कहना चाहूँगा कि डॉ० किशोरी लाल गुप्त एक ललित, सहृदय और मँजे हुए कवि हैं। इनकी पांडुलिपियों में अनेक लम्बी कथाएँ भी हैं, जिनकी काव्यगत प्रौढ़ता पाठक के मन को निश्चय ही आश्चर्य-चकित कर देती है। 'रूप' शीर्षक लम्बी कविता इतिवृत्तात्मक ही नहीं, अपितु अत्यन्त भाव-प्रवण एवं रस-सिक्त कोमलता से आद्यन्त ओतप्रोत है। अतुकान्त शैली में यह छन्दोबद्ध रचना भाव और कला की दृष्टि से खूब बन पड़ी है।

इस कविता को देखकर मुझे टेनीसन की एक प्रेम-कथा 'इनक आर्डेन' की झलक मिलती है। कथा-विन्यास भले ही भिन्न हैं, किन्तु कलात्मक काट-छाँट, प्रौढ़ता और परिमार्जन बड़े अनूठे ढंग से इस रचना को ऊँचाई दे गये हैं। इसकी रचना सन् १९४१ में हुई थी, परन्तु यह स्वीकार्य है कि ऐसी रचनाएँ काव्य-श्री हैं। रूप कुमारी

और चारु का प्रेम-वर्णन बड़ी सावधानी एवं कोमलता से सँवारा गया है। कवि ने इस प्रेमी-युगल की मनोदशाओं को भी बड़ी कुशलता से रूपायित किया है।

रूप का विवाह उद्यान नरेश से हो जाता हैं, किन्तु चारु स्वाध्यवसाय से जब राष्ट्रपति हो गया, तब रूप को फुसलाकर ले जाने में सफल होता है। उद्यान आक्रमण करता है, चारु और उद्यान युद्ध-लिप्त हो जाते हैं, अपने अपूर्व सौन्दर्य पर दुःखी होकर रूप गढ़ के उपर से नीचे कूद पड़ती है और चारु तथा उद्यान की तलवारें एक साथ उस पर गिरती हैं और वह कट जाती है। यह कथा पाठक के हृदय को छू देती है। रस-सिद्धान्त अथवा आधुनिक आलोचना-पद्धति से भी इस कविता की उत्तमता स्वयं सिद्ध है।

शृंगार-पक्ष के अतिरिक्त कवि ने राष्ट्र-प्रेम, लोक-प्रथाओं और प्राकृतिक छटा की ओर भी झांक कर देखा है। एक गोदनहारी राधा के बरसाना गाँव में जाती है और कुछ लज्जालु-सी प्रतीत होती है, क्योंकि उस स्थान के लिए वह अभी बिल्कुल नयी है, लेकिन राधा-रानी उसे देखकर एक सखी से कहती हैं :—

'गोदनहारी एक नई शर्मीली आती देख अली !
घूम-घूम जो गोद रही गोदना बरसाना गली-गली।'

अतः राधा के इशारे पर वह सखी उसे बुलाकर कहती है कि राधाजी अपने अंग-प्रत्यंग पर श्रीकृष्ण का नाम गोदाना चाहती हैं। क्रमशः सभी गोपियाँ गोदा लेती हैं और तब वह अभीष्ठ पारिश्रमिक लेकर राधा के हृदय पर भी हरि का नाम अंकित कर देती है।

कवि ने झेलम नदी का वर्णन भी विस्तार-पूर्वक बड़ी कुशलता से किया है। सरिता-तट पर खड़ा कवि उसकी फेनिल लहरों को देखता हैं और टकराकर लौट जाने की चर्चा करता है। झेलम वेग से प्रवाहित हो रही है :—

'चल रहा कितनी स्वच्छन्दता के साथ है
झेलम-प्रवाह यह बिना अवरोध के।

चूम रही लहरें हैं दौड़कर कूल को
और लजा कर लौट जातीं फिर शीघ्र ही॥

कवि ने उस सरिता को एक नायिका की भाँति चित्रित किया है, जो अपने प्रियतम सिन्धु से मिलने के लिए आतुर है और उसी ओर वेग से बहती चली जा रही है। पथ में पड़ने वाले वन-प्रान्तर को पार करती हुई निर्बाध गति से मदमाती लहराती हुई आगे बढ़ती जाती है। समग्र वर्णन पूर्ण-रूपेण चित्रात्मक है तथा विविध बिंबों का सर्जन करता है।

कवि की भाषा खड़ी बोली है और सर्वत्र बोधगम्य तथा ऋजु भी है। यद्यपि अधिकतर संस्कृत-निष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है, किन्तु प्रचलित विदेशी शब्दों को भी ले लिया गया है। छन्दों का वैविध्य भी सर्वत्र परिलक्षित होता है। छन्दोबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त यत्र-तत्र मुक्त छन्द का भी प्रयोग मिलता है। गीतों की शैली में अधिकांश कविताएँ लिखी गयी हैं और गजलों के द्वारा भी कवि की काव्य-पटुता प्रकट हुई है। इन शब्दों के साथ मेरी शुभकामना है कि डॉ० किशोरी लाल गुप्त चिरंजीवी होकर माँ भारती की सेवा में सुन्दर और सुरभित पुष्प चढ़ाते रहें। अस्तु।

—बाग बौलिया, वाराणसी

●

७. रीतिशिल्पी आचार्य डॉ० गुप्त और उनका प्रस्फुट काव्य 'शम्पा'

(तीर्थनाथ दुबे)

कवि श्री किशोरी लाल गुप्त जी के कैशोरकाल के भाव-मेघ की प्रभा से मचलती चलती बिछलती 'शम्पा' हिन्दी-काव्य-मन्दिर की प्रथम ज्योतिष्मती शलाका है। कैशोर के कुंकमी, वासंती भावच्छवियों से कवि का मनःप्राण अभिभूत होता है। वह उसे बिना किसी प्रयास के सहजता के साथ कागज पर उतारता गया है। उसकी सहजा अपनी सहजता के साथ उसकी शक्ति-मंजूषा का मनोज्ञाधार रखती है। अल्प वय में भी कवि की कल्पना-शक्ति और अनुभूति की गहराई की सराहना करते हुए मन नहीं अघाता।

आचार्यों ने रचनाधर्मिता के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार विस्तार से दिये हैं। जीवन के क्षार समुद्र का अमृत-तत्व ही काव्य है। निर्मल कल्पना, गहराई में उतरी अनुभूति, अभिव्यक्ति की चमत्कृति के स्वर्ण-संयोग से ही काव्य का रूप नयनाभिराम होता है। कवि में यह शक्ति बीज रूप में वर्तमान होती है। जब कवि छंद-शास्त्र तथा उसकी सूक्ष्मतम रीतियों का चिन्तन-मनन कर लेता है, तब उसकी प्रतिभा का निखार होता है।

श्री गुप्तजी काव्य-शास्त्र के आचार्य और जन्मजात कवित्व-शक्ति से अलंकृत रचनाधर्मी हैं। इनकी 'शम्पा' यद्यपि इनके केशौर-काल की ही अधिक रचनाओं का संग्रह है, शम्पा में १८१ रचनाएँ हैं, जिनमें १५१ कवि के शब्दों में अपरिपक्व हैं। तथापि यह तो है कवि की विनम्रता भरी बात। वस्तुतः ऐसा है नहीं, ये कवि की अपरिपक्व कही जाने वाली रचनाएँ भी काव्य की कसौटी पर खरी उतरती हैं। इनमें कल्पना का ऐश्वर्य, अनुभूति की गम्भीरता और वर्णन की शिल्पता सराहनीय है। यहाँ

कवि के शब्दों में 'जहाँ गुलाब की पंखड़ियां मिल सकती हैं, वहीं नीम के पत्ते भी' ... कवि ने बड़े अक्छे ढंग से कहा है। सरस सवैये और घनीभूत भावना के घनाक्षरी गुलाब की पंखड़ियाँ नहीं तो क्या हैं ? सहज सौकुमार्य, प्रकृति-रूपसी के चित्र, मानवीय अनुभूति ये ही तो गुलाब हैं और इनकी पर्तें ही पंखड़ियाँ हैं। कटु तिक्त सत्य भी काव्य में हैं। ये निश्चय ही पाठक के मनोभावों को संस्कृत करते हैं। इन सवैयों की सरसता और घनाक्षरियों की सुखदा घनीतिमा में जीवन-स्वर का संस्कार करने वाले बीज-मंत्र जैसे पद भी हैं। इस प्रकार 'शम्पा' की रचनाएँ भारती-मन्दिर की दिव्य ज्योतिमयी साधना हैं। उसका आलोक लोक और लोक-जीवन के लिए भास्वर मंत्र ही है।

संग्रह में कवि के जीवन के भी अनेक अनुभव-बिम्ब मुखर हुए हैं। कल्पना कलित रचनाएँ भी कम नहीं हैं। कवि की जीवनानुभूति के कारण अनेक छंद उसकी स्मृतियों से लिपटे हुए हैं, इसलिए उनका महत्व विशेष है, कहीं उसके लोक का ऐश्वर्य ही है—इस प्रकार रचनाधर्मिता की दृष्टि से 'शम्पा' का मौलिक महत्व है।

कवि के संग्रह का समारम्भ जिस जिज्ञासा से होता है, वह कवि के ऊँचे मनोभाव और सुसंस्कार का परिचायक है। जो जिज्ञासा महाकवि डॉ० गुप्त जी ने की है, वही जिज्ञासा कभी वैदिक ऋषियों ने की थी—

किस हेतु सूर्य शशि नभ में उदित होते,
किस हेतु बहता समीर सन-सन है
किस हेतु विकसित होता है कुसुम-कुञ्ज,
किस हेतु करता भ्रमर भन-भन है
किस हेतु ऊषा अभिनव रूप धरती है,
किस हेतु धरती से मिलता गगन है
किस हेतु नीलाम्बर अम्बर में जगमग,
जगमग करता सदैव उडुगन है।

नायिका का ललित लावण्य, उसकी भ्रू-भंगिमा, उसकी स्मिति, उसकी माधुरी में डूबी वाणी का उत्स कितना मोहक है, इसे कहने के लिए कवि की भूमिका मधुमती भूमिका की स्मरणिका है—कवि ने 'बधाई' संज्ञा से इस नैसर्गिक छविराशि का बिम्ब-विधान किया है—रसपेशलता का यह जीता-जागता उदाहरण है—

किस हलवाई की दूकान से कहो तो वीर,
तुमने चुराई मुसकान की मिठाई है
उस पथ का मुझे भी बतलाओ पता जरा,
लुट रही जहाँ पर मोहक लुनाई है

किसने सिखाया तुम्हें भ्रू-विलास करना यों,
कितने दिनों में यह अदा सीख पाई है
वह कोकिला क्या बन्द अभी तक पिंजड़े में,
जिससे सिखा है स्वर मादक, बधाई है

'मधुयाम' लुटने के बाद 'खुमारी' शेष रह जाती है। अच्छी सहज और प्रकृत अनुभूति की बात है। प्रिया की मुसकान-माधवी का आमंत्रण, बीन बजाने का अनुनय, फिर मधुरगान के फूटते संगीत स्वरों का लोक बसाने का भाव, कवि के सात्विक संचरण का उदाहरण है। 'गाओ तुम' जैसे शीर्षक से सहज रस-निर्झर फूटा पड़ता है।

एक एक भाव के स्तवक का ग्रथित पुंज कितना मधुमय, सहज और प्रेरक है। कठिन खोज, साधना की भूमि पर ही कवि को सरसता मिली है! वह सरसता के करों में बिक गया है, । कितना अच्छा भाव है, सरसता सहृदय कवि की वशवर्तिनी हो गई है। साधना के ऐसे ही पुष्पों में चपल चित्त, प्रेम पथ, मन में, अनुरोध, प्रिय की स्मृति, दीवाने-परवाने रस में छलकते सवैये हैं। 'दीवाने परवाने' का आत्म-निवेदन कवि की तलस्पर्शिणी गहराई की व्यंजनाभूता कला है—

हम चाहने वाले बने उनके, परवाह नहीं करते प्रतिदान की।
प्रतिदान तो चाहते स्वारथी ही, उन ही को सदा परवाह है प्रान की ॥
वह जानें नहीं, पहचाने नहीं, हम प्रीति पगे महा दीप-सुजान की।
मरना हम जानते हैं उन पै, परवाह नहीं हमें पामर प्रान की।

'टॉडा प्रपात पर' कवि की भाव मुग्धता की छटा अपनी रंगिमा देती है। 'मयंक त्रयी सुकुमार कल्पना और कवि की उड़ान की रंगीनियों की चित्रशाला है। तुम्हारा ध्यान, विधि का पक्षपात, खेद, पतंग की स्वीकारोक्ति, प्रभात, समीर से, पुष्प-विकास, पर्जन्य से, मलिन्द से, छवि की मधुशाला, मधुमाधव, मिलिन्द की मनोव्यथा, वियोग-वह्नि, चिर मिलन, भ्रमर की भाग्य-लिपि, अनिल से अनुरोध, अक्षय, अनुनय, न्याय-अन्याय, एक बार, दोषी, छलिया, आमंत्रण, विहंगम से, उपासना, शशि से, और मन का मेल रचना-शिल्प का उपोद्घात प्रस्तुत करते हुए प्रतिपाद्य की कुंकुमी छाया-वितान से कवि की भावप्रवणता का उदाहरण उपन्यस्त करते हैं।

'बेसुध विहार' में लावण्य की मधुयामिनो का अखण्ड राज्य है। वहाँ पहुँचने पर आँखें मीचना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि देखने पर उस रूपरंग और छवि से बचना कठिन है। अभिव्यक्ति-भंगिमा की यह चारुता है—

जब देखता हूँ रसराशि तुम्हें, बस में रहती तरुणाई नहीं
उर नौबतखाने में ज्ञान की है, तब तूती ये देती सुनाई नहीं
बस लेता हूँ लोचन मीच, कहीं इनमें लग जाय लुनाई नहीं
तुम बेसुध होके विहार करो, बजे नूपुर की शहनाई नहीं

'मूक प्रेमी के प्रति' कवि-कल्पना के मंगल पक्ष का उद्घाटन करता है। शील संकोच और लोक-मर्यादा का ऐसा उदाहरण कवि की वैयक्तिक सरलता और स्वच्छता का कांचनार-कुसुम जैसा ही लगता है। 'दौत्य' में रीति शिल्प और तत्कालीन विदग्धता की भाव-छाया मँडलाती है। मन माखन में कवि की रीति शिल्प कला, कामना में स्वच्छ भावना, ताज में प्रणयिनी के आर्द्र स्वरों में प्रिय-प्रेम का सिंहासन, प्रेरणा-कलश सँवारता है। नर्तक के प्रति, विश्वास, अविश्वास से, मौन-संदेश, उदारता का गुरु भार, प्रेम-प्रदीप, विदा, अनुरक्त, आरसी-दर्शन, मूर्खता, चितचोर, आँख की प्यास, उपालम्भ, अनुताप, प्रेमपयोनिधि, भीतर आओ, प्रेम के प्रति, होली, रंग-कुरंग, स्वागत, संदेश, स्नेहहीन दीप, सुख-स्वप्न, षड् ऋतुमयी तुम्हारी मूर्ति में कवि की व्यापक दृष्टि के कहीं सहज, कहीं सरस और कहीं गहरे बिम्ब मिलते हैं। षड्ऋतुमयी तुम्हारी मूर्ति में कवि की कल्पना, अनुभूति और अभिव्यक्ति समन्वय का प्रकृत शृंगार सराहनीय है—

ग्रीष्म के आक सी फूली हरी, बरसा घन सी मन घेरती आई
मुसकान की शारदी चाँदनी ले, उर-शीत की प्रीति को प्रेरती आई

पतझार के पात से दुःख निपातती, रागी बसंत को टेरती आई
रसमूर्ति तुम्हारी विलासभरी, सुख-सौरभ चूर्ण बिखेरती आई

एक अन्तर, दूध का धोया, मन के प्रति कवि के मनोरम उद्गार है।

प्रेम-लांछन में कवि ने अच्छा प्रश्न उठाया है, बड़ा प्रकृत, प्रेरक और मोहक–

पहले तुमने चित दे, चित ले, चित से चितरंजन प्यार किया
बन दीन विनम्र कृतज्ञ सभी, मन की अपने मनुहार किया
अब अंक कलंक के पंक को देख, कृतघ्न-सा क्यों है बिसार दिया
लख चन्द्र को लांछित, बोलो, उसे क्या चकोर ने है दुतकार दिया

चिर विदा, नहीं, क्यों, चोर, रूपासव, कब तक, स्मृति गीत के परिप्रेक्ष्य में सुन्दर भावनामूलक रचनाएँ हैं। एक छंद देखिए—

मन में तब बात न आई कभी, जिन्हें लूट रहा उन्हें खोना पड़ेगा
नयनों में निराशा के अश्रु भरे, यों हँसी के लिए कभी रोना पड़ेगा
संगम की घड़ियों के लिए, लड़ी मोतियों की भी पिरोना पड़ेगा
मुख-चंद्र की चाँदनी के बदले, हमें आँसुओं से मुँह धोना पड़ेगा

प्रकृति-वधूटी के नयनाभिराम विम्बों के उतारने में कवि की सफलता उसके छंदों में तिरती जान पड़ती है। ऋतु-विम्बों के प्रस्तुत करने में भी वे परमपटु हैं। शरद्-सौन्दर्य का चारु चित्र अंकित करने में कवि का अन्तःकरण उमड़ा पड़ता है—

चलो गाँव से दूर, रसाल-तले, बरसा से धुले खुले खेत जहाँ
हरियाली जहाँ पर झूमती है, खिले कास विलास से सेत जहाँ
अलसाया हुआ चलता है समीरण, शीतल मन्द अचेत जहाँ
मृदु घास की चादर फैली हरी, शुभ शारदी शुभ्र निकेत जहाँ

'अवभृथ' रस-राज की रसमयता का उत्कृष्ट उदाहरण है। शृङ्गार और अध्यात्म के मिलन-विन्दु की प्रभान्विति से विजड़ित छन्द-मुद्रिका पाठकों के हृदय में नवीन दीप्ति जगाये बिना नहीं रहेगी।

संकलन का अंतिम सवैया 'कुंतलराशि ओर मंजु मुख' बड़ा प्रकृत प्रेरक और प्रभान्विति से भरा छंद हैं। 'दीपक तले अँधेरा' मुहावरे का प्रयोग मर्म को छूने वाला है। कवियों से जोड़कर, यह भाव महाकवि ने क्या ही उत्तम ढंग से प्रस्तुत किया है—

सोचता हूँ, क्या कहा सच ही, पुरखों ने कि दीपक नीचे अँधेरा
देख के भी नहीं देखा कभी, कवियों ने अमंद ये आनन तेरा
मुख मंजु के ऊपर देख के कुंतल-राशि का श्यामल श्यामल घेरा
होता प्रतीत है दीपक ऊपर, आकर डाला अँधेरे ने डेरा

रीतिशिल्पी रीतिकाल के कवियों ने व्रजभारती में जिस सिद्धि के साथ व्रजभाषा का रसायन लोक-जीवन को दिया, कुछ उसी प्रकार खड़ी बोली के सवैयों से रसराग रंजित श्री गुप्त जी ने जीवन दिया। उनकी विलक्षण प्रतिभा, ग्राहिका-शक्ति और सहजा तथा उत्पाद्या ने आकर्षक चित्र-विधान किया है। कवि की अधिकांश रचनाएँ यद्यपि कैशोर-काल की हैं, तथापि उनकी गम्भीरता मौलिकता अदृष्टपूर्व है। कहीं-कहीं कुछ सवैये पावस की उमड़ती धारा की याद दिलाते हैं, किन्तु उनमें शारदी कलहास, शरदोत्फुल्ल मल्लिका का सौरभ और शरदोज्ज्वल सर-सरिता की जलधारा का मंद-हास कलनाद करता चलता है।

'शम्पा' के ये छंद रंग-विरंगे फूलों के सुवास और सुहास से भरे गुलदस्ते हैं, जिनमें रूप, रस और गंध का खजाना भरा है। इनके निकट पहुँचकर शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा, जिसका अंतःकरण रस, राग और गंध से भर न जायेगा। कवि ने तो इसे 'शम्पा' कहा, प्रकाशमय कहा, किन्तु यह उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। यह रस, राग, गंध का अक्षय कोष है, अमृत कोष है। यह सार्वकालीन, सार्वजनीन और सनातन है। उसका अमृत-तत्व लोक और लोक-जीवन को अनंतकाल तक मिलता रहेगा।

कृष्णा भुवन,
कमरा नं० ६, मोहिली विलेज
परेरावाडी, साकीनाका, बम्बई-७२

८. डॉ० किशोरीलाल गुप्त और उनकी चतुर्दशपदियाँ

[सत्यनारायण द्विवेदी 'श्रीश' फैजाबाद]

छायावादोत्तर कालीन स्वच्छंदमार्गी, किन्तु छायावादी भावधारा को प्रतिभाओं में वे काव्य-प्रतिभाएँ, जो किसी 'वाद' 'खेमे' 'गुट' और दर्शन से निरपेक्ष रह कर स्वांतस्सुखाय रचनाएँ प्रस्तुत करती रही हैं, प्रायः अल्पज्ञात ही रहीं। 'श्यामा' के कृतिकार डा० किशोरीलाल गुप्त ऐसे ही कवियों में बहुज्ञात तथा बहु प्रचारित नहीं हो सके हैं। डा० गुप्त की प्रतिभा का प्रवाह काव्य की ओर विशेष न जाकर गवेषणा तथा अनुसंधान की ओर मुड़ गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे प्रारंभ में चित्र और कविता की ओर उन्मुख रहे, पर बाद में वह महान समीक्षक और साहित्य के इतिहासकार आदि के रूप में प्रतिष्ठित हुए, उसी प्रकार डा० गुप्त की प्रतिभा भी पहले काव्योन्मुख रही, परन्तु धीरे-धीरे गद्य की विभिन्न विधाओं से होती हुई गवेषणा और समीक्षा की ओर मुड़ गयी। परन्तु इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि डा० गुप्त की रचनाएँ अभ्यास-काल की नवसिखुवा की रचनाएँ हैं। सच तो यह है कि गवेषणा और आलोचना के पथ पर निरंतर अग्रसर होते रहने के क्रम में डा० गुप्त की काव्य-प्रतिभा पुरानी नयी काव्य परंपराओं से साक्षात्कार करती रही। उन्होंने पद्य के रूप में जो कुछ भी लिखा, उससे वह ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों के ही समर्थ कवि सिद्ध होते हैं। इस तारतम्य में यह ध्यातव्य है कि डा० गुप्त ब्रज भाषा-काव्य-परंपरा के हैं, साथ ही छायावादी महा-कवि 'प्रसाद' की रचनाओं के उन अध्येताओं में से हैं, जिन्होंने अधीत विद्वान 'प्रसाद' को समझने-परखने की दृष्टि दी है। डा० गुप्त की कविताओं में से ब्रजभाषा-परंपरा वाला भाग भाषा और भाव की दृष्टि से ब्रजभाषा के कतिपय मान्य कवियों से प्रभावित अवश्य है, और खड़ी बोली वाला भाग शब्द-प्रयोग, तथा अनुभूति की दृष्टि से 'प्रसाद' का ऋणी है। इस प्रकार डा० गुप्त अपनी भावपित्री तथा कारयित्री दोनों प्रकार की प्रतिभाओं के द्वारा आधुनिक हिन्दी-साहित्य-संपदा के भाव-पक्ष तथा विचार-पक्ष के प्रवक्ता के रूप में हमारे सामने आते हैं। इस पृष्ठभूमि में यदि हम उनकी कविताओं का अध्ययन तथा परिदर्शन करें, तो उचित ही होगा। वास्तव में हिन्दी-साहित्य के अध्येता के रूप में ही नहीं, अनुसंधाता और समीक्षक के रूप में भी जिस प्रकार गुप्त जी अध्ययन-अनुसंधान की लीक पर चलते हुए नीर-क्षीर विवेक करते रहे हैं, उसी प्रकार काव्य-रचना के क्षेत्र में भी उन्होंने परंपरा और लीक का प्रर्याप्त सीमा तक अनुधावन किया है।

जहाँ तक आलोच्य कृति 'श्यामा' का प्रश्न है, संकलन-प्रकाशन की दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। अंग्रेजी 'सानेट' के अनुकरण पर हिन्दी की तुकांत छंद-

व्यवस्था के अनुकूल अवतरित (या लिखित) चतुर्दशपदी हिन्दी को बँगला की देन है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पहले पहल चतुर्दशपदियाँ लिखी थीं, फिर लोचन प्रसाद पाण्डेय ने उसी के आधार पर हिन्दी में प्रयोग किये। फिर जयशंकर 'प्रसाद' ने समय-समय पर अनेक चतुर्दशपदियाँ लिख कर एक व्यवस्थित काव्य-रूप प्रदान किया, जिसमें अंग्रेजी के बहुविध 'सॉनेटों' की विशेषताएँ तो नहीं आ सकीं, किन्तु अंतिम पंक्तियों में पूरे पद्य के निष्कर्ष प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बनी रही। एक अध्येता और संपादक के रूप में डा० गुप्त ने प्रसाद जी की चतुर्दशपदियों का अध्ययन-संपादन किया था, और कदाचित् उसीसे प्रेरित होकर उन्होंने 'श्यामा' में संगृहीत ८६ चतुर्दशपद्रियों की रचना कर उस परंपरा को आगे बढ़ाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया।

डॉ० गुप्त की ये चतुर्दशपदियाँ पूर्ववर्तियों की चतुर्दशपदियों के तारतम्य में होती हुई भी प्रयोग की दृष्टि से बहुत नयी हैं। यह नवीनता विषय तथा गठन दोनों दृष्टियों से है। इसमें न तो स्वच्छंदतावादी एवं छायावादी कविताओं जैसी अतीन्द्रिय तथा अलौकिक प्रेमानुभूतियाँ और कल्पना की स्वप्निल उड़ान ही मिलेगी और न गहन चिन्तन-सूत्र ही प्राप्त होंगे, प्रत्युत एक चित्रमयी भाषा के साथ बिना दूर की कौड़ी भिड़ाये काव्य-रसिकों को सहज ही समझ में आ जाने वाली चिर परिचित भावानुभूतियों का सहज चित्रण ही मिलेगा। पूर्ववर्तियों ने प्रायः सात-तुकांत द्विपदियों को मिलाकर चौदह पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं, परंतु गुप्त जी ने तुक के आग्रह को बनाये रख कर भी पंक्तियों का संयोजन अंग्रेजी सॉनेटों जैसा किया है। शेक्सपियर मिल्टन आदि के सॉनेटों में पंक्तियों और तुकों की जैसी योजना है, वैसा तो निर्वाह नहीं हो सका है, और कदाचित् कवि का उद्देश्य भी हिन्दी में अंग्रेजी सॉनेटों का रूपांतरण का नहीं रहा हैं, फिर भी पहली, चौथी, आठवीं, बारहवीं, चौदहवीं पंक्तियों के तुक तथा इसी प्रकार तीन तीन पंक्तियों के चार तुक की पद्धति वस्तुतः सॉनेट के क्षेत्र में गुप्त जी का अभिनव प्रयोग हैं। इसी प्रकार और भी नये प्रयोग किये गये हैं; परंतु जैसा पहले कहा जा चुका है कि इन प्रयोगों के बावजूद, ये चतुर्दशपदियाँ सॉनेटों जैसी नहीं हो सकी हैं। कवि ने चित्र-विधान, शब्द-योजना और सहजानुभूति के साथ इन चतुर्दशपदियों में हिन्दी काव्य के चिर परिचित विषय प्रस्तुत किये हैं। इसमें अंग्रेजीपन का आग्रह नहीं है, वरन विशुद्ध भारतीय और खाँटी हिन्दी का काव्य-वातावरण सर्वत्र समायोजित है। आजकल हिन्दी में लिखी जाने वाली सॉनेट की प्रकृति में जो अजनबीपन और बनावटीपन प्रतीत होता हैं, वैसा कुछ इसमें नहीं है; परतु काव्य-भाषा की विलक्षणता तथा छायावादीपन इस काव्य-रूप को शेष छायावादी कविताओं से बहुत अलग नहीं कर पाता। वास्तव में गुप्त जी की चतुर्दशपदियाँ 'प्रसाद' की चतुर्दशपदियों से आगे तो हैं, परंतु भाषा, शब्द प्रयोग, चित्र-विधान और प्रेम तथा सौन्दर्यमयी अनुभूतियों की दृष्टि से घूम फिर कर उसी घेरे में दिखायी देती हैं।

'श्यामा' में संकलित प्रथम छप्पन चतुर्दशपदियों में भाषा और विषय की सरसता के साथ 'प्रसाद' की पद्धति का अनुहरण जाने या अनजाने हुआ है, लेकिन उसके बाद यद्यपि विषय और वातावरण में विशेष बदलाव नहीं है, तो भी एकांत संभाषण, स्वगत-कथन अथवा आत्मालाप चे कारण नाटकीयता आ गयी है। अधूरा चुंबन, हिचकी, प्रकृति से, आश्चर्य आदि चतुर्दशपदियाँ इस दृष्टि से काफी भिन्न हैं। नारी, प्रतिदान, रंग-तरंग, अज्ञाता, तृप्ति, वसंत, ग्रीष्म, आतुर प्रेमी से, अवगुंठनवती से, कवच, विजयोन्मत्त, गंगातटस्थिता के प्रति, श्यामा आदि १९४४ से रचित अधिकांश चतुर्दशपदियाँ शिल्प की दृष्टि से सॉनेट के क्षेत्र में प्रयोग को लेकर पर्याप्त सफल हैं। १९४४ के पहले की चतुर्दशपदियाँ परिवेश और विषय तथा भाषा और शैली में छायावाद तथा छायावादोत्तर छायावादी काव्य-धारा के अत्यंत निकट हैं। कुल मिलाकर इन रचनाओं में कवि की प्रेम तथा सौन्दर्य संबंधी अनुभूतियाँ बड़े ही ललित रूप में मुखरित हुई है। आज लिखेजाने वाले सॉनेटों की अपेक्षा काव्य की दृष्टि से ये अधिक व्यवस्थित, रमणीय, आकर्षक और रससिक्त हैं, तथापि १९४४ तथा १९४४ के बाद की अधिकांश चतुर्दशपदियाँ शिल्प में ही नही चित्र-विधान, कल्पना, भावुकता, नाटकीयता आदि दृष्टियों से अत्यंत मनोरम और अप्रभिनव बन पड़ी हैं।

इस प्रकार 'श्यामा' में संकलित चतुर्दशपदियाँ परंपरा और प्रयोग-निर्वाह में अनूठी हैं। ये अपने पूर्ववर्तियों की रचनाओं से आगे बढ़ कर परवर्ती सॉनेटकारों के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। सुष्ठु और गंभीर प्रकाशन की ही दृष्टि से नहीं, बरन् काव्योचित गरिमा और प्रयोग की दृष्टि से भी 'श्यामा' में संकलित चतुर्दशपदियों का हिन्दी-सॉनेट की रचना-परंपरा में ऐतिहासिक महत्त्व है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

साहित्य—सदन, सेठवा
मालीपुर, फैजाबाद

९. डॉ० गुप्त के गीत : पायल

[श्री भगवान दुबे]

'पायल' डा० गुप्त के गीतों का अप्रकाशित संग्रह है। डा० गुप्त ने इसका संकलन जुआई १९५५ में किया था। उस समय इसमें कुल ५४ गीत थे। एक गीत १९३४ अक्टूबर १ का है, जब कवि ज्ञानपुर में नवें दर्जे का छात्र था। शेष ५३ गीत जनवरी ३८ से नवम्बर ५२ तक के हैं। कालान्तर में इसमें चार गीत और जुड़ गये हैं।

डा० गुप्त अपनी प्रत्येक रचना के अन्त में रचना-स्थान और रचना-तिथि का उल्लेख करते गये हैं। डा० गुप्त अपने प्रत्येक काव्य-संग्रह के प्रारम्भ में एक ऐसा छन्द रख देते हैं, जो उस संग्रह की समस्त विशेषता व्यक्त कर देता है। ऐसा एक गीत 'पायल' के भी प्रारम्भ में है।

लिख रहा हूँ गीत
आज कहता हूँ हृदय की बात
आज कंपित नहीं होता गात
पहुँच जायेगा हृदय-संदेश
आज मैं बिलकुल नहीं भयभीत

आज मेरा हृदय विह्वल है
अब न मेरा प्रणय निष्फल है
मिल गया मधु गीत का बरदान
फूटता उर से स्वयं संगीत

हृदय पर छाया हुआ मधु-भार
आज गीतों में रहा हूँ ढार
सुन सकोगे क्या न मूक पुकार
प्रीति के ये तार लो मन-मीत

आजमगढ़ ६-५-४९

यह गीत प्रगीत मुक्तकों का मूल तत्व सा है। ये गीत क्या हैं, प्रणय-निवेदन हैं—निर्भीक, निःसंकोच, मूक।

डा० संकटा प्रसाद उपाध्याय डा० गुप्त के हाईस्कूल और इण्टर के सहपाठी हैं। इण्टर द्वितीय वर्ष में पढ़ते समय उन्होंने एक ऐतिहासिक नाटक 'नारायणराव' लिखा, जिसका सम्बन्ध पेशवाओं से है। डा० गुप्त ने इस नाटक के लिए जनवरी-अप्रैल १९३८ में पाँच लघु गीत लिखे थे। लघुतम गीत है—

घिर आई घटा रे
पुरवा पवन झकोरता रे, भीग गया पर्यंक
मैं धन थर थर काँपती, लग जाऊँ किसके अंक
चढ़ धाई अटा रे

जगतगंज, काशी ३० ४-३८

ये पाँचों गीत चरित्रों को ध्यान में रखकर लिखे गये थे।

बी० ए०प्रथम वर्ष में पढ़ते समय कुल आठ गीत लिखे गये। ये गीत क्रमशः सुमन, सुरभि, सौंदर्य, अश्रु, आँख, मुसकान, अधर को पात्र मानकर इनकी ओर से लिखे गये हैं। एक गीत मुरली-स्वर पर है। ये गीत १० फरवरी ३९ से २४ फरवरी ३९ के बीच सुन्दरपुर में रहते हुए लिखे गये। उदाहरण के लिए 'अश्रुगीत' यहाँ अवतरित है—

आँखों से गिर, फिर आऊँगा कैसे
मुझे ढकेल, कपाट पलक के
बन्द किया, फिर आऊँगा कैसे
उन चरणों पर चढ़ करके भी
निज अस्तित्व बचाऊँगा कैसे
आँखों से गिर फिर आऊँगा कैसे

सुन्दर पुर, काशी १०-३-३९

कवि ने कुछ चिंतन-प्रधान गीत भी लिखे हैं। वह जीवन को तरणी मानकर लिखता है—

रे दूर बही जाती तरणी
बैठा हुआ कगार पर, पैर सलिल में डाल
देख रहा टक लगाकर, हंस सरिस वह पाल
रे दूर उड़ी जाती तरणी
अभी रही इतनी बड़ी, जितनी बड़ी कि आँख
पल पल छोटी हो रही, जिमि शशि श्यामल पाख
रे हवा हुई जाती तरणी
उज्ज्वल से श्यामल हुई, हुई सिंधु से विंदु
तिल में तिलभर रह गई, ली हुई अमा का ईंदु
रे शून्य हुई मेरी तरणी

संकट मोचन काशी १-८-४०

डा० गुप्त ने प्रायः प्रेम गीत ही लिखे हैं। पर उनका क्षेत्र प्रेम तक ही सीमित नहीं है। उनकी दो लोरियाँ भी हैं, एक सुलाने वाली—

रूप किरण सी
ओ कुमुद कली
चाँदनी खिली
नींद मस्त सो
पाके झिलमिली
चंद्र किरन सो

फिरोजाबाद, दिसम्बर ४६

एक जगाने वाली—

जाग जाग जाग जा लली
खिल गयी गुलाब की कली
सुरभि मिली बयार बह चली
मधु रसाल डाल भी हिली
अब तलक न नींद क्या खुली
जाग जाग जाग जा लली

फीरोजाबाद दिसम्बर ४६

एक गीत राष्ट्र जागरण का भी है। इसकी एक कड़ी है—

आज फिर जय ध्वजा उड़ उठे
जीत के गीत नभ भर उठें
विश्व को शक्ति का भान हो
पैर नीचे धरा धँस उठे
खिल उठो और मैं खिल उठूँ

फीरोजाबाद जनवरी ४७

गुप्त जी के गीत छोटे-छोटे हैं। इनमें अनेक प्रकार की स्वर लहरियाँ हैं। इनके अन्तिम गीत का एक अंश है—यह मंत्र-सदृश है।

वातायन खोल दो
शीत वायु आने दो
मंद वायु आने दो
गंध वायु आने दो
परिमल भर जाने दो
वातायन खोल दो

सुघवै १५-११-७६

पायल के अन्त में १५ गजलें भी हैं। इनमें से अधिकांश हिन्दी की गजलें हैं। जो ४-१०-३४ और २४-६-५४ के बीच के २० वर्षों में लिखी गयी हैं। एक हिन्दी गजल लें—

तड़पती है बिजली, गरजता है बादल,
धुला जा रहा मीत का नैन–काजल।
समाधिस्थ-सा, आत्म-विस्मृति घनी है,
धनी के हृदय में धना-केश श्यामल।

मुझे जानता जो, जिसे मैं न जानूँ,
बसा प्रान में आन के रूप कोमल।
मेरी प्रीति के रूप का रूप क्या है,
न जानोगे जब तक न जायेगा यह ढल।
जिसे प्रीति माना, जिसे प्यार जाना,
नहीं प्रेम था वह, नयन रूप का छल।
जिसे तुम कहो अश्रु, हैं साधवाले,
पिघल कर बहा उर, नहीं नीर केवल।
किसी के लिए प्रीति आमोद-साधन,
बनी प्रेम-पीड़ा यहाँ प्राण-संबल।

सुधवै २५-६-५४

सरल उर्दू में लिखित एक दूसरी गजल लें—

फैसला सब कुछ हमारा हो गया,
दिल हमारा था, तुम्हारा हो गया।
देखते ही तुमको लीं अँगड़ाइयाँ,
मैंने समझा था कि यह दिल सो गया।
जब से देखा है, तुम्हें मैंने हुजूर,
ऐसा लगता, जैसे है कुछ खो गया।
जब नहीं रहते नजर के सामने,
जान पड़ता जैसे, है कुछ हो गया।
वह लुनाई लोचनों में बंद हैं,
इसीसे तो अश्क खारा हो गया।
आँसुओं सें ही मेरी दुनिया हरी,
वरना सब कुछ मूल से था धो गया।
व्यर्थ ही दूँ दोष तुमको किस लिए,
भाग्य ही मेरा सभी विष बो गया।

फीरोजाबाद १९--४--८८

डा० गुप्त जमकर काव्य क्षेत्र में नहीं रह सके। यह दुर्भाग्य है। पर यह भी सौभाग्य ही है कि वे शोध, संपादन, समीक्षा एवं इतिहास के क्षेत्र में आ गये, जहाँ उन्होंने गंभीर साहित्य को बहुत कुछ दिया। उनका ललित साहित्य विद्यार्थी जीवन और तरुणावस्था का है। पर, उनका शोधादिक कार्य उनकी प्रौढ़ावस्था की देन है, जिसकी ओर उनके कदम निरन्तर बढ़ते ही जा रहे हैं।

—कबीर कीर्ति मंदिर काशी

१०. राधा

[श्री विश्वनाथ लाल 'शैदा']

(श्री विश्वनाथ लाल 'शैदा' आजमगढ़ के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और वकील तथा डा० गुप्त के मित्र थे। उन्हें गुप्त जी की 'राधा' परम प्रिय थी। उन्होंने राधा पर एक लेख लिखा था, जो 'हरिऔध' के वर्ष २, अंक १, अक्टूबर १९५८ में छपा था। शैदा जी ने राधा की टीका भी लिखी थी। आगे उक्त लेख हरिऔध से अवतरित है और राधा के मंगलाचरण की टीका भी आदर्शवत प्रस्तुत है।

—संपादक)

बाछरू की रसी लै कर एक मैं, एक मैं थामें जु दोहनी हैं
ठाढ़ी दुहावन धेनु, बुलावत, प्रेम की मूरति छोहनी हैं
रूप लुनाई कै, रासि कियो खड़ी, कैसी लिये छबि सोहनी हैं
जाकी कहानी कहौं, सो एई, मनमोहन की मनमोहनी हैं

उपर्युक्त पंक्तियों में डा० किशोरी लाल गुप्त ने जिस राधा के रूप का वर्णन किया है, वह राधा युगों से भक्तों की भाव-मूर्ति रही है। संस्कृत तथा हिंदी काव्य में राधा से संबंधित अनेक कविताएँ प्राप्त हैं। श्री राधोपनिषद में श्री राधिका जी के स्वरूप तथा नामों का वर्णन मिलता है। एक बार ऊर्ध्वरेता सनकादि महर्षियों ने भगवान श्री ब्रह्मा जी से पूछा कि सर्व प्रधान देवता कौन है और उनकी कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं तथा उन शक्तियों में सृष्टि की सर्व श्रेष्ठ कारण कौन सी शक्ति है। इसके उत्तर में श्री ब्रह्मा जी ने अति गोपनीय रहस्य का उद्घाटन करते हुए बताया कि भगवान हरि श्री कृष्ण ही परम देव हैं। उनकी अनेक शक्तियाँ हैं, जिनमें आह्लादिनी सर्वप्रधान हैं। इसी शक्ति का नाम परम अंतरंगभूति श्री राधा है। कृष्ण इनकी आराधना करते हैं, इसलिए ए राधा हैं अथवा ए सर्वदा कृष्ण की आराधना करती हैं इसलिए राधिका कहलाती हैं। श्री राधा को गांधर्वा भी कहते हैं। ए श्री राधिका जी भगवान् हरि की सर्वेश्वरी संपूर्ण सनातनी विद्या हैं और श्री कृष्ण की प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। श्री राधिका जी को जाने बिना जो श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है, वह महा मूर्ख है; कारण कि बिना राधा की कृपा के परम धाम की प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्री राधिका जी भगवान श्री कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। इसीसे संबंधित श्रीमद्भागवत में एक कथा आई है, जिसमें बताया गया है कि एक बार कृष्ण

को प्राणांतक उदर-शूल हुआ। नारद ने इसकी एक मात्र दवा उन्हें सर्वाधिक प्रेम करने वाली प्रिया के वाम पदांगुष्ठ का प्रक्षालित जल पान बताया। कृष्ण के अनुनय का भी तिरस्कार करके रुक्मिणी अपना परलोक बिगाड़ने को प्रस्तुत नहीं हुईं। राधा ने उपयुक्त उपचार कर कृष्ण को नवजीवन दान किया और अपनी प्रखर प्रीति और प्रतीति का प्रभूत प्रमाण दिया। डा॰ किशोरी लाल गुप्त ने इस कथा के आधार पर एक खंड काव्य प्रस्तुत किया है, जिसका नाम 'राधा' है। और उसी राधा में अंकित राधारूप संबंधी कविता से इस लेख का प्रारभ किया गया है।

जाग री जोति सुहागमयी, अनुरागमयी, रस रूप गुनागरी
नागरी नागर तेरो जियो, तू परी अबै लौं मरी, प्रेम में पाग री
पागरी बांधि सनेह सों आपने प्रीतम कों, रस रूप की आगरी
आगरी प्रेम की, साधिके, राधिके, लाग री तू गले रूप उजागरी

राधा कृष्ण में परस्पर इतना प्रेम है कि उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। इसलिए जहाँ कृष्ण को राधा की आराधना करते हुए कहा गया है, वहीं राधा को कृष्ण की आराधना करते हुए बतलाया गया है। रसखान ने इसी भाव का प्रदर्शन करते हुए लिखा है—

ब्रह्म मैं ढूँढ़्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनो चौगुने चायन
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन
हेरत हेरत हारि परचो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन
देख्यो दुरचो वह कुंज कुटीर मैं, बैठो पलोटत राधिका पायन

कृष्ण भक्ति शाखा में कितने ही उपासक राधा को कृष्ण से अधिक महत्व देते हैं। सच तो यों है कि यह कहना कि राधा कृष्ण में कौन बड़ा है, कौन छोटा, संभव नहीं। कारण कि राधा और कृष्ण अभिन्न हैं और केवल क्रीड़ा के लिए ही वे दो शरीर में प्रकट हो गए हैं।

गिरा-अर्थ जल बोचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न
बन्दौं सीता-राम पद, जिन्हें परम प्रिय खिन्न

में तुलसी ने भी सीता और राम को भिन्न और अभिन्न माना है। बिहारी ने राधा की वंदना करते हुए लिखा है—

मेरी भौ बाधा हरौ, राधा नागरि सोय
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय

इस प्रकार कृष्ण और राधा में एक संबंध है, जिसका वर्णन दर्शन का विषय है। कवियों ने दार्शनिक समस्याओं का विवेचन न करके केवल राधा माधव के भाव संबंधी

कृत्यों का उल्लेख अपनी कविताओं में किया है। भक्ति रस के मर्मज्ञ बताते हैं कि भाव का विकास ही प्रेम है। भाव-साधना करते करते स्वभावतः ही प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। भाव महाभाव आदि की मीमांसा से संबद्ध राधा-तत्व की मीमांसा है। भाव के विकास की चरम परिणति का ही नाम राधा-तत्व है। जब जीव महाभाव के चरम विकास तक पहुँच जाता है, तभी उसे आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद भगवान की आह्लादिनी शक्ति के आश्रित है। भगवान की सर्व मंगलमयी शक्ति, प्रेम कारुण्यमयी शक्ति का ही दूसरा नाम राधा है। और यही शक्ति परम धाम के प्राप्त कराने में समर्थ है। इसका वर्णन व्यास दास ने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

परम धन राधा नाम अधार
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार

महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपने प्रिय-प्रवास में राधा का रूप वर्णन यों किया है—

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका, राकेन्दु बिंबानना
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका, क्रीड़ा-कला-पुत्तली
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि सी, लावण्य-लीलामयी
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी, माधुर्य सन्मूर्ति थीं
फूले कंज समान मंजु दृगता, थी मत्तताकारिणी
सोने सी कमनीय कांति तन की, थी दृष्टि उन्मेषिनी
राधा की मुसकान की मधुरता, थी मुग्धता मूर्ति सी
काली कुंचित लंबमान अलकें, थीं मानसोन्मादिनी
नाना भाव विभाव हाव कुशला, आमोद-आपूरिता
लीला लोल कटाक्षपात निपुणा, भ्रू-भंगिमा पंडिता
वादित्रादि समोद वादन परा, आभूषणाभूषिता
राधा थी सुमुखी विशालनयना, आनंद-आंदोलिता
लाली थी करती सरोज पग की, भूपृष्ठ को भूषिता
बिंबा विद्रुम आदि को निदरती, थी रक्तता ओष्ठ की
हर्षोत्फुल्ल मुखारविंद गरिमा, सौंदर्य आधार थी
राधे की कमनीय कांत छवि थी, कामांगनामोहिनी
सद्वंशा सदलंकृता गुणयुता, सर्वत्र सम्मानिता
रोगी-वृद्ध-जनोपकार-निरता, सच्छास्त्र चिंतापरा
सद्भावातिरता अनन्य हृदया, सत्प्रेम संपोषिता
राधा थी सुमना प्रसन्नवदना, स्त्रीजाति-रत्नोपमा

उपर्युक्त पंक्तियों में राधा को स्त्री जाति में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए अनन्य-हृदया सत्प्रेम-संपोषिता कहा है और आगे चलकर उस सत्पथ प्रेम की व्याख्या भी प्रिय-प्रवास में की गई है। स्पष्ट है कि राधा माधव की कथा को चाहे जिसने जो भी रूप दिया हो, सबमें प्रेम की प्रधानता है और यह प्रेम राधा का माधव के प्रति और माधव का राधा के प्रति अनन्य प्रेम है। इसीलिए तो गीत गोविंद में––

राधिका विरहे तव केशव माधव वामन विष्णो

के साथ

'तव विरहे बनमाली सखि सीदति'

का भी अवतरण हुआ है। यदि

पुनि पुनि हरि तूँ नाम उचारे
विरह मरत कोउ विधि जिय धारे

की बात राधा के लिए आई है, तो वहीं

मूर्छि धरनि लोटत विलखाई
चौंकि रहत राधे रट लाई

की बात कृष्ण के संबंध में भी आई है।

प्रेम की साधना अपनाकर ही भाव-साधना हो सकती है, जिससे संचारी भावों को स्थायित्व प्राप्त होता है और जो आगे चलकर परमधाम की उपलब्धि में सहायक होता है और इस प्रेम-साधना के लिए राधा-तत्व तथा उससे संबंधित रहस्य-क्रीड़ाओं को समझना परम आवश्यक है।

साहित्य-साधना पर भी यही बात लागू होती है, क्योंकि साहित्य-साधना का लक्ष्य भी रस की निष्पत्ति है। राधा की आराधना साहित्य-साधना में सहायक होती है, इसीलिए डा० किशोरीलाल ने अपनी राधा का मंगलाचरण इस प्रकार अंकित किया है—

खंजन नैन सदा रहा माते सु रूप के, भूलैं नहीं पल आधा
जीवन मैं हमनै न करयो कछू, केवल साहित-राधा अराधा
साहित जा हित साध्यो सनेह सों, या मन कौं, न गिन्यो भव बाधा
राधा बिहारी की बाधा हरौ, हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा

––अनंतपूरा, आजमगढ़

११. 'राधा' के 'मंगलाचरण' की टीका

[विश्वनाथ लाल 'शैदा']

खंजन नैन सदा रस माते
सुरूप के, भूलैं नहीं पल आधा
जीवन मैं हमनै न करयो कछू,
केवल साहित-राधा अराधा
साहित जा हित साध्यो सनेह सों
या मन कौं, न गिन्यो भव-बाधा
राधा बिहारी की बाधा हरौ,
हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा

कार्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व अपने इष्ट का स्मरण-वन्दन आस्तिक-जगत की विशेषता है। 'मंगलाचरण' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'मंगलाचरण' केवल ग्रंथकार का इष्ट नमस्कार न रहकर उत्तरोत्तर पाठक और श्रोता का भी नमस्कार बनता है। इसीलिए आस्तिक-बुद्धि मंगलाचरण की परिपाटी को परम स्तुत्य मानती है।

मंगलाचरण में यदि 'वस्तु निर्देश' (प्रकृत विषय की ओर) संकेत हो तो उससे पाठक का मन वर्ण्य विषय में लगा रहता है, जिससे उसे रसास्वाद में कठिनाई नहीं होती।

कवि के शब्दों में "इस छन्द में राधा की प्रार्थना, व्रज भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि सूर, एवं श्रृंगारी मुक्तकों के सम्राट बिहारी की प्रेरणा, साहित्य रूपी राधा की कवि द्वारा साधना एवं कवि के जीवन का उल्लेख है।"

उपर्युक्त टिप्पणी में कवि ने 'वस्तु निर्देश' की बात नहीं कही है। किंचित उसे यह कार्य किसी समालोचक से ही कराना था।

कहते हैं कि भक्त सूरदास जिन्हें प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रबन्धक माना जाता है, मरते समय 'राधा भाव' में निमग्न होकर निम्नांकित पद गुनगुना रहे थे।

खंजन नैन रूप रस माते
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते
चलि चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु कवहिं उड़ि जाते।

कहीं कही 'खंजन नैन सुरंग मद माते' का भी पाठ मिलता है।

हमारा कवि 'खंजन नैन रूप रस माते' को ही शुद्ध पाठ मानता है। इस दृष्टि से कवि का यह छन्द केवल कविता न रहकर एक स्वतंत्र 'शोव-निबंध' भी बन जाता है।

विहारी ने भी एक दोहे में राधा की आँखों को खंजन रूपी माना है।

बन तन कौं निकसत, लसत, हँसत हँसत इत आइ
'दृग-खंजन' गहि लै चल्यो, चितवन-चैंपु लगाइ

महाकवि विहारी की भाँति हमारे कवि ने भी राधा की प्रार्थना से अपने काव्य का प्रारम्भ किया है। प्रथम छंद की अन्तिम पंक्ति में बिहारी सतसई के प्रथम दोहे की ओर स्पष्ट संकेत भी कवि ने किया है। और इस प्रकार जैसे 'खंजन नैन' से सूर का स्मरण किया, उसी प्रकार 'राधा बिहारी की बाधा हरौ, हरौ बाधा हमारी विहारी की राधा' में उसने विहारी का स्मरण किया है। बिहारी का दोहा निम्नांकित है :—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होइ

महाकवि हरिऔध ने अपने प्रिय-प्रवास के चतुर्थ सर्ग में राधा के रूप का वर्णन किया है। स्त्रीजाति-रत्नोपमा, सुमना, प्रसन्नवदना आदि विशेषणों से विभूषित राधा के 'सुरूप' की ओर महाकवि ने संकेत मात्र किया है। विहारी की दृष्टि 'राधा' की तन-छवि पर थी, और हरिऔध को राधा के रूप और स्वभाव दोनों पर थी। मतिराम की दृष्टि राधा के मुखचन्द पर थी। यथा—

मो मन तम-तोमहि हरो, राधा को मुख-चन्द
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं, नँद-नंदन आनंद

किन्तु हमारे कवि के मानस में केवल 'खंजन नैन सदा रस माते' की ही क्रीड़ा विद्यमान है। यद्यपि उसने प्रसंगतः सुरूप का भी उल्लेख किया है। रूप का मोह कामनामय होता है। और कामना अनादि वासना का बदला रूप है, जो मन को बिषयों में लगाती है किन्तु 'सुरूप' में विषयासक्ति निवारण की क्षमता होती है। राधा ऐसे ही रूप की सन्मूर्ति थीं।

हमारे कवि की चेतना इससे अवगत है कि राधा सुन्दर रूप वाली हैं, किन्तु उसकी आसक्ति उस 'सुरूप' में नहीं है। उसकी धारणा सूरदास की भाँति रूप को सजीव बनाने वाले नेत्रों पर ही टिकी है। किसी एक देश में चित्त को ठहराना 'धारणा' है। कहने वालों का कहना है कि जहाँ चित्त लगाया जाय, उसीमें वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। (देश बन्धश्चित्तस्य धारणा) 'भूलै नहीं पल आधा' का टुकड़ा

बताता है कि हमारा कवि अपनी रुचि के अनुसार 'खंजन नैन सदा-रस-माते' के ध्यान में निमग्न है। 'यथाभिमतध्यानाद्वा' को मीमांसा करने वालों का दृढ़ मत है कि अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्ट का ध्यान करने से चित्त स्थिर होता है।

'खंजन' चपलता का प्रतीक है। चंचल नैन देखने वालों को भी चंचल बनाते हैं, यथा—

नेक न थिरता गहन की, है खंजन की बान
काको नहिं चंचल करैं, ए चंचल अँखियान

किन्तु सूरदास को भाँति हमारे कवि को इन नयनों से चित्त-वृत्ति के निरोध में सहायता मिली। उसका चित्त चंचल न होकर एकनिष्ठ हो गया। राधा के खंजन नैनों की विशेषता यह है कि वे रस से माते हैं। 'माते' शब्द 'मद' नामी स्वभावसिद्ध सात्त्विक अलंकार को उद्बुद्ध करता है और यही 'चंचलता' को स्थिरता में लाता है। हमारे कवि की चिंतन शैली 'सूर' से भिन्न है। सूर के खंजन नैन 'रूप रस माते हैं'। यह 'रूप' चाहे स्वयं राधा का हो अथवा भगवान कृष्ण का। प्रसंग बताता है कि सूर की चेतना में युगल मूर्ति विराजमान थी। हमारे कवि के सामने राधा-भाव की सन्मूर्ति विराजमान है। इस प्रकार हमारे कवि ने अपनी कुशल कल्पना से वर्णन में विभिन्न अभिव्यंजना भर दी है। 'रस' भाव की स्थाई अवस्था का नाम है। विरोधी, अवरोधी भावों से विच्छिन्न न होने वाला भाव ही स्थाई भाव या रस कहा जाता है।

'जीवन मैं हमनैं न करचो कछू, केवल साहित-राधा अराधा' का टुकड़ा बताता है कि कवि की दृष्टि में साहित्य की आराधना 'राधा' की आराधना से भिन्न नहीं। 'साहित-राधा' के समास में 'साहित' शारदा या सरस्वती का भी सूचक है। साहित्य और राधा का यह एकीकरण इस बात की ओर भी संकेत करता है कि साहित्य सदा से इस विराट शक्ति (उसे जो भी नाम दिया जाय) की पूजा का माध्यम है। साहित्य रूपी राधा, साहित्य और राधा, साहित्य अथवा राधा सभी भाव बोध समाविष्ट हैं। कवि साहित्य-साधना में उसी भाँति लगा है, जिस प्रकार उसकी चित्त-वृत्ति राधा के ध्यान में लगी है। उसकी दृष्टि में 'राधा' साहित्य-साधना की चरम साध्य है। यही बात तुलसी ने कही है—

'भनित विचित्र सुकवि कृत जोऊ, राम कृपा बिनु सोह न सोऊ'

यही बात मिल्टन ने अपने अन्धत्व वाली चतुर्दशपदी में भी कही है।

"साहित जा हित साध्यो सनेह सों, या मन कौं, न गिन्यो भव बाधा" का टुकड़ा इसी भाव की ओर संकेत करता है। "एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास" की पूरी शक्ति 'केवल' शब्द में निहित है। यह तो नहीं कि कवि के जीवन में 'भव बाधा'

आई ही नहीं, बाधायें अनेक आईं, किन्तु कवि ने अपनी एकनिष्ठता, अनन्यता में इन सबकी उपेक्षा की। 'भव बाधा' का टुकड़ा विषय-वासना, राग-द्वेष जनित सभी संशयों को अपने क्रोड़ में छिपाये हैं। हमारे कवि की साधना दृढ़ है। उसे बाधायें भी रसमय, आनन्दमय प्रतीत होती हैं। इसीलिये वह दुख सुख की परवाह न करता हुआ अपने इष्ट के प्रेम में तन्मय है। यह चरण इस ओर पूर्ण रूप से संकेत करता है कि कवि का प्रारम्भिक जीवन, विद्यार्थी जीवन, आर्थिक कठिनाइयों से कंष्टकाकीर्ण था, परन्तु वह साहित्य को साधना समझ कर सभी कष्टों को झेलता रहा। ग्रन्थ की व्यवस्था और पढ़ना उसका व्यसन रहा है। 'स्नेह' शब्द चित्त की स्निग्धता तथा प्रेम की शुद्धता का भी बोध कराता है।

जिस राधा का स्मरण बिहारी ने अपनी 'भव बाधा' (सांसारिक बाधा, जन्म मरण का कष्ट) दूर करने के लिये किया है, उसी राधा का स्मरण हमारा कवि भी अपनी 'भव बाधा' दूर करने के लिये करता है। कवि को विश्वास है कि राधा की प्रसन्नता से उसकी साधना बलवती होगी। जब कवि भव बाधा की सहवर्तमानता में भी अपने साधना-पथ पर उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, तब 'राधा' की कृपा से, उसकी साधना से, उसमें कितना बल भर जावेगा, अनुमान नहीं किया जा सकता।

जानकार श्री राधा को उस विभिन्न भाव धारा का प्रतीक मानते है, जहाँ केवल प्रेम का साम्राज्य है, जिसमें आकांक्षा, वासना, अहम् सभी का विस्मरण होता है! ब्रह्म-विद्या का कार्य है सारे जगत के अज्ञान तिमिर को सर्वदा के लिये हर लेना। 'ब्रह्म विद्या' स्वयं 'तप' करके 'गोपी भाव' प्राप्त करती है। इसीलिये उसमें इतनी शक्ति आती है। "राधा" इस शक्ति की प्रतिमूर्ति ही है।

"राधा विहारी की बाधा हरो" में जब विहारी का अर्थ 'कृष्ण' ध्वनित होता है, तब पुस्तक के विषय की ओर भी संकेत हो जाता है। कारण कि कृष्ण के "उदर पीड़ा" से पीड़ित होने तथा 'राधा' द्वारा उनका उपचार करने की कहानी का ही कवि ने सुलभ वर्णन किया है।

पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण 'गुरुवन्दना' का ही स्वरूप है। अपने पूर्ववर्ती कवियों में सूर-विहारी के स्मरण से हमारे कवि ने न केवल गुरु-वन्दना की है, वरन 'राधा-माधव' से संबद्ध व्रज साहित्य की सम्पूर्ण निधि की ओर भी अपने पाठक का ध्यान आकृष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

इस प्रकार हमारे कवि ने इस मंगलाचरण में विपुल रस भरा है। चारुत्व, व्यञ्जना, माधुर्य आदि गुणों से अलंकृत मंगलाचरण का उपर्युक्त चरण इतना सुन्दर बन पड़ा है कि उसमें 'मंत्रता' समाविष्ट हो गई है और यह विश्वास से कहा जा सकता है कि जो प्राणी इसका नित्य प्रति पाठ करेगा, उसे 'राधा' तत्व सुलभ होगा।

—अनंतपुरा, आजमगढ़

१२. राधा : शिल्प और परम्परा का ज्योतिर्मय रूप

[प्रकाश द्विवेदी]

भारतीय वाङ्मय में रस, राग, भाव और लीला का नाम आते ही जो नाम लोचन युग्म के फलक पर नाचने लगता है, रस-राग उड़ेलने लगता है, और रसना से धारासार कल्याण की वृष्टि करने लगता है, उसे राधा-कृष्ण की संज्ञा से लोक जानता है, देश के सांस्कृतिक और साहित्य-जगत् में यह नाम तो सनातन काल से अमृत-वर्षण ही कर रहा है।

भारतीय चेतना को सनातन दीप्ति, भावनाओं की स्फीति और प्राणों को रसानुभूति देने वाला यह युग्म सञ्ज्ञक नाम, रूप, लीला और धाम की कोटियों से होता न जाने कब से लोक और लोक-हृदय को आह्लादित और उद्वेलित करता रहा है। भावुक भक्तों, आचार्यों और मनीषियों ने अपनी-अपनी भावनाओं और विचारणाओं के अनुसार इस दिशा में कार्य किया है।

भारतीय काव्य राधा-कृष्ण के रसमय लीला-गान से भरा है, लोक-कंठ से गूंजते लोक-गीतों में भी राधा-कृष्ण के ललित विलास से लोक-मानस को जीवन का रस-तत्त्व मिलता रहा है।

हिन्दी-भारती के आचार्य और प्रज्ञास्नात महाकवि डा० किशोरी लाल गुप्त का ब्रज-भाषा में लिखा काव्य 'राधा' रीतिशिल्प और छाया-युग का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। छायावादी-काल-परिवेश का प्रभाव इस काव्य में अपना मोहक बिम्ब-विधान रखता है। यद्यपि यह काव्य व्रजभाषा में है, व्रजभाषा की ललित पदावली का प्रयोग कवि की रीतिकालिक शिल्पना, कल्पना और अभिव्यक्ति की चारुता का चमत्कार सहज ढंग से सँवारता है, तथापि वह कवि-काल—छायावाद-काल—की पदावली का प्रयोग, भावाधार आदि का भी संयोजन करता है।

'राधा' का मंगलाचरण कवि की मौलिक दृष्टि, भाषाधिकार, और प्रतिपाद्य का रसमय उदाहरण है—

खंजन नैन सदा रस माते सुरूप के, भूलैं नहीं पल आधा
जीवन मैं हमनै न कर्‌यो कछू, केवल साहित-राधा अराधा
साहित जा हित साध्यो सनेह सों या मनकौं, न गिन्यो भव-बाधा
राधा-बिहारी की बाधा हरौ, हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा

काव्य स्वाभाविकता मनोवैज्ञानिकता की मर्मच्छटा से अलंकृत है। चेतन-अवचेतन की स्थिति की मनोरम झाँकियाँ हैं। भाषा, भाव और व्यंजना की त्रिपुटी में गुँथी राधा की काव्यच्छटा किसे प्रभावित नहीं करेगी। रीतिशिल्पी भाव-विमुग्ध साधनाशील सुकवि ने नवीन भावों और भावनाओं की भूमि सँवारी है। स्वानुभूति की परम चटुल आत्मपरक पद्धति की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है।

पूर्वार्द्ध का एक-एक सवैया एक-एक संस्मृति-बिम्ब है, सधे शब्दों की रस-सिक्त चित्रावली है। कवि के सिद्ध सवैयों में जहाँ रीति काल की कला मुसकुरा रही है, वहीं छायावादी-कलना का कलहास भी नवीन वैभव का पर्यावरण-बिम्ब दे रहा है। कितने ही सवैयों में रीतिकला और छायायुगीन शिल्प का मणिकांचन योग है। 'देव' की सधी सजी भाषा और भाव-भूमि की चित्रशाला में छाया-युग के गौरव 'प्रसाद' के 'आँसू' की सांकेतिक भाव-छाया ओर भाषा का किंचित इंगन इस सवैये में नाच रहा है—

राधा लकीर बनी उर मैं, तेहि लाखन मैं अँखियाँ लखि लेतीं
वे अँखियाँ तनी, मोहिं चितै, अभिलाखन मैं पँखियाँ जरि देतीं
नील निचोल कसी उकसी, छतियाँ छतिया गतियाँ भ र देतीं
ता रति की सुधि-आरतियाँ, उर आरतियाँ रतियाँ भरि देतीं

सवैये के 'राधा लकीर बनी उर मैं' में 'आँसू' के 'थी एक लकीर हृदय में' भाव-छाया के जहाँ दर्शन होते हैं, वहीं 'कामायनी' के 'नील परिधान' की छाया 'नील निचोल कसी उकसी' में उतराती दिखायी देती है। प्रासों अनुप्रासों में रीति-शिल्प और छाया-युग के प्रतिनिधि 'प्रसाद' की आभा के दर्शन होते हैं।

आचार्य और आरोचकी प्रतिभा के कवि के काव्य में रीति-शिल्प और भाव-बिम्ब तो हैं ही, भक्ति-काल की भाव-भूमि भी उसे विविध वर्णों की नयनाभिराम इन्द्रधनुषी छटा प्रदान करती है। 'कान्हर के झकझोर' को पा 'रुक्मिणी रानी' अलसायी हुई उठीं। महाकवि ने रुक्मिणी का चित्र—

'देखि कै पूरब माँहि अपूरब लाली, लली छन एक लजानी'

में कितनी सहजता से खींच दिया है। इससे भी रसमयता में डूबना चाहें तो ये पंक्तियाँ लें

फेरि कह्यो, कहो जायँ कितै, घर आपनोई, नहिं कुंज बिरानी।
ये तौ कहौ मनमोहन जू, यह कौन तिहारी हैं राधिका रानी।

उत्तर का क्या कहना। भक्ति-काल और छायावाद-काल सब का तत्त्व-समन्वय सवैये में उफना रहा है, राग-रंग का क्या कहना। कुंकुम-द्रव का छिड़काव समूचे बिम्ब पर चन्दनी-गन्ध सा नीराजन करता जान पड़ता है—

राधिका मेरी अराधिका है, मोहिं साँवरे झाँवरे को करै है हरा
बारह मास लौं पो पो करै, अपने घनश्याम को है वो पपोहरा
स्वाति नछत्र मैं ग्रीव उँचै, जल लेइ, न संग्रहै, भोगै सबै धरा
आपने त्याग सों जो या धरा विधुरा कौं बनावै है रुक्म वसुंधरा
'मोहिं साँवरे झाँवरे कौं करै है हरा' में बिहारी के
मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाइं परे, स्याम हरित दुति होइं।।

का चित्र सामने है, बिहारी शब्दों के सुष्ठु प्रयोग में जहाँ तनिक चूक गये, वहाँ महाकवि डा० गुप्त ने संशोधन कर उसे और भाव-दीप्त बना दिया है। 'स्याम' ऐसा ही शब्द है। 'स्याम' यद्यपि कृष्ण का पर्याय है, तथापि उससे और भी अनेक अर्थ फूटते रहते हैं—श्यामल, पाप ···इसके स्थान पर 'साँवरे' कितना संस्कार श्रृंगार सम्पन्न शब्द है, और आचार्य कवियों से समादृत गृहीत शब्द है। यह शब्द कवि की दिगंतव्यापिनी दृष्टि का परिचायक है। इस शब्द को असमर्थ समझ कवि ने 'साँवरे' शब्द का चुनाव किया। इस शब्द के साथ रीति-शिल्पी 'देव' घनानंद, मतिराम, पद्माकर आदि अनेक कवि खड़े हैं। 'साँवरे अंग लसै पट पीत' आदि इसकी ध्वनि का जैसे ताली बजा बजा कर अनुमोदन कर रहे हैं। दूसरा शब्द 'भव-बाधा' में बाधाओं का जाल-जंजाल है, वहाँ भव-ताप से तप्त बिम्ब-विधान करने वाले 'झाँवरे' का क्या कहना। 'झाँवरे' से जहाँ ताप-तप्त होने के कारण मुरझाने-कुम्हलाने-अवसन्न होने आदि का भाव है, वहीं साँवरे के साथ उसे डट कर बिठाना कितना अलंकरण-प्रधान है। कवि बिहारी ने तो इतने ही भाव-प्रदर्शन से अपने मन को बटोर लिया था, किन्तु डा० गुप्त ने उनके काल के पूर्व भक्ति-काल के भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी को भी खड़ा कर वर्ण्य-विषय को और पावनता से अभिषिक्त कर दिया। 'बारहमास लौं पी पी करैं अपने घनश्याम की है वो पपोहरा' पढ़ते समय गोस्वामी जी का 'जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति जल' सामने आ जाता है। 'स्वति नछत्र में ग्रीव उँचै, जल लेइ, न संग्रहै, भोगै सबै धरा' लिखकर जहाँ कवि ने गोस्वामी जी के––

'नहिं जाचक, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ'।।

का समूचा भाव दिया है, वहीं कुछ गुप्त भाव को भी डाँ० गुप्त ने प्रकाश में ला दिया है। गोस्वामी जी ने अपने मानी-स्वाभिमानी चातक के स्वभाव के परिप्रेक्ष्य में कहा है कि वह चातक नाम से तो याचक है, किन्तु वह याचना नहीं करता है, संग्रह भी नहीं करता है, और सब से बड़ी बात तो यह है कि वह स्वातिबिन्दु के लिए सिर इधर-उधर कर फेरा-फेरी नहीं करता, वह अपने सिर को एक अवस्था में रखता है, सहज भाव से बूँद चोंच में गिर गया तो ले लिया, नहीं कोई बात नहीं, यह है उसका स्वाभिमान। डा० गुप्त ने इसी भाव को 'ग्रीव उँचै' में भर दिया

हैं। गोस्वामी जी ने 'वह संग्रह नहीं करता' कह कर उस का सन्दर्भ पूरा कर दिया; परन्तु महाकवि गुप्त ने 'भोगै सबै धरा' कह कर उसके औदार्य का अदृष्ट पूर्व बिम्ब भी दे दिया। 'आपने त्याग सों जो या धरा विधुरा को बनावै हैं रुक्म वसुन्धरा' कह कर कवि ने 'धारण करने वाली–धरा को वसुन्धरा की संज्ञा से अभिहित कर महिमा मंडित कर दिया है।

रीति-काल के शृंगार में आपादमौलि डूबे कवियों ने राधा-कृष्ण के वर्णन के व्याज से अपनी वासनाओं का चित्र ही जैसे उरेहा है। दास जैसे आचार्य कवि ने 'आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है' कह कर इसी बात की पुष्टि की है। डॉ० गुप्त ने शृंगार पर कलम चलाते हुए भी मर्यादा आदि का बड़ा ध्यान रखा है। राधा का यह पावन चित्र कवि ने कितना भला खींचा है।

राधिका काम की चेरी नहीं, वह चाहै हमैं, हम सों नहिं चाहै
डूबै कबौं नहिं, नित्य तिरै, प्रिय प्रेम-समुद्र सदा अवगाहै
स्याम सुरंग में डूबी रहै, निखरै उजरी, कबहूँ न कराहै
माधव राका समान रहै, अति सीतल. नाहिं दहै, नहिं दाहै

प्रस्तुत सवैया में बिहारी के 'अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग' तथा 'ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रंग त्यों त्यों उज्जर होइ' का भाव-बिम्ब तो है, किन्तु अन्तिम पंक्ति में कवि ने अपनी मौलिक उद्भावना का परम पुनीत बिम्ब उपस्थित कर, वर्ण्य-विषय को और महत्व प्रदान कर दिया है।

युग-धर्मिता का निदान करने वाले कवि डॉ० गुप्त जी ने व्रज-भाषा के रीति-शिल्प उतारते हुए आज की प्रसिद्ध बात को बड़े सहज ढंग से लोकोक्ति और मुहावरे के माध्यम से 'व्याही बहू घर साग बरोबर, है परकीया सौं राग मजोठा' लिखकर रीति-काल से आज के परिवेश को जोड़ दिया है। पत्नी के प्रति वह राग नहीं होता, जो प्रेयसी के प्रति होता है। पत्नी स्वकीया है, और प्रेयसी परकीया। रीति काल इसका उदाहरण रहा है, और आज भी विचारक इसे मानते हैं। इसी तथ्य का उद्घाटन कविवर डॉ० गुप्त ने किया है।

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग बड़ी सहजता के साथ कवि ने किये हैं। नारियों के स्वभाव, संस्कार के सम्बन्ध में भी वह जागरूक हैं—

गांव को जोगी तो जोगना है, अनगाँव को जोगी है सिद्ध बराबर
है घर की, घर की, अपनी, अपने अधिकार में, जोतौ सरासर
जो अपनी नहीं, ताकौ उसे, अपनी करि, चाहौ पियौ अधराधर
मोहीं सी है जो पियै विष घूंट ए, दूसरी होती सुनातो झराझर

'देव' के 'वारियै बैस, बड़े चतुरै हो, बड़े गुन देव, बड़ीयै बड़ायी' की भाव-छाया पर कवि ने, 'बड़े बड़े बार, बड़े बड़े हार, बड़ेई बिहार, बड़े मधु मातैं' की रचना की; किन्तु यहाँ डा० गुप्त ने 'बड़ेन की आँखिन डारि कै धूरि, बड़े बड़े व्याज सहेट की घातैं' तक पहुंचा कर अपनी सूत्रकारिणी प्रवृत्ति का परिचय दिया है, जब कि महाकवि 'देव' 'नैसुक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनायी' तक ही रह गये। उनकी नायिका की अंतरंगिनी सखी समझाने-बुझाने में ही रह गयी। इधर कवि डा० गुप्त ने योजना की सारी परिपूर्तियों को व्यवस्था दे दी।

बाईस से छब्बीस वर्णों के समान गण-वृत्त सवैया की छन्द-शास्त्रीय सीमा में आते हैं। सुकवि डॉ० गुप्त की 'राधा' में सभी प्रकार के सवैयों का प्रयोग हुआ है। सबैये अत्यन्त सरस भाव-प्लुत रीति-शिल्प से मंडित और छायावादी कलना तथा भाव-भावना से भी अलंकृत हैं।

डॉ० गुप्त ने रीति-शिल्पी कवियों के अनेक भाव-बिन्दुओं को लिया है; किन्तु उनके सवैये अपनी मौलिक व्यंजना से भरे हैं। प्रसिद्ध कवि रसखान के—

'एरी आजु काल्हि सब लोक-लाज त्यागि दोऊ,
सीखे हैं सबै बिधि सनेह सरसाइबो
यह 'रसखानि' दिना द्वै में बात फैलि जैहै,
कहाँ लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो
आजु हौं निहारयो वीर, निपट कलिन्दी-तीर,
दोउन को दोउन सों मुरि मुसकाइबो
दोऊ परैं पैयाँ, दोऊ लेत हैं बलैयाँ,
उन्हैं भूलि गयीं गैयां, इन्हैं गागरि उठाइबो

के भाव-पटल पर उन्होंने अपने भाव के जो छन्द-बिम्ब दिये, वे सहज, हृदयस्पर्शी और प्रेरक हैं। महाकवि 'रसखान' का यह छंद तो अनूठा है ही, ऐसी अनुभूति-कल्पना-विभूति से भरे छंद 'रसखान' के ही अधिक कहाँ हैं, और डॉ० गुप्त की सार-ग्राहिणी प्रवृत्ति और कवित्व-शक्ति सराहनीय है। यहाँ 'रसखान' की नायिका अपनी अंतरंगिनी सखी से राधा-कृष्ण की लोक-लाज खोकर स्नेह सरसाने की बात कहती हुई, बदनामी फैलने की चर्चा करती हुई, कालिन्दी-तट पर हुई दोनों की आसक्ति-अनुरक्ति का उद्‌घाटन करती हुई, दोनों की बेसुधी की बात कहती है, अवस्था इस सीमा तक पहुँच गयी है कि कृष्ण गायों को भूल गये, और राधा 'गागरी' उठाना भूल गयीं। इसी भाव-भूमि को धेनु चराते, वेणु बजाते कृष्ण का अच्छा सन्दर्भ देते हुए कवि डॉ० गुप्त ने उसी समय राधिका को गागरी लेकर यमुना-जल लाने को पहुँचा दिया। कृष्ण कह रहें हैं कि मैं राधा की रूपराशि देखकर आँखें नचाना भूल गया, और वे (राधा)

पैर उठाना, चलना, भूल गईं, बेसुध होकर निहारने लगीं, तब से वे मिल जाने पर साथ नहीं छोड़तीं, उनके साथ की सभी सखियाँ इस पर हँसती हैं। 'रसखान' ने दोनों को किशोरावस्था में छोड़, भगवान् भरोसे उन्हें जिज्ञासाओं के गहन कान्तार में छोड़ दिया; किन्तु विचारक कविवर डॉ० गुप्त ने आरम्भ सखियों की शिकायत से न कर, धेनु चराते, वेणु बजाते श्रीकृष्ण के द्वारा कर, सहजता को एक नयी दिशा देते हुए अचानक राधिका को यमुना-तट पर भेज दिया। कृष्ण आँखें नचाने का स्वभाव भूल गये, और राधा उन्हें निहारने में ऐसी बेसुध हो गयीं कि चलना कौन कहे, पग उठाना भी भूल गयीं। कितनी सफ़ायी डॉ० गुप्त ने अपनी बात में रखी है। 'रसखान' ने जहाँ जिज्ञासाओं की अटवी में पाठकों को छोड़ दिया था, वहाँ डा० गुप्त इस अवस्था का इंगन करते हुए आगे बढ़ कर कहते हैं कि तब से वे जब भी मिलती हैं, साथ नहीं छोड़ती हैं, उनके साथ की सखियाँ उस दिन की इस कथा से हँसती ही रहती हैं। यहाँ 'रसखान' के कल्पना-विलास के स्थान पर यथार्थ है। यहाँ कृष्ण से कहला कर कवि ने सत्य का सिंहद्वार खोल दिया है। वस्तुतः मुरझाये हुए भावों को नवीन रंगिमा और भंगिमा से पल्लवित कर, नवीन जीवन प्रदान कर दिया है। यह सर्वथा सत्य है कि पुराने रीति-शिल्पी कवियों के छंदों का कल्पना-विलास डा० गुप्त की राधा में व्यवहृत होकर तथ्य परक होकर, इतिहास बन गया है। सवैया उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ—

धेनु चरावत, वेनु बजावत, मैन जगावत, हौं रगरी
ता खन राधिका आयी उतै, जमुना-जल लैन कौं लै गगरी
भूलि गयो मैं नचावन नैन, वो भूली उठावन कौं पग री
छोड़ै नहीं लग री तब सौं, सखियाँ सँग की वे हँसैं सगरी

महाकवि मतिराम के 'आयी है निपट साँझ, गैया गईं घर माँझ, ह्वां तैं दौरि आयी, मेरो कह्यो कान्ह कीजिए' की भाव-छाया पर कवि ने सुन्दर सवैया में वही किंचित हेर-फेर के साथ, अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया हैं—

बाछरू छोरि दयो अपनो, फिर मो ढिग आइकैं बातैं बनायी
"कान्ह जू साँझ भयी, सुरभी सब मेरी सवत्स घरैं फिरि आयीं
देहु हेराय, गयो है हेराय, बछा धवरी को, है राम दुहायी
देर करौ जनि, खीझि है माई," चुभी चित मैं अजौं सों चतुरायी

सवैया जैसे छोटे छंद में घनाक्षरी की भाव-राशि देते हुए, नया संदर्भ देते हुए, मौलिक उद्भावनाएँ देते हुए, महाकवि डा० गुप्त ने अपनी विलक्षण मेधा की प्रतीति करायी है।

बिहारी की 'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ। सौंह करै, मौंहनि हँसे, देन कहै, नटि जाय।' की भाव-छाया पर बड़ा सहज सवैया महाकवि ने लिखा है। महाकवि की अपनी ओर से जुड़ी बात छंद-मुद्रिका में विजड़ित पद्मराग की याद दिलाती है—कवि का यह लिखना --

रस लालच बात की, राधिका नै कहूं राखी चुराय कै बाँसुरी मेरी
पूछे पै सौंहैं कका की करी, पर भौंहन माहि हँसी बहुतेरी
खोजन कौं अनतै जब जान चह्यो, तब 'ए जी सुनो' कहि टेरी
"लाओ लली, न छकाओ हमैं, रस पाओ कहा ?" कह्यो "है न इतै री"

कितना सुन्दर है भाव-छाया का वितान, जिसमें कवि की अपनी छाप पूरी तरह से सुरक्षित है।

भाव की गहरी अनुभूति-व्यंजना कवि की विशिष्टता रही है। सवैये की रस-माधुरी मर्म-विन्दुओं को उद्‌घाटित करने वाली है। श्रीकृष्ण की इस भावमयी वाग्धारा का कवि ने कितना सुन्दर चित्र दिया है—

मेरे लिए हैं सुरंग कुरंग दोऊ सम, हौं नहीं भंग को भूखो
अंग को भूखो नहीं, न भुजंग हौं, हौं नहीं काहू अनंग को भूखो
ठीकई है कह्यो प्रान प्रिये, हौं न रूप को भूखो, न रंग को भूखो
हौं तो लखौं बस अंतर कौं, मन मेरो है भाव-तरंग को भूखो

'राधा' का उत्तरार्द्ध राधा के विशेष चरित से अलंकृत है। सूर्यग्रहण का पर्व था, कुरुक्षेत्र में देश के कोने कोने से लोग गये थे। श्री कृष्ण जी भी अपनी पटरानियों-सहित वहाँ गये। भीड़ के बाहर श्रीकृष्ण का निवास था। वे नहा कर लौटे कि अचानक उनका स्वास्थ्य गड़बड़ हो गया। रानियाँ खिन्न हो गयीं। रुक्मिणी पंखा झल रही थीं, तब तक वीणा लिए नारद जी आ गये। रानियाँ चरणों में गिर गयीं, सबने हाथ जोड़ कर कहा--हमारे सुहाग की रक्षा करें, महाराज ! कृष्ण ने नारद को देखा तो पीड़ा और बढ़ गयी। उन्होंने कहा--महामुने ! पीड़ा दूर करने वाली कोई जड़ी नहीं है ? नारद की दाढ़ी हिली, और वे बोले--देवियो ! मैंने बहुत सोचा-विचारा, तब इस निश्चय पर पहुँचा कि अपने बायें अंगूठे को धोकर वही जल पिला दो, यही सर्व श्रेष्ठ दवा है। नारद की बात सुन श्रीकृष्ण मुसकराये। रुक्मिणी को भी विचित्रता लगी। उन्होंने कहा--शिव जी के पास से भंग पीकर आ रहे हैं क्या ? नारद जी वही औषधि बताते रहे। रुक्मिणी हैरान थीं—'पर पैर धो पीतमैं कैसे पियाऊँ'...इतने में एक दुःखिनी आ गयी, जो श्रीकृष्ण की ओर बढ़ती गयी—वह रोकने से भी रुकने वाली नहीं थी। वह उन तक पहुँच गयी। उसने कहा—मैं दवा लेकर आयी हूँ। श्रीकृष्ण का सिर एक हाथ से उसने पकड़ा, और दूसरे हाथ से उसने दवा पिला दी। श्रीकृष्ण होश में

आ गये। वह दुखिया उनके पैरों पर गिर पड़ी। कृष्ण ने गले लगा लिया, और कहा—मैं चिर ऋणी हूं। आपने चरणामृत पिला दिया। राधिका कृष्ण के चरणों पर गिर गयी, और चेतना शून्य हो गयी। उसे रुक्मिणी जगा रही है, अन्य लोग भी जगा रहे हैं। इस अवसर का कैसा मार्मिक चित्र महाकवि ने प्रस्तुत किया है। देख कर लोग हैरान थे—

जाग री जोति सुहागमयी, अनुरागमयी रस रूप गुनागरी
नागरी नागर तेरो जियो, तू परी अबै लौं मरी, प्रेम में पाग री
पागरी बाँधि सनेह सौं आपने प्रीतम कौं, रस-रूप की आगरी
आगरी प्रेम की, साधिके, राधिके, लाग री तू गले, रूप उजागरी

रुक्मिणी आश्चर्य-चकित रह गईं। 'एई गुनागरी राधिका हैं ? दृग फारि कै रुक्मिनी देखन लागीं' और 'देखि तुम्हें सरला सजला अँखियाँ ये भयीं सफला बड़ भागी' कहती भाव-मुग्ध हो गयीं। रुक्मिणी राधा की प्रशंसा करती हुई भाव-विभोर हो गयीं। उनकी सरस्वती कवि के शब्दों में फूट पड़ी—

पागि रखै अपने रस मैं, कहलावै बिहारिनि, राखि बिहारी
दूरिहि सौं तरसावै सदा, बनि प्रान पियारे की प्रान पियारी
काठहू की सखि सौत बुरी, पिउ पीतम कौं बिलमावन हारी
चाहौं तऊ, बनि जाती सबै, जु पै तू बनि जाती री सौति हमारी

रुक्मिणी की अपार श्रद्धा राधा के प्रति फूट पड़ी—

अंतर ज्योति की आभा लियैं मुख पै, करौं कोटिन तोहि प्रनाम
कोऊ न रुक्मिनी—स्याम कहैगौ, कहैंगे सबै अब राधिका-स्याम

महाकवि की उदात्त चिन्तना इन पुनीत छंदों में ढल गयो है। रुक्मिणी की उदात्त भावना चरम शिखर पर पहुँच गयी है। राधा का कथन अत्यन्त मार्मिक है।

'राधा' में चार चारुतम चरित्र है १, श्रीकृष्ण, २. रुक्मिणी, ३. नारद ४. राधा। इस क्रम से चारों का चरित काव्य में अंकित है। राधा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में है। पूर्वार्द्ध राधा के संस्तवन की काव्य-मंजूषा है। मनीषी महाकवि डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने संस्कृत के 'गीत गोविन्द' तथा हिन्दी के रसमय ग्रंथों के चिन्तन-चिंतामणि के रूप में ही इसे व्रज-भारती को सौंपा है।

रीति-शिल्प और छायावादी ललित भावमय पद-विन्यास से मंडित 'राधा' काव्य व्रज-भारती का हीरक हार है। सिद्ध महाकवि की सरस्वती ने रीति-काल के अनेक भाव प्रवण आचार्य कवियों के छंदों के विन्दु पर अपने अनमोल भावों और भावनाओं का इसमें मौलिक चिन्तन बिम्ब दिया है। राधा के विविध पक्षों पर कवि ने स्वतंत्र

चिन्तनाओं और अन्तरोण भावनाओं के भावात्मक चित्र दिये हैं। प्रगतिशील आचार्य ने युग-सन्दर्भ का ध्यान रखा है। उनकी रचनाओं में वह सहजता से तिर रहा है।

'राधा' काव्य की सांगता का पर्व बड़ा ही आनन्दमय बन गया है। काव्यारम्भ के चारों चरित के पात्र सांगता के क्षणों में आनन्दमय मुद्रा में हैं। एक सौ आठ मनकाओं की माला का सुमेरु ब्रह्म का पर्याय भी माना जाता है, और माला का चरम शिखर भी। 'राधा' काव्य की माला का यह सुमेरु भूतल और अम्बर को जोड़कर जैसे एक कर रहा है। धन्य है 'राधा', धन्य है उसकी साधना, और धन्य है 'राधा' का महाकवि, जिसकी सांस्कृतिक सरस्वती से केन्द्रिक भाव-प्रभाव से आनन्द का सनातन धारासार मेघ अपनी मर्मच्छटा के साथ बरस रहा है—

राधा जू निहारैं काँधा, काँधा जू निहारैं राधा,
रुक्मिनी निहारैं आधा राधा-काँधा ओरी हैं
नारद निहारैं राधा, काँधा और रुक्मिनी कौं,
और सब वारैं मुक्त-माल तोरि तोरी हैं
प्रीति-रीति देखि "जैति राधेश्याम राधे" कहि,
फूल बरसावैं सुर हाथ लिये झोरी हैं
नभ° इन्दु[१] नभ° नैन[२] बरस, है मधु कृष्ण,
कियो यह 'राधा' कल कीरति किसोरी हैं

'मनोरमा-प्रकाश-निकेतन'
साहित्य-सदन, सेठवा
मालीपुर, फैज़ाबाद (उ० प्र०)

१३. डा० गुप्त का ब्रजभाषा काव्य--सोनजुही

[श्री सीताराम यादव]

डा० गुप्त खड़ी बोली की अपेक्षा व्रजभाषा के प्रौढ़तर कवि हैं। इनके व्रजभाषा में दो प्रौढ़ खंड काव्य है, जो मुक्त-प्रबंध हैं। एक है, राधा जो प्रकाशित है। इसका रचनाकाल १९५४ ई० है, जब कवि पूर्ण प्रौढ़ हो चुका था। दूसरी रचना है उराहनो, यह भ्रमरगीत काव्य है। इसके प्रत्येक छंद गोपियों के उद्धव के प्रति उलाहने के रूप में हैं। इसका रचनाकाल १९५२ से १९७० तक है। इसके छंद परम प्रौढ़ हैं। गुप्त जी ने संस्कृत के दो अनूठे श्रृंगारी काव्यों का व्रजी में अनुवाद किया है। ये हैं १. अमरुक शतक, २. घटखर्पर काव्य। ये भी परम प्रौढ़ अनुवाद हैं।

व्रजी में लिखित गुप्त जी का पांचवाँ ग्रन्थ है—सो न जु ही या सोनजुही। यह इनकी फुटकर रचनाओं का संग्रह है। इसमें अप्रौढ़ और प्रौढ़ सभी प्रकार की लगभग ५५ वर्षों में लिखी गई कविताएँ हैं। इस संग्रह के सम्बन्ध में डा० गुप्त का कथन है—

लोनी, सुभावमयी, हँसलोन है, पीतम प्रीति में प्रीत जु ही है
जुक्ति की उक्तिन सों भरपूर है, मुक्तक-मौक्तिक-भाव पुही है
प्रीति प्रतीति की रीति में कोविद, भाव-विभाव के सूत गुही है
है रसपूर, सनी सह स्नेह है, सो न जु ही यह सोनजुही है

आजमगढ़ १०–६–५५

सोनजुही में २४४ कवित्त सवैये हैं, १ पद है, २९ दोहे तथा अवधी में लिखित २० बरवै हैं। पहले कवित्त-सवैये रचना-क्रम से दिए गए हैं, फिर दोहे, तदनंतर बरवै। हाई स्कूल में पढते समय के ९ छंद, इंटर के ६ छंद, बी० ए० के ५ छंद, एम० ए० के ४ छंद, ज्ञानपुर के अध्यापक जीवन के १९ एवं बी० टी० में पढते समय के ५ छंद कुल ४९ छंद छात्रावस्था के हैं। वरेली-प्रवास के ८ छंद, फीरोजाबाद काल के ६ छन्द और आजमगढ निवासकाल के सर्वाधिक १५० छन्द है। जमनियाँ में रहते समय ९ छन्द और विश्रामकाल के २ छन्द हैं। दोहों का रचनाकाल १०-८-५३ एवं बरवों का ७-१-४९ है।

सभी छन्द रसमय हैं, अलंकारमय हैं। गुप्त जी ने जीवनभर व्रजभाषा काव्य का अध्ययन, मनन, चिंतन किया है, इसलिए इनकी रुचि व्रजभाषामयी-रीतिमयी हो गई है। फिर भी इनकी सोनजुही सो न जु ही है। वह नहीं है, जो पहले थी। यह उससे भिन्न है।

संकलन का पहला छन्द है कृष्ण के रूप का और उसके प्रभाव का।

हाथ हैं बाँसुरि बाँस बनी, सिर पै सिखि-पच्छ अनूप सुहात
माथ पै केसरि खौरि लसै, है पुनीत पितम्मर सोभित गात
साथ में गोप सखान लिए, हरि लौटत आपुस में बतरात
आजु बनी छबि है हरि की, लखि लै री अली, कस है सकुचात

ज्ञानपुर २–१०–३२

यह सवैया उस समय का है, जब गुप्त जी सातवें दर्जे के विद्यार्थी थे।

जब यह अठवें दर्जे के छात्र थे और छात्रावास में रहते थे, तब एक समय विन्ध्याचल के पुराने ढर्रे के एक कवि भदोही के किसी वणिक छात्र के मेहमान होकर आए और हास्टल में ही टिके। जब उन्हें मालूम हुआ कि किशोरी लाल नामक अमुक छात्र, तुकबंदियाँ जोड़ता है, तब उन्होंने पूर्ति हेतु उन्हें यह समस्या दी—

'आधो मुख देख्यो, आधो देखिबे की लालसा'

गुप्त जी ने इसकी यह पूर्ति की थी—

जाती पनिघट हुती कर गुन गागरि लै,
देख्यो करवट लेटे, माल उर माँ लसा।
अधरन लाली देखी, एक कान बाली देखी,
कच लट काली देखी, ह्वै गई निहाल सा।
आगे कौं न उठ्यो पग, ठगि रही बीच मग,
सोचि जग लाज, भई हाल सों बिहाल सा।
सासु औ ननद डर, गई पनिघट पर,
आधो मुख देख्यो, आधो देखिबे की लालसा।

ज्ञानपुर १२-७-३३

यह 'सोनजुही' का दूसरा छन्द है। इंटर में पढ़ते समय जय नारायण हाई स्कूल बनारस के एक कवि सम्मेलन में गुप्त जी ने इसे सुनाया था और सभापति हरिऔध जी ने बाल-कवि की इस रचना पर प्रसन्नता व्यक्त की थी।

ब्रजभाषा की ये कविताएँ दो कोटियों में बाँटी जा सकती है। पहली कोटि में वे कविताएँ आएँगी, जो राधा कृष्ण से सम्बन्धित हैं और दूसरी में वे, जो शुद्ध श्रृंगार की हैं।

प्रथम कोटि के दो छन्द लें—

गई हुती एक दिन जमुना पुलिन पर,
गई साम सुनर पै नजर ठहर है
मैं तो जान्यौ रूप-सुधा घूँटि रही साँवरे की,
व्यापि गयो उर जाने कैसे कै जहर है
मुरि मुसकाइ, फेरि बाँसुरी बजाइ,
नेकु झुकि इतराइ, पारयो हमपै कहर है
जाने कौन कारे सों डसाय गई, हाय दई,
पहर पहर पर आवत लहर है

ज्ञानपुर ४-१२-४२

गई हुती घट लैके जमुना पुलिन पर
आज मित्र ब्रजराज महाराज मिलि गो
देखत ही नयन कमल जुग खिलि गे औ
मेरो मन धाइ जाइ चाइ रंग रिलि गो
पनिघट पर झटपट ही बिछिलि गो औ
नागर गुनागर उजागर सों हिलि गो

रीतो घट रीतो रह्यो, पर यह घट घट
घटाघट घटाघट रूप रस पिलि गो।

राधा कृष्ण सम्बन्धी रचनाएँ 'राधा' और 'उराहनो' में हैं। 'सोनजुही' में इनके सम्बन्ध की रचनाएँ कम हैं। शुद्ध श्रृंगार की रचनाएँ ही अधिक हैं। दो एक उदाहरण लें—

सागरिका

रिझवार कौं रूप के पानिप सों, अपने अन्हवावै लिए गगरा
पग पायल कों खनकावै सदा, डग सूधे धरै न कबौं डगरा
हँसि कै बिजुरी सी गिरायो करै, निज नेही सों खोजि करै रगरा
ढरकावै सदा रस-गागरी-सी, जब नागरी जायो करै सगरा

आजमगढ़ २–२–५२

मनोज से

जायो, जिवायौ, लगायो गले हँसि, खेलि खिलायो, लियो उर मैं भर
गायो अनेकन गीत रिझावन कौं, तुतरायो कियो तुव खातिर
बाह रे पूत मनोज मनोभव, बाप कौं तैंने दयो मन है भर
फूलन केसर तोहि दयो जेहिनै, तेहि मारत फूलन के सर

काशी २५–१२–५२

झलक

झाँकति बैठि झरोखे लगी, कछु देखन कौं ललका-ललकी मैं
देखि हमैं दुरी जाइ जऊ, लख्यौ ताहि तऊ झलका-झलकी मैं
नेकऊ ना उतरै तब सौं, है चढ़ी पल की पलका-पलकी मैं
पानिप वाको भर्‌यो अँखियान मैं, चाहै ढरो छलका-छलकी मैं

आजमगढ़ २१–१२–५३

इस कवित्त में शून्य से लेकर दस तक की संख्याएँ बड़े कौशल पूर्वक सन्निविष्ट की गई हैं—

सूने मन-मंदिर में एक अनुराग मई
जीवन दुराहे पर चित्र निज धै गई
त्रिगुनमई प्रकृति वाकी हमैं जानि परी
चारि चख करि, पंचसर पीर दै गई

खटराग हमसों सम्हारो न परै है नेकु
सप्त सुर साधन सों रस-बीज ब्वै गई
अष्ट सिद्धि नव निधि वारी चंचला सी बाल
दसम दसा कै इतै चितै, धौं किते गई
१२-११-५४

होली का एक छंद लें—

फागुन में सतरात लजात का, कोऊ बिना रँग बोरी रहैं ना
डूबें सबै रस रंग तरंग, अनंग औ भंग मैं, भोरी रहैं ना
भागौ नहीं, झिझकौ सिमटौ नहीं, कोऊ बिना झकझोरी रहैं ना
होरी में गोरो किसोरी सुनौ, यह चोरी नहीं, कोऊ कोरी रहैं ना

मंगला भवन, काशी १७-३-५६

गुप्त जी ने शृंगारेतर विषयों पर भी कुछ छन्द रचे हैं। जैसे एक छन्द बनारस पर है—

शिव शक्ति के संगम रंग की भंग तरंग लिए या बनारस है
अँग अंग में रूप की रासि अपार, उदार लिए या बनारस है
गली कूचे में घाट औ बाट अटा पै बहार लिए या बनारस है
युग हस्त में अमृत औ विष को, उपहार लिए या बनारस है

आजमगढ़ १६-४-५१

जैसे एक छन्द में खादी का वर्णन है—

मोटनु सौं नहिं नैकु डरै, पतरो पतरो कहिके नहिं छाँड़ति
दोउन को इक सूत मिलाय कै, नेह-जुआ महँ प्रेम सों नाधति
भेद की भावना दूरि भगाय कै, देस की साधना साध सों साधति
भारत भाल के सूने सुहाग को, मोतिन सों यह खादी सँवारति

सुववै १९-१०-४३

१९५२ ई० में देश का पहला चुनाव हुआ था। उस समय गुप्त जी १३ दिनों तक चुनाव-कार्य से आजमगढ़ के देहातोंमें प्रेसाइडिंग आफिसर के रूप में घूमते रहे। चर दिन चुनाव के थे। स्त्रियों से उनके पति का नाम लेकर पूछा जाता था, इनकी पत्नी हो ? ये सब हाँ कह देती थीं, तब उन्हें मत-पत्र दिया जाता था। इस मतदान पर उनका एक छंद है—

अंग में अंग दुरायो सदा, अब भीर भरी में न टारे टरै हैं
घेरी रहीं, घर ही मैं घिरी, अब बाहर आइ इतै उघरै हैं
लाज की गाँठरी खोलि दई, परीं जैसे गरे, अरराइ अरै हैं
'नाहीं' कह्यो सदा नाहै, सोई कहि 'हाँ', पर कौं मत-दान करै हैं

आजमगढ़ २-२-५२

एक छंद नीम की पत्ती पर है—

बौरे बसन्त में आपने बौरन सों, बरसै रस-गंध सुहाती
पौन ते प्रेरित धीरे हिलै, लिए सीतलता, बिलसै रस-माती
हेठी गुलाब ते है गुन मैं नहिं, तीती भलैं, पै लगै नहिं ताती
आँखिन की चिर पीर हरै, करै छाया घनो हरी नीम की पाती

आजमगढ़, २१-३-'५२

नीति के छन्द या तो कोरे पद्य होते हैं, अथवा सूक्ति। पर वे किसी प्रकरण के भीतर आकर रसमय हो उठते हैं। ऐसा एक छन्द देखें। कोई सखी किसी दूसरी सखी से कहती है, मैं मनमोहन से हँसके मिलती हूँ, तो तुम्हें क्यों बुरा लगता है। जो मुझसे हँसके मिलेगा, मैं भी उससे हँस के मिलूँगी। भौंहें तो नहीं तनेनी करूँगी—

जो हँसिकै अपने सों मिलै, हँसिकै तेहि सों नितै बोलिए जू
जानति है हम तौ इतनौ, रस में बिस कौं नहीं घोलिए जू
जो मन मैं नहीं गाँठि रखै, तेहि सों अपनो मन खोलिए जू
काहू सों जीभ न छोलिए जू, जब बोलिए बातनि तोलिए जू

आजमगढ़ २८-१२-५२

यह इस प्रकरण के चार सवैयों में से तीसरा है। नीति की बात तीसरे ही सवैये में है।

कुछ दोहे लें—

बानी जू कीजै कृपा, कीजै बानी-दान
सो ना द्वादस-बानि की बनी, रही है तानि १
दो हा कहिबे मों कुसल, परम विहारी लाल
राधा मो बाधा हरौ, हा हा करौ निहाल २
खुली तनी, तनऊ खुल्यौ, अँगना परी उतान
केस खुले, पर ना खुले नयन, मुदित करि पान १७

आजमगढ़ १०-८-५३

२८ दोहे अप्रैल १०–८–५३ को रचे गये थे। एक दोहा बहुत बाद ९–१२–६१ को रचा गया—

कनक बरन तन कामिनी, कनक बसन छबि देत
कनक न खायो कनकऊ, तऊ मत्त करि देत २९

कवि व्रजभाषा का प्रेमी है। इसीलिए वह एक दोहे में कहता है—

व्रज बानी की मधुरता, बरनि सकैगो कौन।
सरस भई रसना विरस, गहि बैठी है मौन ॥८॥

गुप्त जी को बरवै छन्द बहुत प्रिय है। उन्होंने 'बरवै विलास' नाम से हिन्दी के बरवों का काल-क्रम से संकलन एवं चयन भी किया है। इन्होंने स्वयं भी एम० ए० प्रथम वर्ष में पढ़ते समय २० बरवै रचे थे। प्रथम १५ बरवै ६ जनवरी ४१ को और शेष ५ बरवै ७ जनवरी ४१ को।

गरमत बा कहि, अँगिया धरेसि उतारि।
मनभावन गर लगि रहि, नागरि नारि ॥५॥
पथिक-रूप मन-मोहन, सुघर निहारि।
सिर धुनि, ठगि रहि, नागरि पकरि केवार ॥६॥

—पुस्तकालयाध्यक्ष, हिंदू डिग्री कालेज, जमानियाँ

१४. उराहनौः प्राचीन कविता की एक परंपरा

[डा० मोहन लाल तिवारी]

साहित्य या कविता का विषय नहीं बदलता, केवल विषयवस्तु में परिवर्तन होता रहता है। नायक धीरोदात्त या धीरललित है अथवा श्रमिक, उसके जीवन का संघर्ष या द्वन्द्व अथवा शास्त्रीय परिभाषा में आलंबन, उद्दीपन और अनुभाव, समान ही रहते हैं। क्रोध और ईर्ष्या की प्रतीति समान दिशा लेती है। शस्त्रों के युद्ध में हारे हुए राजपुरुष, शास्त्रों के युद्ध में हारे हुए दार्शनिक और आर्थिक युद्ध में हारे हुए श्रमिक का उत्पीड़न भी समान रूप से पाठक में करुणा या क्रोध का सृजन करता है। श्रमजीवी गोपियों का प्रेम या राजकुमारी शीरीं के प्रति निरीह फरहाद का प्रेम और देश को दासता के गर्त में ढकेलने वाली राजकुमारी संयोगिता का प्रेम या लोक कल्याण प्रेरित तपस्या-रत पार्वती का प्रेम सब अपने अभिलक्षण में एक ही शास्त्रीयता और तर्क रखते हैं। बिहारी की परकीया नायिका ग्वालिन और घनानंद की परकीया नायिका सुजान के प्रेम या मान में विषय का अंतर नहीं है। सूर-काव्य के उपालंभ, घनानंद, भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद के (आंसू के) उपालंभ नें कथ्य का क्या अंतर है। अंतर कवि की रुचि

या कुरुचि, मर्यादा या अमर्यादा, काव्य-कला या छंद-विधान, सामाजिक परिवेश में परिवर्तन, नए उपमानों के विकास अथवा विश्व साहित्य की धारा से लिए गए ऋण तत्वों के प्रभाव का होता है। कृष्ण चरित्र पर प्रभूत साहित्य की रचना युगों से की गई है। कथ्य और विषय तो वही रहे। कवि या रचनाकार की रुचि के अनुरूप काट छाँट होता रहा, उत्थान पतन होता रहा है; श्लीलता-अश्लीलता में ह्रास वृद्धि होती रही, मूल्यांकन और चरित्र के निर्माण पर कवि की अभिरुचि, उसके आदर्श, उसके व्यक्तिगत और सामाजिक संदर्भ और अंत में उसको प्रतिभा और अध्ययनशीलता का भला बुरा (समाज की दृष्टि से) प्रभाव पड़ता रहा। सूर और केशव (रसिक प्रिया) के कृष्ण तथा तुलसी और केशव (रामचन्द्रिका) के राम, विषय या कथ्य की दृष्टि मे एक ही हैं, पर विषय वस्तु (चयन) भिन्न है। केशव के राम और कृष्ण हमारे किसी काम के नहीं हैं, पर सूर के कृष्ण और तुलसी के राम, सब प्रकार से लोकनायक और काव्य के अमर या शाश्वत चरित्र हैं। विद्यापति, सूर, नंददास, मीरा, बिहारी, देव, भारतेन्दु, 'हरि-औध' रत्नाकर और 'उराहनौ' के कवि डा० किशोरी लाल गुप्त की कविता का विषय 'कृष्णचरित्र' एक ही है, पर प्रत्येक कवि ने अपनी विषयवस्तु में भारी परिवर्तन कर दिया है। यह निर्णय कवि को अपेक्षा और अभिरुचि पर निर्भर करता है। यहाँ कवि स्वतंत्र होता है और अधिकार सम्पन्न भी।

डा० किशोरी लाल गुप्त कृत 'उराहनौ' काव्यकृति बीसवीं शती के मध्य भाग को रचना है, जिसमें सन् १९३४ से आरंभ कर नवंबर १९७० तक के बीच, समय-समय पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। यह एक मुक्तक काव्य है और इसमें जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के 'उद्धवशतक' की पद्धति को बहुत कुछ अपनाया गया है। सवैया और कवित्त में प्रस्तुत रचनाओं को पढ़ते समय मानस पटल पर बार-बार उद्धवशतक धावा मारता हैं। कहीं-कहीं घनानंद और उनकी 'सुजान' भी अपनी झलक दिखा जाते हैं। पूरी पुस्तक एक बार हमें आधुनिक कविता के परिवेश से उठाकर रीतिकाल में पहुँचा देती है। ऐसो स्थिति में एक बड़ा प्रश्न उठता है कि जब कविता का नया दौर एक के पश्चात् एक नए आंदोलनों से गुजर रहा हो, देशी और विदेशी मनीषा नई काव्यधारा में आकर प्रवहमान हो चली हो, तब कवि को मध्यकालीन काव्य-इतिहास ने क्योंकर आकर्षित कर लिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य का संबंध सीधे जन-जीवन से हिन्दी में जोड़ा और समाज की तत्कालीन समस्याओं के आधार पर श्रेष्ठ और युगांतकारी साहित्य की रचना की। अंधेर नगरी, भारतदुर्दशा, प्रेमयोगिनी समाज की यथार्थ समस्याओं पर लिखी गई रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कविता का एक बड़ा हिस्सा भी तत्कालीन समस्याओं पर आधारित है। ऐसी कविताओं को उन्होंने 'जनसाहित्य' का नाम दिया। भारत के नवजागरण और देश के उत्थान के लिए संघर्षरत भारतेन्दु ने भी समय

निकाल कर कृष्ण चरित्र के पौराणिक संदर्भों पर पर्याप्त रचनाएँ लिखीं। भावों के परिष्कार एवं उनके उदात्तीकरण में कहीं-कहीं उन्होंने सूर से टक्कर भी ली। सूर ने लिखा—'ऊधो,मन नाहीं दस बीस'। तब भारतेन्दु ने उत्तर दिया-'ऊधो, जौ अनेक मन होते'। शाश्वत मूल्य के ऐसे साहित्य को भारतेन्दु ने 'सत्साहित्य' कहा। उनकी दृष्टि से कृष्ण चरित्र का विषय एक युग का विषय नहीं, वरन् अपनी बहुआयामी विशेषता के कारण वह युग-युग का विषय है। अनेक साहित्यिक आंदोलनों या दर्शन के विकास के आलोक में कृष्ण चरित में संदर्भ और परिवेश के अनुसार या अनुरूप कथ्य मिलते ही रहेंगे।

ऐसी ही परिस्थितियों में हरिऔध और रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त और धर्मवीर भारती जैसे कवियों ने भी कृष्ण-चरित को अपने काव्य का विषय बनाया। आगे के अनेक आन्दोलनों में विकास-क्रम में कृष्ण-चरित अनेक रूपों में कविता का विषय बनेगा। रत्नाकर ने फारसी, उर्दू और अंग्रेजी साहित्य की प्रतियोगिता में कथ्य और कला की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए कृष्ण-चरित को उद्धवशतक में विषयवस्तु बनाया और कलात्मक निखार तथा चित्तवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व को निखार देकर हिन्दी कविता को एक शीर्ष प्रदान किया। यह अलग बात है कि कथ्य में आधुनिक बौद्धिक संवेदनाओं या स्पर्श का अभाव है अथवा छन्द शास्त्र और अलंकार शास्त्र की पुरानी लीक पीटी गई है। यह काव्य में कोई दोष नहीं है, रुचि का प्रश्न है। कविता का मूल्यांकन तो कवि या कविता की सीमा में ही किया जाता है। रीति-काल की अपनी विशेषताएँ हैं और आभिजात्यवाद की अपनी। रत्नाकर रीतिवादी थे। इस दृष्टि से 'उराहनौ' का रचनाकार भी रीतिवादी है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने रत्नाकर का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—'मध्ययुग हिन्दी साहित्य का सुवर्ण युग था और रत्नाकर जी उसी की रम्य विभूति में रम गये थे। उनकी भाषा, उनके साहित्यिक विषय सब तत्कालीन ही थे। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी पूरे प्रसन्न भाव से रहते थे और उन्होंने हमारे इस युग की भाव-भाषा की कोई विशेष चिंता नहीं की। अँगरेजी में ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लेसिक' नाम देने की चाल है'।

—हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी पृ० २०।

तात्पर्य यह कि क्लेसिक या रीतिवादी कवि भाव या कथ्य, पात्रों का विभावन, भाषा की अर्थवत्ता, अभिव्यंजता की शैली, छन्द विधान, परिवेश, सामाजिक संरचना, अलंकार विधान, रसपद्धति, प्रकृति का उद्दीपन स्वरूप सब में प्राचीनता के समर्थक होते हैं, क्योंकि ऐसे कवियों को उसीसे श्रेष्ठता की अनुभूति होती है। यह एक दृष्टि है। इसके विपरीत आधुनिकतावादियों की अपनी दृष्टि होती है, जिसको निराला जी ने शब्दों में यों बाँधा है :

नव गति, नव लय, ताल छन्द नव
नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रव
नव नभ के नव विहगवृन्द को
नव पर, नव स्वर दे।
वर दे, वीणावादिनि वर दे।

इसी प्रकार निराला ने ही गजगामिनी कविता सरस्वती के लिए छन्दों की छोटी राह को भी कंटकाकीर्ण और संकीर्ण बताया और कविता में मुक्तछन्द का महाद्वार खोल दिया। १९१६ ई० में उन्होंने अपनी श्रेष्ठ रचना जूही की कली मुक्तछन्द में प्रस्तुत की। यह भी एक दृष्टि है। आचार्य वाजपेयी ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि 'परन्तु इससे क्लेसिक शैली का ही अंत नहीं हो गया, बल्कि परम्परा टूट जाने पर अब तो इस शैली के साहित्यकारों में एक अनोखा आकर्षण मिलने लगा है',

—वही पृ० २१।

सूर तुलसी ने व्यास कृत भागवत और वाल्मीकि कृत रामायण से हजारों वर्षों बाद अपना विषय लिया, किन्तु उन्होंने युग के अनुरूप उसमें नवीनता का संचार किया। कृष्ण और राम का उनका विभावन नया था, लोक-जीवन का यथार्थ संघर्ष नया था, सामाजिक आदर्शों की प्रस्तुति नई थी, मध्यकालीन राजाओं की निंदा नई थी, लोक और लोकनायक के सम्बन्धों की घनिष्ठता की प्रस्तुति नई थी, इस्लाम के एकेश्वरवाद से टकराने का उत्साह और उसका रणक्षेत्र नया था, सामाजिक लोकमंगल का आदर्श भी नया था। सूर ने ग्रामीण समाज की व्रजभाषा और तुलसी ने अवधी को माध्यम बनाने का उत्साह भी नए ढंग से दिखाया था। सूर ने तो छन्द पद्धति भी तोड़ दी।

'एक नवीन धार्मिक उत्थान के प्रवाह में उन कवियों की भाव धारा भी नवीन जीवन लेकर ही पहुँची थी, जिसपर प्राचीन संस्कृत का प्रभाव कम ही था, किन्तु रत्नाकर जी अपने काव्य में जीवन की ऐसी कोई मौलिकता और अनिवार्यता लेकर नहीं आए। उसके स्थान पर वे उक्ति कौशल, अलंकार, भाषा की कारीगरी और छन्दों की सुघरता और पांडित्य लेकर आए थे'। —वही, पृ० २१।

इन संदर्भों में हम दो शब्द 'उराहनौ' पुस्तक के सम्बन्ध में कहना चाहेंगे। जहाँ तक विषय का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि कवि ने परम्परागत ढंग से कृष्णचरित के मथुरागमन के पश्चात् गोपीविरह, कान्हदूत, कुब्जाप्रेम आदि के सन्दर्भ में गोपियों के प्रेमपूर्ण उपालंभ को अपना कथ्य बनाया है। ऐसे में कवि एक ओर रीतिकालीन कवियों, तो दूसरी ओर शृंगार शिरोमणि विद्यापति की अभिरुचि के अधिक निकट जा पहुँचता है। छोटी पुस्तक की रचना में अधिक समय लगा है, अस्तु कवि की मानसिकता की धारा का प्रवाह सीधी रेखा में प्रवहमान न होकर हरद्वार की गंगा की भाँति सप्तधाराओं में प्रवाहित होता है। काव्य का आरम्भ करते हुए कबि ने लिखा है कि

'सुबरन रथ पर चढ़ि के मधुपुरी ते हरि जू के मीत आए फैली बात घर घर।' गोपियों ने दूत आने की चर्चा पर सोचा कि उससे 'हरि हरि' की चर्चा होगी, पर विस्मय तब हुआ जब उन्होंने 'हर हर' की चर्चा सुनी। फलस्वरूप उनका शरीर 'थर थर' काँपने लगा और वे शिथिल हो गईं। अलंकार की छटा के बीच गोपियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का, चिंता, उद्वेग, जिज्ञासा, उत्सुकता, तत्परता, सक्रियता की स्थिति में अदम्य लालसा लेकर वे ऊधव के सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। उन्हें इस निष्कर्ष तक पहुँचने में बिलम्ब नहीं लगता कि जिस दूत को उन्होंने "कान्ह पठाए" समझ रखा था, वह वास्तव में 'कूबरी पठाए' निकले। तुलसीदास इस स्थिति का उल्लेख कर चुके हैं—लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। एक मनोरंजक बात कवि ने और जोड़ दी है। मथुरा का पेड़ा उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध है। छोटे बड़े सभी चाहते हैं। गोपियों के लिए मथुरा का यह पेड़ा मीठा न सिद्ध होकर, तीता सिद्ध हुआ। श्लेष, यमक, अनुप्रास, मुहावरों से समृद्ध दूसरी कविता में दो निरर्थक, किन्तु दोहरे शब्द का प्रयोग कर कवि ने अभिव्यंजना में तीखापन उत्पन्न किया है, जिससे संप्रेषण सशक्त बनता हैं। कविता इस प्रकार चलती है :

कान्हर पठाए, ब्रज मथुरा के पेड़ा आए,
सुनि सुनि आईं छोरि अरतन बरतन।
तव सुधि पावत ही, ऊधौ बन्यौ धावत ही,
सुधि नहिं रही नेकु असन बसन तन।
एक आँखि आँजो रही, दूसरी निराँजी रही,
आईं तऊ दौरि, जैसो रहीं, नहि लायो छन।
मथुरा के पेड़ा आए, जाने कहाँ भरमाए,
कूबरी पठाए, आए मथुरा के खुरचन॥

तत्पश्चात वियोग में डूबी गोपियों के सामने योग की बातें आरम्भ हो जाती हैं। गोपियां सोचती थीं कि मोहन के मित्र यहाँ आए हैं, पर वास्तविकता यह है कि कृष्ण की मित्र कूबरी के मित्र बनकर ऊधो व्रज में जा पहुँचे थे। यमक की छटा—

मोहन मीत पधारे इतैं, पर मीत के मीत के मीत ह्याँ पाए।
गोपिकानाथ के दूत कहाँ, अवधूत ह्याँ कूबरो कान्ह पठाए॥

अब गोपियों का बहुविध उलाहना (उराहनौ-उपालंभ) आरंभ हो जाता है। वियोग की कामाग्नि में दग्ध गोपियों को ऊधो योग करने की शिक्षा देते हैं। यद्यपि नाम से ऊधो सीधे (सूधो) प्रतीत होते हैं, पर बार बार योग का पत्थर मारते हैं। वे तन से काले सर्प की भांति चिकने हैं, जिसके डँसने से लहर भी नहीं आती। गृहकार्य छोड़कर गोपियां दौड़कर आयी थीं। पर उन्होंने रसनायक, रासनायक स्याम का दूत

नहीं पाया। उन्होंने पाया—'दृग फारि के हेरौं तो ह्यां सजनी, मनमोहन मीत के मीत पधारे।' गोपियों ने ऊधो को अभिधा में श्याम मित्र समझा था, पर वे लक्षणा और व्यंजना में गोपियों को भरमाने का प्रयास करने लगे। कृष्ण के भेजे पत्र (पाती) को गोपियां पढ़ती हैं, तब उनके हृदय में संयोग प्रेम की बाती (अग्नि) प्रज्वलित हो उठती है। उस पर ऊधो की बातें सुनकर हृदय काँपने लगता है। समस्या है--सौति के हाथ परे हरि हाथ की पाती दई हरियारी सुहाती।'

लोक-जीवन में शत्रुता, छलकपट, मुकदमेबाजी के संदर्भों में प्रचलित अनेक मुहावरों का भी कवि ने प्रयोग किया है यथा रूप दिखाना, पन्नी दिखाना, मुतफन्नी होना, छछन्नी होना, कावा काटना, कन्नी काटना, केंचुल फेंकना, फन्नी होना, कलेजा काढ़ना, रेजा काढ़ना, सुर्खाब का पर होना, खीस खराब करना, घनचक्कर होना, उड़ती खबर मिलना, कोटिन नाच नचाना, गाल बजाना, गोल माल करना, माख न लगना, घाव पर लोन धरना, हाथ साफ करना, प्राण के लाले पड़ना, रंग में भंग पड़ना इत्यादि।

विरह में साधारण सा संदर्भ आते हो संयोग को अनेक सुखद और प्रिय स्मृतियाँ ताजी हो उठती हैं। गोपी-कृष्ण प्रेम-क्रीड़ा और रासलीला के दिनों में ऊधो का पता नहीं था। तब के परस्पर प्रेम, आदान प्रदान और समर्पण के भाव को ऊधो क्या जानते हैं। वे तो वास्तव में अनाड़ी हैं। बिना समझे-बूझे केवल दुख देने चले आए हैं। कवि ने संयोग की सारी कथा को, स्मृतियों को, मनोमुग्धकारी ढंग से मर्मस्पर्शी शैली में प्रस्तुत किया है :

चेरी भई अपने नँदलाल की, भे नँदलाल हमारेऊ चेरे।
थे मिलते रन औ बन बीच में, सांझ-सबेरे अँधेरे-उजेरे।
भाँवरिया हमनैं हरि की भरीं, कान्ह ने कीन्यो हमारेई फेरे।
ऊधव जू तब आप कहाँ रहे, भे जब माधव जू धव मेरे।

गोपियों को सुन्दर चन्द्रमा, स्निग्ध चांदनी, शीतल वायु, मनोरम जमुना तट, मनोमुग्धकारी बांसुरी ध्वनि, रास रचना, कृष्ण द्वारा गोपियों की बाँह पकड़ना आदि की स्मृति बार बार ताजी हो जाती है। ग्रामीण परिवेश में कृषि और कृषक के संदर्भों में प्रेम की खेती का तत्संबंधी शब्दों के प्रयोग के साथ सुन्दर सांगरूपक देने का कवि ने प्रयास किया है। यह वास्तव में हिंदी कवियों में एक नई उद्भावना है :

खादि पोआरि के स्वारथ की, जरि खोदि कै फेंकी सबै नरुई।
हेत के खेत को जोत्यो बनाय कै, भूभूरि माटी करी करुई।
सींचि सनेह सों लायो हितै, अँखुवायो जमायो सबै बिरई।
ऊधव जू न उबारौ, तौ नेकु दया कै उखारौ नहीं जरई।

भावावेग में कवि ने भारतीय रस और शिष्ट परंपरा के विरुद्ध श्मशान और चिता का रूपक भी खड़ा कर दिया है। ऊधव की बातें सुनकर शरीर वियोग की अग्नि में जलने लगता है यथा 'दहकै ज्यों चिता तन धू धू भयावन', क्योंकि मंत्र जगाने के लिए ऊधव को श्मशान की आवश्यकता है, यथा—

आए इतै तुम ऊधव जू गुनि के, गनि कै जनु मंत्र जगावन।

प्रेम प्रसंगों में मरण दशा या श्मशान का वर्णन प्रायः सुरुचिपूर्ण नहीं माना जाता। फारसी उर्दू कविता में तो आशिक प्रायः मरा करता है और कभी कभी अनेक विधि-विधान से शहीद भी होता है। अपना हृदय चाक करता है और कभी कभी तो उसकी लाश माशूक के दरवाजे पहुँचा दी जाती है। मृत्यु की अनेक लीलाएं उर्दू शायरी में भरी पड़ी हैं, यहां तक कि पाठकों को ऊब कर कहना पड़ा—मरते हजारों को देखा, जनाजा किसी का न देखा।' जनाजा भी दिखाई पड़ जाए तो बात सामान्य ही है। कितनों का दिल तो विरह में कबाब भी बन जाता है, तब उसमें से बदबू भी आने लगती है। ऐसी स्थिति में श्रृंगार रस के साधारणीकरण के स्थान पर किसी और रस का साधारणीकरण होता है।

कवि ने विरह काव्य की परंपरा के अनुसार षट्ऋतु वर्णन भी किया है—'ग्रीषम भीषम लौं इत ऊधव, आए वियोग की धूरि उड़ावन'। हास परिहास में गोपियां ऊधव को अपना देवर बताती हैं, किन्तु सीता-लक्ष्मण की परंपरा से भिन्न ब्रजमंडल का संबंध स्थापित करते हुए कहती हैं कि कभी कृष्ण ने चीर-हरण कर उन्हें दिगंबर बनाया था, अब योग का उपदेश देकर क्या देवर भी उन्हें दिगंबर बनाना चाहते हैं। यह कवि की नई उद्‌भावना है, जो पीड़ा या वेदना की मानसिक स्थिति में भी उल्लास का सृजन करती है। 'देखन चाहत अंबर-हीन, पराई रसीली कसीली तिया।' कभी ऊधो के माध्यम से अपनी तुलना कुब्जा से करते हुए गोपियां मन की पीड़ा व्यक्त करती हैं और कहती हैं—'आपुनो तो लई मृगनैनी मधुपूर बारी, मधुपुर वारी हमें भेजी मृगछाल है।'

गोपियों की भावुकता और उनके प्रेमपूर्ण उद्‌गार का वर्णन कवि किशोरी लाल गुप्त और जगन्नाथदास 'रत्नाकर' दोनों ने अपने अपने ढंग से किया है। यहाँ एक एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है—

कछु आवै मनै नहिं भावै कछू, कछू खावैं न पीवैं पड़ी हैं बेहाल।
'घनश्याम कहाँ' 'घनश्याम कहाँ', लखिकै घनश्याम कहैं हम बाल।
किमि ऊधो जू मोही निमोही भए, सुधि भूल गए हमरी नँदलाल।
तजि क्यों अलबेली नवेली कली, मधुलोभी अली पर्यो कंटक जाल।

—किशोरीलाल गुप्त

भेजे मनभावन कै ऊधव के आवन की,
सुधि व्रजगाँवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि,
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं।
उझकि-उझकि पदकंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ हैं कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।

--रत्नाकर

उलाहना सुनते सुनते ऊधो का ब्रह्मज्ञान (सोऽहम्) लुप्त हो जाता है और कृष्ण तथा मथुरा यात्रा की वापसी की सुधि आती है। सागर में कभी ज्वार उठता है, तो कभी उतार पर भाटा आता है। ऊधो ज्वार की भाँति ब्रज में पधारे थे और गोपियों के उपालंभ का धक्का खाकर भाटा की भाँति वापस लौट रहे हैं। लौटते समय रत्नाकर की गोपियों ने ऊधो को उपहार-स्वरूप बहुत कुछ दिया था, मानों उन्हें विरह में होश हवास था या प्रेम के कारण वे एक बार सक्रिय हो गई थीं। गुप्त जी की गोपियाँ अंत तक उन्माद से पूर्व की दशा का अनुभव करती हैं और केवल 'राम राम' कहकर उन्हें विदा करना श्रेयस्कर समझती हैं। यह कुछ अधिक स्वाभाविक सा लगता हैं। तुलना के लिए दोनों उदाहरण देना उपयोगी प्रतीत होता है :

धाईं जित-तित तैं बिदाई हेत ऊधव की,
गोपी भरीं आरति, सँभारति न साँसु री।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए,
कोऊ गुंज अंजली, उमाहैं प्रेम-आँसु री।
भाव-भरो कोऊ लिए रुचिर सजाव दहो,
कोऊ मही मंजु, दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद, जसुमति नवनीत दयौ,
कीरति-कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी।

—रत्नाकर

पूरब की बात चलें सरस सरीर होत,
मन बतरस पाइ उठत चहकि-चहकि।
अंकुरित होत मनजात, सिहरात गात,
अरु सिथिलात मन जात है बहकि-बहकि।

हरिहर सुमिरत अतन सतन होत,
सुतनु सताइ ताइ जात हैं दहकि-दहकि ।
लीजिए हमारी घरैं जीत ऊधो 'राम राम',
हाय राम बुझी आगि उठति लहकि-लहकि । १००

—किशोरी लाल गुप्त

अनेक आधुनिक वादों और प्रवृत्तियों के आलोक में आधुनिक कविता के दौर में गुप्त जी ने प्राचीन काव्यकला और उसी कथ्य और शैली में जीवन के एक मार्मिक पक्ष को प्रस्तुत किया है । और वह भी व्रज भाषा में । भाषा की दृष्टि से व्रज हो या खड़ी बोली या अवधी, कहीं कोई अन्तर नहीं है । प्रश्न है व्यापक समाज में स्वीकृति मात्र का । काव्यशक्ति या संप्रेषणीयता तो सबमें समान रूप से विद्यमान है । यह भाषा कविता के लिए अनुकूल है और वह नहीं, ऐसा कहना कोई औचित्य नहीं रखता । श्रेष्ठ छन्द-रचना कवि की प्रतिभा और उसके परिश्रम का फल हुआ करती है । कभी-कभी अभिरुचि का भी । चन्द और तुलसी ने सभी छन्दों को आजमाया और सूर ने केवल पद को । आधुनिक युग में निराला ने सभी छन्द शैलियों पर हाथ आजमाया और बड़ी सफलता के साथ । 'उराहनौ' कबित्त और सवैया में लिखा गया पुरानी शैली का एक विरह काव्य है, जो जीवन की विविध भावभूमियों को बड़ी तन्मयता से स्पर्श करता है और विरह की अनेक भाव-दशाओं को अभिव्यक्त करता है । रीतिकालीन कवियों को छोड़ दीजिए; सूर और रत्नाकर को रचनाओं के होते हुए भी, हिन्दी की पुरानी शैली की कविता में इसका स्थान सुरक्षित है ।

संस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने काव्य की तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं—१. उत्तम २. मध्यम ३. अवम । आचार्य शुक्ल ने केवल दो—१. आनन्द की सिद्धावस्था का काव्य, २, आनन्द की साधनावस्था का काव्य । जनता की आशा और विश्वास, सौन्दर्य और शक्ति की मनोभूमि पर प्रतिष्ठित करने वाले सूरसागर को भी आचार्य शुक्ल ने मानस से भिन्न आनन्द की सिद्धावस्था का काव्य बताया है, तब 'उद्धवशतक' और 'उराहनौ' का स्थान अपने आप निर्धारित हो जाता है ।

सूर सागर में कथावस्तु कृष्ण कथा है, पर अन्तर्वस्तु हिन्दू समाज का पुनर्गठन, जागरण, श्रमजीवियों का महत्व प्रतिपादन एवं उनका संघर्षशील संगठन, उपासना और कर्मकाण्ड के स्थान पर लोकोपयोगी भक्तिभावना की धारा की स्थापना, मानवता की भावना का निरूपण, शुद्ध प्रेम (सामाजिक) का प्रतिपादन, सौन्दर्य का निरूपण, निर्गुण और इस्लाम के एकेश्वरवाद का खण्डन, भारतीयता की रक्षा, निराश सामाजिक जीवन में नई आशा का संचार, नयी स्वतंत्रता, छुआछूत उन्मूलन, सामाजिक शक्ति की स्थापना, लोक जागरण आदि से सम्बन्ध रखतो है । इस पुस्तक (उराहनौ)

में काव्यवस्तु कृष्णकथा है और आलंबन कृष्ण। आचार्य शुक्ल ने आलंबन की दो कोटियाँ निर्धारित की हैं—(१) सामान्य, (२) विशेष। 'जो सामान्य आलंबन होगा उसके प्रति मनुष्य मात्र का—कम से कम सहृदय मात्र का वही भाव होगा, जो आश्रय का है। जो विशेष आलंबन होगा उसके प्रति श्रोता या दर्शक स्वभावतः उसी भाव का अनुभव न करेगा, जिसे व्यंजित करता हुआ आश्रय दिखाया गया है।'

—रस मीमांसा, पृ० १६५।

इस कसौटी पर हम कह सकते हैं कि 'उराहनो' पुस्तक को आश्रय गोपियों का व्यंजित भाव सामान्य नहीं हो सका है, वह विशेष ही रह गया है। उसमें साधारणीकरण की वह क्षमता नहीं आ सकी है, जो नागमती के विरह, सूर की गोपियों के विरह या सीता को बन बन में खोजते राम के विरह में परिलक्षित होती है, किन्तु विशेष आलंबन और आश्रय के तत्सम्बन्धी मनोभावों की अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से विरह शृंगार रस का यह काव्य रत्नाकर की परम्परा को आगे बढ़ाता है और हिन्दी की आधुनिक कविता के दौर का 'क्लेसिक' बनता है।

—डी ५२।३६, लक्ष्मीकुंड, वाराणसी

१५. अमरुक शतक और घटखर्पर काव्य के पद्यानुवाद

[श्री राम रक्षा त्रिपाठी]

शृङ्गार को रसराज कहते हुए आत्मानुभूति के आधार पर मनीषियों ने अन्तः करण को ही साक्षी माना है। जैसे भिन्न-भिन्न दर्शनों के आधार पर प्रतिपाद्य लक्ष्य सभी महान हैं, सभी से ज्ञान का साक्षात्कार होता है, तथापि वेदान्त दर्शन सभी दर्शनों में मूर्धन्य माना जाता है; उसी प्रकार रसों की भी स्थिति समझनी चाहिये। सभी रसों का सीधा अनुभव आत्मा से ही होता है और सभी अन्तःकरण को आह्लादित करते हैं। यहाँ तक कि करुण रस भी, तथापि शृङ्गाररस की बात ही और है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' को कहते हुए आचार्य विश्वनाथ ने समस्त रसमयी वाणी को ही जहाँ काव्य कह दिया, वहीं यह सिद्ध हो गया कि काव्य-मात्र रस-प्रवाही होता है।

सृष्टि के अनन्तर अद्यावधि निरन्तर उद्घोषित होते हुए भी संस्कृत वाङ्मय के काव्यों की कोई तुलना नहीं है, चाहे वे गद्य काव्य हों अथवा पद्य काव्य हों या चम्पू काव्य हों या फिर नाटक। विश्व के लोग आज भी प्राचीन तथा नवीन संस्कृत काव्यों को उतनी ही श्रद्धा तथा आह्लादपूर्ण दृष्टि से देखते आ रहे हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त अन्य पाली, प्राकृत, मागधी आदि प्राचीन तथा अद्यतनीन प्रान्तीय भाषाओं के काव्य भावपूर्णता में तदनुरूप होते हुए भी प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों में संस्कृत के साथ साम्य नहीं स्थापित कर पाते हैं ।

किन्तु व्रज-भाषा की तो बात ही और है। व्रज भाषा में मानों भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अवतार के साथ देववाणी के प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों को भी स्वर्ग से लाकर घोल दिया हो । तभी तो संस्कृत के काव्यों की भाँति व्रजभाषा भी श्रवण मात्र से ही अन्तःकरण को गोपाल की वंशी की टेर की तरह स्पन्दित करने लगती है ।

आदरणीय डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त ने संस्कृत वाङ्मय के मनोहारी 'अमरुक शतक' तथा घटखर्पर जैसे शृंगार रस के काव्यों के लिये व्रजभाषा का चयन करके इस मर्म को झलकाया है कि संस्कृत यदि देववाणी सरस्वती है, तो व्रज भाषा भी वृषभानु नन्दिनी राधा है ।

अमरुक शतक संस्कृत का अत्यन्त प्रसिद्ध शृंगारी मुक्तक काव्य है । इसके एक एक मुक्तक को 'प्रबंध शतायते' कहा गया है । यह सौ से कुछ अधिक मुक्तकों का संग्रह है—यह काव्य कुसुमस्तवक है । डा० गुप्त ने पहले मूल श्लोक दिया है, तदनन्तर उसका खड़ी बोली में गद्यानुवाद । यह गद्यानुवाद इनके मित्र श्री विजयशंकर मिश्र का किया हुआ है । गद्यानुवाद के उपरांत व्रजी में अत्यन्त सरस पद्यानुवाद है । इसमें व्रजभाषा के परम प्रसिद्ध छन्द कवित्त-सवैया ही प्रयुक्त हुए हैं। अनुवादक ने मूल छन्दों के भावों की पूर्ण रक्षा की है । यह उसके अनुवाद की सफलता का सूचक है । उदाहरण के लिए एक मुक्तक का अनुवाद आगे प्रस्तुत है—

तन्वी शरस्त्रिपथगा पुलिने कपोलौ
लोले दृशौ रूचिरचञ्चलखञ्जरीटौ
तद्बन्धनाय सुचिरार्पित सुभ्रुचाव-
चाण्डालपाशयुगलाविवशून्य कर्णौ ।

तन्वी शरत्काल की गंगा है, उसके दोनों कपोल दो किनारे हैं, चंचल नेत्र सुन्दर चंचल खंजरीट हैं, उनके बाँधने के लिए बहुत दिनों से अर्पित सुन्दर भौंह रूपी चाप वाले चांडाल के दो फंदों की तरह दोनों खाली कान हैं ।

तरुनी शरदर्तु की देवधुनी, जुग लोल कपोल लसे हैं किनारे ।
अंजन रंजित लोचन लोल हैं, खंजन द्वै मनरंजन भारे ।
बेधन कौं धनु तानत भौंह को, पापी अनंग बहेलिया हा रे ।
बाँधन कौं इनकौं हनिकै, लखौ कान के पास है पास पसारे ।

अमरुकशतक के अनुवाद का यह कार्य सात सितम्बर ५९ को प्रारम्भ हुआ था । यह १४ नवम्बर ५९ को २ माह ८ दिन में पूर्ण हुआ । १९६० में वसंत के अवसर पर

आयोज़ित 'हरिऔध प्रभा' की एक गोष्ठी इसके निमित्त हुई थी। वैसे जितने छन्दों का अनुवाद होता जाता था, वे प्रतिदिन हरिऔध कला भवन आजमगढ़ के महामंत्री के यहाँ नित्य होनेवाली सायं गोष्ठी में पढ़े जाते थे।

घटखर्तर काव्य मुक्त प्रबन्ध है। इसके पीछे एक कथा लगी हुई है। इसमें कुल २२ श्लोक हैं। इसमें एक वर्षा विरहिणी की विरह कथा है। इस काव्य की विशेषता है कि यह तुकांत काव्य है। हर श्लोक में दो दो तुक हैं। कुल ४४ तुक। इन तुकों में यमक का चमत्कार भी है। उदाहरण के लिए एक श्लोक लें—

तरुवर विनतास्मि ते सदाहं
हृदयं मे प्रकरोषि किं सदाहम्
तव कुसुमनिरीक्षणं पदेऽहं
विसृजेयं सहसैव नीप देहम् १८

प्रथम दो चरणों का यमक है—'सदाहं' और दूसरे दो चरणों का 'देहं।' इन यमकों का हिन्दी अनुवाद संभव नहीं। इस सम्बन्ध में डा० गुप्त भूमिका में स्वयं लिखते हैं—

"कवि ने जिन यमकों के लिए यह काव्य रचा था, वे हिन्दी पद्य या गद्य में कदापि नहीं अनूदित किये जा सकते। हिन्दी अनुवाद में यह चमत्कार सुरक्षित रखना संभव नहीं, पर उसकी सरसता की रक्षा की जा सकती हैं।................मैंने बाईसों सवैयों में एक ही तुक का निर्वाह किया है। यह प्रतिबन्ध अपने ऊपर लगाकर मैंने यमकवाले चमत्कार के अभाव की किंचित पूर्ति करनी चाही है।"

इन श्लोकों का गद्यानुवाद आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने किया है। गुप्त जी ने इनका खड़ी बोली, व्रजी और अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इन सभी अनुवादों के रस अलग-अलग हैं। उदाहरणार्थ ऊपर उद्धृत अठारहवें श्लोक के अनुवाद आगे प्रस्तुत हैं—

(क) गद्यानुवाद :

अरे कदम, मैं तो तुझे यों ही हाथ जोड़ती रहती हूँ, फिर भी तू मेरा हृदय क्यों जलाये डाल रहा है। (नहीं मानेगा तो) मैं यहीं पर तेरे फूल पर दृष्टि जमाये ही अपने प्राण दे डालूंगी।

(ख) खड़ी बोली अनुवाद :

नीप सदैव विनत तुमसे हूँ,
फिर भी दाह देह क्यों देते ?
देख तुम्हारे कुसुमों को मैं
सहसा देह त्याग दूँगी यह

जहाँ खड़ी हूँ वहीं तुरत ही।
(नारी वध का पाप लगेगा
क्या न तुम्हें तब ?)

(ग) ब्रजभाषा अनुवाद :

एहो कदंब, सदा तुभसे नत, तौहू जरावत काहे हिया रे
(दाहत हौ नितई हमकौं, निदई तुमसों न, दिखाउ दया रे)
देखि तिहारे प्रसूनन कौं, तजिहौं यह देह तुरन्त यहाँ रे
(तो सिर धाइ के जाइ चढ़ैगो, वधू-वध पाप अमाप महा रे,

(घ) अंग्रेजी अनुवाद :

O Nip tree, I am always humble to thee,
How is it that even then thou burnst my heart ?
(If thon dost not forsake this habit of thine)
I shall abandon this body (and die) here and now
While looking at thy flowers.

डा० गुप्त ने यह अनुवाद चार दिनों—२३ से २६ अप्रैल १९७७ तक—में दुबारा पूरा किया था। पहले उन्होंने यह अनुवाद तीन ही दिनों में किया था—४, ७, ८ फरवरी ७७ को। ९ अप्रैल को उक्त अनुवाद बम्बई में ट्रेन में चोरी चला गया। पर डॉ० गुप्त हताश नहीं हुए। उन्होंने इसका अनुवाद पुनः किया।

यह अनुवाद कैसा हुआ है, इसका निर्णय काव्य रसिक पाठक स्वयं करें। मैंने 'स्थाली पुलाक न्याय' के निमित्त दोनों काव्यों के एक-एक अनुवाद प्रस्तुत कर दिये हैं। मुझे तो ये बहुत अच्छे लगे, आपको भी अच्छे लगेंगे, ऐसा विश्वास है।

—केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी।

१६. कामायनी का अंग्रेजी रूपांतर

[**मंगला प्रसाद सिंह** एम० ए०]

भारत वर्ष के साहित्याकाश को प्रकाशित करने वाले अनेक कवि एवं समालोचक हुए हैं। इनमें एक ऐसा नक्षत्र भी है, जो कवि के रूप में, गद्य लेखक के रूप में हिन्दी साहित्य की सेवा करता रहा है। इस पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी। वह नक्षत्र हैं—डा० किशोरी लाल गुप्त, यह हिन्दी के विद्वान, अंग्रेजी के मर्मज्ञ और संस्कृत के रसज्ञ समझदार हैं।

डा० गुप्त ने महाकवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी का अंग्रेजी में रूपांतरण किया है। यह रूपान्तरण मूल ग्रन्थ की उत्कृष्टता को बराबर बनाये रखने में सक्षम रहा है। महाकवि प्रसाद कामायनी के अध्येताओं के लिए जहाँ अस्पष्ट, दुरूह और कल्पनातीत लगते हैं, वहाँ डा० किशोरी लाल गुप्त की लेखनी उन्हें सहजता और सरलता से स्पष्ट कर देती है। एक विदेशी भाषा के माध्यम से डा० गुप्त महाकवि प्रसाद को विश्व के मानस-पटल पर अंकित कर सकने में सक्षम हैं। प्रसाद हिन्दी और हिन्दुस्तान के सीमित क्षेत्र से उभरकर विश्व के कवि एवं मानवता के सच्चे संवाद-वाहक के रूप में दृष्टिगत होने लगते है। महाकवि जयशंकर प्रसाद की वाणी मानवता के विद्युत की प्रवाहिका का तार है, तो डा० गुप्त की लेखनी उसे मुखरित करने में विद्युत के बल्ब की भाँति प्रकाश की धार का काम करती है। प्रसाद जी ने हिन्दी-भाषियों के लिए मानवता का जो संदेश दिया, उसको डा० गुप्त ने अंग्रेजी के माध्यम से सारे विश्व तक पहुँचाना चाहा है।

किशोरी लाल जी जब विद्यार्थी ही थे, इन्हें प्रसाद साहित्य में अभिरुचि हो गई थी। इन्होंने १९३९-४० में प्रसाद की लगभग सत्तर कविताओं का अंग्रेजी रूपांतर किया था। उस समय यह हिन्दू विश्व विद्यालय में बी० ए० के छात्र थे। इन अनुवादों में से हस्तलिखित 'हिंदी' के प्रसाद अंक (जनवरी १९४०) में पाँच रूपांतरण प्रकाशित हुए थे। अब ये हो शेष रह गए हैं।

गुप्त जी उसी समय से प्रसाद साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान प्रो० पं० पद्मनारायण जी आचार्य के संपर्क में आ गए थे और आचार्य जी ने इनकी प्रतिभा को पहचान लिया था। वे बराबर इन्हें कामायनी का अंग्रेजी रूपान्तर करने के लिए प्रेरित करते रहे। अंततः गुप्त जी ने जून १९४९ में यह रूपांतरण आरम्भ किया और हरिऔध जयंती के अवसर पर वैशाख की अक्षय तृतीया को १० माह के अनंतर इसे अप्रैल १९५० में पूर्ण किया। यह अनुवाद आजमगढ़ में पूरा हुआ, जब गुप्त जी शिबली कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने इसकी तीन प्रतियाँ टंकित कराई थीं। उन्होंने दो प्रतियाँ अवलोकनार्थ प्रोफेसर आचार्य को दे दी थीं। उनके यहाँ से एक टंकित प्रति बिहार के कोई विद्वान ले गए और एक प्रति हिन्दू विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर बी० एल० सहानी ले गए। सहानी जी अंग्रेजी कविता के पंडित थे और स्वयं भी अंग्रेजी में कविता करते थे। बाद में उन्होंने भी कामायनी का अनुवाद किया। यह तुकांत पद्य में है और प्रकाशित हो चुका है। डा० गुप्त का रूपांतर अप्रकाशित है और मुक्त छंद में है, अतुकांत है।

जिन लोगों ने गुप्त जी के इस रूपांतरण को देखा है, उनका कहना है कि कामायनी को मूल रूप में वे नहीं समझ सके थे, इस अंग्रेजी रूपांतरण से वे उसे सरलता पूर्वक समझ सके हैं।

आगे कामायनी के कुछ अंश अनुवाद के साथ प्रस्तुत हैं। इससे उक्त विद्वानों की बात प्रमाणित होती है—

(क) आदि--चिंता सर्ग के प्रथम तीन छन्द—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छांह
एक पुरुष भींगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह

On a high peak of the Himalayas,
Sitting under the cool shade of a mighty rock.
With his eyes wet, some one
Witnessed the receding deluge.

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन
एक तत्व को ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन

Below was water, above the snow,
One was fluid, the other solid.
Only one element predominates,
Call it inert or animate.

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम,
स्तब्ध उसीके हृदय समान
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान

Unbroken snow stretched far and wide,
Quite quiet like his own heart,
The wind dashed against the foot of rocks
That stood silent and still.

(ख) मध्य--पंचम सर्ग वासना का प्रथम छंद—

चल पड़े कब से हृदय दो, पथिक से अश्रांत
यहाँ मिलने के लिए, जो भटकते थे भ्रांत
एक गृहपति, दूसरा था अतिथि विगत विकार
प्रश्न था यदि एक, तो उत्तर द्वितीय उदार

God knows since when two untired hearts,
Which wandered bewildered hither and thither,
Started their journey to meet here like pcdestrians two
One was the host; the other guest calm.
One was the question; the other, answer fine.

(ग) अंत--अंतिम सर्ग आनंद का अंतिम छंद—

समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था

Animate or inamimate
All were absorbed in ecstacy
Sbapeless beauty had taken farms.
One spirit pervaded all through,
Pleasance was unbroken and intense.

एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण करते तमय मूल के सौंदर्य की रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रकृत के विकृत हो जाने की आशंका बराबर बनी रहती है। इसीलिए कामायनी का यह रूपांतर कर लेने के बाद डा० गुप्त ने लिखा—

ओ पाटल प्रसून, पंखड़ियाँ–
तेरी छूकर बिखराया
हुआ मलिन सौन्दर्य, न क्या–
सौरभ समीर को छू पाया

इस रूपांतरण को देखकर हमें कहना पड़ता है कि मूल का सौंदर्य मलिन नहीं होने पाया है। डा० गुप्त की यह महिमामयो कृति मेरठ के एक प्रकाशक के पास वर्षों से पड़ी हुई है। देखें यह अंधकार से प्रकाश में कब आ पाती है।

९/४ लैबर कालोनी
नाटी इमली, वाराणसी

१७. टीकाकार डा० किशोरी लाल गुप्त

[केशवनाथ त्रिपाठी, शिमला]

बहुत प्राचीन काल से काव्य दो प्रकार का होता आया है। एक तो सरल और सहज ही बोधगम्य; दूसरा किंचित गूढ़ और देर में समझ में आने वाला या समझ में न आने वाला। गूढ़ छंद अपेक्षाकृत कम होते हैं। इनका भी अपना आनंद होता है। यह आनंद नारियल के रस सा होता है, जो कठोर नारियल के फोड़ने के पश्चात प्राप्त होता है। ऐसे गूढ़ अंशों की लोग बराबर टीका करते आए हैं। संस्कृत में दो टीकाकारों के नाम परम प्रसिद्ध हैं। पहला नाम सायण का हैं, जिन्होंने वेद की ऋचाओं की टीका करके उसे पढ़ने तथा समझने लायक बना दिया है। दूसरा नाम मल्लिनाथ का है, जिन्होंने अपनी टीकाओं से महाकवि कालिदास के काव्य को प्रोज्वल बना दिया है।

हिन्दी में विशेष कर तीन पुराने कवियों की रचनाओं पर टीकाएँ लिखी गई हैं। सर्वाधिक टीकाएँ गोसाइँ तुलसीदास कृत रामचरित मानस पर लिखी गई हैं। रामचरित मानस के व्यास एक प्रकार से उसके मौखिक टीकाकार ही हैं। साहित्यिक ग्रंथों में सबसे अधिक टीकाएँ विहारी सतसई पर हुई हैं। केशव पुराने कवियों में सबसे गूढ़ समझे जाते रहे हैं। वे 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जाते थे और उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था—

कवि को दीन न चहै बिदाई
पूछै केशव की कबिताई

इनके काव्यों पर भी पुराने युग से टीका ग्रंथ लिखे जाते रहे। पर केशव को बोधगम्य बनाने में आधुनिक युग में सर्वाधिक श्रम लाला भगवानदीन ने किया। उन्होंने रामचन्द्रिका की केशव-कौमुदी नाम से टीका दो भागों में की और केशव-काव्य को प्रेतत्व से मुक्त किया। उन्होंने कवि प्रिया की भी टीका की थी।

आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लाला भगवान दीन के शिष्य थे। इन्होंने केशव की रसिक प्रिया की टीका की है, साथ ही रामचरित मानस की साहित्यिक टीका भी। वे सूर सागर की भी टीका कर रहे थे, पर यह टीका अधूरी रह गई।

डा० किशोरी लाल गुप्त आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शिष्य हैं। इन्होंने निम्नांकित नौ दस ग्रंथों की टीकाएं की हैं।

१. प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ	जुलाई १९५०
२. कबीर दोहावली की टीका	१९५०-५१
३. सुन्दर विलास	दिसम्बर १९६१
४. सरोज के गूढ़ छंदों की टीका	जुलाई १९६३
५. लखमसेन पद्मावती कथा	अक्टूबर १९६६
६. प्राकृत पैंगलम	१९६९
७. श्रृंगार शतक	जनवरी १९७१
८. विरह शतक	,, ,,
९. सुजान शतक	जून १९७२
१०. अटक पचीसी	नवम्बर १९७४

प्रथम तीन टीकाएँ आजमगढ़-काल की हैं, शेष जमानियाँ-काल की ।

१. प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ

यद्यपि डा० गुप्त पुराने काव्य में विशेष रस लेनेवाले हैं, पर उनके साहित्यिक जीवन के उषःकाल में उन पर प्रसाद जी का पूर्ण प्रभाव पड़ा था, जो अब तक बराबर बना रहा, जब तक उनका प्रवेश मध्यकालीन एवं रातिकालीन काव्य में १९५० के अनंतर नहीं हो गया । गुप्त जी ने १९४९-५० में कामायनी का अंग्रेजी अनुवाद किया और जुलाई १९५० में उन्होंने उनकी दो दर्जन चतुर्दशपदियों का संकलन किया और उनपर टीकाएँ भी लिखीं। छायावादी काव्य अपने उत्थान काल तक गूढ़ समझा जाता रहा था और प्रारंभ में लोग उसका उपहास यह कहकर किया करते थे कि छायावादी काव्य वह है जिसका कोई अर्थ न हो, जिसमें अर्थ की केवल छाया ही छाया हो । गुप्त जी का कथन है कि प्रसाद जी का काव्य प्रथम वाचन में अत्यंत मधुर लगता है, पर अर्थ करते समय उसकी गूढ़ता का आभास होता है । अध्यापक लोग प्रसाद के नाटक पढ़ाते समय पद्य-भाग को छोड़ देते थे । अजात शत्रु एवं स्कंद गुप्त में प्रसाद की कुछ अत्यन्त प्रौढ़ एवं सरस चतुर्दशपदियाँ हैं । इन नारियल के भीतर के रस का पान करने के लिए और यह सिद्ध करने के लिए कि छायावादी काव्य का भी अर्थ किया जा सकता है, डा० गुप्त ने प्रसाद की चतुर्दशपदियों की टीका की ।

२. कबीर दोहावली

श्रीमती कुमुद लता सिंह, रीजनल गर्ल्स स्कूलों की निरीक्षिका, १९४८-५० में डा० गुप्त की बी० ए० में छात्रा थीं । उन्होंने १९५०-५२ में इनसे एम० ए० की तयारी में भी सहायता ली । डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित कबीर ग्रन्थावली का साखी भाग उस समय एम० ए० के पाठ्य-क्रम में था । डा० गुप्त हर रविवार को श्रीमती सिंह के यहाँ जाते थे और दो घंटे तक उन्हें पढ़ाते थे । इसी क्रम में कबीर को

गूढ समझ कर श्रीमती सिंह की इच्छा से इन दोहों का अर्थ बोलकर लिखा दिया था। इसका लाभ उसी समय एकाध और छात्रा ने उठाया था। अस्तु यह टीका स्व-प्रेरित नहीं थी, छात्र-प्रेरित थी।

३. सुन्दर विलास

१९६० के आस-पास दादू के शिष्य छोटे सुन्दरदास का सुन्दर विलास नामक ग्रन्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय में बी० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम में था। वाराणसी के कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ने इस ग्रंथ की टीका लिखाकर इसका एक छात्रोपयोगी संस्करण प्रस्तुत करने को योजना बनाई। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र श्री चन्द्रशेखर जी की प्रेरणा से उन्होंने टीका लिखने का अनुरोध डाक्टर गुप्त से किया। अपनी रुचि के अनुकूल पाकर डा० गुप्त ने इसकी टीका एक माह के अंतर्गत दिसम्बर १९६१ की अष्टग्रही के विकट शीतकाल में पूर्ण कर दी। टीका एक युग (१२ वर्ष) के बाद १९७३ ई० में प्रकाशित हुई।

४. सरोज के गूढ़ छन्द

डा० गुप्त ने शिवसिंह सरोज का संपादन (१९५७-५८) में किया और इसपर सरोज सर्वेक्षण (१९५५-५७) नामक शोध ग्रन्थ भी लिखा। इसी सिलसिले में उन्होंने १९४९-६३ में शिवसिंह सरोज एक अध्ययन का प्रणयन किया। इस ग्रंथ का एक बड़ा खंड है सरोज के गूढ छन्द। इसके निम्नलिखित उपखंड हैं—

१. कूट छंद	३२
२. यमक अलंकार सम्बन्धी गूढ छंद	१७
३. चार श्लिष्ट कवित्त	४
४. नव रूपकातिशयोक्तियाँ	९
५. सूक्ष्म अलंकार सम्बन्धी छंद	५
६. मुद्रालंकार सम्बन्धी छंद	७
७. प्रश्नोत्तर चित्र सम्बन्धी छंद	५

ये सभी अश जुलाई १९६३ में लिखे गए थे। इस ग्रन्थ को एक लघु पुस्तिका ही समझना चाहिए।

५. लखमसेन पदमावती कहा

दामोकृत 'लखमसेन पदमावती कहा' 'का उल्लेख आचार्य शुक्ल के इतिहास में भी हुआ है। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने इस ग्रंथ को अगरचंद नाहटा से प्राप्तकर ज्यों का त्यों परिमल प्रकाशन प्रयाग से १९५९ में प्रकाशित करा दिया। उन्होंने उसकी एक प्रति डा०गुप्त को भी उपहार में दी। पर पोथी अगम्य एवं अबोधगम्य बनी रही। इसकी भाषा

राजस्थानी है, जिसपर प्राकृत एवं अपभ्रंश का भी किंचित प्रभाव है। साथ ही ग्रंथ असंपादित भी था। डा० गुप्त ने इसकी टीका तो की ही, इसका संपादन भी किया। यह कार्य अक्तूबर १९६६ में संपन्न हुआ। ग्रंथ अप्रकाशित है।

६. प्राकृत पैंगलम

डा० भोलाशंकर व्यास ने 'प्राकृत पैंगलम' का संपादन एवं टीका करके १९५९ में प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी वाराणसी से प्रकाशन कराया। ग्रंथ दो बड़ी जिल्दों में है। एक में मूलग्रंथ है, जो सटीक है। इसमें कई पुरानी टीकाएँ भी परिशिष्ट में दे दी गई हैं। दूसरे भाग में इसका भाषा-वैज्ञानिक एवं छंद : शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें इसका साहित्यिक अध्ययन नहीं किया गया है। इसी साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से डा० गुप्त ने प्राकृत पैंगलम पर १९६९ में कार्य किया और अनेक बातों में डा० व्यास से अपना मत-भेद प्रकट किया। उन्होंने इसी सिलसिले में प्राकृत पैंगलम में उदाहृत छंदों का वर्गीकरण करके अपनी टीका भी दी। बाद में डा० गुप्त ने यह सिद्ध किया कि यह कोई संकलन ग्रंथ नहीं है। इसकी रचना महाकवि विद्यापति के गुरु हरिहर मिश्र हरिवंभ ने सं० १४२० के आसपास की थी। यह अवहट्ट में है। अतः इसका सरल सुबोध अर्थ आवश्यक था। इसका एक उद्देश्य इसे लघुरूप में उपस्थित करना भी था। डा० व्यास का संस्करण भारी भरकम है।

७-८. शृंगार शतक और विरह शतक

१९६० ई० के आस पास कन्हैयालाल माणिकलाल हिंदी एवं भाषा विज्ञान विद्यापीठ ने 'ग्रंथ वीथिका' भाग एक का प्रकाशन किया। इसमें अगर चंद नाहटा द्वारा प्रस्तुत 'विरह शतं' और 'शृंगार शतक' नामक दो दोहा ग्रंथ भी संकलित हैं। उस समय तक इनके रचयिता कवियों के नामों का पता नहीं था। हिंदी ग्रंथ वीथिका भाग २, १९६२ ई० में इनके नाम का पता चला।

शृंगार शतक शेख शाह मुहम्मद का है और विरह शतक उसकी प्रेयसी चंपा का। दोनों ग्रंथ अनगढ़ पत्थर के समान थे। डा० गुप्त ने गढ़कर इन्हें भव्य मूर्ति के रूप में बदल दिया। ये दोनों ग्रंथ हुमायूँ से पहले के हैं और अत्यंत भव्य-भाव-रस से संपूरित हैं। डा० गुप्त ने इसका संपादन तो किया ही, इनकी सरस टीका भी कर दी। यह टीका कार्य जनवरी १९७१ में हुआ।

९. सुजान शतक

सं० १९२७ में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने घनानंद के ११४ कबित्त सवैये एकत्र कर एक संकलन 'सुजान शतक' नाम से किया था। यह घनानंद का प्रथम स्वतंत्र मुद्रित ग्रंथ था, जो प्रायः १०० वर्षों से अनुपलब्ध था। डा० गुप्त ने जून १९७२ में इस ग्रंथ का संपादन

कर दिया और इस पर ललित गद्य में टीका लिख दी, जो गद्य काव्य का आनंद देती है। यह ग्रंथ मधु प्रकाशन इलाहाबाद से दिसंबर १९७७ में प्रकाशित हुआ।

१०. अटक पचीसी

यह २५ यमक पूर्ण दोहों की देवीदास कृत लघु रचना है। दोहों के द्वितीय एवं चतुर्थ चरण एक ही हैं। उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। ये सभी दोहे शृंगार-परक हैं। इसमें नायिकाओं के सरस चित्र हैं। ये यमक बड़े बड़ों को अटका लेते हैं। यमकों की इस सृष्टि के लिए कवि ने संस्कृत के शब्दों का विशेष रूप से सहारा लिया है। ये शब्द अप्रयुक्त अर्थों में प्रयुक्त हैं। यथा—मंजुल=कुंज, कूप; करछी=हिरनी; शुक्र=स्वर्ण, अग्नि, जेठ का महीना आदि। यह टीका कठिन श्रम से जूझने के लिए की गई हैं। ग्रंथ की प्रतिलिपि काशी नरेश के राम नगर दुर्ग स्थित पुस्तकालय से २८ दिसंबर १९७३ को हुई थी और टीका जनवरी १९७४ के प्रथम दो सप्ताहों में।

गुप्त जी की टीकाएँ सरल प्रचलित गद्य में हैं। उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि अर्थ करने में न तो अनावश्यक विस्तार हो और न कोई आवश्यक बात छूटने ही पाए। गुप्त जी ने पहले मूल छंद दिए हैं, फिर उनके नीचे यदि कोई पाठांतर है तो उसे दिया है। तदनंतर गूढ़ एवं अप्रचलित या अल्प-प्रचलित शब्दों के अर्थ दिए हैं। फिर मूल छंद का अर्थ दिया है। उसमें यदि कोई विशेष बात है, तो अंत में उसका उल्लेख किया है।

टीका सक्षमता का प्रतीक है, असमर्थता और अक्षमता का नहीं। यह समीक्षा का एक रूप ही है। बिना अर्थ समझे हुए संपादन और समीक्षा पानी पर बेलबूटा बनाने के ही सदृश है। लाला भगवान दीन को टीकाकार कहकर जो प्रोफेसर उनकी अवहेलना कर रहे हैं, वे उनके मुख की लाली बचाने वाले थे। गुप्त जी भी ऐसे ही टीकाकार हैं। खड़ी बोली के इस युग में व्रजभाषा ग्रीक और लैटिन होती जा रही है। यदि प्राचीन हिंदी काव्य को जीवित रहना है, तो उसे टीका की वैशाखी अत्यंत आवश्यक हो गई है।

१८ ग्रियर्सन कृत-हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास

[**श्री वेदप्रकाश गर्ग, एम० ए०**, मुजफ्फर नगर]

हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास-ग्रंथों में डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन कृत-'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' का अपना विशिष्ट स्थान है। वास्तव में यह हिन्दी-साहित्य का अंग्रेजी-भाषा में लिखा हुआ प्रथम इतिहास-ग्रंथ है।

इस तथ्य की असंदिग्धता इसके हिन्दी-अनुवादक डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त ने परिपुष्ट की है। इसीलिए डॉ० गुप्त ने इसका हिन्दी-अनुवाद 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से प्रस्तुत किया था।

ग्रियर्सन भारतीय नहीं, विदेशी थे। यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी-साहित्य के प्रथम इतिहास का प्रणयन एक विदेशी विद्वान् ने, एक विदेशी भाषा में, और वह भी विदेशियों के ही उपयोग के लिए, किया। उन्होंने सन् १८८६ में प्राच्य विद्या-विशारदों की अन्तरराष्ट्रीय सभाके वियना अधिवेशन में पठित अपने विस्तृत लेख तथा अपनी हिन्दी-साहित्य विषयक सारी टिप्पणियों को सुव्यवस्थित रूप प्रदान कर यह ग्रंथ प्रस्तुत किया था। उनके ग्रंथके 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' नाम से ऐसा आभास होता है, जैसे कि इस ग्रंथ में हिन्दुस्तान की सभी आधुनिक भाषाओं का विवेचन होगा, किंतु ऐसा नही हैं। इसीलिए ग्रियर्सन ने अपनी प्रस्तावना में हिन्दुस्तान शब्द की अपनी व्याख्या दी है। हिन्दुस्तान से उनका अभिप्राय 'हिन्दीं-भाषा-भाषी प्रदेश' से है।

ग्रियर्सन का यह ग्रंथ सर्व प्रथम सन् १८८८ ई० के 'रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के जर्नल भाग १ के विशेषांक-रूप में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् सन् १८८९ ई० में उसी सोसायटी की ओर से स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में इसका प्रकाशन हुआ। इस ग्रंथ का पुनर्मुद्रण नहीं हुआ और यह ग्रंथ दुष्प्राप्य हो गया। इसी कठिनाई को ध्यान में रखते हुए डॉ० गुप्त ने ग्रियर्सन के इस महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य का हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया, जिससे अब यह सर्व सुलभ हो गया है।

यद्यपि इससे पूर्व गार्सां द तासी, मौलवी करीमुद्दीन और शिव सिंह सेंगर के ग्रंथ प्रकाश में आ गए थे और कुछ विद्वानों ने प्रमादवश हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास होने का श्रेय भी इन ग्रंथों में से किसी न किसी को देने का प्रयत्न किया है, किंतु उनका यह कथन भ्रांत है।

तासी ने अपने ग्रंथ को इतिहास कहा भी है, लेकिन यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें न तो कवियों का विवरण काल-क्रमानुसार दिया गया है, न काल-विभाग किया गया है और न काल-प्रवृत्ति का निरूपण ही है। इसमें वर्णानुम से कवियों एवं लेखकों के विवरण प्रस्तुत किए गए है। यह एक अर्थ में हिन्दी का प्रथम कविवृत्त-संग्रह स्वीकार किया जा सकता है, यद्यपि यह पूर्ण रूप से हिन्दी से संबद्ध नहीं है। यह वस्तुतः उर्दू कवियों पर लिखा गया है, साथ ही कुछ हिन्दी कवि भी इसमें आ गए हैं।

तासी के ग्रंथ 'इस्तवार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐ ऐदूस्तानी' का पहला संस्करण दो भागों में क्रमशः सन् १८३९ ई० व सन् १८४७ ई० में प्रकाशित हुआ था।

तत्पश्चात् इसका द्वितीय संस्करण सन् १८७०-७१ ई० में तीन भागों में प्रकाशित हुआ था। इसके हिन्दी से संबद्ध अंश का हिन्दी-अनुवाद डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से किया है, जिसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी उ० प्र० इलाहाबाद से सन् १९५३ में हुआ है।

तासी के ग्रंथ के बाद मौलवी करीमुद्दीन ने 'तबकातुश्शुअरा' या 'तज्किर-इ-शुअरा-इ- हिन्दी' नामक एक ग्रंथ प्रस्तुत किया था, जो सन् १८४८ ई० में देहली कालेज द्वारा प्रकाशित हुआ था। मौलवी साहब ने तासी की सामग्री का उपयोग करते हुए, उसमें पर्याप्त विस्तार देकर अपने इस ग्रंथ का निर्माण किया था। स्वयं तासी ने इस ग्रंथ को अपने ग्रंथ के द्वितीय संस्करण का बहुत कुछ आधार बनाया है और उन्होंने इसे एक स्वतंत्र कृति के रूप में स्वीकार किया है, केवल अपने ग्रन्थ का अनुवाद मात्र नहीं।

करीमुद्दीन ने तासी की शैली को ग्रहण करते हुए भी अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। वह इस कार्य में तासी से एक कदम आगे बढ़ा है, किंतु फिर भी उसके ग्रंथ को 'इतिहास' संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसमें भी उन समस्त बातों का अभाव है, जिसके आधार पर किसी रचना को इतिहास कहा जा सकता है। इसमें भी हिन्दी और उर्दू दोनों प्रकार के कवियों का वृत्त-संग्रह है। अतः यह भी हिन्दी-साहित्य का इतिहास नहीं है। यद्यपि यह ग्रंथ भी पूर्णतः हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध नहीं है, तथापि एक भारतीय द्वारा संगृहीत यह हिन्दी का प्रथम कविवृत्त-संग्रह है।

इसी प्रकार 'शिवसिंह सरोज' भी इतिहास नहीं है। इसमें भी वर्णानुक्रम से कवि-वृत्त दिया गया है, काल-क्रम से नहीं। ऐसी दशा में वृत्तियों के अनुसार युग-विभाजन और युगों के अनुसार सामान्य वृत्तियों के विश्लेषण का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। इन सबके अभाव में कोई भी ग्रंथ-इतिहास संज्ञा का अधिकारी नहीं हो सकता है। यह भी कवि-वृत्त संग्रह मात्र है। शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' का सर्व प्रथम प्रकाशन सन् १८७८ ई० में नवल किशोर प्रेस लखनऊ से हुआ था।

सरोज और उससे पूर्ववर्ती उपर्युल्लिखित ग्रंथ इतिहास नहीं हैं, वे सभी कवि वृत्त-संग्रह हैं, फिर भी वे हिन्दी साहित्य के आकर-ग्रंथ हैं और उनमें इतिहास का प्रमुखतम सूत्र-ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' है। यह किसी भारतीय द्वारा मूलरूप से हिन्दी में लिखा हुआ, व्यावहारिक और वास्तविक दृष्टि से हिन्दी का प्रथम कविवृत्त-संग्रह है। सरोज से पूर्व के महेशदत्त शुक्ल का 'भाषा-काव्य-संग्रह' और मातादीन मिश्र का कवित्तरत्नाकर किसी भारतीय द्वारा मूलतः हिन्दी में रचित, ऐतिहासिक दृष्टि से, हिन्दी के प्रथम कविवृत्त-संग्रह कहलाने के अधिकारी हैं।

इतिहास संज्ञा के लिए मुख्यत: जिन दो बातों की आवश्यकता है—काल-क्रमानुसार कवि-परिचय और काल-विभाजन, वे प्रथम बार ग्रियर्सन के ग्रंथ में ही पाई जाती है। इसलिए यही हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास है और इसे ही यह गौरव प्राप्त है। डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त ने ग्रियर्सन के इतिहास की महत्ता और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसका सर्वप्रथम स-टिप्पण हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया। इसका प्रकाशन हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से सन् १९५७ में हुआ था और इस प्रकार अनूदित रूप में यह ग्रंथ सुलभ हो गया। इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जब हिन्दी साहित्य के अनेक अच्छे इतिहास प्रस्तुत किये जा चुके हैं, तो फिर इस अनुवाद की क्या आवश्यकता थी ? इस सम्बन्ध में डॉ० गुप्त ने अपने 'वक्तव्य' के अन्तर्गत स्वयं लिखा है।

'इसके सम्बन्ध में निवेदन है कि इस अनुवाद की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। यह हिन्दी-साहित्य के इतिहास की नींव का वह पत्थर है, जिस पर आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भव्य-भवन निर्मित किया। इस इतिहास-ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसने प्रारम्भिक खोज-रिपोर्टों एवं मिश्र-बन्धु-विनोद को पूर्णतः प्रभावित किया है। शुक्ल जी के इतिहास के प्रकाश में आने के पूर्व एक युग था, जब यह ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। उसकी महत्ता अब यद्यपि अक्षुण्ण नहीं रह गयी है, पर उसका महत्त्व तो है ही।'

तात्पर्य यह है कि ग्रियर्सन के इतिहास की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिन्होंने बाद में लिखे जाने वाले हिन्दी-साहित्य के इतिहासों को प्रर्याप्त प्रभावित किया है।

ग्रियर्सन का इतिहास तीन खण्डों में विभक्त कहा जा सकता है—१. प्रस्तावनादि २. मूल ग्रंथ, ३. अनुक्रमणिका। प्रथम खण्ड में तीन विभाग हैं—

(अ) प्रस्तावना—इसमें ग्रंथ लिखने का अवसर और आवश्यकतादि पर विचार है।

(ब) भूमिका—इसके चार उप विभाग हैं—१. सूत्रनासूत्र, २. विषयन्यास का सिद्धान्त, ३. हिन्दुस्तान (हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश) के भाषा साहित्य का संक्षिप्त विवरण, ४. चित्र-परिचय।

(स) शुद्धि-पत्र और परिशिष्ट। इसी में तुलसीदास-लिखित प्रसिद्ध 'पंचनामे' का रोमन लिपि में प्रत्यक्षरीकरण और उसका अँग्रेजी अनुवाद दिया गया है।

द्वितीय खण्ड में मूल ग्रंथ १२ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में प्रायः तीन अंश हैं, जिनमें सामान्य परिचय, प्रधान कवि परिचय और अप्रधान कवि नाम सूची हैं।

तृतीय खण्ड में तीन अनुक्रमणिकाएँ हैं। पहली में व्यक्ति-नाम-सूची, दूसरी में ग्रंथ-नाम-सूची और तीसरी में स्थान-नाम-सूची वर्णानुक्रम से हैं। इनके आगे दी गयी संख्यायें पृष्ठों की न होकर कवियों की हैं।

डॉ० गुप्त ने सुविधा की दृष्टि से मूल ग्रन्थ से अपने अनुवाद-ग्रंथ में कुछ अन्तर कर दिया है, जो आवश्यक भी था, अन्यथा ग्रंथ की कुछ दुर्बोधता बनी रहती। ग्रंथ को भली-भाँति समझने के लिए डॉ० साहब ने 'वक्तव्य' के अनन्तर लगभग ३० पृष्ठों में 'अन्तर्दर्शन' प्रस्तुत किया है। इसमें डॉ० ग्रियर्सन की हिन्दी-सेवाओं का उल्लेख करते हुए हिन्दी साहित्य के इस प्रथम इतिहास को रूपरेखा का परिचय दिया गया है। साथ ही इसके आधार ग्रंथों एवं लेखन पद्धति पर भी विचार किया गया है। यह शिव सिंह सरोज का कितना ऋणी है, इसका भी आँकड़ों सहित निर्देश किया गया है। इसीमें उन्होंने ग्रियर्सन के इस ग्रंथ का महत्त्व भी दिखाया है और यह अनुवाद क्यों आवश्यक है इस पर भी प्रकाश डाला है।तात्पर्य यह है कि इसमें सभी आवश्यक बातों का समावेश किया गया है, जो डा० गुप्त की सूझ-बूझ का परिचायक है। इस अन्तर्दर्शन के उपरान्त मूल ग्रंथ का स-टिप्पण अनुवाद प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कुल ९५१ कवियों का विवरण है। इसमें से ६५ कवि अन्य सूत्रों से लिये गये हैं और ८८६ कवि सीधे 'सरोज' से लिये गये हैं।

इतिहास में उल्लिखित कवियों के सम्बन्ध में ग्रियर्सन के जो कथन असत्य सिद्ध हो चुके हैं, उनके विवरण के ठीक नीचे दूसरे अनुच्छेद में 'टि०' के अन्तर्गत बहुत संक्षेप में डॉ० गुप्त ने उनका परिमार्जन करते हुए उल्लेख कर दिया है, जिससे पाठक और शोधकर्ता भ्रमजाल में फँसने से बचे रहें और उन्हें शुद्ध विवरण प्राप्त हो जाय। यदि केवल मूल-ग्रंथ का ही अनुवाद प्रकाशित किया जाता, तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक आशंका थी। इसी संभावना को दृष्टि में रखकर डॉ० साहब ने उक्त टिप्पणियाँ दो हैं, जो मुख्यतया उसके शोध-प्रबन्ध 'सरोज-सर्वेक्षण' पर आधारित हैं। सक्षेप में डा० गुप्त ने इस अनूदित ग्रन्थ को सब प्रकार से उपयोगी बनाने के लिए भरसक चेष्टा की है, जो सराहनीय है।

यद्यपि डा० साहब ने ग्रियर्सन के भ्रमों को दूर करने का प्रशंसनीय कार्य किया है, पर कहीं-कहीं स्वयं उनकी टिप्पणियाँ भ्रामक हो गयी हैं और ग्रियर्सन की बहुत सी अशुद्धियों का उन्मूलन करने से भी रह गया है, जिसमें संशोधन एवं परिवर्धन की नितान्त आवश्यकता है। किंतु इतने मात्र से डा० गुप्त के इस शोधात्मक अनुवाद कार्य की उपयोगिता कम नहीं हो जाती। डा० साहब ने निश्चय ही अपने इस उपकार से हिन्दी-संसार को उपकृत किया है। तदर्थ वे बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

किसी भी भाषा के साहित्य के प्रथम इतिहास में जो भी त्रुटियाँ हो सकती हैं, वे सभी ग्रियर्सन के ग्रंथ में हैं और आज ग्रियर्सन को आधार मानकर हिन्दी-साहित्य के इतिहास की जानकारी प्राप्त करना न तो वांछनीय हैं और न श्रेयस्कर ही। इसी को आधार मानकर चलने वाले को अनेक भ्रांतियाँ हो सकती हैं, फिर भी किसी शोध के विद्यार्थी के लिए इस ऐतिहासिक ग्रंथ का महत्त्व है। यद्यपि यह हिन्दी-साहित्य का इतिहास है, पर आज यह हिन्दी-साहित्य के इतिहास के एक प्रमुख सूत्र के रूप में ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

१९. इतिहास के अन्यतम अन्वेषी : डॉ० किशोरी लाल गुप्त

[बैजनाथ मिश्र]

संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य की रुचि भिन्न होती है। किसी का मन सरस विषयों में लगता है, तो किसी को नीरस और दुरूह विषयों से जूझने में ही सुख मिलता है। परन्तु नीरस और दुरूह विषयों में जिनकी वृत्ति रमती हो, ऐसे मनुष्य विरले होते हैं, इन विरले व्यक्तियों में ही डॉ० किशोरी लाल गुप्त की गणना की जा सकती है। उनका रोम-रोम अनुसंधान और इतिहास के अणु-परमाणुओं से बना हुआ है। ऐतिहासिक क्रम-निरूपण उनकी प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है। कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मृति के कारण श्वास-प्रश्वास की तरह स्वाभाविक सहजता से उनके वार्तालाप में तिथियों का प्रामाणिक अनुक्रम निकला करता है, चाहे वे तिथियाँ साहित्यिक क्षेत्र से संबंधित हों अथवा ऐतिहासिक, व्यक्तिगत जीवन की हों अथवा सामाजिक महत्व की। उन्हें सोचने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। प्रामाणिक एवं सुनिश्चित तिथियों का आधार लेकर ही वे अपनी बात प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में उनके भीतर एक ऐसा अनुसंधित्सु व्यक्तित्व वर्तमान है, जो निरंतर प्रामाणिक तथ्यों की खोज करते थकता नहीं है तथा कठिन परिश्रम से तथ्य प्राप्त कर उनका पूर्वापर प्रसंग जोड़ वास्तविकता का पता लगाकर ही दम लेता है। जीवन के प्रारंभिककाल अर्थात् विद्यार्थी-जीवन से ही गुप्तजी में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगती है। उन्होंने संपूर्ण हिन्दी साहित्य और उसके इतिहास का इसी दृष्टि से अध्ययन किया है और अपनी मौलिक खोजवृत्ति में अनेक चौंकाने वाले तथ्य हिन्दी-संसार को सौंपे हैं। इसी कारण उनके साहित्यिक अवदान की मुख्य दिशाएँ हैं—शोध, इतिहास-निरूपण और प्राचीन ग्रंथों का समीक्षापूर्ण संपादन। ऐसा लगता है कि गुप्तजी का जन्म हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पुनरुद्धार के लिए ही हुआ है।

गुप्तजी के साहित्य पर दृष्टिपात करने पर यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है कि उनके समस्त ग्रंथ इसी ऐतिहासिक खोजवृत्ति के प्रतिफल हैं। उन्होंने जिन ३६ प्राचीन ग्रंथों का संपादन किया है उनमें आपकी खोजपूर्ण भूमिकाएँ लगी हुई हैं। प्राचीन सुकवियों के जीवन और काव्य के संबंध में प्रामाणिक तथ्य स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार ये संपादन भी अपनी मौलिक विशेषता से युक्त हैं। इसके बाद समीक्षा, शोध और इतिहास के ग्रंथों को देखा जा सकता है। प्रारंभ में आचार्य शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास ने 'शिव सिंह सरोज' संबंधी जो जिज्ञासा डॉ० गुप्त के मन में उत्पन्न की, उसने हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार किया। वह विचार-मंथन ही आगे बढ़कर

उनकी पी-एच० डी० उपाधि का शोध प्रबंध बना और अंत में 'सरोज सर्वेक्षण' जैसे विशालकाय ग्रंथ के रूप में हमारे सामने आया। इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध सूत्रों के विश्लेषण में ही आपको डी० लिट० की उपाधि भी प्राप्त हुई। हिंदी साहित्य के इतिहास का अनुसंधान कर आपने यह सिद्ध कर दिया कि जार्ज ग्रियर्सन ही हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक हैं और सही दृष्टि से ग्रियर्सन कृत 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' का सटिप्पण अनुवाद आपने 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' के रूप में प्रस्तुत कर दिया। यही प्रेरणा बलवती होकर 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' लिखवा देती है। 'हिन्दी के नामराशी कवि' नामक ग्रंथ में भी यही ऐतिहासिक खोजवृत्ति अपना चमत्कार दिखाती है। इसमें एक ही नाम के विभिन्न कवियों के अस्तित्व की प्रामाणिक. साथ ही साथ मनोरंजक, सूचनाएँ एकत्र हैं। संप्रति गुप्त जी 'हिन्दी कविता का इतिहास' (८ भागों में) प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें कवि और उनके काव्य के संबंध में प्रामाणिक सामग्री एकत्र हो रही है। इस ग्रंथ के पाँच भागों का लेखन पूर्ण हो चुका है। अन्य तीन भागों का कार्य भी प्रगति पर है। तात्पर्य यह कि अनुसंधान गुप्त जी की मूल प्रवृत्ति है, जिसके कारण हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक इतिहास का प्रस्तुतीकरण, निर्भ्रान्त तथ्यों की स्थापना, आपने अपने जीवन का प्रमुख ध्येय बना लिया है, जिससे भावी अनुसंधित्सुओं का पथ प्रशस्त हो जाये।

अपनी खोज प्रक्रिया में प्रस्तुत खंडन-मंडन या नवीन तथ्य-स्थापन में भी गुप्त जी के अपने सिद्धान्त हैं। उनकी पहली धारणा यह है कि रिसर्च या खोज कभी अंतिम नहीं होती। उसमें कभी ऐसा अवसर भी आ जाता है कि अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त स्वयं काटने पड़ जाते हैं। अतः अपनी बात सदैव शालीनतापूर्वक प्रस्तुत करनी चाहिए। कड़ी से कड़ी बात भी कोमल शब्दों में कहनी चाहिए और बात काटने का ढंग अत्यंत शालीन होना चाहिए। शिष्ट ढंग से अपने तथ्य का उपस्थापन उनकी दूसरी मान्यता है। अपनी समस्त लेखन-प्रक्रिया में गुप्त जी ने इन सिद्धान्तों को सदैव ध्यान में रक्खा है। यही कारण है कि उनकी नवीन स्थापनाओं के लिए हिन्दी-संसार में कभी नोक-झोंक नहीं हुई। यहाँ तक कि पी-एच० डी० और डी० लिट० जैसी परीक्षाओं की मौखिकी में परीक्षकों ने उनके तर्क और बातें बड़े ध्यान से सुनीं, उनकी स्थापनाओं को महत्त्वपूर्ण ठहराया और उन्हें आगे कार्य करने की प्रेरणा दी। इसीलिए उन्हें खोज के लिए एक के बाद दूसरा विषय मिलता गया। 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास', 'सरोज सर्वेक्षण', 'हजारा,' 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' आदि ग्रंथों के मूल में सतत मिली हुई यह प्रेरणा ही विद्यमान है।

प्रारंभ में उनकी खोज 'शिवसिंह सरोज' में दिए हुए कवियों के वृत्त--तथ्य एवं तिथियों की जाँच के रूप में आगे बढ़ी, जिसके सिलसिले में उन्हें ग्रियर्सन के 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' को देख लेने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसे देखने

से उन्हें यह प्रतीत हुआ कि यही हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास है तथा तासी के ग्रंथ 'हिन्दुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास' में ऐतिहासिक दृष्टि नहीं है, क्योंकि उसमें कवियों का कालक्रमानुसार वर्णन नहीं है। जो कालक्रम प्रस्तुत न करे, वह कैसा इतिहास ? इसी सिद्धान्त के आधार पर वे 'शिवसिंह सरोज' को भी इतिहास नहीं मानते, क्योंकि उसमें भी वर्णानुक्रम से कवि वृत्त वर्णन मात्र है। अतएव डा० गुप्त की दृष्टि से ग्रियर्सन ही हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक हैं और उनकी रचना ही हिन्दी साहित्य के इतिहास की नींव का पत्थर है, जिसके ऊपर आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भव्य भवन निर्मित किया है। हिन्दी अध्येताओं के लिए इसी ग्रंथ की उपादेयता को दृष्टिपथ में रखकर गुप्त जी ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से इसका सटिप्पण अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया। साथ ही ग्रियर्सन की भूलों का भी उन्होंने निर्देश कर दिया है। जैसे जार्ज ग्रियर्सन ने सरोज में उल्लिखित 'उ०' का अर्थ उत्पन्न मानकर इस संकेत के आगे लिखे संवत् को कवियों का जन्मकाल माना है, जबकि ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण से यह संवत् या समय उपस्थिति काल सिद्ध होता है, जन्मकाल नहीं। इस प्रकार पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण कर डॉ० गुप्त की अनुसंधानक्षमा प्रतिभा ने हिंदी साहित्य के इतिहास-पथ पर मील के पत्थर की स्थापना कर दी।

'सरोज सर्वेक्षण' के द्वारा भी डा० गुप्त ने हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनरुद्धार का कार्य किया है। हिंदी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों में 'शिवसिंह सरोज' अन्यतम आधार-ग्रंथ है। ऐसे ग्रंथ का निर्भ्रान्त रूप में प्रस्तुत होना इतिहास की प्रामाणिकता के लिए अत्यंत आवश्यक था। हिन्दी साहित्य के इतिहास की इस अमूल्य निधि में हिन्दी के लगभग एक हजार रचयिताओं के कृतित्व और उनकी जीवनी का वर्णन प्रस्तुत है। कालान्तर में इस ग्रंथ के परवर्ती संस्करणों में अनेक प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित हो गये तथा साहित्यकारों की तिथियों में उलटफेर आ गया, जिसके कारण अनेक भ्रान्तियों को जन्म मिला। इन भ्रान्तियों के शिकार ग्रियर्सन और आचार्य शुक्ल भी हुए। उन महामनीषियों का ध्यान भी इन भ्रान्तियों पर न जा सका। उन भ्रांतियों को डा० गुप्त ने अपनी पैनी दृष्टि से देखा और वे तथ्यों की प्रामाणिकता की खोज में लग गये। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास के इस आधार ग्रंथ को अपना शोध-विषय बनाकर वैज्ञानिक दृष्टि से उसका तुलनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जिससे हिन्दी-संसार में निर्भ्रान्त तथ्यों की स्थापना हुई। 'शिवसिंह सरोज' में वर्णित प्रत्येक कवि की कृति और उसकी जीवनी का नये सिरे से सर्वेक्षण किया गया और इस प्रकार 'शिवसिंह सरोज' अपने निर्भ्रान्त रूप में 'सरोज सर्वेक्षण' का रूप लेकर हिन्दी के सुधी पाठकों, साहित्यकारों और अनुसंधान कर्त्ताओं के लिए समान रूप से उपयोगी बन गया। इस रूप में डा० किशोरी लाल गुप्त हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनरुद्धारकर्त्ता ही माने जायेंगे।

इसी पुनरुद्धारक्रम में गुप्तजी के 'हजारा' ग्रंथ की भी गणना की जा सकती है। 'कालिदास हजारा' 'शिवसिंह सरोज' के आधार ग्रंथों में से एक है, जिसकी प्राप्ति के लिए गुप्तजी प्रारंभ से ही उत्सुक थे और सन् १९५४ में हो उन्होंने तद्विषयक 'कालिदास हजारा का पुनर्निर्माण' लघु ग्रंथ लिख डाला था, जो अप्रकशित स्थिति में ही रह गया। बाद में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की सूची में 'जंजीरा' और 'संग्रह कवित्त सवैया आदि' नामक दो अपूर्ण ग्रंथ एक ही हस्तलिखित जिल्द में आपके हाथ लग गये। बड़े मनोयोग से उसका अध्ययन परीक्षण कर आपने इसे 'कालिदास हजारा' को खंडित प्रति ठहराया। इसके बाद कांथा जाकर शिवसिंह सेंगर के पुस्तकालयावशेष का निरीक्षण किया, जिसमें 'शिवसिंह सरोज' के पूर्वार्द्ध के प्रारूप में हजारा संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिल गईं और उन्होंने उस ग्रथ के पुनरुद्धार की योजना बना ली। पाठ-शोध एवं अर्थ-निर्णय कर गुप्त जी ने इस अप्रकाशित ग्रंथ की खंडित प्रति को नवीन वैज्ञानिक ढंग से क्रमानुसार संपादित कर 'हजारा' के नाम से प्रकाशित करवाया। पाठ-शोध, अर्थ-निर्णय, वैज्ञानिक अनुक्रम और शब्दार्थ सहित व्याख्यात्मक टिप्पणियों से युक्त इस ग्रंथ का प्रकाशन हिन्दी के एक महान अभाव की पूर्ति है। अस्तु, डॉ० गुप्त का यह कार्य भी इतिहास के पुनरुद्धार रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।

डा० किशोरी लाल गुप्त की ऐतिहासिक अनुसंधान-वृत्ति का चरम परिपाक 'हिंदी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' शीर्षक ग्रंथ में देखा जा सकता है जिसमें इतिहास के समग्र परिप्रेक्ष्य और संदर्भों में हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रस्तुतीकरण किया गया है। वास्तव में इस ग्रंथ का सूत्र भी उनके डी० लिट० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध—'हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रमुख सूत्रों का विश्लेषण : भक्तमाल से ग्रियर्सन तक' में वर्तमान है। हिन्दी-साहित्य के संपूर्ण इतिहासों का परिचय प्रस्तुत करने वाला यह अकेला ग्रंथ है। गुप्त जी की दृष्टि में इतिहास लेखन की दृष्टि से आचार्य शुक्ल का इतिहास ही आदर्श इतिहास है। अतः उस इतिहास के संबंध में भी संशोधनात्मक, पूरक तथा प्रेस की भूलों को सुधारने वाली टिप्पणियाँ इस ग्रंथ में दी गई हैं। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ और उनका समाधान प्रस्तुत करना है। इससे निश्चय ही आगे आने वाले इतिहास लेखकों को दिशा निर्देश मिलेगा। इस रूप में यह ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं संग्रहणीय है।

शोध और इतिहास के इन ग्रंथों के आधार पर यह भलीभाँति प्रमाणित होता है कि डा० किशोरी लाल गुप्त इतिहास के अन्यतम अन्वेषी हैं। उनकी गहरी पैठ और विकट अध्यवसाय ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को प्रामाणिकता प्रदान की है। उनके अनुसंधानों का वल पाकर उनकी निर्माणक्षमा प्रतिभा ने जो दिया है, उसका महत्त्व अक्षुण्ण है। आठ भागों में हिन्दी कविता का जो इतिहास लिखा जा रहा है, उसके लिए भी हम आशान्वित हैं कि उसके द्वारा भी हिन्दी कविता के इतिहास पर प्रामाणिकता

की मुहर लगेगी। जगन्नियंता से हमारी प्रार्थना हैं कि वह इस महनीय कार्य की पूर्ति के लिए डा० किशोरी लाल गुप्त को शक्ति, सामर्थ्य और समय प्रदान करे ! चिरंजीवि तो वे हैं ही !!

अवकाश प्राप्त प्रवक्ता
बंगाली टोला इण्टर कालेज, वाराणसी।
मधुमती, B२/२३८ भदैनी, वाराणसी

२०. सरोज सर्वेक्षण-हिन्दी साहित्य के इतिहास की अनुपम धरोहर

[डा० शम्स आलम खाँ]

डॉ० किशोरी लाल गुप्त से समस्त हिन्दी जगत भली-भाँति परिचित है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका नाम अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जाता रहेगा। इतिहास-दर्शन का जब कभी इतिहास लिखा जायेगा, तब डॉ० गुप्त की अन्वेषण-क्षमता, अध्ययन की गम्भीरता और दृष्टि की व्यापकता का विशेष मूल्यांकन अनिवार्य रूप से होगा। उन्होंने इतिहास लेखन का एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया है, जो परम्परा से हटकर सर्वथा एक अनूठा मार्ग ही कहा जायेगा। उनके चिंतन और सोच की अपनी व्यक्तिगत प्रणाली अन्य इतिहास लेखकों और प्रेक्षकों की पंक्ति में उनको वरीयता प्रदान करती है। इसके लिए उनका एक मात्र कार्य 'सरोज सर्वेक्षण' पर्याप्त होगा।

'सरोज सर्वेक्षण' उनका प्रकाशित शोध प्रबन्ध है, जो आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। इसमें हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रमुखतम सूत्र 'शिवसिंह सरोज' के कवियों के सम्बन्ध में दिये गये तथ्यों एवं तिथियों का विवेचनात्मक, गवेषणात्मक परीक्षण किया गया है। इसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद से प्रथम बार मार्च १९६७ ई० में हुआ था। गुप्त जी ने अपने इस महान कार्य के द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों और शोधकर्त्ताओं के लिए एक ऐसी मूल्यवान धरोहर प्रदान की है, जो शताब्दियों तक मार्ग दर्शन का काम करेगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की आधारभूत सामग्री में माननीय शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रणीत 'शिवसिंह सरोज' को विशेष महत्त्व दिया जाता है। हिन्दी के प्रारम्भिक युग में इतिहास लेखन के लिए कोई मूल्यवान एवं उपयोगी सूत्र नहीं था। फ्रेंच विद्वान गार्सां द

तासी का इतिहास फ्रेंच भाषा में था, जो सामान्य हिन्दी पाठकोंके लिए पठनीय एवं बोध-गम्य नहीं था, फिर भी उसकी प्रारंभिक सूचनाएँ बड़े काम की सिद्ध हुई। इसके बाद सेंगर जी ने अपने सरोज द्वारा हिन्दी साहित्य का सूचना-परक इतिहास प्रस्तुत किया। पर्याप्त जानकारी के अभाव में भी उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से यह अनोखा काम किया। इस कार्य के लिऐ उनको न तो कोई खोज रिपोर्ट प्राप्त हुई, न किसी विशाल पुस्तकालय की सहायता मिली और न किसी संरक्षक का प्रोत्साहन ही प्राप्त हुआ। इन अभावों के होते हुए भी सेंगर जी ने एक हजार तीन कवियों की सूचना और उनका संक्षिप्त परिचय भी दिया। बाद में इस सरोज के अन्य संस्करण भी प्रकाशित हुए, जिसमें कहीं-कहीं मन-माने ढंग से परिवर्तन भी किया गया, जिससे कवियों के नामों, तिथियों आदि में उलट फेर भी हो गया और सरोज के विवरणों के सर्वेक्षण की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसकी ऐतिहासिक उपयोगिता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अंग्रेज विद्वान सर जार्ज अब्राहीम ग्रियर्सन और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी अपने-अपने इतिहासों के लिए 'सरोज' से प्रेरणा और जानकारी अनिवार्य रूप से प्राप्त की थी। बाद में 'सरोज' की तिथि, सूचना, घटना संबंधी भ्रांतियों का अनुभव डा० किशोरी लाल गुप्त ने ही सबसे पहले किया और उनके निराकरण का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उन्होंने सरोज को ही अपने शोध का विषय बनाया। इसमें उन्होंने तुलनात्मक सर्वेक्षण को विशेष महत्व दिया। अपनी वैज्ञानिक शोध-प्रणाली और अध्ययनशीलता से उन्होंने इस महान कार्य को सम्पन्न किया। इसमें उन्होंने 'सरोज' में दिये गये प्रत्येक कवि के परिचय और रचनाओं का स्वतंत्र रूप से शोध और अनुसंधान का विषय बनाया। इससे प्रभावित भ्रांतियों का किसी सीमा तक समाधान भी हो गया। अध्ययन विस्तार के साथ संभव है, इसमें अब भी अनेक दोष रह गये हों, जिनका निवारण भविष्य में होने की आशा की जा सकती है। गुप्त जी ने इसके द्वारा एक मार्ग सुझा दिया है। उनका यह कार्य मील का पत्थर सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ को तीन भागों में विभाजित किया गया है। आरम्भ में लम्बी भूमिका है, जिसमें ग्रन्थ और ग्रंथकार का व्यक्तिगत एवं साहित्यिक परिचय दिया गया है और उसके विशाल पुस्तकालय का उल्लेख है। इसके बाद सरोज का महत्व और उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। सरोज-लेखन में लेखक ने जिन-जिन आधार ग्रंथों की सहायता ली है, उनका विस्तार से परिचय है। परिचय के साथ सरोज में प्राप्त भ्रांतियों के निराकरण और ग्रंथ के पुनः सम्पादित करने की आवश्यकता समझाई गयी है। सरोज में सन् और संवत की बड़ी भूल हुई है। उनके सम्बन्ध में भी स्पष्ट संकेत दिये गये हैं। इसी प्रस्तावना भाग में सरोज के सर्वेक्षण की आवश्यकता और अध्ययन-विस्तार का महत्व समझाते हुए सहायक सामग्री का भी संकेत किया गया है। इस प्रकार ग्रंथ की भूमिका भी इसकी महत्व-स्थापना में उपयोगी सिद्ध हुई है।

ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में सर्वेक्षण है। यही ग्रंथ का मूल भाग है। इसमें सरोज में दिये गये १००३ कवियों के सम्बन्ध में जानकारी की परीक्षा की गयी है। इसके लिए गुप्त जी ने अध्ययन या सर्वेक्षण की अपनी एक विशिष्ट पद्धति अपनायी है। कवियों की क्रम संख्या गुप्त जी ने स्वयं दी है, जो अपने अटूट क्रम में है। सरोज में कवियों के सम्बन्ध में दी गयी मूल सूचनाओं का भी उल्लेख ज्यों का त्यों दिया गया है। इससे सरोज का मूल-पाठ और सर्वेक्षण-अंश साथ-साथ प्राप्त हो जाते हैं। सर्वेक्षण में सूचनाओं की विधिवत परीक्षा करके उसके अस्तित्व के सम्बन्ध मे स्पष्ट जानकारी दी गयी है। ऐसा इसलिए किया गया है कि कभी-कभी एक ही कवि विभिन्न नामों से कई बार उद्धृत किया गया है। स्त्री को पुरुष मान लिया गया है। इसके लिए विविध इतिहास ग्रंथों, खोज रिपोर्टों और विवरण ग्रन्थों की सहायता के साथ ही साथ विद्वान लेखक ने सम्बन्धित स्थानों की यात्राएँ भी की हैं। इस कार्य के लिए आधार ग्रंथों का निर्देश पाद-टिप्पणी में करके लेखक ने अपने सर्वेक्षण को मूल्यवान और प्रमाणित सिद्ध कर दिया है। इससे ग्रंथ की महिमा और स्थायित्व में चार चाँद लग गये हैं। ग्रन्थ का सर्वेक्षण भाग सात सौ पृष्ठों का है। ग्रंथ के अन्त में उपसंहार है, जिसमें 'सरोज' के तथ्यों और तिथियों के सम्बन्ध में किये गये निर्णयों का सामूहिक रूप में विचार किया गया है। अत्यन्त नई सूचनाओं और सर्वेक्षण सम्बन्धी उपलब्धियों को ग्रंथ के परिशिष्ट में दे दिया गया है। सोज के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करके उपयोगी कार्य किया गया है और महत्त्वपूर्ण मार्ग-दर्शन किया गया है। सन्दर्भ ग्रंथों की विशाल सूची के साथ-साथ अनुक्रमणिका द्वारा महान लेखक ने अपने अध्ययन विस्तार का परिचय दिया है, जो आगामी शोधकर्ताओं के लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। इस कार्य में लेखक द्वारा दी गयी तुलनात्मक काल की तालिका भी बड़ी मूल्यवान सिद्ध होगी। तुलनात्मक काल-तालिका में सरोज, सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन और मिश्र-बन्धु-विनोद के कवियों और उनसे सम्बन्धित तिथियों का उल्लेख किया गया है। इससे इन ग्रन्थों के अवलोकन और परस्पर मिलान करने तथा तथ्य की पूर्ण जानकारी में सहायता मिलेगी। इससे इस बात का भी पता चलेगा कि कौन कवि अस्तित्वहीन है, कौन कई बार उल्लिखित है। सरोज में कुछ कवियों के सन् सम्बत् नहीं दिये गये हैं। अन्य ग्रंथों की सहायता से उसकी जानकारी भी हो जायेगी।

सरोज की सूचना संक्षेप में है, किन्तु गुप्त जी ने उनका सर्वेक्षण बड़े विस्तार से किया है। यहाँ सरोज में दिये गये कवियों की जितनी भी संभव सूचना गुप्त जी को अन्य साधनों से उपलब्ध हो सकी है. उसको जुटाने में इन्होंने भरसक प्रयास किया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में भी शिवकुमार केडिया द्वारा प्रदत्त शिवसिह सरोज' के मुख पृष्ठ की फोटो स्टेट कापी भी दी गयी है, जो श्रीयुत मुंशी नवल किशोर जी के यंत्रालय

लखनऊ में अप्रैल सन् १८७८ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें हिन्दी के साथ ही साथ उर्दू लिपि में भी पुस्तक का नाम दिया गया है, इससे मूल लेखक की भाषायी उदारता का भी पता चल जाता है। साथ ही 'शिवसिंह सरोज' के तृतीय संस्करण के कवि परिचय का प्रथम पृष्ठ भी है। बाद में द्वितीय संस्करण के एक पृष्ठ का भी फोटो स्टेट कापी हैं। ग्रंथ में सबसे महत्वपूर्ण फोटो स्टेट नागरी प्रचारिणो सभा काशी में सुरक्षित शिवसिंह सेंगर के हिन्दी एवं उर्दू हस्तलेख का नमूना 'शिवसिंह सरोज' के प्रारूप के प्रथम पृष्ठ का फोटो स्टेट है। इस प्रकार विद्वान लेखक ने अपने इस ग्रंथ द्वारा 'सरोज' जैसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, साहित्यिक सामग्री का उद्धार करके इतिहास की महत्वपूर्ण सूचनाओं को सदा सर्वदा के लिए सुरक्षित कर दिया है।

इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास की इस मूल्यवान धरोहर का सदा स्वागत होगा और इसका मून्य अक्षुण्ण रहेगा। इसके लिए डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा उपकार किया है, जिसके लिए हिन्दी साहित्य और उसके पाठक उनके सदा कृतज्ञ रहेंगे। डॉ० गुप्त इस कार्य के लिए बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं। ईश्वर इससे भी महान कार्य करने के लिए उन्हें दीर्घायु करें। आमीन।

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
मोहम्मद हसन कालेज
जौनपुर।

२१. सरोज-सर्वेक्षण को लेखन-प्रक्रिया

[**श्रीमती श्यामा गुप्ता,** एम० ए०, बी० एड०, साहित्य-रत्न]
शास्त्री नगर, वेदपुरवा, गाजीपुर

१९५५–५७ में जिन दिनों पिता जी पी-एच० डी० के लिए शिवसिंह सरोज पर अपना शोध-प्रबंध लिख रहे थे, वे शिबली कालेज आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे और मैं उन्हींके साथ रहकर अग्रसेन कन्या विद्यालय में इण्टर में पढ़ रही थी।

महेशदत्त शुक्ल ने अपने 'भाषा काव्य संग्रह' (सं० १९३० वि०) में भूषण और मतिराम को भाँट लिख दिया था। उनकी इस भूल के परिमार्जन के लिए शिव सिंह ने 'शिवसिंह सरोज' (सं० १९३४ वि०) की रचना की थी। १९५२ ई० से ही पिताजी हिन्दी के विशालतम काव्य संग्रह 'हिन्दी कवि और काव्य' के प्रणयन में दत्त-चित्त थे। ऐसा करते समय उन्हें बार बार सरोज को उलटना पलटना पड़ा और

उसके कवि-परिचय में उन्हें अनेक भूलें दिखलाई पड़ीं। उस समय तक सरोज के सन्-संवतों को कवियों का उत्पत्ति काल समझने की भूल की जा रही थी। इस बात पर भी इनका ध्यान गया कि सरोज-दत्त ये संवत् उत्पत्तिकाल सूचक न होकर उपस्थिति-काल सूचक हैं। इन सबका निराकरण करने के लिए उन्होंने 'सरोज-सर्वेक्षण' के प्रणयन में हाथ लगाया।

विषय निबन्धनार्थ जुलाई १९५५ में भेजा गया, पर पिताजी ने इस विषय पर जून ५५ से ही कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। इस ग्रीष्मावकाश का पर्याप्त समय उन्होंने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विभाग में सामग्री-संकलन में लगाया। खोज रिपोर्टों का सार तब तक प्रस्तुत किया जा चुका था, छोटी छोटी कापियों में, प्रकाशन तो पर्याप्त विलंब से हुआ। श्री दौलतराम जुयाल खोज विभाग के अधिकारी थे। उन्होंने कृपापूर्वक इस अमुद्रित एवं अप्रकाशित सामग्री के उपयोग की अनुमति पिता जी को दे दी थी।

कवियों का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते समय पिताजी ने जो कार्य-पद्धति अपनाई थी, वह श्रम-साध्य और समय-साध्य दोनों थी। पहले उन्होंने एक एक फुलस्केप पृष्ठ पर सरोज में दिया हुआ एक एक कवि का विवरण उतार लिया।

उस समय पिताजी के पास शिव सिंह सरोज का १९२६ ई० का सातवाँ संस्करण ही था। उन्होंने इसका तीसरा संस्करण १८८३ ई० भी देखा था। सर्वेक्षण में कवि-विवरण सरोज के सातवें संस्करण के आधार पर ही दिए गए हैं। यह विवरण रूपनारायण पांडेय द्वारा किंचित संशोधित है, अतः संपादन की दृष्टि से इसका महत्त्व कम हो जाता है, पर विवरण की दृष्टि से यह उपेक्षणीय नहीं है। नवम्बर १९५७ में उपाधि मिल जाने के बाद पिताजी को सरोज के प्रथम संस्करण (अप्रैल १८७८ ई०) एवं द्वितीय संस्करण (१८७८ और १८८३ के बीच किसी समय) भी मिल गए, जिनका उपयोग उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' के संपादन में किया, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से १९७० ई० में प्रकाशित हुआ।

सरोज से विवरण उतार लेने के उपरांत टिप्पणी दी गई है। ये टिप्पणियाँ ग्रियर्सन, मिश्रबंधु विनोद, सभा की संक्षिप्त खोज रिपोर्ट एवं अन्य ग्रंथ सूत्रों के आधार पर दी गई हैं। उदाहरण के लिए 'अवधेश' नामक दो (वस्तुतः एक ही) कवियों पर दी गई समस्त सामग्री आगे अवतरित है—

(क) सरोज से अवतरण

"५ अवधेश ब्राह्मण बुंदेलखंडी, चरखारी, सं० १९०१ में उ०

यह कवि राजा रतन सिंह बुंदेला चरखारी अधिपतिके कदीम कवि हैं। इनकी कविता सरस है। परंतु मैंने कोई ग्रंथ इनका नहीं पाया।"

"६ अवधेश ब्राह्मण सूपा के (२) बुंदेलखंडी, सं० १८९५ में उ०

यह कवि बहुत सुन्दर कविता में चतुर थे। परन्तु कोई ग्रंथ मैंने इनका नहीं पाया।"

(ख) "टि०—ये दोनों अवधेश ब्राह्मण हैं, बुंदेलखंडी हैं, इनके समय में भी केवल ६ वर्ष का अंतर है, अतः दोनों के एक होने की संभावना है। दोनों की कविता समान रूप से सरल है। शिव सिंह सरोज के प्रथम संस्करण के संशोधनकर्ता श्री रूप नारायण पांडेय इन दोनों को एक ही मानते हैं और परिशिष्ट में लिखते हैं—

'ये ५ और ६ नंबर के अवधेश एक ही हैं।'

(ग) विनोद—

"विनोद में इनका उल्लेख १९८५ संख्या पर है और इनका अभेदत्व स्वीकार किया गया हैं—

नाम—(१९८५) अवधेश, चरखारी, बुंदेलखंड

कविता काल–१९०१

विवरण—ये महाराज रतन सिंह चरखारी नरेश के यहाँ थे। सरोजकार ने सूपा वाले बुन्देलखण्डी का एक और नाम दिया है। जान पड़ता है कि ये दोनों नाम एक ही हैं। साधारण श्रेणी।

(घ) खोज रिपोर्ट—

"अवधेश (?)

कवित्त—दे० ४७/८"

इतनी सामग्री संकलन कर लेने के बाद पुनः दूसरी बार दूसरे कागज पर समायोजित सामग्री प्रस्तुत की गई है। अवधेश कवि पर दूसरी बार यह लिखा गया है—

५ (६)

५. अवधेश ब्राह्मण बुन्देलखंडी, चरखारी, सं० १९०१ में उ०।

यह कवि राजा रतन सिंह बुन्देला चरखारी अधिपति के कदीम कवि हैं। इनकी कविता सरस है। परन्तु मैंने कोई ग्रंथ इनका नहीं पाया।

टि०—खोज विवरणों में इनका कोई उल्लेख नहीं हुआ है। किसी अवधेश के 'कवित्त' खोज १९४७।८ में उल्लिखित हैं, पर कोई अन्य सूचना नहीं है।

ग्रियर्सन में इनका उल्लेख सं० ५२० पर और ६ संख्यक अवधेश का उल्लेख सं० ५४३ पर हुआ है। ग्रियर्सन ने इन अवधेश को १८४० ई० (१८०७ वि०) में उपस्थित माना है और ६ संख्यक अवधेश को १८३८ ई० (१८९५ वि०) में उत्पन्न माना है।

विनोद में (सं० १९८५) इन दोनों की अभेदता स्वीकार की गई है और लिखा गया है—

'ये महाराज रतन सिंह चरखारी नरेश के यहाँ थे। सरोजकार ने सूपा वाले बुन्देलखंडी का एक और नाम दिया है। ज्ञात पड़ता है कि ये दोनों नाम एक ही है। साधारण श्रेणी, शिवसिंह सरोज के संशोधक श्री रूपनारायण पांडेय भी इन दोनों कवियों की अभेदता स्वीकार करते हैं और सरोज के परिशिष्ठ में लिखते हैं—

'ये ५ और ६ नम्बर के अवधेश एक ही हैं।'

दोनों की एकता मुझे भी समीचीन प्रतीत होती है। दोनों अवधेश ब्राह्मण है, बुन्देलखंडी हैं। पहले अवधेश का ग्राम नहीं दिया गया है, केवल बुन्देलखंडी कहा गया है, दूसरे को भी बुन्देलखंडी कहा गया हैं, पर गाँव भी दिया गया है 'सूपा'। समय भी दोनों का एक ही है, केवल ६ वर्ष का अन्तर है। साथ ही दानों की कविता भी समान रूप से सरस है।

विक्रम सतसई के रचयिता चरखारी नरेश महाराज विजय विक्रमादित्य का देहान्त सन् १८२९ ई० (सं० १८८६ वि०) में हुआ था। तदनन्तर उनके पौत्र रतन सिंह जी चरखारी की गद्दी पर बैठे, क्योंकि उनके चारों पुत्र उनके जीवनकाल ही में दिवंगत हो गए थे। इन महाराज रतन ने सन् १८६० ई० (सं० १९१७ वि०) तक राज्य किया। अवधेश नं० ५ को सं० १९०१ में उ० और अवधेश नं० ६ को सं० १८९५ में उ० लिखा गया है। ये संवत इनके रचनाकाल ही हैं, जन्मकाल नहीं। यदि इन्हें जन्मकाल माना जाता है, तो अवधेश जी रतन सिंह जी की मृत्यु के समय १६ या २२ वर्ष के ही रहे होंगे—और तब इन्हें रतन सिंह जी का 'कदीमी कवि' नहीं कहा जा सकेगा।

इन रतन सिंह जी के दरबार के अन्य कवि हैं गोपाल और व्यंगार्थ कौमुदी के प्रसिद्ध रचयिता प्रताप साहि। स्वयं रतन सिंह जी भी साहित्यसेवी थे। इन्होंने 'रतन चन्द्रिका' नाम से विहारी सतसई की टीका की थी। विनय पत्रिका का भी तिलक लिखा था, मिताक्षरा भाषा वर्तमान कानून की रीति पर बनाया था, तथा सुन्दर रचनाओं का एक संग्रह 'रतन हजारा' नाम से किया था, जो भारत जीवन प्रेस काशी से कई बार छपा था।[1]

---

१. खोज रि० १९२६।२९३ ए (पुष्पिका)।

६ (७)

६ अवधेश ब्राह्मण सूपा के (२) बुन्देलखंडी, सं० १८९५ में उ०।

यह कवि बहुत सुन्दर कविता करने में चतुर थे। परन्तु कोई ग्रंथ मैंने इनका नहीं पाया।

टि० देखिए अवधेश संख्या ५—

तृतीय संस्करण में 'भूपा' लिखा गया है, शुद्ध 'सूपा' ही है। जैतपुरी कवि मंडन के 'रस रत्नावली' की एक प्रति के लिखक गुमान सिंह ब्राह्मण जुझोटिया स्थान 'सूपा' के हैं।[1]

सरोज सर्वेक्षण का टंकण करते समय इस विवरण को और भी मांजा गया है।

सर्वेक्षण की भूमिका के सातो अध्याय एक ही बार लिखे गए थे। उपसंहार वाला अंश तो कभी लिखा ही नहीं गया। उसके केवल विचार विंदु लिख लिए गए थे। उपसंहार वाले अंश को पिताजी ने स्वयं एक अँगुली से टाइप किया था। वे सबेरे टाइप करने बैठते थे और दस बजते बजते आठ-दस पृष्ठ टाइप कर लेते थे।

पीछे अवधेश कवि के सरोज के प्रारूप १ ओर प्रारूप २ दिए गए हैं। ऐसे एक हजार कवियों के दोनों प्रारूप प्रस्तुत करना, फिर टंकण-काल में भी यथासंभव संशोधन करना—कितना अध्यवसाय पूर्ण काम है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

सरोज सर्वेक्षण के वे दोनों प्रारूप पिताजी के पास अब भी सुरक्षित हैं।

२२. हिन्दी कविता का इतिहास: आदिकाल

[डा० संकटा प्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, पी- एच० डी०]

डा० किशोरी लाल गुप्त ने अब तक छोटे-बड़े सब मिला कर सवा सो से अधिक ग्रंथों की रचना की है। इसमें मौलिक, अनूदित, सम्पादित, गद्य, पद्य, आलोचना शोध सभी तरह को कृतियाँ हैं। गुप्त जी की मौलिक कृतियों में 'हिन्दो कविता का इतिहास' अपना विशिष्ट स्थान रखता है, कारण इसके द्वारा उन्हें हिन्दी की साहित्यिक सम्पदा के एक महत्त्वपूर्ण अंग पर आद्योपान्त और समग्रतः दृष्टि डालने का अवसर मिला है।

---

१. चरखारी राज्य के कवि—ले० कुँवर कन्हैया जो, चरखारी (नागरो प्रचारिणी पत्रिका भाग ९, अंक ४ माघ १९८५)

गुप्त
५-८-५६

'हिन्दी कविता का इतिहास' ८ खंडों में पूरा होने को है। इसके ५खंड लिखे जा चुके हैं, जो अभी तक अप्रकाशित है। मुझे इसके केवल पहले खण्ड 'आदिकाल' को पूर्ण रूप से देखने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है। ग्रंथ के आरंभ के 'दो शब्द' में गुप्त जी कहते हैं, ''यह ग्रंथ चालीस दिनों में प्रस्तुत हुआ है। यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि १९५२ ई० से ही मैं हिन्दी काव्य के वृहत् संकलन में लगा रहा हूँ, जो १८ जिल्दों में सम्पन्न होकर अप्रकाशित पड़ा है।'' तात्पर्य यह है कि गुप्त जी का यह 'इतिहास' एक झटके में नहीं लिखा गया है। इतने विशाल ग्रंथ का प्रणयन एक झटके में हो भी नहीं सकता था। निश्चय ही यह दीर्घ-काल-व्यापो साधना की परिणति है।

१९५९-६० में आचार्य प्रवर शुक्ल के 'इतिहास' का नवीन संशोधित संस्करण पढ़कर और नई खोजों के फलस्वरूप प्रकाश में आई सामग्री की दृष्टि से उसके अधूरेपन को लाक्षित कर गुप्त जी के मन में हिन्दी साहित्य का एक नया इतिहास लिखने का विचार सर्व प्रथम पैदा हुआ था। वे कहते हैं, ''अपनी सीमित शक्ति का अनुभव करते हुए मैंने गद्य का इतिहास छोड़ दिया, केवल पद्य के इतिहास को लिया।''

अस्तु, पचीस वर्षो के अंतराल से गुप्त जी का यह अनुष्ठान सन् १९८१-८८ में पूरा होना शुरू हुआ। इस बीच 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के रूप मैं अनेकानेक ग्रंथ प्रकाश में आते रहे हैं। साथ ही अनवरत चलने वाली खोजों के फलस्वरुप 'इतिहास सम्बन्धी नई सामग्री के भी सामने आने का क्रम बना रहा। गुप्त जी ने अपने ग्रंथ में सभी स्रोतों से अद्यावधि प्राप्त सामग्री का उपयोग किया है।

गुप्त जी साहित्य-इतिहास-लेखन में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की पद्धति के कायल हैं और 'हिन्दी कविता का इतिहास' लिखने में उन्होंने उन्हींकी पद्धति का अनुसरण किया है। किसी काल एवं धारा की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करने के पश्पात् उसके कवियों को एक-एक करके लेते हैं और कवि-वृत्त देने में जरा भी कंजूसी नहीं करते। उनका प्रयत्न होता है कि प्रभूत उदाहरणों से कवि-विशेष की सभी प्रमुख विशेषताएँ उजागर कर दें। आदिकाल के कवियों की भाषा इस समय के लोगों को जटिल लगेगी, इस बात को ध्यान में रखते हुए गुप्त जी प्रत्येक उद्धृत कविता का अर्थ साफ-सुथरी भाषा में समझाते चलते हैं। उनकी यह शैली अत्यन्त उपादेय श्लाधनीय है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल नामकरण की दृष्टि से सदा से विवाद का विषय रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने उसे वीर गाथा काल नाम दिया, तो कालान्तर के इतिहास लेखकों ने अपने विवेक के अनुसार उसे अनेक भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया। डा० गुप्त ने इन सभी के मतों को उद्धृत करके उनका सम्यक विवेचन किया है और अन्त में इस काल के लिए 'आदिकाल' नाम ही उपयुक्त सिद्ध किया है। साहित्य के इतिहास

का जो काल-खण्ड कई तरह की काव्य-धाराओं से आप्लावित रहा हो, उसका नाम किसी एक काव्य-धारा के आधार पर रखना उचित नहीं, गुप्त जी के इतिहास से यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है। उसका प्रवृत्ति-निरपेक्ष नाम ही उचित है।

'हिन्दी कविता का इतिहास' से कई, परम्परा से मान्य पर भ्रान्त, धारणाओं का निराकरण होता है, कई नवीन ऐतिहासिक तथ्य सामने आते हैं। इतिहास-शोधन का यह पुनीत कार्य गुप्त जी ने बड़ी विनम्रता और उतनी ही निर्भीकता से किया है। इस दृष्टि से उनकी इस कृति का बड़ा महत्त्व है कि उन्होंने अधुनातन शोध-सामग्री का समावेश इसमें कर दिया है। ऐसा करने में उन्होंने न तो अपने गुरु आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल के प्रति संकोच का प्रदर्शन किया है, न मिश्र बन्धुओं, न महापंडित राहुल सांकृत्यायन, न आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, न डा० माता प्रसाद गुप्त के प्रति। तथ्यों की गैर-जानकारी से, प्रमाद से, अज्ञान से, जहाँ भी उनके किसी पूर्ववर्ती लेखक से भूल हुई है, गुप्त जी ने उसका बेलाग खंडन किया है और सही बात को सामने रखा है।

सबसे बड़ी बात यह है कि गुप्त जी का 'इतिहास' हिन्दी की आदिकालीन काव्य-धरोहर को हमारे सामने बड़ी सफाई से रखता है। उसमें कहीं भी उलझन नहीं है। इस काल में होने वाले सभी कवियों की कविताओं का उन्होंने गंभीरता, सूक्ष्मता और सहृदयता से परीक्षण किया है और उसके आधार पर उन्हें भिन्न-भिन्न कोटियों में रखा है। इस कार्य में उन्होंने न केवल अपने काव्य-पारखी हृदय का परिचय दिया है, वरन् उच्चकोटि के विवेक और ईमानदारी का भी प्रदर्शन किया है। विभिन्न कवियों को उनके काव्य गुणों के आधार पर जब वे विभिन्न काव्य-धाराओं के अंतर्गत रख चुके, तब भी कुछ कवि बच गए, जिन्हें वे किसी भी कोटि में रखना उचित नहीं समझते। उनके लिए उन्हें 'अन्य कवि' की एक नई कोटि बनानी पड़ी, यद्यपि ऐसे कवियों की संख्या चार पाँच से ऊपर नहीं है, पर उन्हें ऊपर की कोटियों में खपा देना गुप्त जी को गवारा नहीं हुआ। मैं इसे इस बात का प्रमाण मानता हूँ कि डा० गुप्त में कविता परखने की बड़ी ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है और वे अपना कार्य गहरी निष्ठा से सम्पादित करते हैं।

'हिन्दी कविता का इतिहास' सिद्ध-काव्य-धारा से आरम्भ करके 'अन्य कवि' तक के नौ अध्यायों में विभाजित करके प्रस्तुत किया गया है। गुप्त जी का विवेचन ऐसा है कि प्रत्येक धारा के नाम का औचित्य तथा अन्य धाराओं से उसका पार्थक्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है। फिर, प्रत्येक धारा के अन्तर्गत पाठक को कुछ-न-कुछ नई सामग्री मिल जाती है जिससे उसका इतिहास-विषयक ज्ञान समृद्ध होता है और गलत जानकारी को ठीक करने में मदद मिलती है।

गुप्त जी ग्रंथ के आरम्भ में ही हमें सूचित कर देते हैं 'मिश्र बन्धु विनोद' में परिगणित 'खुमानरासो' 'विजयपल रासो' के रचयिता को वे 'आदिकाल' में स्थान नहीं दे सकते, क्योंकि वे उत्तरकालीन कवि हैं और पुण्ड, पुखी या पूषः को तो वे हिन्दी का कवि मानते ही नहीं, संस्कृत का कवि मानते हैं।

'भूमिका' के अन्तर्गत उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध काल-सीमाओं पर विचार किया है। अपने पूर्ववर्ती सभी इतिहासकारों को विस्तार से उद्धृत करके उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि आदिकाल का विस्तार ८०० वि० से १४०० वि० तक मानना उचित होगा। इस प्रकार आचार्य शुक्ल जी द्वारा निर्धारित १०५०से १३७५ वि० की दोनों सीमाओं को वे आगे-पीछे कर देते हैं। शुक्ल जी ने विद्यापति को आदिकाल के अन्तर्गत रखा है। डा० गुप्त का मत है कि 'वस्तुतः अपभ्रंश-काव्य-परम्परा की लपेट में आकर कीर्तिलता की बदौलत शुक्ल जी ऐसा कर गए। शुक्ल जी ने जो अनवधानता वश किया, उसे अब ठीक कर देना चाहिए।''

डा० गुप्त की प्रवृत्ति विस्तार से भयभीत न होने की है। वस्तुतः वे विस्तार-प्रिय लेखक हैं। किसी बात को स्पष्ट करने के लिए जितना भी विस्तार वे आवश्यक समझते हैं, उसे देने से हिचकते नहीं। सिद्ध-काव्य-धारा में उन्होंने न केवल सिद्ध-कवि सूची दी है, ८४ सिद्धों को 'सिद्ध' सूची भी दे दी है। तदनंतर यह समझाने के लिए कि ८४ सिद्धों में से कौन-कौन से सिद्ध कवि भी थे और वे किस-किस शतो में हुए, उन्होंने तीन अलग सूचियाँ दी हैं। सिद्ध कवियों के वर्ण्य विषय देने के साथ गुप्त जी ने उनकी कविताओं से अनेक सुन्दर उदाहरण दिये हैं।

नाथ काव्य-धारा के वर्णन में लेखक ने सिद्धों से नाथों का मौलिक अंतर तो दिखाया ही है, नाथों की योग-साधना के प्रसंग में हठयोग के विविध अंगों का विस्तार देना जरूरी समझा है। उनका यह विस्तार संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त उपादेय और स्पष्टता लिए हुए है। सिद्ध-कवियों की प्रवृति मूलक अथवा शृंगारी कविताओं का रसास्वादन करने के ठीक बाद ही नाथ-कवियों के निवृत्ति अथवा वैराग्य-परक उदाहरणों को पढ़कर यह विचार आये बिना नहीं रहता कि नाथ कवियों की कविता कहीं सहजिया सिद्धों की तांत्रिक साधनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया तो नहीं थी। गुप्त जी ने कई कवियों के नाम दिये हैं, जो सिद्धों की तांत्रिक क्रियाओं से खिन्न होकर नाथ-पंथ में शामिल हो गये थे।

जैन काव्य धारा को डा० गुप्त ने अपने इतिहास के सबसे अधिक पृष्ठ दिये हैं। कदाचित् जैनियों की इस शिकायत को दूर करने के लिए कि इन जैन कवियों की रचनाओं को धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक मानकर उनके पूर्ववर्ती इतिहास लेखकों ने या तो उनकी नितान्त उपेक्षा की है, या उन्हें बहुत कम महत्त्व और स्थान दिया है। इस युग के 'रासो' नामधारी अधिकतर काव्य-ग्रंथ जैन कवियों द्वारा ही रचे गये।

प्रसंगतः गुप्त जी ने 'रासो' की उत्पत्ति और इस शब्द के संभावित अर्थ से सम्बद्ध विवाद पर विस्तार से विचार किया है। उनकी स्थापना है कि "रासो का सम्बन्ध रास (नृत्य) से तो है ही, नाट्य रासक नामक दृश्य काव्य से भी रहा है। पर धीरे-धीरे नेत्रों से इस नृत्यादि का निषेध हो गया और 'रासोकाव्य' शुद्ध श्रव्य-काव्य बन गया।"

'वीर काव्य-धारा' का उपोद्घात करते हुए डा० गुप्त कहते हैं कि शुक्ल जी ने "केवल ९ ग्रंथों के आधार पर इस समस्त युग को वीर गाथा काल कहा था।" इन नौ ग्रंथों में पाँच ग्रंथ नोटिस मात्र है। खुमानरासो, विजयपाल रासो परवर्ती रचना हैं। शेष केवल दो रचनाओं—पृथ्वीराज रासो और कीर्तिलता—के आधार पर इस समस्त काल को वीर गाथा काल नहीं कहा जा सकता। बाद में हुई खोजों में मिली सामग्री के आधार पर गुप्त जी ने इस धारा में १३ कवियों को समाविष्ट किया है। इनमें चन्दवरदायी स्वभावतः सर्वश्रेष्ठ हैं।

शृंगार काव्य-धारा में १० कवि परिगणित हैं। रोड कवि की काव्य-कृति 'राउल वेलि' के वर्णन में 'राउल' शब्द की उत्पत्ति की चर्चा है। गुप्त जी ने डा० माता प्रसाद गुप्त के मत का खण्डन करते हुए राउल का अर्थ 'राजाओं का महल' माना है और कोश तथा मानस के हवाले से अपने मत की पुष्टि की है।

आदि काल की काव्य-रचनाओं में डा० गुप्त को कृष्ण काव्य, सूफी काव्य तथा संत काव्य के भी अंकुर मिले हैं और उन्होंने इनके पर्याप्त उदाहरण दिये हैं।

स्थाली-पुलाक-न्याय से केवल प्रथम खण्ड का यह संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि विषयवस्तु की आंतरिक व्यवस्था, भाषा शैली की बोधगम्यता, सुन्दर उदाहरणों की बहुलता तथा शोध-प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण डा० किशोरी लाल गुप्त का 'हिन्दी कविता का इतिहास' एक अत्यन्त सफल प्रयास है। उसके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में योग मिलेगा और भावी इतिहास लेखकों का मार्ग प्रशस्त होगा।

—६ पत्रिका मार्ग
इलाहाबाद

२३. हिन्दी के नामरासी कवि

[डा० सीताराम 'सौरभ', भोपाल]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक ही नाम के कई-कई कवि हो गए हैं। एक ही नाम के कई व्यक्ति 'नामराशी' या 'सहनाम' कहलाते हैं। देहातों में इन्हें 'नाउँरासी'

या 'सहनाउँ' कहते हैं। एक ही नाम के साहित्यकारों के होने से अनेक गड़बड़ियाँ हुई हैं। एक के ग्रंथ दूसरे के नाम पर चढ़ गये हैं। एक के जीवन की घटनाएँ दूसरे के जीवन से जुड़ गयी हैं। विल्वमंगल सूरदास और चिंतामणि की आँख-फोड़ घटना महाकवि सूरदास के साथ जुड़ गयी है और जनसाधारण हनुमान चालीसा तथा संकट मोचनाष्टक जैसे ग्रंथों को प्रसिद्ध रामचरितमानस प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास की रचना समझ बैठे हैं। आधुनिक युग में भी नाटककार और कवि गोविन्द वल्लभ पंत अध्यापक को राजनीतिज्ञ गोविन्द वल्लभ पंत (उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और भारत सरकार के पूर्व गृहमन्त्री) समझने की भूल हो गई है। ऐसी स्थिति में हिन्दी के समस्त सहनामी कवियों के जीवन और साहित्य पर विभेदक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। 'हिन्दी के नामराशी कवि' में डा० गुप्त ने यही विभेदक दृष्टि डाली है।

यह काम इतना महत्वपुर्ण रहा है कि डा० गुप्त के पहले भी कुछ लोगों ने इस ओर दृष्टिपात किया है। इस ओर दृष्टि डालने वाले पहले व्यक्ति हैं गोपाल सिंह 'नवीन'। इन्होंने १८९५ वि० में 'प्रबोध रस सुधासागर' या 'सुधासर' नामक ग्रंथ रचा था। इसमें इन्होंने २५ सहनामी कवियों का नामोल्लेख किया है। इस सूची के प्रथम युग्म का वर्णन यों हैं—

"अथ जे जे नामरासी कवि हैं से लिख्यते
ईस ।।२।।
प्राचीन ईस ।।१।।
अैपुर वारे ईस, नवीन के श्री गुर ।।१।।"

नवीन का यह विवरण अत्यन्त संक्षिप्त है। फिर भी इसकी कुछ न कुन उपयोगिता है ही।

आधुनिक युग में बाबू राधाकृष्ण दास ने अपने 'नागरीदास का जीवन चरित्र' (नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २, सं० १९५४) में चार नागरीदासों का विवेचन किया है।

इसी प्रकार डा० किशोरी लाल गुप्त ने भी काशी ना० प्र० सभा की आकर ग्रंथमाला में प्रकाशित 'नागरीदास' में चार नागरीदास स्वीकार किया है। इनमें से तीन तो वही हैं, जिनका विवरण, बाबू राधाकृष्ण दास ने दिया है। डा० गुप्त ने इनके एक नागरीदास के स्थान पर एक परवर्ती विप्र नागरीदास को स्वीकार किया है। इसी प्रकार डा० गुप्त ने 'सुन्दर कविराय ग्रंथावली' की भूमिका में विभिन्न सुन्दरों, 'तुलसी और और तुलसो' में सात तुलसियों, 'महाकवि सूरदास एवं सूर नवीन' में विभिन्न सूरों तथा लाल कवि की भूमिका में विभिन्न लाल कवियों पर विचार किया है।

इनके अतिरिक्त डा० गुप्त ने 'हिन्दी के नामरासी कवि' नामक एक संपूर्ण ग्रंथ ही लिखने की योजना बनाई। जनवरी १९८४ में इसका एक अंश लिखा गया। फिर जो छूटा, सो अभी तक छूटा ही है। लिखित अंश में स्वरों और कवर्ग के कवि आ गये हैं।

स्वरों के कवि-दल

१. अंगद ४, २. अग्रदास २, ३. अजीत सिंह २, ४. अनंत ३,
५. अभयराम २, ६. अमरदास २, ७. अमर सिंह २, ८. अमृत ५,
९. अयोध्या प्रसाद २, १०. अर्जुन ३, ११. अहलाद दास २, १२. आलम २,
१३. आत्माराम ५, १४. आनंद ६, १५. आनंदराय २, १६. आनंदघन ३
१७. आनंददास २, १८. आलम २, १९. इन्द्रजीत ४, २०. इच्छाराम ४,
२१. ईश ३, २२. ईश्वर २, २३. ईश्वरदास २, २४. ईश्वरी प्रसाद २
२५. उत्तम चंद २, २६. उत्तमदास २, २७. उदय २, २८ उदयनाथ ३
२९. उदयराज ३, ३०. उदीत २, ३१. उमराव ३,

कवर्ग के कवि-दल

१. कमल नयन ५, २. करन कवि २, ३. कल्यान ३, ४. कवीन्द्र ३
५. कान्ह ८ ६. कामता प्रसाद ३, ७. कालिका ४, ८. कालिदास २
९. काली प्रसाद २, १०. काशी गिरि २, ११. काशीदास २ १२. काशीनाथ ३
१३. काशीराम ३, १४. कासिम २, १५. किशोरदास ३, १६. किशोरीदास ४
१७. किशोरीलाल ३, १८. किसन ३, १९. कुञ्ज ३, २०. कुशल ३
२१. कृपाराम ७, २२. कृष्ण कवि ६, २३. कृष्णदास १३, २४. कृष्ण सिंह ३
२५. कृष्णानंद २, २६. केशव ३, २७. केशवदास ८, २८. केशवराय ३
२९. केशव प्रसाद २, ३०. कोविद २।

१ खुमान २, २ खुशाल ३, ३ खेम ३, ४ खेमदास ३।
१ गंग ७, २ गंगा २, ३ गंगादत्त २, ४ गंगादास ४।
१ घनश्याम ७, २ घनश्यामदास २, ३ घासीराम ५।

१९०० ई० से ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य हो रहा है और खोज रिपोर्टें भी प्रकाशित हुई हैं। इन खोज रिपोर्टों के संक्षिप्त विवरण भी दो जिल्दों में प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें पूर्व प्रकाशित सभी खोज रिपोर्टों का एक स्थान पर विवरण मिल जाता है। इन संक्षिप्त विवरणों में एक साथ एक नाम के अनेक कवि देखे जा सकते हैं। पर इनका उपयोग बड़ी सतर्कता से किया जाना चाहिए। इसमें २१ तुलसी हैं, डा० गुप्त ने काट-छाँटकर इन्हें केवल ७ स्वीकार किया है। एक कवि की रचना दूसरे सहनामी कवि के नाम पर चढ़ जाना सहज है। एकता का कोई सामान्य सूत्र न मिलने पर एक कवि का दो हो

जाना भी उतना ही सहज है। कभी कभी अन्वेषक के ठीक अर्थ न समझ पाने के कारण भी भूलें हो गई हैं। उदाहरण के लिए संक्षिप्त विवरण में एक ऋषिकेश के बदले दो ऋषिकेश हो गए हैं। एक हैं आगरा वाले, दूसरे हैं वृन्दावनी। वृंदावनी ऋषिकेश की सृष्टि अन्वेषक की नासमझी से हुई है। ऋषिकेश की ऋतुमंजरी में श्यामा श्याम की षटऋतु लीलाओं का वर्णन है। इसके अन्त में दो चरण हैं—

यह ऋतु निपट विलास सों, विलसत श्यामा श्याम
रिसीकेस आनंद सों, वृन्दावन निजु धाम।

अन्वेषक ने 'वृन्दावन निजु धाम' पकड़ा और इले ऋषिकेस से जोड़कर एक वृन्दावनी ऋषिकेश की कल्पना कर ली। यह 'वृन्दावन निजु धाम' 'स्यामा स्याम' की विलास भूमि है, न कि ऋषिकेश का निजी निवास।

डा० गुप्त ने खोज रिपोर्टों का पूरा उपयोग किया है। इस ग्रन्थ में सन्निविष्ट कवियों की निचली काल-रेखा १९०० ई० तक रखी गई है; आधुनिक युग के सहनामी साहित्यकारों को छोड़ दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ में डा० गुप्त ने विस्तार-भय से खंडन-मंडन से बचने का प्रयास किया है। निष्कर्ष सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत कर दिए गए हैं।

ग्रथ एकदम नीरस न हो जाय इसलिए अप्रसिद्ध एवं अल्पज्ञात कवियों के उद्धरण भी दिए गए हैं।

शिवसिंह सेंगर एवं सभा के अन्वेषकों ने हिन्दी साहित्य को शुद्ध काव्य तक ही सीमिन न रखकर साहित्य को व्यापक दृष्टि से देखा परखा है। उन्होंने ज्योतिष, आयुर्वेद, शकुन विचार, स्वप्न विचार, शालिहोत्र सबके रचयिताओं का सन्निवेश किया है। डा० गुप्त ने भी वाङ्मय को व्यापक दृष्टि ही अपनाई है।

डा० गुप्त में काम करने की प्रबल शक्ति है, दृढ़ इच्छा शक्ति है। सब कामों को छोड़कर यदि वे इस ग्रंथ को पूरा करने में लग जायें, तो उन्हें दो तीन माह से अधिक समय न लगेगा।

२४. प्राचीन काव्यों के उद्धारक संपादक : एक संदर्भ ग्रंथ

[डा० भक्तराज शास्त्री, लखनऊ]

पहले ग्रंथ हाथ से लिखे जाते थे। पढ़ने वाले या तो ग्रंथ स्व-पठनार्थ प्रतिलिपि कर लिया करते थे या दूसरों के लिए अर्थ लेकर प्रतिलिपि कर दिया करते थे। जब से भारत में मुद्रण-कार्य प्रारम्भ हुआ, तब से ग्रंथ मुद्रित होने लगे और प्रतिलिपि करने

का काम धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगा। अब तो वह प्रायः समाप्त-सा हो गया है। अब पहले के छपे ग्रंथ या हस्तलेख यदि अनुपलब्ध हो गए हैं, और किसी स्थल पर एकाध प्रति उपलब्ध है, तो उसका फोटो स्टेट करा लेना या जेरावस करा लेना अधिक सुकर है।

फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के भाखा मुन्शी लल्लू जी का कलकत्ता में अपना प्रेस था और उन्होंने कुछ प्राचीन हिन्दी ग्रंथों का सम्पादन प्रकाशन भी किया था। पहले यह होता था कि ग्रंथ की प्रति जिस रूप में भी प्राप्त हुई या पढ़ी गई, उसी को प्रायः ज्यों का त्यों छाप देते थे। फिर अर्थ पर भी विचार होने लगा और यह कार्य साहित्यिक सम्पादन कहा गया। अब वैज्ञानिक संपादन की पद्धति निकली है। प्राचीन काव्यों के सम्पादन का काम पर्याप्त पित्तामार है। जो लोग प्राचीन काव्यग्रंथों का सम्पादन करते हैं, वे एक प्रकार से पुरखों की ख्याति को सँवार सुधार कर बचाए रखते हैं। यह बहुत बड़ा काम है। इसे हिन्दी में प्रायः दो सौ व्यक्तियों ने सम्पन्न किया हैं। साहित्य के विद्यार्थी को यह आवश्यकता प्रायः पड़ जाती है कि वह जाने कि अमुक कवि के कौन कौन से ग्रंथ हैं, क्या वे प्रकाशित हैं, यदि प्रकाशित हैं तो कहाँ से प्रकाशित हैं और कब प्रकाशित हुए थे। पुराने काव्यों के अध्येताओं की सुविधा के लिए डा० किशोरी लाल गुप्त ने 'प्राचीन काव्यों के उद्धारक सम्पादक' नामक संदर्भ ग्रंथ जुलाई १९८३ में प्रस्तुत किया, जो अप्रकाशित होने के कारण शोधार्थियों की सहायता नहीं कर पा रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथ चार खण्डों में विभक्त है—(१) प्रारम्भ युग (२) भारतेंदु-युग (३) श्यामसुन्दर दास युग (४) वर्तमान युग। संवत् १९२५वि० या १८६८ ई० में भारतेन्दु ने प्राचीन काव्य-ग्रंथों के ही प्रकाशन के लिए 'कवि-वचन-सुधा' नामक मासिकपत्र निकाला था। तभी से प्राचीन काव्य-ग्रंथों के प्रस्तुतीकरण का कार्य बराबर चलता आ रहा है। उस युग में लखनऊ के नवल किशोर प्रेस, काशी के भारत जीवन प्रेस और बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस ने यह कार्य बड़े मनोयोग पूर्वक चलाया था।

१८०७ से १८६८ ई० तक के काल को प्रारम्भ युग कहा गया है। इस युग के प्रमुख सम्पादक हैं लल्लू जी 'लाल', सदल मिश्र, कृष्णानंद व्यासदेव 'राग सागर'। दूसरा युग भारतेन्दु-युग है। डा० गुप्त ने इसकी सीमा १८६८ से १९०० ई० तक मानी है। इस युग के प्रमुख सम्पादक हैं— १. भारतेन्दु, २. मन्ना लाल 'द्विज', ३. महेश दत्त शुक्ल, ४. माता दीन मिश्र, ५. शिवसिंह सेंगर, ६. हफीजुल्ला खाँ, ७. नकछेदी तिवारी, ८. नंद किशोर देव शर्मा, ९ जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, १०. सुधाकर द्विवेदी, ११. किशोरी लाल गोस्वामी, १२. परमानंद सुहाने, १३. राम कृष्ण वर्मा, १४. राधाकृष्णदास १५. अंबिका दत्त व्यास, १६. बालदत्त मिश्र।

तीसरा युग है—श्यामसुन्दर दास युग—१९०० से १९३० तक। इस युग के प्रमुख सम्पादक हैं—१. जगन्नाथ दास रत्नाकर, २. श्याम सुन्दर दास, ३. मोहन लाल

विष्णुलाल पंड्या, ४. लाला भगवानदीन, ५. जन्मोहन वर्मा, ६ रामनरेश त्रिपाठी, ७. पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ८. ब्रजरत्न दास, ९. लाला सीता राम बी० ए०, १०. वियोगी हरि, ११. पद्मसिंह शर्मा, १२. मिश्र बन्धु, १३. रामचन्द्र शुक्ल, १४. सत्य जीवन वर्मा, १५ कृष्ण विहारी मिश्र, १६, डा० बाबू राम सक्सेना।

चौथा युग वर्तमान युग है। इसकी काल सीमा १९३० से आज तक है। इसके प्रमुख संपादक हैं—(१) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, (२) जवाहर लाल चतुर्वेदी, (३) नन्द दुलारे वाजपेयी, (४) लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी, (५) बाबा कृष्णदास, कुसुम सरोवर वाले, (६) गणेश प्रसाद द्विवेदी, (७) उमाशंकर शुक्ल, (८) डा० राम कुमार वर्मा, (९) प्रताप नारायण चतुर्वेदी, (१०) परशुराम चतुर्वेदी, (११) शंकर नाथ शुक्ल, (१२) कवि किंकर, (१३) डा० माता प्रसाद गुप्त, (१४) राहुल सांकृत्यायन, (१५) प्रभु दयाल मीतल, (१६) पं० मंगलदास स्वामी, (१७) बाबा तुलसीदास वृंदावनवाले, (१८) डा० शिव गोपाल मिश्र, (१९) हरिहर निवास द्विवेदी, (२०) शिव सहाय पाठक, (२१) डा० परमेश्वरी लाल गुप्त, (२२) डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल, (२३) डा० भालचन्द्र राव तैलंग, (२४) पं० सीताराम चतुर्वेदी।

डा० गुप्त ने इस ग्रंथ में मूलग्रंथों के संपादकों पर तो विचार किया ही है, संग्रह ग्रन्थों के सम्पादकों को भी इसमें सन्निविष्ट किया है। जिसने पुराने काव्यों के संरक्षण, संचयन में कुछ भी योग दिया है, उसे छोड़ा नहीं गया है।

डा० गुप्त की पद्धति यह रही है कि वे पहले संपादक का संक्षिप्त परिचय देते हैं। फिर उसके संपादित ग्रंथों का प्रकाशन-क्रम से विवरण। उदाहरण के लिए एक संपादक का परिचय एवं संपादन-कार्य आगे प्रस्तुत है।

राधाकृष्ण दास : १८९६ ई०

जन्म—श्रावण अमावस्या १९२२ वि० (१८५६ ई०) काशी में।

मृत्यु—अधिक चैत्र कृष्ण चतुर्थी १९६३ वि० (२ अप्रेल १९०६ ई०)। ४२ वर्ष की वय में, काशी में।

राधाकृष्ण दास जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना १८९३ ई० में हुई। प्रारम्भ में यह लड़कों की संस्था थी। पहले प्रौढ़ साहित्यकार राधाकृष्ण दास जी थे, जिन्होंने १८९४ ई० से सभा को सहयोग देना प्रारम्भ किया। १८९३-९४ में पहले ही वर्ष आप सभापति थे, फिर दूसरे से चौथे वर्षों तक उपसभापति, फिर पाँचवें वर्ष मंत्री थे। जिस साल यह मरे, उस साल भी यह मंत्री थे।। बाकी वर्षों में वह बराबर प्रबन्ध समिति के सदस्य रहे।

इन्हींके प्रस्ताव से सभा ने हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज प्रारम्भ करायी थी। १८९६ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने हिन्दी पुस्तकों की खोज का जो कार्य प्रारम्भ किया था, वह इन्हीं के निरीक्षण में हुआ था। सोसाइटी ने जब खोज का काम बन्द किया, तब सभा ने इसकी शुरूआत की।

राधाकृष्ण दास जी ने सभा के लिए निम्नांकित चार काव्य-ग्रन्थों का संपादन किया, जो वहीं से प्रकाशित हैं--

१. ध्रुवदास कृत **भक्त नामावली**--१९०१ ई०। ग्रंथांत में वर्णित भक्तों का ऐतिहासिक वृत्तांत भी दिया गया है।

२. सूदन कृत **सुजान चरित**--१९०२ ई०। कई प्रतियों को मिलाकर पाठ प्रस्तुत किया गया है। पाठांतर भी दिये गये हैं। वीर रस का ऐतिहासिक ग्रन्थ सं० १८२१ के लगभग लिखित। इसी वर्ष सुजान सिंह दिवंगत हुए थे।

३. नन्ददास कृत **राम पंचाध्यायी**—१९०२ ई०।

४. **जंगनामा**—श्रीधर मुरलीधर कृत वीर रस का ग्रन्थ। इसमें फर्रुखसियर के उन युद्धों का वर्णन है, जो उसे दिल्ली की मुगल गद्दी प्राप्त करने के लिए लड़ने पड़े थे। रचना काल सं० १७६९ वि०। प्रकाशन काल १९०४ ई०।

सभा द्वारा प्रकाशित इन चारों ग्रंथों के संपादन में इन्हें किशोरी लाल गोस्वामी का भी सहयोग प्राप्त था।

५. सूर सागर—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से सं० १९५३ वि० (१८९६ ई०) में प्रकाशित। यह राधाकृष्ण दास जी द्वारा संपादित सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। सभा के सूर सागर के प्रकाशन के पूर्व इसी सूर सागर का उपयोग हुआ करता था। इसका पुनर्मुद्रण अब भी सुलभ है। यह द्वादस स्कंधात्मक है। इसने अपने प्रकाशन के साथ-साथ नवल किशोर प्रेस लखनऊ वाले सूरसागर का प्रचलन समाप्त कर दिया था।

डा० गुप्त स्वयं प्राचीन काव्य ग्रन्थों के अच्छे संपादक हैं। इन्होंने छोटे-बड़े ३६ प्राचीन काव्य ग्रंथों का संपादन किया है। इनमें अनेक ग्रन्थावलियाँ हैं। स्वयं शोधार्थी होने तथा प्राचीन काव्यों के संपादन में अभिरुचि होने से इन्होंने यह सन्दर्भ ग्रंथ प्रस्तुत किया है।

२५. हिन्दी के सजग अनुसंधायक

[हरिमोहन मालवीय]

हिन्दी अनुसंधान के कई स्तर हैं। अब तक हिन्दी में हुए शोधकार्यों का लेखा-जोखा समय-समय पर ग्रन्थाकार रूप में प्रकाशित भी हुआ है। उसमें विविधता के

साथ-साथ कई विषयों को पुनरावृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। हिन्दी शोध के स्तर के सम्बन्ध में भी विचार करने पर ज्ञात होता हैं कि इनकी भी तीन कोटियाँ हैं। प्रथम कोटि के शोध-प्रबन्ध आज हिन्दी साहित्य के आलोचना की विकास रेखा खींचते हुए स्थापित्त और मान्य ग्रन्थ के रूप में पठित एवं बहुचर्चित हैं। दूसरी कोटि के वे ग्रन्थ हैं, जिनमें निदेशन अथवा शोध-लेखन के स्तरीय स्वरूप के निखारने की गुंजाइश मौजूद है। तृतीय कोटि के शोध-प्रबंध वे हैं, जिनमें न शोध की दृष्टि हैं, न निदेशन की कुशलता है और न उनमें कुछ ऐसा प्रस्तुत हो पाया है, जिसके लिए कोई जिज्ञासु उनका उपयोग कर सके। वैसे साहित्य-शोध का कोई अन्तिम सोपान नहीं होता। उसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन करने की संभावनाएँ रहती हैं, किंतु यदि अध्येता सजग है, उसमें ज्ञान के लिए अतृप्त आकांक्षा हैं और वैदिक सूक्त के अनुसार चारों ओर से आने वाले ज्ञानालोक के गवाक्ष खुले हुए हैं; तो ऐसे अध्येताओं की शोध-निष्पत्तियों से ज्ञान-पिपासुओं और साहित्यानुरागियों का मन-मस्तिष्क आनन्द की अनुभूति करता है।

ज्ञानार्जन का मार्ग साधनापरक हैं। इसकी साधना में बिरले लोग ही आजीवन आ पाते हैं। लेकिन इसमें भी यह देखना पड़ेगा कि अध्येता शुद्ध ज्ञान-पिपासु है अथवा वह किसी मान्यता और धारणा की परिधि में ज्ञानात्मक तथ्यों को सहेजना, पकड़ना चाहता है। उसके पास वह मेधा, शक्ति, प्रतिभा और योजकता है या नहीं, जो एक सफल अध्येता के लिए आवश्यक हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट है कि अध्येता के सभी गुणों के साथ ही उसमें सजगता का गुण आवश्यक है।

हिन्दी में सजग लेखन का अभाव आज भी बना हुआ है, जबकि हजारों लेखक विविध विषयों में लेखन-कार्य कर रहे हैं। कहीं तथ्यों की भूल मिलती हैं, कहीं विषय-विभाजन की शिथिलता देखने को मिलती है। यहाँ अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के स्तरीय लेखन से तुलना करने का जी चाहता है। वहाँ ग्रन्थों की पादटिप्पणियों, अनुक्रमणिकाओं और ऐतिहासिक क्रम से विचार करके तदनुरूप विषय के प्रतिपादन का प्रयास किया गया परिलक्षित होता है। हिन्दी में उस रूपाकार और कथ्य का अभाव मिलता है। इसका मुख्य कारण यही है कि येन केन प्रकारेण ग्रन्थ-रचना करने की प्रवृत्ति हिन्दी के अनुसन्धानकर्ताओं में अधिक है। इससे हम कह सकते हैं कि सजग लेखक का अल्पांश ही हिन्दी के शोध-लेखों और शोध-ग्रन्थों में मिलता है। प्रस्तुत लेख में इसके विषय में संकेत करना ही पर्याप्त है।

उपर्युक्त पीठिका और सन्दर्भ में मुझे अनायास ही डॉ० किशोरी लाल गुप्त के लेखन का स्मरण हो आता है। वे मेरी दृष्टि में एक सजग अनुसंधायक हैं। मैं १९६४ से उनके कृतित्व से परिचित हूँ। जब में 'बिहारी के काव्य' सम्पादन के सिलसिले में नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य भाषा पुस्तकालय की पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों को

देख-परख रहा था, उसी समय मेरा ध्यान 'हरिऔध' पत्रिका के अंकों की ओर आकृष्ट हुआ था, जिसका सम्पादन डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त ने किया था। इसमें वे अपने छद्म नाम से लिखते थे। छोटे-बड़े विषयों पर सारगर्भित टिप्पणियों से युक्त लेखों के पढ़ने का मुझे सौभाग्य मिला। जिस योजकता और सम्पादन कौशल से डॉ० गुप्त ने 'हरिऔध' पत्रिका का सम्पादन किया था, उससे उनके पाण्डित्य की किंचित झलक मुझे प्राप्त हुई थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी में पाठालोचन के सम्बन्ध में कार्यशील डॉ० कन्हैया सिंह के माध्यम से भी मैं इनके बारे में कुछ जान-समझ पाया था। यह संयोग ही था कि डॉ० किशोरी लाल गुप्त जी नागरीदास ग्रन्थावली के सम्पादन के सिलसिले में नागरी प्रचारिणी सभा में पधारे और उनसे मेरा परिचय हुआ। मैंने भी नागरी दास के 'नागर समुच्चय' का कुछ अध्ययन किया था। नागरीदास और नागर समुच्चय की ओर मेरे आकृष्ट होने के दो कारण थे। प्रथम कारण यह था कि किशनगढ़ शैली की राधा का चित्र देखकर मैं उसकी रूप माधुरी से आह्लादित हो गया था। बाद में पता चला कि यह राधा तो नागरीदास की रक्षिता बनीठनी का रूपांतरण है। डॉ० गुप्त ने नागर समुच्चय को नागरीदास ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित कराकर श्रेयस्कर कार्य किया है। नागरीदास ग्रन्थावली ही क्या, अनेक दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन कार्य उन्होंने किया है।

एक बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पास गुप्त जी मिल गये। मैंने पूछा आजकल आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा 'भाई! सुन्दरी तिलक का इसके ठीक निरन्तर प्रवर्द्धित संस्करणों के आधार पर मैंने ऐसा सम्पादन किया है, जिससे स्पष्ट हो जाय कि कि कौन सा छंद किस-किस संस्करण में था।' कभी वे बताते कि मैंने हिन्दी की काव्य-धाराओं के आधार पर बृहद ग्रन्थ का सम्पादन किया है। मैंने जब भी उनसे सम्मेलन-पत्रिका के साधारण अंकों और विशेषांकों के लेख के लिए अनुरोध किया, उन्होंने सदैव मेरे अनुरोध को स्वीकार किया। मुझे भारतेन्दु और प्रसाद विषयक उनके ग्रन्थों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनकी व्यवस्था और प्रस्तुति हिन्दी शोधकों के लिए मानक है। प्रसाद जी की रचनाओं के कालक्रमात्मक अध्ययन से मैं बहुत प्रभावित हुआ। डॉ० गुप्त ने निरन्तर लेखन और अध्ययन को अपना जीवन-लक्ष्य चुना है। फलतः उनके द्वारा लिखित, रचित और सम्पादित सामग्रियों की संख्या पर्याप्त है। आज भी वे अपने लेखन-कार्य में लगे हुए हैं।

मैंने जैसा प्रारम्भ में निवेदन किया है कि हिन्दी में सजग लेखन की परम्परा कुछ विशिष्ट अध्येताओं में मिलती है। इस परम्परा की कड़ी के रूप में डॉ० किशोरी लाल गुप्त उल्लेखनीय हैं। 'शिवसिंह सरोज' और 'सरोज सर्वेक्षण' के सिलसिले में गुप्त जी प्रायः प्रयाग आते थे और भेंट हो जाती थी। शिवसिंह सरोज को आधार बनाकर आपने मध्यकालीन साहित्य-शोध का उत्कृष्ट कार्य किया है। पदे-पदे सही जानकारी

देने का आपने प्रयास किया है। इसी भाँति हाल ही में प्रकाशित 'तुलसी और और तुलसी' में गुप्त जी ने तुलसीदासनामा कवियों पर अच्छा शोध कार्य किया है।

डा० गुप्त के सम्पादन-लेखन और ग्रन्थ-प्रस्तुति के माध्यम से हम उनके सार्थक श्रम और सारस्वत आराधना के प्रति प्रणति निवेदित कर सकते हैं।

—अध्यक्ष साहित्य विभाग,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

२६. साहित्यानुसंधायक डा० गुप्त

[रामादास]

ग्रंथकर्ता विशेष के वैशिष्ट्य का बोध उसकी कृतियों के विस्तार, स्थायित्व एवम् फल से होता है। श्रेष्ठ कृतियाँ वर्ग और काल की परिधि में सीमित नहीं रहतीं। वे सर्वव्यापक, सर्वकालिक तथा ज्ञान-संवर्द्धन में सर्वहितकारी होती हैं। इस दृष्टि से से श्री किशोरी लाल जी गुप्त की कृतियाँ उन्हें हिन्दी के अधिकारी विद्वानों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करती हैं।

इन्होंने अल्प वय में ही साहित्य-सृजन का श्रीगणेश छन्दबद्ध रचनाओं से किया। वय प्राप्त होने पर इनमें कारयित्री और भावयित्री दोनों ही प्रतिभाएँ प्रस्फुटित हुई। विविध साहित्यिक विधाओं में इनका असाधारण अभिनिवेश इनकी बहुवस्तुस्पर्शिनी विशिष्ट प्रतिभा एवं पुष्ट पांडित्य का परिचायक है। इनके व्यक्तित्व का महत्त्व कहानीकार, नाटककार, टीकाकार, इतिहासकार, अनुवादक, सम्पादक आदि होने में ही निहित नहीं है, अपितु सर्वोपरि साहित्यानुसधायक होने के कारण है। वे जिस विषय पर लिखते हैं, उसके तल तक पहुँचने पर ही लेखन में प्रवृत्त होते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में इनकी शोध-वृत्ति उभर आई है। उसके विवादास्पद भ्रामक अनृत तथ्यों के विश्लेषण तथा परिष्कार का इनका महत् प्रयास स्तुत्य है। महाकवि द्वय तुलसी और सूर की रचनाओं का विश्लेषण कर तत् छापवाले इतर कवियों तथा उनकी कृतियों से सम्बद्ध इनकी खोज हिन्दी में अद्वितीय है।

सरस्वती का उपासक एकांतवासी और नीर-क्षीर विवेकी होता है। ग्राम में निवास, सहज विनीत स्वभाव और निस्वार्थ भाव से साहित्यान्वेषण में इनकी निरन्तर निरति प्रशंस्य है। 'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार' पंक्ति गुप्त जी पर पूर्णतः चरितार्थ है।

भाषा-हंस श्री किशोरी लाल जी गुप्त का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए मुझे स्वधन्यता का अनुभव हो रहा है। उपर्युक्त कथन अतिशयोक्ति नहीं, स्वभावोक्ति है।

—सी० के० २१/२९ ठठेरी बाजार
वाराणसी।

२७. डॉ० गुप्त के स्वतःस्फूर्त शोध-कार्य

[उदयशंकर दुबे]

"डॉ० गुप्त के स्वतः स्फूर्त शोध-कार्य" विषय पर कुछ लिखने के पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि डा० गुप्त से मेरा तात्पर्य "सरोज सर्वेक्षण' जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ के लेखक डा० किशोरी लाल गुप्त (सुघवै, वाराणसी) से है। डा० गुप्त मेरे समीपस्थ गाँव के वासी तथा शोध-क्षेत्र में मेरे अग्रज हैं। विगत तीन दशकों से मेरा उनसे निकट सम्पर्क बना चला आ रहा है। डा० गुप्त ने मुझे प्राचीन पाण्डुलिपियों के अध्ययन, पाठालोचन एवं सम्पादन-कला की सीख दी है। उन्होंने समय-समय पर दुर्लभ ग्रंथों और महत्वपूर्ण सूचनाओं को देकर मेरे अपने शोध निबन्धों को पूरा कराया है। वे सच्चे अर्थों में अनुसंधित्सु हैं। किसी न किसी प्राचीन ग्रंथ के सम्पादन में निरन्तर व्यस्त रहते हैं। उनके द्वारा अब तक सम्पादित प्राचीन ग्रंथों एवं शोध-निबंधों की एक लम्बी सूची है। डा० गुप्त एक सहृदय और सरस कवि भी हैं। 'उराहनौ' ग्रंथ की बहुत सी पंक्तियाँ सुनने का सौभाग्य मुझे मिला है। अपने द्वारा सम्पादित ग्रंथों में डा० गुप्त ने जमकर भूमिकाएँ लिखी हैं, जिसको पढ़कर जिज्ञासु पाठक और अध्येता अपने आप उनके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। डा० गुप्त ने अब तक बहुत अधिक लिख डाला है, किन्तु यहाँ पर हम उनके 'स्वतः स्फूर्त शोध कार्य' के सम्बन्ध में ही चर्चा करना उचित समझते हैं।

शोधकार्य को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—प्रथम योजनाबद्ध शोधकार्य तथा द्वितीय स्वतःस्फूर्त शोधकार्य। योजनाबद्ध शोधकार्य के लिये शोधकर्ता प्रारम्भ में ही एक निश्चित रूपरेखा तैयार कर लेता है और उसी के अनुरूप वह लेखन कार्य करता है। वह सीमा में बँधा रहता है, उन्मुक्त रूप से कार्य नहीं कर पाता। दूसरे प्रकार के शोधकार्य में शोधकर्ता स्वतन्त्र होता है, उसकी सीमा बँधी नहीं होती। यदि हम स्वतःस्फूर्त शोधकार्य को परिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं कि जिस विषय पर कार्य करने की शोधी की पहले से कोई इच्छा न रही हो, उसे किसी विषय पर स्वतः कोई प्रकाश-सूत्र मिल जाय, जो उसे उस सूत्र के सहारे शोधोन्मुख ही नहीं कोई शोधरत होने के लिए विवश कर दे, तो वह स्वयं-स्फूर्त शोधकार्य कहलाता है। प्रथम प्रकार के शोध में शोधक शोधकार्य में लीन होता है। दूसरे प्रकार में शोधकार्य स्वयं शोधक को अपने में लीन कर लेता है। इसमें विषय का चयन नहीं करना पड़ता, विषय स्वतः सामने आ जाता है। शोधक ने जिस विषय पर सोचा-विचारा भी नहीं होता, वह विषय स्वयं उपस्थित हो जाता है, अँधेरे में स्वतः प्रकाश हो जाता है और सहसा अनूठा शोधकार्य सम्पन्न हो जाता है, जिसकी कोई पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

"सरोज सर्वेक्षण" डा० गुप्त का प्रथम कोटि का शोध कार्य है, जिसे उन्होंने पूर्व से पूरी योजना तैयार कर श्रमपूर्वक पूरा किया है। डा० गुप्त के स्वतः स्फूर्त शोध कार्य कई हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. प्राकृत पैंगलम के रचयिता हरिवंभ
२. गुसाइं चरित
३. तुलसी और और तुलसी
४. भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व
५. महाकवि सूरदास और सूर नवीन
६. हजारा
७. ठाकुर तीन नहीं, दो।

१. प्राकृत पैंगलम के रचयिता हरिवंभ

'प्राकृत पैंगलम के रचयिता हरिवंभ' डा० गुप्त का एक ऐसा शोधकार्य है जिसे हम योजनाबद्ध और स्वतः स्फूर्त दोनों प्रकार के संयुक्त शोधकार्य के अन्तर्गत रख सकते हैं। 'प्राकृत पैंगलम' छन्दशास्त्र का प्राचीन विशिष्ट ग्रंथ है। इस ग्रंथ के रचयिता को लेकर विद्वानों में मत वैभिन्य रहा। डा० गुप्त ने ऐतिहासिक प्रमाणों तथा ग्रन्थ में आये छन्द में प्रयुक्त 'हरिवंभ भण' शब्द की उचित व्याख्या कर यह उपस्थापना की कि ग्रन्थ के रचयिता मिश्र हरिहर सुकवि 'हरिवंभ' हैं। इसका रचनाकाल संवत् १४२० वि०, टीका का काल सं० १४४० वि० और संस्कृत अनुवाद का समय सं० १४६० वि० है।

डॉ० गुप्त ने सन् १९६९ ई० में प्राकृत पैंगलम ग्रन्थ का विशद साहित्यिक अध्ययन उपस्थित किया था। उस समय उनका यह योजनाबद्ध श्रमशील स्वाध्याय कार्य था। उन्होंने उस समय इस ग्रंथ के रचनाकार पर विशेष विचार नहीं किया था। प्राकृत पैंगलम के संपादक डा० भोला शंकर व्यास के संस्करण के आधार पर उसी की समीक्षा के रूप में यह ग्रंथ लिखा गया था। डा० व्यास की मान्यता है कि "प्राकृत पैंगलम' संग्रह ग्रंथ है। यह राजस्थान में संवत् १३'७० वि० के लगभग संकलित किया गया था। इसका रचयिता मागध अर्थात बंदीजन-भाट परम्परा का कोई व्यक्ति रहा होगा।" डा० गुप्त ने सन् १९८४ ई० में जब 'हिन्दी कविता का इतिहास: आदि-काल' ग्रंथ लिखना प्रारम्भ किया, तब उन्होंने अपने इस ग्रंथ में उस युग विशेष के रीति ग्रन्थ प्राकृत पैंगलम पर अलग से एक अध्याय देना चाहा। जब इस दृष्टि से उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया तब उन्हें लगा कि 'मागध परम्परा' का अर्थ है—मगध की परम्परा। याकोबी जैसे पुराने लोगों ने भी यहीं अर्थ किया था। डा० गुप्त को पुराने विद्वानों

द्वारा किया गया अर्थ उचित और सार-युक्त प्रतोत हुआ। डा० व्यास ने स्वीकार किया था कि हरिबंभ छापावाला छंद क्षेपक है, जो बाद में जोड़ा गया; किंतु डा० गुप्त ने ऐतिहासिक प्राचीन स्रोतों के आधार पर यह सिद्ध किया कि ग्रंथ के मूल लेखक 'हरि वंभ' (हरिब्रह्म) हैं, उनकी छाप का छंद क्षेपक नहीं है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि हरि वंभ (विप्र, ब्राह्मण, हरि) महाकवि विद्यापति के काव्य गुरु थे और ग्रंथ सं० १३७० वि० का न होकर सं० १४२० वि० के आसपास का है।

वे प्राकृत पैंगलम के रचयिता के सम्बन्ध में सामग्री-विहीन थे, पर व्यास जो का संस्करण पढ़ते-पढते उन्हें स्वतः प्रमाण उसी ग्रंथ में मिल गया और उन्होंने 'प्राकृत पैंगलम' के रचयिता हरिवंभ शीर्षक स्वतंत्र शोध निबंध ही लिख डाला। डा० गुप्त को अचानक यह भान हुआ कि प्राकृत पैंगलम के हरिहर वंभ और विद्यापति के गुरु हरिहर मिश्र एक ही व्यक्ति हैं और यह स्वतः स्फूर्ति लेख लिख उठा। यह उनके स्वतः स्फूर्त शोध-कार्य का अच्छा उदाहरण है।

२. गोसाईं चरित

भवानीदास कृत 'गोसाईं चरित' की पहचान को सबसे पहले हिन्दी साहित्य जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का श्रेय डा० गुप्त को है। इसके पूर्व इस ग्रन्थ का मात्र नामोल्लेख, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज विवरणिकाओं में हुआ था। खोज विवरणिकाओं में इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम 'दासन्यदास' दिया हुआ था, जो अस्पष्ट था। इस शब्द से किसी व्यक्ति विशेष का बोध नहीं होता था। इसी कारण तुलसो-साहित्य के अध्येताओं ने इस ग्रंथ की ओर ध्यान नहीं दिया। डा० गुप्त ने इस ग्रंथ के रचयिता की पकड़ मात्र इसी 'दासन्यदास' शब्द से की, जिसको लोगों ने अस्पष्ट समझकर छोड़ दिया था। इसी एक शब्द के सहारे डॉ० गुप्त ने सिद्ध किया कि गोसाईं चरित के रचयिता भवानीदास हैं जो संवत् १७६० और १८६१ के मध्य में वर्तमान थे।[१] इतना ही नहीं उन्होंने इस ग्रंथ को विधिवत संपादित भी किता। इस ग्रंथ की विस्तृत भूमिका (कुल ११२ पृष्ठ) को पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डॉ० गुप्त ने कितने मनोयोग से ग्रंथ की भूमिका तैयार की है।

इस ग्रन्थ के संदर्भ में उनका वक्तव्य देखने योग्य है—

"१४ मार्च १९६१ को मेरी निगाह सभा की खोज रिपोर्ट १९२३।८४, १९२६।८९ ए० बो० पर पड़ी। इसमें दासन्यदास के तुलसी चरित की नोटिस है।

---

१. भवानीदास के स्वाक्षरों में लिखी राम चरित मानस-अयोध्याकाण्ड की एक हस्तलिखित प्रति लेखक के संग्रह में है। इस पर भवानीदास का हस्ताक्षर है और संवत् १८७५ वि० अंकित है। अर्थात् भवानीदास ने इस प्रति को स्वपठनार्थ संवत् १८७५ वि० में तैयार किया था।

'दासन्यदास' ने मुझे सूझ दी कि यह ग्रंथ वेनीमाधवदास कृत अभी तक अनुपलब्ध गोसाईं चरित है। मनसूर वाला प्रकरण ग्रन्थ का अंतिम अंश है। इसे देखकर मुझे आचार्य चन्द्रबली पांड़े के 'तुलसी की जीवन भूमि' ग्रन्थ का स्मरण हो आया, जिसमें उक्त अंश भवानीदास के गोसाई चरित से उद्धृत है। मेरा अनुमान हुआ कि कहीं भवानीदास और बेनीमाधवदास एक तो नहीं हैं। ...... अत. स्पष्ट हो गया कि भवानीदास के ही गोसाईं चरित को महेश दत्त ने बेनी माधव दास का गोसाईं चरित समझा था और जहाँ उनकी अन्य बातें अशुद्ध हैं, वहीं वेनी माधवदास सम्बन्धी उनका यह कथन भी अनर्गल है।'

वक्तव्य-गोसाईं चरित

इन्हीं महेश दत्त ने सं० १९३० में अपने भाषा काव्य-संग्रह में 'दास वा दासानिदास वा वेनीमाधव दास' कहा है। यही 'दासानिदास' गोसाईं चरित की पहचान का कारण बना। यह गोसाईं चरित सर्वप्रथम सन् १८८९ ई० में ग्रियर्सन द्वारा संपादित रामचरित मानस के संस्करण में छपा। डाँ० गुप्त ने अपनी शोध-परक दृष्टि से इसकी पकड़ की और पुष्ट प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध किया कि गोसाईं चरित भवानीदास की रचना है और इसका रचनाकाल सं० १८२५ के लगभग है। इस ग्रन्थ की भूमिका अध्येताओं के लिये बड़ी उपयोगी है।

३. तुलसी और और तुलसी

डॉ० गुप्त का तीसरा स्वतः स्फूर्त शोधकार्य है--'तुलसी और और तुलसी' रामचरित मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन और उनके अनन्तर कई तुलसी नामधारी कवि समय-समय पर हो गये हैं। इन सबकी रचनाएँ आपस में ऐसी घुल-मिल गईं हैं कि कौन रचना किसकी है, इसका सही विवेचन कर पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य रहा है। बहुत सी रचनाएँ जो अन्य तुलसी नामधारी कवियों की थी, गोस्वामी तुलसीदास के नाम से जोड़ दी गईं। इस विषम समस्या को सुलझाने का कठिन श्रम जिया डा० गुप्त ने 'तुलसी और और तुलसी' ग्रन्थ लिखकर। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज विवरणिकाओं में विवृत विभिन्न २१ तुलसी नामधारी कवियों और उनकी कृतियों तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में वर्णित तुलसीदासों के व्यक्तित्व और कृतित्व का विधिवत अध्ययन-मनन कर डा० गुप्त ने मानस के प्रणेता तुलसीदास, अन्य तुलसी नामधारी कवियों व उनकी रचनाओं को अलग-अलग कर पाठकों तथा अनुसंधित्सुओं में फैले भ्रम का निराकरण किया।

उनका यह ग्रन्थ सन् १९८४ ई० में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। सन् १९८१ ई० में डा० गुप्त ने इस श्रम-साध्य कार्य को अपने हाथ में लिया। वह तुलसी नामधारी कवियों पर मात्र शोध निबन्ध लिखना चाहते थे, किन्तु सामग्री की विपुलता के कारण वह पूरा ग्रंथ बन गया। उन्होंने इसमें सात प्रमुख तुलसी दासों

पर अपना मत व्यक्त किया है। पहला लेख रामचरित मानस के प्रणेता तुलसीदास पर है। दूसरा लेख सतसई के लेखक तुलसीदास से सम्बन्धित है। डा० गुप्त ने समस्त सामग्री का विधिवत अध्ययन कर तब अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। उनकी उपस्थापना है कि 'मानसकार तुलसी और सतसईकार तुलसी दोनों समकालीन हैं और दोनों काशी में रहते थे। प्रायः सौ मीटर के फासले पर.........दोनों तुलसीदासों में स्नेह-सौहार्द्र एवं पूर्ण सद्भाव था।" (प्रागवचनिका, पृ० ४)। आगे उन्होंने लिखा है कि 'सतसईकार तुलसी का साहित्य विपुल है। लगभग पचास ग्रंथ हैं। इन्हीं की रचनाओं का सर्वाधिक घाल-मेल गोसाईं जी की रचना के रूप में हुआ है।'

डा० गुप्त ने जनवरी १९८२ के मानसामृत के द्वितीय अंक में (छाया) तुलसी और उनका कर्तत्व' शीर्षक लेख लिखा था, जो वस्तुतः सतसईकार तुलसी के सम्बन्ध में था। इस विषय पर डा० गुप्त स्वयं लिखते हैं—"सतसईकार तुलसी की छाया पूरे मई १९८१ भर मुझ पर सोते-जागते, घर पर और बाहर भी, बराबर छाई रही और मुझे तभी चैन मिला जब मैंने 'छाया तुलसी और उनका कर्तृत्व' लिख लिया। जैसे मैंने स्वयं नहीं लिखा, किसी ने मेरे सिर पर सवार होकर मुझसे जबरदस्ती लिखवा लिया।" उनके इस कथन से ही ज्ञात हो जाता है कि यह कार्य भी उनकी स्वतःस्फूर्ति का परिणाम है। डा० गुप्त ने इसमें सतसईकार तुलसी के विषय में पर्याप्त सामग्री एक साथ प्रस्तुत की है। सतसईकार तुलसी के सम्बन्ध में डा० गुप्त को सारी प्रेरणा सतसई के निम्नांकित दो दोहों से मिली—

१. अहि-रसना,थन धेनु, रस, गनपति-द्विज गुरुवार
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार। २१
२. रवि चंचल अरु ब्रह्म-द्रव, बीच सु-वास बिचारि
तुलसिदास आसन करे, अवनि-सुता उर धारि। ३६४

उनका तीसरा लेख तुरसीदास निरंजनी पर है। हस्तलेखों में प्रमाद से तुरसीदास निरंजनी, गोसाईं तुलसीदास हो गए हैं। इनके सम्बन्ध में साक्ष्य प्रस्तुत कर डा० गुप्त ने उन्हें गोसाईं तुलसीदास से अलग किया है।

चौथा लेख आचार्य तुलसी पर है, जिनके सम्बन्ध में गुप्त जी ने लिखा है कि "इन्होंने सं० १७१२ में कविमाला नामक एक काव्य संग्रह प्रस्तुत किया था। सरोजकार ने सरोज के प्रणयन में इस कविमाला से सहायता ली थी। इन्होंने रस भूषण और रस कल्लोल नामक दो प्रौढ़ रीति ग्रंथ लिखे थे और छन्द शास्त्र का भी एक ग्रंथ लिखा था। यह रीति कालीन आचार्य थे। अतः इनको यहाँ आचार्य तुलसी के नाम से स्वीकार किया गया है।'

पाँचवाँ लेख घट रामायण के कर्ता तुलसी साहब पर है, जो अपने को पूर्वजन्म में गोसाईं तुलसीदास होना बताते हैं। छठा लेख 'ज्योतिषी तुलसी' पर है और सातवाँ

लेख 'व्रजवासी तुलसी' से सम्बन्धित है। डॉ० गुप्त के मतानुसार 'अनुमानतः इनका समय विक्रम की उन्नीसवीं शदी है, ये दोनों तुलसी भी मेरी उद्भावना है। इन दोनों की रचनाएँ गोस्वामी तुलसीदास के नाम पर चढ़ी हुई है।'' डॉ गुप्त ने सभी तुलसीदास नामराशि कवियों को कृतियों का अध्ययन कर अपने विवेक और प्राप्त साक्ष्य के आधार पर सबको अलग कर आगे के शोधार्थियों के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनका यह शोधकार्य बड़े महत्व का है। तुलसी के नाम पर प्रचलित तमाम ग्रंथों एवं भ्रांतियों का निराकरण उनके इस शोध की विशेषता है।

४. भक्तमाल

हिन्दी साहित्य जगत में भक्तमाल ग्रंथ का विशिष्ठ स्थान है। प्रमुख भक्त कवियों के विषय में जानकारी का यह अच्छा स्रोत है। विद्वानों की ऐसी मान्यता रही है कि भक्तमाल के रचयिता नाभा दास हैं। शिव सिंह सेंगर, डा० ग्रियर्सन, आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान नाभादास को ही ग्रंथ का कर्ता स्वीकार करते हैं, किन्तु डॉ० गुप्त ने उनकी मान्यताओं का खण्डन करते हुये लिखा है कि ''यह ग्रंथ किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर कम से कम तीन व्यक्तियों की संयुक्त कृति है। ये तीन व्यक्ति हैं—अग्रदास और उनके शिष्य नारायणदास तथा नाभादास''। डॉ० गुप्त ने भक्तमाल का आद्यंत अध्ययन कर तथा ऐतिहासिक स्रोतों का आधार लेकर भक्तमाल के रचयिताओं, उसके रचनाकाल, बाद में जोड़े गये भक्तों के विषय में विधिवत जानकारी लोगों के समक्ष प्रस्तुत की है। उनका कथन है कि ''नाभादास का नाम भक्तमाल में कहीं नहीं आया है।............... मेरा ऐसा खयाल है कि नारायण दास के मूल भक्तमाव का परिवर्द्धन नाभादास ने किया और आज वह जिस रूप में उपलब्ध है, उसे वह रूप देने का श्रेय नाभादास को प्राप्त है, इसीलिये लोग मूल लेखक को भूल गए और संपादक तथा परिवर्द्धक को मूल लेखक समझने लगे।'' डा० गुप्त की मान्यतानुसार नारायणदास ही भक्तमाल के मूल कर्त्ता हैं, नाभादास ने उसमें अपनी ओर से और भक्तों की जीवनी जोड़ दी। भक्तमाल सम्बन्धी यह शोध कार्य 'सरोज सर्वेक्षण' के अन्तर्गत हुआ है। भक्तमाल सम्वत् १६५० वि० के आसपास की रचना माना जाता रहा है। पर इसमें १७०७ वि० तक के भक्त कवि सन्निविष्ट हुए है। भक्तमाल के अन्तर्गत ही एक भक्तमाली भक्त का वर्णन हुआ है। बिना भक्तमाल की रचना हुए यह भक्तमाली कहाँ से टपक पड़े? दो छप्पयों में अग्रदास की छाप है। एक दोहे में नारायण दास छाप है। नाभा का नाम कहीं भी नहीं है। ऐसी स्थिति में गुप्त जी ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनके आधार परम पुष्ट है। भक्तमाल को नाभा द्वारा नवीन रूप सं० १७१० के आस पास ही दिया जा सका होगा।

५. महाकवि सूरदास और सूर नवीन

'हिन्दी कविता का इतिहास : भक्ति काल' लिखते समय डा० गुप्त ने अभिनव भरत पं० सीताराम चतुर्वेदी की सम्मति से 'साहित्य लहरी' पर रीति-ग्रन्थ की दृष्टि से

विचार करना चाहा। अतः सम्यक अध्ययन किया। ऐसा करते समय उन्हें स्पष्ट हुआ कि 'साहित्य लहरी' महाकवि अष्टछापी सूरदास की रचना नहीं है। यह स्थापना डा० ब्रजेश्वर वर्मा बहुत पहले १९४४ के लगभग अपने शोध प्रबन्ध 'सूरदास' में २७ प्रमाणों के आधार पर कर चुके थे। पर डा० गुप्त की मान्यता के आधार इन २७ प्रमाणों से सर्वथा भिन्न है। डा० गुप्त को सूझा कि 'साहित्य लहरी' में दिया हुआ वंश-परिचय वाला पद क्षेपक नहीं है, जैसा कि मिश्रबन्धुओं द्वारा मान लिया गया और बाद के लोगों द्वारा मान्य हुआ। उन्हें लगा कि यह 'साहित्य लहरी' के वास्तविक रचयिता का परिचय है और 'साहित्य लहरी' अष्टछापी सूर की रचना नहीं है। चश्मा ही बदल गया। इस चश्मे के बदलने से डा० गुप्त ने 'मुनि पुनि रसन के रस लेख, दसन गौरी नंद को लिखि' से इसका रचना काल १६०७, १६१७ और १६२७ के बदले १६७७ निकाला। 'पुनि' का अर्थ उन्होंने किया 'पुनः मुनि'। इसी रचना काल वाले पद से उन्होंने इस ग्रंथ के रचयिता को 'सूर नवीन' कहा—

तृतीय रिच्छ सुकर्म जोग, विचारि सूर नवीन।

इसी प्रकार डा० गुप्त 'सूर सारावली' को चन्द वरदायी के वंशज इसी ब्रह्म भट्ट 'सूर नवीन' की रचना मानते हैं। इसमें आये 'सरसठ वरस प्रवीन' को यह सं० १६६७, गुरु वल्लभ (गो० गोकुल नाथ, गो० विट्ठलनाथ के चतुर्थ पुत्र) द्वारा दी गयी दीक्षा का काल मानते हैं।

डा० गुप्त सूर सागर भी दो मानते हैं, एक कृष्णलीलात्मक सूर सागर, जिसमें सवा दो हजार पद हैं; दूसरा द्वादश स्कन्धात्मक सूर सागर, जो श्रीमद्भागवत के आधार पर विरचित है। इसमें साढ़े तीन हजार से अधिक पद हैं।

सूर नवीन का अभिज्ञान वंश-परिचय वाले पद को प्रामाणिक मानने और इसे देखने के चश्मे के बदल जाने से सम्भव हुआ है। यह डा० गुप्त की अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वतःस्फूर्त शोध है। इससे सूर सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है।

६. हजारा

शिव सिंह सेंगर ने शिव सिंह सरोज के प्रणयन में एक काव्य-संग्रह से बड़ी सहायता ली थी। इस संग्रह में २१२ कवियों के एक हजार छंद थे। सेंगर जी का ख्याल था कि इस संग्रह को दूलह के पितामह एवं कविन्द के पिता कालिदास त्रिवेदी ने सं० १७७५ के लगभग प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस संग्रह से सरोज में सौ के लगभग कवियों के उदाहरण दिये थे और इसी के आधार पर उन्होंने सैकड़ों कवियों का काल-निरूपण भी किया था। डा० गुप्त ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित एक खंडित हस्तलेख को, सरोज में दिये गये उल्लेखों के आधार पर, हजारा सिद्ध किया है। पर अन्तरंग साक्ष्य के आधार पर वे इसे सौ वर्ष परवर्ती रचना स्वीकार

करते हैं। डा० गुप्त के इस शोध के आधार पर अब सरोज में दिये गये अनेक कवियों का समय सौ वर्ष इधर खिसक आता है और अनेक तथाकथित 'प्राचीन' कवियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। यह शोध-प्रेमी-विद्वानों, अनुसंधित्सुओं एवं व्रजभाषा कवियों तथा काव्य के रसिक प्रेमियों के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। डा० गुप्त कालिदास हजारा के सम्बन्ध में शोध नहीं कर रहे थे, अनायास ही उनसे यह कार्य स्वतः सम्पादित हो गया।

७. ठाकुर

शिव सिंह सरोज में ३ ठाकुर है—१. असनी के प्राचीन ठाकुर सं० १७०० से पूर्व, २. असनी के नवीन ठाकुर वन्दीजन, ३. ठाकुर बुन्देलखण्डी। डा० गुप्त ने हजारा सम्बन्धी जो शोध की है, उसमें ठाकुर बुन्देलखंडी भी है। सरोजकार ने सं० १७०० से पूर्व हुए असनी के ठाकुर की जो कल्पना की है, वह हजारा की शोध से भ्रामक सिद्ध हुई है। डा० गुप्त ठाकुरों पर कोई विशिष्ट शोध करने नहीं बैठे थे। यह शोध हजारा के साथ स्वतः हो गयी है।

८. मुबारक

अलक शतक और तिल शतक मुबारक की रचना के रूप में स्वीकृत हैं। डा० गुप्त जब मुबारक रचनावली का सम्पादन कर रहे थे, तब उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जहाँ अलक शतक में मुबारक की छाप ३४ दोहों में है, वहाँ तिल शतक के किसी भी दोहे में मुबारक छाप नहीं है। यहीं उनका माथा ठनका और अन्ततः उन्होंने सिद्ध कर दिया कि तिल शतक मुबारक की रचना नहीं है, जुगत राय की रचना है और एक सौ वर्ष परवर्ती है। डा० गुप्त तिल शतक के रचयिता की खोज नहीं कर रहे थे। यह कार्य भी स्वतःस्फूर्त शोध का अच्छा उदाहरण है।

एक वाक्य में डॉ० गुप्त के स्वतःस्फूर्त शोध कार्य बड़े महत्व के हैं। इस प्रकार के शोध-कार्य में उन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि अपनाई है, उनकी पकड़ गहरी है, जिसका खण्डन कर पाना कठिन है। समग्र रूप में उनके द्वारा किये गए शोध कार्य अनुसन्धित्सुओं को सदैव प्रेरणा देते रहेंगे, वैसे अपने आप में डॉ० गुप्त स्वतः प्रेरणा के स्रोत हैं।

दि० ९-८-८८

अन्वेषक
हि० सा० सम्मेलन प्रयाग

२८. प्राकृत पैंगलम सम्बन्धी डा० गुप्त की शोध

[राम जी गुप्त' धीरज']

डा० किशोरी लाल गुप्त ने प्राकृत पैंगलम का अच्छा खासा अध्ययन करके १९६९ ई० में इस पर एक समीक्षा ग्रंथ लिखा। उनका यह अध्ययन शुद्ध साहित्य कि दृष्टि से हुआ हैं। भादों अमावस्या २६-८-८४ को उन्हें प्राकृत पैंगलम के रचयिता के सम्बन्ध में स्वत: संज्ञान हुआ। तदनुसार इसके रचनाकाल पर भी पुनर्दृष्टि डालनी पड़ी।

पुराने लोग मानते थे कि प्राकृत पैंगलम संग्रह गन्थ है। डा० गुप्त का कहना है कि यह संग्रह ग्रन्थ नहीं है। यह योजनाबद्ध सुविचारित ढंग से लिखी गयी एक व्यक्ति की रचना है। कुछ उदाहरण दूसरों के हैं। यह पद्धति तो आज भी है।

पुराने लोग मानते थे कि प्राकृत पैंगलम मागव परंपरा का ग्रंथ है। डा० गुप्त प्राकृत पैंगलम के संपादक डा० भोला शंकर व्यास से 'मागध' के बन्दीजन वाले अर्थ से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि यह मागध-परम्परा का ग्रंथ है अर्थात् मगध में रचा गया। यह न तो भाटों द्वारा रचा गया, न राजस्थान में रचा गया या संकलित हुआ।

डा० गुप्त का कथन है कि हरिवंभ वाले छंद क्षेपक नहीं हैं। हरिवंभ ही प्राकृत पैंगलम के रचयिता हैं। यह हरिवंभ महाकवि विद्यापति के गुरु थे। इनका नाम था महामहोपाध्याय हरिहर मिश्र। 'हरिवंभ' का अर्थ है 'हरि ब्राह्मण'। बंभ = ब्राह्मण।

डा० गुप्त का कथन है कि महामहोपाध्याय हरिहर मिश्र प्राकृत पैंगलम के रचयिता हैं। उन्होंने सं० १४२० के लगभग इसकी रचना की। इसका रचनाकाल सं० १३७० नहीं है।

महामहोपाध्याय हरिहर मिश्र के पुत्र रविकर मिश्र या श्रीपति मिश्र थे, जिन्होंने इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका 'पिंगल सार विकासिनी' नाम से की। यह टीका सं० १४४० के लगभग रची गयी।

दामोदर मिश्र, रविकर मिश्र या श्रीपति मिश्र के पुत्र एवं महामहोपाध्याय हरिहर मिश्र के पौत्र थे। इन्होंने प्राकृत पैंगलम का संस्कृत अनुवाद 'वाणीभूषण' नाम से किया है। यह अनुवाद सं० १४६० के लगभग हुआ।

मूल ग्रन्थ के रचयिता, टीकाकार एवं संस्कृत अनुवादक एक ही वंश के हैं और परस्पर पिता, पुत्र, पौत्र हैं।

पुराने लोगों ने पिंगल को प्राकृत पैंगलम का रचयिता कहा है। डा० गुप्त ने इसे मिथ्या सिद्ध किया है और कहा है कि पिंगल ऋषि का नामोल्लेख छंदों के लक्षणों में रचयिता के रूप में नहीं हुआ है, प्रमाण के रूप में हुआ है।

उत्तरार्द्ध में प्राकृत पैंगलम के छंद लक्षणों को आधुनिक पद्धति पर क्रमवद्ध कर दिया गया है और उदाहरणों को विषयानुसार वर्गीकृत करके उनका अर्थ भी दे दिया गया है।

'प्राकृत पैंगलम और उसके रचयिता हरिवंभ' डा० गुप्त की एक विशिष्ट कृति है और शोध का अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श है।

—लेबर कालोनी, वाराणसी।

२९. सूर नवीन सम्बन्धी डा० गुप्त का उद्घोष

[श्री श्रीनाथ पाण्डेय, बी० ए०]

१९४६ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० व्रजेश्वर वर्मा ने अपने 'सूरदास' नामक शोध प्रबन्ध में २७ तर्कों के आधार पर घोषित किया कि 'साहित्य लहरी' और 'सूर सारावली' महाकवि सूरदास की रचनायें नहीं हैं। उनकी यह शोध निषेधात्मक या ऋणात्मक थी, क्योंकि उन्होंने इनके रचयिता के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट विचार नहीं व्यक्त किये थे। इधर हमारे मित्र डा० किशोरी लाल गुप्त ने भी वर्मा जी के स्वर में स्वर मिलाकर घोष ही नहीं। उद्घोष किया है। उनकी यह शोध धनात्मक है। क्योंकि उन्होंने इन ग्रंथों के रचयिता पर पूर्ण प्रामाणिक विचार भी व्यक्त किये हैं और उसके ऐतिह्य को ढूंढ निकाला है। साथ ही उन्होंने दो सूरसागरों की भी स्थापना की है। डा० गुप्त ने व्रजेश्वर वर्मा के २७ तर्कों से कोई सहायता नहीं ली है। इनके तर्क अपने हैं।

डा० गुप्त हिन्दी कविता का इतिहास लिख रहे हैं, जब वे आदि काल का इतिहास लिख चुके, तब उनकी भेंट आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी से हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में तुलसी जयंती के अवसर पर १९८४ ई० में हुई और उन्होंने अपने इस नवीन साहित्यिक कार्य की चर्चा उनसे की। तब पंडित जी ने कहा कि सूर पर जब लिखो, तब साहित्य लहरी पर अलंकार ग्रंथ की दृष्टि से विशेष विचार करो। इस दृष्टि से इसपर अभी कुछ नहीं लिखा गया है।

भक्तिकालीन हिन्दी कविता का इतिहास प्रस्तुत करते समय डा० गुप्त ने साहित्य लहरी को रीति-ग्रंथ की दृष्टि से पढ़ा और इसके अन्त में दिये गये वंशावली

वाले पद ने इन्हें एक नई दृष्टि ही दे दी, ऐसी दिव्य-दृष्टि जो सूर के किसी अध्येता को नहीं मिली थी। सरदार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्ण दास आदि (सभी १९०० ई० से पूर्व) ने साहित्य लहरी को महाकवि सूर की ही रचना समझा था और वंशावली वाले पद में महाकवि सूर की ही वंशावली पाई थी अर्थात् वे अष्टछापी सूर को चंद वरदाई का वंशज भाँट मानते थे। हिन्दी नवरत्न लिखते समय मिश्रबन्धुओं ने भी साहित्य लहरी को अष्टछापी सूर की ही रचना स्वीकार किया, पर उन्होंने वार्ता-साहित्य के आधार पर सूर को सारस्वत ब्राह्मण माना और पहली बार डिंडिम घोष किया कि वशावली वाला पद महाकवि सूर कृत नहीं है। किसी ब्रह्मभट्ट ने अपनी जाति का गौरव बढ़ाने के लिए बाद में यह पद जोड़ दिया है और यह क्षेपक है। आज तक यह पद क्षेपक माना जाता रहा है। डा० गुप्त का कहना है कि न तो उक्त पद अष्टछापी सूर का है, न साहित्य लहरी ही। उक्त पद क्षेपक नहीं है। जिस व्यक्ति ने साहित्य लहरी की रचना की, इस पद में उस व्यक्ति का वंश-परिचय है। दृष्टिकोण बदल गया। अभी तक साहित्य लहरी को महाकवि सूर की रचना मानकर उस पर विचार किया जाता था और वंशावली वाला पद प्रक्षेप माना जाता था; अब डा० गुप्त ने इसे सूर नवीन की रचना मानकर इसे परम प्रामाणिक कहा है। पहले अष्टछापी सारस्वत महाकवि सूर का चश्मा था, अब सूर नवीन का चश्मा है। पहले रंगीन चश्मा था, अब सफेद चश्मा है।

डा० गुप्त ने चंदवरदाई के वंशज को 'सूर नवीन' कहा है। यह 'नवीन' विशेषण उनका अपना दिया हुआ स्व-सर्जित, स्व-निर्मित नहीं है। साहित्य लहरी में इसके रचयिता ने स्वयं अपने को 'सूर नवीन' कहा है—

त्रितिय रिच्छ, सुकर्म जोग, बिचारि 'सूर नवीन'
नंदनंदन दास हित, साहित्य लहरी कीन

सूर नवीन ने तृतीय नक्षत्र कृत्तिका में, सुकर्म योग विचार कर, नंद-नंदन श्री कृष्ण चंद्र के भक्तों के निमित्त, इस 'साहित्य लहरी' नामक ग्रंथ की रचना की।

डा० दीन दयाल गुप्त एवं डा० प्रभु दयाल जी मीतल के पूर्व तक साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६०७ माना जाता था, इन विद्वानों के आधार पर इसे अब १६१७ माना जाता है। डा० किशोरी लाल गुप्त इसे १६७७ मानते है। एक ही पदावली से १६०७, १६१७, १६७७ निकाला गया है। साहित्य लहरी के पद १०८ में रचनाकाल दिया गया है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख
दसन गौरी नंद कौ लिखि, सुबल संवत पेख
नंदनंदन मास, छै ते हीन त्रितिया, वार
नंद-नंदन जनम तें है बान सुख आगार

मुनि = ७; रस = ६; दसन गोरी-नंद कौ = १ । यहाँ तक तो सभी एकमत हैं। पुराने लोगों ने 'पुनि' को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया था और 'रसन' का अर्थ 'रस न' अर्थात नीरस अर्थात शून्य किया था। शुक्ल जी ने देखा कि 'रसन के रस' से एक ही अंक निकल सकता है और वह है रसना के रस अर्थात् षट रस = ६ । इससे यदि दो संख्याएं निकालना अभीष्ट होता तो 'रसन औ रस' जैसा पाठ होता, पर वैसा है नहीं शुक्ल जी ने 'पुनि' को 'सुनि' करके उसका अर्थ शून्य कर लिया। पर भाषा और व्याकरण के पंडित आचार्य शुक्ल जी की बात किसीने नहीं मानी।

डा० दीनदयाल गुप्त एवं डा० प्रभु दयाल मीतल ने 'रसन' का अर्थ 'रसना' जिह्वा किया और इससे १ का अंक निकला। इन लोगों ने शुक्ल जी को 'रसन के रस' की संश्लिष्टता वाली बात को अनदेखा कर दिया और रसन तथा रस को विश्लिष्ट मानकर ही अर्थ दिया। 'रसन के रस' का संबंध वाचक शब्द 'के' इन्हें भी नहीं दिखाई पड़ा।

डा० किशोरी लाल गुप्त 'रसन के रस' को एक मानकर इससे ६ का ही अंक निकालते हैं। वे 'रसन' की स्वतंत्र सत्ता नहीं मानते और इससे न शून्य, न एक और न डा० मुंशीराम शर्मा की तरह दो ही के अंक निकालते हैं। इनकी पकड़ 'मुनि पुनि' वाले 'पुनि' पर है, जिसे शुक्ल जी ने मनमाने ढंग से 'सुनि' बना लिया था। डा० गुप्त का कहना है कि समर्थ कवि का कोई भी शब्द व्यर्थ नहीं होता। सूर नवीन के 'पुनि' का अर्थ है 'पुनः मुनि' अर्थात ७। नंद नंदन मास = माधव, वैशाख। छै ते हीन तृतिया = अक्षय तृतीया। बान = ५। नंद नंदन जन्म ते है बान = कृष्ण के जन्म दिन बुधवार से पाँचवें दिन अर्थात सोमवार। अस्तु साहित्य लहरी की रचना सं० १६७७ में वैशाख अक्षय तृतीया को सोमवार के दिन हुई।

डा० किशोरी लाल गुप्त वंशावली वाले पद के आधार पर सूर नवीन का यह वंश-वृक्ष मानते हैं—

पृथु यज्ञ से उत्पन्न ब्रह्मराव (ब्रह्मभट्टों का पुरखा)
|
(अनेक वंशवरों के अनंतर) चंदबरदाई (पृथ्वीराज रासो का रचयिता)
सं० १२३६–१२४९ वि०
|
द्वितीय पुत्र गुणचंद
|
शीलचंद
|
वीरचंद (रणथंभौर के बीर हम्मीर का साथी, १३३९–१३४२)
|
(कुछ अज्ञात पीढ़ियों के पश्चात) हरिचंद
|
हरिचंद का बेटा (रामचंद्र) ग्वालियर वासी

सातवाँ बेटा सूरचंद (सूर दास या सूर नवीन)

इस पद में एक अटकाने वाली बात है—

'थपि गुसाइँ करी मेरी आठ मद्धे छाप'

'गुसाइँ' का अर्थ लोग गोसाईं विट्ठलनाथ, महाप्रभु वल्लभाचार्य का पुत्र और और 'आठ मद्धे छाप' का अर्थ 'अष्टछाप में' करते हैं। डा० किशोरी लाल गुप्त का कहना है कि यह 'गुसाईं' गुसाईं गोकुल नाथ हैं, जो गुसाईं विट्ठल नाथ के चौथे पुत्र (सं० १६०८-९७) थे। गोसाईं विट्ठल नाथ जी ने सं० १६०२ में अष्टछाप की स्थापना की थी, गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्री नाथ जी के मंदिर में अष्टकालिक कीर्तन के लिए। प्रारंभ में इसमें महाप्रभु वल्लभाचार्य के पाँच शिष्य कुम्भन दास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास अधिकारी और विष्णुदास छीपा तथा गोसाईं विट्ठलनाथ के तीन शिष्य छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास (कुम्भनदास के पुत्र) थे। सं० १६०७ में नंददास वल्लभ संप्रदास में दीक्षित हुए और विष्णुदास छीपा को गोसाईं जी का द्वारपाल बना दिया गया तथा उनके स्थान पर नंददास को उसी वर्ष अष्टछाप में सन्निविष्ट कर लिया गया।

'आठ मद्धे छाप' के संबंध में डा० गुप्त का कहना हैं कि अष्टकालिक कीर्तन के लिए आठ कीर्तनिया भक्तों को परंपरा बराबर बनी रही। मृत्यु आदि के कारण स्थान रिक्त होने पर क्षति की पूर्ति उपयुक्त व्यक्ति द्वारा कर ली जाती थी। सं० १६७७ में या इसके कुछ पूर्व हा और सं० १६६७ के बाद सूर नवीन इसी प्रकार किसी रिक्ति की पूर्ति के लिए 'आठ मद्धे' लिए गए।

वंशावली वाले पद में कवि की तीन छापों का उल्लेख हुआ है—१. सूरजदास, २. सूर, ३. सूर श्याम

नाम राखे हैं सु सूरजदास, सूर सु स्याम

उनका वास्तविक नाम तो सूरजचंद था—

भयो सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम

इसी में एक चरण है--

प्रवल दच्छिन विप्र कुल तें सत्रु ह्वैहै नास

प्रबल दच्छिन विप्र कुल का अर्थ है, महा प्रभु वल्लभाचार्य का वंश, जो आन्ध्र प्रदेश का था, तैलंग ब्राह्मण था। शत्रु कुल का अर्थ काम क्रोध मद लोभ आदि षड् विकार या षड् रिपु है।

यहाँ तक तो हुई साहित्य लहरी में आए आत्मोल्लेखों की बात। अब आइए सूर सारावलो संबंधी आत्मोल्लेखों पर। पहला उल्लेख है--

गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन १००२

पुराने लोगों ने इसका अर्थ किया है कि सूरदास ने गुरु की कृपा से ६७ वर्ष की वय में साहित्य लहरी की रचना की। सूर सारावली का और साहित्य लहरी का भी रचना काल वे सं० १६०७ मानते थे। इसमें से ६७ घटा कर वे सूरदास का जन्म काल १६०७-६७=१५४० वि० मानते थे। पर अब निश्चित हो गया है कि सूर की जन्मतिथि सं० १५३५ में वैशाख शुक्ल पंचमी है। वल्लभ संप्रदाय की मान्यता के अनुसार वे महाप्रभु वल्लभाचार्य (जन्म दिन वैशाख बदी ११, सं० १५३५ वि०) से दस दिन छोटे थे।

डा० किशोरीलाल गुप्त पुराने लोगों के मत से सहमत नहीं। उनका कहना है कि ६७ कवि की वय का सूचक नहीं है, यह संवत्सर है, विक्रम संवत १६६७। यह सूर नवीन का दीक्षा-काल है। इसी वर्ष इस सूर ने गोसाइँ गोकुलनाथ से वल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ली। यह किसी ग्रंथ का रचनाकाल नहीं है। इस वर्ष कवि को राधाकृष्ण की निकुंज-लीला का दर्शन हुआ, गुरु की कृपा से, दीक्षा लेने के उपरांत। इस दर्शन का वर्णन कवि ने छंद ९७९-१००१ में किया है।

यथा—

मोहन वेलि सिंगार विटप सौं, उरझी आनँद वेल
कंचन वेलि तमालै लपटी, रसिक रंग भरि रेल ९८५

दूसरा उल्लेख है—

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो ११०२

यहाँ गुरु का नाम 'वल्लभ' आया है। यह पुरानों के लिए बहुत बड़ा सहारा है। वे इस 'वल्लभ' में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभचार्य का दर्शन पाते हैं। पर डा० किशोरी लाल गुप्त का कथन है कि यह वल्लभ गोसाइँ गोकुल नाथ की छाप है। डा० गुप्त ने आज से प्रायः २०-२२ वर्ष पूर्व 'मानस-मयूख' में 'गोसाइँ गोकुल नाथ वल्लभ का पद साहित्य' शीर्षक एक लेख लिखा था। २५२ वैष्णवन को वार्ता के अन्तर्गत कृष्णोदासी की वार्ता से ज्ञात होता है कि गोकुलनाथ नाम कृष्णोदासी का दिया हुआ है, उनका असल नाम वल्लभ था। इस बात को प्रभुदयाल मीतल जी भी जानते हैं। वे लिखते हैं—

"उनका मूल नाम वल्लभ था, किन्तु गोसाइँ जी की धर्म पत्नी रुक्मिणी जी की परिचारिका कृष्णादासी ने उनका नाम गोकुलनाथ रखा था। लोक में वे गोकुल नाथ जी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।"

—अष्टछाप परिचय, पृष्ठ ७५

तीसरा उल्लेख है—

ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष पद वंद ११०३

इसका अर्थ है सूर नवीन ने अपने दीक्षा-काल सं० १६६७ से पदों में हरि लीला गाना आरम्भ किया। एक लक्ष का अर्थ है वल्लभीयों के एक मात्र लक्ष कृष्ण। एक लक्ष कृष्ण के पदों की वन्दना करके सूर नवीन ने हरि लीला गाई। एक लक्ष पद वंद का अर्थ एक लाख पद नहीं है। इसका सीधा अर्थ है—सूर नवीन ने एक लक्ष्य से एक उद्देश्य से पद-वद्ध हरि लीला रची। मीतल जी ने यही अर्थ किया है और डा० गुप्त उनसे यहाँ सहमत हैं।

यह पद-वद्ध हरि लीला ही सूर सागर है। इसका सार सूर सारावली है। इसका अर्थ हुआ सूर सारावली सूर सागर के बाद की रचना है। डा० गुप्त दो सूर सागर मानते हैं। एक तो अष्टछापी महाकवि सूर के कृष्ण लीला सम्बन्धी उन कीर्तन पदों का संग्रह है, जो उन्होंने श्रीनाथ जी के सम्मुख गाए थे। डा० गुप्त के अनुसार इसमें २००० पद कृष्ण लीला के हैं और २०० पद बिनय के हैं। इसका प्रतिरूप कृष्णानंद व्यासदेव 'राग सागर' कृत कलकत्ता से रागकल्पद्रुम के अन्तर्गत प्रकाशित सूर सागर है (१९०० वि०), जिसके आदि में सूर सारावली एवं एक पद-संग्रह 'नित्य कीर्तन के पद' संलग्न है। इसी का प्रतिरूप लखनऊ वाला सूर सागर (सं० १९२०) है।

सूर सागर का दूसरा रूप द्वादश-स्कन्धात्मक है। यह सूर नवीन की रचना है। सूर नवीन फुटकरिया कवि नहीं हैं। यह योजनाबद्ध ढंग से तीन श्रेष्ठ ग्रंथों के प्रणेता हैं—ये हैं—

१. साहित्य लहरी—सं० १६७७

२. सूर सागर—सं० १६६७-१६८०

३. सूर सारावली —सं० १६९० के आस-पास।

पुराने लोगों ने एक ही सूर सागर के दो रूप माने हैं—१. लीलात्मक, २. स्कन्धात्मक। डा० गुप्त इन्हें एक ही सूर सागर के दो रूप नहीं मानते। वे इन्हें अलग अलग दो सूर सागर ही स्वीकार करते हैं। ये दोनों सूर सागर एक में मिला दिए गए हैं। यह घालमेल १७०० और १७५० के बीच किसी समय हुआ। इसी प्रकार सूर की वार्ता में भी घालमेल हुआ है।

डा० किशोरी लाल गुप्त ने 'महाकवि सूर और सूर नवीन' नामक एक शोध-ग्रंथ लिखा है। इसके तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में विस्तृत शोध की पृष्ठ भूमि है। द्वितीय खंड में महाकवि अष्टछापी सूर पर विचार है और तृतीय खंड में सूर नवीन पर। यह ग्रंथ हिंदुस्तानी अकेडमी इलाहाबाद से प्रकाशनाधीन है। इस ग्रंथ के अनुसार सूर नवीन के संबंध में डा० गुप्त के ये विचार हैं—

१. यह सूर ब्रह्मभट्ट थे, इनका नाम सूरजचंद था। इनके पिता का नाम रामदास था, जो ग्वालियरी थे। इन सूर का जन्म १५९० वि० के लगभग आगरा जिले में कहीं

हुआ था । १६१० वि० के आस पास यह और इनके बाप रामदास उत्तरकालीन सूरियों के दरबार में गायक थे । बाद में वहाँ से ये बैरमखां के यहाँ, फिर अकबरी दरबार में रहे ।

२. सं० १६५३ में अबुल फजल ने आईने अकबरी नामक ग्रंथ फारसी में लिखा । इसमें उसने अकबरी दरबार के गवैयों की जो सूची दी है, उसमें तानसेन का नाम प्रथम स्थानीय है और रामदास का द्वितीय स्थान पर । इन्हें ग्वालेरी कहा गया है । इस सूची में सूर का नाम १९वों संख्या पर है और इन्हें बाबा रामदास ग्वालेरी का बेटा कहा गया है ।

३. स० १६५९ में ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने अकबर के शहजादा सलीम के कहने से अबुलफजल को मार डाला । अबुलफजल अकबर का परम प्रिय था । उसके बध से उसे बड़ा सदमा पहुँचा और वह १६६२ वि० में मर गया तथा सलीम जहाँगीर के नाम से बादशाह हुआ ।

४. संभवतः १६५३ के बाद किसी समय रामदास का भी देहांत हो गया था । सूर का मन १६६२ के बाद से राजदरबार से उचट गया और वह व्रज में विरक्त होकर गुरु की खोज में प्रायः ५ वर्षों तक घूमते रहे ।

५. सं० १६६७ में सूर ने गो० गोकुलनाथ 'वल्लभ' से वल्लभ संप्रदाय में दीक्षा ले ली । गोकुलनाथ जी ने सूर को श्रीनाथ जी के आठ कीर्तनियों में स्थान दिया । अब सूर ने हरि लोला के पद एकनिष्ठ भाव से गाने प्रारंभ किए । ये पद बाद में स्कंधात्मक सूरसागर हुए ।

६. सं० १६७७ में सूर ने साहित्य लहरी की रचना की, सं० १६८० के पहले इनका सूरसागर समाप्त हो चुका था । गोसाईं गोकुलनाथ ने इन सूर को अपना सूरसागर दिखाने के लिए गोसाईं तुलसीदास के पास भेजा था ।

७. १६८० के शीघ्र ही बाद इस सूर ने अपना तीसरा महत्वपूर्ण प्रबंध ग्रंथ 'सूर सागर सारावली' रचा । १६८०-९० के बीच किसी समय इसकी मृत्यु हुई । इनके गुरु गोकुलनाथ जी का निधन सं० १६९७ में हुआ ।

डा० गुप्त का यह शोध ग्रंथ उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना इनका पूर्व-प्रकाशित 'तुलसी और और तुलसी' है । मुझे इस बात का गर्व है कि यह महत्वपूर्ण कार्य मेरे सहपाठी और विद्वान मित्र द्वारा संपन्न हुआ है । अभी इन्हें दोनों सूर सागरों के अलग अलग संपादन का और भी महत्वपूर्ण कार्य करना शेष है । मैं आशा करता हूँ माँ शारदा की कृपा से वह यह कार्य भी प्रामाणिक रूप से संपन्न कर सकेंगे । यों उन्होंने अपने ढंग से इसे कर लिया हैं, पर सूरसागर के प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर इसे प्रामाणिकता प्रदान करना अभी शेष है ।

—दलपतिपुर, खमरिया, वाराणसी

३०. तुलसी संबंधी डा० गुप्त की शोध

[प्रो० जयकुमार मुद्गल, एम० ए०,]

तुलसी के सम्बन्ध में डा० किशोरी लाल गुप्त के दो ग्रंथ हैं—

१. गोसाइँ चरित—वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी—१९६४ ई०।
२. तुलसी और और तुलसी—किताब महल, इलाहाबाद--१९८४ ई०।

कहा जाता था कि गोसाइँ तुलसीदास के कोई शिष्य बेनीमाधव दास थे, जो उनके साथ-साथ घूमा करते थे। इनकी मृत्यु सं० १६९७ में हुई और इन्होंने गोसाइँ चरित नाम से इनका एक जीवन चरित लिखा था, जो उपलब्ध नहीं है। यदि यह मिल जाता तो गोसाइँ जी के जीवन की सब समस्याएँ स्वतः सुलझ जातीं। डा० गुप्त ने इस ग्रन्थ को खोज निकाला और सिद्ध किया कि 'गोसाइँ चरित' किसी बेनी माधव दास की रचना नहीं है। बेनीमाधव दास नामक गोसाइँ जी का कोई शिष्य नहीं हुआ; गोसाइँ चरित भवानी दास की रचना है, इसका रचनाकाल सं० १८२५ के बाद है। भवानीदास रामप्रसाद बिंदुकाचार्य के शिष्य थे, जो गोसाइँ तुलसीदास के अवतार माने जाते थे।

डा० गुप्त की इस शोध से तुलसी दास के सम्बन्ध में कोई धनात्मक लाभ नहीं हुआ, ऋणात्मक लाभ अवश्य हुआ। लोगों की यह धारणा ध्वस्त हो गई कि किसी बेनीमाधव दास ने गोसाइँ चरित लिखा था, जो अनुपलब्ध हैं। यदि यह मिल जाता तो गोसाइँ जी के जीवन की समस्त गुत्थियाँ सुलझ जातीं। गुप्त जी की यह निषेधात्मक उपलब्धि है।

'गोसाइँ चरित' के साथ-साथ 'मूल गोसाइँ चरित' के सम्बन्ध में भी डा० गुप्त ने विचार किया है और अनेक पूर्ववर्ती विद्वानों के स्वर में स्वर मिलाते हुए अन्तिम कथन कह दिया है कि वह १९०० ई० के आसपास अयोध्या के दो साधुओं का सम्मिलित जाल है और 'गोसाइँ चरित' की अनुपलब्धि से लाभ उठाने के लिए इसकी रचना की गई थी। यह शोध भी निषेधात्मक है।

'तुलसी और और तुलसी' भी निषेधात्मक शोध है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में कुल २२ तुलसी मिलते हैं। तुलसी के विद्वानों ने इन सभी की कृतियों को गोस्वामी तुलसी दास के नाम पर चढ़ाकर इनके सम्बन्ध में खण्डन-मण्डन किया है। डा० गुप्त ने इन बाईस तुलसियों को काट छाँटकर सात तुलसियों में बदल दिया। १५ का सफाया कर दिया। इन सात तुलसियों में चार तो इतिहास-प्रसिद्ध हैं।

१. गोस्वामी तुलसीदास—१६००–१६८० । इनके बारह ग्रंथ प्रख्यात है ।

२. आचार्य तुलसी—सं० १७१२; रस भूषण, रस कल्लोल, एक पिंगल ग्रंथ और कवि माला नामक काव्य-संग्रह के रचयिता । यदुराइ कवि के पुत्र । यह रीतिकाल के आचार्य थे ।

३. तुरसीदास निरंजनी—बारह निरंजनी महंतों में से एक, राजस्थानी, निर्गुनिया सन्त कवि । हरिदास निरंजनी के समसामयिक, सं० १६५० के बाद उपस्थित ।

४. तुलसी साहब--घट रामायण वाले ।

तीन तुलसी डा० गुप्त की सृष्टि हैं--

१. सतसईकार तुलसी--गोस्वामी तुलसीदास के समसामयिक, काशी में लोलार्क कुण्ड और गंगा के बीच कुटी बनाकर रहने वाले । हनुमान चालीसा, संकट मोचनाष्टक, तुलसी सतसई आदि लगभग ५० ग्रंथों के रचयिता । 'मानस' में क्षेपक लगाने वाले प्रथम व्यक्ति ।

२. ज्योतिषी तुलसी--बृहस्पति कांड या रत्न सागर ज्योतिष, तुलसी शब्दादि प्रकाश, ध्रुव प्रश्नावली नामक तीन ज्योतिष ग्रंथों के रचयिता । उन्नीसवीं शती विक्रम ।

३. व्रजवासी तुलसी--उन्नीसवीं शती विक्रम; ठेठ व्रजी में 'मल्ल अखारो' नामक कृष्ण काव्य एवं रामचंद्र ज्योनार; रामचंद्र की बारहमासी और राममंगल नामक तीन राम-काव्यों के रचयिता ।

इनमें सतसईकार तुलसी अत्यंत महत्व पूर्ण हैं ।

डा० गुप्त के इस शोध ग्रन्थ से गोसाइं तुलसीदास के ऊपर जो कुश कंटक उग आये थे, उनका उन्मूलन हो जाता है । यह बहुत बड़ी बात है । तुलसी सतसई के सम्बन्ध में जो सैकड़ों वर्षों का विवाद था कि यह गोसाइं जी की रचना है या नहीं, उसका भी अन्तिम निपटारा हो जाता है कि यह गोसाइं जी की रचना नहीं है ।

मानस चतुश्शती के अवसर पर पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने भी तुलसी ग्रन्थावली तीन खण्डों में निकाली थी । डा० गुप्त की सलाह से इसके दूसरे खण्ड में तुलसी के नाम पर मिलने वाले ऐसे कई ग्रन्थ विद्वानों के विचारार्थ अटीक रूप में दे दिए गये हैं, जो गोस्वामी तुलसीदास के नहीं हैं । इसी प्रकार तृतीय खण्ड में तुलसी सम्बन्धी गोसाइं चरित, मूल गोसाइं चरित आदि आदि सात आकर ग्रन्थ भी शोधार्थियों के निमित्त दे दिए गये हैं । यह कार्य डा० गुप्त की राय से हुआ है ।

इस ग्रन्थावली में डा० गुप्त ने 'गोसाइं तुलसीदास का जीवन चरित' नामक ५० बड़े पृष्ठों का एक विशद लेख भी लिखा है, जो प्रशंसित हुआ है ।

इन प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त डा० गुप्त का तुलसी सम्बन्धी एक अप्रकाशित शोध-निबन्ध-संग्रह भी हैं, जिसमें कुल २८ निबन्ध हैं। इनमें वाल्मीकि आश्रम एवं सीता निर्वासन सम्बन्धी लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये लेख ही डा० गुप्त की तुलसी सम्बन्धी धनात्मक शोध हैं।

—डैम्पियर नगर, मथुरा

३१. भक्तमाल और डॉ० गुप्त

[डॉ० त्रिवेणीदत्त शुक्ल]

डॉ० किशोरी लाल गुप्त चिर परिचित लेखक हैं, जिनके वैदुष्य के प्रति मेरे जैसे अनेक विद्याव्यसनी व्यक्तियों के मन में श्रद्धा है। डा० गुप्त का पाण्डित्य एवं उनके द्वारा रचित विपुल ग्रंथराशि को देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने अपनी महनीय कृतियों के द्वारा जो मौलिक, विवेचनापूर्ण तथा शोध-सम्बलित सामग्री प्रस्तुत की है, वह हिन्दी के शोधार्थियों एवं सुधी अध्येताओं के लिए ज्ञानवर्द्धक तो है ही, प्रेरणादायक भी हैं। उनकी सहजता और सरलता को देखकर विस्मय होता है कि इतने बड़े-बड़े कार्य उन्होंने कैसे किये। सचमुच वे एक सहज साधक हैं। विद्वत्ता और सरलता का ऐसा मणिकांचन संयोग देखने को कम मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सादगी में ही विद्या-बुद्धि का वैभव छिपा हुआ है। वैसे तो डा० गुप्त ने हिन्दी में अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है, किन्तु उनमें 'सरोज सर्वेक्षण' असाधारण महत्व का ग्रंथ है। वस्तुतः यह अकेला ग्रन्थ ही डॉ० गुप्त के यश को सुख्यात करने के लिए पर्याप्त है। यहाँ पर उक्त ग्रन्थ से ही भक्तमाल के सम्बन्ध में किए गये डॉ० गुप्त के सर्वेक्षण का सार प्रस्तुत है।

भक्तमाल हिन्दी साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थरत्न है। इसमें कई भक्त कवियों के जीवन, उनके काव्य व भक्ति पक्ष के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी हेतु सूत्र-शैली में लिखा गया प्रथम इतिहास ग्रन्थ है। यही कारण है कि समय-समय पर इस ग्रंथ पर कई विद्वानों ने टीका प्रस्तुत की और इसका उर्दू भाषा में अनुवाद भी हुआ। ऐसे ग्रन्थ के रचयिता को लेकर विद्वानों में एक मत का अभाव है।

सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ में भक्तमाल के रचयिता नाभादास के विषय में टिप्पणी देते हुए लिखा कि "नाभादास कवि, नाम नारायण दास महाराज दक्षिणी। सं० १५४० में उ०। इनको स्वामी अग्रदास जी ने गलता नाम इलाके आमेर में लाकर अपना शिष्य बनाकर भक्तमाल नामक ग्रन्थ लिखने की आज्ञा दी।

नाभा जी ने १०८ छप्पै छंदों में इस ग्रन्थ को रचा। पीछे स्वामी प्रियादास वृन्दावनी ने इसका तिलक कवित्तों में किया। फिर लाल जी कायस्थ कांधला के निवासी ने सन् ११५८ हिजरी में उसी का टीका बनाकर 'भक्त उरबसी' नाम रखा। इन दिनों उसी भक्तमाल को महारसिक भगवद्भक्त तुलसीदास अगरवाल मीरापुर निवासी ने उर्दू में उल्थाकर 'भक्तमाल प्रदीप' नाम रखा है। नाभादास की विचित्र कथा भक्तमाल में लिखी है।"

—(सरोज सर्वेक्षण, पृ॰ ३८४)

सरोजकार ने नाभादास को भक्तमाल का रचयिता स्वीकार किया है। न केवल शिवसिंह सेंगर, अपितु हिन्दी के अन्य मूर्धन्य विद्वान, यथा—डॉ॰ ग्रियर्सन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी भक्तमाल का कर्ता नाभादास को ही मानते हैं।

सन् १९५७/१९६७ ई॰ में डॉ॰ किशोरीलाल गुप्त ने अपना 'सरोज-सर्वेक्षण' ग्रन्थ प्रस्तुत किया। जिन कवियों के विषय में शिवसिंह सरोज ने सही तथ्य प्रस्तुत नहीं किया था, उनके विषय में प्रामाणिक तथ्य व विवरण डॉ॰ गुप्त ने उपस्थित किया। उनके इस कार्य से बहुत-सी भ्रांतियाँ दूर हो गईं। इसी सरोज सर्वेक्षण ग्रन्थ में पहली बार डॉ॰ गुप्त ने शिवसिंह द्वारा भक्तमाल के कर्ता नाभादास के विषय में दिये गये विवरण की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। डॉ॰ गुप्त ने अपने अध्यवसाय व खोजपूर्ण दृष्टि को प्रस्तुत कर शिवसिंह की मान्यता का खण्डन किया। डॉ॰ गुप्त ने भक्तमाल का आद्यंत अध्ययन कर, तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाणों का साक्ष्य देते हुए यह निष्कर्ष दिया कि भक्तमाल संयुक्त प्रयास की रचना है। इसके रचयिता नारायणदास और नाभादास दो अलग अलग व्यक्ति हैं। जबकि शिवसिंह ने दोनों व्यक्तियों को एक ही माना है। डॉ॰ गुप्त ने अपने मत की पुष्टि के लिए जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

भक्तमाल की छंद-संख्या

१. सरोज एवं ग्रियर्सन (५२) के अनुसार भक्तमाल में १०८ छप्पय हैं। माला के अनुसार यह संख्या ठीक भी है।

२. शुक्ल जी के अनुसार इस ग्रन्थ में १०० भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र ३१६ छप्पयों में लिखे गये हैं—(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १४७)

इस सम्बन्ध में डॉ॰ गुप्त का कथन है कि "इस समय जो भी भक्तमाल मुद्रित या हस्तलिखित रूप में उपलब्ध है, उनमें कुल २१४ छंद (१७ दोहे और १९७ छप्पय) हैं। स्पष्ट है कि भक्तमाल में परिवर्द्धन हुआ है। इसमें कुल ८९ छप्पय बाद में जोड़े गये।" (पृष्ठ ३८५) तात्पर्य यह कि शिवसिंह सरोज, डॉ॰ ग्रियर्सन और आचार्य शुक्ल ने भक्तमाल की जो संख्या दी थी, वह डॉ॰ गुप्त की गणना से गलत सिद्ध होती है।

रचयिता

प्रायः सभी विद्वानों ने नाभादास को ही भक्तमाल का रचयिता स्वीकार किया है और उनका असली नाम नारायन दास बताया है । इस संबंध में भी डॉ० गुप्त की अपनी मान्यता है । उनकी धारणा हैं कि नारायनदास और नाभादास दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं और नारायनदास मूल भक्तमाल के कर्ता हैं तथा नाभादास परिवर्द्धित अंश के । जिस रूप में भक्तमाल आज उपलब्ध है, वह नाभादास का दिया हुआ है । अतः यही भक्तमाल के रचयिता के रूप में प्रख्यात हैं । डॉ० ग्रियर्सन (५१) की इस मान्यता का कि "नाभादास के शिष्य नारायनदास ने शाहजहाँ के शासन काल में इसे पुनः लिखा" खण्डन डॉ० गुप्त ने किया है । नारायण दास नाभादास के शिष्य नहीं थे, ज्येष्ठ गुरु भाई थे । मूल भक्तमाल के रचयिता नारायण दास हैं । इनका नाम ग्रन्थांत में आया है । नाभादास का नाम मूल भक्तमाल में कहीं भी नहीं आया है ।

काहू के बल जोग जप, कुल करनी की आस ।
भक्त नाम माला अगर, उर (बसो) नरायनदास ॥ २१४

रचनाकाल

भक्तमाल की छंद संख्या, रचनाकार का निर्धारण करने के उपरान्त डॉ० गुप्त ने इस ग्रन्थ के रचनाकाल पर भी अपना अभिमत प्रकट किया है । उन्होंने सरोजकार द्वारा दिये गये समय को अमान्य घोषित कर अपना मत स्थापित करते हुए लिखा है—"भक्तमाल की रचना विद्वानों के अनुसार गोसाईं विट्ठलनाथ की मृत्यु (सं० १६४२) के पश्चात् और गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु (सं० १६८०) के पूर्व किसी समय हुई, क्योंकि भक्तमाल में विट्ठलनाथ का स्मरण भूतकाल में और तुलसीदास का स्मरण वर्तमान काल में हुआ है । भक्तमाल के आधुनिक और गद्य टीकाकार रूपकला जी इसका रचना काल सं० १६४९ देते हैं । इन्हींके अनुसार सं० १६५२ में श्री कान्हरदास के भण्डारे में समवेत महानुभाओं ने मिलकर नाभादास को गोस्वामी की पदवी दी थी । नाभादास का देहावसान सं० १७१९ में हुआ । अतः सरोज में दिया सं० १५४० अशुद्ध है ।" (सरोज सर्वेक्षण, पृ० ३८५) उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सर्वेक्षणकार डा० गुप्त ने शिवसिंह द्वारा नाभादास का उपस्थितिकाल एवं भक्तमाल के रचनाकाल को बिलकुल अमान्य कर दिया है ।

भक्तमाल में जोड़-तोड़

डॉ० गुप्त की ऐसी मान्यता है कि नारायणदास कृत भक्तमाल में नाभादास ने जोड़-तोड़ की । सबसे पहले उन्होंने अपने गुरु अग्रदास रचित छप्पयों को जोड़ा । पुनः उन्होंने कुछ ऐसे भक्तों को भी स्थान दिया, जिनका भक्तमाल की रचना के समय (सं० १६४९) जन्म भी नहीं हुआ था । यथा—भक्त कवि भगवन्त मुदित । इनके

विषय में एक छप्पय (संख्या १९८) भक्तमाल में मिलता है। डॉ० गुप्त का कथन है कि "माधवदास के पुत्र भगवन्त मुदित आगरे के सूबेदार के मुख्यमंत्री थे। यह वृन्दावन के गोविन्ददेव के मन्दिर के अधिकारी श्री हरिदास जी के शिष्य थे। इनके चार ग्रन्थ खोज में प्राप्त हुए हैं...... वृन्दावन शतक का रचनाकाल संवत् १७०७ है—

संवत् दस सै सात सैं, अरु सात वर्ष हैं जानि।
चैत मास में चतुर वर, भाषा कियो बखानि॥

जिन भगवन्त मुदित का रचनाकाल सं० १७०७ है, वे सं० १६४९ के पूर्व प्रसिद्ध भक्त और महात्मा के रूप में कदापि नहीं उपस्थित रहे होंगे। सम्भवतः उस समय वे पैदा भी नहीं हुए रहे होंगे।" (पृ० ३८६) इसी प्रकार बाद में जोड़े गये भक्त गोविन्ददास भक्तमाली की भी बात है। भक्तमाल की रचना के बाद ही कोई व्यक्ति भक्तमाली (भक्तमाल की कथा कहने वाला) बन सका होगा।

इस प्रकार डॉ० गुप्त ने शिवसिंह द्वारा नाभादास के विषय में दिये गये भ्रामक तथ्यों का पुष्ट प्रमाणों के आधार पर निराकरण कर यह तथ्य उजागर किया कि भक्त-माल एक संयुक्त रचना है। इसके मूल लेखक नारायन दास हैं। नाभादास ने उसमें यथासमय संशोधन-परिवर्द्धन किया। लोग नारायन दास को भूल गये और नाभादास को ही भक्तमाल का कर्ता मान बैठे।

डा० गुप्त ने 'भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व' नामक एक शोध-निबंध भी लिखा था, जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६३ अंक ३-४ में छपा है। 'भक्तमाल' के संपादक व्रज वल्लभ शरण वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ, वृंदावन ने इस पर उक्त ग्रंथ की भूमिका में लिखा है—

'कुछ विद्वान अपनी आनुमानिक धारणा पर भक्तमाल को संयुक्त कृति मानते हैं। उनका यह अनुमान भ्रांत भी हो सकता है।'

डा० गुप्त का कथमपि यह मंतव्य नहीं है कि अग्रदास, नारायणदास और नाभादास ने एक समय एक साथ बैठकर इस ग्रंथ की रचना की। उनका अभिप्राय केवल इतना है कि इस समय नाभादास के नाम पर मिलने वाले भक्तमाल में अग्रदास की रचना मिलती है, नारायण दास की रचना मिलती है और नाभादास की भी। डा० गुप्त के इस निष्कर्ष को काटा नहीं जा सकता।

डा० श्रीमती शांतासिंह ने 'नाभादास कृत भक्तमाल : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' नामक शोध-प्रबंध में स्वीकार किया है कि—

"भक्तमाल के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध नाभादास का ही दूसरा नाम नारायण दास है, जो कदाचित दीक्षोपरांत रखा गया होगा। इन दोनों नामों से वस्तुतः एक

ही व्यक्ति का संकेत ग्रहण किया जाना चाहिए। हिंदी साहित्य के अधिकांश विद्वानों का समर्थन व स्वीकृति भी इसी पक्ष में है।''

यह 'कदाचित' क्या है—शुद्ध अनुमान ही न। दूसरे इस प्रकार के निष्कर्ष मत-गणना के द्वारा नहीं निकाले जा सकते। डा० गुप्त ने जिस समय ये निष्कर्ष निकाले थे, मतदाता सभी विद्वान उसके बहुत पूर्व हुए हैं और उस समय यह समस्या उठी ही नहीं थी।

डा० गुप्त ने जो कुछ कहा है, वह एक तो अंतिम निर्णय के रूप में कहा है। कुछ बातों को उन्होंने अपने ख्याल या अनुमान के रूप में कहा है, जो भ्रामक भी हो सकता है।

डा० गुप्त ने सर्वेक्षण में इसी प्रकार की अनेक भ्रान्तियों का निराकरण किया है, जो उनके अध्यवसाय व सतत परिश्रम का फल हैं।

—३५०, ए-बस्कीखुर्द, दारागंज, इलाहाबाद।

३२. मोहन लाल मिश्र कृत 'शृंगार सागर' का रचना-काल

[डा० क्षमाशंकर पाण्डेय]

हिन्दी साहित्य के तात्विक शोधक, अप्रतिम मेधा सम्पन्न, प्रातिभ मनीषी एवं अतल स्पर्शिणी मेधा के बलबूते पर हिन्दी के अनेक अनछुए पृष्ठों को उद्घाटित करने वाले विद्वान डा० किशोरी लाल गुप्त का स्थान हिन्दी साहित्य के शोधकों में अग्रगण्य है। डा० गुप्त ने तत्वान्वेषिणी क्षमता के बल पर अनेक विवादों का समाधान प्रस्तुत किया है। इसका चरम निदर्शन 'सरोज-सर्वेक्षण' है। इसमें एक ओर जहाँ अनेक अज्ञात साहित्याराधकों के बारे में सूचनाएँ संकलित हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक साहित्यिक काल-निर्धारण संबंधी विवादों का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। परंतु शोध के इस चतुर-सुजान की दृष्टि भी रीति-कालिक ग्रंथ 'शृंगार-सागर' के रचना-काल एवं उसके रचनाकार मोहन लाल मिश्र के काल-निर्धारण के संदर्भ में परम्परा का अनुकरण करती हुई उपयुक्त सामग्री के अभाव में 'सर्वेक्षण' में चूक ही गई है। परन्तु अप्रतिहत गति से अध्ययन एवं शोध-रत डा० गुप्त ने अपनी दृष्टि का परिष्कार करते हुए इस त्रुटि का परिमार्जन किया एवं अपनी स्वस्थ-दृष्टि का परिचय दिया। उन्होंने सम्मेलन पत्रिका में अलग से एक निबंध लिख कर तथा समुचित काल निर्णय कर अपनी निरंतर विकास-मान शोध-दृष्टि का प्रमाण प्रस्तुत किया। (भाग ६२, सख्या ३, ४, आषाढ़-मार्गशीर्ष शक १८१८)।

'शृंगार सागर' के बारे में भ्रांति का प्रारम्भ नागरी प्रचारिणी सभा को

१९०५ ई० की खोज रिपोर्ट से हुआ। वहाँ रिपोर्ट की संख्या ७० पर मोहन लाल मिश्र कृत श्रृगार सागर नामक ग्रंथ का विवरण है। वहाँ रचनाकार मोहन लाल मिश्र को चरखारी का रहने वाला तथा चूड़ामणि मिश्र का पुत्र कहा गया है। इस ग्रंथ की रचना मोहन लाल मिश्र ने अपने पुत्र लक्ष्मीचंद मिश्र के लिये की थी। श्रृंगार सागर के रचना काल के सदर्भ में निम्नांकित दोहा—

संवत् रस ससि रस सु ससि, बिसद बसंत बहार,
माघ सुकुल सनि पंचमी, भयो ग्रंथ विस्तार।

उद्धृत करते हुये इसका रचनाकाल स० १६१६ बताया गया है। बाबू जगन्नाथ प्रसाद छतरपुर से प्राप्त इस ग्रंथ का लिपिकाल सं० १९३९ है।

रचना काल के सन्दर्भ में खोज रिपोर्ट की यह भ्रांति परवर्ती कालों में हिन्दी साहित्य के इतिहासों में बनी रही। मिश्रबंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० नगेन्द्र, एवं डा० गुप्त भी इस संदर्भ में चूक गये। परन्तु डा० गुप्त ने अपनी इस त्रुटि का परिमार्जन किया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में सर्व प्रथम मिश्रबंधु-विनोद में इस कवि का सन्निवेश दो स्थलों पर हुआ है—

(१) नाम–(२१४) मोहन लाल मिश्र (चूरामणि के पुत्र), चरखारी
ग्रंथ–श्रृंगार सागर
रचना काल–१६१६ (खोज १९०५)
विवरण–रीति ग्रंथ कहा है। साधारण श्रेणी।

(२) (२४६४) मोहन

इस नाम के चार कवि हुए हैं जिसमें से हम इस समय चरखारी वाले मोहन का वर्णन करते हैं, जिन्होंने १९१९ में श्रृंगार सागर नामक ग्रंथ बनाया। यह ग्रंथ हमने देखा है।

इसके उपरांत एक पद उद्धृत है। मिश्रबंधुओं ने विनोद के प्रथम भाग में खोज के आधार पर विवरण दिया था और तृतीय भाग में निजी जानकारी के आधार पर। परन्तु वे दोनों में अज्ञात कारण-वश एकात्म-स्थापना में असमर्थ रहे।

इसके उपरान्त हिन्दी साहित्य के जितने भी महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ लिखे गये, उन सब में खोज रिपोर्ट एवं विनोद के आधार पर मोहन लाल मिश्र को हिन्दी के प्रारम्भिक रीति-कवियों में परिगणित किया जाता रहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' एवं डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा सभा के इतिहास ग्रंथ में भी इस त्रुटि का परिमार्जन न हो सका। इनसे सम्बद्ध विद्वान अनवधानतावश ऐतिहासिक भूल के शिकार रहे। यही नहीं, १९७४ में पद्माकर

के वंशधर डा० भालचंद्र राव तैलंग ने शृगार सागर के सम्पादन में सप्रमाण वही भूल पुष्ट की ।

प्रथम सु रस विजन कहे, पुन रस सिंगारादि
इह संवत गनना मिलै, समझौ कवि मत सादि. ३०.

डा० तैलंग ने इस ग्रंथ का रचनाकाल, रचना-काल-सूचक इस दोहे के आधार पर निम्नवत्

६ १ ९ १
संवत रस ससि रस सु ससि

निर्णीत करते हुए १६१९ पढ़ा। उन्होंने दोहे का निर्देश पालन नहीं किया। हिन्दी के प्रारम्भिक रीति-ग्रंथों में इस ग्रंथ को परिगणित करते हुए उन्होंने इसे "हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का मुखबंध" कहा है। डा० तैलंग भी खोज रिपोर्ट एवं मिश्र बंधु वाली भ्रांति के शिकार हुए।

इसी बीच श्री उदय शंकर जी दुबे (सम्पादन विभाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन) के कहने पर डा० गुप्त ने इसे पुनर्परीक्षित किया और श्री दुबे की आपत्ति को सही पाया। डा० गुप्त ने स्पष्ट किया कि मिश्रबंधुओं ने इसे पहले १९१९ पढ़ा, जैसा कि विनोद की कवि संख्या (२४६४/२०८३) से स्पष्ट है। परन्तु तैलंग जी द्वारा निर्णीत काल संवत् १६१९ तो किसी भी प्रकार ग्राह्य नहीं है। न तो यह अंक पढ़ने की किसी रीति को ही परिपुष्ट करता है, न ही ऐतिहासिक साक्ष्यों पर ही खरा उतरता है।

डा० गुप्त ने अपना निर्णय अंक पढ़ने की परम्परा और ऐतिहासिक संदर्भों को दृष्टि-पथ में रखते हुए दिया। 'अंकानाम् वामतो गतिः' के अनुसार इस ग्रंथ का रचना-काल उपर्युक्त दोहों के आधार पर स्पष्ट ही संवत् १९१६ है। इसमें किसी भ्राँति के लिये अवकाश नहीं है। ऐतिहासिक संदर्भों से यह स्पष्ट है कि श्री मोहन लाल मिश्र चरखारी के रहने वाले थे। उन्होंने प्रथम प्रकाश में चक्रपुरी के सदर्भ में तीन दोहे ९, १० एवं ११ लिखे तथा दो कवित्तों में चरखारी नरेश रतन सिंह की प्रशंसा की है। इन्हीं रतन सिंह के दरबार में सेवक और प्रतापसाहि भी थे, जिनके काल परवर्ती ही है। १६१९ के आसपास नहीं। ऐतिहासिक साक्ष्य बतलाते हैं कि सं० १६१९ तक तो चरखारी राज्य की स्थापना ही नहीं हुई थी। चरखारी राज्य की स्थापना तो सं० १८२१ में हुई। ऐसे में रतन सिंह का सं० १६१९ में राजा होने का कोई औचित्य नहीं है। सं० १८२१ में चरखारी की स्थापना खुमान सिंह के हाथों हुई। रतन सिंह चरखारी के तीसरे राजा हुए, जिनका राज्य काल स० १८८६ से १९१७ वि० है। इन्हीं रतन सिंह के राज्य-काल में मोहन मिश्र ने सं० १९१६ में श्रृंगार सागर की रचना की थी।

अपने पहले शोध ग्रंथ 'सरोज सर्वेक्षण' में डॉ० गुप्त ने मोहन लाल मिश्र के सन्दर्भ में लिखा है कि यह चरखारी के रहने वाले थे, चूड़ामणि मिश्र के पुत्र थे, लक्ष्मी चंद मिश्र के पिता थे। इन्होंने स० १६१६ में श्रृंगार सागर की रचना अपने पुत्र लक्ष्मी चंद के लिये की थी।

—सरोज सर्वेक्षण कवि सं० ६३३, कवि मोहन ३ सं० १७१५।

इसी ग्रन्थ के पृ० ९०० पर केशव के पूर्ववर्त्ती रीति साहित्य पर विचार करते हुए डा० गुप्त ने लिखा था-" (केवल) मोहन लाल मिश्र का एक ग्रंथ श्रृंगार सागर है, जो सं० १६१६ में रचा गया था। ....। श्रृंगार सागर १९१९ की भी रचना हो सकता है। पूर्ण प्रति देखने पर ही कुछ सुनिश्चित बात कही जा सकती है।"

डॉ० गुप्त ने एक सच्चे अनुसन्धाता की तरह डॉ० तैलंग द्वारा श्रृंगार सागर के प्रकाशन के बाद अपनी पूर्व घोषित सम्भावना एवं अन्यान्य सूत्रों का पुनर्परीक्षण करते हुए सम्मेलन पत्रिका वाले अपने शोध निबंध में साधिकार, बलपूर्वक, यह लिखा—

"श्रृंगार सागर के प्रकाशन के बाद अब हम इस सुदृढ़ स्थिति में हैं कि यह निश्चय पूर्वक घोषित कर सकें कि मोहन लाल मिश्र कृत श्रृंगार सागर भक्ति-कालीन प्रथम रीति-ग्रंथ नहीं है, रीति काल के अंतिम दिनों की सुप्रसिद्ध घटना प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध (१८५७ ई०) के भी दो वर्ष बाद की सं० १९१६ वि० की रचना है।"

यह घोषणा करते हुए डॉ० गुप्त ने जहाँ एक बहुत बड़ी भ्रांति का समाधान किया, वहीं यह भी बताया कि श्रृंगार सागर के छन्द १४-२६ में कवि का वंश-वृक्ष भी पूर्णतया दिया गया है। यह भी स्पष्ट किया कि राज्याश्रय में प्रणीत यह ग्रंथ राजा के लिए नहीं, अपितु पुत्र लक्ष्मीचन्द को शिक्षा देने के लिए लिखा गया था—

चूड़ामन के सुत प्रकट, भए सु मोहन लाल २६
तिनके लक्ष्मीचन्द सुत, तिन हित किय यह ग्रंथ.
ताहि पढ़ैं गुनगन बढ़ैं, समुझै सब रस पंथ, २७

परवर्ती शोध निबन्ध में 'श्रृंगार सागर' सम्बन्धी कतिपय अन्य भ्रांतियों का भी निवारण किया गया है। यथा तीन श्रृंगार सागर मिलते हैं जिनके लेखक क्रमशः मोहन कवि चरखारी, मोहन लाल चरखारी एवं लक्ष्मीचन्द (मोहन कविः चरखारी के पुत्र) बताया गया है। इन तीनों श्रृंगार सागरों का उल्लेख पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी ने 'व्रजभाषा रीति-शास्त्र-ग्रंथ-कोश' में पृष्ठ ९८ पर किया हैं। प्रथम दो का उल्लेख विनोद के आधार पर हुआ है। तीसरे का सूत्र चतुर्वेदी जी ने नहीं दिया है। डा० गुप्त के अनुसार ये तीनों वस्तुतः एक ही ग्रन्थ हैं। परन्तु इन सारी कुहेलिकाओं के बीच से अपनी नीर क्षीर विवेचिनी बुद्धि के बल पर डा० गुप्त ने श्रृंगार सागर के **रचना-काल**, कवि एवं अन्य भ्रांतियों का समुचित निवारण कर दिया है।

समग्रतः डा० किशोरी लाल गुप्त प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से एक सजग सचेत अनुसंधाता के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। निरंतर प्रगति के कपाटों को अनावृत करते हुए डा० गुप्त की शोध-मेधा शतधा नमस्य है।

—८९ बाई का बाग, इलाहाबाद

३३. मण्डन के अध्ययन में डा० गुप्त का योग

[डा० देवेन्द्र]

गुप्त जी से मेरा परिचय लगभग आठ वर्ष पूर्व हुआ था। माध्यम थे उन्हींके नामरासी डा० किशोरी लाल [हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय] और कारण थे मण्डन कवि। यानी यह परिचय संयोगवश या अकारण नहीं था। यही कारण है कि यह परिचय केवल औपचारिक परिचय तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि लगातार घनिष्ठतर और घनिष्ठतम होता गया, जिसका सम्पूर्ण श्रेय गुप्त जी को है, उनकी सहज स्वाभाविक सहयोग की भावना को है।

मैंने सन् १९८० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पूज्य आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के निर्देशन में पी-एच० डी० उपाधि हेतु शोधकार्य करने का निश्चय किया। विषय लिया रीतिकालीन मण्डन कवि। मण्डन के सम्बन्ध में उस समय तक कोई विशेष कार्य नहीं हुआ था। रचनाएँ प्रायः अप्रकाशित थीं। ऐसी स्थिति में एक अल्पज्ञात प्राचीन कवि पर कार्य करने के रास्ते में जो कठिनाइयाँ होती हैं, वे मेरे सामने भी थीं। इन्हीं समस्याओं पर मैं एक दिन किशोरीलाल जी के नैनी स्थित घर पर बैठा हुआ उनसे बातचीत कर रहा था। इस विषय पर शोध-कार्य में कौन-कौन व्यक्ति सहायक हो सकते हैं, इस क्रम में उन्होंने एक नाम लिया "डा० किशोरी लाल गुप्त"। साथ ही उनका पता भी दिया, जिससे पत्र लिखकर सम्पर्क किया जा सके। थोड़ी देर तक उन्हींके सम्बन्ध में बतलाते रहे। गुप्त जी के सरल, मधुर व्यवहार से लेकर अध्ययन के प्रति उनका समर्पित जीवन और लिखने पढ़ने वालों की निस्वार्थ भाव से पूरे मन से सहायता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ, जो आगे चलकर एक-एक कर मेरे सामने मूर्तित हुईं।

वाराणसी आकर मैंने आचार्य जी से गुप्तजी के सम्बन्ध में चर्चा की और उन्हें बताया कि मैंने उनको पत्र लिखा है। आचार्य जी ने भी अध्ययन के प्रति उनकी रुचि, परिश्रम और लगन की प्रशंसा करते हुए विश्वास पूर्वक कहा कि वे जितना भी सहयोग कर सकते होंगे, करेंगे।

जहाँ प्रायः लोग सिरदर्द समझकर ऐसे पत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं, वहाँ गुप्त जी ने मेरे पत्र का जवाब यथाशीघ्र दिया, जिसमें सहायता का कोरा आश्वासन ही नहीं था, बल्कि ठोस, उपयोगी सूचनाएँ थीं, भविष्य में एक साथ मिल बैठकर विचार विमर्श का भरोसा था और थी परिश्रम से जी न चुराने की प्रेरणा। फिर तो आगे पत्र-व्यवहार का जो सिलसिला चला, वह आज तक बदस्तूर जारी है।

वे जब भी किसी कार्यवश अपने गाँव से काशी आते, मुझसे अवश्य मिलते थे। कभी आचार्य जी के घर पर, कभी अपने ठहरने के स्थान की सूचना भिजवाकर और अनेक बार ती, "प्यासा कुएँ के पास जाता है, कुआँ प्यासे के पास नहीं" इस कहावत के उलटे स्वयं मेरे छात्रावास आ जाते और घण्टों बैठकर कार्य की प्रगति तथा समस्याओं पर बातचीत करते हुए मुझे तृप्त करते।

शोध के दौरान मुझे गुप्त जी का सहयोग कई रूपों में प्राप्त हुआ—

(१) प्रोत्साहन परक और आशीर्वादात्मक सहयोग, जो शोध के दौरान तो मिला ही, उसके बाद भी आज तक निरन्तर मिल रहा है।

(२) पत्रों के माध्यम से समय-समय पर शोध-सामग्री के संभावित स्रोतों की सूचनाएँ, जिनमें स्थानों, पुस्तकों और व्यक्तियों के नाम-पते सम्मिलित हैं, भेजकर पथ-प्रशस्त किया।

(३) अनेकशः एक साथ बैठकर समस्याओं पर बातचीत कर उनके अमूल्य सुझावों का लाभ प्राप्त हुआ है।

(४ संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में सुरक्षित जिस हस्तलेख के आधार पर गुप्त जी ने मण्डन की एक कृति "नयनपचासा" को सम्पादित कर कवि की जीवनी और रचनाओं की शोधपरक समीक्षा के साथ नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया, उस हस्तलेख में "नयन पचासा" के अतिरिक्त उन्हें मण्डन के कुछ और छन्द भी प्राप्त हुए थे, जिसकी सूचना लेख में थी। उन सभी छन्दों के प्रतीक भी प्रसंगवश लेख में दिए गये थे। लेकिन पूर्णरूप में वे छन्द तब तक अप्रकाशित ही थे। उन छन्दों की अनुलिपि गुप्तजी के पास है। मेरे केवल एक बार के निवेदन पर अपनी अगली यात्रा में वाराणसी आकर मुझे वह अनुलिपि दे गये। लौटाने के लिए समय का कोई बन्धन नहीं। एक सामान्य शोधछात्र के साथ, जिसका परिचय शोध के ही सिलसिले में नया-नया हुआ हो, इतने उदारतापूर्वक सहयोग करने वाले आज कितने लोग हैं ?

(५) मुझसे पूर्व मण्डन पर जो थोड़ा-बहुत कार्य हुआ था, उस सम्बन्ध में यदि किसी एक व्यक्ति का नाम लिया जाय, जिसने मण्डन पर प्रकाश डालने का

महत्वपूर्ण और उपयोगी प्रयास किया, तो वह नाम होगा "डा० किशोरी लाल गुप्त"। वह सब सामग्री मेरे लिए कितनी सहायक हुई। यह शोध-प्रबन्ध और मण्डन-ग्रन्थावली देख कर आसानी से समझा जा सकता है। मैं यहाँ गुप्त जी द्वारा मण्डन पर किये गये कार्य का ब्योरेवार उल्लेख करना चाहूँगा—

(क) नागरीप्रचारिणी पत्रिका के संवत् २०२३ के अंक में उनके द्वारा लिखा गया "मंडन और उनका नयनपचासा" नामक लेख। इसमें मंडन की जीवनी और उनकी कृतियों के परिचयात्मक विश्लेषण के साथ उनकी 'नयनपचासा' का प्रथम प्रकाशन था, बल्कि कवि के जीवन और साहित्य को भी व्यापक छानबीन कर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास था।

(ख) 'सरोज सर्वेक्षण' में मण्डन सम्बन्धी सर्वेक्षण, जो अपनी सीमाओं में इस कवि के सम्बंध में महत्वपूर्ण नई जानकारियों से परिपूर्ण है।

(ग) उनके द्वारा सम्पादित "हजारा"। जिसमें मंडन के ३६ छन्द हैं। इनमें कुछ छंद ऐसे हैं, जिनकी प्राप्ति केवल इसी ग्रंथ से संभव हुई। यदि यह ग्रंथ प्रकाशित न हुआ होता, तो मैं इन छंदों को प्राप्त कर पाता, कह नहीं सकता, क्योंकि जिस हस्तलेख का यह मुद्रित रूप है, मैं उस तक पहुँच पाता, दावा नहीं कर सकता।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मण्डन के अध्ययन में गुप्तजी का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग कितने व्यापक रूप में प्राप्त हुआ। निश्चित रूप से यदि गुप्तजी द्वारा मण्डन पर किया गया कार्य मेरे सामने न होता और शोध के दौरान उनका उदार सहयोग न मिला होता, तो मण्डन के सम्बन्ध में मैं जो भी थोड़ी बहुत खोजबीन कर सका हूं, उतनी भी न कर पाता।

उदारता की पराकाष्ठा देखिए कि अभी भी यदि उन्हें कहीं से मण्डन सम्बन्धी कोई नई जानकारी प्राप्त होती है, तो उससे मुझे अवगत कराना जैसे अपना दायित्व समझते हैं। मंडन-ग्रंथावली के प्रकाशन के पश्चात् उन्हे एक महत्वपूर्ण सूचना हाथ लगी। कृष्णाचार्यजी द्वारा सम्पादित "हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ" नामक पुस्तक के आधार पर मण्डन की रचनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी पत्र द्वारा मुझे दी—

"मण्डन

जानकी पचीसी—छै ऋतुओं के वर्णन सहित/मैनपुरी, १८६८/१६ पृष्ठ
—हनुमान अष्टक सहित/आगरा, १८६८/१६ पृष्ठ/आगरा, १८७०/१६ पृष्ठ
[इण्डिया ऑफिस, लन्दन]"

मण्डन कृत "जानकीपचीसी" नामक यह रचना हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में उल्लिखित और मण्डन-ग्रन्थावली में संकलित "जनकपचीसी" ही है।

इसका सर्वप्रथम उल्लेख गार्सां द तासी ने किया था। साथ ही उसने इसके मैनपुरी से मुद्रित होने की बात भी लिखी थी। लेकिन न जाने कैसे उसने इसका नाम 'जनकपचीसी' लिखा, जबकि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मैनपुरी से मुद्रित संस्करण 'जानकीपचीसी' शीर्षक से था। वैसे इस कृति के कुछ हस्तलेख 'जनकपचीसी' नाम से भी मिलते हैं। रचना में वर्णित विषय को देखते हुए 'जनकपचीसी' शीर्षक ठीक नहीं है। हमने ग्रन्थावली की भूमिका में रचना के इस शीर्षक पर आपत्ति उठायी थी, लेकिन निश्चित प्रमाण के अभाव में और सम्पादन में प्रयुक्त आधार-प्रति का शीर्षक 'जनकपचीसी' होने के कारण ग्रन्थावली में इसका संकलन इसी नाम से किया था। तब तक हमें इस रचना के दो अन्य नामों 'मंडनपचीसी' और 'जानकी जू को विवाह' की जानकारी तो थी, 'जानकीपचीसी' की नहीं। अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'जानकीपचीसी' ही बिगड़कर 'जनकपचीसी' हो गया है। लेकिन कविप्रदत्त नाम कौन सा रहा होगा, यह निर्णय कर पाना अभी भी बहुत सरल नहीं है।

इस सूचना से मण्डन की कुछ और रचनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। जैसे मैनपुरी से मुद्रित 'जानकीपचीसी' के साथ मण्डन कृत षडऋतु बर्णन भी सम्मिलित था। मण्डन की ऋतुवर्णन सम्बन्धी किसी रचना की कोई सूचना तब तक मेरे पास नहीं थी।

इसी प्रकार मण्डन कृत 'हनुमानाष्टक' के सम्बन्ध में एक और प्रमाण मिला। अभी तक इसका एकमात्र उल्लेख कुबेरनाथ सुकुल ने माधुरी पत्रिका के जून, १९२८ के अक में कवि चर्चा स्तम्भ के अन्तर्गत अपने लेख में किया था। उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि 'हमने उसे देखा भी है।' शोध के दौरान उनसे भेंट कर हमने यह जानने का प्रयास किया कि यह रचना उन्हें कहाँ देखने को मिली थी, ताकि उसे प्राप्त कर उसका उपयोग किया जा सके। किन्तु लम्बे अन्तराल और अधिक वय के कारण बहुत सोचने के बाद भी उन्हें इसका निश्चित पता-ठिकाना याद नहीं आ सका। अपने लेख में उन्होंने इस रचना का जिस तरह से उल्लेख किया है, उससे लगता है जैसे उन्होंने इसकी कोई हस्तलिखित प्रति ही देखी थी, मुद्रित प्रति नहीं।

शोध-प्रबन्ध[1] या ग्रन्थावली[2] देखने पर अनेक स्थल ऐसे मिलेंगे जहाँ मैंने

---

१. 'हिन्दी-रीतिकविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन' नामक शोध प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

२. मण्डन की उपलब्ध समस्त रचनाए सम्पादित होकर 'मण्डन-ग्रंथावली' के नाम से साहित्य संगम प्रकाशन, नया १०० लूकरगंज, इलाहाबाद से १९८४ ई० में प्रकाशित हो चुकी हैं।

गुप्त जी द्वारा स्थापित मान्यताओं का खण्डन किया है, या उनसे अलग हटकर नये निष्कर्ष निकाले हैं। जैसे गुप्त जी ने मण्डन और मणिमण्डन मिश्र इन दो कवियों की अभिन्नता सिद्ध की है, जबकि मैंने उनकी इस मान्यता का खंडन करते हुए दोनों को दो भिन्न कवि माना है। इसी प्रकार संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वती भवन में सुरक्षित 'नयनपचासा' के हस्तलेख के साथ मण्डन के जो दूसरे छन्द मिलते हैं, गुप्त जी उन्हें मण्डन की एक अन्य रचना 'रसविलास' से सम्बद्ध करते हैं और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १९२३/२६५ में विवृत खण्डित ग्रन्थ, जिसका कल्पित नाम 'शृंगार कवित्त' दिया गया है को भी 'रसविलास' का अंश मानते हैं। उनका मत है कि रसविलास रस सम्बन्धी कोई रीतिग्रन्थ न होकर मण्डन के फुटकल छन्दों का संग्रह मात्र है और इन दोनों को मिलाकर 'रसविलास' को पूर्ण किया जा सकता है। लेकिन मैंने 'नयनपचासा' के हस्तलेख के साथ मिले छंदों को कवि की नखशिख सम्बन्धी किसी दूसरी कृति का अंश सिद्ध किया है, जिसका नाम मैंने 'शिखनख' कल्पित किया है। 'शृंगारकवित्त' को मैंने कवि की अन्य कृतियों में पाये जाने वाले छन्दों का संग्रह माना है, जिसमें नखशिख सम्बन्धी छन्द भी संकलित है। 'रसविलास' की स्थिति संदिग्ध है। इत्यादि।

लेकिन इससे गुप्त जी द्वारा किए गये कार्य का न तो मूल्य कम हो सकता है और न ही मण्डन के अध्ययन में उनके योगदान को कम करके आँका जा सकता है। वस्तुतः उनका कार्य वह नींव है, जिस पर मैं छोटा-मोटा घर खड़ा कर सका। फिर, मेरे द्वारा स्थापित मान्यताएँ या निकाले गये निष्कर्ष ही सही और अन्तिम हैं, ऐसा कहना न केवल बड़बोलापन होगा, बल्कि शोध की विकासमान प्रक्रिया को भी अवरुद्ध कर देना होगा। जहाँ तक मण्डन सम्बन्धी मेरे शोधकार्य का प्रश्न है, मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि वह नितांत अधूरा है और इसीलिए वह अभी भी निरन्तर जारी है। शोध-प्रबन्ध लिखे जाने के बाद भी मुझे ऐसी सामग्री मिली है, जिससे मण्डन के जीवन पर नया प्रकाश पड़ा है। मण्डन-ग्रंन्थावली के प्रकाशन से पूर्व मिली ऐसी समस्त जानकारियों का उपयोग ग्रंथावली में कर लिया गया है। लेकिन ग्रंथावली के प्रकाशन के बाद भी नयी सामग्री और नये तथ्य सामने आये हैं, जिनका उपयोग शोध प्रबन्ध के प्रकाशन के समय किया जा सकेगा। यह सब कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि गुप्त जी ने जिस कार्य की शुरूआत की थी, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ। मैंने उसे थोड़ा आगे बढ़ाने का प्रयास भर किया है। वह भी उनसे प्राप्त दिशा-निर्देशों के सहारे।

—हिन्दी विभाग

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

३४. तिल-शतक : मुबारक की रचना नहीं

(श्रीमती कुमुदलता गुप्त, एम० ए०)

१८५७ के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी कुँवर सिंह के वंशज दिलीपपुर, बिहिया, आरा निवासी बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश' के पास मुबारक कृत अलक शतकका एक हस्तलेख था। इसमें तिलक शतक भी था। एक ही प्रकृति की दो रचनाओं को किसी लिखक ने एक साथ लिख दिया था। प्राचीन काव्य के उद्धारक, डुमरांव निवासी प्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ पं० नकछेदी तिवारी 'अजान' ने उनके यहाँ से लेकर इन्हे सं० १९४० (१८८३ ई०) में पहले भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध पत्रिका 'कवि-वचन-सुधा' के एक अंक में छपवाया। आठ वर्ष के अनन्तर १८९१ ई० में ये दोनों ग्रन्थ 'अलक शतक और तिल शतक' नाम से भारत जीवन प्रेस काशी से स्वतन्त्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। ग्रंथारंभ में दो पृष्ठों की एक भूमिका लगी हुई है।

इस भूमिका का एक अंश यह है—

"इन शतकों के रचयिता विलग्राम (अवध) वासी सैयद मुबारक अली उपनाम मुबारक सम्वत् १६०० में अरबी, फारसी, संस्कृत और भाषा के बड़े पंडित प्रकट हुए हैं। कवियों के कथन से जाना जाता है कि इसी प्रकार से दशों अंगों पर दश शतक इन्होंने रचा है, जिनमें आठ शतकों का समय के हेर-फेर से पता तक नहीं है।"

भूमिका के इसी अंश के आधार पर मुबारक के समय, पांडित्य एवं उनके दस शतकों की बात हिंदी साहित्य के इविहासों में कही जाती रही है और मुबारक की केवल दो रचनाओं अलक शतक और तिल शतक के मिलने की भी बात कही जाती रही है।

४ दिसम्बर ६६ को डा० किशोरी लाल गुप्त की अवधी के प्रसिद्ध कवि डा० श्याम तिवारी से भारत जीवन प्रेस से १८९१ ई० में प्रकाशित 'अलक शतक और तिल शतक' की एक प्रति मिली। डा० गुप्त ने इसे तत्काल सम्पादित करने की योजना बना डाली। इस दृष्टि से उन्होंने मनोयोगपूर्वक दोनों शतकों को पढ़ डाला। वे यह देखकर चमत्कृत हो उठे कि जहाँ अलक-शतक के ८२ दोहों में से ३४ में कवि की छाप मुबारक लगी हुई है, वहाँ तिल-शतक के सौ दोहों में से एक में भी मुवारक छाप नहीं है। यहीं से उनका माथा ठनका और उनके मन में संदेह हो गया, कहीं ऐसा तो नहीं कि तिल शतक मुबारक की रचना ही न हो।

इस संदेह के अंकुरित होने पर डा० गुप्त ने तिल शतक का कई बार पारायण किया और इसमें उन्हें इसके रचयिता की कई छापें मिलीं—

१. जगदीश—

पानिप भरो कपोल यह, सुरसरि ज्यों **जगदीस**
तिल नहिं तामे देखिए, बूड्यो मन को सीस ५४

२. जगत—

बाल दयाल विसाल छवि, तिल कपोल परताप
जगत कहत जनु कर दई, जगत बिजै की छाप ९८

३. प्रभु जगत (जगत प्रभु)—

क्यों न होय **प्रभु जगत** को, संपति सुक्ख-निधान
जो दुख तें द्विजराज कों, दीनों है तिल-दान ४१

४. जग—

(क) चिबुक दिठौना बिधि कियो, दीठि लागि जनि जाय
सो तिल **जग** मोहन भयो, दीठिहि लेत लगाय २२

(ख) **जग** देखत अँग-चाँदनी, भयो सु तिल अँधियार
तिल-तिल मेटत राति नहि, भयो सकल उजियार ४५

(ग) **जग** मोहन काजर सु तिल, दियो विधाता तोहि
जब जब आँखिन में परे, मोहि लेत मन मोहि ७४

(घ) **जग** मोहन काजर सु तिल, दियो विधाता तोहि
एकै तिल के देखते, मोहि लियो मन मोहि ९३

(ङ) विषय नाम विख्यात **जग**, तिय तिल सकल बनाय
तिल न दयाल कपोल बल, विष को चिह्न लखाय ९७

इसके अनन्तर डा० गुप्त ने सभा की खोज रिपोर्टें देखीं। उसमें तिल-शतक की तीन प्रतियों का विवरण है—

(क) पंजाब खोज रिपोर्ट १९२२–२४ ई०। ग्रन्थ संख्या १४|५०

इसमें जुगतिराय को तिल शतक का रचयिता कहा गया है। कवि और काव्य-काल के सम्बन्ध में पूर्ण अनभिज्ञता बताई गयी है। रचना को श्रेष्ठ कहा गया है। कोई उद्धरण नहीं।

(ख) खोज रिपोर्ट १९२६-२८ ई०। संख्या २१२

रचयिता का नाम जुगतराय। प्रतिलिपिकाल सं० १८९० वि०। आदि के ६ एवं अन्त के ५ दोहे अवतरित। ग्रन्थारंभ में 'अथ तिलक शतक जुगुत राय कृत लिष्यते' है। अन्त में पुष्पिका रूप में "इति श्री जुगुत राय कृत तिलशतक संपूर्ण

समाप्तः'' है। ग्रन्थारंभ में प्रमाद से 'तिल शतक' के स्थान पर 'तिलक शतक' लिख उठा है।

खोज के तत्कालीन निरीक्षक डा० हीरालाल ने विवरण में लिखा है—

''यह ग्रंथ मुबारक के तिल-शतक से अच्छा जान पड़ता है।''

यह उल्लेख दोनों रचनाओं का मिलान किए बिना कर दिया गया है। मिलान किया गया होता, तो स्पष्ट हो जाता कि दोनों एक ही रचना हैं।

(ग) खोज रिपोर्ट १९३२-३४ । ९३

इस खोज के निरीक्षक डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल थे। उन्होंने इस ग्रन्थ का यह विवरण दिया है, जो बहुत महत्वपूर्ण है—

''९३ जगतानन्द – ये एक छोटी सी रचना 'तिलशत' के, जो बहुत महत्वपूर्ण है, वास्तविक रचयिता हैं। रचना में तिल की प्रशंसा में लिखे गये शृङ्गार पूर्ण एक सौ दोहों का संग्रह है। भारत जीवन प्रेस काशी ने इसको मुबारक कृत एक दूसरे ग्रन्थ के साथ छापा है, जिसमें इसका रचयिता भी मुबारिक को ही माना है। विनोद और संक्षिप्त विवरण में भी यह भूल की गयी है। परन्तु पं० मयाशंकर जी याज्ञिक ने 'माधुरी' में छपे अपने एक लेख में यह बतलाया है कि तिलशत का रचयिता मुबारक न होकर जगतानन्द हैं। यही बात प्रस्तुत प्रति से विदित होती है।''

ग्रन्थारम्भ में है—''अथ जगत नन्द कृत तिल सत लिष्यते'' और ग्रथांत में है—''इति श्री जगत कृत तिल सत समासं।''

इन खोज रिपोर्टों के अनुसार तिल शतक के रचयिता हैं—

(क) जुगतिराय

(ख) जुगत राय, जुगुत राय

(ग) जगतानन्द, जगत नन्द, जगत

मयाशंकर जी याज्ञिक का लेख न तो मैंने देखा, न डा० गुप्त ने ही इसका कोई विवरण दिया है।

सभा की खोज के संक्षिप्त विवरण में दो जुगत राय हैं।

१. जुगतराय—आगरा निवासी। किसी हिम्मतखां के आश्रित, सं० १७३० के लगभग वर्तमान।

छंद रत्नावली (पद्य)—२९|१७७

२. जुगत राय—अन्यनाम जगतानन्द

तिल शतक (पद्य)—पं० २२|५०, २६|२१२, ३२|९३

इससे स्पष्ट है कि १९३२|९३ वाले जगतानन्द या जगतनंद भो जुगत राय ही

हैं। इस रिपोर्ट की पुष्पिका में कवि का नाम 'जगत' ही है, जगतानन्द या जगत-नन्द नहीं।

जगतानन्द नाम के एक कवि वल्लभ संप्रदाय में हुए हैं। इनका नाम 'जगतनंद' और 'जगतानन्द' भी है। इनकी छाप 'नन्द' भी है। यह सम्प्रदाय-निष्ठ कवि हैं। इन्होंने 'उपखाने सहित दशम स्कन्ध की कथा' सं० १७३१ में एवं 'वल्लभ वंशावली' की रचना सं० १७८१ में की थी। इनकी अन्य रचनायें है–१. श्री गुसाइं जी की वनजात्रा, २. व्रज वस्तु वर्णन या व्रज परिक्रमा, ३. व्रज ग्राम वर्णन, ४. दोहरा साखी।

यह संपदाय-निष्ठ भक्त कवि तिल-शतक जैसी शृङ्गारी रचना का विधाता नहीं हो सकता। ऐसा डा० गुप्त का मत है।

छंद रत्नावली के स्रष्टा जगतराय ही तिल शतक के रचयिता हैं। श्री अगर-चन्द नाहटा ने 'आगरे के साहित्य प्रेमी जगतराय और उनका छंद रत्नावली ग्रन्थ' शीर्षक लेख लिखा था, जो आगरा के भारतीय साहित्य, वर्ष २, अङ्क २, अप्रैल १९५७ में छपा था। यह जगतराय सिंघल गोत्रीय अग्रवाल थे। इनके पितामह माईदास थे, जो जैन श्रावक थे। माईदास पानीपत के निकट गुहानो नगर के रहने वाले थे। इनके दो पुत्र हुए—रामचंद्र और नन्दलाल। रामचन्द्र के योग्य पुत्र जगत-राय हुए और नन्दलाल के पुत्र सुजान सिंह हुए। जगत राय के पुत्र का नाम टेकचंद था। किन्हीं कारणों से माईदास अथवा उनके पुत्र गण अथवा स्वयं जगतराय को गुहाणा छोड़कर आगरा आना पड़ा। सं० १७२२ में काशीदास ने 'सम्यक्त्व कौमुदी' एवं सं० १७२२ में ही अभयकुशल ने 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' नामक ग्रन्थ जगतराम के लिए ही आगरा में रचा था। स्वयं इन्होंने छंद-रत्नावली को रचना आगरा में ही सं० १७३० में हिम्मत खान के लिए की थी। छंद-रत्नावली और तिल-शतक दोनों हो साहित्यिक रचनायें हैं, संप्रदाय से इन्हें कुछ लेना देना नहीं। डा० गुप्त का मत है कि यही जगतराय तिल-शतक के प्रणेता हैं।

अलकशतक चमत्कारपूर्ण, मुस्लिम संस्कृति से परिपूर्ण एक सैयद मुसलमान मुबारक बिलग्रामी की रचना है। तिल शतक भावपूर्ण, हिन्दू संस्कृति से भरपूर एक हिन्दू (जैन भी हिन्दू ही हैं) की रचना है। दोनों रचनाओं के रचनाकाल में प्रायः १०० वर्ष का अन्तर है। अलक शतक सं० १६४० के आस पास की और तिल-शतक सं० १७३० के आस पास की रचना है।

—शेरपुर, गाजीपुर

३५. डॉ० गुप्त की नेवाज संबंधी शोध

(श्रीमती जरीना रहमत एम० ए०)

नेवाज डॉ० किशोरीलाल गुप्त के १९३३-३४ ई० से ही परम प्रिय कवियों में रहे हैं, जब वे लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर में आठवें दर्जे के विद्यार्थी थे। कालांतर में जब वे प्रौढ़ हुए, तब उन्होंने 'नेवाज' ग्रन्थावली का सम्पादन किया। इनकी आधारभूत सामग्री निम्नांकित है —

(क) १. शकुन्तला उपाख्यान—नवल किशोर प्रेस लखनऊ, १८९५ ई०

२. शकुन्तला उपाख्यान—भारत जीवन प्रेस काशी, १९०४ ई०

३. शकुन्तला नाटक—परिमल प्रकाशन प्रयाग, १९५९ ई०, सम्पादक—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

४. कवि नेवाज कृत ब्रजभाषा पद्यानुवद्ध सकुंतला नाटक—मंगल प्रकाशन, गोविंद राजियों का रास्ता, जयपुर—१९७० ई०, सम्पादक—राजेन्द्रशर्मा, उदयपुर।

(ख) छत्रसाल विरुदावली—काशी नागरी प्रचारिणी सभा का हस्तलेख, ग्रन्थ संख्या २४८९।

(ग) फुटकर छंद--विभिन्न प्राचीन काव्य-संग्रहों से संकलित कुल २४ छंद, (६ कबित्त और ८ सवैये)।

डॉ० गुप्त की नेवाज सम्बन्धी-शोध 'नेवाज ग्रन्थावली' की भूमिका में सन्निविष्ट है। इस शोध से नेवाज के सम्बन्ध की सारी पुरानी धारणाओं में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। नेवाज के सम्बन्ध में अनेक समस्यायें है। इन सबका उल्लेख डॉ० गुप्त ने 'पुरोवाक' में किया है। इनका आगे एक-एक कर वर्णन और समाधान प्रस्तुत है।

१. नेवाज एक

पहली समस्या है नेवाज एक हैं, दो हैं या तीन।

शिव सिंह सेंगर ने, शिव सिंह सरोज में तीन नेवाजों का विवरण दिया है। वे लिखते हैं—'एक दोहे से लोगों को शक है कि निवाज कवि मुसलमान थे, पर हमने बहुत जांचा तो एक निवाज मुसलमान और एक निवाज हिंदू पाए गए' फिर भी उन्होंने तीन नेवाजों का विवरण दिया है। एक हिंदू नेवाज को उन्होंने दो कर दिया है। एक अंतर्वेदी, दूसरा बुन्देलखंडी। सरोज-सर्वेक्षण में डॉ० गुप्त ने भी दो नेवाजों को मान्यता दी है—एक हिन्दू, एक मुसलमान। उन्होंने हिन्दू नेवाज को

शकुन्तला एवं छत्रसाल विरुदावली का कवि माना था और मुसलमान नेवाज को श्रृंगारी फुटकर छंदों का। पर जब वे नेवाज का अलग से विशिष्ट अध्ययन करने बैठे, तब वे इस निश्चय पर पहुँचे कि नेवाज न दो हैं, न तीन, केवल एक हैं। यह नेवाज हिंदू थे, ब्राह्मण थे, तिवारी थे, यही छत्रसाल के दरबार में थे और बुंदेलखण्डी थे, यहीं भगवंतराय खींची, असोथर के प्रशस्ति गायक थे और अंतर्वेदी थे। बुन्देलखण्ड और अंतर्वेद की सीमा-रेखा तो यमुना ही हैं। नदी पार करते ही अन्तर्वेदी बुन्देलखण्डी हो जाता है और बुन्देलखण्डी अन्तर्वेदी।

डॉ० गुप्त का कहना है कि नेवाज मुसलमान का अस्तित्व इस दोहे पर निर्भर है—

तुम्हें न ऐसी चाहिए, छत्रसाल महराज
जहँ भगवत गीता पढ़ी, तहँ कबि पढ़त नेवाज

नेवाज (नमाज) और 'भगवद् गीता' की 'मुद्रा' ने सरोजकार को भरमा दिया था। मीर आजाद विलग्रामी नेवाज के समकालीन थे। उन्होंने अपने फारसी ग्रन्थ 'सर्वे आजाद' में विलग्राम के मुसलमान हिन्दी कवियों का वर्णन किया है। इसमें नेवाज नहीं है। अतः स्पष्ट है कि नेवाज न तो विलग्रामी थे, न मुसलमान ही।

डॉ० शैलेश जैदी ने 'विलग्राम के मुसलमान हिन्दी कवि' में नेवाज को सन्निविष्ट किया है। उन्होंने यह सन्निवेशन सरोज के ही आधार पर किया है। उन्होंने 'सर्वे आजाद' का कोई हवाला नहीं दिया है।

अस्तु नेवाज एक ही हैं।

२. नेवाज के आश्रयदाता आजमखान

दूसरी समस्या नेवाज के आश्रयदाता के सम्बन्ध में है। पुराने साहित्यकार मानते आए हैं कि नेवाज उन आजमशाह के दरबार में थे, जो औरंगजेब के पुत्र थे, और जिन्होंने महाकवि देव के भाव-विलास और अष्टयाम को सुना और सराहा था—

दिल्लीपति अवरंग के, आजम साहि सपूत
सुन्यो सराह्यो ग्रंथ यह, अष्टयाम संयूत

—महाकवि देव, भाव-विलास।

श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी एवं श्री राजेन्द्र शर्मा ने इसे अतथ्य सिद्ध किया है और औरंगजेब के धाय-भाई मुजफ्फर हुसेन फिदाई खां कोका को इनका आश्रयदाता माना है। डॉ० गुप्त ने इन विद्वानों के कथन को भी नहीं स्वीकार किया है। नेवाज ने शकुन्तला के प्रारंभ में ही अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है। इसके अनुसार नवाब मुसले खान ने सं० १७७० में हुए राज्याधिकार के युद्ध में फर्रुखसियर को विजय दिलवाई थी। इसी उपलक्ष में फर्रुखसियर ने उसे आजमखान की उपाधि दी थी। यही

मुसलेखां या आजमखाँ नेवाज के आश्रयदाता थे। इसी आजम खाॅं के लिए जंगनामा के प्रसिद्ध रचयिता श्रीधर मुरलीधर ओझा ने सं० १७६७ में भाषा भूषण की रचना की थी और जंगनामा में भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

३. शकुन्तला का रचना-काल

आचार्य शुक्ल ने शकुन्तला का रचनाकाल सं० १७३७ दिया है। डॉ० गुप्त का कथन है कि शकुन्तला की रचना सं० १७७३ में हुई और अंक-विपर्यय के कारण १७७३ का १७३७ हो गया है। फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के लिए काजिम अली जवां ने शकुन्तला का जो उर्दू गद्यानुवाद किया था, उसका आधार नेवाज का यह ग्रन्थ ही था। जवां ने अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि नेवाज ने इस ग्रन्थ की रचना ११२८ हिजरी में की थी। तासी ने इस हिजरी सन को १७१६ ई० माना है। १७१६ में ५७ जोड़ने से १७७३ होता है। ७३ के उलट जाने से ३७ बनता है। यही कुछ शकुन्तला के रचनाकाल के सम्बन्ध में हुआ है।

४. शकुन्तला नाटक नहीं है

चौथी समस्या है क्या 'नेवाज कृत शकुन्तला' नाटक है। हिन्दी के सभी इतिहासकार आँखें मूंदकर इसे नाटक कहते आये हैं। पर डॉ० गुप्त का कहना है कि यह नाटक नहीं है, खंड काव्य है।

इस तथ्य को स्वीकार करते हुए भी नर्मदेश्वर चतुर्वेदी एवं श्री राजेन्द्र शर्मा ने अपने-अपने संस्करणों में ग्रंथ का नाम 'शकुन्तला नाटक' ही दिया है, यह बहुत बड़ी बिडम्बना है। ग्रन्थ को पढ़कर कोई भी निर्णय कर सकता है कि यह नाटक है अथवा खण्डकाव्य। "हाथ कंगन को आरसी क्या"। इस तथ्य को जानने के लिए बड़ें-बड़े विद्वानों का मत जानने की आवश्यकता नहीं हैं। दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य का भेद बहुत स्पष्ट है।

५. शकुन्तला का वास्तविक नाम

पाँचवीं समस्या है ग्रन्थ के वास्तविक नाम की। इसका नाम 'शकुन्तला नाटक' है या 'शकुन्तला उपाख्यान' या और कुछ। डॉ० गुप्त ने भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि नेवाज ने इस ग्रन्थ का नाम 'श्री सुधा तरंगिणी' रखा है और इसके सर्गों को तरंग कहा है। इस ग्रन्थ का एक अन्य नाम है—'शकुन्तला नाटक कथा'। इस दूसरे नाम को ही लोगों ने स्वीकार किया, पर अधूरे रूप में उन्होंने शकुन्तला नाटक तो ले लिया, 'कथा' को छोड़ दिया। इससे इस श्रव्यकाव्य की गणना नाटक ग्रन्थों में होने लगी, जो यह है नहीं। यह बड़े लोगों की छोटी भूल है और कुछ नहीं।

६. शकुन्तला अनुवाद नहीं हैं

छठीं समस्या यह है क्या नेवाज कृत शकुन्तला महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद है।

डॉ० गुप्त स्पष्ट कहते हैं कि यह श्रव्यकाव्य कालिदास के नाटक को कथा-रूप में प्रस्तुत करता है। यह शकुन्तला नाटक नहीं है, शकुन्तला- नाटक-कथा है। इसका आधार महाकवि कालिदास का नाटक है, पर यह उसका अनुवाद नहीं है। किन्हीं अंशों का छन्दानुवाद या भावानुवाद भी हो गया हो, पूरा ग्रन्थ अनुवाद नहीं है ! यहाँ तो काव्य की विधा ही बदल गई है, फिर अनुवाद कैसा ?

भूमिका मूल ग्रन्थावली से बड़ी है और अत्यन्त शोधपूर्ण है। जनवरी १९६३ की 'समिति वाणी' (भरतपुर) में डॉ० गुप्त ने नेवाज पर एक शोध पूर्ण लेख लिखा था—'नेवाज के आश्रयदाता आजमशाह तथा उनकी शकुंतला के रचनाकाल एवं नाटकत्व पर विचार'। दिसम्बर १९६६ एवं जनवरी १९६७ में यह भूमिका लिखी गई और उक्त लेख खण्ड-खण्ड होकर इसमें सम्मिलित हो गया। नेवाज के अध्ययन का जो क्रम १९६२ में प्रारम्भ हुआ, वि० १९८२ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में छत्रसाल विरुदावली की प्राप्ति से पूर्ण हुआ। ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित पड़ा हुआ है, यह दुर्भाग्य की बात है।

शोध छात्रा
काशी हिंदू विश्व विद्यालय

३६. घनानन्द के अध्ययन में डॉ० किशोरी लाल गुप्त का योग

(डॉ० सभापति मिश्र)

सुजान-शतक

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने १९२७ वि० में २० वर्ष की ही वय में घनानन्द के ११४ कवित्त सवैयों का संकलन करके 'सुजान शतक' नाम से प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ लगभग १०० वर्षों से अनुपलब्ध रहा है। इसकी एक प्रति गुप्त जी को २४ अक्टूबर १९४१ को, जब वे एम. ए. द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी थे, नव पैसे में काशी में पुरानी किताबों की किसी दुकान से मिल गई थी, जो १९७२ तक उनके यहाँ पड़ी रही। १९७३ में ग्रीष्मावकाश में उन्होंने इस ग्रन्थ को संपादित कर दिया, इसके छन्दों की ललित टीका कर दी। इस टीका का गद्य स्वतन्त्र गद्य काव्य का आनन्द देता

है। यह ग्रन्थ दिसम्बर १९७७ में मधु प्रकाशन, ४२ ताशकंद मार्ग, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हो गया है। इस प्रकाशन द्वारा गुप्त जी ने घनानन्द के अध्ययन में दोहरा योग दिया है। एक तो अनुपलब्ध कृति को उपलब्ध करा दिया है। दूसरे इसके रस भरे छन्दों की अत्यन्त ललित टीका कर दी है। डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित सुजान-शतक की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह भूमिका निम्नांकित पाँच खण्डों में विभक्त है—

१. घनानन्द।
२. घनानन्द-कवित्त।
३. सुजान-शतक।
४. घनानन्द-काव्य के सम्बन्ध में विद्वानों के अभिमत।
५. घनानन्द सम्बन्धी विवध प्रकाशन।

डॉ० गुप्त ने कवि का वास्तविक नाम घनानन्द माना है। आनन्दघन तो छन्दः प्रवाह के लिए बन गया है। गुप्त जी घनानन्द का जन्म-काल १७३० नहीं मानते, १७४५ ही मानते हैं। वे यह मानते हैं कि इन्होंने सं० १७७६ के बाद किसी समय वृन्दावन में वृन्दावन देव से निम्बार्क सम्प्रदाय की दीक्षा ली, न कि १७५९ के पहले, जैसा कि विश्वनाथ जी मानते हैं।

डॉ० गुप्त विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शिष्य हैं। पर वे उनसे भी अपनी असहमति व्यक्त करने में नहीं चूकते। उदाहरण के लिए सुजान-हित के सम्बन्ध में मिश्र जी के विचारों से वे असहमत हैं। डॉ० गुप्त यह नहीं मानते कि सुजान-हित, घनानन्द-कवित्त के बाद का संकलन है और घनानन्द-कवित्त की लिखी किसी अस्त-व्यस्त प्रति के आधार पर नवीन क्रम से संगृहीत है। वह स्वतन्त्र संग्रह है। वे सुजान-हित को किसी राधा बल्लभी द्वारा संकलित भी नहीं मानते। हित का अर्थ प्रेम है। इसमें घनानन्द के सुजान के प्रति हित (प्रेम) का वर्णन है। अतः यह सुजान-हित है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद घनानन्द की साहित्यिक शोध के सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, शम्भु प्रसाद बहुगुणा, डॉ० ज्ञानवती त्रिवेदी, डॉ० मनोहर लाल गौड़ तथा डॉ० किशोरी लाल गुप्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें बहुगुणा, त्रिवेदी तथा गौड़ का कार्य मात्र समालोचनात्मक है। आचार्य मिश्र एवं डॉ० गुप्त ने अथक परिश्रम करके घन आनन्द की रचनाओं के सम्पादन का महनीय कार्य किया है। आचार्य मिश्र ने छतरपुर, वृन्दावन तथा लन्दन से प्राप्त पाण्डुलिपियों के आधार पर घन आनन्द ग्रन्थावली का सम्पादन किया। डॉ० गुप्त ने सुजान शतक को पुनः प्रकाशित किया। उन्होंने विस्तृत भूमिका के साथ इसका प्रामाणिक भाष्य भी प्रस्तुत किया।

डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित-सुजान-शतक की भूमिका घनानन्द के अध्ययन में

महत्वपूर्ण शोध-सामग्री है। भूमिका में प्रस्तुत सुजान-शतक, घनानन्द-कवित्त तथा सुजान-हित के छन्द-क्रमांक की सांख्यिकी घन आनन्द के अनुसन्धित्सुओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निश्चय ही डॉ० गुप्त ने यह कार्य बड़ी तत्परता, धैर्य और श्रम से गणितीय पद्धति पर प्रस्तुत किया है।

डॉ० गुप्त ने घनआनन्द-कवित्त और सुजान-हित के छन्दों की तुलनात्मक सूची सुजान-शतक की भूमिका में प्रस्तुत की है। सुजान-हित और घनानन्द-कवित्त में जिन छन्दों का पार्थक्य है, उनकी भी सूची अलग से दे दी है। घनानन्द-कवित्त के विभिन्न हस्तलेखों पर उन्होंने प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सुजान-विनोद, कवित्त संग्रह, स्फुट कवित्त और कवित्त नामक अन्य चार कवित्त संग्रहों का विवरण, आकार प्रकार खोज रिपोर्ट के अनुसार दिया है, जिससे घन आनन्द के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है। डॉ० गुप्त ने उन प्राचीन संग्रहों का परिचय भी भूमिका में दे दिया है, जिनमें घनानन्द के छन्द संकलित हैं। इनमें व्रजनिधि पद संग्रह, हजारा, सुधासर, राग कल्पद्रुम, शृंगार संग्रह, दिग्विजय भूषण, सुन्दरी तिलक, षटऋतु हजारा, नख सिख हजारा, व्रजमाधुरी सार, कविता कौमुदी प्रमुख हैं। सुजान-शतक की ७९ पृष्ठ की भूमिका में डॉ० गुप्त ने घनानन्द और उनके काव्य के सम्बन्ध में गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। वास्तव में सुजान-शतक भूमिका का आधार लिए बिना घनानन्द विषयक अध्ययन अधूरा रह जाता है।

२. शिव सिंह सरोज और हजारा

शिव सिंह सरोज में घनानन्द का विवरण दो बार है। पहला विवरण २२ संख्या पर 'आनन्दघन' नाम से है। दूसरा विवरण २१२ संख्या पर 'घन आनन्द कवि' नाम से है। आनन्द घन के नाम पर दो सवैये उदाहृत हैं। प्रथम का प्रतीक है—

आपुहिते तन हेरि हँसे।

यह घनानन्द की ही रचना है।

दूसरा छन्द यूँ है—

जैहे सबै सुधि भूलि तुम्हैं, फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहै
एक को आँक बनावत मेटत, पोथिय कांख लिए दिन जैहै
साँची हौं भाखति, मोहि कका की सौं, प्रीतम की गति तोरिहु ह्वैहै
मोसों कहा अठिलात अजासुत, कैहौं कका जी सों तोहू सिखैहैं

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे केशव-पुत्र-बधू की रचना माना है और ठीक माना है। उनका आधार ना० प्र० स० में सुरक्षित ८५९ संख्यक एक हस्त लेख है।

डॉ० गुप्त ने भी इस छन्द को केशव-पुत्र-बधू का ही माना है। पर वे और आगे चलकर यह भी बताते हैं कि शिव सिंह से यह भूल कैसे हो गयी। सभा का ८५९ संख्यक हस्तलेख एक कवित्त-सवैया-संग्रह है। डॉ० गुप्त ने इसे कालिदास (?) हजारा सिद्ध किया है। इस संग्रह में किसी भी कवि की कविता संकलित करने से पहले लाल स्याही से उसका नाम लिख दिया गया है। कहीं-कहीं काली स्याही से भी नाम लिखा गया है। केवल केशव-पुत्र-वधू का नाम कविता लिख देने के पश्चात् अन्त में दिया गया है। कवियों की कवितायें प्रायः नये पन्ने या नये पृष्ठ से प्रारम्भ की गई है। जहाँ कवि की कविता समाप्त हुई है, पत्र अथवा पृष्ठ का शेषांश सादा छोड़ दिया गया है। संग्रह को डॉ० गुप्त ने हजारा नाम से सम्पादित करके स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित करा दिया है। इसमें ७२ संख्या पर आनन्दघन हैं और ७३ संख्या पर केशव पुत्र-बधू। आनन्दघन के नाम पर कुल सात छन्द हैं। शिव सिंह ने सरोज में इसका दूसरा छन्द उतार लिया है। केशव पुत्र-वधू वाले सवैये के ऊपर कवयित्री का नामोल्लेख नहीं है। अतः सरोजकार ने भ्रम से इसे भी आगे से चले आने वाले कवि आनन्दघन की रचना समझ लिया और उनके नाम पर उतार लिया। यह है रहस्य इस भूल का।

३. घनानन्द के कबित्तों का एक हस्तलेख

"घनानन्द कवित्त" को पहले १८९७ ई० में रत्नाकर जी ने "सुजान सागर" नाम से प्रकाशित किया था। इसीको बाद में १९२९ ई० में अमीर सिंह ने "रसखान और घनानन्द" के अन्तर्गत संकलित किया। दोनों ग्रन्थों के प्रारम्भ के प्रथम दो सवैया ये हैं—

नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन, औ सुन्दरतानि के भेद को जानै
जोग वियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद-स्वरूप को ठानै
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिलें प्रीतम सान्ति न मानै
भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कबित्त बखानै—१

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै, सु कहै इहि भाँति की बात छकी
सुनिकैं सबके मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी
जग की कबिताई के धोखे रहे, ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी
समुझैं कविता घन आनँद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी—२

पहले ये दोनों छन्द स्वयं घनानन्द के समझे जाते थे और इनकी समन्वित गणना घनानन्द के कवित्तों में होती थी। सम्बत् २००० वि० (१९४३ ई०) में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'घनानन्द-कवित्त' प्रकाशित हुआ, तब लोगों को मालूम हुआ कि ये दोनों प्रशस्ति छन्द स्वयं घनानन्द के लिखे हुए नहीं हैं। ब्रजनाथ ने घनानन्द के कवित्त-सवैयों का संकलन किया था। ये छन्द इन्हीं ब्रजनाथ के हैं। मिश्र जी

ने इन्हें अलग से दिया है। इनकी समन्वित गणना नहीं की है। मिश्र जी वाले आधार-हस्तलेख के प्रारम्भ में ब्रजनाथ के ये दो छन्द थे। हस्तलेख के अन्त में छः छन्द और भी थे। इस प्रकार मिश्र जी ने ब्रजनाथ के ८ छन्द दिये। इनमें आठवें छन्द का चतुर्थ चरण नहीं था। पंडितजी ने इसे स्वयं पूरा किया और कोष्ठक के अन्तर्गत रख दिया। यह छन्द यों है--

विनती कर जोरि के बात कहौं, सो सुनौ मन-कान दै हेत सों जू
कविता घन आनँद की न पढ़ौ, पहिचान नहीं उहि खेत सों जू
जौ पढ़े बिन क्योंहूँ रह्यौ न परै, तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सों जू
[रस स्वादहिं पाय, विषाद बहाय, रहौ रमि कै इहि नेत सों जू]

पं० मिश्र ने यह सब शोध-कार्य नवनीत जी के एक हस्तलेख के आधार पर किया था, जो सभा के रत्नाकर-संग्रह में सुरक्षित है और रत्नाकर जी को अपने 'सुजान सागर' के मुद्रित हो जाने के अनन्तर मिला था।

डॉ० गुप्त ने साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सुरक्षित घनानन्द के कवित्तों के एक अन्य हस्तलेख से इस गाड़ी को आगे बढ़ाया है। पहले तो इन्होंने आठवें छन्द के चौथे चरण को मूल रूप में प्रस्तुत किया है--

जो पै प्रेम-दुखी हिय नाहिं भयौ, तौ कहा सुख है लिख लेत सों जू

मूल पाठ और प्रस्तावित पाठ में अंतरं महदंतरम् है।

गुप्तजी ने ब्रजनाथ के प्रशस्ति छन्दों की संख्या नव दी है। प्रस्तुत हस्तलेख में नवों छन्द ग्रन्थारम्भ में एक साथ है। दूसरा छन्द नया है--

राधिका कृस्न कौ नाम सदा, निसि बासर जो उर अंतर राखैं
चाह सौं नित्त विहार की आस करैं, सोई प्रेम सुधा-रस चाखैं
लोक की कानि रु वेद मतौ, कुल वर्न तजैं, जग रीतिय नाखैं
सो कविता घन आनँद की, रस रीति की प्रीतिय सों चित भाखैं

इस हस्तलेख से गुप्त जी ने घनानन्द के सत्रह नये कवित्त सवैये ढूंढ़ निकाले हैं जिनके प्रतीक ये हैं--

कृष्ण-स्तुति

१. दीनन दयाल, सदा सेवक कृपाल—११

२. जाको नाम रटै जग के सब, सोऊ तौ—१२

कृष्ण-रूप

३. बोलन मिठास पै सुधा सो बारि-बारि दीजै--१२

वियोग—

४. भावै न भौन, गई तज भूख—२६

५. जासों है लगन, सो तो मगन बहुत ठौर--२८

६. जौ विधना वृज-वास न देतौ--३१

नेह या वैर—

७. पावक प्रचण्डहूँ के पुंज तैं अधिक तातौ--३४

राधा-अभिसार—

८. रूप-रासि राधा अभिसरति गुपाल पैं सु—४५

वृन्दावन

९. वन बेली बलित, ललित फल फूल धरैं--४६

मान—

१०. अलबेली वेली वधू विटप वितान-कंठ--४७

दूती-कथन--

११. मोहै जां मदन, ताकी मोहि तू रही है ऐसो--४८

होरी--

१२. छैल नन्दराइ कौ छबीलौ रंग भरौ भूलौ--५०

१३. होरी रंग रातौ, अंग जोबन उमंग मातौ--५१

११. लीने पाँच सातनि समिटि स्याम घन दौरि--५२

मुख-चन्द—

१५. महा मृदु हास कहाँ, सुखद सुवास कहाँ--८४

वेद पुरानन कौ मत—

१६. न रहै उर अंतर जा नर कैं--१०१

बसन्त—

१७. आइ लई न कछू सुधि हाइ--३९७

डॉ० गुप्त ने इस हस्तलेख पर एक विशद लेख लिखा है, जो अभी तक अप्रकाशित पड़ा है। इसी लेख में अन्य सूत्रों से संकलित कुछ अन्य छन्दों की भी सूचना उन्होंने दी है।

१. मँडराती रहै धुनि कानन मैं, अजसै उपराजिबोई सी करै
   --हजारा, श्रृंगार संग्रह, सुजान शतक, सुन्दरी तिलक

२. अपनो हित मानि सुजान सुनौ, धरि कान निदान तें ऊकिए ना
   —सुन्दरी तिलक, द्वितीय सं० २०६, तृतीय सं० ४४५

पाँच पद —

१. ननदिया होरी खेलन दै री
—कीर्तन संग्रह २, पृ० १०६, पद ११८; कीर्तन प्रणालिका पद ८२६

२. छैला ए आज रंग में बोरी री
—लघु कीर्तन कुसुमाकर खण्ड ३, पृ० ५९, पद २५

३. तुम छके छैल से डोलो
—कीर्तन संग्रह भाग—२, पृ० ७३, पद ५३

४. ए री यह जोबन तेरो, होरी मैं कैसे बचैगो
—शृंगार रस सागर, भाग-१, पृ० ३४०, पद २२१

५. होरी खेलन की चौंप हो, निस नींद न आवै
—श्रृङ्गार रस सागर, भाग-१, पृ० ३४०, पद-२२२

४. घनानंद की प्रेयसी का नाम सुजान था

एक विद्वान ने सम्मेलन पत्रिका में प्रश्न उठाया था, क्या घनानन्द की प्रेयसी का नाम सुजान था ? डॉ० गुप्त ने दृढ़ता पूर्वक इसका उत्तर दिया था—'हाँ, घनानन्द की प्रेयसी का नाम सुजान था'। इसके प्रति-उत्तर में उक्त विद्वान गाली-गलौज पर भी उतर आये और सम्मेलन पत्रिका के इसके प्रति प्रति-उत्तर को नहीं छापा था—'इक्तिफ्ल दबिस्तां है फलातूं मेरे आगे'।

सचमुच डॉ० किशोरी लाल गुप्त का घनानन्द के अध्ययन के सम्बन्ध में यह योगदान महत्वपूर्ण है।

अध्यक्ष हिंदी विभाग
हँडिया डिग्री कालेज, हँडिया, इलाहाबाद

●

३७. सुजान शतक : समीक्षा

(डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह)

घनानन्द नेह के दीवाने कवि थे। उनका काव्य प्रेम का महाकाव्य है। उनके सरस कवित्त-सवैये आज भी रसिकजनों के कंठहार हैं। उन्होंने नेह की स्थिति का चित्रण किया था—'देह दहै, न रहै सुधि गेह की, भूलिहू नेह को नाम न लीजै।' नेह के दीवाने कवि बाबू हरिश्चन्द्र घनानन्द की ऐसी सरस कविताओं पर अपनी किशोरावस्था में ही मुग्ध हुए थे। ऐसी सरस कविताओं ने उनके मन का संस्पर्श किया था, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने १८७० ई० में घनानन्द के चुने हुए ११४ कवित्त और सवैयों को 'सुजान शतक' नाम से संकलित किया था। इस पुस्तक का १८७० ई० में बनारस के लाइट प्रेस से प्रकाशन हुआ था।

बाबू हरिश्चन्द्र पहले रसिक पाठक थे, जिन्होंने घनानन्द के कवित्त-सवैयों के प्रकाशन का प्रयास किया था। यह संकलन पाकेट बुक आकार में प्रकाशित हुआ था, जो अब दुर्लभ हो गया था। हिन्दी के अधीती विद्वान् और ब्रजभाषा साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने इस दुर्लभ कृति को सरल गद्य टीका सहित वैज्ञानिक ढंग से संपादित करके घनानन्द के रसिक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने इस कृति के प्रारम्भ में ७९ पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण और शोध परक भूमिका प्रस्तुत की है, जिसमें घनानन्द और आनन्द घन का अंतर, घनानन्द की जाति, जन्म काल, उनकी कथित प्रेमिका सुजान, उनके संप्रदाय, उनकी निधन-तिथि, उनकी कृतियों और उनकी प्रशस्ति में अन्य कवियों द्वारा लिखी गई कविताओं के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है।

अपनी इस शोधपरक भूमिका में सम्पादक ने घनानन्द के कवित्त सवैयों के संग्रह के उपलब्ध हस्तलेखों पर भी गंभीरता पूर्वक विचार किया है। इसके अतिरिक्त व्रजनिधि-पद-संग्रह, कालिदास हजारा, 'नवीन' कृत सुधासर, रागकल्पद्रुम, सरदार कवि कृत शृंगार संग्रह, गोकुल कवि कृत दिग्विजय भूषण, मन्नालाल और हनुमान कवि कृत सुन्दरी तिलक (जिसे लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने बाबू हरिश्चन्द्र के नाम से छापकर उन्हें इस संग्रह के संकलयिता रूप में प्रतिष्ठित किया। सुन्दरी तिलक का पहला संस्करण १८६२ ई० और दूसरा संस्करण १८७२ ई० में मन्नालाल और हनुमान कवि के नाम से वाराणसी यंत्रालय से प्रकाशित हुआ था,) और पटना के खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित सुन्दरी तिलक में (जिसका भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाम पर बाबू रामदीन सिंह ने वृहद संकलन तैयार कराया था) उपलब्ध छन्दों की तुलनात्मक सांख्यिकी-अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही आधुनिक संकलनों में घनानन्द की संकलित कविताओं के बारे में भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार के तुलनात्मक विवेचन से तथा विद्वान् संपादन ने अपनी भूमिका के अंत में घनानन्द के सम्बन्ध में चुने हुए २१ पुस्तकों की सूची भी दी है, जिससे घनानन्द-साहित्य के प्रेमी अध्येताओं को एक ही स्थान पर उनके सम्बन्ध में जानकारी की पूरी बातें मिल जाती है। इस भूमिका से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

'सुजान शतक' के प्रस्तुत संस्करण में घनानन्द की कविता का प्रामाणिक पाठ और पाठान्तर भी प्रस्तुत किया गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित 'घनानन्द कबित्त' के वैज्ञानिक पाठ को ही इस पुस्तक में रखा गया है। हरिश्चन्द्र के पाठ में जहाँ विभेद है, वहाँ संपादक ने पाठान्तर और जहाँ कोई उल्लेख नहीं

है, वहाँ हरिश्चन्द्र-स्वीकृत पाठ दिया है। इस वैज्ञानिक-पाठ से अनुसंधित्सुओं और सामान्य पाठक दोनों के लिए यह पुस्तक उपयोगी बन गई है। मूल पाठ के साथ पाठान्तर, कठिन शब्दों के अर्थ और कवित्त-सवैयों का सरल गद्य में अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक के अंत के छंदानुक्रमणिका भी दी गयी है, जिससे पाठकों को मनोवांछित छंद ढूंढने में अधिक सहायता मिलेगी। ऐसी दुर्लभ कृति के वैज्ञानिक पाठ, सरल हिन्दी टीका एवं विद्वत्तापूर्ण भूमिका के लिए संपादक की अनेक बधाई। पुस्तक का मुद्रण स्वच्छ और आकर्षक है।

—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ८२ (सं० २०३४) अंक ३-४

३८. सुजान शतक पर दो अभिमत

(१)

डा० किशोरी लाल गुप्त पुराने और अनुभवी विद्वान पाठालोचक तथा ग्रन्थ संपादक हैं। हमें उनसे आशा रही है कि वे अध्यापन कार्य से निवृत्ति प्राप्त करने के बाद दुर्लभ साहित्यिक ग्रंथों के शोधित, आलोचनात्मक एवं सटीक संस्करण हिन्दी जगत को उपलब्ध करायेंगे। अब 'गिरिधर कविराय ग्रन्थावली' और 'सुजान शतक' का प्रकाशन देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। दोनों ग्रंथ बड़े परिश्रम और मनोयोग से तैयार किये गए हैं।

'सुजान शतक' कवि घनानन्द के ११४ छन्दों का संकलन है, जिनका चुनाव मूलतः भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने किया था। यह एक लघु ग्रन्थ था। डॉ० गुप्त ने इसमें पाठान्तर, शब्दार्थ और व्याख्या जोड़कर इसके आकार और महत्व को कई गुना कर दिया है। इसके अतिरिक अस्सी पृष्ठों की विस्तृत भूमिका में संपादक की विद्वत्ता और गहरी पैठ का परिचय मिलता है। सारी सामग्री विद्यार्थियों के लिए विशेषतः उपादेय है।

—डॉ० हरदेव बाहरी

(२)

डॉ० किशोरी लाल गुप्त कलम के धनी हिन्दी रचनाकार हैं। साहित्य में उनको पैठ है, शब्द की उनकी परख है; और अर्थ को वे पकड़ते और पहचानते हैं। रचनाकार को इससे अधिक क्या चाहिए? सच यह है कि पैठ, पकड़ और पहचान न होने पर कविवर घनानन्द के कवित्तों का रस ही किसी के पल्ले नहीं पड़ सकता, न संपादक के, न पाठक के। सच यह भी प्रतीत होता है कि अभी तक हिन्दी जगत घनानन्द के सर्जक-स्वरूप को बहुत नहीं पहचान पाया। हिन्दी ही नहीं, संसार के किस कवि ने कहा है—

लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोंहि तो मेरे कवित्त बनावत ।

घनानन्द की आत्मा है, जिसमें कवित्त का ही ताना बाना है ।

कवि के इस रूप को समझना अपेक्षित है। संपादन इस ओर सफल रहा है। संपादक और प्रकाशक को शतशः साधुवाद ।

—डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा

३९. ठाकुर सबंधो डा० गुप्त की शोध

(श्रीमती कुसुमलता गुप्ता, एम० ए०)

शिव सिंह सरोज में 'ठाकुर कवि प्राचीन' के अन्तर्गत तीन ठाकुरों का यह विवरण दिया गया है—

"ठाकुर कवि प्राचीन १७००

ठाकुर कवि को किसी ने कहा है कि वे असनी ग्राम के बंदीजन थे ; संवत् १८०० के करीब मोहम्मदशाह बादशाह के जमाने में हुए हैं। किसी बुन्देलखण्डी कवि का बयान है कि छत्रपुर बुन्देलखण्ड में बुन्देला लोग हिम्मति बहादुर गोसाईं के मारने को इकट्ठा हुए थे। ठाकुर कवि ने वह कबित्त 'समयो यह वीर बरावनो है' लिखि भेजा। सब बुन्देला चले गए और हिम्मति बहादुर ने ठाकुर को बहुत रुपिया इनाम दिया। हिम्मति बहादुर संवत् १८०० में थे और कवि कालिदास ने हजारा संवत् १७४५ के करीब बनाया है और उसमें ठाकुर ने वहुत कबित्त और ऊपर लिखा हुआ कबित्त भी लिखा है। इससे हम अनुमान करते हैं कि ठाकुर कवि बुन्देलखण्डी अथवा असनी वाले भाट या कायस्थ कछु होवैं, पर ये कवि अवश्य सं० १७०० में थे। इनकी काव्य महा मधुर लोकोक्ति इत्यादि अलंकारों से भरी हुई सवं प्रसन्नकारी है। सवैया इनके बहुत ही चोटीले है। इनके कवित्त तो हमारे पुस्तकालय में सैकरों हैं, पर ग्रन्थ कोई नहीं, औ न हमने किसी ग्रन्थ का नाम सुना हैं।"

इसी के आधार पर लाला भगवान दीन ने १९२६ ई० में 'ठाकुर ठसक' की भूमिका में तीन ठाकुर स्वीकार किए—१. ठाकुर प्राचीन, २. ठाकुर असनीवाले बन्दीजन, ३. ठाकुर बुन्देलखण्डी कायस्थ। उन्होंने तीसरे ठाकुर की रचनाएं 'ठाकुर ठसक' में संकलित करने का प्रयास किया।

सरोज एवं लाला भगवानदीन के आधार पर ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (१९२९ ई०) में तीन ठाकुरों को मान्यता दे दी। फिर हिन्दी साहित्य के इतिहासों में तीन ठाकुरों के उल्लेख की परम्परा सी चल पड़ी।

१७ अक्टूबर १९५९ ई० को डा० किशोरी लाल गुप्त को नागरी प्रचारिणी सभा काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में एक खण्डित काव्य संग्रह (ग्रन्थ संख्या १३३४, जिल्द ८५९) मिला। डा० गुप्त ने इस संग्रह को तथाकथित कालिदास हजारा का खण्डित अंश सिद्ध किया। सरोज में हजारा के रचनाकाल सम्बन्धी तीन उल्लेख है—

१. सं० १७५५ के लगभग—भूमिका में।

२. सं० १७४५ के लगभग—ठाकुर कवि के जीवन चरित्र में।

३. सं० १७७५—कालिदास त्रिवेदी के जीवन चरित में।

डा० गुप्त ने इस संग्रह में संकलित आनंदघन (मृत्यु १८१७ वि०) कविंद (सं० १८१८, सन् १७६१ पानीपत की तीसरी लड़ाई का एक कवित्त में विवरण) महाराज नागरीदास (मृत्यु सं० १८२१), बुन्देलखण्डी ठाकुर (१८२३-१८८० वि०) के जीवन सम्बन्धी संवतों के आधार पर सिद्ध किया है कि यह कालिदास (?) हजारा वस्तुतः १८५० के बाद का संकलन है। डा० गुप्त द्वारा संपादित इस हजारा का एक अत्यन्त सुन्दर संस्करण जनवरी १९७८ में स्मृति प्रकाशन, २४ शहराराबाग, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ की भूमिका में डा० गुप्त ने निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि ठाकुर प्राचीन का कोई अस्तित्व नहीं। वस्तुतः दो ही ठाकुर हैं, एक हैं असनी वाले ब्रह्मभट्ट ठाकुर, जो ऋषिनाथ कवि के पुत्र, धनीराम कवि के पिता एवं प्रसिद्ध सेवक कवि के पितामह थे। यह ठाकुर काशी नरेश के भाई देवकीनंदन के यहाँ थे और इन्हींके लिए इन्होंने सं० १८६१ में बिहारी सतसई की सतसई-बरनार्थ टीका लिखी थी। ये रीतिबद्ध कवि थे।

दूसरे ठाकुर हैं बुन्देलखण्डी कायस्थ ठाकुरदास, जिनका जन्म सं० १८२३ में ओरछा में हुआ था और जिनका निधन सं० १८८० में हुआ। यही लोकोक्तियों वाले प्रसिद्ध ठाकुर हैं। यह ठाकुर रीतिमुक्त स्वच्छंदतावादी कवि थे।

हजारा का रचनाकाल सं० १७४५ समझने के कारण शिवसिंह एक प्राचीन ठाकुर सं १७०० मानने के लिए विवश थे। हजारा का रचनाकाल १८५० के बाद का सिद्ध हो जाने से यह विवशता समाप्त हो जाती है।

सरोज में ठाकुर प्राचीन के नाम पर ये नौ छंद अवतरित हैं—

१. बरुनीन मैं नैंन झुकैं उझकैं—हृ० ३३०

२ एक ही सों चित चाहिए ओर लौं–हृ० ३२२

३. उह कंज सो कोमल अंग गुपाल को—हृ० ३२४

४. सजि सूहे दुकूलन बिज्जु छटा—हृ० ३२५

५. सामिल में, पीर में, सरीर में, न भेद राखि—हृ० ३३१

६. बैर प्रीति करिबे की

७. कहिबे सुनिबे को कछू न हियाँ—ह० ३२३

८. कैसे सुचित्त भये निकसे—

९. कोमलता कंज तें

इन नौ छन्दों में से ६ छंद १, २, ३, ४, ५, ७ हजारा से अवतरित हैं। शेष ३ (६, ८, ९) किसी अन्य सूत्र से संकलित हैं। छंद ५, ६, ९ कवित्त हैं, शेष ६ सवैये।

हजारा में ठाकुर के कुल ११ छंद संकलित हैं—

१. एई हिय चारु के

२. एक ही सौं चित चाहिए ओर लौं—सरोज २

३. कहिए जु कहा, कहिबे की नहीं--सरोज ७

४. उह कंज सो कोमल अंग गुपाल को—सरोज ३

५. सजि सूहे दुकूलनि विज्जु छटा-सी—सरोज ४

६. कहा कहिए, कोऊ पीर कूँ नाहिनैं

७. लगी अंतर की करै जाहिर का

८. केसरि सुगंधि ही के रंग सौं रँगेंगे हम

९. परभात भए सुधि आवै भटू

१०. बरुनीन में नैन झुकैं उझकैं—सरोज १

११. सामिल मैं, पीर मैं—सरोज ५

इनमें तीन कवित्त हैं (१, ८, ११), शेष ८ सवैये हैं। इन ११ छंदों में से २, ३, ४, ५, १०, ११ संख्यक ६ छंद सरोज में संकलित हैं।

सरोज में ठाकुर के विवरण में जो 'समयो यह वीर वरावनो है' छंद संकेतित है, वह यह हैं—

कहिबे सुनिबे को कछू न हियाँ, न कही सुनी को दुख पावने हैं
इनकी सबकी मरजी करिकैं, अपने जिय को समुझावने हैं
कहि 'ठाकुर' लाल के देखिबे को, निज मंत्र यही ठहरावने हैं
इन चौचँदहाइन में परिकैं, समयो यह वीर बरावने हैं ५९३

डा० गुप्त के गुरु आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इनकी ठाकुर संबंधी इस शोध से परम प्रसन्न थे और उन्होंने हिन्दी साहित्य का अतीत द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण (सं० २०२३) में इस सम्बन्ध में दो बार उल्लेख किया है—

१. प्रमुख रूप से ठाकुर तीन माने जाते हैं। इधर निश्छल भाव से होने वाले अनुसंधान ने सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन ठाकुर भ्रांतिवश माने गये हैं, इसका उत्स शिवसिंह सरोज में है। इसके प्रणेता शिवसिंह सेंगर को किसी परवर्ती संग्रह के

सम्बन्ध में भ्रम हो गया कि यह कालिदास हजारा है। इसलिए उन्होंने इसमें आई कई कृतियों में उन कवियों का नाम देखकर जो कालिदास के परवर्ती प्रख्यात हैं, प्राचीन घोषित कर दिया। इसलिए हिन्दी के इतिहासकारों के समक्ष प्राचीन ठाकुर ही नहीं, प्राचीन विहारी भी आ विराजे।"

—अनुवचन : पृष्ठ ९

२. "इधर कालिदास हजारा के सम्बन्ध में मेरे प्रिय शिष्य श्री किशोरी लाल गुप्त ने जो सामग्री एकत्रित की है, उससे प्रमाणित होता है कि किसी परवर्ती रचना को कालिदास हजारा मान लिया गया है। इस स्थापना के अनुसार प्राचीन ठाकुर का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इस प्रकार दो ही ठाकुर बच रहते हैं—एक असनी-वाले रीतिबद्ध कवि और दूसरे जैतपुर वाले रीतिमुक्त स्वच्छंद कवि।"

—पृष्ठ ६६६ पाद-टिप्पणी

श्री पंचमी सं० २०२९ को एक बार फिर आचार्य मिश्र ने नागरी प्रचारिणी सभा काशी की आकर ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'ठाकुर' के अनुसंपादक के रूप में ठाकुर सम्बन्धी डा० गुप्त की इस शोध का उल्लेख यों किया हैं--

"असनी के दीनों ठाकुर अलग-अलग थे, ऐसा हिंदी साहित्य के इतिहास में इसलिए माना जाने लगा कि शिवसिंह सरोज के कर्ता ठाकुर शिवसिंह सेंगर को किसी परवर्ती संग्रह के सम्बन्ध में यह भ्रम हो गया कि वह पूर्ववर्ती कवि कालिदास का किया हुआ 'हजारा' नामक काव्य-संग्रह है। इसीलिए सरोज में कई कवि एक होते हुए भी दो-दो बार घोषित कर दिए गए। वहाँ विहारी भी दो हो गये। असनी के ठाकुर भी दो हो गये। इस भ्रम का निवारण हमारे प्रिय शिष्य डा० किशोरीलाल गुप्त के अनेक प्रमाणों के आधार पर अभी कुछ दिनों पूर्व भली भाँति कर दिया है। इसलिए असनी वाले प्राचीन या पूर्ववर्ती ठाकुर और वहीं के परवर्ती ठाकुर, जैसा लाला जी ने माना है और जैसा उन्हींके आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उल्लेख किया है, यथार्थ नहीं है। ऋषिनाथ के पुत्र ठाकुर की ही रचनाएँ प्राचीन ठाकुर और परवर्ती दूसरे ठाकुर के नाम पर मान ली गयी है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में प्रमुख दो ही ठाकुर हुए हैं, एक रीतिबद्ध या रीति सिद्धकवि थे और दूसरे रीतिमुक्त कवि।"

--संक्षिप्त जीवन चरित्र, पृ० १, २

डा० गुप्त ने कालिदास हजारा पर एक शोध निवंध लिखा था, जो १९६० ई० में गोरखपुर में गोरखपुर विश्वविद्यालय हिन्दी प्राध्यापक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में पढ़ा गया था। यही निबन्ध ना० प्र० पत्रिका वर्ष ६६ अंक २-४ सं० २०१८ वि०

(१९६१ ई०) मालवीय शती विशेषांक में प्रकाशित हुआ। इन्हीं सब के आधार पर आचार्य मिश्र ने हिन्दी साहित्य का अतीत द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण सं० २०२३ (१९६६ ई०) में ठाकुर के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया। फिर ६ वर्ष बाद १९७२ ई० में 'ठाकुर' में उन्होंने अपना मत दुहराया। इसके ६ वर्ष बाद जनवरी १९७८ में 'हजारा' का प्रकाशन हुआ।

१९८२ में लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० रामफेर त्रिपाठी का ग्रंथ 'रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य' प्रकाशित हुआ। इसमें ठाकुर प्राचीन के अस्तित्व को असिद्ध करके केवल दो ठाकुरों को पूर्णतया प्रमाणित करने वाले डा० किशोरी लाल गुप्त के यश को छीन लेने का प्रयास करते हुए डा० त्रिपाठी उपक्रम में लिखते हैं—

"हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहास–ग्रन्थों में अब तक ठाकुर नाम के तीन कवियों को मानने की परम्परा चली आ रही है—

(क) असनीवाले प्राचीन ठाकुर। (ख) असनीवाले दूसरे ठाकुर और (ग) बुन्देलखण्डी प्राचीन ठाकुर। प्रायः प्रथम बार पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि ठाकुर नाम के मात्र दो ही कवि हुए हैं–(क) बुन्देलखण्डी ठाकुर कायस्थ और (ख) असनीवाले ठाकुर वंदीजन।"

डा० त्रिपाठी ने ठाकुर के प्रकरण में लिखा है—"सरोजकार ने 'हजारा' का रचनाकाल सं० १७४५ को दृष्टि में रखकर ही ठाकुर के काल निर्णय का अनुमान से प्रयास किया था, किन्तु 'सरोज' के विशिष्ट अध्येता डा० किशोरी लाल गुप्त के नवीन अनुसंधान के अनुसार 'हजारा' का सङ्कलन सं० १८७५ के आसपास किया गया है[५]।

---

५. डा. किशोरी लाल गुप्त : सरोज सर्वेक्षण पृ. ३२८, हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद सन १९६७ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६६, सं० २०१८ अंक २–४ (मालवीय शती विशेषांक) में प्रकाशित 'कालिदास हजारा' शीर्षक लेख।"

डा० त्रिपाठी के ग्रंथ के १६ वर्ष पूर्व १९६६ ई० में आचार्य मिश्र का हिंदी साहित्य का अतीत द्वितीय भाग द्वितीय संस्करण निकल गया था और १० वर्ष पूर्व १९७० में 'ठाकुर' प्रकाशित हो गया था। डा. त्रिपाठी ने दोनों का उल्लेख संदर्भ-ग्रंथ सूची में ग्रंथांत में संख्या २४, २९ पर किया है। फिर भी डा. त्रिपाठी, आचार्य मिश्र के एतत्संबंधी अभिमतों को न देखते हुए केवल दो ठाकुरों की मान्यता का यश स्वयं लेना चाहते हैं। उनके पक्ष के बचाव में केवल 'प्रायः' बच रहता है। डा० गुप्त के प्रमाणों के अतिरिक्त उन्होंने कोई भी नया तर्क नहीं दिया है।

इसी प्रकार डा० त्रिपाठी ने 'शेख' और 'आलम' की अभिन्नता के प्रतिपादन का श्रेय डा० भवानी शंकर याज्ञिक से तथा दो दो आलमों की एकता एवं उनके रचना-

काल का श्रेय आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से छीनकर स्वयं लेना चाहा है। वे उपक्रम में लिखते हैं—

"अब तक बराबर यह माना जाता रहा है कि आलम और शेख दो भिन्न व्यक्ति हैं, किंतु इस ग्रंथ में पहली बार 'शेख आलम' के रूप में आलम और शेख की अभिन्न स्थिति सटीक प्रमाणों के आधार पर स्वीकार की गई है। इसी प्रकार आलम के काव्य-काल का खोजपूर्ण निर्णय और उनकी कृतियों का विभिन्न प्रतियों के आधार पर सम्यक् विवेचन अनेक नयी जानकारी देने वाली है।"

यहाँ भी सर्वथा असत्य का आश्रय लिया गया है। मूल ग्रंथ में पृ० ९ से १८ तक जो कुछ डा० भवानी शंकर याज्ञिक एवं आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है, उसीका सार-संकलन है। यह सार संकलन बराबर नामोल्लेख के साथ हुआ है और कोई भी नई बात नहीं कही गई है। ये संदर्भ-ग्रंथ हैं—

(क) डा० भवानी शंकर याज्ञिक—

(सेठ कन्हैया लाल) पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ में याज्ञिक जी का लेख 'आलम और रसखान'

(ख) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र –

१. हिंदी साहित्य का अतीत, भाग २। सं० २०१७

२. आलम और उनका समय—ना प्र० पत्रिका, सं० २००३

३. आलम की कृतियां " " ", सं० २००४

डा० त्रिपाठी के ग्रंथ में दो पृष्ठों का यह 'उपक्रम' ही गड़बड़ है, शेष सब ठीक है।

—पांडेपुर, वाराणसी

४०. गिरिधर कविराय सम्बन्धी डा० गुप्त की शोध

(विकास नारायण सिंह एम० ए०)

डा० किशोरी लाल गुप्त द्वारा संपादित गिरिधर कविराय ग्रंथावली का प्रकाशन दिसम्बर १९७७ में मधु प्रकाशन, ४२ ताशकन्द मार्ग, इलाहाबाद द्वारा हुआ है। काशी, लखनऊ आदि से प्रकाशित गिरिधर कविराय की कुंडलियों में केवल ९१ कुंडलियाँ मिलती हैं। इस ग्रन्थावली में कुल ५२४ कुंडलियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रत्यकानुभव शतक', 'सप्तभय निवारण मंत्र' नामक इनके दो लघु ग्रंथ भी दिए गए हैं। गिरिधर कविराय का एक प्रेमाख्यानक काव्य 'नल दमयन्ती' भी है, जो गुप्त जी को

प्राप्त नहीं हो सका। इसका थोड़ा-सा अंश नमूने के तौर पर उन्होंने दिया हैं। इन सबके सहारे गिरिधर की ९१ कुंडलियाँ अब सचमुच ग्रंथावली का रूप ले लेती हैं।

ग्रंथावली के प्रारम्भ में ८२ पृष्ठों की भूमिका भी लगी हुई है। इसमें गिरिधर कविराय का इतिवृत्त, संपादन-सामग्री, प्रस्तुत ग्रंथावली, समीक्षा, पूर्ववर्ती ग्रंथों में सन्निवेश, गिरिधर कविराय समीक्षकों की दृष्टि में तथा सहायक ग्रंथ सूची भी दी गई है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में गिरिधर कविराय की जाति, निवास स्थान और पत्नी तथाकथित साईं के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, डा० किशोरी लाल गुप्त ने आमूल-चूल क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है। डा० गुप्त की यह शोध भूमिका के इतिवृत्त वाले अध्याय में सन्निविष्ट हे।

गिरिधर कविराय कवि की छाप है। डा० गुप्त ने वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई वाले संस्करण के एक पन्ने वाली भूमिका एवं भाई कान्ह सिंह के महान कोश के आधार पर इनका वास्तविक नाम 'हरिदास' बताया है।

'कविराय' के कारण गिरिधर को हिंदी साहित्य के इतिहास में भाँट मान लिया गया है। पर डा० गुप्त चंद्रकांत बाली के अनुसार इन्हें पंजाब प्रांतीय दीक्षा देने वाला सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं और इन्हें 'गोस्वामी' कहते हैं।

बाली जी के ही अनुसार डा० गुप्त ने गिरिधर कविराय के बाप का नाम गोस्वामी धर्मचंद्र माना है।

गिरिधर कविराय को सामान्यतया अन्तर्वेदी या अवध प्रांतीय माना जाता रहा है। पर डा० बाली के अनुसार इनके पिता गोस्वामी धर्मचंद्र लाहौर निवासी थे। यह मूलतः पंजाबी थे, पर उदासीन होकर यह कानपुर से लेकर प्रयाग राज के गंगा के दोनों तटों पर विचरण किया करते थे। यही विचरण-भूमि इन कुंडलियों की भी रचना-भूमि है।

शिवसिंह सेंगर ने गिरिधर कविराय का समय सं० १७७० दिया है। लोगों ने इसे जन्मकाल मान रखा है। पर सरोजकार ने इसे रचनाकाल के रूप में दिया है। कुंडलिया ४६ में तिलंगा, कप्तान आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। कुंडलिया ४०१ में 'डिसमिस' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस आधार पर डा० गुप्त का खयाल है कि गिरिधर कविराय १८१८ वि० के कुछ बाद तक अवश्य जीवित रहे। इन शब्दों का किंचित् प्रचलन १७६४ ई० में हुई बक्सर की लड़ाई के बाद ही हुआ होगा।

पुरानी धारणा है कि गिरिधर कविराय की पत्नी का नाम साईं था और जिन कुंडलियों में साईं संबोधन है, वे इनकी पत्नी साईं की रचना हैं। डॉ० गुप्त यह सब नहीं मानते। उनका कहना है कि 'साईं' शब्दयुक्त कुंडलियां भी गिरिधर की ही रचित

हैं, उनकी पत्नी-रचित नहीं। वे यह भी मानते हैं कि साईं उनकी पत्नी का नाम नहीं था। यह साधुओं और भले-मानसों के लिए संबोधन है, जो पंजाब में आज भी प्रचलित हैं।

डा० गुप्त द्वारा ऐसे जनप्रिय कवि की रचनाएँ पहली बार साहित्यिक सौष्ठव के साथ संपादित होकर इतने सुंदर रूप में प्रकाशित हुई हैं। डा० गुप्त की गिरिधर कविराय संबंधी यह शोध तो सोने में सुगंध जैसी है।

—सुधवै, वाराणसी

•

४१. गिरिधर कविराय गंथावली : समीक्षा

(डॉ० राज नारायण राय)

अतीत के अन्धकार में खोए साहित्य स्रष्टाओं और उनकी सर्जनात्मक उपलब्धियों को पाठकों के संमुख लाने के यथासाध्य प्रयत्न हो रहे हैं, इसलिए कि उनसे विस्मृत अतीत को समझने समझाने का मार्ग प्रशस्त होता है। इस दिशा में जिन सम्पादकों, शोधकर्ताओं तथा खोजी विद्वानों ने परिश्रम किया है, उनमें डॉ० किशोरी लाल गुप्त पांक्तेय हैं। नागरीदास ग्रन्थावली, सुजान-शतक आदि ग्रन्थों से केवल यही नहीं प्रमाणित होता कि डॉ० गुप्त सम्पादन-कला में निष्णात हैं, बल्कि यह भी कि वे सफल शब्दमार्गी टीकाकार भी हैं। आलोच्य ग्रन्थ उनके ही श्रम का पूर्ण सुफल है, जिसे डॉ० गुप्त ने अत्यन्त श्रम एवं विवेकपूर्वक सम्पन्न किया है।

गिरिधर कविराय जितने ही अपनी कुंडलियों के लिए लोक-विख्यात हैं, उतने ही अज्ञातप्राय भी। उनकी ख्याति का आधार उनके द्वारा रचित कुंडलिया-साहित्य है, जो वस्तुतः एक मात्रिक विषम छन्द है। गिरिधर कविराय के जीवन-वृत्त और कृतियों को लेकर अब तक जो कुछ लिखा गया, उससे भ्रांतियाँ ही अधिक फैली हैं। अतएव यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर नूतन वैज्ञानिक दृष्टि से कवि और उसके कर्तृत्व का परिचय और मूल्यांकन हो। यह निश्चय ही जोखिम का कार्य है—एक हद तक नीरस भी : फिर भी डॉ० गुप्त ने धैर्य, विवेक और श्रमपूर्वक इसे पूर्ण रूप दिया है, इसमें सन्देह नहीं।

आलोच्य ग्रन्थ का प्रथम खण्ड भूमिका है, जिसमें नाम, जाति, निवास स्थान, काल, परिवार, संन्यास आदि जीवनी के महत्वपूर्ण विन्दु पर खोज पूर्वक विचार किया गया है। डॉ० गुप्त ने अनेक सूत्रों की खोज बीन करके यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्ववर्ती लेखक सर्व श्री मातादीन मिश्र, भोलानाथ तिकारी, दुर्गा प्रसाद आदि के कथन 'अनर्गल' हैं। उनके अनुसार वे स्वतः पंजाबी थे। साधु होने के अनन्तर वे उत्तर

प्रदेश आ गये थे और अन्तर्वेद में गंगा के तट पर विचरण किया करते थे। गंगा के पश्चिम अंतर्वेद और पूर्वोत्तर में अवध। इस प्रकार शिवसिंह सेंगर एवं मिश्रबन्धुओं का अनुमान ठीक ही है। यही भूमि इन कुंडलियों की रचना-भूमि है। मातादीन मिश्र का इनको जयपुर निवासी कहना असंगत अलीक तथा अनर्गल है' (पृ० १३) और भोलानाथ तिवारी द्वारा लिखित गिरधर की विरक्ति का वृत्त(दे० हिन्दी साहित्य कोश भाग २, प्रथम संस्करण पृष्ठ १२०) कोरे 'गप्प' से अधिक महत्व का नहीं है।

इस ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में उस सामग्री का विवरण है, जिसके आधार पर कवि-राय गिरिधर कृत ग्रन्थों का सम्पादन और संग्रह हुआ है। सम्पादक के दृष्टि-पथ में न केवल प्रकाशित सामग्री जैसे बंबई, लखनऊ, मुस्तफए प्रेस लाहौर, गुलशन प्रेस रावल-पिंडी, भारत जीवन प्रेस और भार्गव बुक डिपो बनारस आदि के विभिन्न संस्करण आए हैं, बल्कि दतिया, राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं। इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थ-कार ने निर्णय तक पहुँचने के लिए श्रमपूर्वक शोध खोज कार्य किया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत गिरधर रचित कुंडलिया, प्रत्यकानुभव शतक, सप्त भय-निवारण मन्त्र और नलदमयन्ती इन चार ग्रन्थों का परीक्षण करते हुए यह बताने का प्रयत्न है कि संग्राहक को ये कहाँ तक स्वीकार्य हैं।

चतुर्थ अध्याय 'समीक्षा' का है, जिसमें काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से गिरिधर के काव्य का मूल्यांकन हुआ है। भाषा-विषयक डॉ० गुप्त की मान्यता मिश्रबन्धुओं की धारणा से यद्यपि अभिन्न है, तथापि वे मानते हैं कि गिरिधर कविराय की 'भाषा साधु न होते हुए भी साधु (साधुओं की भाषा) है' (पृ० ६१)। छन्दोविधान के निकष पर परखने से यह ज्ञात होता है कि सभी कुंडलियाँ शुद्ध नहीं हैं—कवित्त, सवैया भी प्रायः सदोष हैं (पृ० ६२)। कुंडलियों का प्रयोजन यद्यपि नीति कथन या उपदेश परक है, तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि गिरिधर का काव्य रसहीन है।

पञ्चम अध्याय में सभा विलास, तासी लिखित हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पं० मातादीन मिश्र संगृहीत 'कवित्त रत्नाकर', शिव सिंह सरोज, मिश्रबन्धु विनोद, कविता कौमुदी, आचार्य शुक्ल लिखित हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चंद्रप्रकाश बाली लिखित पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पा-दित हिन्दी साहित्य कोश (भाग २) आदि में प्राप्त गिरधर कविराय के जीवन-वृत्त और काव्य सम्बन्धी विवरण का पुनर्मूल्यांकन करते हुए यह प्रमाणित किया है कि गिरिधर को कोरा पद्यकार कहना सर्वथा अनुचित है।

षष्ठ अध्याय में मिश्रबन्धु, रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य शुक्ल, हरिऔध, विश्व-नाथ प्रसाद मिश्र आदि के इतिहास ग्रन्थों से मूल्यवान अवतरण संग्रहीत हैं, जिनसे पाठक अनेक ग्रन्थों के आलोड़न-मंथन से मुक्ति पाता है।

आलोच्य ग्रन्थ का दूसरा खंड है ग्रन्थावली। इसमें पाँच सौ चौबीस कुंडलियाँ सङ्कलित हैं, जिनके अप्रचलित शब्दों की अर्थ-टिप्पणियाँ दी गई हैं। इसके साथ ही कहीं-कहीं उनमें लक्षित पाठ-भेद भी निर्दिष्ट हैं। इन कुंडलियों के अतिरिक्त गिरिधर की तीन कृतियाँ भी हैं। प्रथम है 'प्रत्यकानुभव शतक', जो सटीक है। यह श्री वेंकटेश्वर छापाखाना बम्बई के संस्करण का नवमुद्रित रूप है, यद्यपि टीकाकार द्वारा स्वामी अद्वैतानंद के कुछ स्वरचित अद्वैतवाद के छन्द छोड़ दिये गये हैं। द्वितीय है सप्त भय निवारण मन्त्र, जिसमें बम्बई संस्करण का आधार स्वीकार किया गया है। तृतीय ग्रन्थ गिरधर रचित खण्डकाव्य नल दमयन्ती है, जो पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास से लिया गया है। ग्रन्थ के अन्त में कुंडलियों की अनुक्रमाणिका है।

निष्कर्षतः यह ग्रन्थ गिरिधर कविराय की सभी उपलब्ध कृतियों का एक प्रामाणिक संग्रह तो है ही, इससे अधिक महत्व इस बात में है कि यह उन अनेक भ्रान्तियों का सप्रमाण निवारण भी है, जो हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों की अनवधानता के कारण उत्पन्न हुई हैं। निश्चय ही डॉ० गुप्त इस महत्कार्य के लिए हमारी बधाई के पात्र हैं।

—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ८२, सं० २०३४, अंक ३–४।

४२. शृंगारी बेनी का डॉ० गुप्त द्वारा पुनराकलन

(डॉ० श्याम गुप्त)

शिवसिंह सरोज में शृङ्गारी बेनी का यह उल्लेख है—

"११. बेनी कवि प्राचीन १, असनी जिले फतेपुर वाले, सं० १६९०,

यह महाकबीश्वर हुए हैं। इनका एक नायिका भेद का ग्रन्थ अति विचित्र देखने में आया है। इनकी कविता बहुत ही सरस ललित और मधुर है।"

डॉ० गुप्त ने इनका समय सं० १८१७ सिद्ध किया है और सं० १६९० को अतथ्य माना है। सरोजकार ने इनके नायिका भेद के एक ग्रन्थ के देखने की सूचना दी है। डॉ० गुप्त ने इस ग्रन्थ को काशिराज के पुस्तकालय से खोज निकाला है। इसके दो नाम हैं 'रसमय' और 'शृङ्गार'। इसी का रचनाकाल सं० १८१७ है—

निहचल सिंह सुजान वर, को अनुसासन पाइ
कीन्हों रसमय ग्रन्थ यह, बरनि नाइका भाइ ४६९

अष्टादस सत वर्ष गत, सत्रह औरो जानि
फागुन दसमी सित सुभग, चंद्रबार अनुमानि ४७०

बेनी कवि असनी के रहने वाले थे। यह असनी फतेहपुर जिले में है—

बेनी कवि को वासु है, असनी वर सुभ थान
बसैं सबै षटकुल जहाँ, करैं वेद को गान ४६८

सरोज के सभी कथन ठीक हैं, केवल समय को छोड़कर। सरोज की ही बदौलत यह कवि इतिहास ग्रन्थों में सं० १६९० का माना जा रहा है। डॉ० गुप्त ने समय का यह संशोधन 'सरोज सर्वेक्षण' में कर दिया है।

मिश्रबन्धु विनोद ४२७ में बेनी प्राचीन को असनी का वंदीजन कहा गया है। मिश्रबन्धुओं का यह कथन अनर्गल है, यह बेनी उपमन्यु गोत्रीय वाजपेयी थे और षटकुल के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। डॉ० गुप्त ने दिखाया है कि बेनी ने रसमय में स्वयं अपनी जाति का यह उल्लेख कर दिया है—

लसत वंस उपमन्यु वर, वाजपेय करि जज्ञ
सुकृती साधु कुलीन वर, नवरस में सरवज्ञ ४६७

सभा की खोज में बेनी की निम्नांकित रचनायें प्राप्त हैं--

कवित्त—१९०३/८६
कवित्त संग्रह—१९२३/३७
रसमय—१९०३/१२२, १९०४/५२
शृङ्गार—१९०३/६२

इनके आधार पर मिश्रबन्धुओं को सरोज की अशुद्धि का परिष्कार कर देना चाहिए था। पर उन्होंने एक बेनी के दो बेनी बना दिए। ४२७ संख्या पर सरोज के आधार पर एक बेनी और १०३६ संख्या पर सभा की खोज के आधार पर दूसरे बेनी। डा० गुप्त ने 'बेनी ग्रन्थावली' की भूमिका में इस प्रसङ्ग में यह लिखा है--

"मिश्रबन्धु सभा की खोज का उपयोग तो करते हैं, उसका सदुपयोग नहीं कर पाते, दुरुपयोग कर देते हैं। इस खोज के सहारे शिव सिंह सरोज का भ्रम दूर किया जाना चाहिए था, न कि एक नये कवि की सृष्टि।"

डॉ० गुप्त ने बेनी वाजपेयी की ग्रन्थावली का जो सम्पादन किया है, उसमें तीन रचनायें हैं—१. रसमय या शृंगार, २. कवित्त, ३. प्रकीर्णक। अभी तक इनके कुछ ही फुटकर छंद विभिन्न प्राचीन काव्य-संग्रहों में मिलते थे। अब इनकी पूरी ग्रन्थावली प्रस्तुत है, पर दैवदुर्विपाक से अभी तक यह अप्रकाशित है।

शिवसिंह और मिश्रबन्धु ने बेनी वाजपेयी के आश्रयदाताओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। डॉ० गुप्त के अनुसार बेनी वाजपेयी पहले जयपुर नरेश सवाई जयसिंह (सं० १७५७-१८०० वि०) के यहाँ गये। इस दूसरे जय सिंह ने ही जयपुर

बसाया था और आमेर को छोड़कर इसको अपनी राजधानी बनाया था। इनका जन्म सं० १७४५ में हुआ था। मिश्रबन्धुओं ने बेनी का जन्मकाल सं० १७९० माना है, जो ठीक नहीं। बेनी का जन्म १७७० के आसपास हो सकता है। वे १८०० से पहले सुकवि के रूप में जयपुर नरेश के पास पहुँचे होंगे। जयसिंह की प्रशस्ति के इनके तीन कवित्त 'कवित्त' में मिलते हैं। डॉ० गुप्त ने इनमें से एक को भूमिका में अवतरित किया है--

कूरम नरिंद श्री सवाई जयसिंह चढ्यो
बढ़ी धुनि धौंसन की, संख बँसुरीन की
'बेनी कवि' रवि मुदि जात धूरि धारन में,
खुँदि जात दिग्गज, खुँरीन सों तुरीन की
थर थर काँपै मही, कही को सुनत सोरु,
उमही अखण्ड मही, सुभट कुरीन की
सेसु गयो सहमि, सकेलि फन गेंडुरि को,
चँपि भयो चूरु, चाँपे ढेरी ज्यों चुरीन की

जयसिंह के यहाँ से यह पहाड़ सिंह बुन्देला के यहाँ आये। 'कवित्त' में पहाड़ सिंह की प्रशस्ति के ५ कवित्त हैं। प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल (शासन-काल १७२२-८८वि०) ने अपना राज्य तीन भागोंमें विभक्त कर दिया था। प्रथम भाग बाजीराव पेशवा को, दूसरा भाग प्रथम पुत्र हृदयसाह को और तीसरा भाग दूसरे पुत्र जगतराज को मिला था। जगतराज के २७ पुत्रों में से तृतीय पुत्र पहाड़ सिंह थे। यह जगतराज की मृत्यु (सं० १८१५ पूस बदी ७ गुरुवार) के अनन्तर जैतपुर के राजा हुए। १८२२ में यह महोबा में बुरी तरह बीमार पड़े और वास्तविक उत्तराधिकारियों से सन्धि कर ली। इनका भी राज तीन भागों में बँट गया—जैतपुर इनके पुत्र गर्जसिंह को मिला। चरखारी इनके भतीजे खुमान सिंह को और बाँदा तथा अजयगढ़ खुमान के भाई गुमान सिंह को। इनकी प्रशस्ति का एक छंद लें--

बरजु नकीबन न साजैं, वीर बाजैं,
धौंसा घन से गराजैं, अरि भाजें सिंधु कूल तें
'बेनी कवि' कहै ह्वै है खलक में खलभल
गलबल दलन के, अलबल सूल तें
भूप जगतेस के पहार सिंह तेरे दौरे,
औरे उर ऊटियतु, उपमा अतूल तें

तूल जैसे, जोर लगे गज हलकान हूल,
श्रृंगन समेत गिरि, गिरि जैहै मूल तें

बेनी कवि के तीसरे आश्रयदाता निहचल सिंह थे। इन्हींके आदेश से बेनी ने अपना नायिकाभेद का ग्रन्थ सं० १८१७ में रचा था। सरोज सर्वेक्षण में डॉ० गुप्त ने इन निहचल सिंह का उल्लेख किया है, पर खोज रिपोर्ट में पूरा विवरण न दिये जाने से वे इनका कोई विवरण नहीं दे सके थे। बेनी ग्रन्थावली में इन्होंने 'श्रृङ्गार' या 'रसमय' के आधार पर इनका पूरा परिचय दिया है। यह काशिराज के संस्थापक बरिबंड सिंह या बलवंत सिंह के भतीजे थे। इनकी पूरी वंशावली यह है—

कीटू मिश्र
|
मनरंजन
|
मनसाराम — दसाराम — दयाराम — मयाराम

मनसाराम
|
बरिबंड सिंह

दयाराम
|
मेहरबान सिंह
|
मनियार सिंह — निहचलसिंह — सिवअंबर सिंह — शिवनारायण सिंह — कलंदर सिंह

बरिबंड सिंह का राज्य काल सं १७९७-१८२७ वि० है। बेनी ने इनकी प्रशस्ति में भी ५ कवित्त लिखे हैं, जिनमें से एक है—

गौतम नरिंद बरिबंड को उदंड तेज,
नहू खण्ड मंड्यौ मारतंड के समाज को
'बेनी कवि' कहै वर विरद लपेट्यौ,
वैरी रहत ससेट्यो, ज्यौं रपेट्यौ पक्षी बाज को
तेरे दल दारुन समुद्र सो नरिंदु भिरै
नींदे भ्रमि गिरै जैसे मानुस जहाज को
सोधी इन्द्र-गाज को, विनोदी जमराज को,
इलाज ते न बाचै पै विरोधी महाराज को

वेनी सुकवि थे और काशी के साहित्यकारों के प्रिय थे। सुन्दरी तिलक में इनके कुल २९ सवैये सङ्कलित हैं। इसका प्रारम्भ ही रसमय के इस सवैये से होता है—

छहरैं सिर पै छवि मोरपखा, उनकी नथ के मुकता थहरैं
फहरै पियरौ पट 'बेनी' इतै, उनकी चुनरी के झबा फहरैं
रस रंग भरे अभिरे हैं तमाल, दोऊ रति ख्याल चहैं लहरै
नित ऐसे सनेह सों राधिका स्याम, हमारे हिये में सदा ठहरैं

डॉ० गुप्त ने शृङ्गारी बेनी का पुनरुद्धार किया है। इनकी ग्रन्थावली का सम्पादन उन्होंने हस्तलेखों के आधार पर किया है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थावली का प्रकाशन अपेक्षित है।

--राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर (उ० प्र०)

४३. पाठानुसन्धान और डॉ० किशोरी लाल गुप्त

(डॉ० कन्हैया सिंह)

डॉ० किशोरी लाल गुप्त मूलतः अनुसन्धानशील हिन्दीसेवी व्यक्तित्व हैं। उनकी अनुसन्धानशीलता हिन्दी साहित्य के इतिहास, पाठानुसन्धान एवं कृती साहित्यकारों तथा कृतियों की खोजों तक देखी जा सकती है। उनका यह विविध क्षेत्रीय अनुसन्धान-कार्य सतत एवं दीर्घकालीन है। इस दृष्टि से वे अकेले एक जीवंत संस्था हैं।

पाठानुसन्धान की दृष्टि से नागरीदास-ग्रंथावली, गिरिधर कविराय ग्रंथावली, सुजान-शतक तथा शिवसिंह सरोज का संपादन महत्त्वपूर्ण है। पहली तीन रचनाएँ कृती साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओं की खोज तथा पाठ-संपादन से संबद्ध हैं। 'शिव सिंह सरोज' ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण खोज तथा पाठ-संपादन है। 'सरोज' का एकमात्र संपादन-सर्वेक्षण ही डा० किशोरी लाल गुप्त की महत्ता के लिए पर्याप्त है। किन्तु उन्होंने निरन्तर शोधार्थी की भूमिका निभाते हुए हिन्दी को जितना दिया है, वह अकूत है।

भक्तवर नागरीदास जी कृष्णगढ़ के राजा सावंत सिंह हैं, जिन्हे वैराग्य हो गया और वृन्दावन में भक्त नागरीदास नाम से निवास करने लगे। इनकी लिखी कुल ७५ पुस्तकें हैं, जिनमें ७३ कृष्णगढ़ के संग्रह में हैं। दो रचनाएँ 'बैन-विलास' और 'गुप्त-रसप्रकाश' भी मिली हैं। नागरीदास की समस्त रचनाओं का प्रकाशन १८९८ ई० में 'नागरसमुच्चय' नाम से ज्ञानसागर यंत्रालय बंबई से हुआ था। अब उक्त संस्करण सुलभ नहीं है। डा० किशोरी लाल गुप्त ने अपने संपादन का मुख्य आधार 'नागर समुच्चय' के रूप में मुद्रित संस्करण को ही बनाया। उसे 'मु०' संकेत से संदर्भित किया गया है। इसके अतिरिक्त सभा के संग्रह की तीन अन्य प्रतियों का उपयोग भी इस संपादन में हुआ है। ये तीनों प्रतियाँ नागरीदास की संपूर्ण रचनाओं का पाठ नहीं प्रस्तुत करती हैं।

संपादित ग्रंथावली के पाठों और पाद-टिप्पणियों में दिये गये पाठान्तरों को देखने से पता चलता है कि नागरीदास की रचनाओं में बहुत अधिक पाठ-समस्या नहीं थी। यत्र-तत्र पाठान्तर है, जिनका उल्लेख संपादक ने कर दिया है। 'नागर समुच्चय' की मुद्रित प्रति से लेकर हस्तलेखों तक में छन्दों के क्रम, उनकी पुनरुक्ति, अधिक छंद और अन्य कवियों के प्रक्षिप्त छंदों की छानबीन बड़ी सूक्ष्मता से की गयी है।

नागरीदास रीतिकाल की सीमा में पड़ने वाले एक सशक्त भक्त कवि हैं। उनके जीवन-दर्शन और काव्य का बड़ा ही शोधपूर्ण विवेचन संपादक ने दोनों भागों की भूमिकाओं में किया है। नागरीदास के ग्रन्थों का सुन्दर पाठ सुलभ करा कर और उनके ऊपर शोधपूर्ण समालोचना लिखकर संपादक ने हिन्दी साहित्य का उपकार किया है।

गिरिधर कविराय हिन्दी के प्रसिद्ध कुंडलियाकार हैं। ये लोक-जीवन के कवि हैं और लोक-जीवनपरक कुंडलिया लिखने में सिद्धहस्त हैं। उनकी रचनायें स्फुटरूपेण यत्र-तत्र मिलती हैं। उनका संकलन और प्रकाशन भी पूर्व काल में हुआ है। ऐसे आठ संकलनों का पता चलता है, जिनमें सबसे बाद का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई का १९१४ ई० का है। विद्वान् सम्पादक डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने इनमें से छह संस्करणों के पाठों का आलोड़न किया है और मुख्य आधार बम्बई वाले संस्करण को बनाया है। इसके अतिरिक्त सम्मेलन में सुरक्षित दतिया से प्राप्त हस्तलेख में ५६ कुंडलियाँ गिरिधर कविराय की मिलीं तथा सम्मेलन के हस्तलेख सं० ४३७७ से ६ एवं ४ विभिन्न संग्रहों से एक-एक नवीन कुँडलियाँ मिलीं। इनका उपयोग कुँडलिया १, कुंडलिया २, कुंडलिया ३, कुंडलिया ४ और कुंडलिवा ५ शीर्षकों में संपादक ने किया है। इसके अतिरिक्त सम्पादक ने इस ग्रन्थावली में गिरिधर कविराय की कही जाने वाली तीन रचनाओं का भी यथाप्राप्त पाठ दिया है। प्रत्यकानुभव शतक, सप्तभय निवारण मंत्र और नलदमयन्ती। प्रत्यकानुभव शतक का आधार वेंकटेश्वर प्रेस से सं० १९७१ में प्रकाशित संस्करण है। इसमें कवि नाम की छाप किसी छंद में नहीं है। इसमें सवैया, कवित्त, घनाक्षरी छंदों का प्रयोग है। भाषा-शैली तथा सम्पादन-सामग्री दोनों ही आधारों पर निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि यह गिरिधर कविराय की रचना है। यही स्थिति 'सप्तभय निवारण मंत्र' की है। 'नलदमयन्ती' का उल्लेख चन्द्रकांत बाली ने 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' में किया है और उन्होंने इस रचना के एक खण्डित हस्तलेख सं० १७५१ वि० का उल्लेख भी किया है, जो इनके पास है। सम्पादक ने इस रचना के उस प्रारम्भिक अंश को सङ्कलित किया है, जिसे श्री बाली ने अपने इतिहास में दिया था।

कुंडलिया के सम्पादन में डॉ० गुप्त का श्रम प्रशंसनीय है। पाठ शुद्ध है और पाठान्तर भी दिये गये गये हैं। पर अन्य रचनाओं के सम्बन्ध में डॉ० गुप्त को कुछ और

छान बीन करने की आवश्यकता थी। असम्भव नहीं कि हस्तलिखित पोथियों में अन्य ग्रन्थों की पांडुलिपि-प्रतिलिपियाँ मिल जायँ। प्रस्तुत ग्रन्थावली में सङ्कलित इन रचनाओं की प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है।

ग्रन्थारम्भ में सम्पादक ने शोधपूर्ण आलोचनात्मक भूमिका लिखी है, जिससे गिरिधर कविराय के सम्बन्ध में बहुत सी नवीन सूचनाये मिलती हैं और उन पर नये सिरे से शोध का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

सं०१९२७वि०में भारतेन्दु जी ने 'सुजान-शतक' का सम्पादन-प्रकाशन किया था। डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने उसी का पुनर्संम्पादन किया है। भारतेन्दु-सम्पादित ग्रन्थ अब सुलभ नहीं है। उन्होंने इस शतक के सम्पादन में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के 'घनानंद कवित्त' का पाठ स्वीकार किया है। केवल २-४ स्थलों पर उन्होंने भारतेन्दु वाले पाठ को मिश्र जी के पाठ की जगह वरीयता दी है। सम्पादन के साथ सम्पादक ने छन्दों की टीका भी की है, जो सुन्दर, सुबोध और कवि के मर्म को समझने में सहायक है।

भूमिका में सम्पादक ने घनानन्द के नाम, स्थान, जाति, काल, उनके कवित्तों के संग्रहों (प्रकाशित एवं हस्तलेख) तथा अन्य प्राचीन संग्रहों में उनके उद्धृत कवित्तों का खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। भूमिका शोधपूर्ण है।

'शिवसिंह सरोज' के चार संस्करण सुलभ हैं। इन चारो संस्करणोंके प्रथम और द्वितीय में पर्याप्त साम्य है, तृतीय और सप्तम में भी। उन्होंने यथासम्भव प्रथम संस्करण को ही प्रमाण माना है, क्यों कि यह संस्करण शिवसिंह सेंगर के जीवन-काल में प्रकाशित हुआ था और इसीको उनके द्वारा प्रस्तुत हस्तलिखित प्रति के सर्वाधिक निकट होना चाहिए। अन्य संस्करण सरोजकार द्वारा प्रस्तुत हस्तलिखित प्रति से निरन्तर दूर पड़ते गये हैं। स्पष्ट है सम्पादक सरोजकार के मूल पाठ के अनुसंधान का व्रती है। सम्पादक ने सिद्ध कर दिया है कि वैज्ञानिक पाठ के निकष के बिना शोध और समीक्षा प्राणहीन हैं। सरोज के मूल पाठ में दिये गये संवतों के साथ लिखा गया 'में उ०' कवियों के उपस्थिति- काल का द्योतक है, न कि उनके उत्पत्ति-काल का। सरोज के मूल पाठ में संवतों के साथ 'में उ०' नहीं था। इहें डॉ० गुप्त ने परवर्ती प्रक्षेप सिद्ध किया है। मूल पाठ की इस गड़बड़ी के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहासों का सम्पूर्ण प्रवाह दोषपूर्ण हो गया।

'सरोज' का पाठ, भूमिका, काव्य-संग्रह और जीवन-चरित्र में विभक्त है। भूमिका और जीवन चरित्र गद्य में हैं तथा काव्य-संग्रह खण्ड में अनेक कवियों के नाम के साथ उनकी रचनाओं के स्फुट उदाहरण सङ्कलित हैं। विद्वान् सम्पादक ने 'सरोज' के सम्पादन के साथ भूमिका तथा टिप्पणियों में सरोजकार की भूलों का भी निर्देश किया

है । कहीं-कहीं कवियों का जीवन-वृत्त गलत समझ लिया गया है, कहीं एक ही नाम के दो कवियों को एक समझ लिया गया है, कहीं एक कवि दो नामों से व्यक्त किया गया है और कहीं एक कवि के नाम के साथ दूसरे कवि की रचनाओं के उदाहरण सङ्कलित कर दिये गये हैं । इन शोधों के लिए उसने अन्य संग्रह-ग्रन्थों, हस्तलिखित ग्रन्थों तथा खोज-विवरणों का आश्रय लिया है । उसने 'सरोज' का सम्पादन ही नहीं किया है, सरोजकार की भूलों की मीमांसा भी की है ।

प्रथम संस्करण के गद्य-खंड का पाठ श्री रूपनारायण पाण्डेय द्वारा सम्पादित सप्तम संस्करण में पर्याप्त परिवर्तित कर दिया गया है । सम्पादक के अनुसार इसे सरोज-कार का प्रामाणिक गद्य नहीं कहा जा सकता । इसलिए उन्होंने गद्य खण्डों में प्रायः प्रथम संस्करण का ही पाठ स्वीकार किया है । किन्तु लेखन-पद्धति में किंचित अन्तर कर दिया है । जैसे प्रथम संस्करण के 'जिस्में' और 'हुवा' की जगह 'जिसमें' और 'हुआ' । अन्यत्र वर्ण विन्यास प्रायः ज्यों का त्यों है । यह किंचित हस्तक्षेप सम्पादन-सिद्धांत के प्रतिकूल है ।

सम्पादन में प्रक्षेप-निराकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । प्राप्त प्रतियों के साक्ष्य के साथ ही अत्यन्त योग्यता एवं सूझ-बूझ की आवश्यकता होती है । शिवसिंह सरोज के प्रथम संस्करण तथा द्वितीय संस्करण में कुल ९९८ कवि हैं । तृतीय में चार कवि तथा सप्तम में एक और कवि बढ़ा दिया गया है । यह क्रमागत वृद्धि प्रक्षेप प्रतीत होती है । अन्तर्साक्ष्य के आधार पर भी डॉ० गुप्त ने बढ़े हुए कवियों को पहले वर्णित कवियों का पुनरावर्तित रूप माना है ।

पद्यांश के संपादन में डॉ० गुप्त ने विभिन्न संस्करणों में प्राप्त विभिन्नताओं को देखकर उनके कारणों पर विचार किया और समाधान द्वारा मूल पाठ प्राप्त करने की चेष्टा की । उन्हें प्रथम संस्करण के पाठ ही सर्वाधिक ठीक मिले; कहीं-कहीं सप्तम संस्करण में प्रथम संस्करण से अधिक उपयुक्त पाठ मिले, जिन्हें डॉ० गुप्त ने स्वीकार किया है । ऐसे स्थल बहुत कम हैं । प्रायः ब्रजभाषा काव्यों में संपादक ने सप्तम संस्करण का ही पाठ स्वीकार किया है, क्योंकि वही रूप ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार है । छंदोभंग या यति-भंग सम्बन्धी दोष शब्द-वृद्धि, स्थान-परिवर्तन या शब्द-लोप द्वारा ठीक करने का प्रयास किया गया है ।

'सरोज' रचनात्मक कृति न होकर एक संकलन मात्र है, अतः इस संकलन में सरोजकार ने किसी कवि की कृति का उदाहरण उसके मूल रूप से कुछ बदलकर दिया हो और इसका प्रमाण किसी अन्य संग्रह-ग्रंथ या रचयिता की मूल कृति द्वारा मिल जाय, तो संपादक द्वारा ऐसा संशोधन स्वीकृत हो सकता है । सप्तम संस्करण के पाठ-स्वीकार बिना प्रमाण के संपादन-सिद्धांत के अनुकूल नहीं कहे जा सकते ।

बहुत से स्थल ऐसे मिले हैं, जहाँ पर किसी भी संस्करण का पाठ ठीक नहीं था। ये ही प्रसंग ऐसे हैं, जहाँ संपादक की वास्तविक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ऐसे स्थल लेखानुसंगति तथा अर्थानुसंगति दोनों ही दृष्टियों से प्रामाणिक हैं और स्वयं संपादक ने उन संगतियों का विवेचन पाद-टिप्पणियों में कर दिया है।

डॉ० गुप्त द्वारा प्रस्तुत 'सरोज' का यह संस्करण अत्यन्त परिश्रम पूर्वक संपादित हुआ है और सरोजकार के अभीष्ट तक पहुँचने में उन्हें पूरी सफलता मिली है।

उपाचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
दयानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय आजमगढ़

४४. सुंदरी तिलक का संपादन-वैशिष्ट्य

(डा० रामभरोसे साहू)

'सुंदरी तिलक' में विभिन्न कवियों द्वारा रचित सुंदरियों (नायिकाओं) संबंधी सरस सवैयों का संकलन है। यह संकलन भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से प्रथम बार १९२५ वि० में, जब भारतेन्दु केवल १८ वर्ष के थे, मन्नालाल द्विज एवं हनुमान बनारसी के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इसमें कुल ४५ कवियों के २६१ + ५ = २६६ सवैये थे। मुख-पृष्ठ पर संकलित ४५ कवियों की सूची भी दे दी गई थी।

सुंदरी तिलक का दूसरा परिवर्द्धित संस्करण मन्नालाल द्विज ने स्वतन्त्र रूप से निकाला। अब इसमें ४२७ छंद एवं ६९ कवि हो गए। यह परिवर्द्धित संस्करण १९२६ में निकला। सुंदरी तिलक के दोनों संस्करण बहुत दिनों तक भिन्न-भिन्न स्थानों से साथ-साथ निकलते रहे। द्वितीय संस्करण की नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से अनेक आवृत्तियाँ हुई हैं। यह संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से भी प्रकाशित हुआ था।

प्रथम दो संस्करण तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवनकाल में निकल गये थे। उनकी मृत्यु के सात वर्ष बाद इसका एक बृहत् परिवर्द्धित संस्करण १८९२ ई० में खड्गविलास प्रेस बांकीपुर पटना से हुआ। इसमें छंद संख्या १४५५ हो गई है और इसमें कुल १२४ कवि संकलित हैं।

प्रथम संस्करण में कुल ५३ छंद ऐसे हैं, जो तृतीय संस्करण में नहीं हैं। इनमें से १९ छंद द्वितीय संस्करण में भी नहीं हैं, ३४ द्वितीय संस्करण में हैं।

द्वितीय संस्करण के ३४ + ६=४० छंद तृतीय संस्करण में नहीं है। तृतीय संस्करण में कुल २६ छंद दुहरा उठे हैं।

डा० गुप्त ने इन तीनों संस्करणों के आधार पर सुंदरी तिलक का चतुर्थ संस्करण प्रस्तुत किया है, जो अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल १५९ कवि हैं और छंद संख्या १४८७ है। प्रथम और द्वितीय संस्करण में जो भी छंद हैं, वे सभी यहाँ दिए गए हैं। तृतीय संस्करण में जो २६ छंद दुहरा उठे थे, वे एक ही बार स्वीकृत हैं, दो बार नहीं।

डा० गुप्त ने अपने संपादन का मुख्य आधार तृतीय संस्करण को रखा है। छंद-क्रम उसी का स्वीकार किया गया है। प्रथम संस्करण के ५३ एवं द्वितीय संस्करण के ६ सर्वथा नवीन छंद भी बीच-बीच में उचित स्थान पर सन्निविष्ट कर दिये गये हैं। जो नया छंद सन्निविष्ट करना है, उसके पहले वाला छंद जहाँ है, उसके ठीक बाद ही उसे सन्निविष्ट किया जाय। डा० गुप्त ने इस नियम का सर्वत्र पालन किया है।

प्रत्येक छंद के पहले एक अलग पंक्ति में छंद-संख्या दी गई है। इस पंक्ति में प्रायः चार-चार संख्यायें हैं। पहली संख्या प्रथम संस्करण की है, दूसरी द्विनीय संस्करण की, तीसरी तृतीय संस्करण की एवं चौथी वर्तमान चतुर्थ संस्करण की। तृतीय संस्करण में २६ छंद दुहरा उठे हैं। उनकी दुहरी छंद-संख्या दी गई है। जिस छंद-संख्या वाले छंद को छोड़ दिया गया है, उस छंद-संख्या को कोष्ठक में दिया गया है, जिसे स्वीकृत किया गया हैं, उसे कोष्ठक रहित रखा गया है। यदि कोई छंद किसी संस्करण में नहीं है, तो उसकी सूचना गुणित का निशान लगाकर दी गई है। उदाहरणार्थ यह संख्या लें—

×। ×।५७२ (१४३६)। ६०३

यह छंद प्रथम एवं द्वितीय संस्करणों में नहीं है। तृतीय संस्करण में यह ५०२ और १४३६ संख्याओं पर दो बार आया है। डॉ० गुप्त ने पुनरावृत १४३६ संख्यक छंद को छोड़ दिया है, ५७२ संख्यक छंद को स्वीकार किया है। डॉ० गुप्त के संस्करण में यह छंद ६०३ संख्या पर है।

प्रथम संस्करण के ५३ एवं द्वितीय संस्करण के ६ सवैये तृतीय संस्करण में असंकलित है। डा० गुप्त ने इन्हें ८ पंक्तियों में तोड़कर प्रस्तुत किया है, शेष १४२८ छंद चार-चार ही पंक्तियों में प्रस्तुत हैं। आठ चरणों में प्रस्तुत होने से पहली ही निगाह में पता चल जाता है कि ये छंद तृतीय संस्करण में नहीं थे। केवल प्रथम संस्करण में संकलित १९ छंदों के दक्षिण पार्श्व में ऊपर से नीचे एक रेखा खींच दी गई है, जो सूचित करती है कि ये छंद केवल प्रथम संस्करण में थे, दूसरे और तीसरे में नहीं। इसी प्रकार द्वितीय संस्करण के जो ६ छंद न तो प्रथम संस्करण में हैं, न तृतीय में, उनके दाहिने ओर ऊपर से नीचे दो सोधी रेखाएँ खींच दी गई हैं। ३४ छंद प्रथम एवं द्वितीय

दोनों संस्करणों में हैं, तृतीय में नहीं हैं। इन्हें आठ-आठ पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया हैं, पर इनकी दाहिनी ओर रेखा नहीं खींची गई है।

इसी प्रकार चार-चार पंक्तियों में प्रस्तुत जो १४२८ सवैये हैं उन्हे चार वर्गों में बाँट दिया गया है —

(१) २१० छंद जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय तीनों संस्करणों में हैं, इनके दाहिनी ओर एक रेखा खींची गई हैं ।

(२) तीन छंद (९४७, १११४, १०७७) जो प्रथम एवं तृतीय संस्करणों में हैं, द्वितीय संस्करण में नहीं हैं, इनके दाहिनी ओर तीन रेखाएँ हैं।

(३) १७३ छंद जो द्वितीय एवं तृतीय संस्करणों में हैं। इनके दाहिनी ओर दो पार्श्व रेखाएँ हैं।

(४) १०४२ छंद जो केवल तृतीय संस्करण में हैं, ये पार्श्व रेखा रहित हैं।

प्रत्येक पृष्ठ पर पाद टिप्पणी में कोष्टकरहित छंदांक के आगे पाठान्तर है। कोष्टक-सहित छंदांक के आगे शब्दार्थ दिये गए हैं।

जिन छापहीन छंदों के रचयिता कवियों का पता लग गया है। उनके नाम एवं ग्रंथ का निर्देशन उसी छंद के अंत में कर दिया गया है।

ग्रंथारंभ में डॉ० गुप्त ने पहले 'अपनी बात' कही है (पृ० १-१०), फिर 'भूमिका' है (पृ० ११-९१); तदनन्तर कवि-परिचय है (पृ० ९२-१५७)। कवियों के संकलित छंदों की अनुक्रमणिका उनके परिचय के साथ ही साथ अलग-अलग दे दी गई है।

ऊपर कही बातों के स्पष्टीकरण के लिए आगे कुछ सवैये अवतरित है।

[१]

१।१।१।१

| छहरैं सिर पै छवि मोर पखा, उनकी नथ के मुकता थहरैं |
| फहरै पियरो पट 'बेनी' इतै, उनकी चुनरी के झबा झहरैं |
| रस रंग भिरे अभिरे हैं तमाल, दोऊ रस ख्याल चहैं लहरैं |
| नित ऐसे सनेह सों राधिका स्याम, हमारे हिये में सदा ठहरैं |

यह छंद प्रथम, द्वितीय, तृतीय तीनों संस्करणों में छंद संख्या १ पर है। अतः दाहिनी ओर एक रेखा है।

[२]

×।३।३।३

॥ दोऊ दुहूँ पहिरावत चूनरी, दोऊ दुहूँ सिर बांधत पागैं॥
॥ दोऊ दुहूँ के सिंगारत अंग, गरे लगि दोऊ दुहूँ अनुरागैं॥

॥ संभु सनेह समोय रहे, रस ख्यालन में सिगरी निसि जागैं ॥
॥ दोऊ दुहूँन सों मान करैं, पुनि दोऊ दुहूँन मनावन लागैं ॥

यह छंद प्रथम संस्करण में नहीं है, केवल दूसरे एवं तीसरे संस्करण में हैं। अतः दाहिनी ओर दो रेखाएँ हैं।

[३]

×।×।८।८

पाँइ तिहारेन को गिरिधारी, लगाय के ध्यान, करैं बहु जापन
तापर जीव कलावति की छवि, तावती हौ, नहीं मानौ सिखापन
आंगन में चलती जब राधे, भनैं 'नृपसंभु' हरै तन तापन
छै घरी द्वैक लौं आभा रहै, मनो छींट रँगी है मजीठ के छापन

यह छंद प्रथम दो संस्करणों में नहीं है, केवल तृतीय संस्करण में है। अतः बगल में कोई रेखा नहीं है।

[४]

६।×।×।२०

| देन लगी हँसि हाथ सखीन कों, |
| लेन लगी अँचरा, अँग मोरैं |
| बैन लगे मधुराई धरै, |
| गति होन लगी थिर थोरेही थोरैं |
| टेर लगी मुरली की सुहावन, |
| जान लगी बन बाग की ओरैं |
| कोरैं लगी चितवै छवि कान्ह की, |
| कानन लौं अँखियान की कोरैं |

यह छंद केवल प्रथम संस्करण में हैं, द्वितीय एवं तृतीय में नहीं। अतः आठ पंक्तियों में, दाहिनी ओर एक खड़ी रेखा से मुक्त।

[५]

२०।२९।×।३२

नव कुंजन बैठे पिया नँदलाल,
जु जानत हैं सब कोक-कला
दिन में तहँ दूती भुराय कै लाई,
महा छवि-धाम नई अबला

जब धाय गही 'हरिचंद' पिया,
तब बोली, अजू तुम मोहीं छला
मोहिं लाज लगै, बलि पाँव परौं,
दिन ही हहा ऐसी न कीजै लला''

यह छंद प्रथम एवं द्वितीय संस्करणों में हैं, तृतीय में नहीं है। अतः आठ पंक्ति में, पार्श्व-रेखा विहीन।

[६]

×।१४१।×।२२६

॥ जानि कै रूप लोभाइ कै नैननि, ॥
॥ बेंचि करी अधबीचहिं लौंड़ी ॥
॥ फैलि गई घर बाहिर बात, ॥
॥ सु नीकै भई इन काज कनौड़ी ॥
॥ क्यों करि थाह लहौं 'घनआनँद' ॥
॥ चाह-नदी तट ही अति औंड़ी ॥
॥ हाय दई, न बिसासी कछू सुनै, ॥
॥ है जग बाजत नेह की डौंड़ी ॥

यह छंद न तो प्रथम संस्करण में है, न तृतीय में, यह केवल दूसरे संस्करण में है। अतः दाहिनी बगल में दो रेखाएँ।

ग्रंथांत में सुंदरी तिलक की तुलनात्मक कवि एवं छंद सूची दी गई है। उदाहरण के लिए इसका एक लघु अंश यहाँ अवतरित है।

प्रथम संस्करण	द्वितीय संस्करण	तृतीय संस्करण । चतर्थ संस्करण
×	×	१. अम्बिका दत्त व्यास १३३३-४० (१३५९-६६)=८छंद
१ अजबेस १३१ । ८६५	१ अजबेस ३२९ । ८६५	२. अजबेस ८३०/८६५ =१ छंद
×	×	३. अजान १३१९/१३४५ = १ छंद
×	२ अनंत (?)	४. अनंत ५९/६५ = १ छंद
×	×	५. अभिमन्यु ६१९/६४८ = १ छंद

इस प्रकार डा० गुप्त द्वारा संपादित सुंदरी तिलक की अपनी विशिष्टताएँ हैं, जो अन्यत्र नहीं देखी जातीं।

—बिबियापुर, इटावा

●

४५. हिन्दी शोध में सांख्यिकी का प्रयोग

(डा० अनिरुद्ध प्रधान)

घनानन्द प्रेमी कवियों में प्रसिद्ध हैं। इनके कवित्त सवैयों का वृजनाथ गोसाइं का किया हुआ संग्रह घनानन्द कवित्त बहुत प्रसिद्ध है। और यह मुद्रित रूप में पहले "सुजान सागर" के नाम से रत्नाकर जी द्वारा सम्पादित होकर १९०० ई० से पहले हिन्दी जगत के सामने आया। बाद में अमीर सिंह ने 'घनानन्द और रसखान' नाम से जो ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित कराया, उसमें भी इसे सुजान सागर ही कहा गया। सुजान सागर को आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने "घनानन्द कवित्त" नाम से प्रकाशित कराया।

मिश्र जी ने घनानन्द ग्रंथावली में घनानन्द के एक अन्य कवित्त-संग्रह को "सुजान हित" नाम से समाविष्ट किया। आचार्य मिश्र ने घनानन्द कवित्त और सुजान हित दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए चार निष्कर्ष निकाले।

डा० किशोरी लाल गुप्त ने "घनानन्द कवित्त" और "सुजान शतक" के छन्दों को सांख्यिकी के रूप में प्रस्तुत करते हुए अपने "सुजान शतक" की भूमिका में आचार्य मिश्र के प्रथम तीन निष्कर्षों को अस्वीकार किया है, उनके केवल चौथे निष्कर्ष को स्वीकार किया है। गुप्त जी के प्रथम दो निष्कर्ष सांख्यिकी के आधार पर हैं। हिंदी समीक्षा और शोध साहित्य में सांख्यिकी का यह उपयोग प्रथम बार हुआ है और यह प्रयोग सिद्ध करता है कि साहित्य के अध्ययन में भी सांख्यिकी का उपयोग किया जा सकता है।

डा० गुप्त द्वारा दी गयी छन्दों की तुलनात्मक सांख्यिकी का केवल एक अंश प्रथम शतक यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिससे बात स्पष्ट हो जाय।

सूची (क)–घनानन्द-कवित्त। सुजान-हित

प्रथम शतक

८/४, ९/७, १०/८, ११/२१, १२/२४, १३/३६, १४/३८, १५/४१, १६/४९, १७/७८, १८/९१, १९/१६४, २०/२९९, २१/४५३, २२/४५१, २३/१६९ २४/१७०, २५/१७१, २६/१७२, २७/१७७, २८/१७८, २९/१७९, ३०/१८२ ३१/१८३, ३२/१८४, ३३/१८७, ३४/१८९, ३५/१९०, ३६/१९१, ३७/१९४, ३८/१९५, ३९/१९६, ४०/१९८, ४१/२०४, ४२/२०६, ४३/२०७, ४४/२०२, ४५/२०३, ४६/२०९, ४७/२१२, ४८/२१४, ४९/२१५, ५०/२१७, ५१/२१८ ५२/२२०, ५३/२२१, ५४/२२३, ५५/२२४, ५६/२२५, ५७/२२६, ५८/२३५, ५९/२४०, ६०/२४१, ६१/२४२, ६२/२४३, ६३/२४४, ६४/२४६, ६५/२५१,

६६|२५५, ६७|२५६, ६८|२५७, ६९|२५८, ७०|२५९, ७१|२६०, ७२|४७
७३|१३६, ७४|२१९, ७५|२१६, ७६|४१८, ७७|४१?, ७८|२६३, ७९|२६४
८०|२६५, ८१|२६६, ८२|२६७, ८३|२६८, ८४|२६९, ८५|२७०, ८६|२७१,
८७|२७२, ८८|२७३, ८९|२७४, ९०|२७५, ९१|२७६, ९२|२७७, ९३|२७८,
९४|२७९, ९५|२८०, ९६|२८१, ९७|२८२, ९८|२८३, ९९|२८४, १००|२८५,

सूची (ख)-सुजान-हित । घनानन्द-कवित्त

प्रथम शतक

१|४२५, २|४१५, ३|४१६, ४|८, ५|४२६, ६|४२७, ७/९, ८|१०, ९|४५५
१०|४१७, ११|४२१, १२|४१८, १३|४१९, १४|४२०, १५|४५७, १६|४२८,
१७|२१९, १८|२२०, १९/२२१, २०|२२२, २१|११, २२|४२९, २३|२२३,
२४|१२, २५|४३०, २६|४२२, २७/४३१, २८|३८८, २९|२२४, ३१|२२५,
३३|४३२, ३४|४५९, ३५|४३३, ३६|१३, ३७|४३४, ३८|१४, ३९|२२६,
४१|१५, ४२|४३५, ४३|४३६, ४४|४३७, ४५|२२८, ४६|४३८, ४७|७२,
४८|२२७, ४९|१६, ५०|४५२, ५१|४३९, ५२|२३३, ५३|४४०, ५४|४४१,
५५|४४२, ५६|४४३, ५७|४४४, ५८|४४६, ५९|२२९, ६०|४२४, ६१|४४७,
६२|४४८, ६३|४४५, ६४|४४९, ६५|२३०, ६६|२८४, ६७|२३१, ६८|४५०,
६९|४५३, ७४|२३२, ७१|४५१, ७२|४५६, ७३|४५८, ७५|४६२, ७६|४६३,
७७|२३४, ७८|१७, ७९|४६४, ८०|४६०, ८१|२८६, ८३|२३५, ८४|४६५,
८५|२३६, ८६|४६६, ८७|४६७, ८८|२३७, ८९|२८५, ९०|४६८, ९१|१८,
९२|४६९, ९३|४७०, ९४|४७१, ९५|२८७, ९६|४७२, ९७|२३८, ९८|२३९
९९|४७३, १००|२४० ।

सुजान हित के सम्बन्ध में आचार्य मिश्र द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त चार मान्यताओं में से प्रथम दो को विवेच्य सन्दर्भ में देख लेना समीचीन होगा । आगे मिश्र जी के निष्कर्ष और डा० गुप्त के उनके सम्बन्ध में विचार एक-एक कर दिये जा रहे हैं —

१. मिश्र जी का प्रथम अभिमत है कि 'सुजान हित' कोई स्वतन्त्र संग्रह नहीं है । यह 'घनानन्द कवित्त' की ही किसी अस्त-व्यस्त प्रति के आधार पर किया हुआ दूसरा संग्रह है ।

पीछे १०० छंदों की तुलनात्मक सारिणी उद्धृत है । उसके अनुसार प्रथम शतक के छंद १-७ सुजान-हित में नहीं है और सुजान-हित के प्रथम शतक के ३०, ३२, ४०,

८२ संख्यक ४ छंद घनानन्द-कवित्त में नहीं है। घनानन्द-कवित्त के ५०५ छंदों में से ४२२ छंद सुजान-हित में है। शेष ८३ छंद सुजान-हित में एकदम नहीं है। इसी प्रकार सुजान हित के८५ छंद घनानन्द कवित्त में नहीं है। यह तथ्य सूचित करता है कि सुजान हित घनानन्द कवित्त के ही छंदों का नवीन क्रम से संकलन नहीं है।

घनानन्द कवित्त की किसी अस्त-व्यस्त प्रति का जहाँ तक सवाल है, वह भी ठीक नहीं, क्योंकि एक पन्ने पर ४ या ५ छंद भी मान लिए जायँ तो उनका क्रम तो न बिगड़ना चाहिए। कहीं भी ४-६ कवित्त सवैयों का क्रम एक नहीं है। ऐसी स्थिति में सुजानहित घनानन्द-कवित्त की किसी अस्त-व्यस्त प्रति के आधार पर भी नव-सङ्कलित नहीं कहा जा सकता।

डा० गुप्त का स्पष्ट अभिमत है—

'घनानन्द कवित्त में ८३ नये छंद हैं, जो सुजान हित में नहीं है। सुजान हित में ८५ छंद एकदम नये हें। यह वैभिन्य स्पष्ट सूचित करता है कि दोनों दो स्वतन्त्र संग्रह है। दोनों ग्रन्थों के छंद-क्रम में आमूल चूल अन्तर है। सुजान हित का यह क्रमान्तर घनानन्द कवित्त की किसी अस्त-व्यस्त प्रति से प्रतिलिपि किये जाने के कारण नहीं हो सकता। दोनों के क्रम में कहीं तो साम्य रहता, कुछ तो साम्य रहता'।

२. आचार्य मिश्र का दूसरा कथन है कि सुजान-हित घनानन्द-कवित्त के बाद का किया हुआ सङ्कलन है।

मिश्र जी का यह मत प्रथम मत पर निर्भर है। पर उसे डा० गुप्त ने असत सिद्ध कर दिया है। अतः डा० गुप्त के अनुसार उस पर निर्भर यह मत स्वतः समाप्त हो जाता है।

डा० गुप्त का स्पष्ट मत है कि दोनों संग्रह सम-सामयिक हैं और दोनों स्वतन्त्र रूप से सङ्कलित है।

इस प्रकार डा० गुप्त ने हिन्दी शोध के अन्दर एक तरफ जहाँ प्रामाणिकता के लिए सांख्यिकी का प्रयोग प्रचलन में ले आने का प्रयास किया है, वहीं उन्होंने किसी भी प्रतिपादित मान्यता में से मौलिकता एवं सत्यता उजागर करने का सफल प्रयास किया है।

—गणित विभाग

हिन्दू डिग्री कालेज जमानिया

४६. अंक-विपर्यय संबंधी डा० गुप्त की शोध

(श्री कोमल प्रसाद गुप्त)

कभी-कभी अंकों की उलट-पलट हो जाने से किन्हीं साहित्यकारों के समय में छह-छह सौ वर्षों का अंतर पड़ जाता है, किन्हीं के समय में इतना अंतर नहीं पड़ता। सरोज सर्वेक्षण करते समय डा० गुप्त को शिव सिंह सरोज में नवलदास का ऐसा ही उदाहरण मिला जहाँ १९१३ का १३१९ हो गया था—६०० वर्षों का महदंतर। नेवाज की शकुंतला का रचनाकाल सं० १७३७ न होकर सं० १७७३ है। डा० गुप्त ने ही सरोज सर्वेक्षण करते समय यह सिद्ध किया। अंक-विपर्यय के ये तथ्य अत्यंत मनोरंजक तो हैं ही, डा० गुप्त की शोध-दक्षता पर भी प्रकाश डालते हैं। आगे उनका विस्तृत विवरण समुपस्थित है।

१. नेवाज का समय १७३७/१७७३

आचार्य शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य का इतिहास में नेवाज के शकुंतला काव्य का रचनाकाल सं० १७३७ माना है और लिखा है—

"ये अंतर्वेद के रहने वाले ब्राह्मण थे और संवत् १७३७ के लगभग वर्तमान थे। ……शिवसिंह ने नेवाज का जन्म-संवत् १७३९ लिखा है, जो ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि इनके शकुंतला नाटक का निर्माण-काल सं० १७३७ है।……प्रस्तुत नेवाज का औरंगजेब के पुत्र आजमशाह के यहाँ रहना पाया जाता है।"

डा० किशोरी लाल गुप्त ने लिखा है कि नेवाज का शकुंतला ग्रंथ आजम खान की आज्ञा से बना, न कि औरंगजेब के पुत्र आजमशाह की आज्ञा से। यह आजमखान फिदाई खान के पुत्र मुसवीखान या मुसले खान थे। इनके साहस और शौर्य से फर्रूखसियर को सिंहासन-संघर्ष में विजय मिली थी। फर्रूखसियर का शासनकाल सं० १७७०–७६ है। फर्रूखसियर ने मुसवीखान को आजम खान की उपाधि दी थी। यह उपाधि सं० १७७० में मिली रही होगी। मुसवी खान सं० १७७० में आजम खान हुए। अतः नेवाज तिवारी ने इनकी आज्ञा से शकुंतला की रचना १७७० के बाद ही किसी समय की होगी।

आजम खान के संबंध में यह सब जानकारी स्वयं नेवाज ने शकुंतला के प्रारम्भ में पद्यबद्ध रूप में दे दी है, जिसे डा० गुप्त ने सरोज सर्वेक्षण के पृष्ठ ३९७ पर उद्धृत कर दिया है।

तासी के अनुसार काजिम अली 'जवां' ने फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के लिए उर्दू में शकुंतला की कथा नेवाज के शकुंतला काव्य के आधार पर ही प्रस्तुत की थी। जवां की भूमिका के अनुसार नेवाज ने शकुंतला की रचना सन् ११२८ हिजरी में की।

तासी ने इसे १७१६ ई० के बराबर माना है। ११२८ हिजरी या १७१६ ई० बराबर है १७७३ वि० के। अतः शकुंतला का रचनाकाल सं० १७७३ वि० हुआ। डा० गुप्त ने यह विवरण भी सरोज के पृष्ठ ३९८ पर दिया हैं।

आचार्य शुक्ल को यह १७३७ कहाँ से मिला। मिश्रबंधु विनोद से तो मिला नहीं क्योंकि विनोद में नेवाज तिवारी को १८०० से पूर्व का माना है, कोई निश्चित समय नहीं दिया है।

डा० गुप्त का खयाल है कि शुक्ल जी को किसी अन्य सूत्र से पता चला कि नेवाज का शकुंतला काव्य ११२८ हि० या १७१६ ई० में बना। इसी १७१६ को उन्होंने ५७ जोड़कर विक्रम संवत् में परिवर्तित किया, जो अंक-व्यत्यय से १७७३ के बदले १७३७ हो गया। यह अंक-व्यत्यय चाहे स्वयं शुक्ल जी द्वारा हुआ हो, चाहे जहाँ से उन्होंने यह संवत स्वीकार किया हो, वहीं हो गया रहा हो।

१७७३ को १७३७ मान लेने से नेवाज के आश्रयदाता औरंगजेब के सपूत आजम शाह हो गए और शुक्ल जी को सरोजदत्त-संवत १७३९ को नेवाज का जन्मकाल मानने से इनकार करना पड़ा।

२. नवलदास : १३१९ या १९१३

शिवसिंह सरोज में नवलदास का यह विवरण दिया हुआ हैं—

"५३. नवलदास क्षत्रिय, गूढ़गाँव जिला बाराबंकी सं० १३१९ में उ०। इन्होंने 'ज्ञानसरोवर' नामक ग्रंथ बनाया। यह नाम महेशदत्त ने अपनी पुस्तक में लिखा है पर हमको सन् संवत् ठीक होने में संदेह है।"

नवलदास जनवार क्षत्रिय थे। यह जिला बराबंकी, तहसील रामसनेही, ग्राम गूढ़ के रहने वाले सतनामी पंथ के साधु थे। यह इस संप्रदाय के प्रवर्तक जगजीवन दास के परपोता शिष्य, दूलनदास के पोता शिष्य और सिद्धादास के शिष्य थे। सरोजकार ने इनका समय और विवरण महेशदत्त शुक्ल के भाषा-काव्य-संग्रह के आधार पर दिया है।

डा० गुप्त के पास महेश दत्त शुक्ल का जो भाषा-काव्य-संग्रह है, उसका मुख पृष्ठ नहीं है। अतः संस्करण एवं प्रकाशन-काल का पता नहीं। यह ग्रंथ सरोज से ४ वर्ष पहले सं० १९३० में शुचि मास (जेठ|आषाढ़) शुक्ल ६ बुधवार को बना था। इसमें नवलदास का वह विवरण हैं—

"ये क्षत्रिय जनवार जिला बाराबंकी तहसील रामसनेही ग्राम गूढ़ के रहने वाले थे। खूब ईश्वराराधन किया और ज्ञान सरोवर आदि कई ग्रंथ बनाए और संवत १९१३ में वहीं मृत्यु-वश हुए।"

डा० गुप्त का खयाल है कि शिवसिंह सेंगर ने भाषा काव्य संग्रह के संभवतः प्रथम संस्करण का ही उपयोग किया था और उसमें नवलदास का मृत्युकाल सं० १३१९ छप गया रहा होगा, जो अंक-व्यत्यय का परिणाम है। नवलदास की भाषा इतनी पुरानी नहीं, इसीलिए सरोजकार ने इसके ठीक होने के संबंध में संदेह किया है।

मिश्रबंधु विनोद के प्रारम्भिक संस्करणों में नवलदास का समय सं० १३१९ ही दिया गया है और वहाँ भी इसके संदिग्ध होने का उल्लेख है—विनोद संख्या १४। बाद के संस्करणों में इन्हें आदिकाल से उठाकर रीतिकाल में संख्या ९३६ (अब संख्या १०३६) पर स्थापित कर दिया गया हैं और समय संवत १८२३ के पूर्व दिया गया हैं। डॉ० गुप्त के अनुसार नवलदास का रचनाकाल सं० १८१७–८५ वि० है।

--वाराणसी

४७. हिन्दी कवि और काव्य

(श्रीमती राधा गुप्ता, एम० ए०)

१८ बड़ी जिल्दों में हिन्दी काव्य से सङ्कलन। सब मिलाकर लगभग बारह हजार पृष्ठ एवं दो हजार कवि। इस सङ्कलन की सामान्य विशेषतायें निम्नांकित हैं—

१. सम्पूर्ण हिन्दी कविता का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत करने की दृष्टि।

२. ब्रजबुलि, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रजी, खड़ी बोली, राजस्थानी, दक्खिनी, उर्दू आदि हिन्दी-भाषा-मण्डल की सभी उप-भाषाओं के कवियों एवं कविताओं का संचयन।

३. प्रमुख कवियों की कृतियों से चयन एवं गौण कवियों की रचनाओं का संचयन।

४. संचयन एवं चयन के पहले प्रत्येक कवि का संक्षिप्त प्रामाणिक परिचय, ज्ञात एवं प्रकाशित रचनाओं की सूची, काव्य का संक्षिप्त मूल्यांकन।

५. प्रत्येक कवि की सङ्कलित रचना के अंत में सङ्कलन-सूत्र का निर्देश!

६. कठिन शब्दों एवं कठिन कविताओं की अर्थ सम्बन्धी प्रचुर टिप्पणियाँ, प्रत्येक पृष्ठ के अन्त में।

७. संकलन का आधार कवियों के प्रकाशित ग्रन्थ, उनकी प्रकाशित रचनाओं के आधार पर प्रकाशित इनके सङ्कलन, प्राचीन कवियों के प्रकाशित एवं अप्रकाशित काव्य-संग्रह, नवीन कविता के प्रकाशित काव्य-संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टें, उर्दू और हिन्दी लिपि में प्रकाशित उर्दू कवियों के सङ्कलन।

८. प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में उस खण्ड से सम्बन्धित आवश्यक भूमिका।

९. हिन्दी का विशालतम काव्य-संग्रह।

१०. एक ही नाम के अनेक कवियों का विश्लेषीकरण एवं उनकी रचनाओं के अलग-अलग सङ्कलन।

११. सामान्यतया प्रत्येक जिल्द डबल डिमाई आकार के ४० फर्मों में समाप्त। कुछ खण्डों में ४० फर्मों से कम हैं, कुछ में ४० फर्मों से अधिक भी। प्रत्येक खंड में कवि संख्या १०० के लगभग। कुछ में पचास ही कवि, कुछ में दो सौ, पौने दो सौ भी।

१२. पचहत्तर प्रतिशत कवि प्रथम बार सङ्कलित एवं प्रकाशित।

प्रत्येक खण्ड का अलग-अलग विशेष विवरण

१. आदिकाल (१ खंड)

१. आदिकाल—सं० ८०० से १४०० वि० तक। सात उपखण्डों में सङ्कलित।

१. सिद्ध कवि २४, २. नाथ कवि १६, ३. जैन कवि २३, ४. संत कवि ५. सूफी कवि ४, ६. वीररस के कवि ७, ७. अन्य ललित कवि ३, कुल कवि संख्या ८२। अज्ञातनाम कवियों की भी रचनायें सङ्कलित। इस युग की भाषा आधुनिक पाठकों के लिए बोधगम्य नहीं, अतः अधिकांश कविताओं का हिन्दी गद्य रूपान्तरण एवं अर्थ सम्बन्धी प्रचुर टिप्पणियों से युक्त। कुल ५०० से वधिक पृष्ठ। ३२ फर्मों में मुद्रणीय।

२. भक्तिकाल (४ खंड)

२. भक्तिकालीन सगुण काव्य—सं० १४००-१७०० वि०।

रामकाव्य एवं वल्लभ सम्प्रदायेतर कृष्ण काव्य। ७ उपखंडों में विभक्त

१. रामकाव्य ८ कवि   २. मध्व सम्प्रदाय १ कवि

३. निबार्क सम्प्रदाय ६ कवि   ४. हरिदास स्वामी का रसिक सम्प्रदाय ७ कवि

५. राधावल्लभ सम्प्रदाय १५ कवि ६. गौड़ीय सम्प्रदाय-(क) ब्रजभाषा के कवि २२
(ख) ब्रजबुलि के कवि ४०

७. अन्य भक्त कवि-

(क) ब्रजी के १० कवि   (ख) ब्रजबुलि के १२ कवि

कुल कवि संख्या-१२१। प्रायः ४० फर्मों एवं ६५० पृष्ठों में पूर्ण।

३. भक्ति-कालीन सगुण काव्य--वल्लभ सम्प्रदाय का कृष्ण काव्य।

१. अष्टछाप के कवि ८,   २. महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य कवि १६

३. गोसाइं विट्ठलनाथ के शिष्य कवि ३८।   ४. गो० गोकुलनाथ आदि के शिष्य कवि १४।

कुल कवि संख्या–७६ । प्रायः ४० फर्मों एवं ६५० पृष्ठों में पूर्ण ।

४. भक्तिकाल : निर्गुण काव्य । चार खण्डों में विभक्त ।

१. नाथकवि ७, २. सन्त कवि ३१,
३. सूफी कवि ९, ४. जैन कवि ७

कुल कवि संख्या ५४ । २५ फर्मों एवं ४०० पृष्ठों में पूर्ण ।

५. भक्तिकाल : भक्तीतर विविध कवि : छह उपखण्डों में विभक्त ।

१. विविध कवि ७ २. रीति कवि ६
३. प्रेमाख्यानक कवि १३ ४. अकबरी दरबार के कवि १४ ।
५. डिंगल के कवि ५ ६. मैथिली के कवि १० ।

कुल कवि संख्या–९६ । कुल पृष्ठ संख्या लगभग ६०० । ३५ फर्मा ।

३. रीतिकाल १७००-१९३० वि० (कुल ७ खंड)

६. रीतिकालीन कृष्ण भक्तिकाव्य--सात उपखण्डों में विभक्त ।

१. वल्लभ सम्प्रदाय ६५ कवि २. राधावल्लभ सम्प्रदाय ४० कवि
३. निंबार्क सम्प्रदाय ६ कवि ४. स्वामी हरिदास का रसिक सम्प्रदाय १२ कवि
५. गौड़ीय सम्प्रदाय (क) ब्रजी के कवि १५ कवि (ख) व्रजबुलि के कवि २७
६. ललित सम्प्रदाय ३ कवि, ७ अन्य ७

कुल कवि संख्या १७५ । प्रायः ६५० पृष्ठों में पूर्ण । ४० फर्मा ।

७. रीतिकालीन रामकाव्य एवं निर्गुण काव्य-चार उपखंड

१. रामकाव्य २७ कवि २. सन्तकाव्य ३० कवि
३. सूफी कवि ९ ४. जैन कवि २०

कुल कवि ८० से अधिक । प्रायः ६५० पृष्ठों में पूर्ण । ४० फर्मा ।

८. अठारहवीं शती के प्रमुख कवि—

कुल ४१ कवि और लगभग ६०० पृष्ठ । ३५ फर्मा ।

९. अठारहवीं शती के गौण कवि—

कुल १३७ कवि और लगभग ६०० पृष्ठ । ३५ फर्मा ।

१०. उन्नीसवीं शती के प्रमुख कवि—

कुल ५० कवि और लगभग ६०० पृष्ठ । ३५ फर्मा ।

११. उन्नीसवीं शती के गौण कवि—

कुल १६६ कवि । अकारादि कम से अज्ञात कवियों के छंद भी । प्रायः ६०० पृष्ठों में पूर्ण । ३५ फर्मा ।

१२. रीतिकाल का प्रारोह—१९००–१९३० वि० । ६ उप खण्ड ।

१. संत कवि–७
२. सूफी काव्य–२
३. कृष्णकाव्य–८
४. रामकाव्य–२०
५. भक्तीतर प्रमुख कवि–३५
६. भक्तीतर गौण कवि–९०
७. विविध—(क) व्रजबुलि के कवि २ (ख) खयालवाले कवि ३ (ग) भोजपुरी के कवि १

कुल कवि १६८ । प्रायः ८०० पृष्ठ । ५० फर्मा ।

टि०-कविता की दृष्टि से रीतिकाल उस युग तक चला जाता है, जिसे हम सामान्यतया भारतेन्दु-युग कहते हैं । इस खंड में पुरानी प्रणाली के सारे कवि सङ्कलित हैं । नवीन काव्यधारा के कवि इसमें नहीं रखे गये हैं ।

४. आधुनिककाल १९३०-२०३५ वि० तक (४ खण्ड)

१३. भारतेन्दुयुगीन नवीन काव्यधारा एवं द्विवेदी युग–(१९३१ से १९८० वि० तक) ५ उपखंड

१. भारतेन्दुयुगीन नवीन काव्यधारा ६ कवि
२. द्विवेदीयुगीन व्रजभाषा के प्रमुख कवि १४ कवि
३. ,, ,, गौण कवि २० कवि
४. ,, खड़ीबोली और व्रजभाषा के मिश्रित प्रमुख कवि २७
५. ,, ,, ,, गौण कवि २०

कुल ९० कवि । ७५० पृष्ट । ५० फर्मा ।

१४. छायावाद युग–१९८० से २०१० तक

१. प्रमुख छायावादी कवि ५०
२. छायावादी काव्य की कोकिलायें १२

कुल कवि ६२, पृष्ट ६०० । ३५ फर्मा ।

१५. छायावाद युग–(१९८० से २०१० तक) गौण कवि

१. गौण छायावादी कवि ५०
२. द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के प्रमुख कवि ५०
३. ,, ,, गौण कवि २०
४. व्रजभाषा के प्रमुख कवि २४
५. ,, गौण कवि २५
६. अन्य कवि ५

कुल कवि १५० । पृ० ८०० के लगभग । ५० फर्मा ।

१६. वर्तमान युग का काव्य : सं० २०१० से २०३५ वि०

यह भाग अभी अपूर्ण है। इसमें निम्नांकित विभाग होंगे।

१. व्रजभाषा काव्य — २. खड़ीबोली काव्य

३. भोजपुरी काव्य — ४. हास्यरस का काव्य

५. हिन्दी के गजलगो कवि, — ६. कवयित्रियाँ आदि

प्रायः १५० कवि एवं ८०० पृष्ठ होंगे।

१७. उर्दू काव्यधारा पूर्वार्द्ध-प्रारम्भ से लेकर गालिब तक।

दो उपखंड—१. दक्खिनी के कवि, २. उर्दू के कवि।

कवि संख्या प्रायः १००। पृष्ठ संख्या ६००। ३५ फर्मा।

१८. उर्दू काव्यधारा उत्तरार्द्ध-हाली पानीपती से लेकर आज तक।

प्रायः १०० कवि। पृष्ठ संख्या प्राय ६००। अभी अपूर्ण। ३५ फर्मा।

प्रथम खण्ड की कवि सूची

आगे प्रथम खण्ड के कुल ८२ कवियों की सूची नमूने के तौर पर प्रस्तुत की जा रही है।

१. सिद्ध कवि—

१. सरहपाद, २. सबर पाद, ३. कर्णरीपा (आर्यदेव), ४. लुईप, ५. भूसुकपा (शान्तिदेव), ६. विरूपा, ७. दारिकपा, ८. भादेपा, ९. वीणापा, १०. डुम्बिपा, ११. कमरिपा, १२. कुक्कुरिपा, १३. गुण्डरीपा, १४. मीनपा, १५. टेन्डणपा,(तन्तिपा), १६. महीपा (महीधरपा) १७. कंकणपा, १८. जयानन्दपा, १९. तिलोपा, २०. नाड पा (नारीपा) २१. शान्तिपा (रत्नाकर शान्ति), २२. घामपा, २३. मीड़कीपाव २४. सिद्ध हड़ताली।

२. नाथ कवि—

१. मत्स्येन्द्र नाथ, २. जलन्धर नाथ, ३. गोरख नाथ, ४. कण्हपा, ५. भरथरी, ६. गोपीचन्द्र, ७. नागा अरजन, ८. चर्पट नाथ, ९. चुणकर नाथ, १०. सत्य नाथ, ११. चौरंगी नाथ (पूरणमल), १२. रतन नाथ, १३. घोड़ा चोली, १४. हणवन्त, १५. अजय पाल, १६. बाल नाथ।

३. जैन कवि—

१. देवसेन, २. बुद्धि सेन, ३. जोइन्दु (योगीन्द्र), ४. राम सिंह मुनि, ५. जिन वल्लभ सूरि, ६. जिन दत्त सूरि, ७. हेमचन्द सूरि, ८. वज्र सेन सूरि, ९. हरिभद्र सेन

सूरि, १०. सोमप्रभाचार्य, ११. शालिभद्र सूरि, १२. सिद्धपाल १६. आसिगु, १४. सुमतिगणि, १५. लक्खण, १६. विजय सेन सूरि, १७. देल्हण, १८. विनय चन्द सूरि, १९ प्रज्ञा तिलक, २०. अम्बदेव सूरि, २१. जिन पद्म सूरि, २२. राजशेखर सूरि, २३. उदय धर्म ।

४. संत कवि—

१. जयदेव, २. सधना, ३. वेणी, ४. त्रिलोचन, ५. नामदेव ।

५. सूफी कवि—

१. शेख फरीद, २. निजामुद्दीन औलिया, ३. अलीशाह कलन्दर, ४. अमीर खुसरो ।

६. बीर कवि—

१. बब्बर, २. आमभट्ट, २. विद्याधर, ४. चन्द वरदायी, ५. शार्ङ्गधर, ६. हरि ब्रह्म, ७. श्रीकण्ठ पण्डित ।

७. ललित कवि—

१. मुंज, २. कुलचन्द, २. अद्दहमाण ।

इन १८ खण्डों में से १६ खण्ड पूर्ण है । खण्ड १६, १८ अपूर्ण छुटे हुए हैं । डा० गुप्त ने १९५२ के आस-पास इस संकलन में हाथ लगाया था और १९७६ में कवियों की वर्णानुक्रम सूची प्रस्तुत की । इस प्रकार इस संकलन को प्रस्तुत करने में प्रायः २५ वर्ष लगे हैं । एक व्यक्ति ने इतना बड़ा काम अकेले पूर्ण कर लिया, जिसे कोई संस्था लाखों रुपये खर्च करके भी, कई वर्षों में अनेक लोगों को काम पर लगा कर भी, पूर्ण रूप से पूरा नहीं कर सकती थी । यह संसार का विशालतम संग्रह कहा जा सकता है ।

—अध्यापक निवास

महुअरिया, मीरजापुर

•

४८. भारतेंदु और अन्य सहयोगी कवि

(रमेशचन्द्र उपाध्याय, एम० ए०)

डा० गुप्त ने फिरोजाबाद में रहते समय अपने एक मित्र (स्वर्गीय) कृष्ण कुमार मिश्र के लिए एम० ए० की परीक्षा के निमित्त 'सुकवि भारतेन्दु' नाम से एक ग्रंथ प्रस्तुत किया था । बात १९४६ की है । १९४९ के सितम्बर मास में उन्होंने शिबली कालेज में रहते समय इसे पूर्णता दी । प्रकाशन के समय प्रकाशक के अनुरोध

पर उन्होंने भारतेंदु के संपर्की कवियों पर भी १९५२ में एक खंड जोड़कर इसे और भी उपयोगी बना दिया। ग्रंथ 'भारतेंदु और अन्य सहयोगी कवि' नाम से हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ। १९५७ में उत्तर प्रदेशीय सरकार ने इस ग्रंथ पर लेखक को पाँच सौ रुपये का पुरस्कार भी दिया था। यह लेखक का दूसरा आलोचना ग्रंथ है। इसकी दो पृष्ठ की भूमिका आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखी थी, जो किन्ही कारणों से प्रकाशित न हो सकी। यह ग्रंथ काशी हिंदू विश्वविद्यालय, प्रयाग, आगरा एवं बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालयों में भारतेंदु के विशेष अध्ययन वाले प्रश्नपत्र के अध्ययनार्थ संस्तुत है। अपने इस ग्रंथ की बदौलत ही डा० गुप्त भारतेंदु वाले प्रश्न पत्र के एम० ए० के परीक्षक भी हैं। यह ग्रंथ उनके लिए अत्यंत यशदायक सिद्ध हुआ है। प्रारंभ में बहुत से लोग इसको इनका शोध प्रबंध भी समझने के भ्रम में थे।

भारतेंदु के तीन रूप हैं—नाटककार, कवि और गद्य लेखक। नाटककार भारतेंदु पर तो पर्याप्त किखा जा चुका है। उनके कवि और गद्य लेखक रूप पर प्रायः नही लिखा गया था। उनके कवि रूप पर डा० गुप्त ने समग्र रूप से लिखकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है। वे उनके नाटककार एवं गद्य लेखक रूप पर भी विस्तार से लिखना चाहते थे, पर शोधोन्मुख हो जाने से वे समीक्षा-विमुख से हो गये और ये दोनों ग्रंथ नहीं लिखे जा सके।

सुकवि भारतेंदु वाला अंश चार खंडों में विभक्त है—

१. परिचय, २. प्राचीन काव्य धारा, ३. आधुनिक काव्य धारा, ४. शास्त्रीय अध्ययन।

'परिचय' में तीन अनुभाग हैं—१. जीवन वृत्त। २. काव्य ग्रन्थ। ३. भारतेन्दु काव्य पर आलोचना साहित्य।

प्राचीन काव्यधारा में कुल ११ अध्याय हैं—१. सन्त काव्य, २. सम्प्रदाय-निष्ट काव्य, ३. विनय पदावली, ४. कृष्ण पदावली, ५. कथा-काव्य, ६. काव्यानुवाद-वेणु-गीति, ७. दो विवरणात्मक काव्य-हिंडोला और होली, ८. रामकाव्य, ९. रीतिकाव्य, १०. काव्य-कौतुक, ११ आशुकवित्य तथा समस्यापूर्ति।

आधुनिक काव्यधारा में ९ अध्याय हैं—१. राजभक्ति, २. देशभक्ति, ३. समाज-सुधार, ४. अर्थ-नीति, ५. भाषा प्रेम, ६. परिहास काव्य, ७. लोक गीत, ८. निबन्ध काध्य, ९. प्रकृति वर्णन।

शास्त्रीय अध्ययन में ५ अध्याय है—१. भाषा, २. काव्य रूप, ३. छन्दोविधान, ४. रस निरूपण, ५. अलंकार-निरूपण।

इसके अनन्तर भारतेन्दु सम्बन्धी छह परिशिष्ट हैं—१. भारतेन्दु युग : एक संक्रांति युग, २. विविध भाषा काव्य, ३. निमानी, ४. (अ) आदि कवितायें, (ब) अन्तिम कविता, ५. भारतेन्दु पदावली, ६, भारतेन्दु कवितावली।

ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध अन्य सहयोगी कवि हैं। इसमें निम्नांकित कवियों और उनके काव्य का संक्षिप्त विवरण है।

१. बाबा सुबेर सिंह, साहबजादे, २. बदरी नारायण चौधरी, 'प्रेमघन', ३. प्रताप नारायण मिश्र, ४. ठाकुर जगमोहन सिंह, ५. अंबिकादत्त व्यास, ६. रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर', ७. राधाचरण गोस्वामी, ८. सुधाकर द्विवेदी, ९. राधाकृष्ण दास, १०. माधवी, ११. चन्द्रिका, १२. रूपरतन, १३. हुस्ना 'नागरी', १४. मन्ना लाल द्विज, १५. फ्रेडरिक पिंकाट, १६. राव कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप'।

'अन्य सहयोगी कवि' के कारण यह ग्रन्थ मात्र समीक्षा ग्रन्थ न रहकर सन्दर्भ ग्रन्थ बन गया है।

पहले भारतेन्दु की देश-भक्ति पूर्ण कविताओं पर ही किंचित विचार हुआ था। डा० गुप्त ने इस ग्रंथ में भारतेन्दु के कवि का सर्वांग पूर्ण अध्ययन किया है। यह डा० गुप्त की गौरवमयी कृतियों में है और यह उन्हें उच्च कोटि का समीक्षक पद दिलाने में सर्वथा समर्थ है।

—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

४९. डॉ० किशोरी लाल गुप्त और आजमगढ़ के रचनाकार

(डॉ० रहमतउल्लाह)

भारत में राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए अज्ञेयवादी दर्शन के अनुसार भूमि को देवत्व प्रदान किया गया। सम्भवतः अलौकिक तत्व ही यहाँ की धरती में रस बस गया है। इसी कारण आजमगढ़ के लोगों ने जीवन के विविध क्षेत्रों में अत्यधिक सफलता अर्जित की है। साहित्य के क्षेत्र में इसके अनेक सपूतों की लम्बी सूची से सारा संसार परिचित है। हिन्दी और उसकी विशिष्ट शैली उर्दू के अनेक रचनाकारों और साहित्यिकों ने जनपद को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया है। अन्य जनपदों की अनेक विभूतियों ने भी यहाँ से स्वाभाविक ऊर्जा प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक बनाया है। सैयद सुलेमान नदवी, सैयद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान का नाम किसी से अपरिचित नहीं है। ऐसी ही विभूतियों में हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार डॉ० किशोरीलाल गुप्त का नाम भी लिया जा सकता है। इनका नाम आजमगढ़ जनपद से सदा सर्वदा के लिए जुड़ा रहेगा।

जनपद के प्रख्यात विद्वान, साहित्यकार, कवि, इतिहासकार, आलोचक, शिक्षा-शास्त्री अल्लामा शिबली नौमानी द्वारा संस्थापित शिबली नेशनल महाविद्यालय में गुप्त जी सन् १९४८ से १९६२ तक हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। यह समय उनके साहित्यिक जीवन का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस मध्य उनकी प्रतिभा का अभूतपूर्व विकास हुआ और लेखनी में अनुपम निखार आया। यहीं उन्होंने पी-एच० डी० और डी० लिट० की सर्वोच्च उपाधियों से अपने को अलंकृत किया। आजमगढ़ नगर और जनपद में साहित्यिक वातावरण बनाने में गुप्त जी ने अपनी संचालन क्षमता, शोध-पटुता, स्वस्थ सूझ-बूझ और रचना प्रक्रिया का पूर्ण उपयोग किया। उन्होंने आजमगढ़ के रचनाकारों, साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने, उजागिर करने और मूल्यांकन के द्वारा प्रतिष्ठित करने के लिए अपनी लेखनी का भरपूर प्रयोग किया। जनपद के प्रायः सभी रचनाकारों से उनका विशिष्ट सम्बन्ध था।

१. महाकवि हरिऔध

महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय के नाम पर स्थापित हरिऔध कला भवन की स्थापना और उसके संचालन में अपने सत्परामर्शों के कारण गुप्त जी की भूमिका बड़ी ही सराहनीय रही है। हरिऔध शती स्मारक ग्रंथ के सम्पादन में उन्होंने गम्भीर उत्तरदायित्व का निर्वाह बड़ी ही तत्परता से किया। बाल्यावस्था में हरिऔध जी की कविताओं के प्रति उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा और उत्साह का पूर्ण विकास और समाधान यहाँ आकर ही हुआ। शती स्मारक ग्रंथ में हरिऔध जी के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक परि-चयात्मक और शोधपूर्ण निबन्ध लिखकर सामान्य हिन्दी पाठकों को परितृप्त कर दिया। इसीके साथ उनकी अनेक ऐसी रचनाओं का भी मूल्यांकन किया, जिससे पाठक परि-चित नहीं हो सके थे। हरिऔध जी के जीवन पर विस्तार से विचार करके अनेक गुत्थियों का समाधान कर दिया। हरिऔध नाम की अभिधा का प्रथम बार स्पष्टी-करण गुप्त जी ने ही किया और इसका पुष्ट आधार भी प्रस्तुत किया। यह अन्वेषक गुप्त जी की व्याख्यात्मक प्रतिभा का ही प्रतीक कहा जायेगा। उनके जीवन वृत्त पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उनके परिवार, माता-पिता, शिक्षा, अभिरुचि, सेवाकाय अध्यापन कार्य और सृजनात्मक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। उनकी प्रारम्भिक व्रज-भाषा रचनाओं, समस्यापूर्तियों का भी परिचय कराया। साथ ही खड़ी बोली रचनाओं का विस्तार से परिचय और उनके अलंकरण सम्मानों का भी परिचय दिया है। उनकी भाषायी क्षमता, प्रयोग और काव्य पटुता का बड़े विस्तार से परिचय दिया है। अध्ययन की सुविधा और सामान्य जानकारी के लिए गुप्त जी ने ही प्रथम बार उनके जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित तिथि-पत्रों की सूची भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

इसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली की सभी रचनायें सम्मिलित है। प्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन स्थान और तिथि की सूची भी उन्होंने दी है, जो आगामी शोधार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। अनेक ऐसी पुस्तकों का भी परिचय दिया है, जो पाठ्य पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुई थीं। यह कार्य गुप्त जी की पैनी दृष्टि और लेखनी ही कर सकती थी। गुप्त जी ने अनेक महत्वपूर्ण पत्रों का प्रकाशन और उद्घाटन भी किया है, जो उनके महत्व-स्थापन में उपयोगी भूमिका निभा रहे हैं। इसमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन आदि के पत्र और स्वीकृतियाँ विशेष गौरवपूर्ण है, जिनसे सामान्य पाठक परिचित नहीं था।

जीवन वृत्त के बाद हरिऔध जी की रचनाओं के रचनाकाल, विषय वैविध्य, भाषा और साहित्यिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में भी विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करके उनकी साहित्यिक गरिमा का मूल्यांकन हिन्दी पाठक संसार के सम्मुख उजागिर किया है। अभी तक 'रुक्मिणी परिणय' नाटक ही उनकी प्रथम प्रकाशित रचना कही जाती रही है, जिसका प्रकाशन सन् १८९४ ई० में भारत जीवन यन्त्रालय काशी से हुआ था। गुप्त जी ने अपने शोध द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि यह उनकी प्रथम कृति नहीं है। इसके पहले 'कबीर कुण्डल' और 'श्री कृष्ण शतक' दो रचनाओं का उल्लेख उन्होंने किया है। इस नाटक का साहित्यिक विवेचन करने के बाद उसके साहित्यिक मूल्यांकन का भी महत्वपूर्ण कार्य किया और उसकी भाषा तथा अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं पर भी प्रकाश डाला। हरिऔध जी के सम्बन्ध में अनेक संस्मरणों का संकलन गुप्त जी ने ही तैयार किया। समस्त हरिऔध साहित्य पर लिखित समीक्षा ग्रन्थों की सूची, लेखकों के नाम, प्रकाशन तिथि, प्रकाशन स्थान आदि भी दिये गये हैं। उनके जीवन सम्बन्धी ग्रंथों का भी उल्लेख गुप्त जी ने किया। प्रिय प्रवास और वैदेही वनवास पर लिखे गये समीक्षा ग्रंथों की भी विस्तार से जानकारी दी है। पं० गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' के आलोचनात्मक ग्रंथ 'महाकवि हरिऔध' की तथ्यपूर्ण आलोचना और प्रत्यालोचना गुप्त जी ने प्रस्तुत की और अनेक शंकाओं का समाधान भी किया। रस कलस पर की गयी आलोचनाओं का भी विवेचन पूर्ण विस्तार के साथ गुप्त जी ने किया और अनेक दिग्गज आलोचकों की टिप्पणियों का उत्तर भी दिया है। इस प्रकार गुप्त जी ने हरिऔध जी के जीवन वृत्त, प्रारम्भिक रचनाओं का परिचय, रचनाओं का मूल्यांकन समीक्षा ग्रन्थों की समीक्षा और हरिऔध जी के काव्य गुरु, बाबा सुमेर सिंह का परिचय देकर बहुमूल्य कार्य किया हैं। इससे गुप्त जी के शोध सम्बन्धी कार्यों का अनुमान सहज ही हो जाता है। गुप्त जी का आगमन हरिऔध जी के दिवंगत होने के बाद ही यहाँ हुआ था। फिर भी उन्होंने अपने प्रयासों और अनवरत शोध कार्यों के द्वारा उनके अपने साहित्यिक सम्बन्धों को पूर्ण रूप से साकार किया हैं। इसके लिए गुप्त जी की जितनी भी सराहना की जाय कम ही होगी।

२. आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय

हिन्दी के पाठक आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के नाम से अनभिज्ञ नहीं है। उनका बहुमुखी प्रखर व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदा सर्वदा के लिए विख्यात रहेगा। जब तक हिन्दी भाषा और साहित्य जीवित रहेगा, आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय का नाम अमर रहेगा। हिन्दी को राष्ट्र भाषा पद दिलवाने के राष्ट्रीय अभियान में उन्होंने जो महत्वपूर्ण योगदान किया, उसके लिए राष्ट्र भाषा हिन्दी सदा उनकी ऋणी रहेगी। इस तथ्य के साथ डॉ० किशोरी लाल गुप्त का नाम भी किसी सीमा तक जोड़ा जा सकता है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय द्वारा किये गये प्रयासों अथवा अभियानों का पूर्ण विस्तार से परिचय कराने में डॉ० गुप्त का योगदान सराहनीय है। पाण्डेय जी के समस्त साहित्य का कई बड़े खण्डों में सम्पादन का सुझाव देने वालों में गुप्त जी का ही नाम लिया जाता है। इसका श्रेणी विभाजन और इस महत्वपूर्ण कार्य का श्रीगणेश करने की प्रेरणा गुप्त जी ने दी। अन्य लोगों की सहायता से, आशा है गुप्त जी इस कार्य को भी बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न करेंगे। अपने व्यक्तिगत संबंधों और प्रयासों से गुप्त जी ने उनके कार्यों में हाथ भी बटाया और उनका मूल्यांकन भी किया। उनके समस्त कार्यों को प्रकाश में लाने के लिए भी गुप्त जी हर संभव सहयोग देते रहे हैं।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के भाषा संबंधी विचारों का मूल्यांकन विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयास गुप्त जी ने अपने विविध लेखों और ग्रंथों में किया है। राष्ट्र भाषा हिन्दी के अभियान युद्ध में गुप्त जी ने आचार्य जी को हिन्दी खेमे का समर्थ पहलवान घोषित किया है। गुप्त जी ने पाण्डेय जी के इस विचार की पुष्टि की है कि उर्दू मुहम्मद शाह रँगीले के जमाने में अरबी, फारसी, तुर्की नश्ल के विदेशी मुसलमानों द्वारा दिल्ली के उर्दू-ए-मुअल्ला (लाल किला) में १७४५ ई० के आस-पास गढ़ी गई। यहाँ पर दोनों आचार्यों की संकुचित मनोवृत्ति और तीखी विचार-धारा का अनुमान सहज ही हो जाता है। शताब्दियों से इस देश की धरती में रमे बसे को विदेशी विशेषण से सम्बोधित किया गया है। तभी तो उर्दू संबंधी पाण्डेय जी के विचारों का एकतरफा विश्लेषण गुप्त जी ने भी किया है, जिसको उन्होंने सार तत्व कहा है। सारी पूर्वकालिक व्याख्याओं और शब्द कोषों को दूर फेंकते हुए दोनों आचार्यों ने उर्दू का अर्थ लाल किला ही घोषित किया है। लाल किला शाहजहाँ द्वारा निर्मित किया गया था। इस स्थापना के अनुसार शाहजहाँ के समय उर्दू का जन्म हुआ था। तब मोहम्मद शाह रँगीले की बात कैसे की गई। शाहजहाँ के पहले कौन-सी भाषा थी, जिसका प्रयोग पूर्ववर्ती मुस्लिम शासक भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए करते रहे। गुप्त जी सर्वत्र पाण्डेय जी की ही हाँ में हाँ मिलाते रहे हैं। उन्होंने उर्दू बनने के कारणों की ओर संकेत किया है और पाण्डेय जी के विचारों से हाँ में हाँ मिलाया है। गुप्त जी ने स्पष्ट कह दिया है कि

पाण्डेय जी को उर्दू से कोई चिढ़ नहीं थी, वे उसे हिन्दी की एक शाखा मानते थे। और उसे फलने-फूलने देना चाहते थे। इस प्रकार डॉ० किशोरी लाल गुप्त जी ने भाषा, राष्ट्रभाषा, उर्दू संबंधी उनके विचारों का व्यापक प्रसार किया और उनको महत्व दिया।

३. पण्डित रामचरित उपाध्याय

पं० रामचरित उपाध्याय को खड़ी बोली हिन्दी के प्रारम्भिक कवियों में महत्वपूर्ण माना जाता है। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक काव्यों के सफल रचनाकारों में आजमगढ़ जनपद के इस महाकवि को हिन्दी साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता रहेगा। डॉ० किशोरी लाल गुप्त जी ने इनकी रचनाओं के प्रकाशन, सम्पादन आदि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। रामचरित ग्रन्थावली के संपादन में प्रकारान्तर से इन्होंने योगदान किया। उनके कई दुर्लभ ग्रंथों का पता लगाना, उनकी व्याख्या करना, और उनको लोकप्रियता देने में गुप्त जी ने बड़ा सहयोग किया है। डॉ० कन्हैया सिंह, डॉ० रामवृक्ष सिंह आदि विद्वान भी गुप्त जी के इस सहयोग को न भुला सके। उन्होंने महाकवि के जीवन और रचनाओं के संबंध में अनेक लेख भी यत्र-तत्र लिखकर उनकी सेवाओं से हिन्दी जगत को अवगत कराया है।

४. गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

नूरजहाँ के रचयिता माननीय गुरुभक्त सिंह 'भक्त' को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त है। प्रकृति के इस पुजारी के प्रति भी गुप्त जी ने अपनी अनेकविध श्रद्धांजलियाँ समर्पित की हैं। गुरुभक्त सिंह 'भक्त' अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन का गुरुतर कार्य भी गुप्त जी ने सम्पन्न किया, जिसके द्वारा उनका मूल्यांकन महत्तर श्रेणी पर किया गया। भक्त जी और गुप्त जी का व्यक्तिगत पारिवारिक सम्बन्ध भी सुना जाता है। दोनों बड़े ही घनिष्ठ मित्र थे। भक्त जी के स्वस्थ विनोदप्रिय व्यक्तित्व से भला कौन नहीं प्रभावित हो सकता था। जमानियां गाजीपुर में रहते हुए भी गुप्त जी ने भक्त-अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन, प्रकाशन बड़े ही आकर्षक ढंग से पूरा किया। उनकी रचनाओं की समीक्षा के साथ ही साथ जीवन और व्यक्तित्व की विशेषताओं का उद्घाटन भी गुप्त जी ने अपने विभिन्न लेखों में किया। गुप्त जी का यह आकलन अपना स्थायी महत्व बनाये रखेगा। गुप्त जी भक्त जी की भाषा और उनकी मुहावरेदानी से बहुत प्रभावित थे। समय-समय पर उसका उल्लेख करते हुए खुलकर प्रशंसा करते थे। भक्त जी की विनोदप्रियता और उन्मुक्त हास्य से गुप्त जी बहुत प्रभावित लगते थे और अपनी व्यक्तिगत हँसी से कभी-कभी भक्त जी का स्मरण करा देते हैं।

५. पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्र जी का नाम हिन्दी-नाटक-साहित्य में हमेशा अमर रहेगा। आजमगढ़ जनपद के इस महान नाटककार और कवि के विलक्षण व्यक्तित्व से गुप्त जी भी प्रभावित हुए थे। उनके नाटकों, कथानकों, भाषा, व्यक्तित्व के संबंध में भी गुप्त जी ने अनेक लेख लिखे। विभिन्न गोष्ठियों में अपने व्याख्यानों द्वारा उनके मूल्यांकन का सराहनीय कार्य किया। इससे मिश्र जी को साहित्य में प्रतिष्ठित कराने में कुछ सहायता मिली। वैसे मिश्र जी स्वयं अपनी रचनाओं की गुणवत्ता से प्रतिष्ठित हो चुके थे। समय-समय पर मिश्र जी और गुप्त जी का आजमगढ़ और वाराणसी में मिलन होता रहा। परस्पर विचार विमर्श एक दूसरे को समझने में भी सहायक हुआ। अतः गुप्त जी का नाम भी मिश्र साहित्य के साथ जुड़ा रहेगा।

६. महापंडित राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी के बहुमुखी व्यक्तित्व और विशाल साहित्य भण्डार की ओर गुप्त जी भी आकर्षित हुए हैं। अनेक लेखों में उनकी उपलब्धियों का भी उल्लेख किया है। विशेष रूप से राहुल जी के पुरातात्विक रचनाओं से वे विशेष प्रभावित लगते हैं। समय-समय पर व्याख्यानों के माध्यम से गुप्त जी उनकी प्रशंसा, अध्ययनशीलता और महानता का उल्लेख करते रहे हैं।

७. श्री विश्वनाथ लाल 'शैदा'

शैदा जी के व्यक्तित्व से गुप्त जी भी प्रभावित रहे हैं। उनकी रचनाओं के बारे में गुप्त जी ने अपनी लेखनी उठाई है। हरिऔध कला भवन के संचालन में शैदा जी और गुप्त जी का परस्पर सहयोग बड़ा घनिष्ठ बताया जाता है। हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ के संपादन में दोनों का आपसी तालमेल बड़ा ही सराहनीय लगता है। दोनों ही विद्वान इसके सम्पादक रहे। आजमगढ़ में साहित्यिक वातावरण बनाने में शैदा जी और गुप्त जी की जोड़ी उपयोगी रही है। शैदा जी सदा गुप्त जी की शोध-प्रतिभा का वर्णन करते रहते थे। आजमगढ़ का साहित्यिक इतिहास तैयार करने में गुप्त जी ने शैदा जी की बड़ी सहायता की थी। कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना से भी गुप्त जी बहुत प्रभावित थे। स्वयं शैदा जी ने गुप्त जी के काव्य 'राधा' की बड़ी ही विद्वतापूर्ण टीका लिखी थी। इस प्रकार दोनों व्यक्ति एक दूसरे के साहित्यिक सहयोगी और मित्र बने रहे। आज भी गुप्त जी शैदा जी के शैदा हैं। आजमगढ़ में दोनों की दांत काटी रोटी का संबंध रहा है। शैदा जी को गुप्त जी के आजमगढ़ से चले जाने का अत्यंत खेद रहा।

८. डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

आजमगढ़ के माननीय पुरातात्विक विद्वान और साहित्यकार डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त जी का डॉ० किशोरी लाल गुप्त से पारिवारिक सम्बन्ध रहा।

किसी-किसी क्षेत्र में वे दोनों एक दूसरे के सहयोगी भी कहे जाते थे। दोनों की शोध प्रक्रिया और अभिरुचियां समान देखी जाती हैं। पाठ-संपादन के क्षेत्र मे दोनों ने एक जैसी उपलब्धियां अर्जित की है। डॉ० किशोरी लाल जी ने डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त की उपलब्धियों को उजागिर करने में बड़ी सहायता की है। अपने विविध लेखों और प्रवचनों द्वारा उनका आकलन भी किया है।

९. पं० श्यामनारायण पाण्डेय

वीर रसावतार पं० श्माम नारायण पाण्डेय को सारा संसार जानता है। उनकी हल्दीघाटी, जौहर, जय हनुमान, तुमुल, शिवा जी, परशुराम काव्य इनको हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ठ स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है। माननीय गुप्त जी ने इनकी रचनाओं के संबंध में समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किये। विभिन्न गोष्ठियों में उनकी महानता का गान किया है। गुप्त जी ही पहली बार १९४९ में पाण्डेय जी को शिबली कालेज के एक कवि सम्मेलन में ले आए थे।

१०. दान बहादुर सिंह सूँड़

गुप्त जी का वरद हस्त और आशीर्वाद सूंड जी के ऊपर सदा रहा है। सूंड जी के खण्ड काव्य 'मियां की दौड़' को गुप्त जी ने हास्य प्रबन्ध कहा है। इस संबंध में गुप्त जी ने इस काव्य को हिन्दी साहित्य की पहली रचना सिद्ध किया है। गुप्त जी के अनुसार इसके पहले हिन्दी में कोई स्वतंत्र रूप से लिखा गया हास्य खण्ड काव्य या प्रबन्ध नहीं मिलता। इस प्रकार गुप्त जी ने सूंड़ जी की हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिष्टित कर दिया। गुप्त जी ने स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया है कि सूंड़ जी ने इस हास्य प्रबन्ध की रचना में भक्त जी की 'नूरजहां' और श्यामनारायण पाण्डेय के जौहर से विशेष प्रेरणा ली है। गुप्त जी ने सूंड़ जी के इन दो काव्य-विद्रूपों की साहित्यिक विवेचना भी की है। नवीन और प्राचीन कविताओं का काव्य विद्रूप प्रस्तुत करके सूंड़ जी ने एक अभाव की पूर्ति की है। इसकी पूर्ण जानकारी सबसे पहले गुप्त जी ने हिन्दी जगत को प्रदान की। इस प्रकार गुप्त जी ने सूंड़ जी को साहित्यिक गौरव प्रदान करने में संजीवनी का काम किया है।

११. डॉ० कन्हैया सिंह

डॉ० गुप्त ने शिवली कालेज में अपने सफल अध्यापन काल में जिन योग्य शिष्यों को जन्म दिया, उनमें डा० कन्हैया सिंह का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। आज भी गुप्त जी का शुभाशीष और वरद हस्त कन्हैया सिंह के ऊपर है। शोधकाल में, रामचरित ग्रन्थावली के संपादन में, तथा

अन्य क्षेत्रों में भी गुप्त जी डॉ० कन्हैया सिंह के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। दोनों एक दूसरे से बहुत प्रभावित हैं। विभिन्न गोष्ठियों में एक दूसरे के कार्यों से दोनों संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

इनके अतिरिक्त जनपद के अनेक शिष्यों और मित्रों को गुप्त जी ने साहित्यिक और रचना संबंधी प्रेरणा प्रदान की है। अपने सुझावों द्वारा मार्ग निर्देशन भी किया। श्री कृष्ण तिवारी, अम्बु जी पारसनाथ पाण्डेय गोवर्धन, आदि अनेक पुराने कवियों और रचनाकारों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सहयोगी के रूप में डॉ० रामपति शर्मा और मुझ अकिंचन को उन्होंने अपने सत् परामर्शों से सदा उत्साहित किया तथा लेखन की ओर प्रेरित किया। साहित्यिक गतिविधियों और शोध कार्यों की प्रेरणा प्रदान की।

इस प्रकार गुप्त जी ने आजमगढ़ के साहित्यकारों से अनेक रूपों में चोली दामन का संबंध बनाये रखा। आज भी जब गुप्त जी आजमगढ़ आते हैं, तब अपनी मित्र मण्डली से उसी उत्साह और ऊर्जा से मिलते हैं। आजमगढ़ डॉ० किशोरी लाल गुप्त को कभी भी नहीं भुला सकेगा। यहाँ के लोग उनकी सेवाओं तथा सहयोग के लिए सदा कृतज्ञ रहेंगे। ऐसी आशा स्वाभाविक है। परमात्मा उन्हें दीर्घायु प्रदान करे और उनके अधूरे काम पूरा करने में मनचाही सफलता प्रदान करे। आमीन।

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग,
शिवली नेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय
२३४ बाजबहादुर, आजमगढ़

●

५०. 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' का 'स्वागत'

(स्व० प्रो० पद्म नारायण आचार्य, वाराणसी)

सन् ३७ में कामायनी महाकाव्य का प्रकाशन हुआ और उसी वर्ष प्रसाद जी का निर्वाण हुआ। पिछले पन्द्रह वर्षों में प्रसाद साहित्य का पर्याप्त अध्ययन हुआ है। सैकड़ों ग्रन्थ और हजारों निबन्ध निकल चुके। 'प्रसाद' का इतना मान देखकर भी साहित्यालोचन का विद्यार्थी कहता है कि अभी वह सच्ची भूमिका तैयार नहीं हुई, जहाँ प्रसाद का संदेश स्वस्थ मन से ग्रहण किया जा सके और विरोधी आलोचनाओं तथा विभिन्न निर्णयों में संगति बैठाई जा सके। अध्ययन की ऐसी भूमिका तब बनती हैं, जब दो बातें सुलभ होती हैं। कवि के पूर्ण साहित्य का परिचय कराने वाली सामग्री और कवि के साहित्य का अर्थ स्पष्ट करने वाली संजीवनी व्याख्या–प्रसाद के संबंध में आज तक सुव्यवस्थित रूप में और विकास-क्रम के अनुसार सामग्री इकट्ठी करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ और इसी का फल यह हुआ कि अनेक प्रकार के निर्णय और मत उनके साहित्य पर प्रकट किए गए।

श्री किशोरी लाल जी ने अपने ग्रंथ 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' से ऐसी सामग्री संकलित करने का सफल प्रयत्न किया है। ऐसा सफल प्रयत्न अभी तक किसी आधुनिक हिंदी कवि के संबंध में नहीं हुआ है। आधुनिक आलोचना की दृष्टि से यह ऐतिहासिक महत्व का है। सामग्री के आधार पर लोग अपने विचार संतुलित कर सकेंगे, गलतफहमियां स्वयं दूर कर सकेंगे और अपनी व्याख्या भी ठीक करने में सहायता ले सकेंगे। इस सामग्री से सहृदय विद्वानों को 'प्रसाद' की प्रतिभा के साथ ही विचार धारा का भी विकास हृदयंगम करने का अवसर मिला है। आधुनिक आलोचना में विकासात्मक अध्ययन और कवि के विचारों का ज्ञान सर्वोपरि महत्व रखता है। व्यवस्थित रूप से पूरी सामग्री उपस्थित करने के अतिरिक्त इसके सुयोग्य लेखक ने प्रसाद साहित्य के संबंध में उपस्थित अनेक उलझनें और प्रश्न उपस्थित करके उन्हें सुलझाने तथा उनके उत्तर देने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में ऐतिहासिक और तटस्थ द्रष्टा की भाँति जो सुझाव और प्रमाण उपस्थित किये हैं, वे आगे काम करने वालों के लिए बहुमूल्य सिद्ध होंगे। अभी तक के ग्रंथों में केवल अपने विचार और निर्णय रखे जाते थे। पर इस ग्रंथ में आत्मविश्वास के साथ और वैज्ञानिक पद्धति से केवल मार्ग निर्देश किया गया है, जिससे चलकर सभी लोग परस्पर विचार-विनिमय करने का प्रयत्न कर सकें। ऐसे स्वस्थ और सरल अध्ययन का दृष्टिकोण सामने उपस्थित करने के लिए निश्चय ही हिंदी का सहृदय वर्ग गुप्त जी का स्वागत करेगा।

विषय-सूची देखकर ही चतुर विद्यार्थी की समझ में ग्रंथ की विशेषता आ जाती है। परिशिष्ट में प्रसाद की कृतियों का कालक्रम जैसा यहाँ उपस्थित किया गया है, वैसा अभी तक कहीं सुलभ नहीं था। 'इंदु' के इतिहास से विद्यार्थी को एक आलोक मिलता है, जिसे लेकर वह प्रसाद साहित्य का स्वरूप ठीक तरह से देख सकता है। इसी प्रकार परिशिष्ट की अन्य बातें देखने में साधारण परंतु महत्व में विशिष्ट हैं। मुख्य ग्रंथ के दो भाग हैं—पद्य और गद्य। पद्य के विकास-क्रम के अनुसार पाँच युग स्थिर किए गए हैं। इस प्रकार के अध्ययन से हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ने में भी सहायता मिलती है और उस इतिहास की भूमिका में 'प्रसाद' का विकास और वैशिष्ट्य स्पष्ट देख पड़ता है। इसमें सबसे अच्छा विवेचन चिंतन युग का है और 'प्रसाद' के विद्यार्थियों को इसी युग की कृतियों के संबंध में कठिनाइयों का प्रायः अनुभव होता है। इस युग की उनकी कविताएँ हैं,—'आँसू का परिवर्द्धित अंश, लहर' कामायनी और इनके अतिरिक्त 'एक घूँट' और ध्रुवस्वामिनी' नामक नाटकों में भी चार-चार गीत हैं। 'आंसू' के परिवर्द्धन और संशोधन के संबंध में जो विचार किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी की शक्ति अब निखर रही थी और उत्तरोत्तर रमणीयता की ओर जा रही थी। ग्रंथकार के शब्दों में 'कवि संशोधक होकर अपने कवि रूप की हत्या नहीं करता'। इस प्रकरण में 'कामायनी' पर भी थोड़ा सा लिखा गया है, पर

संक्षेप में ऐसा मालूम पड़ता है कि कामायनी के संबंध में जितने विचारणीम प्रश्न हैं, उन सबका उत्तर दे दिया गया है। कामायनी का प्रतिपाद्य विषय, कामायनी की आधुनिकता, कामायनी में इतिहास आदि सभी मुख्य विषयों पर स्पष्ट विचार व्यक्त किए गए हैं। इतने संक्षेप में इतना अच्छा विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है।

गद्य वाले भाग में चंपू, नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास और गद्य काव्य ये छह प्रकरण करके इनका विवेचना किया गया है। इसमें गद्य काव्य का विवेचन तो अपने ढंग का पहला है और इसे पढ़कर निश्चय ही सहृदय को विश्वास हो जाता है कि प्रसाद जी गद्य काव्य के भी कितने समर्थ निर्माता ये। उपन्यास वाला विवेचन यद्यपि संक्षिप्त है, पर इतना नवीन, ठोस, सुलझा हुआ और प्रभावशाली है कि चतुर विद्यार्थी के लिए यह एक ग्रंथ का काम करता है। इसी प्रकार इसका निबंध वाला अंश भी विशेष महत्व रखता हैं। प्रसाद के साहित्यिक, ऐतिहासिक और समीक्षात्मक तीनों प्रकार के निबंधों का इसमें व्यापक विवेचन किया गया है। इन निबंधों के परिचय से 'प्रसाद' के अध्ययन में बहुत सहायता मिलती है। इसी प्रकार ग्रंथ के अन्य अंश भी एक ही साथ परिचयात्मक और आलोचनात्मक हैं।

अंत में इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस ग्रंथ में दिए हुए सभी विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ, तथापि वैज्ञानिक पद्धति और प्रामाणिक सामग्री के चयन से इतना संतुष्ट हूँ कि मैं उन सभी विचारों का स्वागत करता हूँ और 'प्रसाद' का विशेष अध्ययन करने वालों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस ग्रंथ को अपने अध्ययन का पहला सोपान बनायें।

सभी पाठकों से मेरा आग्रह है कि इस ग्रंथ को सर्वांगपूर्ण बनाने में योग देने की कृपा करें, जिससे प्रसाद का अध्ययन-मार्ग परिष्कृत तथा प्रशस्त हो जाये। उदाहरणार्थ जहाँ इस ग्रंथ में लिखा है 'अप्राप्त', उसे प्राप्त करने में सहायक हों। प्रसाद साहित्य के प्रथम संस्करण यदि एक स्थान पर इकट्ठे हो सकें, तो इसका भी यत्न करें। और भी अच्छा हो यदि इस ग्रंथ की सामग्री तथा आलोचना का उपयोग करके प्रसाद ग्रंथावली का संपादन किया जाये। इससे भारतीय गणतंत्र को साहित्यिक स्वास्थ्य मिलेगा और राष्ट्रभाषा को लोकप्रिय बनाने में सरलता होगी।

शिवरात्रि
सं० २००९

पद्मनारायण आचार्य
प्राध्यापक हिंदी विभाग
का० हि० वि० वि०

५१. प्रसाद साहित्य और डॉ० किशोरीलाल गुप्त

[डॉ० किरण मिश्र]

अपने जीवन में डॉ० किशोरी लाल गुप्त का सर्व प्रथम दर्शन मुझे प्रसाद-साहित्य के सुधी अध्येता के रूप में ही हुआ। सन् १९४९ की शीत ऋतु की बात है। अपने घर में प्रायः मैं देखा करती कि इतवार या अवकाश के किसी अन्य दिन कोई सज्जन सबेरे ही आ जाते और मेरे पूज्य पितृव्य स्वर्गीय पंडित पद्मनारायण जी आचार्य के स्वाध्याय मंदिर में बेतरतीव बिखरी पुस्तकों के बीच में जहाँ कहीं भी अवकाश पाते बैठकर चुपचाप अपने साथ लायी हुई पाठ्यसामग्री या बिखरे ग्रंथों में से किसी को लेकर पढ़ते या कुछ लिखते रहते। कभी आवश्यकता होती तो अपने कार्यों में रत पितृव्य से जाकर कुछ पूछ लेते या पितृव्य को कोई बात पूछनी होती तो उन्हें बुलाकर या उनके पास जा कर पूछ लेते। कभी-कभी शाम को ही या कभी देर रात को वे सज्जन लौट जाते। बीच में पानी, भोजन या जलपान की आवश्यकता पूरी करने के लिए हमें उनका भी ध्यान रखना पड़ता था। ऐसे क्रम की प्रायः आवृत्तियाँ होती देख एक बार मेरी किशोर जिज्ञासा ने पितृव्य से पूछ ही लिया कि हमेशा इस प्रकार आने वाले ये सज्जन आखिर कौन हैं ? उत्तर मिला—"ये मेरे सबसे सुबोध विद्यार्थी हैं और प्रसाद-साहित्य के सुधी अध्येता, जिनका अध्ययन अनुशीलन देखकर मुझे संतोष होता है तथा यह पूर्वाभास होता है कि प्रसाद-अध्ययन की परंपरा इनके द्वारा चिरंजीवी होगी। इसीलिए ये मुझे अत्यत प्रिय हैं।" ऐसा गंभीर परिचय सुनने के बाद आगे कुछ पूछने की बुद्धि उस समय नहीं थी।

आज जब गुप्तजी के प्रसाद-साहित्य के अध्ययन और कृतित्व का मूल्यांकन करने बैठी हूँ, तब उस कथन को अशरशः सत्य पा रही हूँ। सचमुच गुप्त जी ने प्रसाद-साहित्य का अणु-अणु, तिल-तिल या कोना-कोना झांककर उसे पूरी तरह हृदयंगम कर डाला है और तब सहृदय पाठक, सुधी मीमांसक और निष्पक्ष आलोचक के रूप में उसका नवनीत हिन्दी-संसार के सम्मुख किया है। उनके जैसे अध्यवसायी साहित्यकार विरल होते हैं। प्रसाद के अतिरिक्त अन्य हिन्दी-कवियों या हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी उन्होंने अपनी सूक्ष्मदर्शिनी या तलस्पर्शिनी प्रतिभा से कार्य किया है। जिस भी क्षेत्र को चुना है, उसका पूर्ण रूपेण परिचय या पूरा ब्यौरा उपस्थित करने में वे अपना सानी नहीं रखते। इसीलिए उनका कृतित्व हिन्दी-साहित्य को दुर्लभ और अप्रतिम वस्तु है।

महाकवि जयशंकर प्रसाद उनके परम प्रिय कवि रहे हैं, जिन्हें उन्होंने अपनी किशोरावस्था के भाव प्रसूनों से ही श्रद्धांजलि अर्पित की थी। अपने अप्रकाशित ग्रंथ 'प्रसाद-चिंतन' को—'प्रसाद काव्य-प्रासाद तक पहुँचने के मेरे सोपान' शीर्षक भूमिका में सन् १९३९ में ही उन्होंने यह स्वीकार किया है कि अब प्रसाद मेरे सर्वप्रिय कवि हैं। उसी में यह भी उल्लेख किया है कि सन् १९३२-३३ में 'लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर, बनारस स्टेट' में अध्ययन करते समय ही वे–'विशाख', 'प्रतिध्वनि', 'स्कंदगुप्त' आदि प्रसाद की रचनाएँ पढ़ चुके थे। १९३७ से उनका भावुक मन 'चतुर्दशपदियों' की रचना कर प्रसाद-काव्य-मार्ग पर चलना भी आरंभ कर चुका था। सन् १९३७ में प्रसाद जी के स्वर्गारोहण के पश्चात् गुप्त जी का प्रसाद-प्रेम और परिपक्व हो उठा। कालांतर में अध्ययन की विशदता, ज्ञान की गंभीरता और संवेदनाओं की सूक्ष्मता से इस प्रेम ने जो विस्तार पाया, उसके कारण उनके लिए 'प्रसाद-काव्य प्रासाद' के सभी द्वार उन्मुक्त हो उठे। फलतः डाक्टर गुप्त ने यथारुचि सहृदय पाठक के रूप में प्रसाद-साहित्य का आस्वादन किया। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उस साहित्य के भावात्मक एवं कलात्मक मर्म को समझकर उसका मूल्यांकन किया। तत्पश्चात् अपनी मीमांसा को विभिन्न कृतियों के रूप में पाठकों एवं जिज्ञासुओं को समर्पित किया। प्रमाण की कसौटी पर खरे उतरे निष्कर्षों द्वारा प्रसाद-साहित्य के क्षेत्र में फैली भ्रांतियों को दूर किया और आगे कार्य करने वालों के लिए सही दिशा निर्देश किया।

फिर भी खेद की बात यह है कि श्री गुप्त जी ने अद्यतन प्रसाद-साहित्य पर जो कार्य किया है, वह समस्त रूप से अभी प्रकाशित नहीं हो पाया है। बहुत सी महत्वपूर्ण कृतियाँ अभी पांडुलिपियों के रूप में अप्रकाशित स्थिति में हैं, जिनका लाभ सर्वसुलभ नहीं हो सकता। शायद निकट भविष्य में प्रकाशित हो जायें तो हिन्दी के गौरव की वृद्धि होगी। परन्तु जितना साहित्य प्रकाशित हो चुका है, वह प्रसाद-साहित्य के अध्येता द्वारा छोड़ देने योग्य वस्तु नहीं है। बल्कि यह भी कहा जाये कि वह प्रसाद-साहित्य को सर्वतोभावेन समझने की एकमात्र कुंजी है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि प्रसाद-साहित्य का कोई पक्ष गुप्त जी ने अछूता नहीं छोड़ा। उनके अन्वेषी, अध्यवसायी और निष्ठावान व्यक्तित्व ने प्रसाद-साहित्य संबंधी जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए सभी आवश्यक द्वार खटखटाए और बड़े परिश्रम से यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे ज्ञान रत्नों को बटोरकर अपने कृतित्व को पूर्ण और समृद्ध बनाया। अतः प्रसाद-साहित्य का मर्म समझने के लिए डॉ० किशोरी लाल गुप्त को भुलाया नहीं जा सकता।

प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन

प्रसाद-साहित्य के क्षेत्र में डॉ० किशोरीलाल गुप्त के अवदान का मूल्यांकन करते समय सबसे पहली आवश्यकता उनके प्रसाद-संबंधी समग्र कृतित्व के

परिचय की होगी, क्योंकि उनका समग्र कृतित्व अभी प्रकाशित नहीं हो पाया है। प्रकाशित रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है—'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन', जो उनका एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा के लिए लिखित शोध निबंध का परिवर्द्धित रूप है। उस युग में हिन्दी एम० ए० के प्रत्येक विद्यार्थी को शोध निबंध लिखना आवश्यक होता था। अतः गुप्त जी ने अपनी रुचि के अनुसार प्रसाद को चुना था। प्रकाशित होते समय इसकी भूमिका पूज्य पितृव्य पं० पद्मनारायणजी आचार्य ने लिखी थी, जबकि गुप्तजी के समस्त ग्रंथों में उनकी स्वयं लिखित भूमिका ही है। इस ग्रंथ में प्रसाद जी की समस्त रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। समस्त ग्रंथ दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खंड में पद्य भाग है, जिसमें प्रसाद की कविताओं का विकास दिखाया गया है और द्वितीय खंड में गद्य भाग है जिसमें प्रसाद के चंपू, नाटक, निबंध, कहानियाँ, उपन्यास और गद्यकाव्य अर्थात् समस्त गद्य साहित्य का विकास दिखाया गया है। इसके साथ ही ग्रंथ का परिशिष्ट भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें प्रसाद की समस्त कृतियों के प्रकाशन का कालक्रम प्रस्तुत किया गया है। 'इंदु' पत्रिका का इतिहास दिया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है और उसमें प्रकाशित प्रसाद जी की रचनाओं का कालक्रम भी दिया गया है। 'छाया' कहानी-संग्रह की कहानियों का कालक्रम भी उपस्थित किया गया है। परिशिष्ट में संहित दुर्लभ वस्तु है—पारिभाषिक पदावली, जिसे हिन्दी अहिन्दीभाषी दोनों प्रकार के अध्येता सुगमता से समझकर उपयोग में ला सकते हैं। प्रसाद-साहित्य के भली प्रकार अध्ययन में गुप्त जी का यह प्रयास कितना सहायक होता है, इसकी महत्ता लाभ उठाने वाला ही ठीक जान सकता है। इस ग्रंथ में लेखक की नवीन दृष्टि यह है कि वह 'इंदु' की प्रतियों के साक्ष्य के आधार पर प्रसाद जी को ही छायावाद या नये ढंग की कविता का जनक मानता है। प्रसाद के नाटकों में गीतों के प्रयोग की सार्थकता को समझाने का भी इस ग्रंथ में प्रयत्न किया गया है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न वादों को भी विवादों के घेरे से निकालने का प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तक में है तथा कहानीकार प्रसाद का अपना विशिष्ट स्वरूप व उस क्षेत्र में उनके असाधारण योगदान की चर्चा की गई है। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत ग्रंथ लेखक की मौलिक सूझ-बूझ और खोजी प्रवृत्ति का परिचायक तो है ही, साथ ही नवीन स्थापनाओं और अन्यत्र दुर्लभ सूचनाओं के कारण अध्येताओं के संग्रह की वस्तु है।

प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ

प्रकाशित सामग्री में गुप्त जी का लेख 'प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ' भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो प्रसाद परिषद से प्रकाशित 'प्रसाद का साहित्य' शीर्षक संग्रह में संकलित है। इस लेख में आपने हिंदी में चतुर्दशपदी (सानेट) का इतिहास बताते हुए उसके पूरे विकासक्रम पर प्रकाश डाला है। हिन्दी में इस छंद की स्वीकृत पद्धति के

अनुसार मात्राओं की गणना और संख्या का निर्देश भी सप्रमाण प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी ढंग की तुक प्रणाली का संकेतात्मक निरूपण कर दिखाया है। इसके बाद प्रसाद जी की चतुर्दशपदियों का प्रकाशनकाल और प्रकाशित करने वाली पत्रिका 'इंदु' का पूर्ण संकेत देते हुए विभिन्न चतुर्दशपदियों के भावात्मक एवं कलात्मक सौंदर्य पर प्रकाश डाला है। छंद:शास्त्र की दृष्टि से भी उनका मूल्यांकन करते हुए यह सिद्ध किया है कि साहित्यरूपों के प्रयोक्ता प्रसाद जी ने अपनी चतुर्दशपदियों में तीन प्रकार के प्रयोग किये हैं। तीनों प्रकारों के छंद और मात्राओं का स्पष्ट निर्देश किया है। कुल कितनी चतुर्दशपदियाँ हैं, वे किस प्रकार की हैं और कब-कब किस रूप में लिखी गई और कहाँ प्रकाशित हुईं। प्रसाद जी की चतुर्दशपदियों का पूरा इतिहास इस लेख में मिल जाता है।

इसी क्रम में डा० गुप्त के अप्रकाशित ग्रंथ 'प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ' का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं जान पड़ता। इसमें गुप्तजी ने प्रसाद जी की समस्त चतुर्दशपदियों का संकलन एवं सटीक सम्पादन करने की सामग्री सन् १९५० में ही प्रस्तुत कर ली थी। यदि यह ग्रंथ प्रकाशित हो जाये, तो हिन्दी में अपने ढंग की वस्तु होगा। इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह होगी कि इसमें प्रसाद जी की समस्त चतुर्दशपदियाँ एकत्र मिल जायेंगी–अपने रचना काल और प्रकाशन के इतिहास के साथ। दूसरी विशेषता यह कि छंद:शास्त्र की दृष्टि से चतुर्दशपदियों का विभाजन करके उनका अलग-अलग संकलन किया गया है। तीसरी विशेषता यह है कि समस्त चतुर्दशपदियों की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तात्पर्य यह कि अपने विषय का पूर्ण प्रतिपादन प्रस्तुत ग्रंथ में है। 'प्रसाद का साहित्य' में प्रकाशित लेख इस ग्रंथ की भूमिका का उत्तरार्द्ध है। पूर्वार्द्ध में सानेट पर विचार है और अंग्रेजी सानेटों का इतिहास है।

प्रसाद-चिंतन

ऐसा ही एक अन्य अप्रकाशित ग्रंथ 'प्रसाद चिंतन' है, जिसमें गुप्त जी के प्रसाद के समस्त साहित्य पर फुटकर लेख हैं। प्रसाद की पूरी साहित्य-साधना पर काव्य, नाटक, कहानी और विविध शीर्षकों से विचार किया गया है, जिसमें संपूर्ण साहित्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। कुछ ऐसे विषयों को विचार के लिए ग्रहण किया गया है, जिनपर विचार सर्वत्र नहीं मिलता जैसे––कामायनी के कुछ शब्द, कामायनी के छंद, प्रसाद के गीतों का वर्गीकरण, नाटकों का वर्गीकरण, भरतवाक्य, ब्रजभाषा के सुकवि प्रसाद, प्रसाद की प्रथम एवं अंतिम कहानियाँ तथा प्रसाद की निर्ग्रंथ रचनाएँ इत्यादि। प्रसाद के पाँच प्रसिद्ध गीतों का अंग्रेजी में रूपान्तर भी इस ग्रंथ में दिया गया है। ग्रंथ का 'विचित्र' शीर्षक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण एवं अन्यत्र दुर्लभ सूचनाओं से भरा हुआ है। सचमुच प्रसाद का सम्पूर्ण चिंतन इस एक ग्रंथ के द्वारा भलीभाँति समझा जा सकता है। इस ग्रंथ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है प्रसाद की प्रसिद्ध लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' की विस्तृत समालोचना। इस कविता

के सम्बन्ध में जितना, जैसा और जो कुछ लिखा जा सकता था, सब गुप्त जी ने देने का प्रयास किया है। पहली बार यह कविता कब और कहाँ निकली तथा किस सज-धज के साथ निकली और उस पर सहृदय पाठकों की सम्मतियाँ क्या-क्या आईं, सब का इतिहास इस समीक्षात्मक लेख में दिया गया है। कविता के ऐतिहासिक तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् उसका काव्यात्यक मूल्यांकन किया गया है। छंद के नामकरण पर विचार कर उसका इतिहास बताया गया है और उसके मात्राविधान को छंदःशास्त्र की कसौटी पर कसा गया है। इस कविता के अलंकारों पर भी विचार किया गया है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ रूप-चितेरे प्रसाद के सौंदर्य विधान को कला और सूक्ष्म संवेदनाओं पर गम्भीरता से विचार प्रस्तुत किये गये हैं। मानव भावों की सहचरी प्रकृति के चित्रण पर भी गुप्त जी ने पर्याप्त विचार किया है। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और उक्ति-वैचित्र्य की विशिष्टताओं की ओर भी संकेत किया है। साथ ही प्रसाद के नियतिवाद के दर्शन कराना भी वे नहीं भूले हैं। अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहा गया है कि प्रसाद-साहित्य के सभी तत्त्व 'प्रलय की छाया' में पूर्णरूप से मिल जाते हैं। इस प्रकार किसी कविता की सांगोपांग समीक्षा देखनी हो, तो गुप्त जी का यह लेख काफी है। 'प्रलय की छाया' के सम्बन्ध में जितनी जानकारी अपेक्षित है, वह सब इस समीक्षा में प्रस्तुत है—कहीं अन्यत्र कुछ और ढूंढ़ना नहीं है। अतः गुप्त जी का 'प्रसाद-चिन्तन' ग्रंथ भी अपना अलग महत्त्व एवं वैशिष्ट्य रखता है।

कामायनी का अंग्रेजी अनुवाद

गुप्त जी की अप्रकाशित रचनाओं में कामायनी का अंग्रेजी अनुवाद भी है, जिसे उन्होंने मेरे पूज्य पितृव्य स्वर्गीय प० पद्मनारायण जी की बलवती प्रेरणा से ही किया था। कामायनी के अनुवाद का यह कार्य जून १९४९ में प्रारम्भ हुआ और दस मास के भीतर ही अप्रैल १९५० में पूरा हो गया। प्रसाद जी की अन्य लगभग ७० कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद भी गुप्त जी ने किया था। चार्ल्स लैम्ब के टेल्स फ्राम शेक्सपियर (Tales from Shakespeare) के ढंग पर प्रसाद की नाट्य-कथाओं पर भी उन्होंने लिखा था, जिसमें से एक —'कामना की कथावस्तु' 'हिन्दी' (हस्तलिखित पत्रिका) के प्रसाद अंक में शेष बच रही है।

प्रसाद काव्यदोहन

'प्रसाद-काव्य-दोहन' शीर्षक उनका अन्य महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित ग्रन्थ है, जिसमें प्रसाद जी की प्रतिनिधि कविताओं का कालक्रमानुसार संकलन है। इस ग्रन्थ से प्रसाद के काव्य-विकास का परिचय मिलता है। प्रारम्भ में ब्रजभाषा की कविताएँ हैं और अंत में कामायनी के अंश हैं। इसीमें प्रसाद जी की अन्तिम कविता—'मेरे जीवन

के ध्रुवतारा' भी संकलित हैं। इसे प्रसाद का प्रतिनिधि संकलन निस्संकोच कहा जा सकता है। इस प्रकार यह ग्रंथ भी प्रसाद-अध्ययन की दिशा का एक सोपान सिद्ध होता है।

गुप्त जी का प्रसाद-प्रेम

जीवन के आरम्भ काल से ही गुप्तजी प्रसाद-साहित्य के प्रति आकृष्ट हैं। इसी कारण उन्होंने अपनी बी० ए० की परीक्षा में प्रसाद पर 'ऑनर्स' लिया और दो वर्ष तक अध्ययन करने के बाद जनवरी '४० में उन्हें यह सूचना मिली कि 'प्रसाद ऑनर्स' का प्रश्नपत्र नहीं बना है, तब विवश होकर गुप्त जी ने प्रसाद के स्थान पर तुलसी पर 'आनर्स' की परीक्षा दी और दो वर्ष तक 'तुलसी ऑनर्स' नियमित पढ़ने वाले समस्त विद्यार्थियों में किसी को ऑनर्स नहीं मिला। आप ही एक ऐसे विद्यार्थी थे, जिसे उस वर्ष की बी० ए० परीक्षा में तुलसी पर ऑनर्स प्राप्त हुआ। किसी भी वस्तु का तन-मन-धन और लगन से अध्ययन गुप्त जी की अपनी चारित्रिक विशिष्टता है।

हस्तलिखित 'हिन्दी' का प्रसाद अंक

इन सब के अतिरिक्त गुप्तजी के प्रसाद प्रेम का सर्वोत्तम निदर्शन उनके विद्यार्थी काल में हस्तलिखित रूप में निकलने वाली पत्रिका 'हिन्दी' का 'प्रसाद अंक' है, जिसे जनवरी १९४० में गुप्तजी ने सम्पूर्ण रूप में अपनी हस्तलिपि में ही लिपिबद्ध किया था। सौभाग्य से वह दुर्लभ हस्तलिखित पत्रिका मुझे देखने को मिली है। इसे लगभग ४०० पृष्ठों का दीर्घकाय हस्तलिखित ग्रन्थ ही समझिए। यह अब गुप्तजी के पुस्तक भण्डार की अमूल्य निधि है। यह ग्रंथ प्रसाद-साहित्य के सम्बन्ध में अन्यत्र दुर्लभ सामग्री का प्रभूत संचय है। इसमें प्रसाद-साहित्य के जाने-माने विद्वानों के लेख संग्रहीत हैं, जिनमें प्रसाद-साहित्य के समस्त पक्षों पर बहुमूल्य विचार हैं। उनके साहित्य की विभिन्न विधाओं पर विश्रुत विद्वानों के लेख हैं, जैसे—आचार्य पं० केशव प्रसाद मिश्र, पं० पद्मनारायण आचार्य, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रो० प्रकाश चंद गुप्त, डॉ० केशरी नारायण शुक्ल, डा० राम लाल सिंह, डॉ० शंभुनाथ सिंह प्रभृति साहित्यिकों के विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। प्रसाद-साहित्य में सर्वत्र बिखरी सूक्तियाँ 'रत्नकण' शीर्षक से एकत्र उपस्थित की गई हैं। इस ग्रंथ में गुप्त जी के भी दो लेख हैं—'कामायनी के छंद' और 'प्रलय की छाया'। इसके साथ ही सम्पादकीय में जो शीर्षक हैं—प्रसाद की साहित्य-साधना, ब्रजभाषा के सुकवि प्रसाद, प्रसाद के नाटकों की भाषा, प्रसाद के कहानी संग्रह, प्रसाद पर आलोचना साहित्य तथा प्रसाद की निग्रंथ रचनाएँ—ये सभी कालांतर में उनके विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों के रूप में परिणत हुए। यदि यह कहा जाये कि यह एक हस्तलिखित ग्रन्थ ही गुप्त जी के प्रसाद-साहित्य-प्रेम, गहन निष्ठा, अद्भुत लगन और कठोर अध्यवसाय का

चूड़ान्त निदर्शन है, तो अत्युक्ति नहीं। उनका यही प्रेम कालांतर में वय, ज्ञान और अध्ययन के साथ विकसित होकर विविध आयामों में विस्तार पाता गया। सच तो यह है कि १९३६ से १९५२ तक प्रसाद जी गुप्तजी के मन और मस्तिष्क पर छाए रहे हैं। इसके पश्चात् वे शोध क्षेत्र में चले गए।

प्रसाद-साहित्य के प्रति ऐसी दृढ़ निष्ठा और अध्यवसायपूर्ण कर्तृत्व देखकर ही सन् १९५७ में केशव-स्वाध्याय मंदिर के तत्वावधान में तुलसी पुस्तकालय (भदैनी) वाराणसी में आयोजित कामायनी सम्मेलन में प्रसाद-साहित्य के विशिष्ट विद्वानों के साथ आपको भी अभिनन्दन पत्र प्रदान किया गया था। गुप्त जी की दृष्टि में प्रसाद ऐसे अमर कलाकार हैं, जिनपर हिन्दी को गर्व है। मेरी दृष्टि में डॉ० किशोरीलाल गुप्त प्रसाद-साहित्य के अमर व्याख्याकार हैं, जिनकी मुट्ठी में प्रसाद-साहित्य के सभी सूत्र हैं। इस रूप में वे हिन्दी के गौरव हैं और हमें उन पर गर्व है।

——मधुमती, भदैनी, वाराणसी

५२. आचार्य चंद्रबली पांडे-ग्रन्थावली और डॉ० गुप्त

[पारसनाथ 'गोवर्धन']

अपनी तमाम कोशिशों, स्थापनाओं, मान्यताओं और उद्घोषणाओं के पश्चात् भी हिन्दी-समालोचना-साहित्य आचार्यप्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा स्थापित मान-दण्डों के चूल हिला सकने तक में न केवल असमर्थ रहा है, वरन् दूसरी-तीसरी परम्परा के अन्वेषी फतवेदार और कुनबापरस्त समालोचक-सम्राट (?) तक भी उन्हीं की छाया में श्रान्ति क्लान्ति मिटाने को बाध्य रहे हैं और हैं। किसी को बार-बार नकारते जाना या नकारने की कोशिश में उसी के वृत्त में घूमते रहना भी उसके व्यक्तित्व से आक्रान्त होने जैसा ही होता है।

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी शोध और समीक्षा-समालोचना के जो अनेक पथ-संधान किये थे, और जिसे प्रशस्त राजपथ का गौरव प्रदान किया था, उसमें एक पथ था गवेषणात्मक समालोचना का। निश्चय ही डा० किशोरीलाल जी गुप्त गवेषणात्मक समालोचना जगत में शुक्ल-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनके शोधगन्थों तथा सम्पादित दर्जनाधिक ग्रन्थावलियों की खोजपूर्ण विस्तृत भूमिकाओं में उनके गंभीर पाण्डित्य और तथ्यपरक अध्येता का साक्षात्कार होता है। यही तथ्य और तत्वाभिनि-वेशिनी-दृष्टि उन्हें एक अतिरिक्त और गरिमामय पहचान भी देती है।

डाक्टर गुप्त को पढ़ते हुए जो बात मैंने बड़ी शिद्दत से महसूस की है, वह है उनकी व्यापक और तह तक पैठने और सेवार-घोंघों को बटोर लेने में ही श्रम और

सर्जना को सार्थकता न मानकर, विषय और वस्तु के महासागर में और अधिक, और अधिक गहरे पैठ कर, और बड़े और और मूल्यवान मोतियों को ढूंढ़ लाने की ललक। और जहाँ तक अपनी अध्ययन-सीमा है, यह बात भी मैं बहुत स्पष्ट तौर पर और जोर देकर कहना चाहूँगा कि संभवतः स्वर्गीय आचार्य चंद्रबली पांडे के बाद हिन्दी-शोध जगत में डॉ० गुप्त जैसा सुधी और गंभीर अध्येता दूसरा नहीं है, आलोचक चाहे जितने और जितने बड़े हों। इसीके साथ इतना यह भी कि 'चरैवेति-चरैवेति' ही नहीं, 'एकला चलो रे' के महनीय और अपने आप उदाहरण भी हैं डाक्टर किशोरी लाल जी गुप्त। मैं समझता हूँ जिन्हें उनके 'गोसाईं चरित', भूषण-मतिराम और उनके अन्य भाई, 'तुलसी और और तुलसी, सूरदास और सूर नवीन जैसे दर्जन भर ग्रंथों को पढ़ने और देखने का अवसर मिला है—मेरी बात से असहमत न होंगे। उनके द्वारा संपादित रीतिकालीन वा भक्तिकालीन ख्यात-कम-ख्यात कवियों की प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रंथावलियाँ तो मुझे और भी पुष्ट करती हैं। हिन्दी-कविता का स-कवि-परिचय संकलनेतिहास [१८ खण्डों में और सो भी २०वीं शताब्दी तक का] तो एक ऐसा सुदीर्घ और श्लाघनीय कार्य है, जिसे अब तक हिन्दी की बड़ी से बड़ी संस्थाएँ तक सोच नहीं पाई थीं, करने की तो बात ही अलग है। यह भी बहुत स्पष्ट है कि अकेले डॉ० गुप्त ने जितनी रचनावलियों का संपादन किया है, वह भी हिन्दी-जगत में शायद अकेला ही कार्य है। निश्चय ही डॉक्टर किशोरीलाल जी गुप्त आचार्य परंपरा की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

अन्वेषक-आलोचक डॉ० गुप्त की सर्जना के अन्यान्य रूप भी हैं, तथापि यहाँ उनके लिए न तो अवसर है, न आदेश और न ही इस लघुलेख का मन्तव्य, और न ही अपना अभीष्ट। यहाँ तो संस्मरणों और पत्रों के मिस कुछ कहने की चाह है और है आचार्य चंद्रबली पांडे ग्रंथावली के संपादन-संदर्भ में चर्चा विशेष की वांछा।

डॉ० गुप्त जुलाई सन् १९६२ ई० में शिबली नेशनल डिग्री कालेज आजमगढ़ के हिन्दी-विभागाध्यक्ष-पद से अलग होकर, गाजीपुर जनपद के हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ के प्राचार्य बन कर चले गये और मैं एक नवोदित कवि के रूप में सन् १९६४ के अन्तिम महीनों में नगर के साहित्यिक माहौल से जुड़ा, यद्यपि डॉ० गुप्त के प्रस्थान के साथ ही आजमगढ़ का साहित्यिक वायुमण्डल धूम्राच्छादित होने लगा था। हम जैसे नवोदितों के सामने सही मार्गद्रष्टा का नितान्त अभाव था। साहित्यकार के नाम पर तब भी लगभग डेढ़ दर्जन कवि नगर में थे, जिनके लिए रचना-कर्म के मायने केवल तुकबन्दियाँ करना और येन केन प्रकारेण श्री 'सूंड़' फैजाबादी की अनुकंपा प्राप्त कर एक दो कवि-सम्मेलनों में शिरकत कर लेना ही समग्र संप्राप्ति था। आजमगढ़ में रहते समय डॉक्टर साहब संपूर्ण साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र थे और नवोदितों का सही दिशा में मार्ग निर्देश कर रहे थे। उनके प्रस्थान के साथ ही भक्त गोष्ठी, तरुण-परिषद्, जनपद

साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्थाएँ यकायक श्री-विहीन ही नहीं, प्राणहीन भी हो गयीं। 'श्री हरिऔध कला भवन' जैसा सुविधा और साधन-संपन्न मंच तो अब दूर ही से गंधाने भी लगा है। संक्षेप में यह कि डॉ० गुप्त का आजमगढ़ से प्रस्थान, आजमगढ़ से सृजनकर्म का प्रस्थान भी था। कहने को तो यहाँ महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त', विश्वनाथ लाल 'शैदा', दान वहादुर सिंह 'सूँड़' फैजाबादी जैसे समर्थ कवि भी थे, किन्तु इनकी अपनी सीमाएँ थीं। 'भक्त' जी जहाँ अपने अत्यन्त सीधे-सरल और निर्मल मन के कारण और अत्यधिक वार्ध्यक्य के चलते असमर्थ थे, वहीं 'शैदा' जी कुण्ठा की हद तक आत्मकेन्द्रित होने के कारण। 'भक्त' जी से मिलने-जुलने पर जहाँ सहज आत्मीयता का भान होता था, वहीं 'शैदा' जी एक प्रकार के आतंकबोध के अतिरिक्त और कुछ न दे पाते थे। अजीब विरोधाभास—अजीब विसंगति! भक्त जी स्नेह से मिलते, आदर-मान देते, सुनते-सराहते, शीघ्र मिलने का आश्वासन लेते हुए भी कुछ दे न पाते। दूसरी ओर 'शैदा' जी ने अपने चतुर्दिक एक ऐसा आवरण तान लिया था, जिससे बाहर झाँक–देख पाना उनके लिए भी असंभव हो गया था। 'शैदा' जी के ही सुयोग्य उत्तराधिकारी कविवर 'सूँड़' जी अपने साहित्यिक और सर्जक व्यक्तित्व से पूरी तरह अलग हो गये थे, कविसम्मेलनी जोड़-तोड़, गुणा-भाग की राजनीति में लगे थे। यदि अकेले श्री 'सूँड़' जी ने ही चाहा होता, तो भी आजमगढ़ की गौरवशालिनी साहित्यिक परंपरा जीवित रह सकती थी। 'सूँड़' जी में प्रतिभा और सामर्थ्य भी बहुत थी। किन्तु दुःखद यह हुआ कि 'खुद तो डूबेंगे, सनम तुमको भी ले डूबेंगे' को चरितार्थ करते हुए, इन्होंने सच्ची और लगनशील प्रतिभाओं की अवहेलना ही नहीं की, अपितु प्रतिभाहीन लोगों और कहीं से भी रचनात्मक क्षमता और सम्भावना से न जुड़े लोगों को कुछ इस रूप में उछालने और प्रस्तुत करने का खुलेआम यत्न किया, जिसके चलते उपेक्षा के शिकार तमाम लोग लिखने-पढ़ने से ही विरत हो गये। दूसरी भयावह स्थिति यह थी कि कविता के अतिरिक्त किसी अन्य विधा को स्वीकार ही नहीं किया जाता था, कमोवेश स्थिति आज भी यही है। बहरहाल, ऐसी ही स्थिति और ऐसे ही वातावरण में हमने अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया।

जहाँ तक स्मरण है नवम्बर ६५ ई० में डा० गुप्त के प्रथम दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वे श्री हरिऔध कलाभवन के मंच पर आयोजित किसी कार्यक्रम में भाग लेने हेतु पधारे थे और एक नवोदित रचनाकार के रूप में मैं भी आमन्त्रित था। डा० कन्हैया सिंह ने सामान्य खादी के कुर्ते-धोती में जिस मजबूत कद-काठी के व्यक्ति से पहुँचते ही मेरा परिचय कराया, वह थे डा० किशोरी लाल जी गुप्त। मंच पर डाक्टर साहब ने मुझे काफी सराहा और प्रोत्साहन दिया। मुझ जैसे नवोदित कवि के लिए यह पर्याप्त बल देने वाली बात थी, साथ ही विश्वास भी। वहीं पर डाक्टर साहब ने अपनी

पुस्तक "गोसाइं चरित" की प्रति "आचार्य चन्द्रबली पांडे के भतीजे श्री पारसनाथ पांडे 'गोवर्धन' को सस्नेह भेंट"—की थी।

किन्तु यह सम्पर्क भी स्थायित्व न ग्रहण कर सका ओर मुझे बहुत दिनों तक श्रद्धेय गुप्त जी के सात्विक सानिध्य से वंचित रह जाना पड़ा, सहपरामर्शों से भी इस व्यवधान में प्रमुख हेतु था मेरा शिक्षार्थी होना और डॉक्टर साहब का जनपद से दूर जमानियाँ में वास। हाँ, जब-तब नगर के साहित्यिक-समारोहों में पधारने पर भेंट होती रही।

डाक्टर साहब अत्यन्त सीधे, सरल और सात्विक प्रवृत्ति के आदमी हैं, शालीन और मिलन-सार व्यक्तित्व के धनी हैं। उनके परिचितों में शायद ही कोई हो, जो उनकी सरलता-सहजता और आत्मीयता के सम्मुख नतशिर न हो। आजमगढ़ आगमन पर दूर देहातों तक में रहने वाले मित्रों से मिलने वे जाते अवश्य हैं, चाहे जेठ की तपती गरमी हो या माघ की हाड़ तोड़ सर्दी। यही कारण है कि उनके सम्पर्क-स्नेह में आने वाला हर आदमी उनका अपना है, आत्मीय है, स्वजन है और स्वयं उसकी दृष्टि में वही डाक्टर साहब का सर्वाधिक प्रिय और स्नेहभाजन है।

साहित्यिक गोष्ठियों-समारोहों में डा० साहब जिस सहज भाव से अपने विचार व्यक्त कर जाते हैं, विषय-वस्तु पर अपनी सहमति-असहमति व्यक्त कर देते हैं अथवा किसीकी स्थापना और मान्यता से मतान्तर रखते हुए अपनी स्थापना को जिस पुष्ट और स्पष्ट ढंग से व्यक्त कर देते हैं, वह प्रायः कम लोगों में देखने को मिलता है। उनकी अपनी एक शैली है। बात कहने का उनका अपना एक ढंग है, एक मर्यादा है, कुछ इस प्रकार कि सुनने वालों को भी प्रिय लगे और जिसके प्रति बात कही गयी हो, वह भी प्रसन्न ही रहे। संक्षेप में डॉक्टर साहब 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' की प्रतिमूर्ति हैं। एक उदाहरण के साथ इस प्रसंग का पटाक्षेप करूँ तो उचित होगा।

बात १९८३ की है। डाक्टर साहब आजमगढ़ पधारे हुए थे। उनके सम्मान में एक कविगोष्ठी का आयोजन उनके परमआत्मीय और नगर के संभ्रान्त नागरिक बाबू कन्हैया लाल वकील के निवास स्थान पर किया गया था। दिन में डा० साहब मेरे यहाँ पधारे और में उनके साथ आजमगढ़ चला गया। गोष्ठी में डा० साहब ने 'दंशित आस्थाएँ' नाट्य-काव्य का एक अंश सुनाने का आग्रह किया। वैसे पहले भी वे महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' और प्रो० प्रभुनाथ सिंह 'मयंक' के साथ 'भक्त' जी के आवास पर सारी पुस्तक सुन चुके थे, सिवाय प्रथम दृश्य के, जो बहुत बाद में, एक तरह से पुस्तक की प्रेस-कापी तैयार होने के पश्चात्, लिखा गया था। मैंने उसे सुनाने का निवेदन किया ताकि लोगों की सम्मति जान सकूं, विशेष कर डाक्टर साहब की। उक्त दृश्य में हिंसा-अहिंसा, युद्ध और शान्ति की कुछ बातें, उनके औचित्य-अनौचित्य को लेकर उठायी गयी हैं। साथ ही मैंने अमूर्त सागर को [राम कथा के पात्र] मूर्त करते हुए इक्ष्वाकुवंशीय

राजा के रूप में चित्रित किया था। यह बात 'रामचरितमानस' या गोस्वामी तुलसीदास को ही पढ़ कर समूची रामकथा को अथ से इति तक समझ लेने के दावेदार एक प्रोफेसर साहब की समझ में नहीं आ रही थी। वे बार-बार व्यवधान उपस्थित कर रहे थे। मैंने उनसे निवेदन किया कि पहले गोष्ठी सम्पन्न हो लेने दें, फिर इस विषय पर चर्चा या तर्क-वितर्क कर लिया जायेगा। किन्तु बन्धु मानने को तैयार नहीं थे। मैं कुछ बोलने ही वाला था कि डॉक्टर साहब का रामवाण छूटा—"प्रोफेसर साहब, थोड़ा पढ़ना भी चाहिए।" इस 'पढ़ना भी चाहिए' में जो व्यंजना निहित है, उसे किसी को बताना क्या ? हाँ, उस क्षण माननीय महोदय चुप हो गये और आगे फिर लम्बी बहस के लिए कमर कस कर अखाड़े में उतरना भी चाहते थे, किन्तु एक ही दाँव में पस्त हिम्मत ही नहीं हुए, अपितु चें भी बोल गये।

यदि संस्मरणों पर ही केन्द्रित रहूँ तो पूरी एक पुस्तक तैयार हो सकती है। किन्तु संपादक महोदय से आदेशित हूँ 'आचार्य चन्द्रबली पांडे ग्रंथावली और डा० गुप्त' विषय पर कुछ कहने वा लिखने के लिए। तो विषय पर आना ही समुचित होगा।

जनता सरकार के प्रथम मुख्यमंत्री माननीय श्री रामनरेश यादव जी आरम्भ से ही मेरे प्रशंसक रहे हैं और शुभेच्छु भी। हमने कई राजनीतिक जेलयात्राएँ एक साथ की हैं और आपातकाल में एक साथ मीसा राजबन्दी के रूप में कारानिरुद्ध रहना पड़ा है। वार्ताक्रम में, अपने मुख्यमंत्रित्वकाल में, एक दिन श्री यादव जी ने राजनीति से विरत रह कर साहित्यसृजन की ओर ही केन्द्रित होने का सुझाव दिया और आचार्य चन्द्रबली पांडे ग्रंथावली के प्रकाशन की प्रेरणा दी। विशेषतः आचार्य पांडे जी द्वारा राष्ट्रभाषा आन्दोलन के दौरान विरचित भाषा-सम्बन्धी कृतियों के प्रकाशन के लिये उत्साहित किया और आश्वस्त किया कि अपने स्तर पर हर तरह का सहयोग वे करेंगे। आजमगढ़ लौटने पर मैंने स्व० पं० चन्द्रदत्त त्रिपाठी वैद्य की अध्यक्षता में बैठक की, जिसमें ग्रंथावली के सम्पादन एवं सामग्री-संचयन हेतु एक समिति भी गठित की गयी। किन्तु मात्र पिसान पोत कर भण्डारी बनने वालों से कुछ न बन सका। फिर वार्ताक्रम में ही एक दिन वैद्य जी ने श्रद्धेय गुप्त जी का नाम सुझाया। "इस कार्य के सम्पादन में निस्पृह भाव से यदि कोई उपयोगी हो सकता है और सामर्थ्य के साथ कार्य को पूर्णता दे सकता है, तो वह डाक्टर किशोरी लाल जी गुप्त ही हो सकते हैं। आप उनसे सम्पर्क साधें।"

मैंने स-संदर्भ डाक्टर साहब को पत्र लिखा अपनी स्थिति, उपलब्ध सामग्री, साधे गये सम्पर्क और मंशा से उन्हें अवगत कराया। पत्रोत्तर सप्ताहान्त तक उपलब्ध हो गया—

सुधवै
प्रिय श्री पाण्डे जी, वाराणसी
नमस्कार । २४--९--७९

आप का पत्र मिला। जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वर्गीय आचार्य चंद्रबली पांडे के साहित्य के उद्धार में लग गये हैं और उनकी ग्रन्थावली निकालना चाहते हैं। इस महत्कार्य में मेरा जो भी सहयोग सम्भव है, दूंगा। मैं पाण्डेजी की राष्ट्रभाषा सम्बन्धी कृतियों का सम्पादन कर दूंगा। सम्पादन क्या होगा—संकलन होगा। आप को ही पाण्डे जी का श्राद्ध करना होगा। कागज का भीषण संकट है, मूल्य बहुत चढ़ा है। प्रकाशक तो व्यापार करने बैठा है, उद्धार करने नहीं। अतः प्रकाशक का मिलना बहुत सम्भव नहीं प्रतीत होता। यदि श्री रामबहोरी शुक्ल, गोविन्द प्रसाद केजरीवाल, डॉक्टर ज्ञानवती त्रिवेदी, महेशचन्द गर्ग, उदय शंकर शास्त्री का आप को पूरा सहयोग मिलता है, तो बहुत अच्छा। पाण्डे जी का पर्याप्त साहित्य मेरे पास है, सभी नहीं है, पर प्रयत्नशील होने पर सुलभ हो सकेगा, ऐसा विश्वास है।

भाई, मैं ३० अगस्त को मर कर जिया हूं, अधिक क्या कहूं।"

पूज्य पाण्डेजी की प्रकाशित सम्पूर्ण कृतियों का संकलन मैं दो-दो बार कर चुका था। शोध और अध्ययन के नाम पर सारी सामग्री जाती रही --'समझेउँ नहिं तस बाल-पन, तब अति रहेउँ अचेत।' बाद में मुझे कितनी परेशानी और आर्थिक क्षति उठानी पड़ी—इसका रोना रोने से कोई लाभ नहीं और नहीं उसका कोई औचित्य ही है। अस्तु............

इस प्रकार डॉक्टर साहब ने मेरे पत्र का आनन-फनन उत्तर ही नहीं दिया, अपितु एक तरफ से उन्होंने कार्य सम्पादन का सम्पूर्ण दायित्व ही सम्हाल लिया। उपर्युक्त लोगों में श्री गोविन्द प्रसाद केजरीवाल के अतिरिक्त प्रत्येक ने सामग्री-संचयन में प्रभूत सहयोग किया। श्रीमती डॉक्टर ज्ञानवती जी का योगदान अप्रतिम था। केजरीवाल जी ने तो—'पाण्डे जी के हस्ताक्षर तक मेरे पास नहीं हैं, कृपया इस संबंध में पत्राचार न करें।'—प्रथम पत्र के ही उत्तर में लिखकर दायित्व और कर्त्तव्य से अवकाश ले लिया। डॉक्टर साहब से पत्राचार चलता रहा। २४ सितम्बर के पत्र से उनकी अस्वस्थता का समाचार प्राप्त हो गया था। मैंने ५ अक्टूबर के अपने पत्र में स्थिति से अवगत कराने का निवेदन किया। लौटती डाक से पत्रोत्तर मिला।

सुधवै
'प्रिय श्री गोवर्धन जी, वाराणसी
नमस्कार, ११-१०-७९

आपका ५ का पत्र मुझे कल प्रातःकाल मिला। मुझे २६-२७-२८ अगस्त को सायं ४ बजे हल्की हरारत हो जाती रही। २६ को गाजीपुर में प्रातः देर तक गंगा

नहा लिया था, सम्भवतः इसीलिए २६ की शाम को गाजीपुर से वाराणसी पहुँचने पर हरारत हो आयी, २७ की शाम वाराणसी से मिर्जापुर आया और आते ही हरारत हुई। २८ को मिरजापुर से घर आते ही हरारत हुई। २९ को बाकायदा बीमार हुआ। सबेरे ही बुखार आया। पर दोपहर तक ठीक हो गया। यह तो हुई बीमारी की साधारण भूमिका रही।

३० को प्रातः काल ३ वजे मेरी नींद टूटी तो क्या देखता हूँ कि सारा विस्तर भींग गया है, ओढ़ने की चादर भींग गयी है। धोती भींग गयी है, बनियाइन भींग गयी है। शरीर का सारा पानी पसीना बन कर निकल गया। शरीर एकदम ठंढा पड़ गया। बेचैनी बढ़ गयी। कमजोरी भी आ गयी। लगता था प्राण अब डूबा अब डूबा, सबेरे ५ बजे एक इंजेक्शन लगा। ३ मील दूर जंगीगंज अस्पताल गया। तीन बोतल ग्लूकोज का पानी चढ़ाया गया। नब्ज एवं नस मिलती ही नहीं थी। पैर की नस से पानी चढ़ाया गया। अपराह्न तीन बजे घर वापस आ गया। २ सितम्बर को पुनः अस्पताल गया। एक बोतल हेमासील चढ़ायी गयी। बीमारी वस्तुतः ३० को ही थी। समय पर उपचार हो जाने से प्राण बच गये।''

डॉक्टर साहब ने बीमारी और तकलीफ पर व्यक्त की गयी मेरी चिन्ता और अवगत कराने की वांछा के चलते व्योराक्रम के साथ एक लम्बा पत्र लिखा—आदि से लेकर अन्ततक का प्रसंग। किन्तु फिर वे मूल सन्दर्भ पर आ गये—

''मेरे पास साहित्य-सम्बन्धी, शोध-समीक्षा सम्बन्धी १० ग्रंथ हैं। केवल 'शूद्रक' और 'हिन्दी गद्य का निर्माण' नहीं हैं।

भाषा-सम्बन्धी ग्रन्थों में केवल निम्नांकित हैं—

१. कचहरी की भाषा और लिपि
२. बिहार में हिन्दुस्तानी
३. भाषा का प्रश्न
४. उर्दू का रहस्य
५. मुगल बादशाहों की हिन्दी
६. राष्ट्रभाषा पर विचार
७. कुर्आन में हिन्दी
८. नागरी का अभिशाप
९. उर्दू की जबान
१०. शासन में नागरी
११. उर्दू कब और कैसे बनी।

पाण्डेजी की २३ पुस्तकें हिन्दी में, १ उर्दू में, ८ अंग्रेजी में हैं। इन ३२ पुस्तकों में से २१ [हिन्दी १२, उर्दू १, अंग्रेजी ८] नहीं हैं।

सभा से 'हिन्दी वालो सावधान' नामक एक पोथी छपी है। रविशंकर शुक्ल के काल्पनिक नाम से। मुझे यह सूचना ९ अक्टूबर को प्रयाग में मिली। इसे सभा से लाना है। पं० राम वहोरी शुक्ल के पास पूरी फाइल है। वह मुझे उनके यहाँ से मिल जायेगी [यहाँ डॉ० साहब का आशय 'हिन्दी' पत्रिका से है।] वह मेरे अध्यापक रह चुके हैं। शायद कुछ पोथियाँ भी मिल जायें। पाण्डेजी के बहुत से असंग्रहीत लेख बिखरे पड़े हैं। उनका संकलन होना चाहिए।

मैं १४ से २४ तक प्रायः बाहर ही रहूँगा। फिर प्रयाग जाकर पं० रामबहोरी जी शुक्ल से मिलूँगा। उनसे कुछ अधिक सूचनाएँ मिल सकेंगी। सामग्री भी।"

इस प्रकार डॉक्टर साहब सामग्री-संचयन में जुट गये। मैंने उन्हें सूचित किया कि पांडे जी की ४५ पुस्तकें हैं, जिनमें 'राधा' अभी अप्रकाशित है और 'जन मन' की पाण्डुलिपि प्राप्त सूचनाओं के अनुसार केजरीवाल जी के पास होनी चाहिए। पर केजरीवाल महोदय पहले ही पत्र में बातचीत के सारे सिलसिले समाप्त कर चुके थे। दो-तीन पत्र फिर भी उन्हें लिखा, जो अनुत्तरित रह गये।

डॉक्टर गुप्त ने किस परिश्रम, लगन, ध्येयनिष्ठता और किन-किन झझावातों को झेलते हुए कार्य सम्पन्न किया, इसकी एक झलक इस पत्र से मिलती है--

सुघवै
वाराणसी
२२-११-७९

'प्रिय श्री गोवर्धन जी,
नमस्कार !

आपका १५ का पत्र १९ को मिला।

इधर मेरे परिवार में एक दुर्घटना हो गयी। मेरा डेढ़ वर्ष का एक पोता १९ को ही कबीरचौरा अस्पताल वाराणसी में मस्तिष्क ज्वर से दिवंगत हो गया। मेरे छोटे पुत्र ने २० तारीख को आकर सूचना दी।"

चाहे जैसे भी व्यवधान आयें, संकट पड़ें, डॉक्टर साहब चुप होकर बैठने वाले नहीं। अपने कृत्य और ध्येय के प्रति एकनिष्ठ समर्पण डॉ० गुप्त जैसा मैंने और किसी में नहीं देखा। इसी पत्र में आगे लिखते हैं--

"१३ नवम्बर को प्रयाग में पं० रामबहोरी जी शुक्ल से मिला। उनके यहाँ से ८ पुस्तकें लाया हूँ। उनके यहाँ चूनाकली का काम उस दिन चल रहा था, अतः हिन्दी की फाइल मिल नहीं सकी। पंडित जी ने कहा है, वे निकाल कर रखे रहेंगे। जब भी मैं प्रयाग आऊँगा, दे देंगे।

मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ और पढ़ने-लिखने में पूर्ववत् व्यस्त हो गया हूँ।"

आवश्यक प्रतीत हुआ कि एक बार सुधवै हो लिया जाय। उपलब्ध सामग्रियाँ देख-दिखा ली जाँय और डाक्टर साहब के साथ ही उनसे रू-ब-रू बातचीत भी की जाय। पौत्र के दिवंगत हो जाने के दुःखद समाचार ने भी सुधवै पहुँचने को जरूरी बताया। सो सुधवै किस प्रकार पहुँचा जा सकता है, के उत्तर में डाक्टर साहब ने लिखा—

"मेरे घर आने का सबसे बढ़िया मार्ग, वाराणसी से रोडवेज की एक बस है जो वाराणसी से सायं ४ वजे रमईपुर के लिए चलती है। रमईपुर मेरे घर से दो-तीन मील उत्तर एक छोटा-सा गांव है। सुधवै बस स्टेशन है। किराया पाँच रुपया है। बस यहाँ ७ बजे रात में पहुँचती है। बस स्टेशन उतरने पर दो मिनट का भी रास्ता नहीं है। पता आसानी से चल जायेगा। अच्छा है एक बार आप से भेंट हो जाय। पूर्व योजनानुसार काशी में भी भेंट हो सकती है।"

एक दम सीधी और सरल शब्दावली, न छद्म, न भाषायी आडम्बर, ठीक गुप्त जी और उनके व्यक्तित्व के अनुरूप।

"पाण्डे जी के राष्ट्रभाषा संबन्धी ग्रंथ पढ़ रहा हूँ। अभी तो सारी सामग्री ही नहीं एकत्र हो पायी है।"

उपलब्ध संपूर्ण सामग्री के साथ मैं सुधवै गया। गुप्त जी बाहर बरामदे में बैठे मकई का लावा खा रहे थे। साथ दे रहे थे उनके चिरंजीवी पौत्र 'माघ पंडित'। अण्डर-वियर पर तौलिया और सिली हुई बण्डी पहने हुए चारपायी पर बैठे हुए थे। अत्यन्त स्नेह-सम्मान और हार्दिकता से गुप्त जी ने मेरा स्वागत किया—आत्मविभोर हो जाने की स्थिति में। जैसे बहुत दिनों से बिछड़ा कोई आत्मीय यकायक मिल जाय; जैसे चिर प्रतीक्षित बन्धु अकस्मात उपलब्ध हो गया हो।

"नहीं नहीं, ऐसा न करें पाण्डेजी।" कहते हुए पैर छूने को बढ़े मेरे दोनों हाथ थाम लेते हैं। 'अहोभाग्य········अहोभाग्य। कहें, यात्रा में विशेष कष्ट तो नहीं हुआ? पिता श्री कैसे हैं? और सब?'

आतिथ्य-सत्कार में कोई कमी नहीं। बातें ही बातें······कुल-परिवार की, साहित्य और समाज की। संकोच के साथ गुप्त जी प्रश्न करते हैं—'भोजन कैसे होगा पाण्डेजी। बनायेंगे कि अन्दर कर लेंगे। पूड़ी तो चल सकती है? नहीं जैसा आप उचित समझें।'

मैं स्वीकार करता हूँ—'कोई औपचारिकता नहीं, डॉ० साहब! भोजन अन्दर ही पाऊँगा। जो भी रहे, चल जायेगा। वैसे भरसक पूड़ी से बचना चाहता हूँ।'

जानता हूँ गुप्त जी की आर्थिक स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं। भरे-पूरे परिवार की समूची जिम्मेदारी और आय का कोई ठोस आधार नहीं। मात्र अल्प पेंशन का सहारा। पुस्तकों की रायल्टी तो खैर क्या होगी ! कितनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। हिन्दी का कोई लेखक कलम के बल पर जीवित नहीं रह सकता, प्रकाशक की तोंद दिनानुदिन भले ही कुछ और मोटी होती जाय। वर्तमान में तो ओर भी विडम्बनापूर्ण स्थिति है। प्रकाशक या तो बड़े [नामधर] लेखकों के पीछे भागता है या फिर प्रोफेसरों और अफसरों के। उसे तो बस व्यवसाय करना है। और लेखक का शोषण तो उसके व्यवसाय की खास मर्यादा है। यहाँ लेखक से प्रकाशक कृति के विषय में नहीं 'सहयोग' के विषय में बात करता है। स्वाभिमानी, न बिक सकने वाले, न समझौता कर सकने वाले रचनाकार का आर्थिक पहलू तो सदैव ही कमजोर रहता है। श्रीयुत् अमृतलाल जी नागर ने 'सारिका' में कहा था--'मेरी एक तमन्ना जरूर है, एक दिन अपनी किताबों की रॉयल्टी पर ही निर्वाह करने लायक बन जाऊँ। जी चाहने पर किताबें खरीद सकं, घूम सकूं।' यह स्थिति और आकांक्षा है हिन्दी के आज के सबसे बड़े उपन्यासकार की, जिसका एक बहुत बड़ा पाठकवर्ग है, जिसकी पुस्तकें तमाम विश्व-विद्यालयों के पाठ्यक्रम की शोभा बढ़ा रही हैं। फिर गुप्त जी जैसे समीक्षकों, शोध-कर्ताओं की स्थिति की कल्पना सहज है। नागर जी के ही शब्दों में कहें तो—'बोनस छोड़कर खरो मेहनत के पूरे पैसे भी नहीं प्राप्त हुए।'

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में--'हिन्दी लेखक बोनस नहीं चाहता, महज अपनी मेहनत की मजदूरी चाहता है, इंसाफ और ईमान से दी हुई मजदूरी। क्या ही अच्छा हो, बड़े-बड़े प्रकाशक हर साल यह भी प्रकाशित कर दिया करें कि अपने लेखकों को रायल्टी के हिसाब में उन्होंने क्या दिया। शायद हिन्दी का विशाल बाजार देखते हुए उन्हें कुछ शर्म आये।'

इन्हीं सब वास्तविकताओं के प्रकाश में मैंने डॉ० साहब से दबी जुबान और संकोच के साथ कुछ आर्थिक सहयोग की बात उठानी चाही। गुप्त जी ने डपट दिया—"भाई पाण्डे जी ! साहित्य अपना व्यवसाय नहीं। आचार्य श्री के प्रति अपना भी कुछ कर्त्तव्य है। हिन्दी के लिये जितना कुछ उन्होंने किया है, जिन स्थितियों में किया है, कोई क्या करेगा। हिन्दी का पुजारी होने के नाते मैं अपने धर्म और कर्त्तव्य का सम्यक निर्वाहन कर सकूं, बहुत है। इस पुण्य काम में सहयोग कर, मैं एक साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी, आचार्य पांडे और अपने दायित्व, इन सबसे उऋण हो सकूंगा। आप ने यहाँ पैसे का सवाल खड़ा कर उचित नहीं किया। करना तो सब आप ही को है। बस, दायित्व का निर्वाह भर कीजिए।"

इस प्रकार बिना कुछ प्राप्ति की प्रत्याशा किये डॉ० साहब जी-जान से सामग्री-संचयन और कार्य को पूर्णता देने हेतु जुट गये। आज काशी, तो कल प्रयाग............

हफ्ते-दस दिन तक की यात्रा। समय और साधन का प्रभूत खर्च, आय का कोई श्रोत नहीं। ऊपर से नानाविध पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी। लेकिन जब एक बार दायित्व स्वीकार लिया, जिम्मेदारी ओढ़ ली, तब उसका समुचित निर्वाहन भी होना ही चाहिए।

अपने १६-५-८० के पत्र में लिखते हैं—

प्रिय श्री गोबर्धन जी ! सुधवै

नमस्कार। वाराणसी

६ का पत्र १३ को मिला। मैं कार्यरत हूँ। 'हिन्दी' को फाइलों से टिप्पणियाँ उतार रहा हूँ। दो बार काशी गया। पहली यात्रा अप्रैल में हुई। उस अवसर पर वर्ष ३ की पूरी फाइल और वर्ष ४ के एक संयुक्तांक (१ से ९ तक) पर काम हुआ। वर्ष ४ के अंक १०, ११, १२ का कुछ पता नहीं चल रहा है कि निकले भी कि नहीं। वर्ष ५ के प्रथम दो अंक प्रयाग से पं० रामबहोरी शुक्ल के यहाँ से लाया था, उस पर कार्य हो गया है। सभा के पुस्तकालय में वर्ष ५ के केवल अंक ३, ५ के होने की सूचना है, पर वे अभी नहीं मिले।

अभी-अभी मैं ७ मई को वाराणसी गया था। ११ को लौटा हूँ। इस बीच वर्ष २ का सारा काम कर लिया। जून में किसी समय पुनः एक सप्ताह के लिए वाराणसी जाऊँगा और पहले वर्ष की फाइल पर कार्य पूर्ण कर लूँगा।

भाषा वाली जिल्द में मैं निम्नांकित रूपरेखा देना चाहता हूँ—

१. ग्रंथ—१. कचहरी की भाषा और लिपि २. बिहार में हिन्दुस्तानी
३. मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान ४. मुगल बादशाहों की हिन्दी
५. कुर्आन में हिन्दी ६. नागरी का अभिशाप
७. मुसलमान ८. हिन्दी की हिमायत क्यों
९. शासन में नागरी १०. हिन्दी गद्य का निर्माण

२. लेख संग्रह—१. भाषा का प्रश्न [दसों लेख]
२. उर्दू का रहस्य [केवल ९ लेख, प्रथम लेख को छोड़कर]
३. राष्ट्रभाषा पर विचार [प्रथम संस्करण, ६-१३; १५-१८ लेख। द्वितीय संस्करण लेख १८]
४. नागरी का अभिशाप [पृ० ७३-७९ नागरी और मुसलमान]
५. साहित्य संदीपनी [लेख १६, १७, १८ तीन लेख]
६. एकता [सात लेख ७, ३०--३५]
७. 'हिन्दी' में प्रकाशित, पर किसी ग्रंथ में असंकलित २, लेख।

३. पत्रक—१. उर्दू का रहस्य — २. उर्दू की जबान
३. उर्दू की हकीकत क्या है। — ४. नागरी ही क्यों
५. राष्ट्रभाषा की परिभाषा — ६. हिन्दुस्तानी से सावधान
७. हिन्दी और हिन्दुस्तानी का भ्रम — ८. उर्दू कब और कैसे बनी
९. हिन्दुस्तानी का भँवजाल — १०. मौलाना आजाद की हिन्दुस्तानी
११. दक्षिण भारत का प्रश्न।

४. भाषण—१. राष्ट्रभाषा पर विचार—लेख २-१
२. हैदराबाद का अध्यक्षीय भाषण
३. राष्ट्रभाषा पर विचार—लेख २१-२२

५. अन्यों के लेख पाण्डेजी की टिप्पणियों सहित—६ लेख
१. राष्ट्रभाषा पर विचार—लेख ३, ४, ५, १४
२. 'हिन्दी' वर्ष ३/४, वर्ष ५/१।

६. 'हिन्दी' की टिप्पणियाँ
७. अंग्रेजी में प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री"

अंग्रेजी में आचार्य पांडे जी की प्रकाशित ८ पुस्तकों के अतिरिक्त अप्रकाशित ४५ लेख भी जो मेरे पास हैं को ध्यान में रख कर डाक्टर साहब आगे लिखते हैं—

"हो सकता है ग्रंथ बहुत बड़ा हो जाय। ऐसी हालत में दो जिल्दें की जा सकती हैं। प्रथम जिल्द में १० ग्रंथ और ११ पत्रक हों। दूसरे में अन्य सामगी। मैं एक माह के भीतर भूमिका प्रस्तुत कर दूंगा। जून के अन्त तक समस्त ग्रंथावली। आप मुद्रण की व्यवस्था करें। काशी में हो तो बहुत अच्छा। आज कल 'मुल्क की जबान' का हिन्दी रूपान्तरण कर रहा हूँ और टिप्पणियाँ दे रहा हूँ। आशा है आप स्वस्थ और सानन्द हैं। आप की योजना सफल हो-प्रभु से यही प्रार्थना है। अपने पिता-श्री को मेरा प्रणाम निवेदित करें।"

काम चलता रहा। डाक्टर साहब प्राण-पण से जुटे रहे। दौड़-धूप लगी रही। किन्तु पांडे जी के असंग्रही व्यक्तित्व और उपेक्षा भाव से उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित समस्त रचनाओं का उपलब्ध हो जाना सहज कार्य नहीं था। तमाम भागमभाग के पश्चात् आज तक भी यह कार्य सम्पन्न न हो सका। पांडे जी के जीवन काल में ही उनकी कुछ रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ कुछ तथाकथित हितैषियों और शुभेच्छुओं की महती कृपा के चलते गुम हो गयीं। किसी सुयोग्य सहयोगी के अभाव ने या कि स्वयं पाण्डेय जी के निर्लिप्त भाव ने खुद ही उनसे लेखों-पुस्तकों का संग्रह करके नहीं रखवाया। हो सकता है उनके संग्रह से ही लोग उठा ले गये हों। वैसे यह दोष तो अपने साथ भी है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ, लेख, कविताओं की बात

कौन कहे, स्वयं मेरी पुस्तकें तक मेरे पास नहीं टिकी रह सकीं । जो ही आया, उठा ले गया । क्या इसे खानदानी दोष माना जाय ? वस्तुतः सामग्री अभाव ने काफी परेशान किया—समय, श्रम और अर्थ तीनों दृष्टियों से ।

इसी स्थिति से रू-ब-रू होता डाक्टर साहब का एक पत्र देखें—

सुधवै
वाराणसी
६।६।८०

"प्रिय श्री पारसनाथ जी !
नमस्कार ।

जो भी सामग्री मेरे पास थी उस पर कार्य सम्पन्न हो गया । मैं ११ मई को वाराणसी आ रहा हूं और १५ तक रहूँगा । 'हिन्दी के प्रथम वर्ष की फाइल पर कार्य रत होऊँगा । वर्ष २, ३, ४पर काम हो चुका है । पांचवें वर्ष में भी कुछ अंक १-२ पर काम हो चुका है । शेष अंक ढूढूंगा । अभी चार ग्रंथ खोजने हैं—

१. राष्ट्र भाषा की परिभाषा
२. नेशनल लैंग्वेज फार इण्डिया
३. नागरी ए लैंग्वेज
४. हिन्दुस्तानी इन इट्स ट्रकलर

काशी आने पर इनकी खोज करूँगा । आपकी पुस्तकें और सारी सामग्री लाऊँगा । आप १२, १३, १४ में से किसी दिन नागरी प्रचारिणी सभा में पुस्तकालय या सहायक सचिव श्री वाजपेयी जी के कक्ष में मिलें ।"

समय से पत्र न मिलने या कि अन्यान्य पारिवारिक जिम्मेदारियों में व्यस्त होने के नाते मैं बनारस न पहुँच सका । लौटते ही डा० साहब ने लिखा—

"मैंने एक पत्र दिया था, क्या वह आप को नहीं मिला ? पत्रोत्तर न पाने से मैं ऐसा सोच रहा हूँ । मैंने अपने पत्र में लिखा था कि मैं ११ जून को वाराणसी पहुँच रहा हूँ और १५ तक रहूँगा । आप काशी नागरी प्रचारिणी सभा में मुझसे मिल कर समस्त सामग्री ले लें । जो भी सामग्री मेरे पास थी, काम पूरा कर लिया है । अभी इतनी सामग्री और चाहिए । [यहाँ उपर्युक्त अनुपलब्ध चार पुस्तकों की चर्चा है ।] इनमें से पहली पोथी आप ने दी थी, पर वह ऊपर से दीमक लगी होने से खण्डित है । दूसरी पोथी ना० प्र० सभा में है । खोज कर रहा हूँ । आशा है मिल जायेगी । तीसरी-चौथी की कोई खोज-खबर अभी नहीं मिली है । वैसे काशी में कई लोगों से इस सम्बन्ध में कहा है । सम्मेलन में भी ये ग्रंथ नहीं हैं । 'हिन्दी' वर्ष १ के अंक ४-१२ पर अभी काम करना है । इसके लिए सभा में ५ दिन रहना आवश्यक है । जुलाई के अन्त में मैं स्वयं आजमगढ़ आऊँगा । सारी सामग्री साथ लाऊँगा ।"

उपर्युक्त चार पुस्तकों की तलाश जारी थी। सारा काम होकर भी न होने के बराबर साबित हो रहा था। हम दोनों ही परेशान और प्रयत्नशील थे—अपने-अपने स्तर पर। पुस्तकें, उपलब्ध नहीं हो पा रही थीं। समय व्यर्थ जा रहा था और कार्य था कि रुका पड़ा था। प्रयाग में पं० उदयनारायण तिवारी जी से गुप्त जी की भेंट हुई। उनसे ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी की तीनों पुस्तकें उनके पास हैं और वे उपलब्ध करा देंगे। किन्तु सुयोग नहीं बैठा। ७।५।८१ के पत्र में डॉक्टर साहब ने लिखा—

"कार्यरत रहिए। मैं भी कार्यरत हूं। कोई नई प्रगति हो तो सूचना दें। डाक्टर उदयनारायण तिवारी जी से पुस्तकें अभी नहीं प्राप्त हुईं। वे उनके पास हैं, ऐसा उन्होंने मिलने पर गत बार कहा था।"

अब तक आते जाते आपसी सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ हो चुके थे कि घर-परिवार की सामान्य से सामान्य सूचना का भी आदान-प्रदान होने लगा था, बिलकुल ही अपनापे के साथ। येनकेन प्रकारेण सारी सामग्री उपलब्ध हो गयी और कार्य भी सकुशल सम्पन्न हो गया। रह गया 'मुल्क की ज़बान और फाजिल मुसलमान' का लिप्यन्तरण। १२।१२।८० के पत्र में डाक्टर साहब ने सूचित किया—

"मैं दो नवम्बर को आपकी प्रतीक्षा आजमगढ़ में करता रहा, पर आप आये नहीं। 'मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान' की प्रति एवं उसका लिप्यन्तरण मैं बाबू कन्हैया लाल वकील के घर दिनेश को दे आया था। आशा करता हूँ, आजमगढ़ जाने पर आप ने उसे ले लिया होगा। प्राप्ति की सूचना यथाशीघ्र दें। जो कुछ प्रगति हुई हो, उससे भी अवगत करायें।"

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रंथावली तो नहीं, हाँ सबसे श्रमपूर्ण [भाषा सम्बन्धी दोनों खण्डों का] कार्य संपन्न हो गया। साधना, श्रम, और अर्थ तीनो ही डा० गुप्त जी का था। मैं तो मात्र निमित्त रहा।

पर मूल समस्या उसके प्रकाशन की है। प्रकाशक तैयार हो-होकर भी मुकर जाते हैं। इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, दिल्ली के अनेक प्रकाशकों से बातचीत, पत्र-व्यवहार का कोई संतोषप्रद परिणाम नहीं आया। सारी उठापटक, दौड़-धूप अकारथ गयी। भारत सरकार के तत्कालीन रेलवेमन्त्री और स्वर्गीय आचार्य जी के मित्र माननीय कमलापति त्रिपाठी जी का 'तत्काल मिलो' की आज्ञा और आश्वासन भरा उत्साह-वर्धक पत्र पाकर लगा कि अब कार्य की पूर्णता में संदेह नहीं। मैं दो-दो बार दिल्ली गया। पूज्य त्रिपाठी जी से सारी योजना पर गंभीरता पूर्वक विचार-विमर्श हुआ। निर्देशानुसार पूरी योजना का प्रारूप अनेक जगहों पर प्रस्तुत किया। बाद में भी इसी संदर्भ में दिल्ली तक चक्कर मारने का सुयोग-दुर्योग झेलना-सहना पड़ा। परिणाम वही, 'ढाक के तीन पात'।

उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान का दरवाजा भी खटखटाया गया। उपाध्यक्ष डा० शिवमंगल सिंह जी 'सुमन' ने मुझे आश्वस्त भी किया, बात इनसे श्रद्धेया ज्ञानवती जी त्रिवेदी, डा० गुप्त आदि से भी हुई, किन्तु परिणाम न कुछ निकला था, न निकला। कितनी बड़ी विसंगति है! जिस रचनाकार ने हिन्दी-हित-साधना में अपना सर्वस्व होम दिया, जिसने मात्र हिन्दी के लिए ही स्वाँस-स्वाँस जिया, उसीकी हिन्दी संस्थान और हिन्दी के प्रकाशनों से, तिजोरी भरने वाले प्रकाशकों से, ऐसी उपेक्षा! कौन नहीं जानता कि यदि हिन्दी को पूज्य पांडे जी जैसा संकल्पनिष्ठ वृहस्पति न मिला होता, तो आज उसका इतिहास भी कुछ दूसरा ही होता।

इसी क्रम में मैं अपने जीवन की भूलों में से एक बड़ी भूल कर बैठा, जिसके कुपरिणाम-स्वरूप संपूर्ण सामग्री से हाथ धो बैठा हूँ। ग्रंथावली-रूप गज श्रद्धेयवर श्री नारायण चतुर्वेदी रूपी ऐसे ग्राह से ग्रस लिया गया है, जिसका उद्धार किसी प्रकार भी संभव नहीं दीखता।

हुआ कुछ ऐसा कि उत्तर प्रदेश सरकार ने उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने का विधेयक पारित किया, जिसका प्रतिवाद किया, हिन्दी के हितैषी तत्कालीन कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के वरिष्ठतम सदस्य प्रोफेसर वासुदेव सिंह ने। विधेयक के विरोध में इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक रिट भी दाखिल की गयी—श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी जी के द्वारा या नेतृत्व में। पक्ष की पुष्टि और वैचारिक आधार के लिए स्व० आचार्य पाण्डे जी की भाषा-सम्बन्धी पुस्तकें एक मात्र सबल साधन थीं। उक्त के लिए श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी, प्रोफेसर वासुदेव सिंह और आदरणीय चतुर्वेदी जी के पत्र मुझे प्राप्त हुए—सहयोग की आकांक्षा से। मैंने लखनऊ की यात्रा की। आदरणीया ज्ञानवती जी ने सहयोग करने का आदेश दिया। माननीय सिंह साहब और चतुर्वेदी जी से वार्ता हुई। निष्कर्ष स्वरूप समस्त सामग्री चतुर्वेदी जी के यहाँ पहुँचा दी गयी। तय हुआ था कि हिन्दी संस्थान या अन्यत्र कहीं से भी ग्रंथावली के दोनों खण्ड अविलम्ब प्रकाशित करा दिये जायँ। शेष सामग्री के लिए सुस्थिर होने पर उद्यमशील हुआ जाय। खैर.........

राष्ट्रभाषा सम्बंधी कुछ पुस्तकें और पैंफ्लेट तो मुझे अत्यन्त भागम्भाग के उपरान्त प्राप्त हुए, किन्तु डा० गुप्त द्वारा संपादित सामग्री और दोनों खण्डों की अलग-अलग विस्तृत भूमिकाएँ कुछ पैंफ्लेट्स के साथ आजतक श्री चतुर्वेदी जी के यहाँ पड़ी हैं। मुझ जैसे साधन-सुविधा-विहीन आदमी के लिए लखनऊ तक की बार-बार की यात्रा कितनी महँगी हो सकती है, कल्पना सहज है। फिर भी विगत ३-४ वर्षों में मैंने कुछ नहीं तो २०–२५ यात्राएँ तो अवश्य ही की होंगी। पत्राचार अलग से। हर बार श्री चतुर्वेदी जी समयाभाव का बहाना बना अगली यात्रा पर अवश्य दे देने का आश्वासन थमा देते हैं या फिर एक–दो महीने पीछे की कोई तिथि निश्चित कर देते हैं। पहले तो पत्रों का उत्तर यदाकदा दे भी दिया करते थे, किन्तु अब वे भी

नसीब नहीं होते । जानता हूं, इसमें सर्वाधिक दोष उनके वार्धक्य का है, जिसके चलते सामग्री नहीं तलाश कर पा रहे होंगे, फिर भी उसे दाब रखने का कुछ औचित्य और प्रयोजन समझ में नहीं आता । आगे राम जाने । अस्तु ।

नसीरुद्दीनपुर
सठियांव, आजमगढ़.

५३. छंद-पारखी डॉ० गुप्त

[डॉ० विद्याधर मिश्र]

डा० गुप्त छन्दों के परम पारखी हैं । इनका छन्द-ज्ञान जब वे हाईस्कूल में पढ़ते थे, तभी परिपक्व हो गया था । वे प्राचीन काव्यों के प्रवीण सम्पादक हैं । उनका कहना है कि बिना छन्दों का ठीक-ठीक ज्ञान हुए, बिना उनके सस्वर पाठ का अभ्यास हुए, प्राचीन काव्यों का कुशल सम्पादन संभव नहीं । छन्दों के सस्वर पाठ से स्वतः ज्ञात हो जाता है कि उनकी गति ठीक है या नहीं । साथ ही यति का भी ठीक-ठीक निर्धारण हो जाता है, जिससे अर्थ सुकर हो जाता है ।

डा० गुप्त ने विभिन्न काव्यों के सम्बन्ध में छन्द संबंधी ए चौदह लेख लिखे हैं—

१. सन्देश रासक का छन्दोविधान ।
२. बीसलदेव रासो की छन्द-समस्या ।
३. सूरसागर का छन्दोविधान (एक लघु ग्रंथ)
४. सूरसागर छन्द-दोष और पाठ-शोधन : एक पर्यालोचन ।
५. सूर के कवित्त ।
६. कवित्तों के अन्तःतुक और उनका अर्थ तथा यति पर प्रभाव ।
७. बालचन्द बत्तीसी का छन्द-निर्णय ।
८. कवि श्याम सेवक के गद्यवत पद्य-लेखन का एक अभिनव प्रयोग ।
९. छन्द की तलाश में राष्ट्रकवि ।
१०. मैथिलीशरण गुप्त और अतुकान्त छन्द ।
११. कामायनी के छन्द ।
१२. नूरजहाँ के छन्द ।
१३. विक्रमादित्य के छन्द ।
१४. निराला के मुक्त छन्द और उनका रचना-विधान ।

इनमें से निराला के मुक्त छन्द वाला लेख तो अत्यन्त प्रशंसित हुआ है। यह पहले रसवन्ती के निराला-विशेषांक में प्रकाशित हुआ था। फिर निराला सम्बन्धी निम्नांकित ग्रंथों में इसका संकलन हुआ—

१. निराला : व्यक्तित्व और कर्तृत्व—डा० प्रेमनारायण टंडन
२. निराला साहित्य सन्दर्भ—साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
३. निराला स्मृति ग्रंथ—सम्पादक ओंकार शरद।

कवित्तों के अन्तःतुक वाला छठाँ निबन्ध तो रीतिकालीन कवित्त ग्रंन्थों के सम्पादन में परमोपयोगी है। १६, १५ या ८, ८, ८, ७ वर्णों पर विराम वाली कवित्त की परंपरा सामान्यतया ठीक हैं। अब ६, ८, ८, ९ वाली परम्परा भी किन्हीं-किन्हीं कवित्तों में मान्य करनी होगी। बिना इस मान्यता के न तो छन्द का प्रवाह ठीक होगा, न अर्थ ही सहज ग्राह्य होगा।

बीसलदेव रासो की छन्द-समस्या वाला लेख प्रतिपादित करता है कि छन्द की परख करके इसके पुनः सम्पादन की आवश्यकता है।

मैंने दो वर्षों तक पूजा की छुट्टियों में बीस-बीस दिन तक डा० गुप्त के घर पर जाकर 'राम प्रताप' महाकाव्य का प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर सम्पादन किया था। उस समय मैंने डा० गुप्त का छंदःज्ञान देखा परखा। वे सरमेट्टा लिखे हुए छंदों को, अपने छन्दःज्ञान से, बिना किसी पूर्व अभ्यास के, सस्वर पढ़ते जाते थे, दसरा मसरा से स्वतः बचते जाते थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता था। उनका कहना था कि छन्दः प्रवाह 'दसरा मसरा' नहीं होने देता।

—हिन्दी विभाग
बर्दवान विश्वविद्यालय

५४. निःस्पृह साहित्य-साधक डा० गुप्त

[डा० श्रीपाल सिंह 'क्षेम']

हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखन-कार्य में डा० गुप्त की गहरी रुचि रही है। इसीलिए उन्होंने ८ भागों में हिन्दी कविता का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया है, जिसके ५ भाग लिखे जा चुके हैं। इतिहास-लेखन से आगे जाकर, उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहासों का भी एक प्रामाणिक इतिहास हिन्दी जगत को प्रदान किया है। अंग्रेजी और हिन्दी के सभी मानक इतिहास ग्रंथों का उन्होंने पित्तामार मन्थन किया,

उनकी पुंजित सामग्रियों के अन्तःस्पर्शी विवेचन में वर्षों तक अपना अहर्निश श्रम-स्वाध्याय आहुत किया। उनकी इतिहास-विषयक यह ग्रन्थना, येन केन प्रकारेण सहज प्राप्त सामग्री का भाषान्तर या किसी का अनुकरण नहीं, प्रत्युत साद्यन्त एक समग्र चिंतन और सद्ग्रंथन का मौलिक प्रतिफलन रहा है। उन्होंने इतिहास-लेखन की विविध-दृष्टियों और उसमें गृहीत सामग्रियों का पुनश्चिंतन तो किया ही, उनकी यत्र तत्र प्राप्त दरारों और अन्तरालों में भी झाँका। इस बीच उन्हें जहाँ से भी अभुक्त और प्रामाणिक सूत्र उपलब्ध हुए, उन्हें अपने विचार-पट्ट में संग्रथित किया। विभिन्न इतिहास लेखकों की स्थिति परिस्थिति का आकलन करते हुए, उनकी सीमाओं और बाधाओं का सम्यक विश्लेषण किया। वस्तुतः इतिहास के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि, उनकी अनुसंधायकता का मेरुदण्ड रही है। हिन्दी में विश्वविद्यालयीन शोध कार्यों में अनुसंधान की अपेक्षा, प्राप्त साहित्य की व्याख्या-विवेचना पर ही अधिक बल दिया जाता रहा है, अथवा उसे अपेक्षाकृत सरल समझकर अधिक अपनाया गया है। अप्राप्त अथवा अप्राप्य कृतियों की खोज, उनके सम्पादन, पाठ-शोध आदि (ऐतिहासिकता की दृष्टि से) डी० फिल्०, पी-एच० डी० और आए दिन डी० लिट्० की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध कार्यों में अब बहुत कम ही सम्भव हो पा रहे हैं।

डा० गुप्त ने बहती गंगा में हाथ धोने जैसा कार्य हाथ में नहीं लिया। उन्होंने सदैव उसी विषय को अपने अध्यवसाय और तप का क्षेत्र चुना, जहाँ जीविका हेतु शोधोपाधि के अभ्यर्थी नहीं जाना चाहते और जिससे अधिकांश शोध-निर्देशक भी कतराते रहते हैं। जिसे प्रायः श्रम और सुविधा की दृष्टि से टाला जाता रहा है, डा० गुप्त वहीं अपने श्रम को सार्थक करने का संकल्प लेते रहे हैं।

उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहासों के इतिहास-लेखन को लिया। शिव सिंह सरोज सदैव चर्चित रहा है। उसके सन्दर्भ से लोग अपने विचारों का पोषण करते रहे हैं। पर उनके पूर्व स्यात् ही किसीने उसके शोधन, संस्कारण और पाठालोचन को अपनी लेखकीय साधना का लक्ष्य बनाया हो। उन्होंने उसके सूत्रों और संकेतों की भी विचार-पूर्ण छान-बीन की। उसमें आये नामित कवियों और साक्ष्यों-उदाहरणों का भी तर्क सम्मत विवेचन करते हुए, उन्होंने अपनी मूल्यवान टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीं। परवर्ती इतिहास लेखकों के मताभिमतों पर भी युक्ति-युक्त प्रकाश-क्षेप किया। चाहे नागरी प्रचारिणी सभा काशी की संगृहीत खोज सामग्री हो या मिश्रबन्धुओं के मिश्रबन्धु-विनोद एवं हिन्दी नवरत्न जैसे आरम्भिक आधार ग्रंथों द्वारा सुलभ कराई गई सामग्री अथवा आचार्य शुक्ल के इतिहास के साक्ष्य या इतिहास सम्बन्धी परवर्ती विद्वानों के अभिमत हों--सब पर उन्होंने निष्पक्ष और निर्भीक भाव से गम्भीर विचार किया और उन्हें जो तथ्यपूर्ण, तर्क-सम्मत एवं समीचीन लगा, उसे हिन्दी संसार के समक्ष रखने में न आलस्य किया, और न संकोच ही। डा० गुप्त समग्रता, पूर्णता और यथा-

शक्य अन्तिमता के साथ कार्य करने के पक्षधर रहे हैं। ग्रन्थ-लेखन के लिए लेखन उन्होंने कभी भी उचित और अपने लिए मर्यादित नहीं समझा। वे गुप्त को गुप्त रखने वाले 'गुप्त' नहीं, वरन् जहाँ तक समय और साधन की उपलब्धता में सम्भव हुआ, उन्होंने गुप्त को प्रकाशित ही किया। तुलन-संतुलन में चूक को वे लेखकीय असत्यता मानते प्रतीत हुए हैं।

कुछ ऐसे विद्वान विचारक भी होते हैं, जो ऐसी सामग्री या ऐसे अभिमत को अधिक महत्व दे बैठते हैं, जो आपाततः मौलिक और सबसे अलग-अलग लगे। कुछ अप्रासंगिक को अयुक्त विस्तार देकर, ग्रंथ के पृष्ठ-विस्तार में भी बह जाते हैं या कुछ-एक सूत्रों की नव स्थापना के लिए ही ग्रंथ-लेखन में संलग्न होते हैं। डा० गुप्त उनसे सर्वथा भिन्न लेखन में विश्वास करते रहे हैं। यद्यपि जितना पुष्कल और सविस्तर लेखन उन्होंने किया है, वह सापेक्षतः बहुतों के लिए सम्भव नहीं रहा है, किन्तु उनका समग्र लेखन सर्वथा सार्थक, उद्देश्य-पूर्ण और लक्ष्य-बद्ध ही रहा है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता और प्रामणिकता यही रही है कि उन्हें यह भली-भाँति ज्ञात रहा है कि उनकी अपनी मेधा, प्रतिभा और मनीषा का कहाँ सर्वाधिक उपयोग रहा है। सपर्याय या भावुक लेखन से वे जीवन भर दूर रहे हैं। उनके समक्ष अपनी महत्ता का प्रतिपादन उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा है, जितना हिन्दी-भारती और उसके भांडार के उन कक्षों की सम्पन्नता, जहाँ सम्यक प्रकाश किन्हीं कारणों से नहीं पड़ सका है अथवा जिसके उज्जागरण की ओर हिन्दी विद्वानों और शोधकों की दृष्टि कम गयी है। उनकी लेखनी और मनीषा उन्हीं स्थलों को ओर आकृष्ट रही है, जिसे पित्त-मारक कार्य समझ कर सभी सुविधा से नहीं अपनाना चाहते रहे। अपनी इसी परि-निष्ठित रुचि अभिरुचि के चलते वे इतिहास-लेखन की प्रक्रिया और उसके दिशा-संधान की ओर अभिमुख हुए। उन्होंने उन्हीं कार्यों को हाथ में लिया, जहाँ अन्य साहित्यों के समक्ष हिन्दी को प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उनके अनुसंधान और लेखन का पथ इस अर्थ में अ-सहज एवं अ-सुविधा-जनक ही कहा जायेगा। अपने यावत लेखन में गुप्त जी ने अपनी सुविधा को अपेक्षा अन्यों की अ-सुविधा पर ही अधिक ध्यान दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास पर न जाने कितने विद्वानों समीक्षकों के बहु-संख्य ग्रंथ सामने आ चुके हैं, पर इस तथ्य की खोज पर कितने लोगों का ध्यान गया कि जिस प्रकार अनेक सूरदास हुए हैं, उसी प्रकार कई कई तुलसी भी हुए हैं। डा० गुप्त ने 'तुलसी और और तुलसी' में तुलसी नामधारी कवियों की खोज की है। केवल सामान्य संकेत देकर ही वे मौन नहीं रहे। उनके पूर्वापर काल, स्थान और काव्य-सामग्री की भी पूरी पहचान निर्धारित की। हम बचपन से भजनों की अनेक छोटी मोटी पुस्तिकाएँ पढ़ते रहे हैं, जिनमें अनेक भजन हैं, जिनमें तुलसी की कवि छाप तो आयी है, पर वे

भजन गोस्वामी तुलसीदास के किसी प्रामाणिक साहित्य संकलन में संगृहीत नहीं मिलते। अन्ततः वे भजन किस तुलसीदास के है ? क्या वे गोस्वामी तुलसीदास से भिन्न किसी अन्य तुलसी के रहे हैं या वे भजन गोस्वामी तुलसी दास के ही हैं, जो छूट गये हैं और वे यदि काव्य-गुणात्मकता में गोस्वामी तुलसी दास की रचनाओं से हलके पड़ते हैं तो क्या गोस्वामी जी ने उन्हें अपने आरम्भिक कवि जीवन में लिखे थे आदि ऐसे अनेक प्रश्न स्वाभाविक हैं। डा० गुप्त ने इस पर गहराई से विचार किया। विभिन्न सामग्रियों को एकत्र कर उन पर गम्भीर मंथन किया, तो यह तथ्य सामने उभर कर आया कि कुल सात तुलसी हुए हैं और उनमें वाराणसी में ही रहने वाले तथा लगभग उनके निकट कालीन एक और तुलसी भी यथार्थतः रहे हैं, जो बहुत कुछ गोस्वामी जी की छाया पर ही भजन लिखा करते थे और वे भजन पर्याप्त रूप से लोक प्रचलित भी हुए। डा० गुप्त ने उन्हें इसीलिए पहले 'छाया-तुलसी' नाम से प्रकाशित किया था। तुलसी-खोज की इस प्रक्रिया में गोस्वामी तुलसीदास से सम्बद्ध अनेक किंवदन्तियों, जनश्रुतियों और इतिहास-ग्रंथों में उल्लिखित साक्ष्यों पर भी मार्मिक प्रकाश पड़ा है—यथा टोडर और उनके परिवार से गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध, मैत्री तथा उनके मृत्यु-दिन पर उक्त परिवार द्वारा आज भी ब्राह्मण को सीधा दान आदि प्रथा का साक्ष्य आदि अनेक भ्रान्तियाँ निर्मूल हुई हैं।

डा० गुप्त ने अपनी एतत्परक साहित्यिक यात्राओं के क्रम में, गोस्वामी जी की कृतियों और विशेषतः रामचरितमानस की चौपाइयों में आये ऐसे अनेक शब्दों के अर्थ-प्रयोग भी अभिज्ञात किये हैं, जो टीकाकारों द्वारा प्रयुज्य-प्रयोज्य हुए हैं। 'प्रकृत' कार्य के प्रति पूर्ण दत्त-चित्तता, उसकी समग्रता और प्रामाणिकता डा० गुप्त के स्वभाव का एक अविचल अंग है, जिसके चलते वे अर्द्धमनस्कता से कोई भी कार्य नहीं निपटा सकते। चित्र का पूर्ण केन्द्रीकरण उनकी कार्य-पद्धति का अविच्छेद्य लक्षण है। अपने अनुसंधान और मनन के लिए उन्होंने अधिकांशतः सुदूर और मध्य कालीन युग को वरीयता दी है। मध्ययुगीन काव्य का उनका पाण्डित्य निर्विवाद और सराहनीय है। इस परिप्रेक्ष्य में वे अपने गुरु आचार्य पं० विश्वनाथ मिश्र से संस्कारित हुए हैं।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि आधुनिक युगीन साहित्य में डा० गुप्त की तत्परता नहीं रही है अथवा न्यूनतम रही है। उन्होंने भारतेन्दु-युगीन-साहित्य का भी गम्भीर पारायण और मनन किया है। भारतेन्दु जी की रचना के लोक-पक्ष में भी उनकी गहरी पैठ और खोज है। प्रसाद जी की सम्पूर्ण कृतियों का जिस प्रविष्टि और अन्तर्दृष्टि से उन्होंने आस्वादन और मन्थन किया है, वह अपने ढंग का स्तुत्य कार्य है। प्रसाद जी की आरम्भिक कृतियों, उनमें संकलित रचनाओं के आधार पर जो विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, वह अतीव सान्दर्भिक एवं इतिहास-बोध की दृष्टि से अत्यन्त ही अछूता कार्य कहा जायेगा। 'आँसू' के प्रथम एवं परवर्ती संस्करणों का उनका

तुलनात्मक अध्ययन, कविवर प्रसाद के प्रतिभा-विकास, रुचिगत दिशांकन एवं उनकी रचना-प्रक्रिया को समझने के लिए अतीव उपयोगी और दिशा-दायक कार्य है। उन्होंने 'कामायनी' का गहन अध्ययन ही नहीं किया, अपितु अंग्रेजी में उसका अतीव सफल अनुवाद भी किया है, जो अपने ढंग का अनूठा और अद्वितीय प्रयास है। उसका अभी तक प्रकाश में न आ पाना हिन्दी का सम्भवतः दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। स्व० शैदा जी ने आँसू और कामायनी पर जो समर्थ टीकाएँ लिखी हैं, उनके पीछे डा० गुप्ता जी की प्रेरकता का भी बहुत कुछ हाथ रहा है। स्वयं मुझे भी उनसे आश्वस्तता प्राप्त हुई है।

डा० गुप्त उन विद्वान लेखकों में हैं, जिनके लेखन का पर्याप्त अंश अभी भी प्रकाशित नहीं हो सका है। अनेक हिन्दी-सेवी-संस्थान उनके कार्यों के प्रशंसक तो हैं, पर वे भी उस अव्यावसायिक लेखन के प्रकाशन में उदासीन हो दिखाई पड़े हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद हिन्दी संस्थान लखनऊ या अन्य राज्यों के हिन्दी-सेवा उपक्रमों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। मेरे विचार से डा० गुप्त के लेखन-कार्य को जितना महत्व देना चाहिए, उतना हिन्दी के संस्थान विद्वान नहीं दे सके हैं, फिर राज-संस्थानों और पूँजीपतियों के पुरस्कार संस्थानों से क्या आशा की जाय। उन्हें 'पद्मश्री' या 'साहित्यवाचस्पति' सम्मान या समग्र-लेखन-गत-पुरस्कार भी आज तक नहीं मिले, क्योंकि उन्होंने न इस दृष्टि से कभी लिखा और न लेखन को भुनाने के लिए उन द्वारों तक गये ही। आपसी बँटवारों, निजी स्नेह-दानों और सख्य-निर्वाहों की इस जाति-पाँति वाली दुनिया में डा० गुप्त जैसे साहित्य-शोधक, मनीषी और रचनाकार यदि उपेक्षित रह जायँ, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह तो इस लोकतन्त्र में पग-पग पर घटित होता दिखाई पड़ रहा है।

डा० गुप्त एक स्नातकीय महाविद्यालय के प्राचार्य रहे हैं। अब विश्राम प्राप्त कर अपने घर पर ही निवास कर रहे हैं। किन्तु उनकी लेखन-चिन्तन-साधना आज भी पूर्ववत् अबाधतः प्रवाहित है। चिंतन, अनुसंधान और लेखन उनका जीनन-व्रत्त रहा है। इस वयोवृद्धता में जब कि अनेक कनिष्ठ अभिनंदित हो चुके और ही रहे हैं। डा० किशोरी लाल गुप्त को एक अभिनंदन-ग्रंथ समर्पित करने का 'मख' जिन लोगों ने संकल्पित किया है, वे मेरी हार्दिक श्रद्धा-संवेदना के पात्र हैं। मैं इस पर्व पर अपना विनत प्रणाम अर्पित करते हुए परम प्रभु से पार्थी हूँ कि वह हिन्दी के लिए उन्हें शतंजीवी करे।

—जौनपुर

५५. डॉ० किशोरी लाल गुप्त की साहित्यिक पत्रकारिता

[कृष्णमोहन शुक्ल]

हिन्दी साहित्य-जगत में साहित्यिक पत्रकारिता का उदय भारतेन्दु युग से हुआ है। भारतेन्दु मण्डल के अधिकांश लेखक साहित्यिक पत्रकारिता में ही अभिरुचि रखते थे। द्विवेदी युग के आगमन के साथ ही हमें विशुद्ध साहित्यिक पत्रकारों की एक अलग श्रेणी ही देखने को मिलती है, जो मात्र साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं तक अपने को सीमित रखते थे। हम डा० गुप्त को इसी श्रेणी में रख सकते हैं, जिन्होंने मात्र साहित्य विषयक कार्य सम्पन्न किया। पत्रकारिता के अन्य क्षेत्रों में उन्होंने अपनी कलम को मुड़ने नहीं दिया।

डा० किशोरी लाल गुप्त ने सन् १९५६ ई० में साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। हरिऔध कला-भवन आजमगढ़ से उन्होंने अपने मित्रों के सहयोग से खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' के रचयिता श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के नाम पर 'हरिऔध' नामक शोध-पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। प्रारम्भ में अप्रैल १९५६ ई० में यह पत्रिका मासिक रूप में प्रारम्भ की गई। इसके सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त थे तथा सम्पादक मंडल में श्री गुरुभक्त सिंह भक्त, डा० इन्द्रपाल सिंह, श्री जय कुमार मुद्गल, श्री दान बहादुर सिंह 'सूंड़' फैजाबादी तथा मुखराम सिंह जैसे वरिष्ठ कवि और लेखक थे। इस मासिक पत्रिका का एक ही अंक प्रकाशित हो सका।

'हरिऔध' का नए सिरे से प्रकाशन त्रैमासिक के रूप में अक्टूबर १९५७ ई० में हुआ। अब इसके सम्पादक हुए प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र, विश्वनाथ लाल शैदा एवं किशोरी लाल गुप्त। नाम तो तीन थे, पर काम केवल डा० गुप्त करते थे। वही लेखों का सम्पादन, क्रम निर्धारण, किसी लेख की समाप्ति के अनंतर उस पृष्ठ की रिक्ति पूर्ति के लिए सामग्री संकलन, प्रूफ शोधन आदि सभी कार्य सम्पादित करते थे। इस पत्रिका के भी केवल ९ अंक निकले। अक्टूबर १९५९ का अंक अंतिम अंक है।

त्रैमासिक होने के नाते 'हरिऔध' का प्रथम उद्देश्य शोध-कार्य था; पर संपादकों की दृष्टि में स्थानीय नवयुवक साहित्कारों को प्रोत्साहन देना भी अत्यन्त आवश्यक था। इसलिए इसमें ललित साहित्य भी प्रकाशित होता था।

ललित साहित्य का प्रमुखतम अंग कविता है। इसमें जहाँ गुरुभक्त सिंह 'भक्त' लक्ष्मीनारायण मिश्र, बलवीर सिंह 'रंग', श्रीपाल सिंह 'क्षेम' जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुईं, वहीं उस समय के उदीयमान कवि रूप नारायण त्रिपाठी,

रवीन्द्र भ्रमर, नर्मदेश्वर उपाध्याय, शंभूनाथ मिश्र, श्रवण कुमार श्रीवास्तव, विद्याधर उपाध्याय 'मंजु' चंद्रदेव पाठक, शतानंद, शिवशंकर पांडेय वैद्य, महातम राय विनोद, ऋषिदेव राय, देव नारायण सिंह 'राकेश', अनिरुद्ध सिंह 'शशि', हरिहर पाठक, हरिशंकर त्रिपाठी 'वैदिक', शिव प्रसाद शर्मा अंबु, महेन्द्र सिंह पुंडरि आदि की कविताएँ भी । विजय शंकर मिश्र एवं कृष्ण कुमार मिश्र जैसे और लोगों की कविताओं को भी इसमें स्थान मिला । श्री विश्वनाथ लाल शैदा एवं डा० किशोरी लाल गुप्त दोनों व्यक्ति सरस सुकवि रहे हैं, पर इन्होंने अपनी कविताएँ इसमें नहीं छपने दीं ।

कविता के बाद कहानी आती है । हरिऔध में एक व्यक्ति कवि शतानंद की भावपूर्ण कहानियाँ छपी हैं--

१. व्यंग, प्रतिकार और पराजय	अंक ४
२. प्राचीनता और उदारता	अंक ५
३. उपासक	अंक ५
४. एक स्वप्न	अंक ६
५. दोषी क्यों	अंक ७
६. शीर्षक-हीन	अंक ८

इसमें एक और महिला श्रीमती सुशीला गुप्ता एम० ए० अध्यापिका अग्रसेन कन्या विद्यालय की भी एक कहानी 'होली के दिन होली आई रे' छपी है । एक कहानी उस समय के आजमगढ़ के सूचनाधिकारी श्री रवीन्द्रनाथ एम० ए० की है--आ रहा हूँ—अंक १ ।

हरिऔध के एकमात्र ललित निबंध लेखक गुप्त जी के एक विद्यार्थी श्री पतिराम पांडेय थे । इनके निम्नलिखित निबंध प्रकाशित हैं—

१. हिचकी	अंक ५
२. भूल	अंक ६
३. सुख और दुख	अंक ७
४. कोई देख लेगा	अंक ९

श्री मुखराम सिंह का भी एक ललित निबंध है--

आत्मग्लानि	अंक ५

हरिऔध में गद्य काव्य भी छपे हैं । 'दो गद्य गीत' कुमारी कांति त्रिपाठी एम० ए० के हैं- अंक २ । और 'तीन गद्यगीत' है श्री अनिरुद्ध सिंह 'शशि' के— अंक ८ ।

प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र 'हरिऔध' के सम्पादकों में से थे । पर आश्चर्य है कि इसमें न तो उनका, न किसी अन्य का, कोई एकांकी प्रकाशित हुआ ।

जहाँ तक लेखांत के रिक्त-स्थलों की पूर्ति का प्रश्न है, ये दो प्रकार से भरे गए हैं। इनमें या तो पुराने कवियों के अच्छे अच्छे छंद दिए जाते थे। ये छंद हैं-- आनंद घन, अग्रदास, नागरीदास, मुरली, नजीर अकबराबादी, सूरति मिश्र, विहारी लाल त्रिपाठी 'लाल', भूषण और बाबा शारदा राम उदासीन के या फिर हरिऔध जी की रचनाएँ अवतरित हैं। हरिऔध के द्वितीय अंक में तीन पूरक रचनाएँ गद्य में हैं। इनकी रचना स्वयं डा० गुप्त की है, एक मौलिक—रीझा भात और लकड़ी की मुहब्बत, और दो उधार—पी लई राजा तुम्हारे संग भँगिया, दुग्धं पिबति बिडालः।

'हरिऔध' में हरिऔध जी को लिखे गए निम्नांकित अन्य महानुभावों के पत्र भी प्रकाशित हैं—

१. महाराज छतरपुर का एक पत्र	अंक १
२. महारानी मझौली का एक पत्र	अंक २
३. पुरुषोत्तमदास जी टंडन का एक पत्र	अंक ३
४. श्रीधर पाठक का एक पत्र	अंक ४
५. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का एक पत्र	अंक ५

'हरिऔध' की एक योजना यह भी थी कि प्रसिद्ध साहित्यकारों की समग्र रचनाओं की कालक्रमानुसार सूचो प्रस्तुत की जाय, जो अनुसंधित्सुओं के काम की हो इसके प्रथम चार अंकों में ऐसी चार सूचियाँ प्रकाशित भी है।

१. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की रचनाएँ	अंक १
२. पं० लक्ष्मी नारायण जी मिश्र के ग्रन्थ	अंक २
३. आचार्य श्री चन्द्रबली पाण्डेय की रचनाएँ	अंक ३
४. पं० सीताराम चतुर्वेदी के ग्रंथों की सूची	अंक ४

'हरिऔध' में कुछ पुराने लेखों को भी अवतरित किया गया है। इससे वे महत्वपूर्ण लेख संकलित हो गए हैं। ऐसे लेख हैं—

१. चार—महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	अंक १
२. कर्ता प्रसाद—पं० केशव प्रसाद मिश्र	अंक १
३. नूरजहाँ--डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	अंक ३
४. नूरजहाँ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	अंक ५

हरिऔध का पूर्वांक (मासिक) इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें हरिऔध कलाभवन सम्बन्धी तीन महत्वपूर्ण अभिलेख हैं—

१. हरिऔध कलाभवन--श्री दान बहादुर सिंह 'सूंड़' फैजाबादी
२. हरिऔध कला भवन समिति आजमगढ़ के उद्देश्य और नियमावली
३. हरिऔध कला भवन की वार्षिक रिपोर्ट तथा प्रगति—श्री विजय नारायण सिंह, महामन्त्री

'हरिऔध' में अनेक प्रकार के लेख प्रकाशित हुए हैं। इससे डा० गुप्त जी की व्यापक सम्पादन-दृष्टि का पता चलता है। इन निबन्धों को यों वर्गीकृत किया जा सकता है--

(क) आलोचनात्मक निबन्ध

१. प्रिय प्रवास और हिन्दी का कृष्ण काव्य--गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश — अंक १
२. हरिऔध जी की राधा--राजेन्द्र सिंह गौड़ — अंक १
३. भूषण का जीवन वृत्त-- ,, — अंक ३
४. हिन्दी साहित्य की नवीन दिशा--रामकृष्ण मणि त्रिपाठी, अंक १
५. भारतेन्दु साहित्य में समकालीन भारत- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय — अंक १
६. बाल मुकुन्द गुप्त ,, ,, — अंक २
७. ब्लादीमीर मायाकोव्स्की--चंद्रबली सिंह — अंक १
८. हिन्दी कविता का आधुनिक रूप—कृष्णचन्द्र जोशी, आई० ए० एस० — अंक १
९. रामायण और महाभारत का महत्व--गुरु सेवक उपाध्याय, अंक २
१०. ये अमर गीत के गायक—सीताराम चतुर्वेदी — अंक २
११. तुलसीदास के साहित्यिक आदर्श—डा० विजयशंकर मल्ल — अंक २
१२. बाबू देवकीनंदन खत्री के व्यक्तित्व की एक झलक—गिरीशचंद्र त्रिपाठी — अंक २
१३. सेनापति का श्लेष वर्णन--श्रीमती कुमुदलता सिंह — अंक २
१४. महाकवि विद्यापति ,, — अंक ४
१५. आचार्य श्री चन्द्रबली पाण्डेय—तिलकधारी पाण्डेय — अंक ३
१६. आजमगढ़ के दो संत कवि : भीखा साहब और पलटू साहब—श्री बलराम शास्त्री — अंक ३
१७. अल्लामा अकबाल 'सुहेल'--मुखराम सिंह — अंक ४
१८. कहानीकार प्रसाद—पतिराज पांडेय — अंक ४
१९. राधा—विश्वनाथ लाल शैदा — अंक ५
२०. प्रसाद और कालिदास—विजयशंकर मिश्र — अंक ५
२१. तुलसीदास और उनकी गीतावली—डा० इन्द्रपाल सिंह — अंक ६

(ख) शब्द कोष

१. ये हैं हमारे शब्द कोश—नारद (विश्वनाथ लाल शैदा) — अंक ५
२. विज्ञान शब्दावली—प्रो० बद्री प्रसाद सिंह — अंक ५

(ग) लोकोक्ति

१. वर्षा और लोकोक्तियाँ—विश्वनाथ लाल शैदा अंक ४
२. अन्न और लोकोक्तियाँ ,, अंक ५

(घ) इतिहास

१. आजमगढ़ की सतरहवीं पैदल सेना—कालिका सिंह एम० पी०, अंक १
२. माँ गंगा को कुँवर सिंह की भेंट ,, अंक ४
३. एशिया का मर्म स्थल कहाँ है ,, अंक ८
४. कौटिल्य का अर्थशास्त्र—चन्द्रदेव पाठक अंक ६
५. शंकराचार्य का वाराणसी-जीवन—बलराम शास्त्री अंक ९
६. आजमगढ़ में वाराह क्षेत्र की स्थापना—मकर अंक ४
७. क्या अशोक महान के धर्म लेखों में यूनानी राजाओं के नाम हैं ?—-वेद प्रकाश गर्ग अंक ८

(ङ) कला

१. भारतीय संगीत—विश्वनाथ लाल शैदा अंक ५
२. चित्रकला के मूल तत्व—देव नारायण सिंह 'राकेश' अंक ५
३. चित्रकर्त्री महादेवी वर्मा— ,, अंक ६

(च) हिन्दी साहित्य का इतिहास

१. भारतीय लेखन सामग्री का इतिहास—कन्हैया सिंह अंक ६
२. पूर्व मध्ययुगीन हिन्दी काव्य की धार्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि ,, अंक ९
३. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—हरिहर पाठक अंक ७

(छ) भारतीय संस्कृति

१. भारतीय तत्व ज्ञान के अमर वैभव उपनिषद-रामनगीनासिंह, अंक ७
२. प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता—दया शंकर मिश्र अक ८
३. भाषा विचार ,, अंक ९

(ज) शोध

१. किताब नव रस—विश्वनाथ लाल शैदा अंक ३
२. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास षष्ठ भाग और पिंगल निरूपक आचार्य : एक संशोधनात्मक टिप्पणी—-वेदप्रकाश गर्ग अंक ९

(झ) संस्मरण :

१. गुरुवर के कुछ स्मरण—विश्वनाथ लाल 'शैदा' पूर्वांक
२. हरिऔध जी के संस्मरण—सेठ गोविन्द दास अंक ८
३. डा० अल्तेकर—डा० परमेश्वरी लाल गुप्त अंक ९

(ञ) विधि :

१. कायिकी अभिरक्षा—विश्वनाथ लाल 'शैदा' अंक २

राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में इस पत्रिका में बराबर लिखा गया है। ये विचार तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं। पहले वर्ग में चार लेखों के अवतरण हैं, जो हिन्दी के पक्ष में पूर्ववर्ती लोगों ने व्यक्त किये हैं—

१. उर्दू के लिए हिन्दी की अभिज्ञता की आवश्यकता—मौलाना हाली—अंक ५
२. हिन्दी की महत्ता—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—अंक ५
३. हिन्दी अवश्य स्वीकार करनी होगी—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी—अंक ५
४. राजभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में कुछ अविस्मरणीय प्रसंग
—रामेश्वर दयाल दुबे—अंक ८

इनमें से सुनीति बाबू एवं राजा जी के अवतरण तो यह दिखाने के लिए दिये गये हैं कि राजनीति किस प्रकार लोगों के उचित विचारों को विपथगामी बना देती है।

दूसरे प्रकार के दो निबन्ध हैं—

१. किस हिन्दी का विकास—कालिका सिंह एम० पी० अंक ७
२. संपादक हरिऔध के नाम एक पत्र—गंगा प्रसाद द्विवेदी अंक ८

इन दोनों निबन्धों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रतिपक्ष की बातें प्रस्तुत की गयी हैं। इनके भी विचार लोग जानें, इसीलिए दोनों निबन्ध दिये गये हैं। पत्र का समुचित जवाब तो डा० गुप्त ने वहीं आगे दे दिया है।

राष्ट्रभाषा सम्बन्धी तीसरे प्रकार के लेख संपादकीय टिप्पणियों के रूप में हैं—

१. राष्ट्रभाषा और दक्षिण पूर्व भारत अंक २

यह टिप्पणी पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र की लिखित है। आगे उल्लिखित सभी टिप्पणियाँ डा० गुप्त की हैं—

१. केन्द्रीय सरकार और हिन्दी अंक २
२. हिन्दी-भाषा भाषी सरकारें और हिन्दी के प्रति उनका दायित्व—अंक २
३. हिन्दी और हिन्दी की संस्थाएँ अंक २
४. नागरी को अपनाओ अंक ३

५. हिनवाना — अंक ३
६. उर्दू की उपेक्षा — अंक ३
७. राम स्वामी की चुनौती — अंक ४
८. 'राष्ट्रभाषा' या 'राष्ट्रीय भाषा' ? — अंक ४
९. हिन्दी के विरोधी कौन ? — अंक ४
१०. विभिन्न राज्यों में वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं की प्रतिष्ठा — अंक ४
११. उर्दू की क्षेत्रीयता — अंक ४
१२. किस हिन्दी का विकास ? — अंक ७
१३. राष्ट्रपति का राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में विचार — अंक ९

प्रथम अंक के आदि में लगा नीतिनिर्धारण वाला संपादकीय पं० लक्ष्मोनारायण मिश्र कृत है।

डा० किशोरी लाल गुप्त के निम्नांकित शोध निबंध हरिऔध में प्रकाशित हुए हैं—

१. शिव सिंह सरोज के परवीने कवि — पूर्वांक
२. सूर के कबित्त — अंक १
३. रहीम की आयु ७० वर्ष भी, ७२ वर्ष भी — अंक २
४, लाला गोकुल प्रसाद व्रज और उनका दिग्विजय भूषण (ग्रंथ-कीट के छद्म नाम से) — अंक २
५. 'रीझा भात' और लकड़ी की मुहब्बत — अंक २
६. नागरी दास नामक हिन्दी के विभिन्न कवि — अंक ३
७. व्रजभाषा के सुकवि विद्यापति — अंक ४
८. आजमगढ़ के प्राचीन सुप्रसिद्ध कवि वलदेव मिश्र — अंक ४
९. रसखान का एक नवीनोपलब्ध पद — अंक ४
१०. भूषण के दो नवीन छन्द — अंक ४
११. अष्टछापी कवियों के कुछ नवीन पद — अंक ५
१२. बिहारी सतसई का आजमशाही क्रम और उसके कर्त्ता हरजू मिश्र (ग्रंथ-कीट के छद्म नाम से) — अंक ५
१३. तानसेनका एक नवीनोपलब्ध ध्रुपद — अंक ५
१४. आजमगढ़ के प्रथम ज्ञात हिन्दी कवि जगन्नाथ मिश्र — अंक ६
१५. भक्त-नामावली — अंक ७
१६. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास: एक समीक्षा (ग्रंथ-कीट के छद्म नाम से) — अंक ८
१७. संग, साथ तथा कारवां — अंक ८
१८. मुरलीधर कवि भूषण कृत छन्दोहृदय प्रकाश — अंक ९

इनमें से सोलहवाँ निबन्ध तो अपने समय में अत्यंत चर्चित हुआ था।

इन शोध निबंधों के अतिरिक्त गुप्त जी के दो और लेख प्रकाशित हैं-—

१. महाकवि हरिऔध का जीवन-वृत्त पूर्वांक
२. भक्त जी के हरिऔध सम्बन्धी कुछ संस्मरण : एक भेंट अंक २

'निकष' शीर्षक के अन्तर्गत जो ग्रन्थ-समीक्षाएँ निकली हैं, वे डा० गुप्त की ही लिखी हुई हैं। इसमें निम्नांकित चार ग्रंथों की समीक्षाएँ प्रकाशित हैं—

१. अष्टछाप की वार्ता—संपादक पो० कंठमणि शास्त्री, विद्या विभाग, कांकरोली अंक १
२. रामभक्ति में रसिक संपादक—डा० भगवती प्रसाद सिंह, अवध साहित्य मंदिर बलरामपुर, उ० प्र० अंक २
३. ज्योतिष्मतियाँ– (काव्य ग्रंथ-चतुर्दशपदियाँ)– हरिशंकर तिवारी 'वैदिक' अंक ४
४. अंतर्नाद—(कविता)—अनिरुद्ध सिंह 'शशि'— अंक ५

हरिऔध के समस्त अंकों का यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि डा० गुप्त के लेखों ने ही इसे शोध का स्तर प्रदान किया था और डा० गुप्त ने इसे एक प्रकार से शुद्ध साहित्य की पत्रिका बनाने एवं स्थानीय साहित्यकारों को प्रोत्साहन का माध्यम बनाने का प्रयत्न किया था। डा० गुप्त की यह साहित्यिक पत्रकारिता श्लाघ्य है।

—बड़ागाँव, वाराणसी।

५६. डॉ० गुप्त का पुस्तकालय

[झारखण्डेय सिंह, एम० ए०, बी० एड०]

डा० गुप्त को कोई पुस्तकालय उत्तराधिकार मे नहीं प्राप्त हुआ है। यह स्वयं इनके द्वारा, स्वरुचि के अनुकूल, संकलित पुस्तकों का समवाय है। इन पुस्तकों का संकलन १९३४ में प्रारंभ हुआ, जब यह ज्ञानपुर में 'आठवीं' कक्षा में पढ़ते थे। उस समय साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा की तयारी के सिलसिले में इन्होंने सूर पदावली, संक्षिप्त दोहावली, नवीन पद्य संग्रह (संपादक-भगवती प्रसाद वाजपेयी) आदि खरीदे थे, यद्यपि उक्त परीक्षा दी नहीं। विद्यार्थी जीवन के अपने निर्धन-काल में भी वे पैसे बचने पर पुरानी पुस्तकें खरीदते थे। उस समय १९३८-४२ में पुरानी पुस्तकें पर्याप्त सस्ती मिल जाती थीं।

इस समय डा० गुप्त के संग्रह में कुल २७८० पुस्तकें हैं और इनका बाकायदा सूचीपत्र है। कोई भी पुस्तक ग्रंथ-संख्या एवं वर्ग के अनुसार मिनटों में निकाली जा सकती है। वे हर साल ग्रीष्म ऋतु में पुस्तकों की जाँच करते हैं। स्थान-च्युत पुस्तकों को उनके स्थान पर रखते हैं और साल भर में एकत्र नई पुस्तकों को सूची में चढ़ाते हैं।

गुप्त जी को ये पुस्तकें भिन्न भिन्न समयों पर वाराणसी, प्रयाग, मथुरा, दिल्ली, लखनऊ से पुरानी पुस्तकों की दूकानों से खरीदी गई हैं। गुप्त जी ने नई पुस्तकें भी खरीदी हैं। बहुत सी पुस्तकें उन्हें उपहार में मिली हैं। वे पुस्तक-संग्रह के सम्बन्ध में अँगरेजी की कहावत Beg, buy, borrow or steal में विश्वास नहीं करते। न वे beg करते हैं, न steali, वे buy करते हैं। किताबें वे borrow भी करते हैं, पर अपना काम कर लेने पर उन्हें धन्यवाद के सहित वापस भी कर देते हैं।

डा० गुप्त की रुचि हिन्दी के पुराने काव्यों के प्रति अधिक रही है। वे शोध, समीक्षा, हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी विशेष रुचि रखते हैं। किसी प्राचीन काव्य का कहीं से भी कोई नवीन संस्करण होता है, तो उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

डा० गुप्त का संग्रह निम्नांकित वर्गों में विभक्त है—

प्रथम सूची

१. कोष—३९ ग्रंथ	२. साहित्य के इतिहास—२६ ग्रंथ
३. शोध ग्रंथ—९४ ग्रंथ	४. अभिनंदन एवं स्मृति ग्रंथ—४१ ग्रंथ
५. समीक्षा शास्त्र—५२ ग्रंथ	६. भाषा विज्ञान और व्याकरण—५५ग्रंथ
७. आलोचना—१९७ ग्रंथ	८. खोज रिपोर्ट—२१

द्वितीय सूची--

१. संस्कृत ग्रंथ—४७		२. पालि ग्रंथ—४	
३, प्राकृत—१		४. अपभ्रंश—२१	
५. राजस्थानी—१६		६. उर्दू—४९	
७. बँगला—८		८. मराठी—१	
९. जीवन चरित्र और संस्मरण—८०		१०. गद्य काव्य—१४	
११, निबंध—७६		१२. कहानी—५५	
१३. उपन्यास—१६३		१४. नाटक—११३	
१५. विविध गद्य साहित्य—१२१		१६. धर्म और दर्शन	१५
१७. इतिहास	१६	१८. देश-दर्शन	३५
१९. स्वतन्त्रता के बाद देश	११	२०. सहित्य ग्रन्थ	१३
२१. अंग्रेजी	५०		

तृतीय-सूची (काव्य)

१. काव्य संग्रह—१६४

२. प्राचीन काव्य—(क) प्राचीनतम काव्य—२१ ग्रन्थ, (ख) संत कव्य—६४ ग्रंथ (ग) सूफी काव्य—२१ ग्रंथ, (घ) राम काव्य—३२ ग्रन्थ,(ङ) कृष्ण काव्य—
(१) प्रारम्भिक कृष्ण काव्य—७ ग्रंथ, (२) बल्लभ संप्रदाय ४२ ग्रंथ, (३) राधावल्लभ संप्रदाय—४६ ग्रंथ, (४) गौड़ीय संप्रदाय— २० ग्रंथ, (५) स्वामी हरिदास का रसिक संप्रदाय—५ ग्रन्थ (६) निबार्क संप्रदाय ११ ग्रन्थ—सर्वेश्वर के ९ विशेषांक,
(च) रीति कालीन काव्य—३०८ ग्रंथ

३. आधुनिक व्रजभाषा काव्य—८७ ग्रंथ

४. खड़ी बोली काव्य—४९३ ग्रंथ

पत्रिकाओं की संख्या भी हजार डेढ़ हजार होगी। इनकी सूची अलग है। नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सं० २००० से अब तक के सभी अंक हैं। हंस, माधुरी, चाँद, सरस्वती, विशाल भारत, सुवा, हिन्दुस्तानी, सम्मेलन पत्रिका, परिषद पत्रिका, व्रज भारती, हिन्दी अनुशीलन, ऋतंवरा, मानस मयूख, हरिऔध, सूर सौरभ, रसवंती, साहित्य संदेश आदि के बहुत से अंक हैं। पचासों अन्य पत्रिकाओं के भी एक-एक दो-दो अंक हैं।

गुप्त जी के संग्रह में कुछ पुरानी पांडुलिपियाँ हैं, कुछ दुर्लभ ग्रंथों की पांडुलिपि उन्होंने स्वयं तैयार की है। पुरानी पांडुलिपियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चितामणि के एक काव्य ग्रन्थ की है, जो इन्हें आजमगढ़ में विहारी सतसई के आजमशाही क्रम देने वाले सुप्रसिद्ध हरजू मिश्र के वंशज पं० दयाशंकर मिश्र (अब स्वर्गीय) से प्राप्त हुई थी। स्वयंकृत प्रतिलिपियों में सरदार कृत शृंगार संग्रह, परमानन्द सुहाने कृत षटऋतु हजारा, नवीन कृत सुधासर महत्वपूर्ण हैं।

गुप्त जी के संग्रह में अनेक दुर्लभ काव्य ग्रन्थ हैं, जिनमें अनेक प्रस्तर-मुद्रण में हैं। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण रीति कालीन ग्रंथों की सूची निम्नवत है।

प्रस्तर मुद्रण वाले ग्रंथ—

१. रसार्णव—शुकदेव मिश्र कृत नवल किशोर प्रेस लखनऊ, २. सभा विलास—लल्लू जी लाल कृत, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, ३. कवि हृदय विनोद—ग्वाल कृत, मथुरा, ४. नानार्थ संग्रहावली—मातादीन शुक्ल कृत अनेक ग्रंथों का समुच्चय—नवल किशोर प्रेस लखनऊ, १९८४ ई०, ५. सुन्दर शृंगार—१८७५, पुनर्मुद्रण—लाइट प्रेस, बनारस, ६. सुन्दर शृंगार—गुलशने हिंद यंत्रालय, इन्द्रप्रस्थ १८९७, ७. वृहद व्यंगार्थ चन्द्रिका—राव गुलाब सिंह बूँदी वाले, भारत जीवन प्रेस बनारस।

टाइप वाले ग्रंथ--

१. सुजान शतक—घनानंद के कवित्त-सवैयों का भारतेन्दु कृत प्रथम संग्रह ग्रन्थ--बनारस लाइट छापाखाना १८७० ई०
२. भुवनेश भूषण —लाल त्रिलोकी नाथ 'भुवनेश' अयोध्या, नवल किशोर प्रेस लखनऊ १८८४ ई०
३. अंगदर्पण— रसलीन-भारत जीवन प्रेस बनारस १८८५ ई०
४. शृंगार लतिका—द्विजदेव कृत—नवल किशौर प्रेस लखनऊ, तृतीय संस्करण १८८५ ई०
५. भाषा भूषण (जसवंत सिंह कृत) और रषिक मोहन (रघुनाथ वंदीजन बनारसी कृत)—सं० मन्नालाल द्विज, अमर यंत्रालय बनारस १८८६ ई०
६. रितुरंग—महन्त जानकी प्रसाद 'रसिक विहारी', धर्मामृत यंत्रालय बनारस १८८६ ई०
७. नखशिख शिखनख—जवान सिंह 'नगधर', वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई १८८९ ई०
८. मलारावली—भारतेन्दु के पिता गिरिधर दास--लाइट प्रेस काशी १८८९ ई०
९. बसंत चालीसी—काशीवासी रससिंधु--भारत जीवन प्रेस काशी १८८९ ई०
१०. पीयूष लहरी--गंगा लहरी का अनुवाद, बलदेव सिंह कृत—नवल किशोर प्रेस लखनऊ, द्वितीय संस्करण १८९० ई०
११. रस प्रबोध—रसलीन—नवल किशोर प्रेस लखनऊ १८९० ई०
१२. प्रिया प्रीतम विलास—गणेश वख्श सिंह —भारत जीवन प्रेस काशी १८९१ ई०
१३. अलक शतक तिलशतक—मुबारक कृत—भारत जीवन प्रेस काशी १८११ ई०
१४. शिवा शिव शतक—नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह—भारत जीवन प्रेस काशी १८९२ ई०
१५. अंगादर्श—रंग नारायण पाल ,, १८९३ ई०
१६. विचार माला—अनाथदास—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १८९३ ई०
१७. प्रेम रसामृत— काशी वासी रसमय सिद्ध—विक्टोरिया प्रेस, काशी १८९३ ई०
१८. रसिक बिहार—संतराम—गोरखा यंत्रालय काशी १८९३ ई०
१९. भवानी विलास—महाकवि देव—भारत जीवन प्रेस काशी १८९३ ई०
२०. रस विलास ,, ,, १८९३ ई०
२१. वैराग्य शतकम्—हरदयाल—जगदीश कुमार यंत्रालय बम्बई १८९४ ई०
२२. बसंत मञ्जरी—माखन पाठक—भारत जीवन प्रेस काशी १८९४ ई०
२३. रामाष्टयाम—नाभादास—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १८९४ ई०
२४. विरह वारीश—बोधा—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८९४ ई०
२५. पजनेस प्रकाश—पजनेस के १०० कवित्त सवैया—भारत जीवन प्रेस काशी १८९४ ई०

२६. जंजीरा—कालिदास त्रिवेदी—वेंकटेश्वर प्रेस बंबई १८९४ ई०
२७. नैषध काव्य—गुमान मिश्र कृत अनुवाद—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १८९५ ई०
२८. शकुन्तला उपाख्यान—नेवाजकृत—नवल किशोर प्रेस लखनऊ १८९५ ई०
२९. रससिंधु शतक—काशीवासी रस सिंधु—भारत जीवन प्रेस काशी १८९५ ई०
३०. शैव मनोरंजिनी—देवी सहाय बाजपेयी—तारा प्रेस बनारस १८९५ ई०
३१. हित तरंगिनी—कृपाराम कृत, स० जगन्नाथदास रत्नाकर, भारत जीवन प्रेस काशी १८९६ ई०
३२. श्रृंगार सतसई—राम सहाय कृत—भारत जीवन प्रेस काशी १८९६ ई०
३३. श्रृंगार दर्पण—नन्दराम कृत— ,, १८९७ ई०
३४. सूर मंजरी—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १८९८ ई०
३५. ब्रज रस कवित्तावली—प्रियादास शुक्ल कृत—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९०० ई०
३६. रस मोदक हजारा—स्कंद गिरि— ,, ,,
३७. कुण्डलिया—गिरिधर कविराय—भारत जीवन प्रेस काशी १९०१ ई०
३८. प्रेम लतिका—रंग नारायण पाल— ,, १९०२ ई०
३९. भारती भूषण—भारतेन्दु के पिता गिरिधर दास कृत—नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९०२ ई०
४०. सुजान चरित्र—सूदन कृत—सं० राधाकृष्ण दास—नागरी प्रचारिणी सभा काशी १९०२ ई०
४१. दिल दीवानी—सेवक श्याम कृत—भारत जीवन प्रेस काशी १९०३ ई०
४२. प्रेम फौजदारी ,, ,, ,,
४३. वसंत बहार ,, ,, ,,
४४. श्रावण श्रृंगार—कोपागंज वासी मारकंडे 'चिरजीवी' ,, ,,
४५. ठाकुर शतक—ठकुर—भारत जीवन प्रेस काशी १९०४ ई०
४६. शकुन्तला उपाख्यान—नेवाज—भारत जीवन प्रेस काशी १९०४ ई०
४७. वर्षा बहार—सेवक श्याम—भारत जीवन प्रेस काशी १९०५ ई०
४८. युगल विलास—राम सिंह ,, १९०५ ई०
४९. छंद पयोनिधि—हरदेव बनिया—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९०६ ई०
५०. छंदोर्णव पिंगल—भिखारीदास—नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९०६ ई०
५१. रसिकानंद—रंग नारायण पाल—भारत जीवन प्रेस काशी १९०७ ई०
५२. श्री राधा युगल शतक—हठी कृत— लहरी प्रेस काशी १९०९ ई०
५३. गुलजार चनन—शीतल—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९११ ई०
५४. रसिक प्रिया सटीक—टीकाकार सरदार बनारसी—नवल किशोर प्रेस लखनऊ, तृतीय संस्करण १९११ ई०

५५. विजय मुक्तावली—छत्र सिह कृत—भारत जीवन प्रेस काशी १९१३ ई०

५६. सनेह सागर—बख्शी हंसराज कृत —स० लाला भगवान दीन, साहित्य भूषण कार्यालय काशी १९१५ ई०

५७. जमाल माला—जमाल कृत— सं० पन्नालाल गयावाल भारत जीवन प्रेस काशी १९१५ ई०

५८. आलमकेलि—प्र० उमाशंकर मेहता, राजघाट काशी, सं० लाला भगवान दीन १९२२ ई०

५९. बिहारी को सतसई—द्वितीयभाग, प्रथम २०० दोहों की टीका, भाष्यकार पद्म सिंह शर्मा, प्रथम संस्करण १९२२ ई०

६०. राम चंद्रिका सटीक—बाबा जानकी दास की टीका—नवल किशोर प्रेस लखनऊ, प्रथम संस्करण १९२३ ई०

६१. गुलदस्तए बिहारी-बिहारी सतसई का उर्दू पद्यानुवाद- देवीप्रसाद प्रीतम-साहित्य सेवक सदन, बुलानाला काशी १९२४ ई०

६२. कवि प्रिया-नवल किशोर प्रेस लखनऊ, सातवीं बार १९२४ ई०

६३. ठाकुर ठसक-सं० लाला भगवान दीन-साहित्य सेवक कार्यालय काशी १९२५ ई०

६४. गीत गोविंदादर्श- गीत गोविंद का अनुवाद रायचंद नागर कृत, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, दसवां संस्करण १९२६ ई०

६५. बिहारी रत्नाकर—बिहारी सतसई की रत्नाकर जो कृत टीका—गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ १९२८ ई०

६६. केशव पंचरत्न—सं० लाला भगवान दीन, राम नारायण लाल बुकसेलर, कटरा, इलाहाबाद १९२९ ई०

६७. बिहारी सतसई प्रथम भाग (भूमिका)—पद्म सिंह शर्मा, चतुर्थ संस्करण—काशी नाथ शर्मा—काव्यकुटीर नायक नगला, चाँदपुर, बिजनौर १९३४ ई०

निम्नांकित ग्रंथों के मुख पृष्ठ नहीं रह गये हैं। अतः इनका ठीक-ठीक प्रकाशन-काल नहीं ज्ञात। पर ये सभी १९०० ई० के पहले के प्रकाशन हैं।

भारत जीवन प्रेस काशी

१. नखशिख—बलभद्र

२. ललित ललाम, मतिराम कृत—राव गुलाब सिंह की टीका सहित

३. भाव विलास—महाकवि देव कृत

४. इश्कनामा—बोधा कृत

५. छन्दोमंजरी—गदाधर भट्ट कृत

६. व्यंगार्थ कौमुदी—प्रतापसाहि कृत

७. करणाभरण—गोविंद कवि कृत

नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

८. रामचन्द्र भूषण—लछिराम कृत

९. रस तरंग—लक्ष्मण प्रसाद कृत

अज्ञात प्रकाशन

१०. गुंजमालिका—चतुरदास महन्त कृत

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य बहुप से दुर्लभ ग्रंथ हैं। जैसे—सिलेक्शम्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर—कुल सात जिल्दों में से छह जिल्दें—लाला सीताराम कृत। जैसे मांडानरेश रुद्र प्रताप सिंह कृत रामायण—सुसिद्धान्तोत्तम—कुल ९ बड़ी जिल्दों में।

डा० गुप्त का ग्रंथालय यद्यपि निजी है, पर उससे कोई भी व्यक्ति पुस्तकें पठनार्थ ले सकता है। मैंने स्वयं इस पुस्तकालय से लेकर अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। डा० गुप्त ने अपनी रुचि के विषयों की अच्छी पुस्तकों का संकलन किया है। एक ही ग्रंथ के भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित एव भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा संपादित विभिन्न संस्करण इस ग्रंथालय के गौरव हैं।

—कलीपुर, बीरमपुर, वाराणसी

४. पत्रों के दर्पण में

डा० किशोरी लाल गुप्त

किती सा सलहिज्जइ
सुणीइ अप्पणेहि कण्णेहि
पच्छा मुअण सुंदरि
सा किती होउ मा होउ

—उपदेश तरंगिणी, पृ० २७५

कीर्ति वही लभनीय है, जो अपने कानों सुनी जाय। मृत्यु के पीछे जो (कीर्ति-लाभ) हो, वह कीर्ति हो, या न हो, (कीर्तिवान को उससे क्या लेना देना)।

ये पत्र

डा० किशोरी लाल गुप्त के पास उन्हें लिखे गये पत्रों का अपार भंडार सुरक्षित है। कुछ पत्र कवितामय हैं, कुछ में पता तक पद्यबद्ध है और डाक-विभाग ने उन्हें भी उन तक सही सलामत पहुँचा दिया। कुछ पत्र विशुद्ध साहित्य की सृष्टि है। कुछ में विभिन्न शोधार्थियों एवं अनुसंधित्सुओं के द्वारा अपनी समस्याएँ प्रस्तुत करके उनके समाधान की आकांक्षा व्यक्त की गयी है। यहाँ ऐसे ही साहित्यिक महत्व के शताधिक पत्र संकलित हैं, जो अनेक व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं। बहुत से पत्रों में से इन्हें चयन किया गया है। चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि जहाँ इन पत्रों के दर्पण में डा० गुप्त का वास्तविक प्रतिबिंब प्रतीयमान हो, वहीं पत्र-लेखकों का भी व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो, उनके भी कर्तृत्व का पता चले। इन पत्रों में से बहुतों में डा० गुप्त की किसी न किसी कृति की सम्यक पर संक्षिप्त समीक्षा है। अधिकांश पत्र अपरिचित सज्जनों के हैं। ऐसे लोगों के ये पत्र अभिनन्दन पत्र जैसे हैं। कुछ पत्र गुप्त जी के मित्रों के लिखे हुए हैं। महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के कुल ८४ पत्र गुप्त जी की पत्र-संचिकाओं में हैं। डा० गुप्त पत्रों का तुरन्त और सुविस्तृत उत्तर देने में पटु हैं। उनके लिखे हुए पत्र उन्हीं लोगों के पास, जिनको वे लिखे गये हैं, सुरक्षित हों, तो हों। गुप्त जी ने इनकी प्रतिलिपि कभी भी अपने पास नहीं रखी। यहाँ दूसरों के गुप्त जी को लिखे कुछ पत्र ही संकलित हैं, उनके द्वारा दूसरों को लिखे गए पत्र नहीं, क्योंकि वे अनुपलब्ध हैं, और इस अवसर पर उनकी खोज भी नहीं की जा सकी।

इन पर-पत्रों से जहाँ गुप्त जी की कीर्ति-रक्षा होगी, वहीं दूसरों की भी, ऐसी आशा है।

—संपादक

१. त्रिभुवन नाथ, कबीरचौरा, वाराणसी

[त्रिभुवन नाथ जी डा० गुप्त के १९३६-३८ में क्वींस कालेज वाराणसी में सहपाठी थे। यह साहित्यिक अभिरुचि के थे, साम्यवादी विचारधारा के थे। कालान्तर में यह सोवियत दूतावास दिल्ली में हिन्दी अधिकारी थे। विद्यालय छोड़ने के बाद यह एक बार अपने बहनोई श्री हरनाथ सहाय कस्टोडियन इवाकुई प्रापरटी से मिलने आजमगढ़ गये थे। तब यह डा० गुप्त के निवास पर जाकर उनसे मिले थे। कई वर्ष हुए, इनका निधन हो गया]

१.

कबीरचौरा, काशी

भाई किशोरी लाल जी, १०-५-३८

खत लिख रहा हूं-सो भी मतलब से-इस मतलबी दुनिया में कौन बेमतलब कुछ लिखता है। मैं चाहता हूँ कि कैलाश की अंतिम 'हिन्दी' अंक में निकली हुई कहानियाँ-अभी तक वे मेरे पास आई नहीं, जाने क्यों-आप मेरे पास लिख भेजें जल्द से जल्द। तकलीफ तो होगी, लेकिन तकलीफ बिना मैं कहूं यदि—दुनिया का क्या कोई भी काम हुआ है।

और सुनिये, अपने क्लब की पत्रिका (Universal Club Magazine–विश्व समिति पत्रिका) के लिए मैं कुछ सामग्री चाहता हूं-मैं उसका संपादक हूँ जो-सो कृपा होगी, यदि आप अपनी कम से कम दो कविताएँ और हो सके तो दो एक लेख मेरे पास भेजें-बड़ा कृतज्ञ हूँगा। अच्छा हो यदि यह सब मेरे पास एक हफ्ते के अन्दर पहुँच जायँ—कारण तब तक मैं बनारस में हूँ—और पत्रिका जो कि हाथों लिखी जाती है—१ जून को निकल जाएगी।

अनुग्रहाभिलाषी

त्रिभुवन नाथ

No. 23/85 C
Kabir Chaura
Banaras

P. S.

आप कैसे हैं-क्या कर रहे हैं—
संकठा प्रसाद जी के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं—
सो आप पत्र लिखकर ज्ञात करा दें—तो भला।
मैं ठीक हूँ और जिन्हें मैं जानता हूँ, सब ठीक हैं।

२. हुब नारायण तिवारी, मूलापुर, गोपीगंज, वाराणसी

[हुब नारायण जी भी लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर के विद्यार्थी होने के नाते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते समय सभी ज्ञानपुरियों के साथ संकटमोचन क्षेत्र में एक साथ रहते थे और गुप्त जी को हस्तलिखित 'हिन्दी' पत्रिका निकालने में योग दिया करते थे। साहित्यिक अभिरुचि के तिवारी जी बी० ए०, एल-एल० बी० करने

के अनन्तर मुख्यतया कलकत्ता में रह रहे हैं। प्रारंभ में यह पचंबा जिला हजारी बाग (बिहार) में अध्यापक भी रहे थे]

२।१

P. H. E. School
Pachamba
Dist. Hazaribagh

प्रिय भाई गुप्त जी,

सप्रेम नमस्ते

३१ मार्च ४३

आज बहुत दिनों के पश्चात आपको पत्र लिख रहा हूँ। आपका पत्र तो मुझे पहले ही मिल गया था, लेकिन मैंने जान-बूझ कर पत्र नहीं दिया और होली बीत जाने दिया, जिससे कुछ मैं अपनी कहूँ और आपसे भी सुनूँ कि होली कैसे कटी ? मैं तो अपने वास-स्थान से उतनी दूर पश्चिम जंगलों में निकल गया था, जितनी दूर बनारस से आपका गांव या भीटी होगा। जंगल में बड़ा ही आनन्द रहा, संथाल बच्चों की घिनौनी-घिनौनी सूरतें देखीं और यह भी देखा कि संथाल युवतियों में यौवन हमलोगों के स्टैण्डर्ड का सौन्दर्य नहीं ला सकता, और यत्र-तत्र गरीबी निर्धनता में झाँकता हुआ यौवन का सौन्दर्य भी देखा, मुझे पूर्ण विश्वास हैं कि आप यहां के सौन्दर्य को किसी न किसी प्रकार अवश्य पसन्द करते। हाँ, जाते समय (यात्रा में) मोटर में सभ्य (और सुंदर भी) कही जाने वाली युवतियों के धक्के भी खाए। यह भी देखा कि यहाँ किस प्रकार होली मनाई जाती है। यहाँ के लोग उतने ही (Licentious) उक्त अवसर पर हो जाते हैं जितने कि वहाँ के लोग। संथालों का नाच और विवाह भी देखा। उनकी एक धनुष भी प्राप्त की। एक बात जान कर आपको दुःख होगा कि संथालों ने रोमन लिपि अपनाई है। हां, एक बात तो भूला ही जा रहा था, हमारे एक साथी ने यह राय प्रकट की है कि अगले वर्ष की दुर्गा पूजा की छुट्टी में Wives Conference किया जाय, मैं तो चाहूँगा कि श्रीमती सजनी ही 'चेयर' ग्रहण करें। पं० शुक्ल को भी खबर दीजिएगा।

(हुब नारायण)

३/२

भाई गुप्त जी

हाई स्कूल पचंबा

सप्रेम नमस्कार

२३-८-४४

आपका २१-८-४४ का कृपा पत्र मिला। मुझे वह जान कर खुशी हुई कि आपकी नियुक्ति एक कालेज में हुई है। मुझे श्रीवास्तव जी के पत्र द्वारा मालूम हो गया था कि आप ओर श्री यादव जी दिलदारनगर मुस्लिम हाई स्कूल में आए हैं। आपको मनचाहा स्थान मिला, इसके लिए बधाई।

आपने मेरे विषय में पूछा है, परन्तु मेरे विषय में जानकर शायद आपको खुशी न हो। मेरा हृदय नीरस हो चला है। मुझे यहाँ के जंगल, पहाड़ों में काली-कलूटी संथाल सुन्दरियों में, गौरांग वर्ण की भी गोदने से काला रंग करने वाली इतर जाति की युवतियों में, तथा जब तब झलक पड़ने वाली मारवाड़ी बाइयों में कुछ भी दिलचस्पी नहीं है। यहाँ कृष्ण लीला तथा रास लीला नहीं है। यहां तो दुर्गा पूजा के लिए 'पाठा' बकरे इकट्ठे करने की धूम है। अगर कोई चीज है, तो बालिकाओं तथा बहनों की 'करमा' की तैयारी। हम लोगों के यहाँ की तरह बहनें बुलाई जाती हैं। और वे अपने भाइयों के लिए शुभ कामना करती हैं। समय बेसमय उनके गाने की भनक कानों में पड़ती है। हृदय में एक गुदगुदी तथा पवित्र सिहरन उनके गाने का अर्थ न समझने पर भी पैदा होती है, और फिर वही नीरसता। काव्य, सौंदर्य, जीवन की नग्नता, आर्थिक जगत (की) सार्थकता में विलीन हो रहा है। भाई जी आपके स्वर्गीय आनंद से अपने को बहुत ही दूर पा रहा हूँ। जब तब पत्र देते रहिएगा। जीवन की नीरसता तो कम से कम उकताने वाली नहीं मालूम होगी।

हुब नारायण

३. हरिशंकर चतुर्वेदी, सागररायपुर, वाराणसी

[हरिशंकर जी चतुर्वेदी गुप्त जी के पड़ोसी गांव सागररायपुर के रहने वाले हैं। इन्होंने १९३६ में लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर से गुप्त जी के साथ ही हाई स्कूल किया था। बाद में यह बंबई में अध्यापक रहे। अब गांव पर रहते हैं।]

४

भाई किशोरी लाल गुप्त — बंबई

सादर सस्नेह स्मरण! — १५-६-४४

मैं सकुशल हूँ। आपकी कुशलता की इच्छा रखा करता हूँ। भाई आपको खयाल होगा कि विगत वर्ष आप मेरे घर सागर रायपुर हनुमान पैंजस्फुट काव्य की खोज में आए थे और हमारे पिता राम सजीवन चौबे एवं चाचा रामलखन चौबे से उसके लिए आपने कहा था। उसके उपरांत मैंने उसे पूरा कर आपको दिया था। आप उसे प्रकाशित कराने की सोच रहे थे। लेकिन शायद प्रकाशित न करा सके। किन्तु मैं बंबई में उसे छपवा कर प्रकाशित कराना चाहता हूँ। मुझे यहाँ सब सुविधाएँ प्राप्त हैं। मुझे आवश्यकता है केवल इस बात की कि इसके प्रणेता लाल कवि की जीवनी के विषय में कुछ मसाला अवश्य मिलना चाहिए और वह मसाला आप से अच्छी तरह मिल सकता है। अतएव भाई साहब मेरे लिए तो इतना कष्ट अवश्य कीजिएगा। लाल कवि की जीवनी के बारे में जितना अल्प या अधिक आप जानते हों, उसे लिख भेजने की शीघ्रता कर मुझे अनुगृहीत करें और प्रार्थना है कि इसके संबंध में आप अपनी

राय भी लिख दीजिएगा। हम भूमिका में उसका समावेश करा देंगे। उचित सलाह भी भेजने की कृपा कीजिएगा। कार्य में शीघ्रता की आवश्यकता है। कष्ट के लिए कई बार क्षमा।

पता— निवेदक

१३ फनसवाड़ी करी **हरिशंकर चतुर्वेदी**

बंबई-२

४. डा० भगवती प्रसाद सिंह

[डा० भगवती प्रसाद सिंह गोंडा जिले के रहने वाले हैं। यह १९४३-४४ में डा० गुप्त के बी० टी० के सहपाठी थे। बाद में इन्होंने बलरामपुर जिला गोण्डा में डी० ए० वी० हाईस्कूल खोला और इसके संस्थापक हेडमास्टर हुए। फिर यह गोरखपुर विश्वविद्यालय में १९५८ में हिन्दी विभाग में प्रवक्ता, फिर प्रवाचक एवं अंत में आचार्य एवं विभागाध्यक्ष हुए। अब यह बेतिया हाता गोरखपुर में अपने निजी प्रासाद में रहते हैं। डा० गुप्त के घनिष्ठ मित्र।]

५/१

राम

बलराम पुर

प्रिय बंधु, १५-८-४४

'जाकर जापर सत्य सनेहू' लिखते हुए गोस्वामी जी का ध्यान कदाचित वर + आली पर नहीं गया—नहीं तो झुमके का प्रसंग रामायण में कहीं न कहीं अवश्य आता—वह विश्व-ज्ञान का कोश जो है। मुझे यह जान कर आनंद हुआ कि अतीत में जो हमारे वाग्विलास का विषय था, वह आपके वर्तमान व्यावहारिक जीवन का एक सत्य है—झुमका-प्रद बरेली, जिसके लिए आपको स्वर्ग से च्युत होना पड़ा–क्षीणे पुण्ये।

आपको मेरा पता कैसे ज्ञात हुआ ?

इस बीच मुझे भी एक कलेवर बदलना पड़ा। जुलाई भर मनकापुर स्कूल में पढ़ाता, अपने भाग्य पर संदेह करता रहा। प्रथम अगस्त से बलरामपुर के इस नव संचालित स्कूल में कर्णधार का पद मिला है—वर्षा काल है, इससे डरता हूँ–३०० लड़के हैं, १४ शिक्षक। भविष्य आशा पूर्ण है।

इस ग्रीष्मावकाश में मुझे महात्मा वनादास जी की ३७ पुस्तकें और मिली हैं। आज फीस का दिन है, कार्य अधिक है, स्कूल में हूँ–H. M. की कुर्सी पर--व्यग्रता का प्रमाण–इत्यलम्

पत्रों को चलचित्रों की तरह चलता-फिरता देखने की अभिलाषा है–इच्छा भी।

पता–

भगवती प्रसाद सिंह अभिन्न

हेडमास्टर डी० ए० वी० स्कूल

बलरामपुर

आगामी जुलाई से कदाचित बलरामपुर में भी इण्टर खुलेगा—मिलन प्रतीक्षा।

६/२

अवध साहित्य मंदिर

बलरामपुर (गोंडा) उत्तर प्रदेश

साहित्यान्वेषक तथा प्रकाशक

पत्र सं० .... दिनांक १२।१२।५७

बंधुवर,

सादर नमस्कार

आपका कृपा पत्र मिला। 'हरिऔध' का कोई अंक अभी तक नहीं मिल सका है। आपके आदेशानुसार लेख भेजने का प्रयत्न करूँगा।

अपने पुरुषार्थ और ईश्वर की कृपा से डाक्टरेट प्राप्त हो गई—इसके लिए बधाई। ग्रियर्सन की पुस्तक भी नए प्रकाश में ले आए, यह देखकर आनंद हुआ। अनुसंधायकों को इससे अपूर्व बल मिलेगा।

दिग्विजय भूषण का १६८ संख्यक कवि 'गोपाल' है।

बच्चों को प्यार और उनके स्रोत को यथायोग्य। आशा है सपरिवार प्रसन्न होंगे। इच्छा है दिल्ली में परिषद के अधिवेशन में भाग लेने की। उसके लिए आवश्यक कार्यवाही क्या होगी? रेलवे कन्सेशन आदि प्राप्त करने तथा प्रतिनिधि शुल्क जमा करने नें—इसकी सूचना देकर कृतार्थ करें।

कृपापात्र

भ० प्र० सिंह

७/३

श्री राम

भगवती प्रसाद सिंह डी० लिट्० दूर भाष : ४५१३

गोरखपुर : २७३००१

साकेत, बेतियाहाता दिनांक ७-९-१९८१

बंधुवर,

नमस्कार

इधर काफी दिन हुए आपसे भेंट न हो सकी। इसलिए विचारों के आदान-प्रदान की सहज गति बाधित रही।

मैंने 'श्री राधाकृष्ण भक्त कोश' निर्माण की योजना अपने हाथ में ली है। उसमें आपका सहयोग अपेक्षित होगा। आवश्यक परामर्श के लिए आप यदि २० से २४ अगस्त के बीच किसी दिन मेरे निवास पर गोरखपुर आ जायँ तो अनुगृहीत हूँगा। आने जाने का सामान्य मार्ग व्यय मैं दे दूँगा।

आशा है सपरिवार सानन्द होंगे ।

श्रीयुत डा० किशोरी लाल गुप्त अभिन्न
सुधवै, वाराणसी **भगवती प्रसाद सिंह**

५. राम गोपाल, वाराणसी

[राम गोपाल जी वाराणसी के रहने वाले हैं । यह डा० गुप्त के इण्टर, बी० ए०, एम० ए० के सहपाठी हैं । इन्होंने गणित से एम० ए० करने के बाद ऐग्रिकल्चरल रिसर्च पूसा, दिल्ली में ५८ वर्ष की वय तक नौकरी की और अब काशी में ही रहते हैं । यह छात्र जीवन में डा० गुप्त की साहित्यिक गोष्ठी के सजग सदस्य थे ।]

८

प्रिय किशोरी लाल जी, दिल्ली
२२-३-४५

आपका पत्र मिला । मैंने ब्रह्मदेव जी से उनकी चुप्पी का उल्लेख किया था । उत्तर मिला "अपने निकट के व्यक्तियों से ही मैं मान करता हूँ ।" लगभग दो सप्ताह पूर्व उनसे मेरी बातचीत हुई थी, जिससे ज्ञात हुआ कि उन्होंने आपको कोई पत्र लिखा था । फरवरी में उनका Hydrocel का आपरेशन हुआ था । उसके पश्चात् उन्होंने 'लोकमान्य' से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है । आजकल वे हिन्दू धर्म-सेवक-संघ, सब्जीमंडी में रहते हैं ।

मुझे अप्रैल के प्रथम सप्ताह में मेरठ के गाँवों में Crop Cutting Experiment के सिलसिले में जाना है । वहाँ मुझे लगभग १५ दिन लगेंगे । गृहलक्ष्मी अभी तक यहीं थी । अब उन्हें काशी भेज रहा हूँ ।

मैंने अपने एक पत्र में आपकी कविताओं के विषय में कुछ लिख मारा था, उसे आप Impressionistic Criticism, कहते हैं । मेरी दृष्टि में तो इस प्रकार को आलोचना कोई आलोचना नहीं है, यदि समालोचक को Art connoisseur माना जाय, तो उसका कर्तव्य रचना-सौन्दर्य को प्रत्यक्ष प्रकट करना ही है । फिर यों Impressionistic (so called) Criticism का भी एक स्थान है । क्योंकि उससे हमें ज्ञात होता है कि कोई रचना उन अनुभूतियों और संवेदनाओं को जागरित करने में कहाँ तक सफल हुई है, जो उसके मूल में हैं । आपके इस विषय में क्या विचार हैं । आप authority हैं, इसीलिए पूछता हूँ ।

मुझे इधर पंजाब बोर्ड की भूषण परीक्षा का एक विद्यार्थी (विद्यार्थिनी शब्द मुझे पसन्द नहीं है) पढ़ाने के लिए मिल गयी । इससे मेरी साहित्य चर्चा—और मनोरंजन भी—हो जाती है ।

आपकी इस बार की कविता मुझे कंठस्थ हो गयी है, मित्रों को पढ़कर सुनाते-सुनाते।

और सब मंगल है !

पुनश्च — राम गोपाल

मेरा आफिस शायद अप्रैल के अन्त तक दूसरी जगह चला जाय, किन्तु कोई निश्चित नहीं है। अतः उत्तर शीघ्र दें।

६. मंगला प्रसाद पांडेय, वाराणसी

[मंगला प्रसाद पांडेय डा० गुप्त के इण्टर, बी० ए०, एम० ए० के साथी थे (१९३६-४२)। पहले यह कानपुर, लोहारू, लाहौर, दिल्ली में सेवारत रहे। अन्ततः 'आज' के सम्पादकीय विभाग में आ गये। यह डा० गुप्त के परम मित्र एवं साहित्यिक अभिरुचि के सौम्य सज्जन थे। कविता और कहानी अच्छी लिखते थे।]

९/१

प्रिय मित्र

Lahore
8-11-45

पत्रोत्तर के विलंब होने पर स्वयं समझ गया था कि तुम कहीं बरेली छोड़कर चले गये हो और अब मैं सुधवैं पत्र लिखने वाला था कि तुम्हारा पत्र आ गया। मुझे आशंका हो रही थी कहीं बीमार तो नहीं हो गये, किन्तु अब सारा detail जानकर संतोष हुआ। जुलाई में यहाँ मेरे भाई आये थे, एक माह रहे थे। घर के समाचार ठीक हैं, मैं पूर्ववत् चल रहा हूँ और कोई नवीन घटना मेरे साथ नहीं घटी है, जिसका detail मैं आप को दूँ। भाई केदार नाथ शुक्ल की सफलता पर बधाई। मैं अभी उन्हें भी पत्र लिखने जा रहा हूँ।

कविताएँ आपकी दोनों बड़ी उत्तम हैं। वीर रस का यह प्रथम प्रयास (मेरी समझ से) भी अच्छा बन पड़ा है। 'अधूरा चुम्बन' तो लाजवाब है। Running sonnet में आपकी mastery देखकर मुझे रश्क हो रहा है। इस पर अब आपका अच्छा अधिकार हो गया है और इसमें sonnet अच्छा बन पाता है। Expression के लिए इसमें अच्छा स्थान मिल जाता है। आशा है आप भविष्य में भी इसी प्रकार कुछ भेज कर अनुगृहीत करते रहेंगे।

अब आप ताजमहल के बहुत करीब पहुँच गये हैं। अवकाश मिलने पर उस प्रेम-प्रतीक को अवश्य देखेंगे और वह अवश्य ही कुछ न कुछ आपकी कल्पनाओं को गति देगा।

जैसा कि मैं आपको पहिले लिख चुका हूं, यहाँ society कम होने के कारण मैं कुछ लिख नहीं पाता। इसलिए मैं आपके पत्रों, विशेषकर कविताओं, का उत्सुक रहता हूँ कि मुझे कुछ प्रेरणा मिलती है, लिखने की साध बढ़ती है।

मैंने भी इधर कुछ sonnet लिखे हैं। दो भेज रहा हूँ। मुझे तो आपके पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता रहती है। अतः त्रुटियों को लिख भेजेंगे।

मंगला प्रसाद

१०/२

लाहौर

भाई किशोरी १३-१-४६

तुम्हारी सलाह के अनुसार अब मैं तुम्हें कुछ लिख रहा हूँ। कोई खास बात तो लिखने के लिए है नहीं। मैं इसी प्रकार चल रहा हूं। संसार भी अपनी गति जा रहा है। इधर मैंने जो एक दो चीजें लिखी हैं, उनको तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। तुमसे कुछ प्रेरणा प्राप्त कर लिखने का उत्साह बढ़ता है—इसीलिए।

इस स्वर्ण सदन की रूप-राशि, क्यों बिखरी हो मानस-पट पर ?
चांदी की सरिता सदृश मांग, घन सी अलकों का बल लेकर।
है चमक रहा ऊषा ललाट, विद्युत प्रकाश का कण लेकर
क्यों आई हो चुपके-चुपके, बिखरे सपनों के क्षण लेकर।
ऊषा रजनी के चुंबन पर, अंकित करती निज चरण चाप
वैभव गरिमा के गौरव को कर चूर-चूर, तज सब प्रताप
श्रद्धा अर्पण की माया तो, ले नव यौवन का नव 'भिशाप
बढ़ आई हो सूने पथ पर, लेकर मानस का मधुर पाप
नित आती हो माया लेकर, यौवन की सुखमय मधुर साध
तव कर्ण-मूल की लाली को, पलकें लेती हैं सदा बाँध
पर उमड़ न पाई मानस की, जो भावमयी सरिता अगाध
है छल-छल कर बहती जाये, मेरे मन-पाहन पर अबाध
तुम रजत-राशि अंगारों से, लिपटी रहती हो दिवस रात
हो तरल सिहर उठती टलमल, जब पवन जगाता तुम्हें प्रात
मेरा मन मादक मद-विभोर, क्यों रहता तेरी सुरभि स्नात
क्यों होड़ लगाये हो रंगिनि, मेरे जीवन के साथ-साथ

× × ×

पता नहीं ये कौन से छंद हैं और इनमें कोई ध्वनि-साम्य है कि नहीं, किन्तु मुझे जैसे भाया है लिख मारा है। मैंने इसको जानने का प्रयत्न भी नहीं किया है। यह कष्ट सदैव से आप पर रहा है–आप ही इसे जानें। हाँ, यह मैं कह सकता हूँ कि उसकी प्रेरणा एक ही स्थान से प्राप्त हुई है।

इसके अतिरिक्त मैंने कई कहानियाँ भी लिखो हैं, जो कभी आपको भेजूंगा या भेंट होने पर दिखलाऊँगा। वायुमण्डल परिवर्तित हो जाने से कुछ इधर आते हुए अपरिचित सा अनुभव करता हूँ, किन्तु आपके पत्रों के साहचर्य से कुछ-कुछ अकेलापन दूर कर पाता हूँ। कभी-कभी भय होता है कि मैं अप्रगतिशील कविताएँ तो नहीं लिख रहा हूँ, जिसे आज का साहित्यिक जगत स्थान ही नहीं देता, किन्तु ठुकराता भी है, अपमानित करता है। किन्तु मैं प्रयत्न करके भी, जिसे वे प्रगतिशील कविताएँ कहते हैं, नहीं लिख पाता। स्वातःसुखाय ही हैं। अतः मैं अपने को आप तक ही पहुँचा कर सुखी हो जाता हूँ।

आशा है आप द्रुत-गति से बढ़ रहे होंगे। घर से कुछ मसाला लेकर भी आए होंगे और यदि मेरे घर भी गए हों, तो समाचार देंगे।

आपका
मंगला प्रसाद

११/३

लाहौर

भाई किशोरी लाल २७-२-४६

आज मैं आपको पत्र लिखने वाला था कि आपका पत्र मिला। कल मैंने भाई केदारनाथ जी को लिखा है। उनके पत्र से भी मुझे पता चला कि तुम इनके यहाँ कवि सम्मेलन का President होकर गये थे। मैं तो तुमको आधुनिक कवि समाज का President देखना चाहता हूँ। और मेरी समझ के अनुसार तुम्हारी प्रतिभा जिस प्रकार सर्वतोमुखी है, वैसे शायद वर्तमान युग में किसी भी कवि में नहीं है। हम लोगों के जितने भी साथी हैं एक से एक बढ़कर धुरंधर हैं और यदि इनकी रचनाएँ प्रकाश में आएँ तो लोग चकित होंगे और उनका भी उत्साह बढ़ेगा। आज का युग प्रचार का युग है, जहाँ दुलारे लाल जैसे लोग भी बड़े कवि में गिने जा सकते हैं, वहाँ वह क्यों न स्थान पाएँ, जिनका पूरा-पूरा हक होता है। रुपये की दृष्टि से मेरी यह नौकरी अच्छी है- २००/ या २५०/ से कम मासिक औसत नहीं पड़ता, किन्तु सम्मान की दृष्टि से यह कुछ भी नहीं है-जीवन भी कोई नहीं है-मैं इसे प्रेम भी नहीं करना, छोड़ना भी नहीं चाहता, चल रहा है। घर रुपयों की आवश्यकता रही, मैं देता गया, घरवालों ने खर्च किया। सब कमाई वकील खा गये। हम लोगों को मिला केवल थोथा सा सम्मान। घरवाले चाहे भले प्रसन्न हों, कम से कम मैं रुपयों के इस प्रयोग से प्रसन्न नहीं। खैर, इसके अलावा भी मैंने कुछ रुपये इकट्ठे किये थे। अब इस महीने से इन्हीं रुपयों की सहायता से मैंने एक प्रेस खोल लिया है-बहुत छोटा सा। अभी न नाम है और न Printing Machine है। किन्तु आशा है शीघ्र ही इसका भी बन्दोबस्त हो जायगा। अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप देने के लिए यह मनःशान्ति का आयोजन

मात्र है—सफलता परमेश्वर के साथ है। मैं चाहता हूँ इस संघर्षमय जगत में प्रचार से संघर्ष से अपने साथियों के साथ एक बार साहित्य के क्षेत्र में आना और बड़े धूमधाम से आना। और इसमें तुमको सबसे बड़ा हिस्सा लेना है। सब कुछ तुम ही को करना है, क्योंकि यह सब भार मुझसे न सँभलेगा। अगर किसी इण्टर कालेज में मुझे जगह मिल जाय, तो उतनी खुशी नहीं होगी, जितनी कि किसी ऐसे कालेज में जहाँ तुम्हारे सम्पर्क में रह सकूं। तुमसे मैंने बहुत कुछ पाया है और अभी बहुत कुछ पाने की आशा भी करता हूँ। और मैं अपने लिए सदैव एक साथी की राय मान कर चलना ही श्रेयस्कर भी समझता हूँ। तुम जैसा कहोगे, वैसा ही कर लूंगा। मैं भी ट्यूशन के पक्ष में नहीं हूँ, किन्तु अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए मैंने इसे भी कर लिया है। मुझे किसी भी तरह बाजार में आना है।

आपके संशोधनों के लिए धन्यवाद। यह गन्दी आदत नहीं, दूसरों की गंदगी सुधारने की आदत है। मैं तो यह चाहता हूँ। मेरी गलतियाँ कोई सुधारा करे और कौन ऐसा साथी पाता है?

मैं फागुन में घर आने वाला था, किन्तु इसी प्रेस और ट्यूशन की वजह से न आ सका। अब गर्मी की छुट्टियों में आऊँगा और तुम मुझे सूचित करते रहना कि कहाँ हो। मैं तुमसे भेंट भी करूँगा। अपनी राय बराबर मुझे देते रहेंगे।

आजकल तो मैं दूसरों की किताबें छाप रहा हूँ। छपाई एक दूसरे प्रेस में पैसे देकर करवा लेता हूँ। उस पर उसी प्रेस का नाम भी रहता है, क्योंकि अभी Govt. की ओर से प्रेसों के Declaration नहीं मिल रहे हैं। 'प्रभाकर गाइड' नाम से एक पुस्तक आजकल चल रही है। दूसरी पुस्तक 'समर्थ स्वामी रामदास' जीवनी चल रही है। कागज की बड़ी दिक्कत है। कागज मिलते ही हम लोगों की पुस्तकें निकलने लग जायँगी। तब तक आर्थिक नींव भी दृढ़ हो जायगी, तो एक अपनी भी उसी खर्चे में निकल आएगी। मुझे बराबर गाइड करते रहोगे, यही आशा है।

तुम्हारा

१२/४ मंगला प्रसाद

२३०७ चरखेवाला

१९-१२-४६

भाई किशोरी,

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़ कर प्रसन्नता हुई, तुम इन दिनों व्यस्त हो और व्यस्त साहित्य सृजन में सुकवि भारतेन्दु के मनन और लेखन में और अगले वर्ष उसके प्रकाशन के सम्बन्ध में। तुम्हारी इस प्रकार की व्यस्तता तुम्हें ही नहीं, प्रायः सबको प्रिय होगी।

तुम्हारी अध्ययनशीलता, साहित्य सृजन में अनवरत तत्परता और उत्साह साधरणतया सबमें स्पर्धा उत्पन्न करने वाली हैं, अतः यदि मुझमें भी स्पर्धा उत्पन्न हो और यह अभिलाषा प्रबल हो कि मैं भी क्यों न ऐसा ही प्रयत्न करूँ, तो आश्चर्य क्या ? किन्तु संयोग से मैं प्रारम्भ से ही एक ऐसी दिशा में फेंक दिया गया हूँ, जहाँ उपयुक्त वातावरण का सर्वथा अभाव है।

तुम्हारी तीन रचनाएँ पत्र के साथ मिलीं। ताज पर जो रचना है, उसके अंतिम दो छन्द अत्यधिक सुन्दर बन पड़े हैं। तीसरी रचना भी बड़ी कमाल की है। 'करों ने दो विश्व मापे' आदि लाइनें तो बेहद सुन्दर हैं। राम गोपाल जी को भी मैंने आपकी रचनायें दिखाई थीं। वे तो जैसे हार मान गये हैं। वे कहते थे भाई मैथमैटिक्स मनुष्य को शुष्क बना देती है। अतः मेरी भावुकता मर गई है। मैं तो ऐसी सुन्दर कविताएँ नहीं कर सकता। लेकिन मैंने उन्हें उत्साहित किया कि यदि आप इन्हें पढ़कर इनकी प्रशंसा कर सकते हैं, तो आपकी भावुकता मरी नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि भाई लोगों में स्पर्धा हो तो स्वाभाविक ही है। मुझे प्रसन्नता है और अभिलाषा है कि आप उसी प्रकार सबके प्रति स्पर्धा के पात्र हों और मुझे विश्वास है कि जिस दिन आप प्रकाश में आवेंगे, लोगों को अवश्य हम लोगों जैसी ही स्पर्धा होगी।

एक दिन मैं और राम गोपाल, दोनों जने, पागल जी से मिलने गये थे, किन्तु उनसे भेंट न हो सकी। उनकी निर्मित मट्टी की कुछ मूर्तियाँ अवश्य देखने को मिलीं, जो निश्चय ही प्रशंसा के योग्य थीं। उन निर्जीव प्रतिमाओं पर सजीव भाव स्पष्ट हो रहे थे। पागल जी भी एक प्रतिभा हैं। किन्तु दुःख है वे भी आज की पूंजोवादी प्रथा के चक्कर में पिस रहे हैं और एक प्रकार से अन्धकार में ही हैं। पागल जी जिस प्रकार शब्द चित्र, भाव चित्र, पेंसिल स्केच बनाने में कुशल हैं, उसी प्रकार उनकी यह कृतियाँ भी थीं और इन सबमें एक समानता, एकरूपता ही पागल जी की विशेषता है।

मैं बड़े दिन की छुट्टी में काशी जा रहा हूँ।

पत्र दोगे, या काशी या दिल्ली। आशा है प्रसन्न होगे। विशेष फिर।

तुम्हारा

मंगला प्रसाद

७. प्रो० पद्म नारायण आचार्य, वाराणसी

[प्रो० पद्म नारायण आचार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जुलाई १९३८ में हिन्दी विभाग में प्रवक्ता होकर आये, बाद में वह प्रवाचक हुए। अंतिम समय में यह कार्यकारी विभागाध्यक्ष भी थे। यह प्रसाद और कामायनी के विशेषज्ञ थे। डा० गुप्त प्रारम्भ से ही (१९३८ से ही) प्रसाद-प्रेम के कारण उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आ गये। इन्हीकी प्रेरणा से इन्होंने कामायनी का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इनका निधन ३१ जनवरी १९६८ को काशी में ही हो गया।]

१३/१

श्री विश्व शांति संघ
भदैनी, काशी
१६।३।४७

प्रिय किशोरी लाल

आज आशीर्वचन देने की इच्छा हुई। तुम्हारा नाम अमर रहे, तुम्हारा रूप भी, तुम तो अमर वीर पुत्र हो ही। काशी में दंगा की बंशी बज रही है। आगामी नवरात्रि में विश्व शांति पत्रिका का सम्पादन आरम्भ होगा। जब विश्व की इच्छा होगी उसे मुद्रित और प्रकाशित करेगा। पूर्व रंग में तो गुरु शिष्य ही रहते हैं। वे ही पूरा नाटक खेलते हैं।

भाई 'प्रसाद साहित्य में मुसलमान' अथवा प्रसाद में मुसलमान और शांति-- ऐसे किसी विषय पर तुम लेख लिखो। मुसलमान क्या करें अथवा हिन्दू उनके लिए क्या करें? प्रसाद का उत्तर चाहिए।

प्रसाद का मौन सेवक
(पद्म)

१४।२

केशव जी की बीमारी में व्यस्त था। आज कनवोकेशन है। सविस्तर उत्तर पीछे दूंगा।

कामायनी का अनुवाद प्रो० साहनी को दिया है। भारतेन्दु की पाण्डुलिपि फिर मेरे पास आ गयी। कारण तुम्हें फिर लिखूंगा। आजमगढ़ में शैदा जो मेरा चित्र चाहते हैं। है तो। पार्सल करने की फुरसत मिले तो भेजूं।

पद्म
(२७।११।५०)

१५।३

श्री

प्रिय किशोरी लाल

भदैनी २।२२
वाराणसी
२६-४-६२

तुम्हारी पदोन्नति का समाचार पाकर यहाँ के सभी लोग प्रसन्न हुए। राजेश्वर, मंजू, माधुरी, कामेश्वर तथा श्री प्रकाश सभी के समवेत कंठ से मैं बधाई दे रहा हूं। हृदय तो सहृदय का है। वह मेरे पास कहां। उसकी चर्चा कैसे करूँ? तुम जमानियाँ डिग्री कालेज के प्रिंसिपल हुए। अभी तक तुम आजमगढ़ में थे, वह मेरा जिला था,

अब गाजीपुर में आ गए। वह मेरी प्रातः स्मरणीया माँ और प्रिया दोनों का जिला है। तुम मुझे छोड़कर बाहर नहीं जा सके। जब बढ़ना ही है तो एक कदम और आगे बढ़ो—काशी आ जाओ। तुम्हारी शोभा तो यहीं रहने में है। आचार्य विश्वनाथ जी और डा० किशोरी लाल सभी नहीं हो सकते। वे माँ सरस्वती की विशेष कृपा के फल हैं।

साशीर्वाद

पद्म नाराणय आचार्य

१६।४

श्री

प्रिय किशोरी लाल जी

Varanasi—5
28–7–1963

बहुत दिनों से भैंट नहीं हुई। नया सत्र आरम्भ हुए भी पर्याप्त समय बीत गया।

तुम्हारी छोटी बहन किरण इस वर्ष शोध प्रबन्ध लिखने में लीन है। अपेक्षित सामग्री चाहिए। एक बार जयपुर जाना है। पर जो तुम्हारे पास है, वह तो शीघ्र सुलभ हो सकता है।

'आशा है तुम्हारे बच्चे, बच्ची, माँ समेत सुप्रसन्न हैं।' किरण का विषय है—
A Critical study of the Niranjan school of Nirgun Bhakti shakha

साशीर्वाद

पद्म नारायण आचार्य

८. जगत नारायण आचार्य, गाडरवारा-मध्यप्रदेश

[श्री जगत नारायण आचार्य प्रो० पद्म नारायण आचार्य के अग्रज थे। श्री पद्म नारायण आचार्य के यहाँ आते जाते डा० गुप्त उनके सम्पर्क में आये। प्रो० आचार्य के निधनोपरांत इस परिवार से अपना सम्पर्क बनाये रखने के लिए १९७० ई० में डा० गुप्त ने इनसे श्री सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी। यह गाडरवारा में रहते थे। अब यह भी दिवंगत हो गये हैं।]

१७.

भदैनी, वाराणसी
३–२–६८

गत दिनांक ३१-१-६८ की संध्या ६ बजे हमारे अनुज पं० पद्म नारायण आचार्य का स्वर्गवास हो गया। दिनांक ९-२-६८ को दशगात्र तथा दिनांक १२-२-६८ को उनका त्रयोदशाह श्राद्ध होगा।

जगत नारायण आचार्य

९. श्री नारायण आचार्य

[श्री नारायण आचार्य प्रो० पद्म नारायण जी आचार्य के बड़े पुत्र हैं। यह अपने उपनाम कामेश्वर से अधिक जाने जाते हैं। यह भारतीय सेना में होगये थे। डा० गुप्त को यह अग्रज और गुरुवत मानते हैं]

१८।१

S. Acharya

प्रणाम, २४-७-७०

१. आपका कृपा पत्र मिला। पढ़कर एक बार आँखें भर आईं।

२. परम्परा की रक्षा कभी भी पुत्रों से संभव नहीं होती है। शिष्यों से ही स्वाध्याय और अध्यातम की परम्परा आगे बढ़ पाती है—पुत्र भी इस प्रकार की चेष्टा में तभी सफल होता है, जब शिष्यत्व प्राप्त हो। हम सब अयोग्य संतान हैं। आचार्य शुक्ल या श्यायसुन्दर दास के समान पिता जी की सामग्री भी हम सबके हाथ नष्ट न हो, ऐसा सोचकर आपसे कहा है।

३. घर के कागज-पत्र बच्चा के पास हैं। मैंने उनको कहा भी था। अभी वे जिस मनःस्थिति में हैं, उसमें बाबू जी की इन सामग्रियों का कोई महत्त्व नहीं। आप यदि किसी प्रकार इसमें कुछ कर सकेंगे, तो यह बड़ी कृपा होगी। मुझे बाबू जी के प्रति एक 'आक्रोश' जीवन भर रहा, किन्तु प्रायः गोष्ठियों और अन्य चर्चा करते समय उनकी बातें मेरे लिए एक आकर्षण की वस्तु रही हैं। हममें से कोई भी उनकी बात को पूरा नहीं समझता था। उनके सम्पर्क के सभी लोगों में आपको चुनने में मेरा यही अभीष्ट है कि आप उनके निकट प्रारंभ से रहे हैं तथा उनकी स्थापनाओं और व्याख्याओं को इतनी सूक्ष्मता से परखा कि वे स्वयं प्रायः आपकी पढ़ मुग्ध हो जाते थे। कामायनी की टीका सन् ५० में जब आप लिख रहे थे, तो बाबू जी आपके जाने के बाद नित्य लोगों से आपकी चर्चा करते थे।

बाबू जी प्रायः लोगों की चर्चा करते हुए असंतोष व्यक्त करते थे, साथ ही कामायनी के बारे में 'बोध' का अभाव तो सामान्य बात थी। किन्तु आपके बारे में जैसी चर्चाएँ होती थीं, वह सुन कर प्रभावित होना पड़ता था। Hindi Review में Prof. B. L. साहनी की पंक्तियाँ पढ़कर बाबू जी आपकी याद किया करते थे। आज उनके न रहने पर कभी कभी मैं स्वयं के संतोष के लिए उनके शिष्यों की गणना करता हूँ, तो मुझे लगता है आप जो कुछ भी लिखेंगे, वह उनके ढंग की वस्तु होगी। दीदी किरण, नागेन्द्र जी आदि बाबू जी के निकट तब आए, जब बाबू जी कामायनी के व्याख्याता की अपेक्षा संत साहित्य के पाठक बन चुके थे। अरविंद का योग उनका चिन्त्य बन चुका था।

४. चि० बच्चा (राजेश्वर) के पास बाबू जी की कृतियों के नाम पर केवल दो Box मैंने देखे। एक में कामायनी सम्मेलन में हुए विभिन्न लोगों के लेख या भाषण हैं तथा दूसरे में कामायनी की टीका। अन्य चीजें बच्चा कहीं रखे होंगे। जिस रूप में वे रखे हैं, मुझे देखकर यही लगा कि सब नष्ट ही होंगे।

५. मैं यहाँ हूं। बच्चा स्वयं इन दिनों घर के विभिन्न विवादों में लगे हैं। दीदी को हम लोगों के व्यवहारों ने असतुष्ट कर रखा है। मैं व्यक्तिगत तो प्रयत्नशील हूँ कि बात रास्ते पर आवे, किन्तु बच्चा मंजू आदि की विचारधारा अनुकूल नहीं। दीदी दुःखी हैं।

६. मैंने बच्चा को पत्र देकर आपका नाम बताया है। आशा करता हूँ कि उनका उत्तर अनुकूल आवेगा।

७. आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें। अब आपको वह सब करना है, जो बाबू जी कर सकते थे अथवा करने वाले थे। घर की सामग्री के अतिरिक्त बाहर की कोई सामग्री हो, जिसमें हम सब वैधानिक अड़चन हों, तो आप बताइए, उसमें आपका एक छत्र अधिकार होने के लिए हम सब यत्न करें

S. Acharya
Ao (v) sewak
99 APO

सप्रणाम
कामेश्वर

१९।२

S. Acharya
C/o Ao (P) Yatrik
C/o 99 APO
Dt. 16-3-74

पूज्यवर,
प्रणाम,

(१) मैं गत मास **G. N. I.** (ग्रेट निकोबार द्वीप) पहुँच गया। पोर्टब्लेयर में आपके ही अनन्य Sri S. N. Chaubey जी मिले।

(२) दीदी (किरन) अब स्वर्गीय रामदहिन जी मिश्र वाले भदैनी के आवास में आ चुकी हैं।

(३) आपका स्वास्थ्य कैसा हैं? कृपा पत्र देते रहें। सबको यथायोग्य।

सप्रणाम
कामेश्वर

S. N. Acharya
Auditor C/o 99 Ao (P)
Yatrik
C/o 99 A. P.O.

यहाँ कलकत्ता से जहाज से Port Blair आकर तदनंतर यहाँ से Inter Island ship से यहाँ की यात्रा करनी पड़ती है। पत्राचार का माध्यम यही यात्रिक ship sailing है। अतएव पत्र बिलंब से जा रहा है, अन्यथा न मानेंगे। शीघ्र ही हम सबको आगे जाना हो, ऐसी संभावना है। मैं सूचना दूँगा।

मेरे लिए कुछ करणीय हो तो लिखिए।

आपका आज्ञाकारी
कामेश्वर
(श्री नारायण आचार्य)

१०. डा० धीरेन्द्र वर्मा

[डा० धीरेन्द्र वर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के सुप्रसिद्ध अध्यक्ष थे।]

२०

प्रिय महोदय,

प्रयाग
२२ ९-४९

यहाँ एक विद्यार्थी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पूर्ण अध्ययन डी० लिट० के लिए स्वीकृत कराया था, किन्तु वे काम नहीं कर पा रहे हैं।

भवदीय
धीरेन्द्र वर्मा

११. डा० प्रेमचन्द वाजपेयी, फिरोजाबाद

[डा० गुप्त १९४५-४८ में श्री रामचन्द्र कन्हैया लाल इण्टर कालेज में तीन वर्षों तक अंग्रेजी के प्रवक्ता थे। वाजपेयी जी उस समय वहाँ कामर्स के अध्यापक थे। बाद में यह उस विद्यालय के डिग्री कालेज हो जाने पर विभागाध्यक्ष हुए। प्रो० कृष्ण कुमार मिश्र, बाजपेयी जी आदि से डा० गुप्त की घनिष्ट मैत्री थी। यह गोल बराबर घूमने के लिए साथ-साथ जाया करती थी। डा० गुप्त का संपर्क बाजपेयी जी से अब भी बना हुआ है।]

२११

फिरोजाबाद
७-२-५०

प्रिय गुप्त जी,

तुम्हारा पत्र मिला, एक आँधी उठी, फलस्वरूप निम्नलिखित बिंदु गिरे, कदाचित तुम्हारी उर्वरा भूमि पर मेरे प्रति भाव रूपी अंकुर उत्पन्न करने में समर्थ हों।

मौन हम कैसे रहेंगे !
पा सजनि तेरा इशारा
मूक वाणी का सहारा
हृदय के उच्छ्वास मेरे
द्रवित होकर बह चलेंगे।
कादम्बरी के बादलों से
पा तुम्हारे प्रिय सँदेसे
जानते निरुपाय कितना
मीन-से बस तड़प लेंगे।
उर जानते अपनी कहानी
हाय, पर उनके न वाणी
हृदय से बादल उमड़ बस
नयन से निर्झर झरेंगे।
मौन हम कैसे रहेंगे

सबसे मेरा यथायोग्य।

तुम्हारा ही
प्रेमचंद वाजपेयी

२२।२

P. C. Bajpai — Phone–247
Reader–Head Deptt. of Econ. — S. R. K. college, Firozabad
16-10-80

प्रिय डा० गुप्त जी,
सादर एवं सप्रेम प्रणाम।

पत्रवाहक श्री हरिबाबू गुप्ता केवल विद्यालय के लिपिक ही नहीं वरन् अपने बड़े ही निकट के व्यक्ति हैं। डा० मक्खन लाल पराशर हिन्दी विभागाध्यक्ष के निर्देशन में शोधकार्य कर रहे हैं। शोध सम्बन्धी कुछ सामग्री आप इन्हें उपलब्ध करा सकते हैं, अतः आपके पास आकर आपकी सहायता के यह प्रार्थी हैं। इसके अतिरिक्त आप इनके विषय में और भी इन्हें मार्ग-दर्शन कर सकेंगे, ऐसा उनका तथा इनके निर्देशक डा० पराशर का निश्चित मत है। मेरा मत क्या है, यह स्पष्ट करना व्यर्थ है, क्योंकि मेरा अब भी ऐसा विचार हैं, फिरोजाबाद में आप सरीखा अभी तक हिन्दी का विद्वान नहीं आया है। (यद्यपि नगर श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का है) फिर भी साहित्य के क्षेत्र में आप सरीखो पैनी दृष्टि का कोई भी विद्वान इस नगर में इतने समय तक नहीं रहा।

शेष कुशल हैं। कदाचित बहुत दिनों से इस ओर आपके आने का कोई प्रोग्राम नहीं बना है।

श्रीमती गुप्त को सादर प्रणाम। सभी बच्चों को मेरा आशीर्वाद।

आपका ही

प्रेमचंद वाजपेयी

१२. मलिखान सिंह

[पूर्णतया अपरिचित]

२३

रीठरा

२ जुलाई १९५० ई०

आदरणीय प्रो० साहब,

मई के 'साहित्य संदेश' में आपने कामायनी के कुछ शब्दों पर अपने विचार प्रकट किये है, जिनके द्वारा कामायनी के अध्ययन में मुझे बड़ी सहायता मिली। इसके लिए धन्यवाद।

इस पत्र के द्वारा में आपसे 'ऊषाल' शब्द का अर्थ पूछना चाहता हूँ। ऊषाल शब्द 'उषा' में 'ल' प्रत्यय लगाने से बन जाता हैं। क्या इसका अर्थ प्रभात हो सकता है ? अगर नहीं तो क्या ?

आशा है कि पत्रोत्तर शीघ्र मिलेगा।

ग्राम—रीठरा
डा०—शिकोहाबाद
मैनपुरी (यू० पी०)

भवदीय

मलिखान सिंह

१३. रामचन्द्र वर्मा

[डा० गुप्त के 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' के प्रकाशक और सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं कोशकार।)

२४

साहित्य रत्न माला कार्यालय

२० धर्म कूप, बनारस-१

६-२-५३

प्रियवर,

२ तारीख का कृपा पत्र और शुद्धि पत्र मिला। मैंने उसे ठीक करके प्रेस भेज दिया है। पं० पद्म नारायण आचार्य ने अभी तक कुछ लिखकर नहीं दिया। वे कलकत्ते

गये हैं, परसों तक आयेंगे, तब शायद कुछ लिखें। आप जब होली पर काशी आवें, तब अपने साथ—'प्रसाद चिंतन' और कामायनी के अंग्रेजी अनुवाद का भी एक अंश अवश्य लेते आवें। यदि कामायनी का अंग्रेजी अनुवाद आप चाहें, तो मैं उसके प्रकाशन का प्रबंध कर सकूंगा। 'प्रसाद चिंतन' तथा प्रसाद सम्बन्धी लेख-संग्रह भी छापने का विचार करता हूँ। हिन्दू विश्वविद्यालय के बोर्ड की बैठक इस मास के अन्त तक होगी। विकासात्मक अध्ययन २१०० छपा है।

भवदीय
रामचंद्र वर्मा

१४. दुष्यन्त कुमार, इलाहाबाद

[सुप्रसिद्ध कवि और हिन्दी गजलगी। डा० गुप्त की इनसे एक बार भेंट हरिऔध कलाभवन आजमगढ़ के एक कवि सम्मेलन में हुई थी। तब यह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्र थे।]

२५

विहान त्रैमासिक — ११ कानपुर रोड, इलाहाबाद
२३-२-५३

प्रिय वन्धु,

प्रणाम।

आपका पत्र मिला। प्रसाद साहित्य पर आपने जो पुस्तकों की सूची माँगी है, उसे मैं कुछ विलंब से भेज सकूंगा। अभी मेरी परीक्षाएँ (२४ मार्च) हैं तथा पत्रिका के काम में भी व्यस्त हूँ।

मैं उल्टा आपसे निवेदन करूँगा कि कोई (A-one) लेख इधर लिखा हो तो भेजिएगा। 'विहान' के 'सरकुलेशन' की समस्या हल नहीं हो रही है, इसलिए सभी मित्रों, सम्बन्धियों और परिचित बन्धुओं को उसका ग्राहक बना रहा हूँ।

आपके पास भी वी० पी० भेजूंगा, जिसे आशा करता हूँ आप छुड़ा सकेंगे। पत्र आपको पसन्द आयेगा, फिलहाल यह आश्वासन दे सकता हूँ।

देखिए कुछ कीजिएगा जरूर। और विहान के लिए अगर आप कुछ कर सकें, तो अतिरिक्त आभार मनूंगा।

स्नेहाकांक्षी
दुष्यंत कुमार

१५. सत्यपाल विद्यालंकार, दिल्ली

[पूर्णतया अपरिचित]

९७५ शिवाजी स्ट्रीट
आर्य समाज रोड
करौल बाग, नई दिल्ली
दि० १६-११-५३

प्रियवर श्री किशोरी लाल जी,
नमस्ते ।

आपके पास मेरी लिखी 'कामायनी का सरल अध्ययन' पुस्तक है, ऐसा मुझे श्री राम गोपाल जी से मालूम हुआ है । मेरे पास उसकी कोई प्रति नहीं है । उसके पुनः प्रकाशन के लिए इधर कुछ प्रकाशक तैयार हैं । मुझे उस प्रति की आवश्यकता है । उसे बहुत कुछ परिवर्तन और संशोधन के साथ शीघ्र ही प्रकाशित करवाना है । यदि आप वह प्रति मुझे भेज सकें, तो अत्यन्त कृपा होगी ।

आपका
सत्यपाल विद्यालंकार

१६. अमृतलाल चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

[अमृतलाल चतुर्वेदी फिरोजाबाद के रहने वाले हैं । यह शीतला गली आगरा में रहकर वकालत करते हैं । यह ब्रज भाषा के श्रेष्ठ कवि हैं । डा० गुप्त ने इन्हें कई बार देखा है कवि सम्मेलनों में, पर संपर्क नहीं है ।]

२७.

अमृत लाल चतुर्वेदी

शीतला गली
आगरा
२९-१-५५

प्रिय गुप्त जी,

आपकी 'राधा' मिली । अनेकानेक धन्यवाद । पुस्तक एक सरसरी दृष्टि से देखी । सवैया एक कठिन छंद आपने चुना है । शायद ही कोई ऐसा भाग्यवान सफल महाकवि हो, जिसके सवैया रबड़ छंद न हों । यदि आपके भी ऐसे ही हों, तो भी कोई हानि नहीं । पर मैं तो आपको बधाई इस बात पर दिये बिना नहीं रह सकता कि ब्रज में न वस कर, ब्रज भाषा में आपने अपनी लेखनी उठाई है । शायद प्रेस की असावधानी से बहुत से शब्दों का रूप खड़ी बोली का हो गया है, जो कानों को खटकता है । खैर दूसरे संस्करण में ठीक हो जायगा । "ज्यौं बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत", मैं तो इसी नाते से आपको पुनः बधाई देता हूँ । ब्रज भाषा की उन्नति देखकर मेरी यही अवस्था है, उस पर छपाई कागज सुन्दर और मूल्य कम है ।

सप्रेम
अमृत चतुर्वेदी

१७. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, आगरा

[यह प्रसिद्ध साहित्यकार, टीकाकार एवं समीक्षक हैं। डा० गुप्त का इनसे पूर्णतया अपरिचय है।]

२८.

आगरा
७-२-५६

श्रीयुत डा० किशोरी लाल जी,

सादर नमस्ते।

आप कृपा कर यह बतलाने का कष्ट करें कि श्री जयशंकर प्रसाद रचित 'चित्राधार' की प्रति कहाँ देखने को मिल सकती है। यदि आपके पास कोई प्रति हो, तो क्या आप कुछ दिनों के लिए दिखाने का कष्ट करेंगे ? मैं प्रसाद जी की कामायनी पर अनुसंध.न कार्य कर रहा हूँ। श्री पद्मनारायण आचार्य एवं बनारस के डा० राजेन्द्र नारायण शर्मा मुझे भली प्रकार जानते हैं। आशा है आप कोई उचित समाधान-युक्त उत्तर देंगे। आपकी पुस्तक 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' हमारे लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई है। मैंने अपने सभी प्रसाद के विद्यार्थियों से आपकी पुस्तक ही प्रशंसा की है और उन लोगों ने भी मुक्त कंठ से आपके कार्य की सराहना की है। आपसे अपरिचित होने के नाते और अधिक क्या लिखूं। आशा है सकुशल होंगे। प्रथम संस्करण के बारे में आपने लिखा ही है, परन्तु द्वितीय संस्करण का पता नहीं चलता।

भवदीय

द्वारिका प्रसाद सक्सेना

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत)
प्राध्यापक बलवंत राजपूत कालेज
(हिन्दी संस्कृत विभाग)
आगरा

१८. श्यामापति पांडेय, आजमगढ़

[श्यामा पति पांडेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी के एम० ए० थे। यह आजमगढ़ में रहकर 'संदेश' नामक साप्ताहिक पत्र निकालते थे, प्रभात प्रेस के स्वामी थे। भूतों की कहानियाँ अच्छी लिखते थे। इन्होंने मीरा पर पहली आलोचना-पोथी लिखी थी। यह डा० गुप्त के मित्र थे। दिवंगत।]

२९.

संदेश

(सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक)

आजमगढ़

पत्र सं०.........   दिनांक ४।२।५६

प्रिय श्री गुप्त जी,

होली के अवसर पर सदैव की भाँति इस वर्ष भी 'संदेश' का विशेषांक ता० २६ मार्च ५६ को प्रकाशित होगा।

आपसे अनुरोध है कि इस अंक के निमित्त अपनी रचनाएँ (एक गद्य, एक पद्य) शीघ्र भेजने का कष्ट करें, जिसमें हम उन रचनाओं को उचित स्थान पर दे सकें।

सामग्री १५ मार्च को प्रेस में दे दी जाएगी।

धन्यवाद   आपका

श्यामापति पांडेय

१९. श्रवण कुमार

[श्रवण कुमार श्रीवास्तव गोरखपुर के निवासी हैं। अच्छे गीतकार हैं। पहले यह आजमगढ़ में पूर्ति विभाग में इन्स्पेक्टर थे। फिर कासिमाबाद, गाजीपुर में उद्योग–अधीक्षक हुए। बाद में होम-गार्ड विभाग में वाराणसी में जिला कमान्डेन्ट हुए।]

३०.

कासिमाबाद

प्रिय गुप्त जी,   २९-७-५७

मैं कह नहीं सकता कितनी प्रसन्नता हुई मुझे यह जानकर कि आपको ५०० रु० पुरस्कार स्वरूप उत्तर प्रदेश सरकार से मिला है, भगवान आपका प्रगति-मार्ग और प्रशस्त करे। दुख यदि है तो केवल इसी बात का कि इन बातों की तनिक सूचना भी आप लोग नहीं देते। कम से कम १/५०वां भाग का मैं अपने को बिना बनाए हुए अधिकारी समझता हूं। खैर जब कभी वहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उधार मय सूद के साथ वसूल हो जायेगा। आपकी थीसिस का क्या हाल हैं? एक 'डाक्ट्रेट' की कमी रह गई है, न जाने वह कब पूरी होगी।

मुझे एक प्रमाण-पत्र की आवश्यकता है, जो प्रिंसिपल महोदय का होना चाहिए। मैंने 'ला' १९५६ ई० में किया है। रोल नंबर २४६ था। अगर आप उनसे लेकर मेरे पास भेज सकें, तो बड़ी कृपा होगी। मुझे अगस्त के पहले सप्ताह में P. S. C. के सामने साक्षात्कार के लिए जाना है।

वैद्य जी के पत्र पर हस्ताक्षर देखा था मैंने। सच कहता हूं पुराने दिन और पुरानी बातें जब याद आती हैं, तो अपनी इस आजकल की जिन्दगी से नफरत हो जाती है। किन्तु चारा ही क्या है।

वैद्य जी, शंदा जी तथा सूंड़ से मेरा प्रणाम कहिएगा और यह भी कहिए कि भूलेंगे नहीं।

यहाँ का वातावरण कुछ अजीब है। ललित कलाओं की ओर तो ध्यान जाने ही नहीं पाता।

मैं किसी हाल में सही ऐ दोस्त
एक तअल्लुक मगर है तुझसे जरूर

पत्रोत्तर शीघ्र देंगे ।

आपका
श्रवण कुमार
Suptt. Industry
Qasimabad Block
Distt, Ghazipur

२०. अरविन्द कुमार देसाई, सूरत

[पूर्णतया अपरिचित]

३१

मान्यवर श्री प्रोफेसर साहब
सादर एवं सविनय वंदे ।

c/o एम० टी० बी० कालेज
सूरत (W. R.)

आपकी लिखी हुई पुस्तक 'भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि' देखकर यह पत्र लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ । आशा है एतदर्थ क्षमा करेंगे । उपरोक्त पुस्तक की भूमिका पढ़ने से मुझे प्रतीत हुआ है कि भारतेन्दु साहित्य का आपने पूर्ण परिचय पा लिया है । मैं हिन्दी और गुजराती में एम० ए० करने के बाद 'भारतेन्दु और नर्मदः एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय लेकर महानिबन्ध लिखने का विचार कर रहा हूँ । गुजराती साहित्य में नर्मद का ठीक वही स्थान हैं, जो भारतेन्दु का हिन्दी में है । नर्मद ने भी काव्य, नाटक, निबन्ध आदि अनेक काव्यांगों पर अधिकार पूर्वक लेखनी चलाई है । नर्मद सूरत का ही था, अतः उसका सम्पूर्ण साहित्य यहां उपलब्ध है । भारतेन्दु के साहित्य के लिए मैं प्रयत्नशील हूं । 'भारतेन्दु नाटकावली' के समान उनके पद्यों का संग्रह और गद्य संग्रह कहीं से प्रकाशित हुआ हो, तो आप अवश्य लिख भेजने का कष्ट करें । भारतेन्दु पर किसी ने रिसर्च कार्य किया है क्या ? अथवा आजकल कोई कर रहा है ? भारतेंदु साहित्य और उसको आलोचना के ग्रंथों की सूची कहीं से उपलब्ध हो सकती है ? सभा के लिए आपने जो भारतेंदु काव्य संग्रह तैयार किया था, वह प्रकाशित हुआ है ? खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर पटना के द्वारा प्रकाशित 'हरिश्चन्द्र कला' के छः भाग कहीं प्राप्त हैं क्या ? भारतेन्दु साहित्य पर कुछ अच्छे ग्रन्थों के नाम व प्राप्ति-स्थान लिख भेजने का कष्ट करेंगे, तो विशेष अनुगृहीत होऊँगा । कष्ट के लिए क्षमा करें । उत्तर की प्रतीक्षा में—इस विषय में अन्यत्र कहाँ से मार्ग दर्शन मिल सकता है ? सो भी लिखने की कृपा करें ।

भवदीय

विनीत
अरविंद कुमार देसाई
एम० ए०, साहित्य रत्न
हिन्दी अध्यापक
एम० टी० बी० कालेज, सूरत

टि०—डाकखाने की मुहर २०-८-५७ की है।

२१. जे़ड० अब्बास

[पूर्णतया अपरिचित]

३२

Lko
19-11-(57)

Rev. Prof. Saheb,

I am writing this to you on behalf of the members of Lko Varsity Independent Students Organisation. According to the programme chalked out by the organisation a fortnightly journal is also to be published. In near future its maiden issue will be in the hands of students.

In accordance with above, I beg to say that I saw your 'Expectation' in one of Shibli College magazines and appreciated it greatly.

The only object of writing this letter to you is to obtain permission from you to increase the charm of the said magazine with your above - mentioned translation. I firmly hope, you will very kindly consent the publication. To avoid me from botheration please write by return post. Thanking you abundantly in anticipation.

Z. Abbas.

२२. इन्द्रदेव सिंह

[महारानी लाल कुंवरि डिग्री कालेज बलरामपुर में अंग्रेजी के प्रवक्ता। गोरखपुर विश्व विद्यालयीय संबद्ध महाविद्यालय प्राध्यापक संघ के एक वार्षिक अधिवेशन में बलरामपुर में ही भेंट।]

M. L. K, Degree College
Balrampur
8-9-61

My Dear Doctor Saheb,

३३.

I am very eager to read your translation of Kamayani. When you came here, you told me your translations were published in the College magazine. I will be thankful if you kindly send me copies of the magazine, in which the translations of Kamayani were published.

Thanking you very much.

Your's Sincerely
Indra Dev Singh
Lect in English

P. S.

Do you know where shri Shankar pal is at present and what is his adress.

२३. नारायण दत्त शर्मा, मथुरा

[पूर्णतया अपरिचित]

३४.

नारायण दत्त शर्मा
एम० ए० बी० टी०
प्रधानाचार्य

जवाहर वि० इण्टर कालेज
मथुरा
ता० १५–१–५८

प्रिय गुप्त जी,

डा० ग्रियर्सन के Modern Vernacular Literature का अनुवाद देखने को मिला। आपने ग्रियर्सन संख्या २३१ पृष्ठ १८३ पर अपनी टिप्पणी में श्री तत्ववेत्ता जी का समय सं० १५५० के आस-पास ठहराया है। डा० ग्रियर्सन का मान्य सं० १६२३ ई० आपने अशुद्ध माना है, ऐसा क्यों ?

कृपया अपने निश्चय का प्रामाणिक आधार लिखकर सूचित करें। धन्यवाद। उत्तर शीघ्र दें।

भवदीय
नारायण दत्त शर्मा

कृपया वृन्दावन दास संख्या २२७ पृ० १५३ के सम्बन्ध में भी आपको कोई अधिक जानकारी हो तो लिखने का कष्ट करें।

नारायण दत्त शर्मा

२४. अमरनाथ दुबे, बम्बई

[पूर्णतया अपरिचित]

३५

बम्बई-१
२३–४–५८

श्रद्धेय गुप्त जी

सादर नमस्ते

बिना पूर्व परिचय के आपको पत्र लिख रहा हूँ। इस कारण विस्मय का होना स्वाभाविक है ही, पर मुझे भी दुख है तो केवल इसी बात का कि इतना समीप होकर भी मैं आपसे अपरिचित ही रहा। वैसे मैं आजमगढ़ में डो० ए० वी० एवं एस० के० पी० का छात्र होने के नाते स्वाभाविक रूप से स्थानीय घटनाओं से परिचय कर ही लिया करता था, क्योंकि उनके प्रति एक मोह जो था। पर इधर बम्बई के व्यस्त जीवन के कारण विगत कुछ वर्षों से मैं आपके इतने सन्निकट न आ सका, जिससे कभी साक्षात्कार हो सके। छुट्टियाँ होने के कारण और भी यह सुयोग न आ सका।

इधर आपकी 'भारतेन्दु एवं अन्य सहयोगी कवि' पुस्तक भी पढ़ी। मैंने उसे अपनी लाइब्रेरी में भी रखवा दिया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की देख-रेख में मैं 'भारतेन्दु युग का काव्य' विषय लेकर शोध कर रहा हूँ। आशा है इस विषय में आपसे भी कुछ सहायता प्राप्त कर सकूँगा। ग्रीष्मावकाश में मैं घर आने वाला हूँ। यदि आप आजमगढ़ में ही हैं, तो वहीं पर भेंट तो होगी ही।

यदि आप अन्यथा न मानें तो कृपया अपने अवकाश के दिनों के कार्यक्रम के बारे में सूचित करें, जिससे मैं तदनुकूल आपसे मिल सकूँ। मैं बम्बई में लगभग १३-१४ मई तक रहूँगा। इसके बाद लगभग २० दिन के लिए घर आने का विचार है। आशा है आप सकुशल एवं सानन्द होंगे। आपके व्यस्त जीवन में एक व्यवधान बन जाने के लिए क्षमा तो माँग ही लेता हूँ, पर साथ ही साथ आपकी कृपा के लिए आभारी भी रहूँगा।

हिन्दी विभाग
सिद्धार्थ कालेज
फोर्ट, बंबई-१

आपका ही
अमरनाथ दुबे

२५. सिद्धेश्वर मिश्र, लखनऊ

[पूर्णतया अपरिचित]

३६

लखनऊ
१९-६-५८

श्रद्धेय गुप्त जी,
सादर अभिवादन।

गत सप्ताह आपकी पुस्तक 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक में आपने एक स्थान पर लिखा हैं कि भारतेंदु ग्रंथावली में अन्योक्तियाँ भी संगृहीत हैं। ग्रंथावलो में अन्योक्ति रूप से भारतेन्दु जी का कोई पद्य हमें नहीं मिला। क्या आप हमारे लिए कष्ट कर पद्य संख्या एवं पृष्ठ संख्या जहाँ पर भारतेन्दु जी की अन्योक्तियाँ संगृहीत हैं, सूचित करने की कृपा करेंगे ?

उनके सहयोगी कवियों में भी यदि आपका ध्यान हो तो सूचित कीजिएगा कि किन-किन महानुभावों ने अन्योक्तियाँ लिखी हैं। यह तो स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग में व्यंग्य का प्राधान्य था, पर अन्योक्ति रूप में भी इस काल के कुछ कवियों ने लिखा है, इसका आभास आपके ग्रंथ से ही मिला। आशा है आप हमारे कौतूहल को अपने विद्वत्तापूर्ण विचारों से शांत करेंगे।

कष्ट के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। साथ ही पूर्ण आशा है कि पत्रोत्तर से वंचित न रहूँगा।

आपका
सिद्धेश्वर मिश्र

२६. नारायण दास गुप्त, बदायूँ

[पूर्णतया अपरिचित]

३७.

बदायूँ
५--९--५८

आदरणीय श्री गुप्त जी,

मैंने आपकी सेवा में कई पत्र लिखे हैं। मुझे निम्न पुस्तकें कहीं से भी उपलब्ध नहीं हो रही हैं। यदि आपके पास हों तो मुझे डाक द्वारा भेज दें। मैं दोनों ओर का डाक व्यय एवं उन्हें सुरक्षित लौटाने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता हूँ। आशा है निराश न करेंगे।

१. वेनिस का बाँका—अनुवादक हरिऔध
२. रुक्मिणी परिणय—रचयिता ,,
३. प्रद्युम्न विजय व्यायोग ,,

उत्तराकांक्षी
नारायण दास गुप्त
कूचा हकीमान
मढ़ई चौक, बदायूँ

२७. जय नाथ त्रिपाठी, भदसा

[पूर्णतया अपरिचित]

३८.

भदसा

आदरणीय गुप्त जी, २३--९--५९

मुझ अपरिचित के पत्र से आपको शायद आश्चर्य हो। मैं देहात का रहने वाला हूँ, वन विभाग में काम करता हूँ। आज कल थोड़े दिनों के लिए घर आया हुआ हूँ। मुझे हिन्दी साहित्य में कुछ रुचि है। आज कल कामायनी देख रहा हूँ, पहले भी देखा है, पर आज कल कुछ गम्भीरता से पढ़ रहा हूँ। कुछ स्थल समझ में नहीं आते। दो एक लोगों से समझने का प्रयत्न किया, पर समाधान नहीं हुआ।

कामायनी में आपकी विशेष गति है, यह सर्वविदित है। अतएव आपका कुछ समय लेने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। आपका जीवन व्यस्त है। अतः पहले से समय माँगना समीचीन होगा। मैं आपका निवास स्थान भी नहीं जानता। आपसे प्रार्थना है कि कृपया मुझे सूचित करें कि आप कब समय दे सकेंगे। क्या छुट्टी के दिन ही समय मिलेगा या पढ़ाई के दिन भो हो सकता है? संभवतः २-३ घंटे का समय तो अवश्य लगेगा। कृपया अपना निवास-स्थान भो लिखें। धन्यवाद। आपके स्वीकृति-पत्र के लिए कृतज्ञ रहूंगा।

भवदीय

जयनाथ त्रिपाठी

२८. सावित्री श्रीवास्तवा

[प्रयाग विश्व विद्यालय के हिन्दो विभाग में। पूर्णतया अपरिचित]

३९।१

२० डी० बेली रोड

इलाहाबाद

आदरणीय डा० गुप्त जी, २९-१०-५९

पत्र लिखने के पूर्व मैं अपना परिचय दे देना आवश्यक समझती हूँ। मैं प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापिका हूँ और डा० माता प्रसाद गुप्त के संरक्षण में 'भक्तमाल की पाठ समस्या' पर शोध कार्य कर रही हूँ। मैंने नागरी प्रचारिणी (पत्रिका) में प्रकाशित आपका 'भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व' नामक निबंध पढ़ा। डा० गुप्ता ने मुझे आदेश दिया है कि मैं आपसे प्रार्थना करूँ कि आप मुझे अपने निबंध की एक प्रति जो आपको प्रकाशक से मिलेगी भेज दीजिए। आपने अपने निबंध में जो विचार व्यक्त किए

हैं, वे मेरे लिए एक सुझाव के रूप में हैं। मैंने इस पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया है और अभी तक ४ प्रतियाँ देखी हैं। मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि इस संबंध में आप मुझे सुझाव देते रहिएगा जिससे मुझे कार्य करने में सरलता हो सके।

आशा है आप मुझे अमूल्य सहायता देकर मुझे उत्साहित करते रहेंगे।

भवदीया
सावित्री श्रीवास्तवा

४०।२

२० डी बेली रोड
इलाहाबाद
-६-१ -५९

श्रद्धेय डा० गुप्त जी,

आपकी भेजी हुई दोनों प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई। उसके लिए धन्यवाद। मैंने एक प्रति डा० गुप्ता को दे दी है। मुझे डा० गुप्ता ने बताया है कि भक्तमाल के भक्तों के समय का पता लगाकर यह निश्चय करो कि कौन से भक्त अग्रदास के समय के बाद के हैं। और उन्होंने यह भी बताया है कि इसमें मुझे आपकी दो पुस्तकें जो शायद प्रकाशित हो गईं हैं, उनसे सहायता मिलेगी। वे पुस्तकें शिव सिंह सरोज तथा ग्रियर्सन की पुस्तक पर आप द्वारा लिखी हुई हैं। आप कृपया यह सूचित करिए कि ये पुस्तकें छपी हैं अथवा छप रही हैं, और कहाँ से छप रही हैं, जिससे मैं इन्हें प्राप्त कर सकूँ। और यह भी सूचित करिएगा कि उन पुस्तकों से मेरी कहाँ तक आवश्यकता पूरी हो सकती है और आप भक्तों के समय के बारे में जानने के लिए यदि कोई पुस्तक उपयोगी समझते हों, तो मुझे सूचित करिए। कष्ट के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

शेष शुभ

आपकी
सावित्री श्रीवास्तवा

२९. डा० वेद प्रकाश गर्ग मुजफ्फर नगर

[गर्ग जी ने सैकड़ों महत्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। डा० गुप्त के पास इनके अनेक पत्र हैं। लेखनी—मित्र।]

४।१।१

वेदप्रकाश गर्ग, साहित्यरत्न
खटीकान स्ट्रीट, मुजफ्फर नगर
१–१२–५९
पत्र संख्या ६७८

माननीय गुप्त जी,
सप्रेम नमस्कार,

'हरिऔध' वर्ष २ अंक ४ प्राप्त हुआ। अनेकानेक धन्यवाद। आपने पत्रिका में लेख को स्थान दिया। तदर्थ मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार कृपाभाव बनाए रखेंगे।

'हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास' की समीक्षा को पढ़ा। आपने साहस पूर्ण सराहनीय कार्य किया है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। वास्तव में यह षष्ट खंड है ही नितांत अनुसंधान विहीन। प्राप्य सामग्री तक का भी उपयोग नहीं किया गया है। खोज रिपोर्टों का तो शायद ही कहीं उपयोग हुआ हो।

मैंने भी इस संबंध में कई महानुभावों को उनकी त्रुटि-निर्देश करते हुए पत्र लिखे हैं। मुझे आपके लेख से और भी उत्साह और प्रसन्नता प्राप्त हुई। आपने विस्तृत रूप से इस ग्रंथ की त्रुटियों का निर्देश किया है। यह अत्यंत ही प्रशंसनीय कार्य हुआ है।

यह षष्ट खंड मूल योजना तथा अपने गौरव के अनुरूप नहीं बन पड़ा है। बल्कि उपहासास्पद हो गया है।

सूरति मिश्र कृत रसिक प्रिया की टीका रस गाहक चन्द्रिका का अन्य नाम 'जोरावर प्रकाश' नहीं है। 'जोरावर प्रकाश' रसिक-प्रिया की दूसरी टीका है। इसकी रचना बीकानेर नरेश जोरावर सिंह के लिए सं० १८०० में हुई थी। रसिक प्रिया पर सूरति मिश्र की दो विभिन्न टीकाएँ मिलती हैं। १-रस गाहक-चन्द्रिका—रचना काल सं० १७९१. २. जोरावर प्रकाश-र. का. सं० १८००। दोनों ही टीकाएँ खोज में प्राप्त हुई हैं। दोनों में आश्रय-दाताओं का वर्णन अलग अलग दिया हुआ है, बनने का कारण, रचना काल भिन्न है। दोनों टीकाएँ आपस में नहीं मिलती हैं। सूरति मिश्र के लगभग २० ग्रंथ खोज में प्राप्त हो चुके हैं। 'सरस रस' के कर्ता का नाम राय शिव दास है। इनके जयपुर निवासी और सूरति मिश्र के शिष्य होने का क्या प्रमाण ?

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के सूरत मिश्र पर 'सरस्वती' में प्रकाशित लेख को मैं देखना चाहता हूँ। यदि आपके पास प्रति हो तो कुछ समय के लिए भेजने की कृपा करें, या आप इस लेख की प्रतिलिपि कराकर भेज दें। आपकी महती अनुकंपा होगी।

पिंगल के आचार्यों की अशुद्धियों पर भी अगले अंक में प्रकाश डालने की कृपा करें। आपके दोंनों ग्रंथ—१. 'सरोज सर्वेक्षण' तथा २. 'शिव सिंह सरोज' कब प्रकाशित हो रहे हैं ? इसका प्रकाशन शीघ्र ही नितान्त वांछनीय है।

'हरिऔध' वर्ष १ अंक १, २ को प्रतियाँ आप भिजवा देंगे, ऐसी मुझे आशा है। निराश नहीं करेंगे। कष्ट के लिए क्षमा। आशा है आप सानंद होंगे। प्रतीक्षा में-

आपका

वेद प्रकाश गर्ग

४२।२

वेद प्रकाश गर्ग
१४ खटोकान, मुजफ्फर नगर
१९-१-८१

समादरणीय डा० साहब,

सादर नमस्कार ।

इस पत्र के साथ ही अपने तीन चार लेखों के अनुमुद्रण आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। कृपया स्वीकार कर अपनी विचार-प्रतिक्रिया से अवगत कराते हुए पत्रोत्तर से अनुगृहीत करें ।

साथ ही आप से यह निवेदन है कि कृपया अपने प्रकाशित लेखों के (विशेषकर हिन्दुस्तानी भाग ३२ अंक ४ में प्रकाशित लेख 'आचार्य शुक्ल का हिन्दो साहित्य का इतिहास : कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ) अनुमुद्रण भी भेज कर कृतार्थ करें ।'

आपकी महती कृपा होगी (कष्ट के! लिए क्षमा)

आशा है आप स्वस्थ एवं सानंद हैं ।

प्रतीक्षा में—
आपका
वेदप्रकाश गर्ग

३० आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाराणसो

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में डा० गुप्त के बी० ए० में प्राध्यापक (१९३८-४०) । बाद में मगध विश्वविद्यालय गया में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष । फिर उज्जैन विश्वविद्यालय में नवीन-पीठ के प्रोफेसर । प्राचीन हिन्दी काव्यों के विशिष्ट संपादक और आचार्य । अब दिवंगत ।]

४३

प्रिय किशोरी लाल जी,

आशी:

आपका ४-१२-५९ का पत्र मिला । आपने शिव सिंह सेंगर के गाँव की यात्रा का जो विबरण दिया, वह अत्यन्त उत्साह वर्द्धक है । आपका श्रम श्लाघ्य है । रहा कालिदास हजारा और उसका प्रकाशन, उसके संबंध में प्रयत्न किया जाएगा । कोई प्रकाशित करने वाला मिल सकता है । पहले पुस्तक प्रस्तुत हो जाए । प्रमाणों से सिद्ध हो जाय कि वह 'कालिदास हजारा' ही है, तब प्रकाशन की व्यवस्था पर सोचा जाएगा ।

बड़े दिन की छुट्टी में आप प्रेस-प्रति तैयार कर लेंगे । लेते आइएगा । आशा है आप सानन्द हैं ।

त्वदीय
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

८-१२-५९

३१. प्रेम बहादुर शर्मा, भोगाँव, मैनपुरी

[पूर्णतया अपरिचित]

४४

माननीय गुप्त जी, १४-१२-५९

सप्रेम नमस्कार।

इतिहास के अध्ययन के बीच आपके द्वारा अनूदित डा० ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' देखने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। निज की सम्मति में, आपकी टिप्पणियाँ ग्रियर्सन की भूल-भूलैया में मार्ग-प्रदर्शन करती हैं। इन्हींके कारण ग्रंथ प्राचीन होकर भी नवीन हो गया है।

कृपया सूचित करिए कि आपका 'सर्वेक्षण' प्रकाशित हो चुका है अथवा नहीं। यदि हो चुका हो तो कृपया प्रकाशक का नाम लिखिये, जिससे उस ग्रंथ से भी लाभान्वित हो सकूं।

विशेष कृपा—

आपका ही
प्रे० ब० शर्मा

मेरा पता–
प्रेम बहादुर शर्मा
हिन्दी अध्यापक
नेशनल इण्टर कालेज, भोगांव
जिला–मैनपुरी (उ० प्र०)

३२. डाक्टर भवानी शंकर याज्ञिक, लखनऊ

[प्राचीन काव्य के मर्मज्ञ। डा० गुप्त ने नागरी दास के कुछ हस्त लेखों के लिए एक बार लखनऊ में इनका आतिथ्य ग्रहण किया था।]

४५

शाहनजफ रोड
हजरत गंज, लखनऊ
२४-१२-१९५९

प्रिय गुप्त जी,

नमस्कार,

एक बार आपने कहा था कि आपने सभा की सभी खोज रिपोर्ट मँगा ली हैं। उनमें से कुछ विवरण चाहिए। यहाँ यूनिवर्सिटी अनिश्चित काल के लिए बंद है। इस कारण ये विवरण यहाँ से प्राप्त करना इस समय असंभव है। बड़े दिन की छुट्टियों में आपके अपने यहां की रिपोर्टों से ये विवरण प्राप्त करने में सुगमता होगी। ये विवरण दाराशाह द्वारा कराए गए दोहा सार संग्रह के संबंध में हैं। खोज की रिपोर्ट में इसके

विभिन्न नाम सार संग्रह, दोहा सत्व सार संग्रह तथा दोहा सार संग्रह दिए गए हैं, परन्तु ये नाम एक ही ग्रंथ के हैं। खोज की रिपोर्ट से प्राप्त केवल संकेत ही मेरे पास हैं। पूरे विवरण नहीं हैं। आपकी सहायता से रिपोर्ट में दिए हुए पूरे विवरण प्राप्त करना चाहता हूं। आपको पूरे विवरण ढूँढ़ने में सुगमता हो, इसलिए आवश्यक संकेत दिए जाते हैं—

१. रिपोर्ट का वर्ष १९०६, १९०७, १९०८ (प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट), १५२ संख्यक विवरण–सार संग्रह (स्फुट दोहों का संग्रह),

२. रिपोर्ट का वर्ष १९०६, १९०७, १९०८ (प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट) परिशिष्ट २, ५७ संख्यक–दोहा सार

मिश्र बंधु विनोद के पृ० ४५८ (द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण सं० १९८४) पर इसका उल्लेख है, जहाँ रचना काल सं० १७१० वि० दिया है और दारा शाह रचित–१. दोहा सत्व संग्रह–२. सार संग्रह दिए हैं।

आशा है आपकी सहायता से प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट से १५२ संख्यक और परिशिष्ट २ के ५७ संख्यक विवरण शीघ्र प्राप्त हो सकेंगे। संभव है बड़े दिन की छुट्टियों में आप आजमगढ़ में न हों और यह पत्र आपको न मिले। इस दुविधा को दूर करने के लिए एक पोस्टकार्ड द्वारा इस पत्र की पहुँच तुरत ही भेजिएगा।

यहां सब कुशल है। आप सानंद होंगे।

आपका

भवानी शंकर याज्ञिक

३३. ठाकुर प्रसाद सिंह, वाराणसी

[पहले साप्ताहिक 'ग्राम्या' लखनऊ के संपादक। बाद में सूचना विभाग उत्तर प्रदेश के निदेशक। अब कार्यमुक्त। श्रेष्ठ कवि]

४६

अर्द्धशासकीय पत्र सं० १६।१९ प्र. श.

ग्राम्या साप्ताहिक
इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बिल्डिंग
हजरतगंज, लखनऊ
लखनऊ, जनवरी ४, १९६०

मान्यवर,

२६ जनवरी १९६० तथा वसंत पंचमी के संयुक्त अंक के साथ 'ग्राम्या' अपना प्रथम वर्ष पूरा करके दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रही है। राष्ट्र का नया वर्ष, वसन्त के नये संकेत और 'ग्राम्या' का नया अभिवादन—आप कृपा करने की स्थिति में अपने आप ही हो जायेंगे।

संभव हो तो पत्र पाते ही ग्राम्या के प्रति अपनी शुभ कामना भेजने की कृपा करें। समय से मिलने पर आपके आशीर्वचन विशेषांक में प्रकाशित होंगे।

'ग्राम्या' आप देखते ही रहे हैं। अगले वर्ष के लिए कुछ सुझाव भी दें। तो विशेष कृपा समझूँ।

आपका

ठाकुर प्रसाद सिंह

३४. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण'

[तरुण जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय में डा० गुप्त के साथी थे। दोनों में अच्छा संपर्क था। दोनों ने १९४३ में हिन्दी से प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया। तरुण जी सुकवि हैं।]

४७

रामेश्वर लाल खण्डेलवाल
'तरुण'

बल्लभ विद्यानगर
वाया-आनंद (W. R.)

प्रिय भाई, १२-१-६०

सप्रेम वंदे।

आपका भेजा हुआ 'हरिऔध' का अंक मिला। इस कृपा के लिए हृदय से आभारी हूं। कार्याधिक्य से शीघ्र उत्तर न दे सका, क्षमा करें।

यहाँ शैक्षणिक वर्ष जून से आरंभ होता है और तभी पत्र पत्रिकादि के लिए आर्थिक व्यवस्था हो पाती है। अधिकारियों से मिल कर मैं चर्चा करूँगा। प्रति मेरे पास सुरक्षित रहेगी। आपका आयोजन वास्तव में स्तुत्य है। उत्तरोत्तर विकास का आकांक्षी हूँ।

नई गति विधि-सूचित करें। आशा है आप सपरिवार सानंद हैं।

स्नेहाधीन

तरुण

३५. डा० त्रिभुवन सिंह

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के क्रमशः प्रवक्ता, प्रवाचक और अध्यक्ष। जब यह विद्यार्थी ही थे, तभी से गुप्त जी से संपर्क। कवि आलोचक।]

४८

हिन्दी विभाग

श्रद्धेय डाक्टर साहब, २७-२-६०

सादर नमन्।

'हरिऔध प्रभा' के वसंतोत्सव का निमंत्रण पत्र मिला और मैंने यह भी अनुमान लगा लिया कि इसके पीछे आपकी कृपा ही सक्रिय है। निमंत्रण से अधिक

प्रसन्नता इसलिए हुई कि आप मुझे कम से कम भूले तो नहीं ही हैं। इसी से मिलते जुलते एक कार्यक्रम में शाहपुर, बिहार में जाने के लिए पहले से वचन दे चुका हूँ और वह कार्यक्रम मुझी तक सीमित है। इससे अनुपस्थिति के लिए नाराज न होंगे, ऐसी आशा है। यह भी मत समझिएगा कि मैं बहुत बड़ा आदमी हो गया हूँ और अपनी धौंस जमा रहा हूँ। आजमगढ़ जनपद के हृदय की आप गति हैं, इसमें दो मत हो ही नहीं सकता। मैं उत्सव की सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ और उस दिन की प्रतीक्षा में हूं कि बिना बुलाए आ धमकूं। आशा है आप स्वस्थ और सानंद हैं। मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि आजमगढ़ की मेरी नागरिकता आपके द्वारा ही सुरक्षित रहेगी।

पता—　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　आपका

डा० त्रिभुवन सिंह　　　　　　　　　　　　　　**त्रिभुवन सिंह**

दुर्गा कुंड, वाराणसी

३६. सीताराम सिंह, मुजफ्फरपुर

[पूर्णतया अपरिचित]

४९

मान्यवर,　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　प्रेम नगर

प्रणाम।　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　२८-५-६०

यह अनाहूत और अप्रत्याशित पत्र पाकर आपको आश्चर्य होगा, पर जीवन ऋजु-वक्र रेखाओं से अग्रसरित होता है। उसमें कभी-कभी ऐसा होता है, यह सत्य है।

मुझे अपने विषय में यही कहना है कि मैं किसान कालेज सोहसराय (पटना) में हिन्दी विभाग का प्राध्यापक हूँ, पर आपके समक्ष प्राध्यापक के रूप में नहीं, एक शोध छात्र के रूप में उपस्थित हो रहा हूँ। मेरा शोध विषय है 'हिन्दी साहित्य का तिथि क्रम' ओर मेरे निदेशक है पटना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आचार्य नलिन विलोचन शर्मा।

शोध कार्य के क्रम में मुझे आपके 'सर्वेक्षण' और 'प्रथम इतिहास' का पता चला। मैंने पटने में प्रायः सभी पुस्तक विक्रेताओं से उनकी जानकारी की, पर सर्वेक्षण के संबंध में निराशा ही हाथ लगी। इतिहास किसी तरह मिल गया। पुस्तक देखते ही मुझे विदित हो गया कि आप और आपकी पुस्तकों का पथ-प्रदर्शन मेरे लिए कितना उपयोगी और सहायक सिद्ध होगा। अतः पूरी आशा और कुछ-कुछ विश्वास के साथ आपके समक्ष उपस्थित हो रहा हूं, शारीरिक रूप से नहीं, मानसिक रूप से।

प्रथम आप सरोज-सर्वेक्षण के प्राप्ति-स्थान की सूचना दें और दूसरे कृपापूर्वक यह बतावें कि ग्रियर्सन ने जिन अठारह आधार ग्रंथों की चर्चा की है, वे आपकी दृष्टि से गुजरे हैं या उपलब्ध हैं? आपने सरोज-सर्वेक्षण के क्रम में जो गुरुतर और श्रम-साध्य

कार्य किया है, उससे आपको कार्य-विधि का पर्याप्त अनुभव और जानकारी प्राप्त हुई होगी। आप अपने उन अमूल्य अनुभवों से मुझे अवगत करायेंगे। और अपने सत्परामर्शों से निस्संकोच मेरा पथ-निर्देशन करेंगे, क्या मैं ऐसी आशा करूँ ?

मैं अभी ग्रीष्मावकाश में घर पर हूँ और मुझे आशंका है, इसी कारण आप भी स्थानान्तरित न हों और यह पत्र आपको न मिले।

प्रोत्साहन मिलने पर, यथावसर, मैं आपके दर्शनार्थ भी उपस्थित होऊँगा।

शेष कुशल है। कुशलता की कामना। पत्रोत्तर की उत्कट प्रतीक्षा है।

भवदीय कृपाकांक्षी
सीताराम सिंह
ग्रा० पो० प्रेम नगर
जिला–मुजफ्फरपुर (बिहार)

३७. डा० कृष्ण दिवाकर पूना

[यह पूना विश्वविद्यालय में थे। अच्छे शोधी थे। डा० गुप्त से कोई परिचय नहीं। अब दिवंगत। 'भोंसला दरबार के हिन्दी कवि' इनका अच्छा शोध-प्रबंध है।]

५०।१

प्रो० के० जी० दिवाकर एम० ए०
४४३ शनिवार पेठ, पुणें २
दि० १५-११-६०

श्रद्धेय डा० किशोरी लाल गुप्त जी,
सेवा में सादर प्रणाम।

मैं पूना के S. N. D. T. College में हिन्दी का प्राध्यापक हूं। पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० भगीरथ मिश्र जी के मार्ग-दर्शन में पी-एच० डी० का अनुसंधान कार्य कर रहा हूँ। भोंसले राजाश्रित कवियों पर मै सामग्री जुटा रहा हूं, उस कार्य में आप जैसे विद्वानों तथा अनुभवी व्यक्तियों की सहायता यदि मिले, तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा।

डा० जार्ज ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' का आपके द्वारा जो 'सटिप्पण अनुवाद' किया गया है, वह मैंने पढ़ा। नीचे दी हुई टिप्पणियों के कारण ही वह ग्रंथ ज्ञानार्थियों के लिए मार्ग दर्शक दीपक जैसे सिद्ध हो रहा है।

निम्नलिखित बातों की जानकारी शीघ्र देने की कृपा करेंगे, तो मैं आपका सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

१. आपका सरोज सर्वेक्षण कब प्रकाशित होने वाला है ? यदि हुआ हो, तो प्रकाशक का पता दीजिए, क्योंकि मैं गत ४ महीनों से अनेक प्रकाशकों से पूछ चुका हूं, पर पता नहीं लगा।

२. नृप शंभु (१४७) का नख शिख रत्नाकर जी द्वारा संपादित होकर भारत-जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित होने का उल्लेख आपकी टिप्पणी में है। उसके अनुसार मैंने इसे प्राप्त करने का पर्याप्त प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता नहीं मिली, बल्कि हरेक (लहरी प्रेस आदि) प्रकाशक के पत्र में उस ग्रंथ के प्रकाशित होने तक की जानकारी न होने की बात लिखी गयी। इसलिए प्रार्थना है कि आपको यदि इस ग्रंथ की प्राप्ति का स्थान ज्ञात हो, तो उसे बताने की कृपा करें

आपके उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ। आशा है कि आप उपर्युक्त बातों पर प्रकाश डालकर मुझे उपकृत करेंगे

आपका

कृष्ण दिवाकर

५१।२

डा० कृष्ण दिवाकर
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभाग
पूना विश्वविद्यालय, पूना–७

बी० प्राध्यापक निवास
पूना विश्वविद्यालय
पूना–७
दिनांक १९–७–६७

श्रीयत् डा० किशोरी लाल गुप्त,

सप्रेम प्रणाम।

आपका सरोज सर्वेक्षण देखा, अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपके द्वारा किया गया यह कार्य अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके पूर्व ग्रियर्सन वाले इतिहास का आपका काम भी प्रशंसनीय रहा। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने आपकी चर्चा अनेक बार की थी। आशा है कि विद्वान तथा शोधकर्ता आपके सर्वेक्षण से लाभ उठायेंगे। अद्यावधि शोध सामग्री की ओर ध्यान न देने तथा पिटी पिटाई लकीर पर चलने की प्रवृत्ति का परिणाम 'वृहत इतिहासों' में देखा जा सकता है।

सर्वेक्षण के अन्त में जो शुद्धि-पत्र दिया गया। उसके लिए आपका हार्दिक आभार मानता हूँ। इससे यद्यपि पाठक को विशेष परिश्रम पड़ता है, फिर भी लेखक की निष्ठा तथा प्रामाणिकता के कारण उसे दुःख नहीं होता। सर्वेक्षण को पढ़ते समय यदि कोई नयी अथवा विशेष सूचना हो तो अवश्य भेज दूँगा। यदि कभी हमारी भेंट हो सके, तो अधिक प्रसन्नता होगी। आपके इस प्रयास का मै पुनः हार्दिक अभिनन्दन कर यह अनाहूत पत्र समाप्त करता हूँ।

आपका

कृष्ण दिवाकर

३८. दयाराम पाठक वैद्य

[पाठक जी आजमगढ़ जिले में राजकीय चिकित्सालय में वैद्य थे। यह कम्यूनिस्टों के बहुत खिलाफ थे और कवि सम्मेलनों में अपनी कविता द्वारा अत्यन्त ओजपूर्ण स्वर में उनको ललकारा करते थे।]

५२

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
गोकुलपुरा, आजमगढ़
१६-११-६०
३ बजे उत्तरार्द्ध

आदरणीय गुप्त जी,

सादर प्रणाम।

भगवन्, आपकी दृष्टि में मैं आलसी, प्रमादी, डिसओबोडिएंट सिद्ध हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यहाँ मैं इतना ही कहूँगा कि जो आपत्तियों से ग्रस्त, अभावों से त्रस्त है, उसको यदि आप जैसे सरस्वती-पुत्र क्षमा नहीं करेंगे, तो कौन क्षमा करेगा ? मैं आपसे सत्य ही कह रहा हूँ कि मैं अवस्था में यद्यपि आपसे कदाचित् कुछ बड़ा ही हूँगा, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में आप कुलपति हैं और मैं आपका विद्यार्थी, वह भी प्रथम वर्ष का।

अतः जो कुछ मैं आपको आज्ञा-पालन में दे रहा हूँ, उसे भली प्रकार संशोधन कर पत्रिका में दें। मेरे लिए यह अवसर है कि मैं किसी विद्वान साहित्यकार को स्वरचित कविता प्रकाशन के लिए दे रहा हूँ। हाँ, एक प्रार्थना है कि कविता छपे भले न, किन्तु बोच से छंद निकाले न जायँ, केवल पंक्तियाँ संशुद्ध हों। मैं समझ रहा हूँ कि आप अपने पाठक को आगे बढ़ाना चाहते हैं, इसीलिए यह वात्सल्य प्रदान किया है। इसके लिए मैं आपको कितना धन्यवाद दूं।

पूज्य ! भक्त-गोष्ठी का सदस्य होने में मैं अपने को गौरवान्वित समझ रहा हूँ। समय पड़ने पर मैं भक्त-गोष्ठी-मन्दिर में झाड़ू लगा सकता हूँ। उसमें दीपक जला सकता हूँ, उसकी दरी ढो सकता हूँ और पूज्य डा० साहब यदि आवश्यकता पड़ी तो अपने रक्त से उसकी पुण्य दिवारों को रँग सकता हूँ। आज भक्त-गोष्ठी का ही प्रताप है कि मैं भारत राष्ट्र के विरोधियों को ललकार रहा हूँ। घर की अविच्छिन्न आपत्ति फिर लिखूंगा। पूज्य पाण्डे जी व गोष्ठी के मेरे सभी आदरणीय (सदस्यों) को प्रणाम कहें।

आपका ही
वैद्य जी
(दया राम) पाठक

३९. शुकदेव दुबे, भोपाल

[पूर्णतया अपरिचित]

५३

आदरणीय डा० गुप्त जी,

सादर नमस्कार ।

साहित्य भवन लिमि० के व्यवस्थापक श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी से ज्ञात हुआ कि ना० प्र० सभा के लिए आप ध्रुवदास ग्रंथावली का सम्पादन कर रहे हैं । मैं 'ध्रुव-दास जीवन और साहित्य' पर शोध कार्य करना चाहता हूं । इस सम्बन्ध में आपसे मुझे काफी सहायता मिल सकती है । बड़ी कृपा होगी यदि आप सहायक ग्रंथों की सूची भेज दें । उनके अतिरिक्त यदि आपके पास कोई अन्य सामग्री हो, तो उसका भी उल्लेख करने की कृपा करें । एक पाण्डुलिपि छतरपुर राज-पुस्तकालय में है, जिसकी सूची मात्र मैंने देखी है, अभी पाण्डुलिपि नहीं देख पाया हूँ । इस सम्बन्ध में यदि आप विस्तृत जानकारी दे सकें, तो मैं आपका आभारी रहूँगा ।

विनीत

शुकदेव दुबे

४३।२० टी० टी० नगर

भोपाल

२१-११-(६०)

४०. डा० माता प्रसाद गुप्त

[यह पहले प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में थे, फिर जयपुर विश्व-विद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष हुए । तदनन्तर के० एम० मुंशी हिन्दी और भाषा विज्ञान पीठ के निदेशक हुए । प्राचीन काव्यों के संपादन के लिए प्रसिद्ध । अब दिवंगत ।]

५४।१ प्रयाग

प्रिय डा० किशोरी लाल जी, २४-४-६१

आपका भेजा हुआ 'गोसाइं चरित्र' शीर्षक लेख मिला । मैं बहुत उत्सुकता तथा रुचि के साथ पढ़ गया ।

१. दासानिदास और भवानीदास एक ही हैं और उनके 'गोसाई चरित्र' एक ही हैं, यह आपने बड़ी दृढ़ता के साथ प्रतिपादित कर दिया है । यह आपने एक उपयोगी तथ्य ढूंढ़ निकाला है । इसमें संदेह नहीं ।

२. आपने लिखा है कि इस ३७ वर्ष पूर्व प्राप्त और १६ वर्षों पूर्व प्रकाशित विवरण के आधार पर इस ग्रंथ पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी (पृ० ६१), किन्तु ऐसा नहीं है। मेरे तुलसीदास के तृतीय संस्करण के पृ० ६४-४५ देखिए। मैंने इसका उल्लेख किया है और लिखा है कि यह भवानी दास के 'गोसाइं चरित्र' की परम्परा में ही ज्ञात होता है और असंभव नहीं कि उसकी सहायता लेकर रचा भी गया हो। मैं अब भी इसी मत का हूँ। जब तक पूरी प्रति का मिलान भवानी दास के 'गोसाइँ चरित्र' से न किया जावे, मेरी समझ में जितना मैंने लिखा है, उतना ही परिणाम निकालना तर्क-संगत होगा।

३. ग्रंथ लेखक बेनीमाधवदास या भवानीदास या 'भवानीदास का समय' शीर्षकों के अन्तर्गत (लेख के पृ० १३-१८ पर) आपने जो कुछ लिखा है, वह सभी कुछ मैं अपने 'तुलसीदास' के प्रथम संस्करण और उसके पूर्व भी अंग्रेजी में दी हुई थीसिस में लिख चुका हूँ। मुझे आश्चर्य यह हुआ कि उसके बहुत बाद की श्री चन्द्र बली पाण्डेय की कृति 'तुलसी की जीवन-भूमि' का उपयोग आपने किया और मेरे 'तुलसीदास' पर दृष्टि भी नहीं डाली। मेरी पुस्तक के द्वितीय अध्याय—'अध्ययन का आधार' के अनुच्छेद ३-१२ इसी गोसाइं-चरित्र, उसके लेखक, उसके गुरु और समय आदि के सम्बन्ध के हैं। और श्री चन्द्र बली पाण्डेय ने मेरी ही खोज का आधार लेकर अपनी उक्त रचना में भवानी दास और उनकी रचना का उपयोग किया है। इस अंश में आपने भवानी दास की जो गुरु परम्परा (पृ० १८) मानी है, उससे मेरा मत-भेद है। मैंने स्वामी नन्द लाल की दो शिष्य-परम्पराएँ मानी हैं, एक में जोधादास हुए, जिनके शिष्य भवानी दास थे और दूसरी में राम प्रसाद जी हुए (अनु·८)। इस पर कृपया विचार कर देखें।

अतः मेरी राय है कि अपने लेख के पृ० १३-१८ के उपर्युक्त अंशों पर पुनर्विचार करें और यदि मेरी खोजों से आपके निष्कर्ष आगे न जाते हों, तो लेख के इस अंश को निकाल दें। शेष तो अवश्य प्रकाशनीय है।

मैं यह केवल अपनी राय के रूप में लिख रहा हूँ। आशा है कि सानंद हैं।

मा० प्र० गुप्त

५५/२

प्रिय किशोरी लाल जी, जयपुर

नमस्कार। ६--१०--६१

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। राजस्थान आने पर अवकाश नहीं मिल सका कि जयपुर छोड़कर कहीं भी जा सकूँ। सम्भव हुआ तो नवम्बर से इधर-उधर जाने का प्रयत्न करूँगा। उसी समय चित्तौर के उक्त लेख को देखूंगा। नीमराणा की भक्त

माल की प्रति का भी पता लगाऊँगा। प्रतियाँ लोग देते नहीं है। यदि कभी जाना पड़ा तो देखूंगा।

आशा है कि सानंद हैं।

सस्नेह

माताप्रसाद गुप्त

५६/३

प्रियवर किशोरी लाल जो,

जयपुर

११--२--६२

आपका पत्र मिला। स्व० चन्द्रबली जी के सम्बन्ध में एक विशेषांक नागरी प्रचारिणो पत्रिका ने निकाला था। इसमें मैंने लेख भेज दिया था। उनसे मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध कोई नहीं था ? न मैं उनके सम्बन्ध में अधिक जानता ही हूँ। इसलिए उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ भी लिखने में असमर्थ हूं। उन्होंने मेरे 'जायसी ग्रन्थावली' के संस्करण के सम्बन्ध में कुछ लेख अवश्य लिखे थे, किन्तु मैंने उनका कोई उत्तर नहीं दिया था। उनकी उन आलोचनाओं में कटुता की मात्रा अधिक थी, तर्क और तथ्य की कम। प० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के होते हुए मैंने—'जायसी-ग्रन्थावली' का सम्पादन किया और उनके सम्पादन में कुछ त्रुटियाँ बताई, यह उन्हें सह्य नहीं हुआ, क्योंकि शुक्ल जी उनके गुरु रहे थे। किन्तु मैं उस स्तर के विषयों में नहीं पड़ता हूँ। कदाचित यही ठीक भी है।

सस्नेह

मा० प्र० गु०

यह पत्र प्रकाशन के लिए नहीं है, सर्वथा निजी है। चित्तौर के शिलालेख को अवसर मिलने पर अवश्य देखूंगा।

मा० प्र० गु०

५७।४

बी० १७८ बापूनगर

जयपुर

प्रिय डा० किशोरी लाल जी,

१९–३–६२

आपका पत्र मिला था। इधर मुझे चित्तौड़ जाने का सुयोग १३ मार्च को प्राप्त हुआ था। वहाँ मान मोरी का यह शिलालेख नहीं हैं। मैंने इस सम्बन्ध में जाँच पड़ताल भी की। वहाँ अर्क्यालाजिकल डिपार्टमेंट की एक शाखा है, उसके कंजर्वेशन आफिसर से तथा उदयपुर में एक सज्जन श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल हैं, उनसे मैंने पता लगाया, तो भी कोई पता उसका नहीं चल सका। ज्ञात यह हुआ कि मानसरोवर नाम का एक ताल चित्तौड़ से ६ मील की दूरी पर नगरी नामक एक स्थान पर है। सम्भव हैं उसी मानसरोवर के सम्बन्ध का यह लेख मान मोरी के द्वारा अंकित कराया

गया हुआ रहा हो। मैं नगरी नहीं जा सका। अभी यह भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि कोई शिलालेख वहाँ है या नहीं। आगे यदि कुछ ज्ञात हुआ, तो सूचित करूँगा।

होली की शुभ कामनाओं के साथ

आपका
मा० प्र० गु०

४१. लालता प्रसाद दूबे, इलाहाबाद

[पूर्णतया अपरिचित]

५८.

आदरणीय गुप्त जी,
नमस्कार।

३१६ मम्फोर्डगंज
इलाहाबाद
२७–९–६१

इसके पूर्व कि आपको कुछ लिखूं, अपना परिचय देना आवश्यक समझता हूँ। मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की थी। १९५२ में शोधकार्य करना प्रारम्भ किया। दैवयोग कहिए या दुर्भाग्य कहिए १९५४ में हमारी नियुक्ति बाम्बे राम नारायण रुइया कालेज में हुई। कुछ कारण ऐसे थे कि मुझे वह कालेज छोड़ देना पड़ा। आजकल 'भारतीय विद्या भवन' कालेज चोपाटी में कार्य कर रहा हूं। एक वर्ष के लिए पुनः इलाहाबाद आया हूँ।

मेरी थीसिस का विषय--'भक्त वार्ता साहित्य--१४००-१८०० ई०' है। डा० माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में कार्य हो रहा है। डा० गुप्त आजकल जयपुर रह रहे हैं। बीच-बीच में आया करते हैं। उन्होंने कहा था कि डा० गुप्त को आजमगढ़ के पते से पत्र देकर कोई उलझन हो तो समय-समय पर समझ लेना। अतएव मैं आपको पत्र लिख कर कष्ट देना चाहता हूं। इस कष्ट के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

नाभादास के भक्तमाल के विषय में पूछना है। नाभादास का समय तथा रचना काल, राजा आसकरण के विषयों में।

नाभादास के भक्तमाल के पूर्ववर्ती यदि किसी भक्तमाल की सूचना दे सकें। कृपया पत्र द्वारा सूचित करें। यदि आप और जानकारी प्राप्त करा सकें, तो आजमगढ़ भी आ सकता हूँ। इधर वार्ताओं पर डा० हरिहर नाथ की थीसिस भी छप गयी है।

आपका एक निबंध इधर नागरी प्रचारिणी पत्रिका में भक्त माल संबंधी (वैष्णव दास के विषय में) कदाचित निकला था, आप यदि एक रीप्रिंट भेज सकें, तो भेज दें। नहीं तो लिखें किस अंक में निकला है।

थीसिस आपकी निकली कि नहीं। यदि छप गई हो तो उसके विषय में लिखें, नहीं तो कैसे आपकी थीसिस देख सकेंगे, उसे बतलाइए। अंत में मैं आशा करता हूं कि आप एक शोध के विद्यार्थी के नाते इतना कष्ट अवश्य करेंगे।

पुनः आपका पत्र पाने पर।

आपका

लालता प्रसाद दुबे

४२. त्रिलोकी नाथ सिंह, लखनऊ

[पूर्णतया अपरिचित]

५९.

आदरणीय गुप्त जी, लखनऊ

सादर प्रणाम २२ सितम्बर ६१ ई०

मुझे अपने शोध कार्य के सम्बन्ध में आपके द्वारा अनूदित 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी सन्दर्भ में ज्ञात हुआ कि आपने 'शिवसिंह सरोज में दिये गये कवियों के संबंध के तथ्य तथा तिथियों का परीक्षण' विषय पर शोध कार्य किया है। मैंने आपके इस ग्रंथ को स्थानीय पुस्तकालयों एवं पुस्तक-विक्रेताओं के यहां खोजा, किन्तु उसकी कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी। मुझे ज्ञात नहीं है कि आपका उक्त ग्रंथ अभी प्रकाशित हुआ है या नहीं। यदि प्रकाशित है, तो कृपया प्रकाशक या प्राप्ति-स्थान का पता लिख दें। मैं उक्त पुस्तक मँगा लूंगा। यदि अप्रकाशित है तो उसकी टाइप की हुई प्रति कहाँ देखने को मिल सकेगी, इसकी सूचना देने का कष्ट करें। 'हिन्दी साहित्य का प्रथम-इतिहास' की भूमिका में आपके जिस कर्मठ एव अव्यवसायी व्यक्तित्व का मुझे दर्शन हुआ, उसी के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास के सहारे अपरिचित होते हुए भी मैं आपको पत्र लिखने का दुस्साहस कर सका। आशा है कि आप अपेक्षित सूचनाएँ यथाशीघ्र देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विनीत

त्रिलोकी नाथ सिंह

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (भाषा)

शोध छात्र तृतीय वर्ष

हिन्दी विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

४३. हुकुम चन्द गुप्ता, जयपुर

[पूर्णतया अपरिचित]

६०

श्रद्धेय डा० साहब Jaipur

चरण स्पर्श, 28-9-61

मैं आपकी कृपा से एम० ए० फाइनल (हिन्दी) में अध्ययन कर रहा हूँ, प्रीवियस में मेरे ६३% meant I class आया है। इस साल राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी Dep. के Head श्रद्धेय डा० माता प्रसाद जी गुप्ता हैं। मैं विश्वविद्यालय के नियमानुसार Dissertation in lieu of paper VIII of Eassy लिख रहा हूँ। यह Short type of thesis होती है। करीब 150 Page की। मैं 'महाकाव्यकार हरिऔध और उनका आदर्शवाद' Subject पर श्रद्धेय डा० साहब की Guidance में लिख रहा हूं। आधुनिक हिन्दी साहित्य से अधिक परिचय होने के कारण उन्होंने आपका शुभ नाम संकेत किया। उन्होंने आपसे नमस्ते भी कहा है तथा कहा कि डा० साहब को मेरी तरफ से पत्र लिख देना। वे तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे और मैं भी करता रहूँगा ही। अतः आप इस विषय की रूप रेखाएँ बनाकर अवश्य सहायता प्रदान करें। इस subject से संबंधित पुस्तकें भी सूचित करें। अधिक मैं क्या लिखूँ, आप स्वयं सोचकर मुझे सहायता प्रदान करेंगे, यह पूर्णाशा है।

डा० साहब का मुझपर पुत्रवत ही स्नेह है। वैसे ही स्नेह का पात्र मैं आपकी कृपा का हूँ। आप मुझे समय समय पर विषय से संबंधित सहायता देते रहें। मैंने पत्र इस प्रकार ही लिखा है, जैसे कि मैं अपने पूज्य पिताजी को लिखता हूँ, अतः त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। Address जरूर आप कष्ट करके Note कर लेना। मैं आपका अत्यधिक आभारी रहूँगा। करवद्ध प्रणाम।

आपका अपना

हुकम चंद गुप्ता

C/o श्री गोपाल जी डोल्या

बोहरे जी का दरवाजा, मोती सिंह भूमिया का रास्ता,

चौथे चौराहे के पास, जौहरी बाजार

जयपुर

या C/o डा० साहब के पते पर भेज देना। जैसी आपकी इच्छा।

४४. डा० श्रीराम वर्मा, आजमगढ़

[डा० वर्मा डी० ए० वी० महाविद्यालय आजमगढ़ में हिंदी विभाग में हैं। आजमगढ़ी होने के नाते डा० गुप्त से पूर्ण संपर्क। 'चतुर्थ सप्तक' के कवि।]

६११

१७ महाजनी टोला

इलाहाबाद

आदरणीय डाक्टर साहब, २-११-६१

सादर नमस्कार,

डा० राकेश, छैल बिहारी लाल की आज्ञानुसार मैं आपको एक कष्ट दे रहा हूँ। शीघ्र ही शिवसिंह सरोज की जन्म तिथि आदि विवरण मेरे उपर्युक्त पते पर भेज दें। कदाचित 'सरोज सर्वेक्षण' जैसा कोई उत्कृष्ट शोध कार्य किया है। पुस्तक प्रकाशित होती तो मैं स्वयं यह कार्य कर लेता।

डा० रघुवंश एवं डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में हिन्दी के विश्व कोष का कार्य चल रहा है। उसीके संदर्भ में सरोज पर टिप्पणी लिखने का कार्य मुझे सौंपा गया है।

मैं यहाँ का शोध छात्र हूँ, नाम-श्री राम वर्मा। आपके दर्शन दोहरीघाट के एक कालेध में एक कवि सम्मेलन में हुए थे। यदि वहाँ आया, जैसा कि आजमगढी होने के नाते संभव है ही, तो आपसे अवश्य मिलूंगा।

उत्तर की शीघ्र प्रतीक्षा है, क्योंकि मुख्य संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा शीघ्र ही यहाँ आने वाले हैं।

आपका

श्री राम वर्मा

६२।२

ए ९ पन्नालाल कालोनी
सिविल लाइन्स
आजमगढ़ २७६००१

आदरणीय आचार्य गुप्त जी, २८-९-८६ (दिवसावसान)

'अमरावती' एक है टैगोर टाउन में, जहाँ मैं राव साहब से मिलने जाता था। 'अमरावती' दूसरी है, मेरे मालिक मकान की, जिनके यहाँ अनेक बार गया हूँ। तीसरी 'अमरावती' आपकी है जहाँ मैं ही नहीं, श्री श्रीकांत जोशी, जवाहर गंज, खंडवा (म० प०) ४५०००१ आकर आपके दर्शन करना चाहते हैं। जोशी जी को आपका पता लिख भेजा है और यह भी लिख दिया है कि वाराणसी से बस से आपके यहाँ जाया जा सकता है। वे अक्टूबर के मासांत में सारनाथ आने वाले हैं। कृपया घर के पते पर अपने समस्त ग्रंथों की सूची प्रकाशक एवं मूल्य सहित भेज देने का कष्ट अवश्य करें।

श्री कुबेर नाथ राय क्या सहजानंद महाविद्यालय गाजीपुर के प्राचार्य होकर नलबारी, असम से आ गये है ? मैंने उन्हें दो पत्र असम भेजे, उत्तर नहीं आया। चिंता हुई, तब डा० कन्हैया सिंह से बात की। वे 'संभवतः और 'अनुमानतः' लगाकर सहजानन्द में उनके आगमन की सूचना दे रहे थे। सहजआनंद तो उस प्रकांड पं० के निबंध लालित्य और महाकाव्यात्मक 'डूब' को देखते हुए समझ में आता है, किन्तु प्राचार्य जैसे--प्रशासनिक झंझटी पद को ऐसा अधीति संपन्न, अध्ययनमान एकांत चिंतक ग्रहण करे, संभव नहीं लगता। पर संयोग को कौन टाल सकता है। संभव है पारिवारिक

कारणों से 'घर' लौटना चाहें, किन्तु प्राचार्य पद-स्वीकृति उससे कैसे संभव होगी। जो भी हो उनके घर और जहाँ उन्हें पत्र मिल सकता हो, लिख देने की महती कृपा करें और अविलंब करें।

आपकी सीतामढ़ी क्या अब वाल्मीकि नगर कहलाती है ? या वाल्मीकि नगर कोई और है ? वाराणसी से वाल्मीकि नगर करीब है या गोरखपुर से ? दिशाओं और भौगोलिक दूरियों की समझ में मैं भ्रमित हो जाता हूँ।

खेद है कि आपकी चरण-रज से मेरा 'घर' अभी तक पवित्र नहीं हुआ। केवल आपकी 'पियरी', वेदान्ती मुस्कान, सरलता, माखन सनी चिन्मयी वाणी स्मृति गोचर हैं।

सूना 'घर' भर जाय, हृदय से दें असीस संचय से
पद-नख-रज से नव ज्योतिर्मय योग-क्षेम निचय से

विनीत (अविलम्ब उत्तरापेक्षी)
श्रीराम वर्मा

६३।३

ए ९ पन्नालाल कालोनी, सिविल लाइन्स, आजमगढ़ २७६००१

आदरणीय डा० गुप्त जी, १३-१०-८६

सादर प्रणाम।

आपका पत्र प्रतीक्षा करते प्राप्त हुआ। पत्र पढ़कर देरी के कारण का पता चला और स्वाभाविक है कि आपकी शोच्य दशा से दुःख हुआ। आशा है अब वह पद छंद हो चुका होगा और आप पूर्ण स्वस्थ अद्वं वेदान्ती मुस्कान से सम्पन्न होंगे। आपके यहाँ आना मेरे लिए सौभाग्य पूर्ण होगा, किन्तु मेरी स्थिति सतत बाधित किये रहती है। इसलिए स्पष्ट नहीं है कब आ सकूंगा। श्रीकांत जोशी को आपका पता भेज दिया है। वे आपके प्रति जिज्ञासु एवं आकर्षणशील हैं, इसलिए जाने की स्थिति में हो सकते हैं। मैं पता नहीं, साथ पहुँच भी पाऊंगा या नहीं।

श्री कुबेर नाथ राय को आज पत्र लिख रहा हूँ, कालेज के पते पर। उनकी पुस्तकों में उनका गाँव मतसा है। आप ताजपुर बता रहे हैं। मेरे घर आपका आगमन परम सौभाग्य होगा। अवश्य आयें।

आपकी पुस्तक सूची का सदुपयोग करके अपने को धन्य समझूंगा। पर इसकी चर्चा न करेंगे। इस सूची में जिस पुस्तक का नाम देखना चाहता था, वह नहीं है। वह भाषा विज्ञान के व्याकरण पक्ष से सम्बद्ध है। शायद नयी पुस्तक है। कृपया उसकी एक प्रति अविलम्ब भेज दें। मूल्य नवम्बर में मनीआर्डर से भेज दूँगा। इसकी भी चर्चा कृपया न करेंगे।

अवकाशोपरांत आपके मित्रों से आपका नमस्कार कह दूंगा।

विनीत
श्रीराम वर्मा

६४१४

ए ९ पन्नालाल कालोनी
सिविल लाइन्स
आजमगढ़ २७६००१
१६-१०-८६ (रात)

आदरणीय आचार्य गुप्त जी,

सादर अभिवादन।

आपकी पुस्तक-सूची सौ टंच सही है। आपने भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। मुझे एक किताबी कीड़े ने भ्रमवश बता दिया था। दर असल वह पुस्तक श्री किशोरी दास वाजपेयी की है। उसने किशोरी दास वाजपेयी को आचार्य किशोरी लाल गुप्त समझ लिया था और मैंने तुरन्त आपको लिख दिया था। कृपया क्षमा करें।

श्री श्रीकांत जोशी का पत्र आया है। आपने 'एक भारतीय आत्मा' के 'कृष्णार्जुन' युद्ध पर कभी एक दिन समीक्षा लिखी थी, तब से ये आप पर लट्टू हैं। वह समीक्षा स्वयं चाहते भी हैं—शायद सदुपयोग के लिए। उनका पत्र सम्भवतः मिला हो। आपकी पुस्तक-सूची का उपयोग अभी कर नहीं सका हूँ, कर सकूँगा, यह विश्वास है।

मैं आप तक आने के लिए वर्षों से उदग्र हूँ। किन्तु कुछ कह नहीं सकता कि यह कब सम्भव हो पायेगा। वालमीकि आश्रम देखने की इच्छा भी प्रबल है। किन्तु ईश्वरेच्छा से ही स्वयं की इच्छा पूरी होती है, यह निश्चित है।

यहाँ मेरे भतीजे और दो भाभियाँ (विधवाएँ) रहती हैं। घाघरा ने घनघोर संकट ला दिया है।

I am crucified in the whole lifetime.

विनीत
श्रीराम वर्मा

३५. डा० छैल विहारी लाल गुप्त, राकेश

[राकेश जी पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में थे। फिर काशी नरेश स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए। बाद में यह राजकीय महाविद्यालय नैनीताल में विभागाध्यक्ष रहे। अब कार्य मुक्त होकर अलीगढ़ में रहते हैं। यह डा० गुप्त के पी-एच० डी० के गाइड थे।]

६५।१

ज्ञानपुर

प्रियवर डा० गुप्त जी, २७–१०–६१

सप्रेम नमस्कार,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप शीघ्र ही डी० लिट्० प्राप्त कर रहे हैं।

इस वर्ष हमारे कालेज से एक Research gournal का प्रकाशन हो रहा है। उसमें प्रकाशनार्थ अपने Ph. D. की थीसिस का १०–१२ पन्ने का कोई महत्वपूण अंश भेजने की कृपा करें, जिसे स्वतन्त्र लेख के रूप में जा दिया सके। इसे अत्यावश्यक समझें।

आशा हैं सानन्द हैं।

शुभ कामनाओं सहित

आपका

राकेश गुप्त

६६।२

डा० छैल विहारी लाल गुप्त
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग

काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय
ज्ञानपुर, (वाराणसी)
नव वर्ष दिवस १९६३

आया फिर नव वर्ष, किन्तु मैं क्या दूँ तुम्हें बधाई
आज उत्तरी सीमा पर जब, घटा युद्ध की छाई
रक्षा हित स्वदेश के तत्पर, बाल वृद्ध नारी नर
सबसे आगे खड़ा हमारा, प्यारा वीर जवाहर
दुष्ट आततायी से हमको, कण-कण मुक्त कराना
बर्बर दस्यु सैन्य दल को, निज सीमा पार भगाना
यह संकल्प पूर्ण जिस दिन हो, बजे विजय सहनाई
उस मंगलमय बेला में फिर, दूं मैं तुम्हें बधाई

डी० लिट० के लिए हार्दिक बधाई।

सस्नेह

राकेश गुप्त

४६. डा० शिव प्रसाद सिंह

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में ये विभागाध्यक्ष भी रह चुके हैं। अच्छे कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। 'सूर पूर्व व्रजभाषा' इनका प्रसिद्ध शोध प्रबन्ध है। डा० गुप्त से पूर्ण परिचित]

६७।१

डा० शिव प्रसाद सिंह
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय
वाराणसी।

कामा कोठी
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी
मार्च १३–१९६२

प्रिय भाई, मैं एक छोटे से काम के लिए आपको कष्ट देना चाहता हूँ। सरोज संख्या ४८३ में कवि पुष्कर या पुहकर के बारे में जो कुछ भी लिखा हो, उसकी प्रतिलिपि चाहिए। इस सम्बन्ध में आप जो भी ज्ञातव्य सामग्री बता सकें, उसकी सूचना भी दें। आशा है कष्ट के लिए क्षमा करेंगे। उत्तर की प्रतीक्षा में—

आपका
शिव प्रसाद सिंह

६८।२

कामा कोठी, दुर्गाकुण्ड
वाराणसी
२५-३-६२

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला था। आपने जो कष्ट किया, सहा, वह अवश्य ही मेरे लिए आनन्ददायक है, उसके लिए आपका बहुत धन्यवाद करता हूँ। सरोज सम्बन्धी आपकी सूचना का सादर कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ उल्लेख होगा। आपका अनुमान ठीक ही है—मैं पुहकर कवि के रस रतन का सम्पादन कर रहा हूँ—बल्कि कर चुका हूँ। ग्रंथ सभा से छप रहा है। सर्च रिपोर्ट की सूचनाएँ जो आपने दी है, उनके लिए भी धन्यवाद। वैसे वे मुझे मालूम थीं। सभा के पिछले दो तीन वर्षों के वार्षिक विवरण में प्रति वर्ष यह सूचना छपती रही है कि मैं रस रतन का संपादन कर रहा हूँ—फिर भी यदि भारत भारती न्यास अलग से संपादन करा रहा है, तो अच्छा ही है। दुहरे कामों से बहुत काफी प्रकाश पड़ जायेगा—और फिर मेरा तो प्रयास मात्र है।

आशा है, प्रसन्न हैं।

आपका ही
शिव प्रसाद सिंह

६९।३

हिन्दी भाषा का
ऐतिहासिक व्याकरण कार्यालय
रूइया छात्रावास, हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–५
दिनांक २६-९-१९६६

प्रिय बन्धु,

आपसे बहुत पहले चर्चा हुई थी कि आप अपनी थीसिस (सरोज सर्वेक्षण पर) के छपे हुए फर्में जो हिन्दुस्तानी एकेडमी में तैयार हैं, भिजवा दें। हमारे विभाग के तत्वावधान में तैयार किये जाने वाले इतिहास का प्रथम भाग अब प्रेस में जानेवाला है, दूसरे भाग का काम प्रायः समाप्त होने को आया। हम चाहते थे कि आपके महत्वपूर्ण शोध-ग्रंथ का इस कार्य में पूरा उपयोग किया जाय। क्या आप बता सकते हैं कि वह ग्रंथ अभी छपा या नहीं। यदि न छपा हो तो क्या आप अपने पास उपलब्ध फर्मे या वहाँ से छपे फर्मे प्राप्त कराने की कृपा कर सकते हैं।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

शिवप्रसाद सिंह

५७. जगदीश प्रसाद मिश्र, अलीगढ़

[पूर्ण अपरिचित]

७०

१५६ श्याम नगर
अलीगढ़
८-४-६२

आदरणीय श्री गुप्त जी,
नमस्कार।

एक अपरिचित का सहसा पत्र पाकर आपको शायद आश्चर्य हो—किन्तु निरा अपरिचित भी नहीं हूँ। 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' ग्रंथ के द्वारा मेरा आपसे पूर्व परिचय भी है। मैं यहाँ विश्वविद्यालय में शोध छात्र तथा यू० जी० सी० फेलो हूँ। अपने शोध कार्य के सम्बन्ध में ही कुछ आपको कष्ट देना चाहता हूँ। आशा है आप मेरी कठिनाई का अनुभव करते हुए, मुझे सुविधापूर्वक कुछ समय देकर, कृतार्थ करेंगे। कृपया मुझे इतना लिखने का कष्ट करें कि आप द्वारा लिखित अथवा संपादित निम्न पुस्तकें कहाँ से प्राप्त हो सकेंगी—

१. श्यामा—हिन्दी में चतुर्दशपदियों (Sonnet) का प्रथम संग्रह।

२. प्रसाद की चतुर्दशपदियाँ।

एक बात और आपने 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन' ग्रंथ के पृष्ठ ६४-७५ पर प्रसाद, रायकृष्ण दास, मै० श० गुप्त, बद्री नाथ भट्ट, द्वारका प्रसाद गुप्त, पारस नाथ सिंह बी० ए० तथा रूप नारायण पाण्डेय की चतुर्दशपदियों का जिक्र किया है। क्या इनकी चतुर्दश पदियों का कोई संकलन अथवा उनकी अपनी अपनी कविताओं के साथ संकलन उपलब्ध हैं—कृपया लिखिए रूप नारायण पांडेय का 'पराग' क्या प्राप्य

है ? कहाँ से ? आशा है आप कष्ट पर ध्यान न देते हुए मेरा मार्ग-निर्देश करेंगे।

सादर
आपका
जगदीश प्रसाद मिश्र

४८. गुरुदत्त सोलंकी, भरतपुर

[पूर्णतया अपरिचित। चिन्तनशील विद्वान]

७१/१

साहित्य के इतिहास पर आधारित आपके शोध कार्य का मैं मुक्त कंठ से समर्थक रहा हूँ। रीति तथा भारतेन्दु काल के बारे में आपके पास यथेष्ट सामग्री है। हम भी इसी पथ के पथिक हैं। आशा है आप पत्रिका के लिए रचना अवश्य भेजेंगे।

भवदीय
गुरुदत्त सोलंकी
१७-८-१९६२ अध्यक्ष-हिन्दी संस्कृत विभाग
गवर्नमेंट कालेज भरतपुर

७२/२

गुरु दत्त सोलंकी
अध्यक्ष हिन्दी संस्कृत विभाग

महारानी श्री जया कालेज
भरतपुर
२२-१-६३

प्रिय डाक्टर साहब,

'हिन्दी प्रचारक द्वारा' आपके डॉ॰ लिट्॰ प्राप्त कर लेने की शुभ सूचना पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। प्रसन्नता मुझे विशेष कारण से हुई। हिन्दी में शोध के नाम पर जो विचित्र प्रयोग तथा प्रयत्न होते रहे हैं, उन्हें देखकर बड़ा खेद होता है। डो॰ लिट्॰ के थीसिस भी अपवाद नहीं हैं। आपका कार्य मुझे तो गिने चुने अपवादों में ही लगता रहा है। साहित्य के इतिहास संबंधी खोज की आवश्यकता की ओर लोगों का ध्यान कम ही गया है। अधिकतर शोधों में विभिन्न प्रवृत्तियों का अपनी दृष्टियों से अनुशीलन मात्र ही हुआ है। कम से कम मुझे ऐसा ही लगता रहा है। आपकी शोध दिशा श्री भारतेंदु के सहयोगियों संबंधी पुस्तिका से ही, मुझे अत्यन्त महत्वपूर्ण लगती रही है। साहित्य के इतिहास की आधार भूमि साहित्यकार तथा उनकी कृतियाँ पहिले चाहिए, मूल्यांकन पीछे होता रहता है।

आपको एक बार फिर बधाई।

साहित्य के इतिहास के मूल स्रोतों के अनुसंधान में मेरी भी रुचि रही है, जितना बन पड़ा, प्रयत्न भी करता रहा हूँ। यद्यपि इस सन्दर्भ में मार्ग-दर्शन करने वाले

ग्रंथ पढ़ने को भी मिल पाना कठिन रहा है। पुस्तकें अप्राप्य हो जाती हैं, उदाहरणार्थ आपका 'सरोज सर्वेक्षण' मुझे देखने को नहीं मिल पाया है।

इस संबंध में आपसे एक निवेदन है। आप मुझे बतावें कि तासी वाले इतिहास का अनुवाद (जो हि॰ ए॰ से कभी प्रकाशित हुआ था) तथा आपका 'सर्वेक्षण' कहाँ से मिल सकते हैं। यदि आसानी से उपलब्ध न हों, तो क्या कहीं से पढ़ने को मिल सकते हैं ?

दूसरी बात यह कि आपका डी॰ लिट्॰ का थीसिस कब तक प्रकाशित होगा। मैं अवश्य पढ़ना चाहूँगा।

क्या इस विषय से संबंधित अन्य ग्रंथ आप मुझे बता सकेंगे ? एक निवेदन कर दूँ कि 'गोकुल' कृत 'दिग्विजय भूषण' के लिए जो प्रचार हुआ था कि 'सरोज' का मूल संदर्भ ग्रंथ वही है, पढ़ने पर मुझे बड़ी निराशा हुई थी। उक्त ग्रंथ के लिए जो कुछ साधिकार कहा गया था, वह ग्रंथ अथवा उसके संपादन से सिद्ध नहीं हुआ। अस्तु।

हमारी पत्रिका प्रकाशित हो गयी है। आपके पास आपके लेख की अन्य प्रतियों के साथ भेजी जा रही हैं। मुझे अपरिचित का पत्र पाकर आपने लेख भेज दिया था, तथा उसके प्रकाशन की इतनी लंबी प्रतीक्षा कर ली। इसके लिए हम सभी आपके आभारी हैं। पत्रिका के संपादक मेरे एक प्रिय शिष्य हैं। प्रकाशन में देर तो हुयी है; परन्तु अब समय पर ही निकलती रहेगी। इस संबंध में आपसे हमारे तीन अनुरोध हैं—

१. अगले अंक के लिए भी आप अपना लेख अवश्य भेजें।
२. पत्रिका पर अपनी सम्मति लिख भेजें। यदि हो सके तो इसकी समीक्षा कहीं प्रकाशित करा दें।
३. अपने कालेज–पुस्तकालय में इसे मँगवाना प्रारम्भ कर दें।

आपकी व्यक्तिगत प्रति तो अलग से पहुँचती ही रहेगी। आशा है आप तीनों कार्य कर देंगे।

पत्रिका में कुछ कमियाँ अवश्य रह गयी हैं, जैसे कि स्थानीय व्यक्तियों के लेख। किन्तु यहाँ भी लिखने-लिखाने की प्रवृत्ति पैदा करनी ही है। इसीलिए आप पत्रिका के बारे में अपने सुझाव अवश्य भेजें। मैं चाहता हूँ कि शोध तथा विचारपूर्ण सामग्री देने में यह पत्रिका, किसी से पीछे न रहें, होगा आप जैसों के किये ही, क्योंकि भरतपुर अब तो back of beyond से कम नहीं है।

क्या आशा करूँ मुझे संक्षिप्त सा उत्तर मिलेगा।

शुभ कामनाओं सहित
गुरुदत्त

७३/३

गुरु दत्त सोलंकी
अध्यक्ष हिन्दी संस्कृत विभाग

महारानी श्री जया कालेज
भरतपुर
९-२-६३

आदरणीय डा० साहब,

आपका दि० ३ फर० का पत्र प्राप्त हुआ। आपने आरंभ में ही शिष्टाचार की एक बहुत भारी भरकम बात कह दी। कह नहीं सकता, कहाँ तक उसके भार को सह सकूंगा। क्या किसी के कार्य की सराहना कोई ऐसा कार्य है, जिसके लिए कृतज्ञ हुआ जाय। गुप्त जी, मैं तो देहात का रहने वाला हूँ, अभी तक भी नागरिक शिष्टाचार की बारीकियाँ नहीं सीख पाया हूँ। मुझे यदि किसी का कार्य साहित्यिक महत्व का लगता है, तो उसकी प्रशंसा करता हूँ। केवल नाम सुनकर आदर देना नहीं सीखा। रही अपरिचित रहने की बात, तो साहित्यिक का परिचय क्या उसकी कृति नहीं है। रुचि, वृत्ति, साहित्यिक सूझ बूझ, तथ्यान्वेषण, सार-ग्रहण-क्षमता, महत्व की सभी बातें तो मनुष्य के कृतित्व में साक्षात् हो जाती हैं। क्या फिर भी कोई अपरिचित रह जाता है। अस्तु।

'सरोज सर्वेक्षण' के ५ वर्षों से प्रेस में ही पड़े रहने की बात जानकर बड़ा खेद हुआ। इस हिसाब से डी० लिट्० की थीसिस तो न जाने कब तक प्रकाश में न आ सके। इसीलिए नहीं कहता कि मुझे देखने को न मिलेगी। मैं तो आपसे माँग कर या आपके पास आकर भी पढ़ सकता हूँ। परन्तु हमारा हिन्दी जगत विशेषकर साहित्य-चेता विद्यार्थी-वर्ग कैसे पढ़ पाएगा, यही सोचता हूँ। डा० साहब इनके प्रकाशन का प्रयत्न तो अवश्य कीजिए। आपका कार्य तो साहित्य के इतिहास के शोध में दिशा-निर्देशक है। अन्य अनेक शोधों के लिए प्रेरक है।

हमारी पत्रिका को जो सहयोग व सहायता देना चाहते हैं, उसके लिए हम आभारी है। 'हिन्दी प्रचारक' को एक प्रति भिजवा रहा हूं।

'स्वर्ण जयन्ती ग्रंथ' भिजवा रहा हूँ। आप देख लें तभी उसके बारे में कुछ कहूँगा।

मेरे लिए यदि कोई आदेश या सुझाव दें, तो सहर्ष स्वीकार करूँगा।

विनीत—
गुरुदत्त

४९. डा० रत्नाकर पांडेय, काशी

[रत्नाकर जी काशी-वासी हैं, ना० प्र० सभा के प्रधान मंत्री श्री सुधाकर जी के अनुज हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राचार्य हैं और अब एम० पी० हैं।]

७४

फोन आवास ३८५३
गोला दीनानाथ
वाराणसी
२९-२-६३

मान्यवर,

प्रणाम ।

हिन्दी की कविता विधा में सानेट का एक महत्वपूर्ण स्थान है । मैं 'हिन्दी सानेट' नाम से एक संकलन सपरिचय संपादित कर रहा हूं । आप हिन्दी के प्रख्यात रचनाकार हैं । अभी तक मुझे आपके सानेट नहीं मिले हैं । मैं आपका आभार मानूंगा, यदि पत्र पाने के साथ ही अपने पाँच सानेट चुनकर, सपरिचय, अति शीघ्र उपरोक्त पते पर प्रेषित कर दें । इस संग्रह का संपादकीय कार्य फरवरी के अंत तक आपकी कृपा से संपन्न हो जायगा । विश्वास है, आप शीघ्रता करेंगे और कष्ट के लिए क्षमा ।

आशा है आप सानद हैं ।

विनम्र
रत्नाकर पांडेय

५०. चन्द्रशेखर मिश्र, काशी

(भोजपुरी के सुप्रसिद्ध कवि । कुँवर सिंह और द्रौपदी काव्यों के रचयिता । पूर्व परिचित मित्र ।)

७५.

तार का पता—'सन्मार्ग'

फोन नं० ५२० | सन्मार्ग | पो० बा० नं० ५७
पत्र संख्या | (प्रमुख हिन्दी दैनिक) | टाउनहाल, वाराणसी नं० १

दि० २५–३–१९६३

आदरणीय डाक्टर साहब,

नमस्कार ।

नम्र निवेदन है कि पत्र पाने के २-३ दिन बाद तक कृपया होली सम्बन्धी ब्रज भाषा के ५ सवैये सन्मार्ग के होलिकांक के लिए भेज दें । आशा है आप निराश नहीं करेंगे ।

आपका
चन्द्रशेखर मिश्र

५१. डा० पूर्णमासो राय

[डा० पूर्णमासी राय पहले आरा में थे । फिर मगध विश्व विद्यालय में चले गए । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शिष्य । अब वे प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष हैं ।]

७६.

हर प्रसाद जैन कालेज
आरा
१२-७-१९६३

परमादरणीय डा० गुप्त जी,

सादर प्रणाम।

पत्र विलम्ब से दे रहा हूं। क्षमा कीजिएगा। मैंने आपसे आरा आने के सम्बन्ध में बात-चीत की थी। यहाँ लौटने पर सदल-साहित्य-परिषद के कार्य-क्रम में कुछ परिवर्तन लाने की आवश्यकता पड़ी, आपके दिए गए समय के साथ प्रोग्राम ठीक नहीं बैठ सका, इसलिए आपको इस अवसर पर कष्ट देना उचित न समझा। मेरे कार्य से आने के लिए आपको कालेज से छुट्टी लेनी पड़ती, इसलिए भविष्य के लिए जब छुट्टी ले सकें तो मेरे लिए आप समय देने की कृपा करेंगे। ऐसी आशा है।

'भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व' शीर्षक निबंध मैंने शोधकर्ता महोदय को सौंप दिया। वे आपसे मिलना चाहते हैं। देखें कब जाते हैं। शेष आपकी कृपा।

आपका
पूर्णमासी राय
हिन्दी विभाग
ह० प्र० जैन कालेज
आरा

५२. डा० श्रीमती शांता सिंह, गोरखपुर

[गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं। रहने वाली वाराणसी की।]

७७।१

२३-९-६३
गोरखपुर

आदरणीय डाक्टर साहब,

आपका पत्र कल मिला था और आज मुद्रित (टंकित) निबन्ध का पार्सल मिला। आपने बड़ी तत्परता से यह सब भेजा है। इसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

श्रद्धेय पद्मनारायण आचार्य जी ने कदाचित इसलिए मेरा उल्लेख किया होगा कि मैंने भक्तमाल को Ph-D. का विषय बनाकर वहीं काशी विश्व विद्यालय से ही कार्य करने की योजना बनाई थी। परन्तु अनेक आकस्मिक बाधाओं व कठिनाइयों के कारण वह कार्य पूरा नहीं हो पाया था।

आदरणीय दीन दयाल जी से इस विषय पर चर्चा हुई, तो उन्होंने और गुरुवर विश्वनाथ जी ने आपके प्रबन्ध का उल्लेख किया था।

इस संबंध में आगे कदाचित फिर आपको कष्ट दूंगी।

आशा है आप स्वस्थ व प्रसन्न होंगे। काम होते ही मैं इसे लौटा दूँगी।

सप्रणाम
शांता सिंह

७८।२

२५-१०-६७

कोठी राय साहब आद्या प्रसाद
सिविल लाइन्स
गोरखपुर

आदरणीय डाक्टर साहब,

नाभा दास के भक्तमाल के विषय में शोधकार्य के सम्बन्ध में आपसे पहले भी पत्राचार हो चुका है।

आपके मतानुसार नाभादास की इसके लेखक के रूप में प्रसिद्धि भ्रामक है और आपका निष्कर्ष यह है कि इसके लेखकों की संख्या २ या ३ तक सिद्ध की जा सकती है। इस सम्बन्ध में आपका नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व' नामक निबंध मेरे पास है, इसके अतिरिक्त भी आपने अन्यत्र जहाँ कहीं भी इस विषय में कोई मत व्यक्त किया हो, उसकी सूचना देने की कृपा करें, तो अनुगृहीत होऊँगी।

इस भक्तमाल के विषय में और कोई उल्लेखनीय सामग्री या आपकी स्थापना की आलोचना प्रत्यालोचना जो हुई हो, उसके विषय में कुछ जानकारी दें तो और अच्छा।

आपने पहले जैसा सहयोग देने की कृपा की थी, वैसा ही अब भी देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

सप्रणाम
शांता सिंह

५३. राम सुहाग सिंह, रांची

[पूर्णतया अपरिचित]

७९

श्रद्धेय डाक्टर साहब,

सादर प्रणाम।

आपने 'सरोज सर्वेक्षण' और 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' का प्रणयन कर हिन्दी की जो सेवा की है, वह सर्वथा अमूल्य है। 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर

आफ हिन्दुस्तान' दुर्लभ हो गया था, आपने उसे अपने अनुवाद के द्वारा सुलभ बना दिया। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि बहुत प्रयास करने पर भी हमें अभी तक 'सरोज सर्वेक्षण' देखने को नहीं मिला। आप कृपया मुझे सूचित कीजिए कि वह कहाँ से प्रकाशित हुआ है और मूल्य क्या है।

दूसरा निवेदन यह है कि मैं Notes on Tulsidas **by Grierson** का अनुवाद कर रहा हूँ। तृतीयांश का अनुवाद कर चुका हूं। पर मुझे यह नहीं मालूम है कि अनुवाद करने के लिए लेखक के उत्तराधिकारी अथवा प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है या नहीं।

Notes on Tulsidas के मुख पृष्ठ पर लिखा है—

Bombay

Printed and published at the Education society Press,
Byculla, London, Kegonpaul, French
Trubner and Co.

इस नोट्स का प्रकाशन १८९३ ई० में हुआ था और ग्रियर्सन की मृत्यु १९४१ में हुई। 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' से ही मुझे इसके अनुवाद की प्रेरणा मिली है। यह मुझे ज्ञात नहीं है कि इसका अनुवाद पहले कभी हुआ था कि नहीं। यदि हुआ था तो देखने के लिए कहाँ से प्राप्त हो सकता है। आप एक उदार और कर्मठ व्यक्ति हैं। यही कारण है कि मैंने आपसे इन प्रश्नों के उत्तर की आशा की है।

२६–२–६४ आपका कृपाकांक्षी

हिन्दी विभाग **राम सुहाग सिंह**

संत जेवियर कालेज

रांची (बिहार)

५४. गणेश चौबे मोतिहारी

[भोजपुरी भाषा के लोक साहित्य के अध्येता और जनपदीय साहित्य के कार्यकर्ता। डा० गुप्त की इनसे भोजपुरी सम्मेलन वाराणसी में भेंट हुई थी।]

८०।१

ग्रा० पो० बंगरी
Via मोतिहारी (बिहार)

श्रद्धेय डा० गुप्त जी, १७।४।६४

मैंने भोजपुरी संसद के अधिवेशन में आपसे चर्चा की थी कि भोजपुरी लोक गीतों में कुछ ऐसे प्रयोग है, जो ब्रज भाषा के से प्रतीत होते हैं। ऐसे प्रयोग गद्य में नहीं पाये जाते हैं—

१. रहलों मैं बाबा घरे, **परलों** कोइरी घरे,

बैंगन बिरउआ नाहीं **चिन्हलों** ए बालम

२. धरती पर तमुआ **तनइबो** रावल धनियाँ,

—आर्चर—भोजपुरी ग्राम गीत पृ० २०६

३. गोतिनी, हेलिनी के भेस **चलि जाहुँ**, राजा के देखि आवहुँ हो

—वही—पृ० १८६

मैंने जान बूझ कर आर्चर से उद्धरण दिए हैं, क्योंकि यह संग्रह आदर्श भोजपुरी का, शाहाबाद जिले का है। मेरे जिले में भी इस प्रकार के बहुत से प्रयोग हैं, जो मेरे संग्रह में हैं। कृपया इस पर अपनी सम्मति दें। आप ब्रज-साहित्य के अधिकारी विद्वान हैं। अतः आपको कष्ट दे रहा हूँ।

बनारस में जितनी देर आपके साथ रहा, आपके सत्संग से बड़ा आनंद आया और लाभान्वित भी हुआ। लेकिन अतृप्त रहा। संभव है, बनारस जाते समय मैं जमानियाँ कभी उतर कर आपका अतिथि बनूं।

आशा है सानंद होगें।

भवदीय
गणेश चौबे

८१।२

पो० बंगरी
Via पिपरा कोठी, चंपारन
१-१०-६७

श्रद्धेय डा० गुप्त जी,

नमस्कार।

आपका ता० ७-९-६७ का कृपा-पत्र यथासमय मिल गया था। पुत्र की बीमारी को लेकर किंचित व्यस्त था, अतः प्राप्ति सूचना नहीं दे सका। क्षमा प्रार्थी हूं।

आपने पत्र देकर मेरी एक बड़ी भ्रांति दूर की। इसके लिए सौ-सौ धन्यवाद। आप ब्रज-भाषा के अधिकारी विद्वान हैं। आपके निर्णय पर शंका करने की गुंजाइश कहाँ है? हाँ, एक बात जरूर है। इस प्रकार के प्रयोग लोक-गीतों में बहुत व्यापक हैं और गीतों तक ही सीमित हैं। कथाओं या गद्य में इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते।

श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी चाहते हैं कि—अन्तर्जनपदीय परिषद को पुनर्जीवित किया जाय। आप जानते ही होंगे यह हिन्दी क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का संगठन था, जिसका उद्देश्य था हिन्दी के माध्यम से जनपदीय साहित्य एवं भाषा वैज्ञानिक तथा अन्य सामग्रियों का संकलन एवं अध्ययन। इसके लिए इसके पुराने कार्यकर्ता

किंचित प्रयत्नशील हैं और उसके लिए यथासमय आपका भी सहयोग अपेक्षित होगा। इधर मैं बनारस नहीं जा सका। उलहना शिरोधार्य है।

५५. शिव प्रताप

[पूर्ण अपरिचित]

८२.

आदरणीय गुप्त जी, हिन्दी विभाग

नमस्ते। विश्वविद्यालय प्रयाग

मै विभाग के एक शोध छात्र के रूप में चिन्तामणि पर काम कर रहा हूं। इसी संबंध में डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा अध्यापक हिन्दी विभाग से विचार विमर्श करने पर मैंने आपकी पुस्तक—'सरोज सर्वेक्षण' (हिन्दु० एके० प्रयाग) की मुडित प्रति एवं भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई' (सम्मेलन ?) को देखने का सौभाग्य एवं सुविधा प्राप्त की। मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई एवं आपसे और अधिक सहायता एवं परामर्श की लालसा से पत्र व्यवहार भो किया। परन्तु खेद है कि गाजीपुर के स्थान पर आजमगढ़ लिख दिया था। संभव है पत्र न प्राप्त हुआ हो। शोध कार्य के संबंध में मैं ना० प्र० सभा गया एवं पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र (ब्रह्मनाल) से भी मुलाकात की। उन्होंने इस विषय में आपका पता तथा अन्य प्रकार से मेरे इस कार्य में गति प्रदान कर दिया है। इसके लिए में मैं उनका हृदय से आभारी हूं। सरोज सर्वेक्षण के संबंध में मुझे सरोज के निजी पुस्तकालय तथा संप्रति उसके संरक्षक के बारे में बताइये (नौनिहाल सिंह ही या अन्य ?)। मुझे चिन्तामणि त्रिपाठी कृत कवि-कुल-कल्पतरु के देखने की आवश्यकता है, जिसे सरोज जी के निजी पुस्तकालय में होने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त 'भूषण मतिराम और उनके अन्य भाई' में चिन्तामणि की एक हस्तलिखित पुस्तक की चर्चा है। उसके बारे में में आपसे निश्चित भाव से पूछना चाहता हूं कि वह 'कवि-कुल-कल्पतरु' की प्रति तो नहीं है और अगर मैं उसे देखना चाहूं, तो आप अनुमति देंगे ? इसके अतिरिक्त कवि-कुल (कल्पतरु) की कोई हस्तलिखित प्रति की जानकरी हो, तो कृपा करके बताने का कष्ट कीजिए। अगर आप जैसे विद्वानों ने मुझे सहयोग प्रदान किया तो त्रिपाठी-बंधुओं में चिंतामणि की कृतियों एवं महत्व के अभाव की कुछ न कुछ पूर्ति कर सकूंगा। जिस अभाव का संकेत आपने 'भूषण तथा उनके अन्थ भाई' में किया है। आशा ही नहीं विश्वास है, आपका उत्तर मेरे कार्य को और गतिमान करेगा।

भवदीय

शिव प्रताप

टि०-डाकखाने की मुहर २-१२-६४

५६. रामादास, वाराणसी

[आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के राम चरित मानस काशिराज संस्करण के संपादन में प्रमुख सहायक। तुलसी सत्यनारायण मानस मंदिर से प्रकाशित 'मानस मयूख' के संपादक। डा० गुप्त के मित्र।]

८३

मानस मयूख — तार : मानस, फोन ३८२०

(त्रैमासिक शोध पत्रिका) — दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–५

क्रमांक-मा० म०।५६ — दिनांक ९–१२–६४

श्रीयुत डा० साहब,

सप्रेम नमस्कार।

नागरी प्रचारिणी सभा की पुरानी खोज रिपोर्टें सभा में उपलब्ध नहीं हैं। आपने उनकी प्रतियाँ गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद से प्राप्त की हैं। मानस पुस्तकालय के लिए वे वांछित हैं। कृपया सूचित करें कि क्या वे गवर्नमेंट प्रेस से मिल सकती हैं या किस प्रकार उपलब्ध हो सकती हैं।

पत्रिका के दो अंक प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरा दिसंबर के अन्त तक प्रकाशित होने जा रहा है। हम आशा करते हैं कि उसके लिए आप अपना लेख भेजेंगे तथा आपका कालेज हमारी पत्रिका का शीघ्र ग्राहक बनेगा।

आपका

रामादास

५७. डा० रामचंद्र तिवारी, गोरखपुर

[गोरखपुर विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग में क्रमशः प्रवक्ता, प्रवाचक, अध्यक्ष एवं प्रोफेसर। चिन्तनशील समीक्षक। डा० गुप्त के मित्र।]

८४.

हिन्दी विभाग
विश्व विद्यालय
गोरखपुर
६–१–६५

आदरणीय डॉ० साहब,

सादर नमस्कार।

आशा है आप स्वस्थ और सानंद होंगे। इधर बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला। आप गोरखपुर आए भी नहीं। आपकी डी० लिट्० की थीसिस प्रकाशित हुई या नहीं? उसे देखने की प्रबल इच्छा थी। एक जिज्ञासा थी—गार्सां द तासी ने अपने इतिहास की आधार भूत सामग्री के रूप में कुछ उर्दू तजकिरों का भी

उल्लेख किया हूँ। क्या आपने इस पर विचार किया है ? आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्माण में सहायक या आधारभूत किन-किन ग्रंथों पर विचार किया है ? क्या एक चिट पर सूची देने की कृपा करेंगे ?

उत्तर की प्रतीक्षा में—
विनीत
रामचंद्र तिवारी
अध्यापक हिन्दी विभाग
विश्वविद्यालय

५८. डा० शैलेश जैदी, अलीगढ़

[अलीगढ़ विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक। 'बिलग्राम के हिन्दी कवि' नामक शोध प्रबंध के रचयिता। डा० गुप्त से ना० प्र० सभा काशी में एक बार भेंट।]

८५.

शैलेश जैदी
८ शिबली रोड
मु० वि० वि० अलीगढ़।

२५-१-६६

श्रद्धेय महोदय,

सादर नमस्कार।

आपका कृपा पत्र मिल गया था। 'तबकातुश्शोअरा' के सम्बन्ध में क्या आप और कुछ लिख सकेंगे। कहाँ से और कब प्रकाशित हुई। इत्यादि।

आशा है आप सपरिवार सकुशल हैं। परिवार के सदस्यों को यथायोग्य अभिवादन एवं आशीर्वाद।

स्नेहाकांक्षी
शैलेश जैदी

५९. डा० सियाराम तिवारी

[पटना में प्राध्यापक। अच्छे शोधी विद्वान। सम्पर्क नहीं]

८६।१

डा० सिया राम तिवारी
हिन्दी विभाग
कालेज आफ कामर्स
पटना—६

निवास :
सैदपुर विस्तार पथ
राजेन्द्र नगर
पटना—४
२५—२—६५

आदरणीय महोदय,

सादर नमस्कार।

मैं हलधर दास कृत 'सुदामा चरित्र' का पाठ-सम्पादन कर रहा हूँ। आप उसकी मुद्रित एवं हस्तलिखित प्रतियों की सूचना दे सकें तो कृपा होगी। सुधानिधि प्रेस कलकत्ता से उसके छपने का उल्लेख मिलता है, पर वह प्रति कहीं देखने में नहीं आ रही है। क्या इस सम्बन्ध में आप कोई जानकारी दे सकते हैं?

आज कल किस विषय पर आपका कार्य चल रहा है? निवास के पते से उत्तर देने की कृपा करें।

भवदीय
सियाराम तिवारी

८७।२

डा० सिया राम तिवारी
हिन्दी विभाग
कालेज आफ कामर्स
पटना—६

निवास
सैदपुर विस्तार पथ
राजेन्द्र नगर
पटना—४
६—३—६५

आदरणीय डा० गुप्त,

आपका २।३ का कृपा पत्र।

समस्त हिन्दी कवियों की रचनाओं को संकलित करने की आपकी योजना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। वह संकलन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि होगा।

उस संकलन में आप हलधर दास को भी सम्मिलित करें। उन्होंने अपना सुदामा-चरित्र १५६५ ई० में लिखा था। काव्य की दृष्टि से यह अद्योपलब्ध सभी सुदामा-चरित्रों में श्रेष्ठ है। अपना पाठ-सम्पादन कार्य मैंने लगभग समाप्त कर लिया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। प्रकाशित होने पर उसकी एक प्रति आपको भेजूंगा।

दूसरा निवेदन यह है कि विभाषाओं में आप वज्जिका को भी स्थान दें। वह बिहार राज्यान्तर्गत मुजफ्फर पुर जिले एवं उसके आस पास की बोली है। उस पर बिहार राष्ट्र भाषा परिषद ने अपने ६४ के वार्षिकोत्सव में निबंध पाठ कराया है। उसकी एक प्रति बुक पोस्ट से भेज रहा हूँ।

मेरे इन दोनों सुझावों पर अपने विचार लिखेंगे।

आपका
सियाराम तिवारी

८८/३

सैदपुर विस्तार पथ
राजेन्द्र नगर
पटना-१६
७—९—६६

आदरणीय महोदय

हलधर दास कृत सुदामा चरित्र के संपादन में यथेच्छित सूचनाएँ देकर आपने मेरी सहायता की थी। वह पुस्तक प्रकाशित हो गयी है और उसमें आपकी सहायता का साभार उल्लेख हुआ हैं। इस अवसर पर मैं पुनः आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

आपका

सियाराम तिवारी

६०. पुरुषोत्तम खरे, जबलपुर

[पुरुषोत्तम खरे जबलपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी के शोध छात्र थे। अपरिचित।]

<९।१

आदारणीय,

प्रणाम।

निवेदन है कि मैं डा० उदय नारायण तिवारी के निर्देशन में शोध-कार्य कर रहा हूँ। मुझे परबत कवि के विषय में जानकारी प्रदान करने की कृपा करें। ग्रियर्सन महोदय के इतिहास में संशोधन करते समय आपने भाषा-काव्य-संग्रह (महेश दत्त) का उपयोग किया था। इस पुस्तक में संभव है परबत कवि का उल्लेख हो। यह ग्रंथ हम लोगों को अनुपलब्ध है।

इस संदर्भ में आपने बुंदेल वैभव की टिप्पणी भी दी है। किन्तु अपना निश्चय शायद नहीं दिया। ग्रियर्सन के मूल इतिहास में परबत कवि के विषय में कितना अंश है यह बताने की कृपा करेंगे। वैभव हमारी दृष्टि से अप्रमाणित है।

आपकी अत्यन्त अनुकंपा होगी उक्त कवि के विषय में जानकारी प्राप्त कराने में। अन्य स्रोत बताने का कष्ट करें, नागरी प्र० स० खोज विवरणों के अलावा।

मेरे योग्य भी कभी कोई सेवा हो तो आज्ञा देंगे। क्षमा।

विनीत

पुरुषोत्तम खरे

[जबलपुर विश्व विद्यालय] ३०।४।६४

९०/२

पूज्यवर,

श्री चरणों में प्रणाम।

कृपा-पत्र यथासमय मिला। पूज्य डा० तिवारी जी से हुई आपकी बात-चीत का भी आनंद मिला। यदि डा० हरिहर टंडन द्वारा निर्देशित पर्वतसेन हमारे अभीष्ट परबत होते, तो टंडन जी ने अपने ग्रंथ में तद्विषय में अपनी निश्चयात्मक

सम्मति दे दी होती । उन्होंने तो प्रसंग अधूरा ही छोड़ दिया है। एक वर्ष से हम लोग उन्हें निरन्तर लिख रहे हैं, किन्तु इस बारे में वे अपना निर्णय नहीं देना चाहते ।

२. प० सेन के काव्य के उदाहरण और पर्वतदास (परवत) की हमें उपलब्ध कविताओं की भाषा की स्वरूप-रचना में अत्यन्त विषमता है ।

३. 'फुटकर कवित्त' संकलन से यदि हमें किसी तरह पर्वत कवि के कवित्त मिल सकें, तो कुछ काम बने । क्या आपके निजी स्रोतों से यह काम सध सकेगा, याने उक्त कवि के कवित्त कोई नकल करके हमें दे सकेगा । कृपया इस दिशा में प्रयत्न करें, यह कर-वद्ध प्रार्थना है । राज० जोधपुर को हमने लिखा था, किन्तु वहाँ कौन सुनता है । उत्तर नहीं मिला ।

विनीत

पुरुषोत्तम खरे

२३-५-६५

६१. दीप नारायण सिंह, सारन

[पूर्णतया अपरिचित]

९१/१

डा० दीप नारायण सिंह, एम० बी० बी० एस०
ग्राम-खलपुरा कमाल, पो० गुलटेन गंज
जि०-सारन (बिहार)

३-११-६५

श्रद्धेय गुप्त जी,

सादर अभिवादन ।

आपका एक लेख 'मानस मयूख' वर्ष २, प्रकाश २ में पढ़ने को मिला, जिसमें वृंदाबन के बाबा तुलसी दास द्वारा संकलित 'श्रृंगार रस सागर' ४ भाग का उल्लेख है । बड़ी कृपा होगी, यदि आप बतलायें कि यह रचना कहाँ से प्रकाशित हुई है और मूल्य क्या है । कष्ट के लिए क्षमा ।

क्या आपके अन्य लेख तुलसी तथा राम साहित्य पर कहीं पत्रिका में छपे हैं ? यदि छपे हों, तो कृपया उनका भी उल्लेख करने का कष्ट करेंगे ।

आपका कृपाकांक्षी

दीपनारायण सिंह

९२/२

दीप नारायण सिंह, एम० बी० बी० एस०
ग्राम-खलपुरा कमाल, पो० गुलटेन गंज
जिला-सारन (बिहार)

१७-११-६५

श्रद्धेय गुप्त जी

सादर नमस्कार ।

पत्रोत्तर के रूप में आपका १३-१-६५ का कृपा पत्र मिला । 'शृंगार रस सागर' की जानकारी प्राप्त हुई । आपका शोधपूर्ण लेख 'गोसाईं चरित की संप्राप्ति' मैं 'मानस मयूख' में पढ़ चुका हूँ, जो महत्वपूर्ण है ।

आपके पत्र से वाणी वितान ब्रह्मनाल वाराणसी से प्रकाशित 'गोसाईं चरित' के विषय में पढ़कर जिज्ञासा हुई । मेरे संग्रह में अयोध्या से प्रकाशित राम बालक जी द्वारा संपादित रामचरित मानस की एक प्रति है, जिसके आरंभ में 'गोसाईं-चरित' संलग्न है । क्या ब्रह्मनाल वाली प्रति में कोई विशेषता है, जिसके कारण उसका मूल्य ९) हो गया है ? यदि कोई विशेषता होगी, तो उसे भी पढ़ने की इच्छा है । शायद पं० विश्वनाथ मिश्र जी ने इसका संपादन किया है ।

कष्ट के लिए क्षमा ।

आपका कृपा पात्र
दीप नारायण सिंह

६२. रामचन्द्र पुरोहित जयपुर

[अपरिचित]

९३/१

प्लाट ६
विवेकानन्द मार्ग
सी-स्कीम, जयपुर
(राजस्थान)
९-७-६५

आदरणीय डॉक्टर साहब,

सादर नमस्कार ।

आपके ब्रज भाषा रचित 'राधा' नामक एक खंड काव्य की सूचना मिली है । उक्त पुस्तक की मुझे आवश्यकता है । वह कैसे प्राप्त हो सकती है ? कृपया उसके प्राप्ति-स्थान के संबंध में उक्त पते पर तुरंत लिख भेजें । यदि आपके पास ही उसकी अतिरिक्त प्रतियाँ हों, तो एक V. P. से भेजने की कृपा करें । विश्वास है, जैसा हो तुरंत लिख भेजेंगे । यदि आपकी ब्रज भाषा रचित और कोई पुस्तक (पद्य वद्ध) निकली हो, उसे भी भेजने या उसके प्राप्ति स्थान के संबंध में सूचित करने की कृपा करेंगे । कष्ट के लिए बहुत बहुत धन्यवाद । इति ।

भवदीय
राम चन्द्र पुरोहित

९४/२

प्लाट ६
विवेकानंद मार्ग
सी–स्कीम, जयपुर,
(राजस्थान)

आदरणीय डा० गुप्त जी,

सादर नमस्कार ।

आपका कृपा पत्र और 'राधा' पुस्तक दोनों ही यथा समम प्राप्त हो सके । औपचारिक रूप से धन्यवाद, अन्यथा इस स्नेह-संवलित कृपा के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्दों का अभाव है ।

मुझे दुख है कि मैं आपसे यहाँ जयपुर में न मिल सका । आपने जयपुर के कतिपय प्रमुख स्थानों को देखा और संभवतः आपका कवि-हृदय रमा भी होगा । किसन गढ़ विशेषतः नागरीदास जी के संपर्क से भ्रमणीय स्थान है और पुष्कर धार्मिक एवं प्राकृतिक दोनों ही दृष्टियों से । अच्छा होता यदि में आपके दर्शन कर सकता । जब कभी इधर आएँ, सूचित करने की कृपा करें । मुझे आपके व्रजभाषा संबंधी कृतित्व का परिचय पाकर प्रसन्नता हुई । वे सब रचनाएँ भी तो मुद्रणीय हैं । सभी प्रकाशित क्यों न हो सकी ? भाई वर्मा जी, जैसा मुझे ज्ञात हैं, मेरे निवास स्थान के आस पास ही यहीं दो तीन मकान छोड़कर हैं । उनसे मिलूँगा । मैं भी यहां विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापक हूँ और डा० सत्येन्द्र जो विभागाध्यक्ष हैं । समझता हूं यदा कदा पत्रादि के द्वारा कष्ट की धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे । इति ।

स्नेहाकांक्षी
रामचन्द्र पुरोहित

६३. गंगा प्रसाद पाठक

[पुराने विस्मृत छात्र]

९५/१

दिल्ली
६–९–६५

आदरणीय गुरुदेव जी,

मेरे नाम का स्मरण शायद आपको न हो, मैंने ५५ में शिबली कालेज से बी० ए० किया था, रहने वाला आजमगढ़ का हो हूँ । इस समय दिल्ली कालेज में कार्य कर रहा हूँ ।

इस पत्र के द्वारा आपसे एक काम के संबंध में आपको कष्ट दे रहा हूं। काम यह है कि मैं स्वर्गीय महापंडित राहुल सांकृत्यायन के पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित करवाना चाहता हूँ। इसके लिए मैंने उनके काफी पत्रों का संग्रह कर लिया है; कुछ और पत्रों का संग्रह करने में लगा हुआ हूँ। आपके पास भी राहुल जी के कुछ पत्र होंगे, मैं उन पत्रों की प्रतिलिपि चाहता हूं। अतः यदि आप समय मिलने पर अपनी सुविधानुसार उन पत्रों की प्रतिलिपि भिजवा सकें, तो बड़ी कृपा होगी। यदि इस कार्य में कोई कठिनाई हो अथवा उन पत्रों की प्रतिलिपि भिजवा सकना तत्काल संभव न हो सके, तो भी पत्र का उत्तर देने की कृपा अवश्य करें।

एक अप्रासंगिक सा समाचार यह है कि आजकल श्री गुरु भक्त सिंह जी 'भक्त' अपने एक लड़के के उपचार के लिए यहाँ आए हुए हैं। उनसे आपकी चर्चा चली थी और उसके साथ ही आपके समय की आजमगढ़ की साहित्यिक गतिविधि तथा वातावरण की जो एक शान थी, बिल्कुल ही समाप्त हो गई है। भक्त जी अभी कुछ दिन यहाँ रूकेंगे।

आशा है आप स्वस्थ सानंद हैं।

स्नेहाकांक्षी
गंगाप्रसाद

९६/२

गंगा प्रसाद पाठक
हिन्दी विभाग
दिल्ली कालेज, अजमेरी गेट
६–१०–६५

आदरणीय गुरुवर,

श्री राहुल जी के पत्रों से संबंधित अपने जिस काम के लिए आपसे निवेदन किया था, वह पूरा न होने पर भी आपका कृपा पत्र पाकर बहुत सुख एवं संतोष मिला।

दिल्ली में रहकर कुछ लिखने-पढ़ने का जो आदेश आपने दिया है, उधर मेरा ध्यान है, लेकिन कुछ व्यक्तिगत उलझनों में फँसे रहने के कारण संभव नहीं हो पा रहा है। फिर भी आपके पत्र से बहुत प्रेरणा मिली।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ सानंद है। कभी दिल्ली आएँ, तो दर्शन अवश्य दें।

भवदीय
गंगा प्रसाद पाठक

६४. ओंकार नाथ शर्मा

[ओंकार नाथ शर्मा सुकवि हैं। यह क्रमशः बेरी नाग (पिथौरागढ़), गाजीपुर आगरा, हस्तिनापुर के राजकीय इण्टर कालेजों में मनोविज्ञान के प्रवक्ता थे। बाद में नौकरी छोड़ इलाहाबाद में उद्योग में आ गये। गाजीपुर में रहते समय डा० गुप्त से इनकी भेंट हुई थी।]

९७।१

बेरी नाग
१८-४-६६

मान्यवर गुप्त जी,

प्राप्त हो गया कृपा-पत्र श्रीमन्, फिर लगा मुझे ऐसे,
जैसे प्यासा पथिक जीर्ण सा पा जाये अमृत संबल।
अनुभव कर अनुकंपा और वरद भावों का पुंज अमित,
सहज निराश्रित हृदय, हुआ फिर श्रेष्ठ कृपा से मुद विह्वल।
ग्रहण नीतिमय वचन, गुप्तजी, मैंने किये आज ऐसे,
कृपण देखकर कोष अपरिमित, कहीं छिपाये उसको ज्यों।
वयस व्यतीत हुआ करती है, स्वयं अर्जिता पूँजी सी,
अतः समय के सदुपयोग में, ग्राह्य प्रमाद भला फिर क्यों ?
अल्प आयु में विद्वज्जन ने, कीर्ति अमित अर्जित कर ली,
हुये चीकने पात, क्योंकि वे होनहार बिरवे से थे।
बुध जन कहते यशःकाय से, वे ही हुये चिरंजीवी,
जो कि सौख्य में और विपद में, धैर्य नीति के गृह से थे।
प्रतिभा तो अनुवंशिक होती, यह तो तथ्य सुनिश्चित है,
किन्तु न पता कहाँ किस वय में, जाकर हो कैसे विकसित।
पर्यावरण सुअवसर देता, प्रतिभा के विकास के हित,
और यही कर देता कृति, प्रज्ञा, प्रतिभा को बहु चर्चित।
अतः मिले अनुकूलन जिस वय में, उसमें यश मिलता है,
यत्न तभी साफल्य जन्यते, गुण विकास अवसर पाते।
प्रतिभा हो, अवसर विकास का मिले न रंच कहीं जग में,
ऐसे पादप-पुहुप मनुज-गुण सदा अविकसित रह जाते।
परिजन छोड़ गये लघु वय में, इस अथाह भवसागर में,
साँस फुला दी सभी अभावों के अति प्रखर थपेड़ों ने।
यत्नों का आश्रय लेकर, जीवन के पथ पर निकल पड़ा,
और धैर्य-जल बाँधा स्व-निर्मित मर्यादा मेड़ों ने।

शोधकार्य में लगा हुआ था, ज्ञान और सामर्थ्य सहित,
पितृ तुल्य मग-दर्शक छीने विधि ने, यूँ असहाय हुआ।
रोध हुआ उन्नति पथ का, फिर द्वार न कितने खटकाये,
मिला न आश्रय, और आज थककर सब विधि निरुपाय हुआ।
जैसे होते अनुभव, हँसने मुस्काने या रोने के।
उनकी ही अभिव्यक्ति सत्य यदि काव्य स्वयं कहलाती है।
तब ही आशा और निराशा क्रन्दन औ मुस्कान सरल,
कविता-कामिनि के कोमल पग-तल को आ सहलाती है।
है नैराश्य एक धुन, आशा ही सचमुच संजिवनि है,
ऐसा है निर्देशन यदि, तो सदा बहारें गाऊँगा।
दुख का गरल गले में धर, मुस्कान सहज मुख पर लाकर,
आशा ऊषा औ वसंत के घर मैं सस्मित जाऊँगा।
आयु अवश्य उषा आशा की, औ वसंत की है मेरी,
किन्तु अभावों ने संध्या, नैराश्य और पतझड़ भेंटा।
देकर निज आश्वासन और वरद भावों की पुष्करिणी,
भ्रम विभ्रम दुख दैन्य और परिताप सकल मेरा मेटा।
आशा करता मन शरीर से, स्वस्थ सपरिकर होंगे अब,
मेरा सविनय अभिवादन, परिवार सहित स्वीकार करें।
श्री शर्मा की कुशल क्षेम औ नमस्कार करता प्रेषित,
दर्शन और सांत्वना देकर, मन का मेरे भार हरें।

भवन्निष्ठ
ओंकार

९८।२।

गंगा भवन, मो॰ रायगंज
गाजीपुर
२१–१२–६६
(रात्रि ११-५०)

श्रद्धेय आदरणीय श्री गुप्त जी,

सादर अभिवादन

आपको आश्चर्य न हो इसलिए लिखना अनिवार्य हो गया है कि मैं बेरी नाग से राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय गाजीपुर में आ गया हूँ। भाव-चुम्बक का क्षेत्र वृहत होता है—भावना का आकर्षण बेरी नाग से गाजीपुर खींच लाया। श्री

गोविन्द राम शर्मा जो मथुरा पहुँच गये हैं। नये वर्ष की बेला आने को है और इस पावन बेला में नये वर्ष की शुभकाकना के प्रसून आपकी सेवा में भेज रहा हूं—

श्री गुप्त जी !
नए वर्ष की शुभ बेला में
सादर श्रेष्ठ कामनाओं का
रथ सुन्दर सा भेंट रहा कर,
विरथ नहीं है श्रीमन्, है यह तथ्य सुनिश्चित,
क्योंकि सोचता
राम चरित मानस में वर्णित सद्गुण वाला
श्रेष्ठ सुरथ है साथ आपके
और उसी में बैठ
काल के बली सुभट से
ठान लिया है युद्ध और अब
यश की कोलें
निर्भय हो उसकी छाती में ठोंक रहे हैं
मिथ्या कर—
'कालो न यातो वयमेय याता'
क्योंकि
काल बहुत सा बीता यश कीलें ठुकवाकर
और प्रगति के रथ में बैठे
दुर्दम गति से
उन्नत पथ पर
रहे नित्य बढ़,
फिर भी,
आशा है स्वीकार करेंगे
सद्भावों का
शिव से संकुल
सत्यान्वेषित
सुन्दर एक मनोरथ-रथ
सेवा में प्रेषित

वैसे यहाँ अकेला पड़ गया हूँ। वहाँ की प्रकृति मेरी सम्वेदना में रोती थी, गाती थी। मनोविज्ञान के क्षेत्र में शोध मेरा उद्देश्य है, क्योंकि आदरणीय दिवंगत डा०

रे ('पितृतुल्य—मार्ग दर्शक—छीने विधि ने यूं असहाय हुआ' इस पंक्ति के द्वारा आप सम्भव है डा० रे से परिचित हों, वे शोध के क्षेत्र में मेरे मार्ग दर्शक थे।) की मुझे मनोविज्ञान के क्षेत्र में ख्यात देखने की तीव्र इच्छा थी।

आपकी सेवा में बेरी नाग से एक पत्र प्रेषित किया था, आप सम्भव है व्यस्तता के कारण उत्तर न दे पाए हों। मैं वैसे कार्य भार से दवा नहीं हूँ और फिर भावों का दमन नहीं कर पाता, अतः विवश होकर समय समय पर लिखता रहता हूँ।

यद्यपि मेरा मूल स्वर व्यथा और चिंता का है, क्योंकि वही मेरी अनुभूति है, परन्तु आपके शिरोधार्य आदेश का पालन कर रहा हूँ। निराशा एक धुन है जो मनुष्य को खा जाती है।

मैंने तो पत्र-व्यवहार की नियमितता और निरन्तरता के लिए अपने पत्र में लिखा था कि—

है नैराश्य एक घुन, आशा ही है यदि सच संजीवनि
ऐसा है निर्देश, आज तो सदा बहारें गाऊँगा
दुख का गरल गले में धर, मुस्कान सहज मुख पर लाकर
आशा ऊषा औ वसंत के घर मैं सस्मित जाऊँगा।

आपने मेरा पत्र पढ़ कर सोचा होगा, कि यह तो मूर्ख है, जो बात ही नहीं मानता और व्यर्थ ऊल जलूल लिख देता है। वस्तुतः बात ऐसी है कि मैंने चाहा कि उत्तर दें और फिर मैं कोई ऐसो बात लिखूँ कि आप फिर पत्र द्वारा मुझे ज्ञान दें, किन्तु आपकी कार्य-व्यस्तता अथवा अन्य मनोगत भाव ने निरन्तरता समाप्त कर दी। मैंने भी प्रभु से प्रार्थना की और उन्होंने मुझे और समीप कर दिया। मैंने आपके आदेशानुसार कुछ और लिखा है। समय समय पर अपने तोतले स्वर मैं सुनाता रहूँगा।

इस बार एम० ए० समाज शास्त्र विषय से कर रहा हूँ। मार्च माह के बाद दर्शन करूँगा, यद्यपि दर्शनों की तीखी चाह है। आप गाजीपुर आते रहते हैं, कभी मेरी कुटिया भी पवित्र करें अथवा पाठक जी के यहाँ आवें, तो मुझे भी याद करें। शेष मैं सकुशल हूँ। आपकी तथा अन्य विद्वन्मंडली को मेरा सादर प्रणाम। दया भाव बनाए रखिए।

आपका कृपाकांक्षी
ओंकार

९९।३

गंगा भवन, रायगंज
गाजीपुर
९-१-६७ (रात्रि)

आदरणीय श्री गुप्त जी,
भूय भूय वन्दामहे।

भावना पुष्करिणी में स्नान कर
पूत हुआ रोम-रोम
साध के बटुक का,
प्रकारान्तर से
लाक्षणिक स्नान कर बन गया स्नातक
आदरणीय गुरुजन के गुरुकुल का

× × ×

शासकीय आदेश से
दोनों ही पथिक
आरोहण यात्रा कर
केवल दो मास पूर्व लौटे हैं
सूचना सादर प्रेषित,
किंवा
नगाधिराज ने
दर्शन के पुण्य महोत्सव में
सम्मिलित होने के लिए बुलाया था—
मैं गया तो रम गया
मन पथिक भी थम गया
नेत्रों के दर्शकों ने पान किया
महामहिम हिमवान की
रूप - माधुरी का ।
किंतु बंधु शर्मा पहुँचे
और ले आये साथ ही मुझे भी,
हिमालय पुकारता रहा कि
आप गये तो गये
मेरे हीरामन को ले गये
अथवा
अधिराज के आदेश से ही वापस लौटे।
एक हो गये व्रजवासी,
और अपर आया
कुछ दूर से ही सेने काशी ।

या अपनी दृष्टि में तो
जिज्ञासा का बटुक
विद्वजन के दर्शन उपदेश हित
बना गुरुकुल का अंतेवासी।
पुनः
मन का यह तंतुवाय
आचार विचार के विविध-विध तारों से
जीवन - दर्शन का परिधान बुनता है
यद्यपि महाकवि भक्त को
उनके सद्काव्यों ने भेंटी है प्रचुर ख्याति
किन्तु फिर भी
हिन्दी जगत के द्वारा
पूज्य मनीषी का
अभिनन्दन सराह्य है।
मेरे भावों का
श्रद्धाजनित उपहार भी ग्राह्य है।

पूज्य गुप्त जी

आपकी 'एक पंथ दो काज' अभिव्यक्ति यद्यपि आपकी दृष्टि में सारगर्भित है, किन्तु जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं आपके आदेश पालन के अतिरिक्त अन्य की कल्पना भी नहीं कर सकता। मुझे इस प्रकार के कार्यक्रम में भाग लेने का अनुभव नहीं है और न ही सुझाव देने की योग्यता है, किन्तु फिर भी एक मूक सदस्य की तरह बैठा रहूँगा। वस्तुतः आपके दर्शन का कार्य है और वही जमानियाँ पहुँचने के पंथ से संपन्न होगा। अतः 'एक पंथ एक काज' ही मेरा उद्देश्य है।

वंधु गोविन्द राम जी नवम्बर में पहुँच गए थे मथुरा। उन्होंने बेरी नाग से चलते समय कहा था कि वे आपको सूचनार्थ एक पत्र लिखेंगे। इधर मैं अपने शोधकार्य के संबंध में उलझा रहा। कम से कम मनोविज्ञान विषय में मेरा अनुमान है कि यद्यपि विद्वान तो हैं, किन्तु सहृदय नहीं। अतः व्यवसाय की दृष्टि से क्षेत्र परिवर्तन करने का विचार है। इस बार व्यापार प्रबंध (Business Management) की दीक्षा लेकर कहीं व्यवस्थापक (प्रबंधक) हो जाऊँ और फिर उद्योग मनोविज्ञान में शोध करूँ, यह योजना है। आपके आशीर्वाद की सदैव अपेक्षा करता हूँ और सोचता हूँ कि वह

तो हृदय-निर्झरिणी का स्वाभाविक जल है। शेष सामान्य है। वहाँ सभी से मेरा सादर अभिवादन निवेदन कीजिए।

आपका आज्ञाकारी
ओंकार

१००/४

गंगा भवन, राय गंज,
गाजीपुर
२२-१-६७ (११.३० रात्रि)

आदरणीय श्री गुप्त जी,

प्रणाम।

दिन की प्रतिक्रिया ही इस पत्र को लिखने के लिए प्रेरित कर रही है। संकोचवश जो कि मेरे स्वभाव का अंग है, स्नेही अध्यापक बंधुओं से कुछ बातें न कर सका, अपने उस गुरुतर अपराध के लिए क्षमा चाहता हूँ।

इन प्राणों का वटु उद्दालक
गया सु आश्रम
श्रेष्ठ धौम्य के।
पाया सहसा जो कुछ मैंने
कहाँ व्यंजना-शक्ति प्रकट उसको कर सकती
वह अनुभूति बनी है मुझको गूँगे का गुड़।
आश्रम पावन
तथा सतत मर्यादा गुंफन,
सहज नेह की धार अनूठी
मिली, लगो फिर माया झूठी
भान हुआ विद्यालय में सुंदर आश्रम का
लगा कि जैसे
एक बार फिर
युग के व्यास, पुण्य धरती पर
साहित्यिक 'भारत' का कर निर्माण रहे हैं।
'शंपा' सुन्दर
'श्यामा' मनहर
'राधा' रुचिरा
पुलक नेह दे
प्राणों की भव पीर सहज ही हर लेती हैं।

शोधकार्य का कुंदन जैसा दमक उठा है
नित्य परिश्रम के तप में गल
कंचन के अवगुण तज कैसा चमक उठा है ?
संपादन के विषय
क्षेत्र में कीर्तिमान हैं स्थापित करते ।

आश्रम के बटु तथा अपर ऋषि
सुख संतोष छांह में जीवन जीते नित प्रति
ऐसा अनुकरणीय मार्ग है
जिस पर चलकर शाश्वत मूल्य प्राप्त हो सकते ।

देख सहज सुंदर परिपाटी
यश के नग, मंगल की घाटी,
पुलकित हुई चाह दर्शन की ।
अतः अंत में
अर्पित दिव्य माल श्रद्धा का
बार बार मेरे मन का अबोध बालक अर्पित करता है

× × ×

'भक्त' अभिनन्दन का हार बनाने वाले
ओ अन्यतम सूत्रकार
मैं भी एक पुष्प का जन्म ले उगा हूँ
यश की सुरभि दिगन्त में फैली नहीं
भले दिव्य न कह सकूँ
फिर भी सहज मुस्कान मैली नहीं
रचना·विधान का पाटल
परिश्रम का रूप अमल धवल
सब कुछ है
और सबके ऊपर
अति मानवी धरा पर विचरने वाली श्रद्धा
जिससे आप्लावित हैं मेरे रोम-कूप
ऐसा चकोर हूं कि
विज्ञ साहित्यिकों के यश-चन्द्र की माधुरी पीता हूं
अपने व्रत और प्रण पर
गर्व भाव को वहन कर जीता हूँ

'विक्रमादित्य' और 'नूरजहाँ' के प्रणेता
साहित्यिक सुभट श्री 'भक्त' के कृतित्व की राह में
मुझे भी फेंक दो
मैं उन चरणों के नीचे मसला जाकर
संभव है सुगंधित कर सकूँ
युग चरण

विनीत
ओंकार

कुछ घड़ियों का 'साहित्यिक संगम' मुझ भक्त के लिए परम सुखद अनुभूतियाँ ले आया। गाजीपुर जब भी आने का कष्ट करें, दर्शन दे अवश्य कृतार्थ करें। सभी गुरुजनों को सादर अभिनन्दन। प्रिय राधा को आशीर्वचन।

भवन्निष्ट
ओंकार

६५. प्रो० नरेन्द्र, भागलपुर

[अपरिचित]

१०१

Prof. Incharge Library
T, N. B. College. Bhagalpur
Ref. No............

Bhagalpur
Dated 3-8-1966 ई०

परम आदरणीय डा० गुप्त जी,

अशेष कुशल कामना

मैं 'भक्तमाल : पाठानुशीलन एवं विवेचन' विषय पर भागलपुर विश्वविद्यालय से पंजीकृत होकर शोध कर रहा हूँ। आपने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' की भूमिका में डॉ० ग्रियर्सन रचित निवंध 'Gleanings of Bhaktmal' की चर्चा की है। मुझे यह निबंध कहीं नहीं मिल रहा है।

वड़ी अनुकम्पा होगी, अगर आप संलग्न पत्र में मुझे यह सूचना दें कि यह निबंध किस पुस्तक में और कहाँ उपलब्ध हो सकता है।

भक्तमाल के रचयिता के संबंध में जो आपके विचार हैं, उनमें बहुत कुछ तर्क बल है। 'भक्तमाल का संयुक्त कर्तृत्व' शीर्षक निवंध मेरे लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

भक्तमाल की करीब १६ पांडुलिपियाँ मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नागरी प्र० सभा, राष्ट्र भाषा परिषद पटना, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में उपलब्ध हुईं और मैंने उनका उपयोग पाठ-संशोधन के लिए किया है।

अनेक नए पद भी कई पांडुलिपियों में प्राप्त हुए हैं। अगर उनके अतिरिक्त भी कहीं पाण्डुलिपियाँ हों, तो मुझे सूचना देकर उपकृत करें।

कृपाभिलाषी
नरेन्द्र

६६. श्रीमती शीला बंसल, कलकत्ता

[महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की प्रशंसक मित्र/डॉ० गुप्त से अपरिचित]

१०२

डॉ० किशोरी लाल गुप्त — पी० २०/२ मूर अवेन्यू
हिन्दू डिग्री कालेज — कलकत्ता ४०
जमानिया-गाजीपुर — ८-४-६७

भक्त-अभिनन्दन-ग्रंथ प्रकाशन हेतु

मान्यवर,

मैं भक्त जी की ७५वीं वर्षगाँठ पर अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशनार्थ संलग्न एक लेख भेज रही हूँ—साथ ही एक २५) रु० का मनोआर्डर भी भेज रही हूँ, स्वीकार कीजिएगा। आशा करती हूँ कि प्रस्तुत लेख आपको पसन्द आयेगा और आप उक्त प्रकाशन की एक प्रति छपने पर भेजने की कृपा करेंगे।

भवदीया
शीला बंसल

६७. सुरेश चन्द्र वर्मा, लखनऊ

[अपरिचित]

१०३

लखनऊ
१०-४-१९६७

पूज्य डॉक्टर साहब,

सादर नमस्ते।

मुझ अपरिचित का पत्र पाकर शायद आप कुछ आश्चर्य चकित होंगे, क्योंकि अप्रत्याशित स्थान से पत्र आने पर कुछ ऐसा होना स्वाभाविक भी है, परन्तु मैंने तो इस परिचय को प्राप्त करने की कोशिश भी नहीं की। मैं इतना ही परिचय पर्याप्त समझता हूँ कि आप हरिऔध-भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ हैं और मैं इसी विषय का अनुसंधित्सु। स्वतः परिचय हो गया। मेरे विषय में शायद हरिऔध कला भवन के मंत्री श्री विजय नारायण सिंह जी ने आपको लिखा हो, क्योंकि उन्होंने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा था कि पत्रोत्तर की प्रतिलिपि आपके पास भेज दी गयी है।

डॉ० साहब, मैं लखनऊ विश्व विद्यालय में हिन्दी विभाग के अन्तर्गत डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी (रीडर) के निर्देशन में, हरिऔध की भाषा पर अनुसंधान कार्य कर रहा हूँ। मुझे हरिऔध की भाषा और साहित्य के विषय में पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता है। आशा है आपके उदार सहयोग एवं उचित निर्देशनों से हम लाभान्वित हो सकेंगे।

कृपाकांक्षी
सुरेश चन्द्र वर्मा
द्वारा
मिश्री लाल ठेकेदार
बड़ा चांद गंज, लखनऊ

नोट—कृपया पत्रोत्तर इसी पते से लिखियेगा।

६८. डॉ० शुकदेव सिंह, वाराणसी

[डॉ० सिंह गाजीपुर जिले के रहने वाले हैं। अब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं]

१०४

हिन्दी विभाग
विहार विश्व विद्यालय।

मुजफ्फरपुर
अप्रैल १९६७

आदरणीय बन्धु,
प्रणाम।

आपका पत्र यथासमय मिल गया। कृपापूर्ण स्नेह के लिए कृतज्ञता की औपचारिकता करूँ क्या ? आपने अपनी व्यस्तता में इतना समय निकाला और सब कुछ ठीक ठाक हो गया। आपको २३ तारीख को यहाँ आना है, यदि आप २२ तारीख को बनारस एक्सप्रेस से पटना आयें, तो पटना से महेन्द्रू घाट आने पर आपको पानी का जहाज मिल जायेगा। १$\frac{१}{४}$ घंटे में गंगा पार कर आपको तत्काल मुजफ्फरपुर के लिए गाड़ी मिल जायेगी। यहाँ आप १२.४० में पहुँच जायेंगे। हम लोग स्टेशन पर रहेंगे। भोजन के उपरान्त २ बजे से परीक्षा लेकर मिलना-जुलना चलेगा। यदि परीक्षा की वजह से तत्काल लौटना अनिवार्य हो, तो आप शाम को ही लौट सकते हैं। वैसे अवकाश लेकर आप एक दिन रुकें, तो प्रसन्नता होगी। ठहरने की व्यवस्था आदि हमारे ऊपर है। आप निश्चित होकर आयेंगे।

इस अवसर पर आना ही है, इसलिए कि दूसरे परीक्षक अंचल जी सुदूरवासी हैं और उन्हें आने में असुविधायें हो सकती हैं। एक परीक्षक से भी कार्य सम्पन्न हो

सकता है। संभवतः अंचल जी आवें ही। फिर भी आपकी ओर से आश्वस्त रहना है, उसी दिन किसी अन्य परीक्षा में डा० वार्ष्णेय भी आ सकते हैं, परिचय उपयोगी होगा। कृपया तत्काल उत्तर दें।

शुकदेव सिंह

c/o अश्विनी कुमार सिन्हा, मझौलिया रोड, मुजफ्फरपुर

६९. श्याम लता, वृन्दावन

[वृंदावन की विदुषी महिला। नागरीदास के सम्प्रदाय-निर्णय के सम्बन्ध में जब डा० गुप्त को अनेक दिशाओं से अनेक पत्र लिखे गये थे कि वे वल्लभ सम्प्रदाय के नहीं हैं, निम्बार्क सम्प्रदाय के हैं, तब इस विदुषी ने ये पत्र डा० गुप्त के समर्थन में लिखे थे। अपरिचिता]

१०५।१

श्री प्राचार्य महोदय जी, श्री वृंदावन

सादर सप्रेम प्रणाम। १०-५-६७

आपका पत्र मिल गया। बड़ी ही प्रसन्नता हुई, क्योंकि स्कूली लड़कियों की गड़बड़ी से नौकरानी ने कूड़े की टोकरी में झाड़कर डाल दिया था। आपसे पत्र व्यवहार करने में मेरा निजी स्वार्थ यह पूछना है कि हम जैसी साहित्यिक अभिरुचि रखने वाली टेन्थ पास (मैट्रिक) लड़कियों के लिए सरकार या साहित्य की परीक्षाओं को लेने वाली संस्थाओं की ओर से पुरुष एवं अधिक पढ़े विद्यार्थियों की अपेक्षा कोई खास फेसिलिटी (रियायत) है क्या ? अभी तो ग्रीष्मकाल के पश्चात् कहीं नौकरी में जाऊँगी ही। फिर किसी परीक्षा के लिए तैयारी भी कर सकूंगी। यदि आपकी ओर से मेरे लायक कोई सुझाव मिला तो। अस्तु।

मैंने जो सूचनायें देने को लिखा था वे किसी के पास पूछकर भेज रही हूँ। बात यों रही कि सं० २०१७ याने सन १९६० में निम्बार्क सम्प्रदाय से 'सर्वेश्वर' नाम की एक मासिक पत्रिका का विशेषांक भम्तमालाङ्क निकला था। उसमें उन्होंने सब वैष्णव सम्प्रदायों को काट-छाँट करके अपने सम्प्रदाय को सर्वश्रेष्ठ दिखाया था, जिससे सब चिढ़ गये थे। उनके सम्प्रदाय को वहिष्कृत कर दिया था। तब उन्होंने माफी माँगी और अपनी भूल (गल्ती) बताने के लिए सब सम्प्रदायों से संशोधन माँगे थे। उसी सिलसिले में किन्हीं महात्मा ने बहुत-सा भक्तमालांङ्क संशोधन लिखा था। यह झगड़ा हमारे सामने हुआ था और संशोधन लिखने वाले महात्मा से मेरा परिचय होने से मुझे भी बहुत बातें (पोल) मालूम हुईं। उन्हींसे लेकर यह थोड़ा-सा मसाला सूचना रूप से भेज रही हूँ। पूरी तो उनके पास दो कापी लिखी भरी है। कभी आप वृन्दावन

आवेंगे, तब देख लेना। अभी उक्त नाम नहीं लिखती, क्योंकि उनकी आज्ञा नहीं है। आप जब वृन्दावन आवेंगे, उसके पहिले मुझे इसी पते से पत्र देंगे, तो मैं आपको सूचित कर दूंगी, पर आप मेरा नाम पता उन महात्मा के सामने मत निकालना। वे मुझसे नाराज न हों। वे कहते थे कि आयेंगे, तब हम उन्हीं को दिखा सकेंगे, पर तुम अभी हमारा नाम भी मत लिखना। इसी के साथ सूचना पूछी, जैसी लिखवाई, मैंने लिखी— भेज रही हूँ। आप पढ़ लें और समझ लें।

इस सम्प्रदाय ने यहाँ तक धोखा किया कि भक्तमालाङ्क और भक्तमाल अंक नाम अलग-अलग छापी। एक में कुछ छापा तो दूसरे में कुछ और छापा। जैसा ग्राहक देखा, वैसा अंक भेजा। पता चल गया था तभी।

आपकी आज्ञाकारी

श्याम लता

मेरा पता—

सुश्री श्यामलता c/o श्रीमती बी० गहरवार पाठिका जी, सुखदा कन्या पाठशाला वाली, घर—विहारीपुरा में लालू गुसाईं का मकान। P. वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०

टि० इसी के साथ ६ पृष्ठों में सूचनायें हैं।

१०६/२

श्री वृन्दावन

ता० ५-७-६७

श्री गुप्त जी,

सादर प्रणाम !

आपका लिफाफा मिला। आपके सुझाओं तथा हमदर्दी एवं सहायता का स्रोत बताने आदि के लिए अनेक धन्यवाद।

यह सब आपके लिख देने के पश्चात् भी मेरे दुर्भाग्य हैं कि मैं उनका लाभ नहीं ले सकूंगी। सचमुच जैसा आपने लिखा—हमारी घरेलू परिस्थिति अनुकूलता नहीं दे रही है। शील तोड़कर उच्छृंखल होना भारतीय संस्कृति की मर्यादा के विपरीत है। हम भारतीय शील में पली पुषी हैं। अतः लाचारी से वही करना है, जो घर की इच्छा हो।

हमारे भ्राता जो अभी भोपाल में प्राध्यापक थे, इनका ट्रांस्फर इन्दौर की तरफ मंदसौर जिले के किसी कालेज में हो गया है। घर की सबकी इच्छा से मैं वहाँ बुलाई जा रही हूँ। अतः लगभग पन्द्रह दिन में वहीं पहुँच जाऊँगी। फिर भी मन ही मन मैं आपकी कृतज्ञ रहूँगी। आगे प्रभु इच्छा से जो होगा, अभी कुछ कह नहीं सकती। मुझे आपके दर्शन न हो सके। मैंने पत्र (आपका) उन महात्मा को दिखाया था। वे

एकांतिक हैं। उन्होंने मिलने आदि से उदासीनता दिखाई। अतएव आप वैसे ही सब सत्य का पता लगा लें। सूत्र तो सब लिख ही दिए गये हैं। आपके पास वह पत्र तो होगा ही, चाहे श्री कुंज में ही ठहरिए, परन्तु पता तो आप लगा लेंगे ही। जबलपुर के मुद्रित पत्रक के बारे में कुछ नहीं जानती। महात्मा ने भी कोई बात कही नहीं, अस्तु।

आपके अनुग्रह एवं कृपा के लिए सदा आभारी रहूँगी। कष्ट के लिए क्षमा कीजिए।

भवदीय आज्ञाकारी

श्याम लता

७०. किशोरी दास वाजपेयी, कनखल

[प्रसिद्ध वैयाकरण और कवि ; डा० गुप्त से किंचित सम्पर्क। इन्होंने श्री रामचन्द्र वर्मा का अभिनन्दन हरद्वार में किया था। उसी समय डा० गुप्त हरद्वार गए थे और जाने के पहले उन्होंने वाजपेयी जी को एक पत्र लिखा था]

१०७

कनखल

२०-६-६७

प्रिय गुप्तजी,

कार्ड ता० १६ का मिला। अवश्य आइए। स्वागतम्।

शुभैषी

कि० दा० वाजपेयी

७१. शारदा प्रसाद, राम वन, सतना

[शारदा प्रसाद जी ने राम वन, सतना में 'मानस संघ' की स्थापना की है। यहाँ तुलसी साहित्य का अच्छा संकलन है। संपर्क नहीं।]

१०८

श्री राम

मानस संघ

राम वन

(सतना) म० प्र०

क्रमांक ४९५।१।६७ दिनांक १८-७-६७

श्रीयुत डा० किशोरी लाल गुप्त

एम. ए., पी-एच० डी०, डी० लिट०

जमानियाँ।

प्रिय महोदय

मध्य प्रदेश के सतना जिले में राम वन एक सांस्कृतिक स्थान है, जिसका विकास

एक तुलसी-स्मारक के रूप में हो रहा है। मूर्त मानस यहाँ की अपनी विशेषता है। लम्बी दीवाल पर मानस लिखा जा रहा है। साथ में श्लोक, दोहा, चौपाई आदि में जिन देवों के नाम आए हैं, उनकी मूर्तियाँ स्थापित की जा रही हैं। श्री हनुमान जी की एक विशाल प्रतिमा यहाँ है। १० फुट ऊँचे अधिष्ठान पर यह २६ फुट ऊँची खड़ी है।

यहाँ तुलसी शोध पीठ स्थापित किया गया है। इसमें तुलसी साहित्य, अन्य राम साहित्य, संदर्भ ग्रंथ आदि संग्रह किए जा रहे हैं।

यहाँ गोस्वामी जी की तीन मूर्तियाँ हैं। सतना रीवाँ के कुछ महाविद्यालय इनके सानिध्य में अपनी आगामी तुलसी जयन्ती मनावेंगे। इस अवसर पर तुलसी को समर्पित श्रद्धांजलियों की एक प्रदर्शनी भी की जायगी।

निवेदन है कि आप अपनी श्रद्धांजलि भेजने की कृपा करें। उसमें आप तुलसी के प्रति कैसे आकर्षित हुए तथा अपनी रुचि की उनकी किसी विशेषता की चर्चा आप करेंगे तो अच्छा होगा। आप ऐसे विद्वान महानुभाव की श्रद्धांजलि से हमारी प्रदर्शिनी का गौरव बढ़ेगा।

भवदीय

शारदा प्रसाद

७२. मुखराम सिंह, आजमगढ़

[श्री मुखराम सिंह पहले अग्रवाल पुस्तकालय आजमगढ़ के पुस्तकालयाध्यक्ष थे। फिर वेस्ली इण्टर कालेज में हिन्दी के प्रवक्ता हुए। यह 'आज' के संवाददाता भी थे। यह डा० गुप्त के मित्र हैं।]

१०९

आजमगढ़

२६-७-६७

आदरणीय गुप्त जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपका पत्र मिला। इधर महीनों से तबियत अच्छी नहीं चल रही है। इसलिए पत्र का उत्तर देने में विलम्ब हो गया। अपने इस अपराध के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। बिसराम के बिरहों के बारे में आपके जो सुझाव हैं, वे अत्यन्त उत्तम और उचित हैं। 'कतरिया' शब्द के बारे में आपसे निवेदन कर दूँ कि मैंने पत्थर के कोल्हू से गन्ना पेरते हुए नहीं देखा है और न कतरी चलने की आवाज ही सुनी है। 'सेवाय' शब्द के बारे में आपका सुझाव मेरे मन में अभी भी बैठ नहीं रहा है। प्रेस के भूतों के कारण पुस्तक में भाषा सम्बन्धी जो गलतियाँ हो गयी है, उनकी ओर आपने संकेत नहीं किया है, स्यात मुझको समझ कर।

आप मेरे बड़े भाई और गुरु हैं। आपके चरणों में रहने का जो अवसर मुझे मिला है, वह मेरे जीवन की अमूल्य धरोहर है। आपसे किसी प्रकार का विवाद करना छोटे मुँह बड़ी बात होगी।

भक्त-अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए लेख लिखने की इच्छा थी, किन्तु कोई विषय निश्चित नहीं कर पाया। सोचता था कि इस सम्बन्ध में आप मार्ग दर्शन करेंगे। किंतु दुर्भाग्य था कि आप आजमगढ़ आए और आपसे मेरी मुलाकात न हो सकी। यदि अधिक विलम्ब हो गया हो, तो भक्त-अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए 'आज' में प्रकाशित 'भक्त जी के काव्य में वाग्वैदग्ध्य' नामक लेख प्रकाशनार्थं दे दें।

आशा है आप स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे। भाभी जी को नमस्कार तथा बच्चों को मेरा आशीर्वाद कहने का कष्ट कीजिएगा।

आज्ञाकारी

मुखराम सिंह

७३. विश्वनाथ लाल 'शैदा', आजमगढ़

[शैदा जी आजमगढ़ के साहित्यकारों में प्रमुख थे। यह पेशे से वकील थे। प्रारम्भ में यह 'शैदा' नाम से उर्दू में लिखा करते थे। बाद में यह हिन्दी में आए। यह डा० गुप्त के अच्छे मित्रों में थे। दिवंगत।]

११०

प्रिय भाई,

नमस्कार !

भाई राजेन्द्र सिंह गौड़ कल आजमगढ़ आए। एक भेंट में उन्होंने मुझे बताया कि उनकी पुस्तक 'हमारे कवि' का दूसरा संस्करण होने वाला है। वे चाहते हैं कि भक्त जी का परिचय उस पुस्तक में दें और उनके काव्य पर एक नजर डालें। उन्हें सामग्री अक्टूबर के पहले सप्ताह में चाहिए।

यदि आप कुछ करके उपर्युक्त सामग्री भाई राजेन्द्र सिंह के पते से प्रयाग भेज दें, तो बड़ी कृपा होगी।

उनका पता है—

श्री राजेन्द्र सिंह गौड़

१२ नेहरू नगर

इलाहाबाद–३

एक बात और। आज-कल मैं बड़ी कठिनाइयों से गुजर रहा हूँ। शिबली कालेज में अब पढ़ाने नहीं जाता। सेक्रेट्री साहब से भी भेंट नहीं होती। स्वास्थ्य ठीक नहीं है आदि।

क्या प्रचारक के यहाँ मेरी कोई रकम है ? यदि हो, तो दिलाने का प्रयत्न करें।

आजमगढ़ —शैदा

२३–९–६७

७४. हरिश्चन्द्र लाल

[यह आजमगढ़ में डा० गुप्त के छात्र थे। बाद में कौड़ीराम गोरखपुर में अध्यापक।]

१११

धनौड़ा खुर्द

श्रद्धेय डा० साहब, २५–९–६७

सादर चरण स्पर्श।

आपकी सेवा में निम्न लिखित शंका समाधान के लिए प्रस्तुत है—

लंका काण्ड की अर्धाली —

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम प्राण अधारा।

उसमें 'एक कुमारा' से तात्पर्य किससे है। विस्तार सहित लिखने की कृपा करें।

कवितावली में आए पद—

पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे

में **'पात भरी सहरी'** का क्या अर्थ है ?

धृष्टता के लिए सविनय क्षमा प्रार्थी हूँ। समाधान निम्न पते पर भेजने की कृपा करें।

विनीत

हरिश्चन्द्र लाल

ग्राम—धनौड़ा खुर्द

पत्रालय—कौड़ीराम

जिला—गोरखपुर

७५. डा० शालिग्राम गुप्त

[डा० शालिग्राम गुप्त सुप्रसिद्ध विद्वान डा० माता प्रसाद जी गुप्त के पुत्र हैं। यह शांति निकेतन में हिन्दी के अध्यापक रहे हैं। गंगा सागर जाते समय डा० गुप्त ने सपरिवार इनका आतिथ्य ग्रहण किया था।]

११२

हिन्दी भवन, विश्व भारती

शांति निकेतन (प० बंग)

आदरणीय गुप्त जी, ५–१२–६७

सादर नमस्कार !

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के वर्ष ७१ अंक १ में आपका शोध पूर्ण लेख 'मंडन और उनका नयन पचासा' पढ़ा। इस लेख के एक प्रति-मुद्रण की आपसे प्राप्त करने की अभिलाषा है। आशा है भिजवाने की कृपा करेंगे।

हिन्दी विभाग की ओर से 'विश्व भारती' त्रैमासिक पिछले दो वर्षों से पुनः निकल रहा है। यदि एकाध लेख इसके लिए भी भेजें, तो हम सब आपके आभारी होंगे।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं सानंद हैं।

मैं यहाँ पिछले सात वर्षों से हिन्दी प्राध्यापक हूँ। अभिलाषा कई बार हुई कि आपको एकाध पत्र लिखूं, किन्तु वह संयोग आज ही प्राप्त कर सका। मेरे पूज्य पिताजी श्री डा० माता प्रसाद गुप्त से तो आप भली प्रकार परिचित हैं। अतः मैं और अधिक अपना परिचय आपको क्या दूं।

शेष ठीक है। सेवा कार्य लिखें।

आपका

शालिग्राम गुप्त

७६. जवाहर लाल चतुर्वेदी, मथुरा

[चतुर्वेदी जी मथुरा के पंडा थे। व्रज साहित्य एवं सूर में इनकी विशेष रुचि थी। गुप्त जी से एक बार काशी में भेंट]

११३

श्री :

कूबा वाली गली

मथुरा

श्री मान्यवर डा० किशोरी लाल जी, २५–१२–६७

सादर अभिवादन।

आज अकस्मात् ईश्वरीय अनुकम्पा से श्री भगवान सहाय जी पचौरी प्रधान इन्सपेक्टर स्कूल मथुरा जिला के पास आपका अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ, जिसकी आप प्रायः चर्चा किया करते थे—'सरोज सर्वेक्षण' क्षणिक देखने को मिला। बड़ा सुन्दर और उपादेय लगा, क्या कहने……। अतः उसके लिए धन्यवाद ! ग्रन्थ इतना सरस और उपादेय है कि उसके प्रति कुछ कहते लिखते नहीं बन रहा। ग्रंथ पूरा नहीं देख सका, फिर दस-पाँच मिनटों में देखा ही क्या जा सकता है, इधर-उधर की सजावट के तथा आपके पृष्ठ-पृष्ठ पर परिश्रम के दर्शन करता रहा। यों तो गुलाब (में) फूलों के साथ काँटे होते ही हैं। वे यत्र तत्र इसमें भी हैं। वे चुभ रहे हैं, मुखर बन जरा सा

हृदय में रोष उभार रहे हैं, कुछ लिखने को उत्सुक बना रहे हैं। जैसे श्री द्विज देव अयोध्या, बड़ी दोष पूर्ण जानकारी दी गयी है। यदि इसी भाँति यत्र तत्र कवियों के प्रति लिखा गया होगा, तो ग्रन्थ अमृत कलश की बजाय "विष रस भरा कनक घट जैसे" हो जायगा, जो आगे के समय हिन्दी साहित्य को ऊँचा न उठा, पहाड़ से ढकेलने वाला ही सिद्ध होगा, जिसे देखकर ग्रन्थ के प्रति कुछ अधिक लिखने को लाचार होना पड़ेगा। और उसका खेद होगा। विशेष क्या, फिर भी आपका परिश्रम श्लाघनीय एवं वंदनीय है, इसमें संदेह नहीं।

आपका

जवाहर लाल चतुर्वेदी

७७. डा० राम सिंह तोमर, शांति निकेतन

[डा० तोमर शांति निकेतन में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। इनकी पत्नी डा० कणिका तोमर भी यहीं विभाग में प्राध्यापिका थीं। जब जनवरी १९८० में डा० गुप्त गंगा सागर और पुरी की यात्रा पर सपरिवार निकले थे, तब शांति निकेतन भी गए थे। यहीं दम्पति से भेंट हुई थी।]

११४

विश्व भारती पत्रिका
हिन्दी भवन
शांति निकेतन, पश्चिम वंग
३०-१२-६७

प्रिय डा० गुप्त जी,

नमस्कार।

आपका पत्र यथासमय मिला था। आभारी हूँ। फरवरी में आप यहाँ आ सकें तो अपने विषय पर हमारी हिन्दी समिति में एक दिन भाषण दें। समिति आने जाने का मार्ग-व्यय तथा यहाँ आतिथ्य का खर्च भर देती है। आपको कष्ट जरूर होगा क्योंकि हम लोगों ने नियम बनाया है कि तीसरे दरजे का किराया ही हम दे सकते हैं। अपर इण्डिया में आप बैठें, तो सुबह ८ बजे बोल पुर शांति-निकेतन पहुँच जायँगे। हम लोगों को आपके सन्निध्य का लाभ मिलेगा और आपका भाषण भी सुनेंगे। कृपया हमारा निमंत्रण स्वीकार करें। जमानियाँ मैंने कभी नहीं देखा। अतएव मैं उधर जाते-आते कभी रुक जाऊँगा। मुझे तो ग्राहक बनाने रहते हैं। अतः जमानियाँ में और कोई संभावना हो तो कृपया ध्यान रखें।

सुहृदवर डा० शिवनाथ जी सपरिवार सानंद हैं।

साभार आपका

राम सिंह तोमर

७८. वाचस्पति उपाध्याय

[वाचस्पति उपाध्याय काशी हि० वि० विद्यालय में छात्र थे। इन्होंने अपने बड़े भाई के शोध के निमित्त डा० गुप्त से अलक शतक और तिल शतक माँगा था। डा० गुप्त ने इनकी टंकित प्रति भेज दी थी।]

११५।१

१।७२ बिड़ला छात्रावास
का० हि० वि० वाराणसी—५

आदरणीय डा० साहब   १४–३--६८ ई०

मैं यहाँ छात्र हूँ। मेरे भाई को शोध कार्य के सिलसिले में 'मुबारक' के दो ग्रन्थ 'अलक शतक' और 'तिल शतक' देखने की आवश्यकता है। वे बड़ौत (मेरठ) में हिन्दी प्राध्यापक हैं।

इस कार्य के लिए नागरी प्रचारिणी सभा कई बार गया। वहाँ ज्ञात हुआ कि पुस्तकें न तो 'केटलाग' में हैं और न पुस्तकालय में।

डा० श्याम तिवारी ने आपके सम्बन्ध में चर्चा की। इस सम्बन्ध में इन पुस्तकों के अतिरिक्त जो भी सहायता आपसे मिल सकेगी, उसके लिए बहुत-बहुत कृतज्ञ रहूँगा। आशा है, पत्रोत्तर अवश्य देगें। साहित्यिक जागीरदारी की परम्परा से साहित्य का कितना अहित हो रहा है। इसे कोई भुक्त भोगी ही समझ सकता है।

आपसे अनुरोध है कि इस विषय में सहायता करेंगे।

आपका
वाचस्पति उपाध्याय

११६।२

१|७२ बिड़ला छात्रावास
का० हि० वि० वाराणसी–५

आदरणीय डा० साहब,   दि० २९-३-१९६८ ई०

आपका २१|३ का कृपा पत्र समय पर प्राप्त हुआ था। मुबारक के ग्रंथ 'अलक शतक और तिल शतक' की टंकित प्रतिलिपि मुझे प्राप्त हो गयी है। आपने जिस उदारतापूर्वक इस कार्य में सहायता प्रदान की है, उसके लिए बहुत ही आभारी हूँ। मैं इस कार्य को लेकर पर्याप्त दिनों से परेशान रहा। आपके द्वारा जो योगदान प्राप्त हुआ है, उसके लिए पुनः कृतज्ञता निवेदित करता हूँ।

मुबारक के जीवन और साहित्य से सम्बन्धित अन्य प्रकाशित सामग्री और तथ्यों के विषय में यदि आपकी जानकारी हो, तो सूचित करने की कृपा करें।

आशा है सानंद होंगे।

आपका
वाचस्पति उपाध्याय

७९. डा० भालचंद राव तैलंग, औरंगाबाद

[डा० तैलंग मराठवाड़ा विश्वविद्यालय औरंगावाद (महाराष्ट्र) हिन्दी विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष थे। यह महाकवि पद्माकर के वंशज हैं और प्राचीन काव्य के मर्मी विद्वान हैं। पता—सुषमा निकुंज, बेगमपुरा, औरंगाबाद। यह डा॰ गुप्त के सरोज सर्वेक्षण से आकृष्ट हुए। दोनों ने एक दूसरे को देखा नहीं है। कुल आठ पत्र। लेखनी-मित्र।]

११७।१

सुषमा-निकुंज
वेगमपुरा
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
१५-४-६८

डा० गुप्त जी,

सप्रेम नमः।

पत्रोत्तर प्राप्त हुआ। आपके सरोज सर्वेक्षण को बड़े ध्यान से पढ़ रहा हूँ। आपने बड़े परिश्रम, अध्यवसाय तथा कौशल से सर्वेक्षण किया है। ऐसे ग्रन्थों की परम आवश्यकता है। इसे देख तो मुझे लग रहा है कि मैं आपसे कई बातों में परामर्श करूँ। 'पद्माकर श्री' के प्रकाशन होते ही एक प्रति आपकी सेवा में अवश्य भेजूँगा ही, कारण कि उसपर आपकी संस्तुति लेना है। इधर 'औरंगाबाद की हिन्दी संत वाणी' इसी वर्ष राम नारायण लाल बेनी प्रसाद, कटरा, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई है, जिसमें यहीं के पाँच संतों की वाणी संगृहीत है। अपने पुस्तकालय में उसे वहाँ से मँगवा लें।

मैंने अपने 'पद्माकर श्री' में दो जनार्दनों और तीन मोहनों का जिक्र किया है, जिसमें आपसे कहीं मतैक्य है, कही वैभिन्य। यह सब तो खोज की विशेषताएँ हैं। पुनः एक निवेदन है कि सरोज में 'द्विज मोहन' की प्रशस्ति का कवित्त आपने अपने सर्वेक्षण में पृ० ४५६ पर उद्धृत किया है, जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ हैं—

राम पद भक्ति माँह, आठो जाम रांचो रहै,
सांचो द्विज मोहन कविन में कविंद है।

यह पूरा कवित्त मुझे चाहिए, जिसे मैं अपनी प्रस्तावना में उद्धृत कर सकूँ। काश आपका यह ग्रन्थ मुझे इसके पूर्व पढ़ने को मिल जाता। मोहन कवि पर मैंने पृ० १४ से २६ तक विचार किया है। अभी तो ७वां फर्मा चल रहा है। प्रकाशक पुस्तक छापने में देर लगाते हैं, अतः मैंने अपने खर्चे से यहीं औरंगाबाद में छपवाया है मुझे संशोधन भी तो आपसे जानकर कर लेना है।

मैं आजकल पद्माकर का 'राम रसायन' संपादित कर रहा हूँ। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से अयोध्याकाण्ड तथा अरण्यकाण्ड लाया हूँ। 'अनूप प्रकाश' का हस्तलेख भी प्राप्त हो गया है। यह मान कवीन्द्र का हैं और अनूप गिरि का आरम्भिक

चरित्र है, किन्तु अपूर्ण है। केवल ४०५ छंद मिले हैं। मोहन कवि कृत 'रामाश्वमेध' का हस्तलेख भी सम्पादित कर रहा हूँ। जब मैं प्रयाग आया था तो डा० राम कुमार वर्मा को दिखा चुका हूँ। खैर।

आपके पत्रोत्तर से बड़ी प्रसन्नता हुई। यमुना लहरी में 'रिषी' है, तो फिर पद्माकर की गंगा लहरी की रचना का आरम्भ इसके पूर्व से मानना होगा। जगद्विनोद में 'अमर्ष' भाव के उदाहरण में प्राप्त कवित्त—

जैसें मैं न तोकों नेकहू डरात हुतो……………।

एक नई समस्या उत्पन्न करता हूँ। दूसरे आप से एक कवित्त और चाहिए। वह है (देखिए सर्वेक्षण पृ० ३२७) ठाकुर—

'समयो यह वीर बरावने हैं।'

यदि ठाकुर ठसक से यह छंद प्राप्त हो सके तो, यह भी भेज देने की कृपा करें। मैं दोनों का उपयोग प्रस्तावना में कर लूंगा और आपको धन्यवाद देकर अनुगृहीत होऊँगा।

कवि पदमाकर पर मैंने अब अपनी पुत्री सुषमा शर्मा एम० ए० (Gold Medalist) को (Research Degree) के लिए स्वीकृत करा लिया है। अतः यह बड़ा काम समय लेगा और धीरे-धीरे होगा। अतः वही कुछ कर सकेगी। आशा है कि आप उसे भी संकेत और परामर्श देते रहेंगे। वह आपको पत्र लिखेगी ही।

—भाल

विद्वन्मोद तरंगिणी कहाँ देखी जा सकती है ?

११८।२

वन्धुवर,

नमः

'शिवसिंह सरोज' आदि ग्रन्थ के दर्शन होना भी एक उपलब्धि है। अधिकार तो आपकी प्रेरणा का प्रतिफलन है। आनन्द ही नहीं, मुझे तो तीर्थ सलिल में अवगाहन करने का पुण्य मिला। यह तो नयन-सुख है, जिसे यदा कदा सर्वदा देखना ही पड़ेगा। मेरा हार्दिक धन्यवाद। मेरे काम की चीज है। अतः इसे सौहार्द भेंट समझ आँखों से ओझल नहीं होने दूंगा।

'निपट' की सामग्री यहीं संकलित की गयी है। एक शोध छात्र को यह काम दे दिया है।

इस अंक में श्री कृष्ण कलानिधि का जीवन परिचय पूर्वार्द्ध भाग छाप रहा है। off prints भेजूंगा।

इधर मुझे A History of Bundelas, captain W. R pogson चाहिए। कहाँ से प्राप्त हो सकेगी। एक मास भी प्रति मेरे पास रह जाय, तो छत्र प्रकाश के अनुवाद की बात कहाँ तक सच है, देख ली जाय।

सरोज की प्रति के लिए हार्दिक धन्यवाद।

—भाल

८०. डॉ० विष्णु दत्त 'राकेश'

[डॉ० विष्णु दत्त 'राकेश' आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शिष्य हैं। कुलपति मिश्र पर इनका शोधकार्य है। यह गुरुकुल कांगड़ी में हिन्दी विभाग में हैं। जब डॉ० गुप्त आचार्य रामचन्द्र वर्मा के अभिनन्दन समारोह में हरद्वार गये थे, तब एक दिन इनका भी आतिथ्य ग्रहण किया था।

११९।१

गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय
हरिद्वार
३१-५-६८

आदरणीय बंधु,

सस्नेह नमस्कार

आशा है, प्रसन्न हैं। कुछ ज्ञातव्य अभीष्ट है। आशा हैं अभिज्ञान में सहायता करेंगे, गोपाल चन्द्र का भारती भूषण, गोपाल राय का भूषण विलास, गंगाधर द्विज गंग का महेश्वर भूषण या महेश्वर चन्द्रिका तथा लछिराम का रामचन्द्र भूषण ग्रन्थ आपके पास उपलब्ध हैं या नहीं। इसमें भारती भूषण तथा रामचन्द्र भूषण तो प्रकाशित है, भूषण विलास का सर्वेक्षण आपने सरोज सर्वेक्षण में दिया है तथा महेश्वर भूषण, का उल्लेख डॉ० वार्ष्णेय ने अपने प्रबंध में किया है। सभा या प्रयाग के संग्रहालय में भूषण विलास और महेश्वर भूषण या महेश्वर चन्द्रिका संगृहीत हैं या नहीं। कृपया उल्लेख करें। जो ग्रन्थ आपके पास इनमें से व्यक्तिगत हों, तो उनका संकेत भी।

परिवार में सभी सानंद हैं। श्रीमती राकेश आपको तथा भाभी जी को नमस्कार लिखा रही हैं। इधर आएँ तो दर्शन दें।

शुभैषी
विष्णुदत्त राकेश

१२०।२

गुरुकुल कांगड़ी
१०-६-१९७१

आदरणीय भाई,

सादर नमस्कार

शिवसिंह सरोज का पारायण आज समाप्त किया। बड़ो प्रसन्नता हुई कि ऐसे

दुर्लभ ग्रन्थ का प्रामाणिक संपादन आप जैसे सुदक्ष विद्वान के हाथों हो गया आचार्य मिश्र जी की परम्परा का उज्ज्वल संवाहक होने का गौरव आपको मिलेगा, मेरे मन में आपके प्रति बड़ा आदर है। सेंगर जी के आत्मकथ्य में प्रताप साहि के काव्य विलास से ही काव्य की परिभाषा आदि दोहे उद्धृत किये गये हैं। साधारण पाठक कहीं 'रस गंगाधर', 'साहित्य दर्पण' का मत ही उन्हें न समझ ले, अतः उनपर टिप्पणी दे देना आवश्यक है। यह पूरा प्रकरण काव्य विलासकार के असंस्कृतज्ञ होने का परिचायक है। काव्य प्रयोजन 'चारि वर्ण' के स्थान पर 'चारि वर्ग' पाठ होना चाहिए। तभी संगत अर्थ लगेगा।

आशा है सानन्द है। परिवार में हम दोनों का नमस्कार निवेदित करें।

विष्णुदत्त राकेश

८१. राम चंद्र चौधरी भागलपुर

[रामचन्द्र चौधरी मारवाड़ी कालेज भागलपुर में हिन्दी के प्राध्यापक थे। यह राम चरित उपाध्याय पर शोध करते समय एक बार डॉ० गुप्त के यहाँ हिन्दू डिग्री कालेज जमानिया पधारे थे और डॉ० गुप्त का आतिथ्य स्वीकार किया था।]

१२१

भागलपुर

श्रद्धेय बंधु,
१३–६-६८

सादर अभिवादन।

आपको स्मरण होगा कि मैंने स्व० पं० रामचरित उपाध्याय के सम्बन्ध में शोध कार्य की सूचना देकर आपसे सहायता की याचना की थी। आपने लिखा था कि 'ब्रज सतसई' और 'राष्ट्र भारती' नामक उपाध्याय जी की दो रचनाएँ आपके पास उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त कोई स्मारिका और आपका स्वलिखित ट्रैक्ट भी आपके पास है। आपने मुझे स्वयं वहाँ पहुँचकर उनका उपयोग करने की सुविधा प्रदान करते हुए यह भी लिखा था कि आप ग्रीष्मावकाश में वहीं रहते हैं। अतः मैं आगामी मंगलवार दिनांक १७-६–६८ को संध्या काल में भागलपुर से चलकर प्रातःकाल बनारस एक्सप्रेस से आपकी सेवा में उपस्थित एवं लाभान्वित होने की बात सोच रहा हुं। यदि आपका पत्र आ जायगा और आप वहीं होंगे तो मैं यहाँ से प्रस्थान करूंगा। अतः कृपया वापसी डाक से इसका उत्तर लिखने का कष्ट करेंगे। दूसरी बात यह भी ध्यान रखेंगे कि उपर्युक्त सामग्रियाँ यदि कहीं ऐसी स्थिति में हों जिनके लिए बहुत खोज ढूंढ़ की अपेक्षा हो अथवा जो स्वयं अनुसंधान का विषय हो गयी हों, तो उन्हें लाकर रख लेंगे, जिससे वहाँ पहुँचते ही मैं अपने काम में लग जाऊँ।

किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात और सूचित कर देता हूँ, मैं आपके प्रिय शिष्य श्री कन्हैया सिंह को भी आजमगढ़ पत्र लिख रहा हूँ। यदि वे भी मेरी इस यात्रा में ही मुझे सहायता देने के लिए वहाँ प्राप्त होंगे, तब तो मैं अपना निर्णय स्थिर रखूँगा, नहीं तो अपनी यात्रा भविष्य की किसी तिथि तक के लिए स्थगित कर देनी पड़ेगी। आशा है आप परिवार सहित स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। पत्रोत्तर शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक है।

विनयावनत

रामचन्द्र चौधरी

८२. डा. प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ

[डॉ० टंडन लखनऊ विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग में थे। यह सूर के अच्छे ज्ञाता थे और रसवंती नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक प्रकाशक थे। दिवंगत। डॉ० गुप्त के लेखनी मित्र।]

१२२

रसवंती कार्यालय

विद्यामंदिर [लखनऊ—३]

१८-६-६८

भाई डॉ० गुप्त जी,

नमस्कार

'चतुर्वेदी विशेषांक' के लिए १०-१२ पृष्ठों का एक लेख आपसे २५ जुलाई तक चाहता हूँ। पूरा विश्वास है कि विषय की सूचना शीघ्र देकर और लेख २५ जुलाई तक भेजकर श्रद्धांजलि-अर्पण के इस अनुष्ठान में योग देने की अवश्य कृपा करेंगे। उत्तर की प्रतीक्षा में—

विनीत

प्रे० टंडन

८३. डा. गीताराम शर्मा, नजीबाबाद

[डॉ० शर्मा पहले दिल्ली में थे। फिर साहू जैन कालेज नजीबाबाद (विजनौर) में हिन्दी के प्रवक्ता हुए। डॉ० गुप्त से इनका कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। यह राधा स्वामी मत के अनुयायी हैं।]

१२३।१

गीता राम शर्मा — R. S. — ४०९ विवेकानंद नगर

एम० ए० (हिन्दी) — दिल्ली—७

श्रद्धेय डाक्टर साहब, ३-६-६८

सादर प्रणाम।

सादर निवेदन है कि मुझे अपने शोध प्रबंध हेतु चिंतामणि के कुछ स्फुट पदों की आवश्यकता है। आपकी पुस्तक 'भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई' के अन्तर्गत जिस खंडित पुस्तक का विवरण है, उसके हस्तलिखित रूप की आवश्यकता है। कृपया सूचित करने की कृपा करें कि मैं उसे कैसे प्राप्त कर सकूंगा।

पत्रोत्तर की कृपा करें।

आपका सेवक
गीताराम शर्मा

१२४।२

R. S.

डॉ० गीताराम शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी प्रवक्ता
साहू जैन कालेज, नजीबाबाद (उ० प्र०)

साहित्य शोध सदन
नजीबाबाद (विजनौर)
२४-१६८

श्रद्धेय डॉ० साहब,

प्रणाम !

निवेदन है कि आप प्रयाग पधारे किन्तु दुर्भाग्य वश दर्शन नहीं मिले। श्री दूबे जी से जब चर्चा हुई, तो बड़ा दुःख लगा। मेरा भाग्य है। आपकी संपादित 'हजारा' देखने मात्र को मिली। उन महाराज ने दूर से ही दिखाई। मैंने कुछ छन्द देखने चाहे। नहीं मिले।

मुझे स्मरण है कि मैंने हस्तलिखित प्रति कहीं देखी है। आप मुझे श्री जबर सिंह सेंगर के विषय में बताएं। उन्होंने उसकी मूल प्रति कहीं दी है। दुबे जी की प्रेरणा से यह पत्र लिख रहा हूँ। आपकी कृपा से चिंतामणि के भी कुछ छंद मिले थे। कार्य पूर्ण कर लिया है।

अब मेरा विचार महर्षि शिवव्रत लाल वर्मा जी के विषय में कुछ कार्य करने का है। उनके विषय में कुछ सूचनाएँ तथा पुस्तकें भेज सकें तो कृपा होगीं।

आपका कृपापात्र
गीताराम शर्मा

८४. डॉ. सरोजनी कुलश्रेष्ठ, मथुरा

[डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ किशोरी रमण कन्या महाविद्यालय की प्राचार्या, कवि एवं शोधी-सुधी विदुषी हैं। डा० गुप्त की इनसे पहली भेंट डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के अभिनन्दन समारोह में पटना में हुई थी। तबसे डा० गुप्त की इनसे भेंट मथुरा में अनेक बार हुई है।]

१२५.

मथुरा

आदरणीय डॉ० साहब; २३-९-६८

१० अगस्त को आपने एक सुन्दर आयोजन कर डाला। बधाई। गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : व्यक्ति—नामक लघु ग्रंथ हमें भी भेजिए। यदि बाजार में न आया हो, तो V. P. से भेज दीजिए।

डा० सत्येन्द्र को भी एक ग्रंथ भेंट करना चाहते हैं। इसके संबंध में अपने विचार लिखिए।

दादा का पत्र आया था। मैं पटना नहीं जा पाई हूँ। इस वर्ष अलीगढ़, विश्व-विद्यालय से एक परीक्षा देने का विचार किया है। उसी में व्यस्त हूँ। अभी शोध प्रबंध का संशोधन भी नहीं हो सका है।शेष पत्र पाने पर

आदरसहित

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

८५. रामप्रकाश शुक्ल, आजमगढ़

[शुक्ल जी चंडेसर (आजमगढ़) डिग्री कालेज में हैं। यह भोजपुरी के कवि और कलाकार हैं। डा० गुप्त इन्हें तब से जानते हैं, जब यह होबर्ट मिडिल स्कूल आजमगढ़ में पढ़ते थे और अंत्याक्षरी प्रतियोगिता में खूब भाग लिया करते के।]

१२६.

रामप्रकाश शुक्ल — निवास—'कला' ऐलवल
एम. ए. (मनोविज्ञान एवं हिन्दी) — आजमगढ़
बी. एड, सिद्धान्तरत्न — दिनांक १८ मार्च १९६९
प्रवक्ता शिक्षा विभाग
श्री दुर्गा जी डिग्री कालेज, चण्डेश्वर
आजमगढ़ (उ० प्र०)

पत्रांक.........

आदरणीय श्री गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

मैं सकुशल हूँ। आशा है कि आप भी सकुशल होंगे। आपको याद होगा कि कुछ वर्ष पूर्व बलरामपुर में जब टीचर्स एसोसियेशन की बैठक थी, तो यूँ ही बात के दौरान आपने यह सुझाव दिया था कि जनपद के साहित्यकारों पर शोध होनी चाहिए। पिछले दिनों मैंने यह चर्चा आदरणीय डा० रामचन्द्र तिवारी (गोरखपुर वि०) से की, तो वे इस पिषय पर कुछ उत्सुक हुए। मैं इस विषय पर कुछ प्रयत्न करना चाहता हूँ।

आपसे इस संदर्भ में बहुत कुछ जानना चाहूँगा। गुरुवर शैदा तथा बाबू मुखराम सिंह जो ने पूरी सहायता का वचन दिया है। मैं चाहूँगा कि एक पत्र के द्वारा आप मुझे यह लिखने का कष्ट करें कि भविष्य में आप आजमगढ़ कब आ रहे हैं। यदि इधर कोई प्रोग्राम न हो, तो भी लिखें। भेंट तो करना ही है, जमानियाँ हो चला आऊँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि आपके साथ बात-चीत मेरे कार्य के लिए बहुत बड़ा मार्ग प्रशस्त करेगौ।

आशा है कि आप इस विषय पर एक पत्र अवश्य लिखेंगे।

स्नेहाकांक्षी
राम प्रकाश शुक्ल

८६. डा० परमेश्वरी लाल गुप्त, आजमगढ़

[डा० गुप्त ने पहले आजमगढ़ में प्रेस खोला, संदेश साप्ताहिक के संपादक रहे। फिर 'आज' वाराणसी के संपादकीय विभाग में चले गए। यहाँ प्राचीम भारतीय इतिहास और संस्कृति से एम. ए. किया फिर डा० हुए। बाद में यह प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम बंबई में डा० मोती चंद के सहयोगी हुए। तदनन्तर पटना में म्यूजियम के अधीक्षक। विश्व प्रसिद्ध मुद्रा विशेषज्ञ हैं। अब नासिक में एक मुद्रा-संस्थान के निदेशक हैं। कई सूफी कवियों की कृतियों का इन्होंने फारसी लिपि से उद्धार किया है। यह डा० गुप्त के परम मित्र हैं।]

१२७।१

प्रिय भाई, पटना म्यूजियम, पटना—१
नमस्कार। ४-५-७०

उसमान कृत 'चितरावली' यथा समय मिल गई थी और तत्काल ही मैंने आपको प्राप्ति-सूचना लिख भेजी थी। जान पड़ता है मेरा पोस्टकार्ड कहीं रास्ता भूल गया।

उसकी प्रतिलिपि करा रहा हूँ। शीघ्र ही उसे आपको वापस भेज दूँगा।

आशा है आप सानन्द हैं।

स्नेहाधीन
परमेश्वरी लाल गुप्त

१२८।२

जे० १२|१५ आर० बौलिया बाग
रामकटोरा, वाराणसी—२२१००२

प्रिय बंधु, अक्टूबर ३१, १९८०
नमस्कार।

आशा है आप स्वस्थ और सानन्द होंगे।

यदि तीन चार दिन का समय निकालकर यहाँ आ जाते तो आपकी सहायता से

मैं कन्हावत के पाठ को दुहरा लेता । उसको शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करना चाहता हूँ ।

चतुर्भुज दास प्रणीत मधुमालती की अनेक प्रतियाँ चित्रित उपलब्ध होती हैं । जिनका भारतीय चित्रकला की दृष्टि से महत्व है । उन पर काम करने के लिए एक शोध छात्रा को लगा रखा है । उसके लिए चतुर्भुज दास संबंधी जानकारी चाहिए, जो कहीं उपलब्ध नहीं हो रही है । आपने प्राचीन कवियों के संबंध में काफी छान-बीन की है । यदि आपकी जानकारी में हो, तो बताने की कृपा करें ।

सस्नेह

परमेश्वरी लाल गुप्त

१२९।३

Parmeshwari Lal Gupta
M. A., Ph. D.
Honorary Fellow : Royal Numismatic Soceiety
&
Numismatic Society of India

Phone : 62245
J 12|15-R
Boulia bag
Ram Katora
Varaaasi-221002

२४।५।१९८१

प्रिय भाई

नमस्कार । आशा है आप सानंद हैं । इधर काफी दिनों से दर्शन नहीं हुए ।

ब्रिटिश लाइब्रेरी से आया पत्र अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ । कृपया देखकर लौटा दें । यदि काम की कोई बात उसमें हो, तो बतायें ।

कन्हावत छप रही है । पाठक की कन्हावत देखी । महाभ्रष्ट है । अपने संस्करण के देर से निकलने का मुझे तनिक भी खेद नहीं । प्रकाशित होने पर आप देखेंगे ही ।

भवदीय

परमेश्वरी लाल गुप्त

१३०।४

प्रिय भाई गुप्त जी,

वाराणसी
१४-३-८४

नमस्कार ।

आशा है आप सानन्द हैं ।

आपको शायद ज्ञात होगा है कि अब मैं नासिक चला गया हूँ । वहाँ मेरी संस्था ने अपना रूप धारण कर लिया है । अभी तक पत्नी यही थीं । उन्हें ले जाने के लिए आया हूँ । २० ता० को चला जाऊँगा ।

नासिक रहते ऐसी व्यस्तता थी, विचारकर भी आपको अब तक पत्र नहीं लिख पाया । यदि लिख पाता तो शायद इस अवसर पर आपसे भेंट हो जाती ।

दुखहरनदास की पुहपावती की फारसी प्रनि से मेरा प्रथम वाचन लगभग तैयार हो गया है। नासिक में जो थोड़ा बहुत अवकाश मिल पाता है, उसी में इसे कर रहा हूँ। इसमें अनेक शब्द और प्रसंग हैं जिन्हे मैं सुलझा नहीं पा रहा हूँ। कारण प्रति की अस्पष्टता है। कागज पुराना होने से स्याही फूट पड़ी है। जिससे माइक्रोफिल्म में दूसरी ओर के अक्षर भी उभर आए हैं। इससे पाठ में कुछ कठिनाई कहीं-कहीं होती हैं। दूसरा वाचन आपको फोटो प्रति के साथ सुझाव आदि के लिए भेजूंगा।

इस बीच आपसे अनुरोध है कि आप मलूकदास सम्बन्धी सामग्री शीघ्र ही मुझे नासिक भेज दें, ताकि मैं उसका भूमिका में उपयोग कर सकूं।

नासिक का पता है—

Indian इंस्टिच्यूट आफ रिसर्च इन
न्यूमिसमेटिक स्टडीज
P. O. अंजनेरी, डिस्ट्रिक्ट—नासिक (महाराष्ट्र)

स्नेहाधीन
परमेश्वरी लाल

८७. उदय सरोज शाह

[उदय सरोज शाह काशी के प्रसिद्ध शाह परिवार के थे। दुर्गाकुंड पर इनकी कोठी है। यह रेलवे मजिस्ट्रेट थे। डॉ० गुप्त एक बार इनके आवास पर पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के साथ डॉ० आशा गुप्ता प्राध्यापिका दिल्ली विश्वविद्यालय से मिले थे। अब दिवंगत।]

१३१

फोन ६४३३०

उदय सरोज शाह — दुर्गाकुंड, वाराणसी--५

४-७-७०

मान्यवर गुप्त जी

हमारी सम्बन्धी डॉ० आशा गुप्ता प्राध्यापिका दिल्ली विश्वविद्यालय आजकल बनारस आई हैं। वे डा० ग्रियर्सन पर कुछ शोध कार्य कर रही हैं। वे आपसे मिलना चाहती हैं। ८ की सायं या ९ को प्रातः वापस जाना चाह रही हैं। अगर इस बीच आपका बनारस आगमन हो तो आपसे मिलना चाहेंगी। अगर कोई प्रोग्राम हो, तो सूचित करेंगे।

कष्ट के लिए क्षमा करेंगे।

उदय सरोज शाह

८८. कृष्ण दत्त वाजपेयी, सागर

[कृष्ण दत्त वाजपेयी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में पढ़ते समय, १९३८-४२ में, डा० गुप्त के बी० ए०, एम० ए० के सार्थी थे। यह पहले लखनऊ म्यूजियम में फिर मथुरा म्यूजियम में रहे। कालांतर में यह सागर विश्व विद्यालय में 'प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व' विभाग के अध्यक्ष हुए। रहने वाले यह रायबरेली जिले के हैं, पर अब सागर में ही बस गए हैं। डा० गुप्त के परम मित्र।]

१३२

स्नेहाच्च बहुभावाच्च स्मारये त्वां, न शिक्षये
(रामायण ३. ९. २४)

कृष्णदत्त वाजपेयी — सागर विश्व विद्यालय
टैगोर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष — सागर म० प्र०
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग — दि० २७-८-१९७०
संपादक एवं पर्यवेक्षक हिन्दी अनुवाद योजना

प्रिय भाई गुप्त जी,

नमस्कार।

'शिव सिंह सरोज' की प्रति मिली। धन्यवाद। सरोज का इतना सुन्दर संस्करण निकालने के लिए बहुत बधाइयाँ। लगभग ९०० पृष्ठों की इस कृति में आपने सरोज का विश्वसनीय पाठ तो दे ही दिया है, इस ग्रंथ के सम्बन्ध में अनेक समस्याओं का भी समाधान कर दिया है। हिन्दी साहित्य विशेषतः इतिहास के शोध कर्ताओं के लिए आपने एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रंथ प्रस्तुत कर उनका बड़ा उपकार किया है।

सरोज की मेरी प्रति का उपयोग भी इस प्रकाशन में हो सका, यह मेरे लिए विशेष हर्ष की बात है। आपसे मिले हुए बहुत दिन हो गया। कभी सागर आइए—नदी उपत्यकाओं में तो बहुत विचर चुके। सुना है इन दिनों आप जमानियां में जमे हैं।

घर के हाल चाल दीजिए। कभी उधर आने पर मिलूँगा।

डा० किशोरी लाल गुप्त — स्नेही
जमानियाँ — कृष्ण दत्त वाजपेयी

८९. डा० भवानी प्रसाद मिश्र

[काशी वासी। पं० केशव प्रसाद मिश्र के भतीजे। सतीश चन्द्र महाविद्यालय बलिया में हिन्दी के प्राध्यापक।]

१३३

पी २९ चौक बलिया
२७-१०-७०

सम्मान्य गुप्त जी,

सादर प्रणाम ।

विश्वास है आप सपरिवार सानन्द हैं । मैं भी आप बड़ों के आशीर्वाद से प्रसन्न हूँ । 'सरोज सर्वेक्षण' के अनुसार 'श्री दीन दयाल गिरि गायघाट के निवासी किसी पाठक परिवार के थे ।' इस सूचना की प्रामाणिकता का सूत्र क्या है ? कृपया मुझे सूचित करें । मैं दीन दयाल गिरि पर अनुसंधान कर रहा हूँ । मैंने उनके सम्बन्ध में कुछ नई प्रामाणिक बातों का भी सप्रमाण पता पाया है । उनके सम्बन्ध में आपसे भेंट होने पर और बातें होगी । आप कभी वाराणसी आयें तो मुझे भी सूचित करें । मैं स्वयं आकर आपसे मिलूँ । शेष कुशल है । मैंने आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र से भी बातें की हैं । वे ही मेरे वास्तविक निर्देशक हैं ।

उत्तर की प्रतीक्षा में

स्नेहाकांक्षी

भवानी प्रसाद मिश्र

९०. श्री विलास डबराल हरिद्वार

[पूर्णतया अपरिचित]

१३४।१

हरिद्वार

आदरणीय गुप्त जी, दि० २७-११-७०

नमस्कार ।

आप का ग्रन्थ 'भारतेन्दु और अन्य सहयीगी कवि' पढ़ा । मैं आधुनिक काल की पुरानी धारा के रीति तत्वान्वित काव्यों का अध्ययन करना चाहता हूँ । संलग्न पत्र में उल्लिखित पुस्तकों के विषय में जानकारी देकर अनुगृहीत करेंगे कि कहाँ-कहाँ से मिल सकती हैं । ऐसी अनेक पुस्तकें हैं, जो आपके निजी पुस्तकालय में मिल सकती हैं । कृपया उन पुस्तकों के विषय में भी सूचित करेंगे, जिससे मैं अवसर मिलने पर आपके दर्शनों का लाभ भी पा सकूंगा ।

मैं स्थानीय भल्ला कालेज में हिन्दी का प्रवक्ता हूँ । कभी इस तीर्थ स्थान में आएँ, तो अवश्य दर्शन देने की कृपा करेंगे ।

कष्ट के लिए क्षमा ।

भवदीय

श्री विलास डबराल

१३५।२

१ म्यु० कालोनी
देवपुरा, हरिद्वार
दि० २ अप्रैल ७१

आदरणीय गुप्त जी,

नमस्कार।

आधुनिक काल के पुरानी धारा के कवियों के सम्बन्ध में आपके निर्देशों से लाभान्वित हुआ हूँ। ग्रीष्मावकाश में आपके पुस्तकालय से लाभ लेना चाहूँगा। बहुत सी पुस्तकें या तो अप्राप्य है या दुष्प्राप्य। आपकी कृपा रही तो खोज सम्भव है।

एक और कष्ट दे रहा हूँ। मुझे हिन्दी साहित्य के केवल आधुनिक काल पर एक वृहद् इतिहास की आवश्यकता है। कृपया प्रकाशन बतायेंगे। यहाँ के पुस्तकालयों में नहीं मिली।

शेष शुभम्। श्री रवीन्द्र गुप्त, व्यवस्थापक अभिनव प्रकाशन को नमस्कार।

आपका अपना
श्री विलास डबराल

पुनश्च—

'राकेश' जी से मिलता रहता हूं। वे भी यथासम्भव सहायता करते रहते हैं।

श्री विलास डबराल

९०. शंकर पाल, फिरोजाबाद

[शंकर पाल श्री राम चन्द्र कन्हैया लाल इण्टर कालेज फिरोजाबाद में डा० गुप्त के १९४५-४८ में विद्यार्थी थे। यह बलराम पुर, अमेठी, गाजियाबाद के डिग्री कालेजों में अंग्रेजी के प्रवक्ता रहे। डा० गुप्त के परम प्रिय विद्यार्थियों में से।]

१३६

गाजियाबाद
दिनांक ३०-११-१९७०

आदरणीय गुरुदेव,

श्रद्धेय नमः शिवाय।

आप सदा साथ हैं यह शिव विश्वास। मेरी उदासीनता रही है। अब जग रहा हूँ अपने एक प्रिय की लगन से। यह मित्र आजमगढ़ के वैद्यजी के समान कुछ कुछ हैं। राजनीति, आयुर्वेद एवं साहित्य की त्रिवेणी एक होकर आपकी काशी से जमानियाँ हाजिर हो रहे हैं आज। घनानन्द जी के यह भक्त अपने को कहते हैं। कहीं घनानन्द इनको मिल नहीं पाये। कल उनके लिए यह विकल हुए। मुझे आपके सिवाय कहीं हिन्दी-दिशा में घनानन्द दीखते नहीं थे। आपकी सेवा में, उछलकर इन्हें

पटक रहा हूँ। विहार, यू० पी०, दिल्ली तक की विजय के लिए आप सहमत हो जाओ, यह मेरी प्रार्थना है।

आपका एक मात्र
शंकर

९२. श्यामलाल गौड़, गाजियाबाद

[पूर्ण रूपेण अपरिचित]

१३७

कविराज श्याम लाल गौड़ — गाजियाबाद
एम० ए० आयुर्वेदाचार्य — दि० ३०-११-७०
A. M. S., R. M. P.

आदरणीय गुरु जी,

सादर बंदे।

श्रीमान् जब से मैंने घनानंद का काव्य-दर्शन किया, मैं इन चक्षुओं से उसका बहि रंग भी नहीं देख सका, उसके अन्तर में वैठना मेरे जैसे हीन-मनीषा के लिए दुष्प्राप्य ही है। ब्रजभाषा के उस अगाध सागर के कगार पर बैठकर केवल 'झाग' मात्र ही हाथ लग सकते हैं। इस लिए मैं उससे भी दूर रहा । सामीप्य गुरुकृपा बिना अति कठिन है।

घनानंद की भाषा और उनकी भाव-व्यंजना पर कुछ अक्षर ज्ञान भी (न) मिल सका। घनानंद ग्रन्थावली की विश्लेषणात्मक टीका तक कहीं न पा सका। आपसे इसमें ज्ञान और दिशा प्राप्ति की अपेक्षा करके ही ये कुछ शब्द आपकी सेवा में प्रस्तुत करने की धृष्टता कर रहा हूँ।

मन है घनानंद पर कुछ शोध कार्य करने में आपका वरद हस्त प्राप्त कर सकूँ। यह मेरी अभिलाषा है। ब्रजभाषा प्रवीण होना परमावश्यक है, इसका ज्ञान भी मुझे प्रायः नहीं है। इसका कोई मार्ग-प्रदर्शन आप करने की कृपा करेंगे, मुझे पूर्ण आशा है।

आपका कृपाकांक्षी
श्याम लाल गौड़

९३. डा० राम लखन शुक्ल, वाराणसी

[डा० राम लखन शुक्ल डा० गुप्त के पड़ोसी गाँव बड़ा गाँव के रहने वाले थे। वह दमण में हिन्दी के प्राध्यापक थे। यह काव्य शास्त्र पर जमकर लिखने वाले थे। यह डा० गुप्त के मित्र थे। अब अपरिपक्व वय में दिवंगत।]

१३८.

दमण

आदरणीय भाई डा० गुप्त जी, १३–२–७१

सादर नमस्ते ।

आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ । समाचार की अवगति हुई । आपने मेरे प्रति जो सद्‌भाव व्यक्त किया है, उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ । मैं चाहता हूँ कि कुछ कार्य कर सकूँ, किन्तु परिस्थिति जन्य विवशताएँ मेरे साथ हैं । देखिए प्रयत्न-शील हूँ ।

दो पुस्तकें जो आपके पास हैं, उनके अतिरिक्त दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं । दोनों ऐतिहासिक हैं । 'प्रणायपथ' और 'महेन्द्रादित्य' । दो आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशनाधीन हैं । 'भारतीय साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त' और 'उपन्यास-कला' । 'भारतीय सौन्दर्य शास्त्र' विषय पर अध्ययन क्रम चल रहा है । शायद एक दो वर्ष में पूरा हो जाये ।

आशा है आप स्वस्थ प्रसन्नचित्र होंगे और अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में दत्तचित्त होंगे ।

यहाँ का वातावरण अध्ययन अध्यापन के अनुकूल नहीं है । पुस्तकालय भी सुविधाजनक नहीं है । इस कारण कार्य-संपादन सुचारु रूप से नहीं हो पाता ।

आपके परिवार के सभी लोग सकुशल होंगे ।

आपका स्नेहाकांक्षी

राम लखन शुक्ल

९४. लाल जी राम शुक्ल, वाराणसी

[श्री लाल जी राम शुक्ल मनोविज्ञान के पण्डित थे । इन्होंने काशी में मानस रोगों की चिकित्सा के लिए मनोविज्ञानशाला खोल रखी थी । यह हिंदू विश्व विद्यालय के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में मनोविज्ञान के प्रवक्ता थे और वहीं डा० गुप्त के अध्यापक भी थे ।

१३९.

काशी मनोविज्ञानशाला

सिद्धगिरि बाग, वाराणसी

प्रिय किशोरी लाल जी,

शुभ आशीष,

मैं अलग लिफाफे में 'मनोविज्ञान-पत्रिका' आपके कालेज के लिए भेज रहा हूँ । आप जितने भी आपके सहयोगी और मित्रों को इसका स्थायी ग्राहक बना सकें उतने बना करके उनका चन्दा भेज देंगे । पत्रिकाएँ वी. पी. के द्वारा, आपके द्वारा अथवा

सीधे ग्राहकों के पास भेज दी जावेंगी। आपने मुझे अपने कालेज में लेक्चर के लिए अगले साल बुलाया है। मैं जब भी आप लिखेंगे, आऊँगा। मेरा विशेष उद्देश्य शाला के मनोवैज्ञानिक दर्शन का प्रसार करना रहेगा। इसी के आधार पर मैं मानसिक चिकित्सा करता हूँ और इसी के आधार पर मैं शिक्षा कार्य पहले भी करता था और अब भी करता हूँ।

मुझे इस बात का बड़ा हर्ष है कि आप देश-प्रेम की उच्च भावनाओं को लेकर भारत भूमि की तथा मातृ भूमि की सेवा कर रहे हैं और बाल कृष्ण की विद्यार्थियों के रूप में पूजा कर रहे हैं। इस देश ने जब से जीवित मानव को छोड़कर पत्थर पूजन शुरू किया, तभी इसका पतन हुआ। अब हमें स्वामी विवेकानंद की अभिलाषा को पूरा करना है। वे नर में नारायण को देखने की प्रेरणा देते थे। मैं अपने किशोर बच्चों में भगवान कृष्ण को देखने की प्रेरणा देता हूँ। पूज्य मालवीय जी भी यही भावना करके हम लोगों के सामने प्रवचन देते थे। उनके आदेश, उपदेश, निर्देशों को हमें सजीव बनाना है। मनोविज्ञान पत्रिका और शाला का यही उद्देश्य है।

शुभाकांक्षी

ला० रा० शुक्ल

(लालजी राम शुक्ल)

टि०—डाकखाने की मुहर ११—३—७१ की है।

९५. ओंकार प्रसाद, आगरा

[ओंकार प्रसाद से डा० गुप्त की भेंट किसी यात्रा काल में हुई थे; जिसे वे विस्मृत कर चुके हैं]

१४०.

आगरा ३

आदरणीय श्री डा० गुप्त, ३१—५—७१

सादर नमस्कार।

आशा है आपकी यात्रा सुखद रही होगी। इस पत्र की पहुँच तक आप जर्मनियाँ पहुँच जायँगे।

सूर कुटी की अभिलाषा आपकी पूरी न हो सकी, इसका मुझे खेद रहा। कभी फिर समय मिलेगा।

आपको एक कष्ट दे रहा हूँ। कृपा कर अपने 'उराहनौ' के कुछ मार्मिक छन्द मेरे उपयोग के लिए तुरन्त लिख भेजें—वानगी के लिए ४—६ छन्द स्थान-स्थान से चुन कर।

दूसरे 'भरत भक्ति' 'सिरस जी' कृत कहाँ से प्रकाशित है ? मैं उसकी प्रति यहाँ तलाश लूँगा। कृपा कर प्रकाशन का नाम पता लिख भेजें।

आशा है आप तुरन्त उक्त सामग्री भेज कर मुझे कृतार्थं करेंगे ।

सादर आपका
ओ० प्र०

९६. चन्द्र दत्त वैद्य, आजमगढ़

[वैद्य जी आजमगढ़ के सामाजिक जीवन के एक स्तंभ थे। साहित्यिक रुचि के कारण डा० गुप्त से इनकी खूब पटती थी। यह जनपद साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। दिवंगत]

१४१.

आजमगढ़
२-५-७२

परम प्रिय श्री गुप्त जी,

नमस्कार !

आपका स्नेह पूर्ण पत्र मिला, धन्यवाद! आगामी कार्तिक कृ० ८ को स्व० पं० राम चरित उपाध्याय के जन्म के १०७ वर्ष पूरे हो रहे हैं, इस अवसर पर उनकी स्फुट रचनाओं का अथवा उनकी पुस्तकों में से चुनी हुई रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करने का विचार हो रहा है। उसी में उनका विशद परिचय (कृतियों का आलोचना युत) भी देने का विचार है। मेरा विश्वास है कि आपके पास इस प्रकार की सामग्रियाँ होंगी। जो हों, सूचित करें, तो कृपा होगी। यदि आप भेजने की कृपा करें, तो मैं सुरक्षित वापस कर देने की जिम्नेदारी पर उनको प्राप्त कर अनुगृहीत हूँगा। आशा है आप प्रसन्न हैं।

भवदीय
चंद्र दत्त

९७. पारस नाथ वर्मा

[पारस नाथ वर्मा आजमगढ़ के शिबली कालेज में डा० गुप्त के विद्यार्थी थे। अब ये जयपुर विश्व विद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। पहले 'मोहक' नाम से अच्छी कहानियाँ लिखा करते थे।]

१४२.

From—
P. N. Verma
C—266 Bhalla Marg
Tilak Nagar
Jaipur—4 (Raj)
6|9,72

आदरणीय गुरुदेव,

सादर चरण स्पर्श ।

बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला । मैं पिछले वर्ष दिसम्बर में आजमगढ़ गया था, पर अवकाश न होने के कारण जमानियाँ न आ सका । भक्त जी से तो भेंट हो गई थी । आप कैसे हैं ? परिवार के अन्य सदस्य कैसे हैं ? कृपया समाचार दें ।

सुना था कि भक्त जी को दिये जाने वाले अभिनन्दन ग्रन्थ का दूसरा भाग—'गुरु भक्त सिंह भक्तः कवि' कहीं इलाहाबाद में छप रहा था । कृपया लिखें प्रकाशित हुआ कि नहीं । बहुत देर हो रही है । अब तो किसी प्रकार प्रकाशित हो ही जाना चाहिए ।

शेष फिर

आपका

पारस नाथ वर्मा

९८. डा० हीरा लाल माहेश्वरी, जयपुर

[डा० हीरा लाल जी जयपुर विश्व विद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं । 'जंभो जी विष्णोई, संप्रदाय और साहित्य' इनका श्रेष्ठ शोध प्रबंध है ।]

१४३

B-174 A, Rajendra Marg.
Bapu Nagar
Jaipur-4 (Raj)

आदरणीय डा० साहब, २१-९-७३

सप्रेम नमस्कार ।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त हैं । नये सत्र का कार्यं भार भी किंचित कम हुआ होगा । अब तक आपने 'जंभो जी विष्णोई, सम्प्रदाय और साहित्य' ग्रन्थ को भली-भाँति देख लिया होगा । इस पर समालोचनात्मक निबन्धों हेतु आपको पुनः याद दिला रहा हूँ । वैसे आपके ध्यान में यह बात होगी ही । यदि निबन्ध प्रकाशित करवा दिए हों, तो सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं के ५-७ अंक भिजवाने का कष्ट करें । न करवाए हों तो शीघ्र ही प्रकाशित करा दें, (यह) प्रार्थना करता हूँ । विश्वास है व्यस्त समय में से कुछ क्षण उसके लिए अवश्य निकालेंगे । इस सम्बन्ध में आपके पत्र की प्रतीक्षा रहेगी । कई महनों पहले आपका पत्र आया था, जिसके अनुसार अगस्त-सितम्बर तक निबन्ध छप जाने चाहिए, ऐसा संकेत था ।

प्रो० पारस नाथ जी वर्मा सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त हैं। आपका जब भी कभी राजस्थान की ओर आने का कार्य-क्रम बने, कृपया जयपुर अवश्य आयें और हमारे यहाँ ही ठहरें। मेरे योग्य सेवा-कार्यों से सूचित करें। शेष शुभ।

विनीत

हीरा लाल माहेश्वरी

९९. कुल दीप नारायण 'झड़प'

[झड़प जी की 'विभूति सतसई' ब्रजी का श्रेष्ठ काव्य है। यह लिलकर जिला बलिया के रहने वाले साहित्यकार हैं और बुजुर्ग हो चले हैं। जब यह ना० प्र० सभा में थे, तब डा० गुप्त से इनकी भेंट हुआ करती थी।]

१४४

श्रीः

लिलकर, जि० वलिया

प्रिय भाई, २३-९-७३

सस्नेह अभिवादन

उत्सुकतावश आपसे मिलने के लिए कल ही गाजीपुर पहुँचा, पर नदी पार करने की कठिनाई और घर पहुँचने की जल्दी में न जा सका। गाजीपुर से भेजा गया मेरा पत्र मिला होगा।

आज घर पहुँचने पर आपका कृपा पत्र और उसके साथ-साथ २३ पृष्ठों में टंकित समीक्षा मिली, एतदर्थ धन्यवाद। कृपया इसे किसी पत्र में प्रकाशित करा दें और मुझे सूचित करें कि किस पत्र में प्रकाशित हो रहा है, ताकि मैं उसमें उठाई गई शंकाओं का समाधान कर सकूँ।

बेटी का विवाह बड़ी चिन्ता का विषय है। उस चिंता से आपको मुक्ति मिली, यह जानकर मुझे मानसिक सन्तोष हुआ। मैं नवदम्पति की शुभ कामना करता हूँ।

आप मेरे मत से सहमत नहीं, इसमें 'अन्यथा' मानने की क्या बात है। कहा है-- 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना।' मुझे जैसे प्रमाण मिले, उसके अनुसार मैंने निष्कर्ष निकाला। आपको वे प्रमाण जँचे नहीं, अस्तु पुनः उनपर विचार करूँगा। हाँ मुझे ऐसा लगता है कि आपने पहले से यह निश्चय कर ही कलम उठाई है कि जैसे भी हो शोध के प्रति असहमति व्यक्त की जाय। इसके लिए आपने मार्ग बनाने का प्रयास किया है, पर वन की गहनता में प्रवेश करने का कष्ट नहीं किया, वन में कांटे और झाड़-झंखाड़ तो होते ही हैं और राही उनसे बच कर निकल जाय, यह भी स्वाभाविक ही है। फिर भी मैं प्रसन्न हूँ, आपने मेरे शोध प्रबन्ध को समर्थन भावना से न सही, विरोध भावना से ही सही, जैसे तैसे देखा तो। आप विद्वान और परिश्रमशील पुरुष हैं।

आपका मैं हृदय से आदर करता हूँ। हम लोगों के मत न मिले, इससे इस मान्यता में कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

बच्चों से मेरा शुभाशीर्वाद कहें। आशा है सपरिवार सानन्द होंगे।

भवदीय

कुलदीप नारायण 'झड़प'

पुनः—आप अवधी क्षेत्र में कहाँ के निबासी हैं, पूरा पता देने की कृपा करें। मुझे तो ऐसा लगता है कि आप अवधी और भोजपुरी के सन्धि क्षेत्र के होंगे। कृपया स्पष्ट करें।

१००. डा० रामस्वरूप आर्य, बिजनौर

[डा० रामस्वरूप आर्य वर्धमान कालेज बिजनौर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं। इनके पास नवीन का 'सुधा सर' है। यह सुलझे हुए शोधी एवं जिज्ञासु हैं। डा० गुप्त से इनकी कभी भेंट नहीं हुई।]

१४५।१

डा० राम स्वरूप आर्य — नई बस्ती, बिजनौर (उ० प्र०)

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग — दि०१५-७-७१

वर्धमान कालेज, बिजनौर

आदरणीय बंधुवर,

नमस्कार।

किसी भी प्राचीन कवि के सम्बन्ध में शंका उपस्थित होने पर आपके 'सर्वेक्षण' से अपार सहायता मिलती है। खोज कार्य में प्रवृत्त विद्वानों के लिए यह ग्रंथ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'सरोज सर्वेक्षण' पृ० ३८३ पर आपने नवीन कवि के सर्वेक्षण में लिखा है 'नवीन का असल नाम गोपाल सिंह था।'

शिवसिंह जी ने इनका नाम 'नवीन कवि' दिया।

मिश्र बन्धु विनोद में ये 'नवीन' हैं। मिश्र बन्धु विनोद तृतीय भाग, पृ० १०३१।

हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास में ग्रियर्सन ने उन्हें 'नवीन कवि' कहा है। (आपके द्वारा संपादिस इतिहास, पृ० ३२२)।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोज विवरण में इनका 'वास्तविक नाम गोपाल राय' बताया गया है। प्रथम खंड पृ० ४८४।

कृपया सूचित करें कि गोपाल सिंह नाम का आधार क्या है ?

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मुझे 'नवीन' द्वारा संगृहीत 'सुधा सर' की हस्तलिपि प्राप्त हुई है। ग्रन्थ ९७२ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसका लिपिकाल सं० १९०१ (?)। (संवत १९१० वि०) है।

उसी के साथ नवीन कवि का एक और ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है 'वृज बानी विनोद'। यह बड़े आकार के (१२ × ७'' के) ३८ पृष्टों में है, जिसके प्रति पृष्ठ पर २९ पंक्तियाँ हैं। ग्रन्थ का रचना काल दिया गया है—

प्रभु ग्रह सत रितु बरस वर, मंगल मंगलमूर
आस्वन द्वितिया चंद पष, भयो ग्रंथ परिपूर

इसमें सत का अर्थ अभी अस्पष्ट है। यदि इसका अर्थ शून्य लें, तो रचनाकाल १९०६ सिद्ध होता है। मैं यह जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हूँ कि १९०६ की आश्विन शुक्ला चंद पष द्वितीया को कौन सा वार था। जहाँ तक मेरी जानकारी है नवीन कवि की 'वृज बानी विनोद' रचना से हिन्दी-संसार अपरिचित हैं। इस दिशा में अपनी जानकारी से अवगत कराकर अनुगृहीत करेंगे।

भवदीय
रामस्वरूप आर्य

१४६/२

नई बस्ती, बिजनौर
२५-७-७१

बंधुवर,

सप्रेम नमस्कार।

आपका २१–७–७१ का पत्र प्राप्त हुआ। आपने 'सत' के सम्बन्ध में जो सुझाव दिया है, वह पूर्ण संतोषजनक एवं मान्य है। एतदर्थ मैं हृदय से आभारी हूँ। 'सुधासर' की रचना सं० १८९५ में हुई थी और 'बृजबानी विनोद' की १९०६ में। मेरे पास जो प्रतियाँ हैं, उन दोनों का लिपि-काल सं० १९१० है। बहुत संभव है, इनकी प्रतिलिपि लेखक के जीवन काल में ही हो गई हो।

'सुधासर' की पुष्पिका है "नवीन कृत पराचीन प्रवीन कवि समूह बानी सुष सानी सुधासर नाम ग्रंथ षट तरंग बरनन संपूर्ण सुभं। दसषत केवल कृष्ण के लिखी श्री वृन्दावन धामे मुकाम श्री गुरु सहाइ मिश्र जी कौ तिन्ने लिषाई ॥ श्री ॥ संवत् १९१०। शुभ मिति कार्तिक वदी ३ गुरुवार।"

इस सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि इसकी यह प्रतिलिपि कवि के निवास-स्थान वृन्दावन में ही की गई थी। ग्रन्थ बड़े आकार के ९७२ पृष्ठों में है, (कलम मोटी होने के कारण ग्रन्थ का आकार अपेक्षाकृत अधिक दिखाई पड़ता है।) जिसके लिए प्रकाशक मिलना कठिन है।

'बृज बानी विनोद' भी इस ग्रन्थ के साथ था। लिपिकर्ता भी एक ही प्रतीत होता है। अतः यह ग्रन्थ भी इन्हीं 'नवीन' का होगा।

मैंने अपने पिछले पत्र में हस्तलिखित ग्रन्थों के संक्षिप्त विवरण का उल्लेख किया था, जिसमें कवि का 'वास्तविक नाम गोपाल राय' बताया गया है। ३५–३७ का खोज विवरण मैंने नहीं देखा है। 'साहित्य समालोचक' में प्रकाशित श्री याज्ञिक के लेख की सूचना मुझे मिली थी, किन्तु वह अंक देखने को नहीं मिल सका। 'सिंह' का आधार सम्भवतः यही लेख है। पता नहीं कि याज्ञिक ने कवि के नाम के साथ 'सिंह' किस आधार पर जोड़ा। एक छोटी-सी शंका यह भी है कि उत्तर प्रदेश में कायस्थों के साथ 'सिंह' लगाने की परिपाटी नहीं है।

आपका 'सर्वेक्षण' खोज कार्य में काम आ रहा है, यद्यपि कही-कहीं मत वैभिन्न की गुंजाइश है। इस ग्रन्थ के उलटते-पलटते एकाध प्रसंग ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया।

सर्वेक्षण पृ० ८३ पर आपने निम्नलिखित सोरठा रहीम का बताया है—

बुंद समुद्र समान, यह अचरज कासों कहौं।
हेरनहार हेरान, अहमद आपै आप मैं॥

थोड़े पाठान्तर के साथ यह सोरठा 'रहीम रत्नावली' (पं० मया शंकर याज्ञिक सोरठा सं० २७७) में भी मिलता है, किन्तु वास्तव में यह सोरठा जायसी का है, जो उनके अखरावट में थोड़े पाठान्तर सहित उपलब्ध है—

बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासों कहौं
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपहिं आपु मँह।

—सोरठा सं० ७

जायसी की कोढ़ी से भेंट तथा उसके अदृश्य हो जाने के प्रसंग में आचार्य शुक्ल जी ने इस सोरठे (आचार्य जी ने प्रमादवश इसे दोहा लिख दिया है) का उल्लेख किया है—जायसी ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ७।

नवीन खोज के आधार पर जायसी के छह ग्रन्थ हैं—पद्‌मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरानामा (जिसे डा० माता प्रसाद गुप्त ने अनुमान करके महरी बाईसी नाम दिया था) मसलानामा और चित्र रेखा।

× × ×

उर्दू के बड़े-बड़े विद्वान् नेवाज कवि (शकुन्तला का उल्था करने वाले) को एक स्वर से मुसलमान मानते हैं। जब उर्दू के एक डाक्टर को सर्वेक्षण पृ० ३९८ पर उद्धृत १९१७ के खोज विवरण का उल्लेख दिखाया, तो वे चौंके। इसमें साफ ही 'निवाज तिवारी' लिखा है। अब वे और प्रमाण ढूंढ़ रहे हैं, जिससे उर्दूवालों का भ्रम दूर किया जा सके। सर्वेक्षण पर एक दोहा उद्धृत है—

तुम्हें न ऐसी चाहिए, छत्रसाल महराज
जहँ भगवत गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़े निवाज

इसमें दूसरी पंक्ति का अर्थ अस्पष्ट है। क्या इस पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे। आपके सूचनार्थ निवेदन है कि मेरे पास राम चन्द्रिका की भी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति है, जिसका लिपि काल ११६९ हि० है। प्रति स्पष्ट उर्दू लिपि में हैं। इसके अतिरिक्त छन्द शास्त्र की भी कई पुस्तकें हैं, जिनका उल्लेख खोज विवरणों तथा सन्दर्भ ग्रन्थों में मुझे अभी तक नहीं मिला। सरस्वती, सुधा, माधुरी, चाँद आदि के भी शताधिक अंक मेरे पास हैं, जिनमें से अनेक आज बड़े-बड़े पुस्तकालयों में भी दुर्लभ हैं।

योग्य सेवा।

भवदीय
रामस्वरूप आर्य

१४७।३

नईबस्ती, बिजनौर
२०-८-७१

आदरणीय बंधुवर

सादर नमस्कार।

आपका ३-८-७१ का कृपा पत्र प्राप्त हुआ। 'सुधासर' पर मैं कार्य आरम्भ करूँगा। पता नहीं रत्नाकर जी ने इसके कितने अंश का सम्पादन किया था। कभी समय निकाल कर इसके आकार प्रकार से सूचित करने की कृपा करें। ग्रन्थ के आदि तथा अन्त की दो-चार पंक्तियाँ भी लिख भेजेंगे, तो अच्छा रहेगा।

आपकी सूचना के अनुसार मैंने भारतीय साहित्य वर्ष ३ अंक ४ देखा था। इसमें डा० रावत ने दम्पति वाक्य विलास का जो परिचय दिया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ सुधासर से भिन्न है। इसी प्रसंग में मैंने जनवरी १९६४ की सरस्वती में प्रकाशित डा० चन्द्रभान रावत का लेख 'दम्पति वाक्य विलास, अतिरिक्त सूचनाएँ; भी देखा। इससे भी यही लगा कि उक्त ग्रन्थ सुधासर से भिन्न ही हैं।

आपने जो तर्क दिया है उसके आधार पर गोपाल के नाम के साथ सिंह भी हो। इसके लिए अभी मैं अन्तःसाक्ष्य की खोज में हूँ, यदि बाह्य साक्ष्य से भी इसकी सिद्धि हो सकी तो भी इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

यह जानकर प्रसन्नता है कि जायसी के सभी ग्रन्थ आपके पास हैं। आप जैसे शोधकर्ता, जो जागरूक हैं तथा निरन्तर अध्ययन में व्यस्त हैं, की दृष्टि में और भी

अनेक नए तथ्य आये होंगे। जैसा कि आपके पत्र से विदित हुआ अब आपके पास ऐसी पर्याप्त सामग्री है। इस सम्बन्ध में विनम्र निवेदन है कि यह सब प्रकाशित होनी चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि 'हिन्दुस्तानी' त्रैमासिक के एक अंक के रूप में यह सारी सामग्री एक साथ प्रकाशित की जावे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६७ अंक ४ इसी रूप में निकला था, जिसमें केवल एक लेख था। इसमें भाई श्री कांति सागर जी ने ना० प्र० सभा के कुछ विवरणों के संशोधन प्रस्तुत किये थे। यह सामग्री बाद में सरोज सर्वेक्षण के परिशिष्ठ के रूप में पुस्तकाकार रूप ले सकेगी। आशा है यह सुझाव आपको पसन्द आएगा।

एक अच्छी भूमिका सहित आपने नेवाज ग्रंथावली का संपादन कर लिया है, यह जानकर हर्ष है। आशा है यह शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

'जँह भगवत गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़ै नेवाज' का जो अर्थ आपने लिखा है, वह ठीक है। मुद्रा अलंकार से नेवाज का एक और अर्थ भी ध्वनित होता है 'जहाँ मैं भगवद्गीता जैसी पवित्र रचनाएँ पढ़ता था, वहाँ अब नेवाज कवि नमाज पढ़ता है।' उर्दू वाले इसी को ले उड़े हैं और नेवाज को मुसलमान सिद्ध कर रहे हैं। मुझे इस अर्थ की संगति तो जँचती है, पर इसके आधार पर यह कहना कि नेवाज मुसलमान थे, मान्य नहीं है। उर्दू के एक शोध कर्ता ने एक कहानी गढ़ी है कि नेवाज मूलतः हिन्दू थे और उनका नाम गोपाल था, मुसलमान होने पर अपना नाम नेवाज रख लिया था। अस्तु आपकी नेवाज ग्रन्थावली प्रकाशित होने पर इस प्रकार की भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेगा।

आपकी सद्भावनाओं के लिए हृदय से आभारी हूँ।

भवदीय
रामस्वरूप आर्य

१०१. सूर्यकान्त त्रिपाठी, उन्नाव

[सूर्यकान्त त्रिपाठी उन्नाव जिले के एक इंटर कालेज में प्रधानाचार्य हैं। शिवसिंह सेंगर के गाँव कांथा की यात्रा के समय श्री जयनारायण कपूर ने डॉ० गुप्त को इनसे मिलाया था। इनके पास श्रीधर की विद्वन्मोद तरंगिणी का हस्तलेख था।]

१४८

सूर्यकांत त्रिपाठी
एम० ए०, बी० टी०
प्रधानाचार्य

रामकुमार दीक्षित हा० से० स्कूल
भुंभुवार (कोरारी कलाँ), उन्नाव
दिनांक ६ अक्टूबर ७१

आदरणीय गुप्तजी,

पिछले दिनों डॉ० तैलंग (औरंगाबाद) के पत्र से ज्ञात हुआ कि आपका शोध ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' प्रकाशित हो चुका है, अतीव हर्ष हुआ उस समाचार से, क्योंकि शोध-यात्रा में आप शिशिर के एक प्रभात में स्व० जय नारायण कपूर के साथ 'विद्वन्मोद तरंगिणी' की पाण्डुलिपि का अवलोकन करने मेरी कुटिया बाबूगंज, उन्नाव भी पधारे थे।

तब से कोई सम्पर्क नहीं बन पाया। कपूर साहब का स्वर्गवास हो गया और शिवसिंह सरोज के द्वारा प्रमाणित उक्त हस्तलिखित 'विद्वन्मोद तरंगिणी' भी उन्हीं के हाथों चोरी चली गई, जो अब कदाचित लखनऊ विश्वविद्यालय के एक स्वनाम धन्य डाक्टर साहब के पास है। इधर मैं गत छः वर्षों से उन्नाव से इस विद्यालय की सेवा में आ गया। असंभव नहीं कि आपको मेरा ध्यान न हो।

इस पत्र द्वारा ही पुनर्मिलन की कामना करता हूँ। यदि आपके उपर्युक्त ग्रंथ की एक प्रति उपलब्ध हो सके, तो कृतार्थ होऊँगा। प्रकाशक का पता लिख दें, तो भी संतोष हो जायगा।

किमधिकम् ?

शुभेच्छु
सूर्य कान्त
६/१०

१०२. मुरारी लाल गोयल, दिल्ली

[अपरिचित]

१४९

५९१/C १-२ महावीर ब्लाक
भोलानाथ नगर
शाहदरा–दिल्ली
२६-५-७२

आदरणीय डा० साहिब,

सादर नमस्कार।

सेवा में सविनय निवेदन है कि मैं मेरठ विश्वविद्यालय से डॉ० जयचन्दरामजी के निर्देशन में पं० माधव प्रसादजी मिश्र पर शोध कार्य कर रहा हूँ। इस सन्दर्भ में पं० झावर मल्ल जी शर्मा के दर्शन करने पर ज्ञात हुआ कि आपने अपने किसी ग्रंथ में

शर्माजी के विशाल भारत के लेख को उद्धृत किया है, जिसमें पं० मा० प्र० मिश्र को आदि हिन्दी कहानी लेखक सिद्ध किया गया था। कृपया उस ग्रन्थ का नाम तथा उपलब्धि स्थान लिखने की कृपा करें। इसके अतिरिक्त द्विवेदी युगीन गद्य के सम्बन्ध में कोई संकेत सुझाव तथा सूत्र आदि दे सकें तो अति कृपा होगी।

डॉ० जयचन्द राम जी के संकेत पर ही आपको कष्ट देने का दुस्साहस कर रहा हूँ। आशा है निराशा की भिक्षा नहीं देंगे।

आपका
कृपाकांक्षी
मुरारी लाल गोयल

१०३. डॉ० राजकुमार गुप्त, दिल्ली

[डॉ० राजकुमार गुप्त किरोड़ीमल कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में थे। अपरिचित।]

१५०

किरोड़ीमल कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली—७
१३-१-७२

महोदय,

आपको एक कष्ट देना चाहता हूँ। आपके पास 'उर्वशी' (१९०९) की एक प्रति है। इसकी प्रतिलिपि करवा के भिजवा सकें तो अत्यन्त कृपा होगी। प्रसाद-साहित्य के अध्ययन हेतु उसकी अत्यन्त आवश्यकता है। आशा है कि आप इस कार्य को अवश्य करा देंगे। धन्यवाद

आपका
राजकुमार गुप्त
(डॉ० राजकुमार गुप्त)

१०४. बलराम दास, वाराणसी

[बलराम दास जी १९७२ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के शोध छात्र थे। अपरिचित।]

१५१

बलराम दास
शोध छात्र हिन्दी विभाग
का० हि० वि० बि०
१५-१६।९।७२

श्रद्धेय गुप्त जी,

सादर अभिवादन ।

मैं यद्यपि आपके स्वरूप से अपरिचित हूँ, फिर भी आपके नाम तथा कृतियों से अवगत हूँ । इसलिए आत्मीय मानकर आपको कष्ट देना चाहता हूँ । क्षमा कीजिएगा ।

मैं "रीति कालीन साहित्य शास्त्र एवं आचार्य कवि प्रताप साहि" पर शोध कार्य में संलग्न हूँ । आप रीति साहित्य के अध्येता एवं अधिकारी विद्वान हैं, इसलिए इस शीर्षक से संबंधित कुछ सलाह तथा सहायता की आशा करता हूँ, विश्वास है अवश्य अनुगृहीत करेंगे ।

(१) उपर्युक्त शीर्षक के अनुसार एक विषयानुक्रमणिका

(२) रीति कालीन साहित्य शास्त्र के मूल्यांकन की सारणी क्या हो सकती है ?

(३) प्रताप साहि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली कोई सामग्री अगर आपके पास हो, तो कृपया सूचित करें ।

(४) यथार्थ रूप से रीति साहित्य को जानने के लिए किन-किन ग्रन्थों से सहायता लेना उचित होगा ।

शेष कुशल । आपके पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

भवदीय
बलरामदास

मेरा स्थानीय पता—
श्री रामानंद महाविद्यालय
शंकुधारा, पो० खोजवाँ बाजार
वाराणसी–१

१०५. कृष्ण मोहन सक्सेना, लखनऊ

[अपरिचित]

आदरणीय डाक्टर साहब, १५२ ५-४-७३

सादर प्रणाम । लखनऊ

सकुशल हूँ । मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा के निर्देशन में "भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन" विषय पर शोधरत हूँ । आपकी कृति 'भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि' से लाभान्वित हुआ हूँ ।

मेरा कार्य लगभग पूर्ण है किन्तु अभी पूर्णता के साथ कार्य की उपयोगिता की दृष्टि से आप जैसे विद्वान् के सुझाव एवं आशीर्वाद की अपेक्षा करता हूँ। आप साहित्य के महान अध्येता हैं, बल्कि यह कहना उचित होगा कि आपने अपना संपूर्ण जीवन ही साहित्य सेवा में अर्पित कर दिया है। विश्वास है कि मेरे विषय से सम्बन्धित नवीन सामग्री-सूचनाओं से अवगत कराने की कृपा करेंगे।

आपका

कृष्ण मोहन सक्सेना

२४६ पुराना टिकैतगंज

लखनऊ–४

१०६. डा० राम सकल शर्मा, बंबई

[डा० राम सकल शर्मा आजमगढ़ के रहने वाले हैं। यह नेशनल कालेज बान्द्रा में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं। १९७५ में कार्यमुक्त होने के अनन्तर डा० गुप्त एक बार बंबई गए थे, तब उन्होंने बंबई साहित्य सम्मेलन की ओर से इनका स्वागत किया था। इसके पहले भी काशी में इनसे डा० गुप्त की एक बार भेंट हो चुकी थी।]

१५३

घर

३ रचना

सोमनाथ लेन

हिलरोड, बांद्रा

बंबई–५०

दिनांक–७।७।७३

डा० राम सकल शर्मा

एम० ए०, साहित्यरत्न, पी०–एच० डी०

अध्यक्ष–हिन्दी विभाग

नेशनल कालेज, बान्द्रा

बंबई–५०

पत्रांक–निजी

आदरणीय डा० किशोरी लालजी गुप्त,

सादर नमस्ते

मेरा यह आकस्मिक पत्र पाकर आपको आश्चर्य होगा, परन्तु मैं आपको नाम एवं काम से जानता हूँ। हम लोग एक बार काशी में डा० जगन्नाथ शर्मा के सौजन्य से मिले थे। बजरे पर गोष्ठी थी––डा० संपूर्णानंद ने उसकी अध्यक्षता की थी। बस, फिर कभी अवसर नहीं मिला। अब शायद भविष्य में मिलें।

हाँ, कविवर श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' से मुझे पता चला है कि इनके संबंध में दो पुस्तकें हैं। और कोई अभिनन्दन ग्रंथ टाइप-टंकित अथवा प्रकाशित सामग्री है। उन्हीं की आज्ञा से मनीआर्डर द्वारा ३) तीन रुपये आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। कृपया

जो भी प्रकाशित अप्रकाशित सामग्री उपलब्ध हो, उसे तत्काल डाक से मेरे घर के पते पर भेजने की व्यवस्था करें। यदि डाक खर्च आदि की दृष्टि से ३ रु० कम हों, तो आपके कालेज में जो श्री नवल किशोर विश्वकर्मा हैं, उन्हीं से पैसे ले लीजिए, वे मेरे सहपाठी एवं घनिष्ठ मित्र रहे हैं। पता नहीं उन्हे मेरा स्मरण भी है कि नहीं। पर आप जब उन्हें मेरा पत्र दिखावेंगे, तब उन्हें मेरा स्मरण हो जायगा। कहिए कि तेजपुर के राय साहब ने आपको याद किया है। अगर वे अब आपके कालेज में न हों, तो मुझे एक पोस्टकार्ड से सूचित करें। मैं पैसे तत्काल भेज दूँगा।

वास्तव में मेरे एक छात्र को अपने शोधकार्य में यह सब सामग्री चाहिए। बाद में इन्हे आजमगढ़ भी भेजूंगा। तब आपसे ये वहाँ स्वयं जाकर मिलेंगे। परन्तु मिलना जुलना आदि काम तो बाद में होगा। अभी सारी सामग्री के चयन का प्रश्न उपस्थित है। आशा हैं आप अवश्य सहायता करेंगे।

भवदीय

राम सकल शर्मा

१०७. सज्जन राम केणी, पूना

[पूर्णतया अपरिचित]

१५४।१

डा० सज्जनराम केणी

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

सर परशुराम भाऊ महाविद्यालय

पूना–३०

दि० ७ जून १९७३

माननीय डा० किशोरीलाल गुप्त जी,

सादर अभिवादन।

पुणे विद्यापीठ के हिन्दी के विभागाध्यक्ष गुरूवर्य डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित के आदेशानुसार इस पत्र द्वारा आपको कुछ कष्ट देने के लिए बाध्य हो गया हूँ। दूलह कवि के नाम पर 'कवि-कुल-कंठाभरण' के अतिरिक्त 'दूलह विनोद' ग्रंथ और कुछ स्फुट रचनाओं का उल्लेख मिलता है। साथ ही आपने अपने संपादित ग्रंथ 'सरोज सर्वेक्षण' तथा डा० ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' में क्रमशः पृ० ६६ तथा सं० ३१८ पर 'सत्कवि गिरा विलास' में अन्यान्य १७ कवियों की रचनाओं के साथ ही दूलह की भी रचनाओं के संकलित किये जाने की सूचना दी है। बड़ी कृपा होगी यदि आप 'कवि-कुल-कंठाभरण' को छोड़कर दूलह की उक्त अन्य रचनाओं या स्फुट छंदों की प्रतिलिपि करवा कर मेरे नाम पर भिजवाने का कष्ट करें। गुरुवर्य डा० दीक्षित जी के निर्देशन में दूलह पर शोध कार्य कर रहा हूँ, जिसके लिए मुझे उक्त प्रतिलिपि

की नितांत आवश्यकता है। प्रतिलिपि का मूल्य मैं तुरन्त भिजवा दूंगा। 'दूलह विनोद' ग्रंथ भी कहीं उपलब्ध हो सकता हो तो उसकी सूचना भी कृपया साथ के जवाबी कार्ड पर दे दीजिएगा। कष्ट के लिए क्षमा प्रार्थी, शेष आपकी कृपा। शीघ्र पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

भवदीय विनीत
सज्जन राम केणी

पत्र व्यवहार का पता–
डा० सज्जनराम केणी
'रामनाथ' प्लाट नं० ५१
गणेश मला, विट्ठलवाड़ी रोड
पुणे ३०

१५५।२

'रामनाथ' प्लाट नं० ५१
गणेशमला, विट्ठलवाड़ी रोड
पुणे–३०
दिनांक २१–७–१९७३

डा० सज्जन राम केणी
एम० ए०, पी–एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सर परशुराम भाऊ महाविद्यालय, पुणे

मान्यवर डा० किशोरीलाल-गुप्त,
सादर अभिवादन।

आपका दिनांक ५–७–७३ का कृपा पत्र प्राप्त। धन्यवाद। आपकी सेवा में निवेदन है यदि दूलह के फुटकर कवित्त टंकित हो चुके हों, तो कृपया मुझे उसकी सूचना यथाशीघ्र दे दें। उक्त छंदों के अभाव में मेरा शोध कार्य रुका पड़ा है। आपसे सूचना मिलते ही टंकक का पारिश्रमिक मैं तुरन्त आपके पते पर भिजवा दूंगा। बड़ी कृपा होगी यदि आप पत्रोत्तर देते समय टंकक के पारिश्रमिक की रकम की सूचना दे दें। कष्ट के लिए क्षमा प्रार्थी।

शेष आपकी कृपा। आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं सानंद होंगे, शीघ्र पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

भवदीय विनीत
सज्जन राम केणी

१०८. काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर' वाराणसी

[काशीनाथ उपाध्याय 'बेधड़क बनारसी' के नाम से हास्यरस के सुकवि रूप में प्रसिद्ध थे। यह हिन्दी समिति लखनऊ के सचिव थे। यह डा० गुप्त के मित्रों में से थे। दिवंगत।]

१५६

हिन्दी समिति
हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग
सं० २७५१ । हि० स० १।७३ लखनऊ–१
दिनांक २८ अगस्त १९७३

प्रिय गुप्त जी,

सप्रेम नमस्कार। आपने कुछ दिनों पहले 'हिन्दी काव्य साहित्य का संग्रह' १५ खण्डों में प्रस्तुत करने का संकेत किया था। इस संबंध में आपने यह सूचित किया था कि इस ग्रंथ की प्रगति के संबंध में सूचना दूँगा। यह पत्र उसी संदर्भ में है। कृपया अवगत करावें कि उस ग्रंथ की क्या स्थिति है।

आपका
भ्रमर
(काशीनाथ उपाध्याय भ्रमर)

१०९. ओंकार त्रिपाठी, मिल्कीपुर फैजाबाद

[ओंकार त्रिपाठी विद्या मंदिर इण्टर कालेज मिल्कीपुर फैजाबाद में हिन्दी के प्रवक्ता थे। अपरिचित।]

ओंकार त्रिपाठी १५७ विद्यामंदिर इण्टर कालेज
एम० ए०, एल० टी० मिल्कीपुर, फैजाबाद
हिन्दी प्रवक्ता दिनांक १३-३-७४

परमादरणीय डा० साहब,

सादर प्रणाम।

आपकी 'राधा' में बड़ा आनन्द आता है। फुरसत में जब रहता हूँ, कुछ पद गा लेता हूँ। राधा-कृष्ण के दार्शनिक निरूपण की सामग्री इसमें नहीं है, यही अध्याय मैं इस समय तैयार कर रहा हूँ। 'राधा' तो प्रेम-तन्मयता की पराकाष्ठा है। इसका उपयोग तीन अध्यायों–सौन्दर्यांकन, प्रेम-प्रणय-योग, शील निरूपण आदि में करूँगा।

अमृत लाल चतुर्वेदी कृत स्याम सँदेसौ इलाहाबाद से मँगा लिया है, दाऊ दयाल गुप्त की राधा के मिलने का पता बता दीजिए, जहाँ से मँगाया जा सके। दुलारे लाल भार्गव के यहाँ मैं गंगा पुस्तक माला लखनऊ गया था, किन्तु 'दुलारे दोहावली' मिल नहीं सकी। बाजार में है भी नहीं।

कानपुर विश्वविद्यालय ने मेरे निर्देशक के रूप में डा० रमाशंकर तिवारी को स्वीकार कर लिया है। पूज्य गुरुवर डा० राधिका प्रसाद त्रिपाठी मेरी काफी सहायता

कर रहे हैं। आपका दर्शन करना चाहता हूँ, क्योंकि पत्रों के माध्यम से सारी बातें स्पष्ट नहीं हो पातीं। गत वर्ष आप साकेत डिग्री कालेज में आए भी थे। आपके चले जाने के तीसरे दिन डा० त्रिपाठी ने बताया। आपके पत्र दिनांक १२-२-७२ में जिन पुस्तकों का संकेत था, उनमें केवल दाऊ दयाल गुप्त की राधा और दुलारे-दोहावली नहीं मिल सकी। आपके आशीर्वादों एवं सत्परामर्शों का सतत शुभेच्छु—

भवदीय
ओंकार त्रिपाठी
१३-३-७४

११०. बनारसी दास चतुर्वेदी, फीरोजाबाद

[बनारसी दास जी चतुर्वेदी फीरोजाबाद के रहने वाले थे। यह हिन्दी के विशिष्ठ पत्रकार, विशाल भारत, मधुकर के संपादक थे। अपने पत्रों के लिए यह प्रसिद्ध हैं। डा० गुप्त का फीरोजाबाद में रहते समय १९४५-४८ में इनसे कोई संपर्क नहीं हुआ। जब यह अपने पुत्र के साथ रहने के लिए ज्ञानपुर आए, तब डा० गुप्त ने इनसे भेंट की थी। दिवंगत।]

१५८ Gyanpur, Dt. Banaras

प्रिय भाई गुप्त जी, १७।३।७४

वन्दे। आपका कार्ड मिला। कृतज्ञ हूँ। आपने संकोच किया और १९४५-४८ के बीच मुझसे नहीं मिले। यह जानकर खेद तथा आश्चर्य भी हुआ। आचार्य पद्म सिंह जी तो जहाँ कहीं जाते, तलाश करके साहित्य प्रेमियों से मिलते थे और मेरी भी यही आदत है।

सन् १९१६ में जब मैंने प्रथम बार काशी की यात्रा की थी (इसके पूर्व बारात में एक बार और गया था), तो उस समय भी संपूर्णानन्द जी के घर ठहरा था। तब मैं स्व० रामनारायण मिश्र तथा स्व० डा० भगवान दास जी के दर्शनार्थ गया था। इसमें श्री सम्पूर्णानन्द जी को कुछ आश्चर्य हुआ था और उन्होंने कहा भी था—

"जिनसे आपका कुछ भी परिचय नहीं, उनका वक्त खराब करने के लिए क्यों जाते हो?"

पर मैंने उनकी बात नहीं मानी। डा० भगवान दास जी के घर पर उनके सुपुत्र श्री प्रकाश जी के भी दर्शन हो गए, जिनका परिचय मुझे १९५२ में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ। उन्होंने स्व० पं० जवाहर लाल जी नेहरू से मेरे राज्य सभा में जाने की सिफारिश की थी।

हम साहित्यिकों को यथासंभव निरंतर सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। सुबह

का भूला शाम को घर पहुँच जाय तो गनीमत है, पर आप तो १९४५ के भूले १९७४ में ठीक रास्ते पर पहुँचे हैं।

मेरे पास तो अब बल कम ही रह गया है, फिर भी समान शील व्यक्तियों से सम्पर्क बनाए रखना चाहता हूँ। श्री भक्त जी वाले ग्रन्थ की प्रतियाँ जगह-जगह भेजवानी चाहिए, भक्त जी का कृपा-पत्र मुझे मिल गया है। पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। यदि वे ५।७ लेख आत्म चरितात्मक लिख सकें तो अत्युत्तम।

विनीत
बनारसी

क्या उनके काव्य पर २।४ समीक्षात्मक लेख कोई लिख सकेगा। मेरा तो काव्य सम्बन्धी ज्ञान नगण्य है। क्या आप और उपाध्याय जी नहीं लिख सकते?

आजमगढ़ कोने में पड़ गया है, इसलिए वंन्धुवर भक्त जी का परिचय-क्षेत्र कुछ सीमित हो गया।

कभी उनके दर्शन करूँगा।

विनीत
बनारसी

श्री भक्त जी विषयक पुस्तक काफी बँटनी चाहिए, खरीदने वाले तो थोड़े ही होंगे।

१११. जय कुमार मुद्‌गल, मथुरा

[मुद्‌गल जी कुछ दिनों तक आजमगढ़ में डी० ए० वी० कालेज में थे। यह विद्वान और सज्जन हैं। इसी नाते डा० गुप्त का और उनका घनिष्ट सम्पर्क हुआ। बाद में यह बाबू शिवनाथ डिग्री कालेज मथुरा में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर चले गये। गुप्त जी का आज तक इनसे बराबर सम्पर्क बना हुआ है।]

१५९।१

मई चौहत्तर मधुपुरी, तिथि षोडस गुरुवार
मुदगल परिजन पत्रिका, नमस्कार बहु बार

सात दिना भए, मिली न पाती, आसंका की बात
बात सदा पावन मनभावन, नेह रीति उपजात
जात न भीषम ग्रीषम अनरथ, लुएँ करैं उत्पात
पात न खड़कैं, सड़कैं कड़कँ, झड़कें तन दिन रात
रात गए दिन मिलै न उत्तर, मन मोदक बिरमात
मात मान गए, तात! बात की, का कागजहिं बिसात

आकुल जन हैं, व्याकुल मन है, क्यों न मिल सका कोई पत्र
बन्ध नहीं प्रतिबन्ध मानते, मुखर निबहती है सर्वत्र

जयेश मुदगल
१६-५-७४

१६०।२

डैम्पियर नगर
मथुरा
१२-७-७४

आदरणीय श्री गुप्त जी,

सप्रेम नमस्कार।

२९ को विदा लेकर प्रयाग, ३० काशी, १ गोरखपुर, २ लखनऊ, ३ एटा रहकर ४ को सायंकाल यहाँ पहुँचा। रेडियो वार्ता थी, व्यास जयन्ती का कार्यक्रम था। आते ही अस्वस्थ हो गया। अब ठीक हूँ। **सुधवै की यात्रा एवं सीतामढ़ी के दर्शन के बिना यह यात्रा अपूर्ण रह जाती। वस्तुतः** तृप्त हो गया। सिटी सुल्तान गंज भी अनेक दृष्टियों से अविस्मरणीय बन गया है। आज एक पत्र श्री आनन्दी साहु को लिखा था, फिर नष्टकर दिया। लगा सीमातिक्रमण हो जायगा। अस्तु।

बच्चे स्मरण करते हैं। कब आ रहे हैं। कुछ भाव उमड़ रहे थे परन्तु समुचित अवकाश नहीं मिला।

मथुरा लौटने पर १२-७-७४

सुधवै तजि सुखमूल, भूलि सुध-बुध, बेसुध ह्वै
नेह-पगे-पग विकल, नैन आँसू आए च्वै
वे गोपिन के गंज, प्रेम रँग जंग मची भ्वै
कि०ला० गुपुत को प्रीति, रीति कौ जीति नीति छ्वै
आए मथुरा लौट, नेह के लै आखर द्वै
मूक बैन, सुख दैन, नैन उर घूमै सुधवै

—जयेश मुद्‌गल

१६१।३

C/o निदेशक
राष्ट्रीय संग्रहालय
जवाहर लाल नेहरू मार्ग
कलकत्ता
२८-५-८६

समादरणीय श्री गुप्त जी

सप्रेम नमस्ते।

कृपापूर्ण स्मरण से आनन्द मिला और प्रिय आनन्द के विवाह की आनन्दमय

सूचना भी। मैं तो सदा ही परिवार का अंग हूँ। निश्चित सूचना दें। अवश्य दर्शन करूँगा।

प्राचीन पोथियों के पाठालोचन के शुभ प्रसंग में राजकीय यात्रा पर हूँ। १० दिन का कार्य है। १।६ को लौट रहा हूँ। सबको नमस्कार स्मरण।

अपना

जयेश मुद्गल

आपका कार्ड श्री मीतल जी को दिखाया था। कुछ चर्चा अपेक्षित है।

जय

[पोस्ट कार्ड में यह पद्यबद्ध पता है। लाल स्याही से पता है]

कविता के कंत और संत गुण कानन के
सुप्रभाव-सागर से **गुप्त श्री किशोरीलाल**
आराधक राधा के हैं, साधक सरस्वती के,
बाधक खलन के औ कीर्ति-सर के मराल
ब्रज की तौ सुधि नाहि, बसैं **ग्राम सुधवै** में
पत्रालय सुधवै ही देय कभूं हाल चाल
अपनी न भूल कहैं, अभिनव आनन्द लहैं,
जनपद वाराणसी पाकर भयो निहाल

१६२।४

जयकुमार मुद्गल जयेश
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि, दर्शन
इतिहास एवं भा० संस्कृति)
आचार्य (साहित्य, निरुक्त, दर्शन, सांख्ययोग,
धर्मशास्त्र, आयुर्वेद)
शिरोमणि, पालि रत्न, विद्यावाचस्पति, साहित्य वारिधि
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, बी० एस० ए० कालेज, मथुरा

निवास—'मुद्गलायनम्'
डैम्पियर नगर
मथुरा
दूरभाष : मथुरा : ४३१०
निवास : ४८४९

१० जून ८६

आदरणीय श्री गुप्त जी,

सप्रेम नमस्ते

मैं कलकत्ता से लौटकर कुछ अधिक व्यस्त हो गया। कल मुद्रित पत्र प्राप्त कर अपार हर्ष हुआ। कल ही आगरा जाकर दो 'शायिकाओं' का आरक्षण १३।६ के लिए करा लिया है। यह बोगी आगरा बाराणसी बोगी है। जो टूंडला से भावी जी की

'अपैरलिया' से जुड़ती है। १४ को प्रातः इलाहाबाद पहुँचकर बहिन के यहाँ जावेंगे और १५ को प्रातः अपने भांजे डा० हरेन्द्र दीक्षित की कार से आपके यहाँ दो दिन विवाह का आनन्द और १७ जून को आपके जन्मदिन का समारोह होगा। इधर स्वास्थ्य कुछ निर्बल चल रहा है, फिर भी इस अवसर की महत्ता को समझकर यात्रा का कठिन कष्ट उठाने का साहस कर रहा हूँ।

एक आवश्यक कार्य है, कृपया सौभाग्यकांक्षिणी नव-वधू के लिए एक साड़ी मेरी देवी जी की ओर से ले लें। कुछ अधिक लग जावे तो भी कोई बात नहीं है। देवी जी अभी कानपुर हैं। आज या कल लौट सकेंगी। अतः यहाँ से लेना कठिन होगा। फिर अपनी-अपनी रुचि भी है।

शेष दर्शन करने पर।

सबको स्मरण आपका

जयेश मुद्गल

[लिफाफे पर पता यों अंकित है, पद्यबद्ध। पता लाल स्याही में]

अग्रगण्य गुणिगण गणना में, सुधी किशोरीलाल गुप्त धन
सुधि-जन-मन गुण धाम, ग्राम सुधवै आनँदघन
गोपी ज्ञान वाल्मिकि रबि, निकट बसी अमरावति अभिनव
शंकर सरस्वती सजना की, जनपद वाराणसी सु अभिनव

११२. सुरेशचन्द्र पाण्डेय, आजमगढ़

[श्री पाण्डेय जी डी० ए० वी० स्नातकोत्तर विद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं। परिचित]

१६३

हिन्दी विभाग
दयानन्द महाविद्यालय
आजमगढ़
१४-५-७४

आदरणीय डा० गुप्त जी

सादर अभिवादन

अपने शोध प्रबंध--आधुनिक हिन्दी कविता तारसप्तक से १९७० तक पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव--के सिलसिले में, मैं कवि श्री गुरु भक्त सिंह 'भक्त' की कतिपय कविताओं का रचना-काल जानना चाहता हूँ। आदरणीय भक्त जी और शँदा जी से मैंने सम्पर्क स्थापित किया था, परन्तु उक्त सूचना नहीं मिल सकी। भक्त जी की पुरानी फाइलें सम्भवतः खो गयी हैं।

अतः आपसे निवेदन है कि 'आधुनिक कवि भाग १२ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग) में संकलित निम्नलिखित कविताओं का रचना काल मुझे बताने की कृपा करें । आभारी रहूँगा ।

आपका
सुरेशचन्द्र पाण्डेय
प्रवक्ता हिन्दी
C/O जनता ट्रेडर्स
७५/४ फरास टोला
आजमगढ़

प्रकृति चित्र के अन्तर्गत–

मंदिर, ऋतुराज, बाढ़, रोपनी, काँटा
अन्धा कुआँ ।

तथा ग्राम और दैन्य के अन्तर्गत–

कृषक वधूटी, नाविक वधू, वंशी, गाड़ीवान
अनाथा, धरोहर, व्याध और भड़भूजा शीर्षक कविताएँ

११३. नीलम श्रीवास्तव

[नीलम जी हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ में बी० ए० में डा० गुप्त की शिष्या थीं । इनके पिता श्री वृन्दावन बिहारी उस समय जमानियाँ में तहसीलदार थे, जो बाद में आजमगढ़ में डिप्टी कलेक्टर हुए ।]

नीलम १६४ आजमगढ़
एम० ए०, विशारद दिनांक ८–६–७४

आदरणीय प्राचार्य महोदय
सादर प्रणाम ।

आपके आशीर्वाद से हमलोग यहाँ सकुशल हैं । आशा है आप अपनी पुरानी विद्यार्थिनी और शिष्या को भूले नहीं होंगे । पिछली बार आप जब आए थे, उस समय मैं एम० ए० हिन्दी की छात्रा थी । आपके आशीर्वाद से इस समय श्रद्धेय गुरुवर डा० श्याम तिवारी (काशी विद्यापीठ) की शोध छात्रा हूँ । मेरे शोध प्रबन्ध का विषय है—पं० अम्बिका दत्त व्यास जीवन और साहित्य । व्यास जी की सभी उपलब्ध कृतियाँ और उनके जीवन से सम्बन्धित उपलब्ध सामग्री मैंने संचित कर ली है । फिर भी मेरे सामग्री संकलन में कमियाँ हो सकती हैं और होंगी ही । गुरु जी ने मुझे १० जून को बनारस बुलाया है । इस बार बस सिनाप्सिस बना देंगे और मेरे शोध-प्रबन्ध का लेखन कार्य प्रारम्भ हो जायगा । भारतेन्दु युग से सम्बन्धित विषय होने के कारण मैंने आपकी पुस्तक 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' का अध्ययन किया है और उसकी सामग्री का उपयोग मुझे अपने शोध प्रबन्ध में करना है । इस पुस्तक ने मेरी पर्याप्त सहायता की है । मैं बहुत आभारी हूँ । मैं आपसे सहायता और सहयोग की आशा करती हूँ । गुरु जी ने बताया था कि आप भी मेरे कार्य में रुचि ले रहे हैं । यह मेरा सौभाग्य है । जमानियाँ में रहते हुए मैं आपकी विद्वत्ता का लाभ न उठा सकी

थी। मैं चाहती हूँ कि शोध छात्रा की हैसियत से मैं आपसे कुछ सहायता प्राप्त करूँ। आप मेरे विषय से सम्बन्धित सामग्रियाँ निर्देश-पत्र द्वारा भेजेंगे, मेरा सौभाग्य होगा। बहुत दिनों से राधा और पूनम का पत्र-व्यवहार रुका हुआ है, इसलिए हमलोग आप लोगों के कुशल समाचारों से वंचित हैं। कृपया पत्र का उत्तर अवश्य दें। आपका पत्र पाकर मुझे प्रेरणा मिलेगी।

पत्र में अनेक त्रुटियाँ रह गयी होंगी, कृपापूर्वक उन्हे सुधार दें। इस समय छुट्टियाँ चल रही हैं, परन्तु मुझे आशा है आप जमानियाँ में ही होंगे। सभी गुरुजनों को मेरा प्रणाम। पत्र की प्रतीक्षा में--

नीलम
C/o श्रीवृन्दावन बिहारी
डिप्टी कलेक्टर
आजमगढ़

११४ दे० न० देशबंधु, जोधपुर

[पूर्णतया अपरिचित]

१६५

दे० न० देशबंधु
संचालक
उद्धव पुस्तक मंदिर

दे० न० देशबंधु
२ स ४९ प्रताप नगर (जोधपुर)
पो० सुरसागर (राज०)
पिन कोड ३४२०२४
दिनांक १५-६-७४

आदरणीय डा० साहब,

सादर नमस्कार।

मेरे अभिन्न स्नेही डा० महावीर सिंह जी गहलोत के पास आपका 'सरोज सर्वेक्षण' देखने को मिला है। मैं देख रहा हूँ आपने काफी स्थानों पर स्वयं पहुँचकर, सही जानकारी देकर यह शोध प्रबन्ध तैयार किया है, एतदर्थ धन्यवाद। आपका कार्य वास्तव में सराहनीय एवं पथ-प्रदर्शक है।

मैं स्वयं हस्तलिखित ग्रन्थों एवं रेयर बुक का कार्य करने वाला हूँ और विद्वानों को आवश्यकता पड़ने पर इधर संग्रहालय में सुरक्षित ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराके भिजवाने की चेष्टा करता हूँ। इस समय वेणी माधव भट्ट 'प्रवीन' की एक अज्ञात रचना 'श्री गिरधर शृंगा (र) स्वातिका' की एक मात्र प्रति मुझे प्राप्त हुई थी। विद्या विभाग कांकरोली में सुरक्षित करवा दी है। एवं उसका सम्पादन गो०

ब्रजेश कुमार एवं मैं दोनों कर रहे हैं। आपने सर्वेक्षण में उनके दो ग्रन्थों (विचित्रालंकार एवं चतुर्विध पत्री) की जानकारी दी है। इधर का० ना० प्र० सभा ने उनके दो ग्रन्थों की और (द्वारकाधीश के विचित्र विलास एवं कृष्ण वृत्त चन्द्रावली) की सूचना दी है। वैसे प्रवीन के रागोद्भव (राग सागरोद्भव) में स्फुट पद प्राप्त होते हैं। मैं स्वयं काशी आकर उक्त ग्रन्थ देखूंगा। वैसे यह कवि मेरे फुफेरे भाई दामोदर रेही के पूर्वज हैं। अतः निकट का भी सम्पर्क है। आप यदि कुछ और जानकारी दे सकें, तो कृपा होगी। डा० आ० प्र० दीक्षित (पूना) इसके भूमिका लेखक हैं।

विशेष बात यह है कि आपने 'सर्वेक्षण' के पृष्ठ ४३२ पर "इति श्री जयदेव कृत गीत गोविन्द भाषायां रसजान वैष्णवदास कृतायां द्वादश सर्गः" की जानकारी देते हुए प्रिया दास के किसी शिष्य का रसजानि दास होने का अनुमान किया है। इस विषय में सूचना यह दे रहा हूँ कि प्रिया दास के शिष्य रसजानि हुए हैं। इन्होंने सम्पूर्ण भागवत का पद्यात्मक अनुवाद किया है। इनके समय की लिपि कृत भागवत मैंने 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' जोधपुर में सुरक्षित करवाई है। वैसे रसजानि के भागवत के स्फुट स्कन्ध भी इधर उधर कुछ देखे हैं। यदि आप आज्ञा करेंगे तो पूरा विवरण देने की चेष्टा करूँगा। ग्रन्थ तो मैं काफी अज्ञात ढूंढ़ चुका हूँ। माधव दास जगन्नाथी की १६७४ में लिखित 'रुक्मिणी स्वयंवर लीला' नामक एक अपूर्ण ग्रन्थ ढूंढ़ निकाला। आगरा इन्स्टीच्यूट में दिया हुआ है। आगे आप जैसी सूचना करेंगे, मैं वैसी जानकारी देता रहूँगा।

मेरा सम्पर्क आगरा, नागपुर, पूना, मगध आदि वि० वि० से १० वर्षों से चल रहा है। इलाहाबाद युनिवर्सिटी से डा० विद्या कान्त तिवारी एवं डा० (नाम भूल रहा हूँ) इटावा कालेज में हेड आफ हिन्दी हैं, सभी मेरे यहाँ रह कर अपना कार्य करके गए हैं। कभी मौका मिले तो जरूर पधारियेगा। प्रो० नथुनी सिंह भी आकर गए हैं।

पुनश्चः——

मेरी शिक्षा आजमगढ़ जिले के मऊनाथ भंजन में डी० ए० वी० कालेज में हुई है। मैं जो कुछ भी पढ़ा, वहीं पढ़ा। मेरा बचपन वहीं गुजरा है। सन् १९५२ में यू० पी० छोड़ कर पुनः राजस्थान आ गये। वैसे मैं कई बार आ चुका हूँ। गाजीपुर भी आया जाया करता था। घर वालों की बस चलती है।

बीकानेर कार्य क्षेत्र न होने के कारण अब जोधपुर ही स्थाई निवास है। अतः पत्राचार जोधपुर पते से ही करें। कृपा कीजिएगा। जैहिंद, जै हिन्दी।

दे० न० देशबन्धु

११५. रावत चतुर्भुज दास चतुर्वेदी, भरतपुर

[पूर्ण अपरिचित]

१६६

साहित्य कुटीर
दानाध्यक्ष मार्ग, दही गली
भरतपुर
१६-१२-७४

महोदय,

दिनांक ५-१२-७४ का लिखा आपका कार्ड आज प्राप्त हुआ। आपने देव कवि की पुस्तक के बारे में पूछा, सो इस प्रकार है—पुस्तक का नाम रस विलास जो संवत् १७८४ की लिखी उनके ही हाथ की है, चित्र भी है। इसका मूल्य ३५०) तीन सौ पचास रु० है। यदि आपको चाहिए तो M.O. द्वारा रुपया भेज दें। पुस्तक रजिस्ट्री द्वारा भेज दी जायगी। अपना साफ २ पता लिखें

भवदीय
रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी

११६. उदय शंकर दुबे

[उदय शंकर दुबे करेरुआ, पो० औराई, जिला वाराणसी के रहने वाले हैं, पहले यह ना० प्र० सभा में अन्वेषक थे। अब हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में हैं। यह दतिया में भी एक अरसे तक रहे। वहाँ से समाजवादी पार्टी की ओर से एम० पी० का चुनाव भी लड़ चुके हैं। प्राचीन ग्रन्थों की उनकी जानकारी अच्छी है। गुप्त जी के विशिष्ट मित्र ।]

१६७

साहित्य कुटीर
दतिया म० प्र०
दिनांक ३१-१-७५

आदरणीय डॉ० साहब

सादर नमस्कार

सभा में आपकी प्रतीक्षा करता रहा कि शायद आप का दर्शन हो जाय किन्तु संभवतः इस बीच आप काशी न आए। एक सूचना आपको देनी है। दादू पंथी सन्त सुन्दर दास का एक प्रामाणिक चित्र दतिया में उपलब्ध है। सुन्दर दास के ग्रन्थों के साथ हाथ का बना पुराना चित्र भी है। यदि आप अपने ग्रन्थ में इस चित्र का उपयोग करें तो फोटो कापी तैयार कर लूं।

आपसे एक राय लेनी है श्रृंगार सागर के कर्ता मोहन लाल मिश्र पर क्या शोध कार्य किया जा सकता है। इनका पूरा जीवन वृत्त तथा छोटे बड़े सब मिला कर ३९ ग्रंथ प्राप्त हैं। मैं चाहता हूँ, जैसा कि आपने भी कहा था कि श्रृंगार सागर ग्रन्थ का संपादन करना अच्छा होगा। मैं स्वयं इस विषय पर कार्य करना चाहता हूँ। आपका निर्देश अत्यावश्यक है।

शेष भगवत्कृपा। 'सीतामढ़ी' ग्रन्थ पढ़ गया। रामनवमी के अवसर पर यात्रा करने का विचार है।

यथा योग्य सेवा लिखें।

आपका

उदय शंकर दुबे

११७. डा० जय शंकर त्रिपाठी, इलाहाबाद

[डा० जय शंकर त्रिपाठी मेजा तहसील, जिला इलाहाबाद के रहने वाले हैं और इलाहाबाद के एक डिग्री कालेज में अध्यापक हैं। अच्छे साहित्यकार हैं।]

१६८

२६-६-१९७५

७३ छोटी वासुकि

दारागंज

इलाहाबाद

आदरणीय प्रिंसिपल साहब,

सादर नमस्कार

आशा है सानन्द हैं। मई में आप से भेंट नहीं हो सकी। इसका मुझे अत्यन्त पश्चाताप हैं। मैं कुछ आकस्मिक परेशानियों में था और पीलिया रोग से भी पीड़ित हो गया था। आपने २१-२२ मई दो दिन प्रयाग रहने की बात उस समय कही थी, ऐसा मुझे स्मरण है। मैं २२ मई को प्रयाग आ गया था, तब आपके आने की सूचना मिली थी। अस्वस्थ होने के कारण मैं पुनः घर चला गया। मेरी अस्वस्थता तथा भीषण गर्मी के कारण तमसा की पुरानी धारा के किनारे-किनारे यात्रा बहुत सुलभ नहीं थी। मैं निश्चय नहीं कर पाया कि इस कार्यक्रम को अभी करूँ या नहीं। इसीलिए कोई पत्र भी नहीं दिया। कृपया इसे अन्यथा न समझें। मैं समझता हूँ कि एक बरसात हो जाने के बाद अब उस यात्रा के लिए उपयुक्त समय है और यदि जल्दी न हो तो इस कार्यक्रम को कुआर महीना (शरत्काल) में रखा जाय। उस समय अनुमान करने में और भी सुविधा होगी।

आप अपने कष्ट के लिए क्षमा करें। और अब इस यात्रा के सम्बन्ध में कैसा निश्चय किया जाय, यह लिखें।

आपका
जय शंकर त्रिपाठी

११८.रत्न शंकर प्रसाद, काशी

[रत्नशंकर प्रसाद महा कवि जयशंकर प्रसाद के पुत्र हैं। स्वयं भी अच्छे साहित्यकार हैं।]

पोस्ट बाक्स संख्या ३६ — १६९. — प्रसाद प्रकाशन
गोवर्धन सराय, वाराणसी-१ — फोन: ६३४३९

प्रियवर किशोरी लाल जी,

प्रसाद ग्रन्थावली में समस्त प्रसाद वाङ्मय, ग्रंथित और अग्रन्थित समस्त सामग्री, एकत्र कर देना चाहता हूँ। इस दिशा में आपका बहुमूल्य सहयोग अपेक्षित है। 'इंदु' की पूरी फाइल मेरे पास नहीं है, सभा में भी वह अपूर्ण है, सम्भव है 'विकासात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करते समय आपने इन्दु में प्रकाशित सम्बन्धित सामग्री संकलित किया हो, तो वह मुझे अनायास उपलब्ध हो सकती है, और किसी रचना के छूट जाने की आशंका फिर न रहेगी। आशा है आपका उत्तर एवं अन्य सुझाव शीघ्र मिलेंगें। सधन्यवाद

आपका
३ सितम्बर १९७५ — रत्नशंकर प्रसाद

११९. शोभनाथ लाल, बलिया

[शोभनाथ लाल जी सन्त साहित्य के विद्वान हैं और बलिया पालि-टेक्नीक में अध्यापक थे। अपरिचित।]

१७०.

शोभनाथ लाल, — टाउन पालीटेक्नीक
एम० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी, राजनीति) — बलिया
बी० एड० (गोल्ड मेडलिस्ट), प्रवक्ता। — दिनांक १६-१०-७५

मान्यवर,

नमस्कार।

एक शोध के सम्बन्ध में यह पत्र आपको इस आशय से लिख रहा हूँ कि उत्तर अवश्य देंगे।

प्रसिद्ध अघोरी सन्त किनाराम के वैष्णव एवं प्रथम दीक्षागुरु बाबा शिवाराम थे। शिवाराम जी ने 'मानस' की रचना शैली में एक उत्कृष्ट काव्य की रचना सं० १७८०-१८०३ वि० में की जिसकी अनेक हस्तलिखित कैथी प्रतियाँ मुझे मिली हैं। कृति और कृतिकार दोनों ही मेरे शोध के विषय हैं।

कृतिकार के जीवन वृत्त को लेकर मैं बिल्कुल अंधकार में पड़ा हूँ। गड़ा मुर्दा उखाड़ कर पहचानने जैसा कार्य मेरे सम्मुख आ उपस्थित हुआ है। उनकी जीवनी के संबंध में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। जन्म और मृत्यु तक की तिथियाँ अज्ञात हैं।

संभवतः 'सरोज सर्वेक्षण' के दौरान आपकी दृष्टि उधर गई हो। आपके 'शिव सिंह सरोज' में क्या इस कवि को स्थान मिला है? उनकी जीवनी अथवा स्रोत के विषय में आप द्वारा मार्ग-दर्शन की अपेक्षा रखता हूँ। इस संबंध में आप जो भी सूचनाएँ दे सकेंगे, वह हमारे लिए निश्चय ही मूल्यवान होंगी।

दो पंक्तियों का उत्तर देने की अवश्य कृपा करेंगे।

भवदीय
शोभनाथ लाल

१२०. श्री रमेश चन्द्र दुबे

[श्री रमेश चन्द्र दुबे साहित्य प्रेमी सरकारी अधिकारी थे। १९७५ में यह उप सचिव श्रम विभाग उत्तर प्रदेश थे। अपरिचित।]

१७१

४३ राजभवन कालोनी
लखनऊ
दिनांक १७ नवंबर १९७५

श्री आर० सी० दुबे
उप सचिव श्रमविभाग

आदरणीय डा० साहेब,

सादर प्रणाम।

१. आचार्य पद्म सिंह शर्मा, व्यक्ति और साहित्य स्मृति ग्रंथ में आपका विद्वत्तापूर्ण लेख 'विहारी सतसई के सम्पादन की परम्परा' छपा था। मुंशी देवी प्रसादजी 'प्रीतम' का बिहारी सतसई का उर्दू पद्यानुवाद 'गुलदस्तए बिहारी' संवत् १९८१ में साहित्य सेवा सदन काशी से प्रकाशित हुआ था।
२. आपने लिखा है कि इसकी एक प्रति आपके पास है।
३. हम लोग इस प्रति को देखने के बड़े इच्छुक हैं क्योंकि मुंशीजी का अनुवाद बहुत ही सरल और सरस शैली में हुआ है। हमारे एक आदरणीय आई० ए० एस० अधिकारी को बहुत सारे शेर इस अनुवाद के जुबानी याद हैं और वे चाहते हैं कि आपकी प्रति अगर यहाँ उपलब्ध हो जाए, तो उससे नकल करके एक प्रति अपने पास रख लें।

४. मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि अनुवाद की यह प्रति मेरे पास पूर्ण सुरक्षित रहेगी और इसकी नकल करके शीघ्र से शीघ्र आपके अनुवाद की प्रति आपको वापस करेंगे।

५. कृपा होगी यदि आप इसे इस पत्र के पाते ही रजिस्ट्री डाक से मेरे पते से भेज दें। मेरे मित्र श्री डा० विष्णुदत्त 'राकेश' ने मुझे आपका वह पत्र दिया था, जिसके साथ आपने उपरोक्त लेख ग्रंथ के लिए भेजा था। संभवतः बाबू वृन्दावनदासजी से आपकी भेंट मथुरा में हो चुकी है। कभी लखनऊ आना हो तो अवश्य दर्शन दें।

पत्र-उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी।

आपका
रमेश चंद्र दुबे

डा० किशोरी लाल गुप्त
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
आचार्य हिंदू डिग्री कालेज
जमानियाँ-गाजीपुर

१२१. लालसिंह बावेल, जबलपुर

[लालसिंह बावेल से डा० गुप्त की एक ही मुलाकात हुई थी—साहित्य सम्मेलन के विशेष अधिवेशन दिसम्बर १९७५ में। छद्म नामों से लिखने वालों का एक कोश यह बना रहे थे। कुछ पता नहीं, वह बना कि नहीं।]

१७२

लालसिंह बावेल
१ टी० एच० वी० सरस्वती बिहार
जबलपुर (म० प्र०) ४८२००।
दिनांक १७-१२-७५

आदरणीय डा० गुप्त जी,
सादर प्रणाम।

१. सम्मेलन के विशेष अधिवेशन में आपके दर्शन कर लाभान्वित हुआ था।

२. कुछ क्षण आपसे वातचीत हुई थी और स्नेह प्राप्त किया था। अब जाने कब भेंट होगी।

३. मान सिंह मोरी का लेख देखने की बात हुई थी। श्री सोमानी की चित्तौड़ नामक पुस्तक की चर्चा मैंने की थी। यहाँ आकर पुस्तक देखी। परन्तु वह लेख श्री सोमानीजी को भी नहीं मिला। उनका कथन है कि उक्त शिलालेख कर्नल टाड को मिला था। उसका अंग्रेजी अनुवाद अनाल्स आफ राजस्थान के प्रथम खण्ड में दिया है। यदि अंग्रेजी अनुवाद से आपका काम चल सके तो बताइएगा। उसकी नकल भेज दूंगा। अभिलेखों की अन्य पुस्तकों को भी

देखता रहूँगा इस बीच । यदि मूल अभिलेख मिल जायगा तो उसकी प्रतिलिपि कर लूंगा ।

४. 'कल्पित नामांकित हिन्दी वाङ्मय कोश' का कार्य चल रहा है। अब तक जो कुछ हो चुका हैं, उसके आधार पर प्रथम खण्ड प्रकाशन कराने का विचार है ।

५. 'हरिऔघ' पत्रिका के वे अंक प्रदान करने की कपा करें। यदि अंक भेजना संभव नहीं हो तो कल्पित नाम वाली प्रकाशित रचना का विवरण प्रदान करें। विवरण इस प्रकार हो :—

रचना का नाम, विधा का नाम, लेखकीय नाम जैसा रचना पर छपा, पत्रिका का नाम, पत्रिका का वर्ष या खण्ड, अंक संख्या, अंक का दिनांक, माह वर्ष, पृष्ठ से पृष्ठ जिन पर रचना है ।

६. आपकी जानकारी में अन्य लेखकों के कल्पित नामों से अवगत कराने की कृपा करें।

आपके सानंद होने की कामना के साथ

कृपाकांक्षी

लालसिंह बावेल

१७–१२

१२२. डा० किशोरीलाल, नैनी इलाहाबाद

[डा० किशोरी लाल ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। यह पहले रणजीत सीताराम पंडित इण्टर कालेज नैनी में हिन्दी के प्रवक्ता थे। अब वे इलाहाबाद विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं। डा० गुप्त के विशिष्ट मित्र ।]

१७३/१

Dr. Kishori lal
M.A. D. Phil (Alld.)

Lecturer
Shri R.P,I. College
Naini (Allahabad)
Dated 16-2-1976

आदरणीय डा० साहब,

सादर नमस्कार ।

सानंद हूँ । आशा है आप भी सानंद होंगे। आपका कृपापत्र मुझे यथासमय मिल गया। 'कोश' के संबंध में आपके सुझाव अभिनंदनीय हैं। आप शब्द के अर्थ अथवा निरुक्ति विषयक जो भी आधार एवं तर्क पुष्ट सम्मति देंगे, उन्हें साभार ग्रहण

करूँगा। इधर पूज्य पं० विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र के पुत्र के विवाह का निमन्त्रण मिला था, पर इस समय मैं किंचित अस्वस्थ था, इस कारण इच्छा होते हुए भी न जा सका। पुनः मुझ जैसे रोगी के लिए उज्जैन की यात्रा अधिक लाभकर न होती। कालिदास हजारा के प्रकाशन के संबंध में मैंने स्मृति प्रकाशन प्रयाग से बात की थी। उन्होंने कहा कि पांडुलिपि भेजने पर ही अन्तिम निर्णय किया जा सकता है। वैसे मेरी संस्तुति के आधार पर वे उक्त ग्रन्थ को मुद्रित करने की स्थिति में हैं। आप शीघ्र ही निम्नलिखित पते पर 'हजारा' की पाण्डुलिपि भेज दें और इसके साथ ही एक पत्र द्वारा मुझे भी सूचित कर दें—

स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद

अभी अभी मैंने आपके द्वारा संपादित सरोज की प्रति सम्मेलन से खरीदी है। उसे अध्ययन करते समय मुझे देवकृत—'आसपास पुहुमी....' प्रतीक वाला छंद चन्द कवि के खाते पर चढ़ा हुआ मिला। शायद आपका भी ध्यान इसपर नहीं गया। उक्त छंद में चंद कवि का नाम न होकर स्पष्टतया चन्द्र के अर्थ में गृहीत हुआ है। यह छंद आपके सरोज के पृष्ठ १५२ पर चढ़ा है। मुझे यह छंद देव के शब्द रसायन ग्रन्थ के नवें प्रकाश के १०३ पृष्ठ पर मिला है। इसे देखकर ठीक से बतलाने की कृपा कीजिएगा।

मुझे यह जान कर परम प्रसन्नता है कि अवकाश ग्रहण करने के बाद अब आप प्रकृत साहित्य साधना में संलग्न होने जा रहे हैं। भगवान् से विनय है कि आप इसी प्रकार साहित्य-साधना में निरन्तर रत रहकर प्राचीन साहित्य की श्रीवृद्धि में सहायक बनें। अभी हिन्दी जगत को आप से बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। पुनः आप तो काम करने वाले हैं, विज्ञापन के चाकचिक्य में भ्रमित होने वाले नहीं। पूज्य पंडितजी के व्यक्तित्व की पूरी छाप आप पर पड़ी है।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में— आपका

किशोरी लाल

१७४/२ १९-३-७६

आदरणीय बन्धुवर डॉ० गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

आपका कृपापत्र मुझे यथा समय मिल गया था। इधर कुछ अस्वस्थ था, इस कारण उत्तर विलंब से दे रहा हूँ। 'हजारा' की प्रेस कापी आप तैयार कर रहे हैं, इसे जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि ऐसे अमूल्य ग्रंथ को मुद्रित रूप में देखने की मुझे बड़ी लालसा है। आपके साहित्यिक कार्यों की गतिविध को जानकर मुझे बहुत ही संतोष है। कभी-कभी आप की ऐसी निष्ठा और कार्य-क्षमता से मैं चकित रह जाता

हूँ। भगवान् आपको सुस्वस्थ रखे, जिससे आप प्राचीन एवं नवीन साहित्य के सृजन में उत्तरोत्तर क्रिया शील रहें।

मेरे घर का पता १६० नैनी बाजार इलाहाबाद है। नैनी स्टेशन के पास मेरा नाम लेकर किसी से पूछ लेने पर आप आसानी से मुझे पा जाएँगे। हाँ, पूर्व सूचना रहने से मैं घर पर ही रहूँगा। अन्यथा कहीं चले जाने पर आपको लौटना पड़ेगा। आप जब कभी आयें, एक पत्र अवश्य डाल दें अथवा प्रकाशक के घर से फोन से कालेज-समय पर सूचित कर दें।

हजारा की प्रेस-कापी कब तक तैयार कर लेंगे और डिमाई साइज में अनुमानतः कितने फर्मों की पुस्तक होगी, इसकी भी चर्चा पत्रोत्तर में कीजिएगा।

पाठ-संपादन-विधि पर आपने जो ग्रन्थ लिखने का विचार किया है, वह बड़ा ही उत्तम एवं महत्प्रयास होगा। इस विषय पर दो तीन निकली अवश्य हैं, पर उससे पूरा समाधान नहीं हो पाता। पूज्य पण्डितजी भी लिखना चाहते थे, पर अब ऐसी जर्जरावस्था में वे बिचारे क्या करेंगे।

सूर के ग्रीवारंध्र के संबंध में एक लम्बा लेख हिन्दुस्तानी अकेडमी पत्रिका के लिए लिखा है, मुद्रित होने पर भेजूंगा। यह शब्द पचास वर्षों की समस्या बना पड़ा हुआ था, पर अब जाकर कुछ निष्कर्षों पर पहुँचना पड़ा है। आचार्य प्रवर 'ग्रीवारंध्र' को झिल्ली ही मानते रहे। मैंने प्रयाग आने पर उनसे कह दिया था कि अब उसका अर्थ चातक पक्षी होगा, झिल्ली नामक बरसाती कीड़ा नहीं। उनका अंतिम निर्णय अभी नहीं मिला है, पर उन्हें निर्णय देना पड़ेगा क्योंकि प्रसंगादि से चातक अर्थ की पुष्टि ढंग से कर दी है।

पूज्य पंडित जी के शिष्यों में मैं आप को अधिक कर्मठ एवं प्रतिभाशील देखता हूँ और आशा यही होने लगी है कि निकट भविष्य में आप आचार्य मिश्र जी के कीर्ति-स्तम्भ एवं उनकी परम्परा को अक्षुण्ण करने में पूर्ण समर्थ होंगे।

दर्शनाभिलाषी

किशोरी लाल

प्राध्यापक श्री रणजीत पंडित इण्टर कालेज

नैनी, इलाहाबाद

१७५।३

१६० नैनी बाजार

इलाहाबाद

२५-२-१९७८

आदरणीय डॉ० साहब,

सादर नमस्कार।

आपकी तीनों पुस्तकें मुझे मिल गईं। इस कृपा और उदारता के लिए आपका

अतिशय आभारी हूँ। अपने विषय की पुस्तकों को पाने पर यों ही मुझे परम सुख मिलता है, परन्तु जब आत्मीय जनों द्वारा ऐसी पुस्तकें मिलती हैं, तो निश्चय ही अपेक्षाकृत अधिक सुख प्राप्त होता है। पुस्तकें पढ़ रहा हूँ। कल ही दोनों किताबें गिरिधर ग्रंथावली और सुजान शतक ले आया और बारह बजे रात तक उन्हें पढ़ता रहा। 'हजारा' पहले ही मिल चुका था। पढ़कर अपनी राय प्रकट करूँगा। मेरी भी एक साधारण सी पुस्तक 'घनानंद काव्य और आलोचना' साहित्य भवन से अभी छपी है। शीघ्र ही आपकी सेवा में भेजूंगा। आपकी सतत साधना, प्राचीन साहित्य के प्रति अटूट लगन और प्रेम देखकर मुझे लगता है कि आचार्य प्रवर की परम्परा अब निश्चय ही अक्षुण्ण रहेगी। पूज्य मिश्र जी जब आपकी पंक्ति में मुझ जैसे नगण्य व्यक्ति को बैठाने की चेष्टा करते हैं, तो अति लज्जा से झुक जाता हूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि 'भरत महा महिमा-जल-रासी' के समक्ष मेरी स्थिति 'मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी' ही है। भगवान आपको निरन्तर साहित्य-साधना की प्रेरणा देते रहें, यही विनय है। शेष कुशल है।

किशोरी लाल

१७६।४

१६० नैनी बाजार
इलाहाबाद
७ फरवरी ८३

बन्धुवर डा० गुप्त जी,

सादर बन्दे।

सानन्द हूँ। आशा है आप भी स्वस्थ एवं सानन्द होंगे। इधर मैं बिहारी काव्य अनुशीलन कर रहा हूँ। और उसी सिलसिले में मुझे मुंशी देवी प्रसाद प्रीतम की 'गुलदस्तर विहारी' पुस्तक की आवश्यकता पड़ गई है। आते समय उसे लेते आइएगा और कमला सिंह को दे दीजिएगा। उनसे वह निरापद मिल जाएगी।

भवदीय

किशोरी लाल

१७७।५

१६० नैनी बाजार, इलाहाबाद

आदरणीय डा० गुप्तजी, सादर वंदे। २३–१२–८५

सम्मेलन में एक दिन आपको साहित्य विभाग की ओर जाते देखा, पर पांडुलिपि विभाग से मेरे आते-आते आप सचमुच गुप्त हो गए। मैंने श्रीवास्तव जी के यहाँ भी तत्काल खोज की, पर आप न मिल सके। मुझे श्रीवास्तव जी के यहाँ से आपके द्वारा दी गई पुस्तक मिल गई। मैं आपको उस दिन विद्वन्मोद-तरंगिणी के

कुछ संदिग्ध पाठों और अर्थ समस्याओं के सम्बन्ध में कष्ट देना चाहता था, क्योंकि मेरा सम्पादन विषयक कार्य अब समाप्त प्राय है । भूमिकादि लेखन कार्य भी पूरा हो चुका है । संदिग्ध पाठों और 'अभिधान' का कार्य शेष है, पूरा करने में लगा हूँ । मैं चाहता हूँ कि मुद्रणार्थ पांडुलिपि को सौंपने के पूर्व आपसे कुछ विमर्श कर लूं । देखें, कब दर्शन होता है । शेष कृपा है ।

भवदीय

किशोरी लाल

१२३. श्री कृष्ण पाठक

[काशी के हनुमान फाटक पर स्थित बाल हनुमान मन्दिर से संबद्ध । उक्त हनुमानजी की स्थापना गोसाइँ तुलसीदास ने की थी ।]

१७८

।। श्री हनुमते नमः ।।

श्री हनुमान मंदिर

(गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा संस्थापित
बालरूप श्री हनुमानजी का मंदिर)

हनुमान फाटक, वाराणसी–१

सम्मान्य महोदय — दिनांक ३१–१२–७४

सप्रेम नमस्कार ।

आपकी सेवा में कुछ पंक्तियाँ लिखते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है ।

वाराणसी के उत्तरांचल में स्थित मुहल्ला हनुमान फाटक को महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी की काव्य-साधना-स्थली के रूप में गौरवान्वित होने का श्रेय प्राप्त है । काशी के इस मुहल्ले (हनुमान फाटक) में उन्होंने बाल रूप श्री हनुमान जी की मूर्ति की स्थापना की है । गोस्वामी जी का निवास-स्थल होने के कारण यह मंदिर साहित्य प्रेमियों के लिए तीर्थ-स्थल बन गया है ।

उल्लेखनीय है कि वाराणसी के इस मुहल्ले (हनुमान फाटक) में गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनेक वर्षों तक स्थायी रूप से निवास करते हुए काव्याराधना की है ।

आशा है आपकी सद्भावना हम लोगों पर सदैव बनी रहेगी ।

भवदीय

श्री कृष्ण पाठक

पुनश्च—सेवा में अगहन सुदी ७, संवत् २०३१ को प्रकाशित 'स्मरणिका' की दो प्रतियाँ अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ । अपनी सम्मति भेजना मत भूलिएगा ।

१२४. श्याम नारायण मिश्र, वाराणसी

[यह काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक विश्रुत पं० केशव प्रसाद मिश्र के भतीजे हैं ।]

१७९।१

३१ मार्च १९७५
वाराणसी

परमादरणीय डा० साहब जी,

सादर प्रणाम ।

मैं स्वर्गीय आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष काशी हिन्दू विश्व विद्यालय का भतीजा हूँ । आचार्यजी के बिखरे निबन्धों को संकलित कर प्रकाशित करा देने की प्रबल अभिलाषा से प्रेरित होकर मैंने उनके द्वारा लिखे गए कई एक निबन्धों एवं संस्मरणों को एकत्रित कर लिया है । 'प्रसाद-चिन्तन' नामक निबन्ध संग्रह जिसमें केशवजी के सहित अन्य विभिन्न विज्ञ आचार्य प्रवरों के निबन्ध हैं, जो आपके द्वारा संकलित हैं, उसकी एक प्रति मैं चाहता हूँ । साथ ही समय-समय पर आपके आशीर्वाद की अपेक्षा करता हूँ । आचार्य जी के विषय में यदि आप विशेष रूप से कुछ बता सकें, तो अवश्य आशीर्वाद दें ।

आपके आशीर्वाद का आकांक्षी
श्यामनारायण मिश्र
भदैनी वाराणसी

१८०/२

२४-४-७५
वाराणसी

परमादरणीय डॉ० साहब,

सादर नमस्कार ।

आपका आशीर्वाद पत्र पाकर अतीव प्रसन्नता मिली । 'कर्ता प्रसाद' की प्रतिलिपि भी मिल गयी । मेरे पास चाचाजी के जो लेख हैं, उनकी सूची इसी पत्र में है । उन्होंने कुछ और भी कविताएँ लिखी हैं, जैसे, 'दरिद्र विद्यार्थी', 'शिवा जी का उत्तर' ये इन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं । इनकी एक और कविता जिसका शीर्षक 'सुदामा' है, १९१३ के पश्चात् 'मर्यादा' में प्रकाशित हुई है । वह अभी तक नहीं मिल सकी है । मालवीय जी और म० म० शिवकुमार शास्त्री पर लिखे संस्मरण भी अनुपलब्ध ही हैं ।

फिर भी जो मेरे पास हैं, उन्हें मैं यथाशीघ्र प्रकाशित करा देना चाहता हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें।

आप चाचाजी पर अवश्य कुछ लिखें—मुझे बहुत खुशी होगी—समय-समय पर आप मुझे आशीर्वाद एवं प्रेरणा दें, जो मेरा मार्ग-दर्शन करे। अभी मुझे कुछ संकोच होता है, वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो ही जायेगा। अतः घबराहटवश कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं, आप मुझे छोटा भाई समझ क्षमा करेंगे।

विशेष क्या लिखूं—आपके आशीर्वाद से 'कर्ता प्रसाद' की प्रतिलिपि मिल गई। मैं तो इसके लिए बहुत परेशान था।

यदि आप बनारस आवें, तो मेरे यहाँ अवश्य ही आयेंगे।

बी० एन० मिश्र जी जो आचार्य पद्म नारायणजी के दामाद हैं, मेरे जीजा जी हैं। उनके यहाँ आने पर भी मैं आपके दर्शन कर सकूंगा या जैसा आप कहें।

शनिवार को आपका पत्र मिल गया था। संभव हो सकेगा, तो यथाशीघ्र आपके दर्शन करने आऊँगा।

आपका ही
श्यामनारायण मिश्र
बी २/२३१ भदैनी, वाराणसी

केशव जी का साहित्य

लेख—१. उच्चारण, २. प्रश्न चिह्न, ३. मानस के सिद्धान्त, साधन और साध्य, ४. मधुमती भूमिका, ५. मधुमती भूमिका और रसास्वाद, ६. कर्ता प्रसाद, ७. द्विवेदी जी का आचार्यत्व ८. शुक्लजी की स्मृति में, ९. व्यवहार द्वारा भाषा-शिक्षा, १०. क्या संस्कृत नाते में ग्रीक और लैटिन की बहिन है? ११. आदर्श और यथार्थ (भूमिका, पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव) १२. शब्द और अर्थ (आमुख-काव्यालोक), १३. कविता क्या है, (परिचय, शान्तिप्रिय द्विवेदी की भूमिका), १४. कालिदास की सच्चरित्रता—इत्यादि

कविता—१. दुर्भिक्ष, २. जाड़ा और निर्धन, ३. वर्षा और निर्धन, ४. एम० ए० बी० ए० के सपूत और हिन्दी, ५. दुराग्रह, ६. प्रार्थना, ७. भूरे और सूखे पेड़ की दो दो बातें। इत्यादि

१२५. रामपाल पाण्डेय, कलकत्ता

[रामपाल पाण्डेय जौनपुर जिले के निवासी हैं। यह खालसा हाई स्कूल

कलकत्ता में हिन्दी के अध्यापक थे। वाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी के संबद्ध में यह एक बार जमानियाँ आकर डॉ० गुप्त से मिले थे और बाद में उक्त आश्रम में गए भी थे।]

१८१

ओ३म् हरिः

खालसा हाई स्कूल
कलकत्ता
१०-४-७५

आदरणीय गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

मैं यहाँ पर कुशल पूर्वक रहते हुए आपकी कुशलता के लिए परमात्मा से प्रार्थी हूँ। आपको पत्र देने में देर हुई, इस त्रुटि के लिए क्षमा कीजिएगा।

मेरा स्कूल ८ मई से गर्मी की छुट्टी के लिए बन्द होने वाला है। मैं गर्मी की छुट्टियों में बद्रीनाथ की तीर्थयात्रा करने का इरादा रखता हूँ। मेरे बड़े भाई तथा आस पास के कुछ और लोग भी जाने वाले हैं। अतः आजकल बद्रीनाथ तथा हिमालय सम्बन्धी साहित्य पढ़ने की चेष्टा कर रहा हूँ, इसीलिए वाल्मीकि आश्रम सम्बन्धी कार्यों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका।

मैंने कुछ अध्यापकों से, जो बनारस जिले के ही रहने वाले हैं, वाल्मीकि आश्रम के सम्बन्ध में भी कई बार बात चीत की है। वे लोग भी इस सम्बन्ध में अपनी एक विचार गोष्ठी करने की बात सोच रहे हैं। यदि कोई उपयोगी कार्य इस सम्बन्ध में किया गया, तो आपको सूचित करूँगा।

पत्र-व्यवहार के मध्य मैंने सरस्वती के सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी से इस वाल्मीकि आश्रम की वास्तविकता के सम्बन्ध में चर्चा की थी। उनका मत यह है कि "मैं तो विठूर के पास वाले आश्रम को ही सीता वनवास का स्थान मानता हूँ।"

ऐसा वे क्यों मानते हैं, इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई प्रमाण या तर्क प्रस्तुत नहीं किया है।

आपने वाल्मीकि आश्रम के सम्बन्ध में तथ्यान्वेषण करने के लिए मिर्जापुर तथा तमसा नदी के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों का भ्रमण करने का विचार व्यक्त किया था। इस सम्बन्ध में आप वहाँ कब जाना चाहते हैं? कौन कौन से सज्जन और साथ में जाने का विचार रखते हैं। यह सब लिखने का कष्ट उठाइएगा। ग्रीष्मावकाश आपके यहाँ कब तक रहेगा और आप गर्मी में कहाँ रहने का इरादा कर रहे हैं, यह भी लिखें। ऐसा इसलिए लिख रहा हूँ कि बनारस आने पर शायद आप से मुलाकात करने का अवसर मिल जाय।

आपके सादगी पूर्ण जीवन तथा साहित्यिक कार्यों को देखकर मुझे विशेष प्रेरणा मिली है। आपकी पुस्तकों का संग्रह देखकर भी मुझे प्रसन्तना हुई।

आशा है कि त्रुटियों को क्षमा करेंगे और मेरे योग्य कोई सेवा हो तो लिखेंगे।

आज्ञाकारी
रामपाल पाण्डेय

१२६. मधुकर भट्ट

[मधुकर भट्ट प्रसिद्ध निबन्ध लेखक पं० बाल कष्ण भट्ट के पौत्र हैं। इन्होंने भट्ट जी पर अच्छा शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किया हैं। १९७६ में यह ज्ञानपुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय में प्राध्यापक थे।]

१८२

काशी नरेश स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, वाराणसी (उ० प्र०)
दिनांक १०-१-१९७६

सेवा में—
डा० किशोरी लाल गुप्त
प्रधानाचार्य, डिग्री कालेज,
जमानियाँ, गाजीपुर।

आदरणीय महोदय,

हमारे महाविद्यालय का रजत जयन्ती समारोह दिनांक १९ फरवरी को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम डा० एम० चेन्ना रेड्डी की अध्यक्षता में आयोजित है। उक्त तिथि को महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'मनीषा' का भव्य रजत-जयन्ती स्मारिका विशेषांक प्रकाशित कर राज्यपाल महोदय को समर्पित किया जायगा। 'मनीषा' के उक्त विशेषांक हेतु आपसे निम्नांकित विषय पर एक लेख भेजने की मैं प्रार्थना करता हूँ। विश्वास है आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए अपना लेख दिनांक २० जनवरी ७६ तक अवश्य भेजने की कृपा करेंगे। समयाभाव के कारण मैं आपको अधिक समय न दे सका, आशा है क्षमा करेंगे। पत्रिका २० जनवरी तक प्रेस में छपने चली जायगी। अतः आपसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपना लेख भेजने की कृपा करें। लेख के साथ कृपया अपना हस्ताक्षरित एक चित्र भी भेजने का कष्ट करें। आभारी रहूँगा।

विषय—ज्ञानपुर अंचल का
सांस्कृतिक स्थल : सीतामढ़ी

निवेदक
मधुकर भट्ट
सम्पादक—मनीषा

१२७. गुरुभक्त सिंह 'भक्त', आजमगढ़

[नूरजहाँ और विक्रमादित्य महाकाव्यों के प्रणेता भक्त जी डा० गुप्त के विशिष्ट मित्र थे। इनके ८४ पत्र गुप्त जी के पास हैं। गुप्त जी ने इनकी जन्मभूमि जमानियाँ में इनको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया था।]

१८३।१

आजमगढ़
४-३-१९७७

प्रिय गुप्त जी,

आशीर्वाद।

होली, मदनोत्सव, नव वर्ष की बधाई व शुभ कामनाएँ। भगवान करे हम लोग नये सम्वत् में रामराज्य अभिषेक देखें। भारतीय संस्कृति, मान्यताएँ, पुरातन धर्म, नवीनतम उपलब्धियों के पुनरुत्थान सुख इसी जन्म में देख लें।

आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला। ऐसा लगा कि एक कल्पवासी सन्त के पूर्ण माघ स्नान पुण्य फल का थोड़ा प्रसाद मुझे भी मिल गया। ऐसे महात्मा के दर्शन की लालसा उमड़ पड़ी, विशेषतः आपके शोधपूर्ण खोज की पुस्तकों का आप द्वारा किए गए पद्य रचना के सुनने की।

मेरे सम्बन्ध में आपकी महान् क्रांति विविध सम्मतियों का संकलन भव्य रूप में प्रयाग के बसन्त के पावन पर्व पर प्रकाशित हो गया। उसके लिए हार्दिक बधाई। इस कुसुमांजलि के लिए अनेक आशीष।

चिरंजीव रवीन्द्र जब उसे काशी से छपा रहे थे, उस समय उसकी एक प्रूफ कापी मेरे पास भी भेज दिया करते थे। अंग्रेजी पद्य का अंश जब निकल रहा था, तब वे उसे मुझे दिखाने के लिए तथा संशोधन के लिए यहाँ आए, तब बाकी शेष प्रूफ भी दे गए थे, बिना जिल्द बँधी हुई। पहली बार मुझे उन्हें पढ़ने का अवसर मिला। ऐसी अमर सम्मतियाँ ही काफी हैं किसी भी कवि को अमर बना देने के लिए। फिर आप ऐसे अग्रणी सन्त साहित्य के शोधकर्वा, हिन्दी साहित्य के संशोधक आचार्य के अग्रलेख के साथ। जब कभी आप इधर पधारें, एक सजिल्द प्रति अपने हाथों से मुझे भेंट करने की कृपा करें। भगवान ने चाहा तो मुझे विश्वास है आपके साथ में उसकी १०० प्रतियाँ यहाँ बिकवा दूंगा।

'रबिन्ने' आजकल हैं कहाँ? उसको मैंने तीन चिट्ठियाँ बनारस के घर के पते से भेजीं, परन्तु एक का भी उत्तर नहीं आया। मैं अच्छा हूँ। मेरी विनय यही है—

मैं जलता रहा और चलता रहा हूँ,
गिरा चाहता, कोई आकर सँभाले।
ये मोती भरे श्याम अंचल में कोई,
विकल सूर्य-सा, रात बन कर छिपा ले।

× × ×

मैं काम जलाकर भी शिव-सा, रति की आँखों से बच न सका।
मैं विश्वामित्र बना तो सही, निज मन की दुनियाँ रच न सका॥
मै सृष्टि-स्रोत की लहरी बन, नवजीवन में आया फिर-फिर।
होकर विलीन निज तत्त्वों में, हरि में विलीन हो सका न गिर॥
सारा अनंत ब्रह्माण्ड पिंड, जिसकी इच्छा पर नाच रहा।
निज चिरंजीव को 'ध्रुव' कर दे, है भक्त यही वर माग रहा॥

यही सूत्र है मेरे जीवन सार का। आप भी भगवान् से मेरे लिए यही प्रार्थना करें। अतः भगवान् के साथ जन्म ले लेकर उनकी लीला देखने का, मोक्ष ले शून्य बन जाने का नहीं।

लट्टू सा लगे नाचने हम, उसकी माया बंधन से छुट
'निर्वाण', नहीं उसमें कुछ सुख, चक्कर में घिर जाने भी दो।

सबको यथा योग्य

भक्त

गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

१८४।२

ॐ

आजमगढ़

४-९-१९७८

प्रिय गुप्त जी, आशीर्वाद।

यहाँ कुशल है, आप भी सदा की भाँति मस्त चुस्त रहकर जीवनचर्य्या के विविध कार्यक्रमों में रत होंगे।

इधर आपका कोई समाचार नहीं मिला। आपकी प्रकाशित पुस्तकों का बंडल अभी तक मेरे यहाँ ही सुरक्षित पड़ा है। शिबली कालेज से न कोई लेने आया और न सुधि लेने। अच्छा होता यदि आप डा० रामपति राय जी को इस हेतु याद देहानी कर देते। यदि कभी इधर आना हो तो कृपया आत्मकथा की पाण्डुलिपि भी लेते आने का कष्ट कीजिएगा।

आपकी किताबें प्रयाग में किस-किस प्रेस में छपी हैं, कृपया उसका पूरा पता और व्यवस्थापक व मालिक का नाम भी लिख भेजिएगा।

जैसे 'जानि सरद ऋतु खंजन आए' शुभ ऋतु आगमन बताता है, वैसे ही कविवर नाम प्रसाद सत्संगी यहाँ आकर हर साल (बारह) १२ वर्ष से मेरी जन्म-गाँठ पर बधाई देकर पुष्पमाल पहनाते थे। इस साल वे असम में हैं, अपने पुत्र के यहाँ, फिर भी उस महापुरुष ने वहाँ से जो स्नेहपूर्ण बधाई भेजी है, उसकी प्रतिलिपि आपको भी भेज रहा हूँ मनोरंजन हेतु और सच्ची मित्रता के प्रतीक स्वरूप—

भाद्र कृष्ण द्वितीया (भा० कृ० २ संवत् २०३५)

छियासिवें वर्ष लगने पर

साहित्य-वारिधि **महाकवि गुरुभक्त सिंह भक्त को बधाई**

भक्त किया तुमने कल अपने पूरे वर्ष पचासी
मंगलमय होवे सुखप्रद यह नूतन वर्ष छियासी
वार्धक्य को हवा बताओ, बूढ़े रसिक सलोने
शत शरदों तक कीर्ति तुम्हारी व्याप्त रहे हर कोने
अमर काव्य की रचना करके, तुम हो गये अमर हो
रचना मधु गुंजरित तुम्हारी, व्यापक मधुर भ्रमर हो
वर देकर के मातु शारदा, तुमको नहीं अघाती
वीणापाणि देखकर तुमको, हैं अतिशय सुख पाती
दूर पड़ा हूँ कैसे आकर, तुमको तिलक लगाऊँ
वर्ष-गाँठ पर अग्रज की, मैं क्यों कर आशिष पाऊँ
आज विवश हो स्तवन तुम्हारा, लिखकर प्रेषित करता
डाक समय से अभिलाषा है पुष्प चरण पर धरता
मंगलमय यह वर्प गाँठ हो, तुमको भक्त मुबारक
सुख समृद्धि की वर्षा कर दे, बना रहे सुख कारक
यही कामना है मनोज की, शत वर्षों तक जीवो
काव्य सूत्रिका के माध्यम से, फटे हृदय नित सीओ

मनोज गाजीपुरी

नाम प्रसाद सत्संगी मनोज
मार्फत
श्री वी० एल० श्रीवास्तव
फाइनैन्सियल एडवाइजर एवं चीफ एकाउन्ट्स आफिसर
असम खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड
चाँदभारी, गौहाटी—३ असम : पिन : ७८१००३

१२८. सूर्य प्रकाश अग्निहोत्री, रामपुर

[अपरिचित]

१८५

सूर्य प्रकाश अग्निहोत्री,
रिसर्च स्कालर
राजकीय रजा महाविद्यालय
रामपुर (उ० प्र०)

संपर्क–द्वारा श्री जैन कुमार जैन
मस्जिद कैत, रामपुर (उ० प्र०)
दिनांक ६ मार्च ७७

आदरणीय डा० साहब जी,

सादर प्रणाम।

मैंने वीर सतसइयों को रुहेलखंड विश्वविद्यालय से अपना शोध विषय बनाया है, किन्तु दो वीर सतसइयां जो अप्रकाशित हैं, उनका अभी तक पता नहीं मिल पाया है। दोनों हो राजस्थान से संबंधित विद्वानों द्वारा विरचित हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. वीर सतसई—श्री मोड़ जी महारिया
२. वीर सतसई—श्री नाथूराम महारिया

उक्त कृतियों के विषय में यदि आपको कोई जानकारी हो, तो हमें अवगत करा दें अथवा कोई अन्य संपर्क हो, जिससे हमें लाभ की आशा हो, सूचित करने की कृपा करें।

आशीषाकांक्षी
सूर्य प्रकाश अग्निहोत्री

१२९. देवेन्द्र व्यास, सोरों

[के० ए० कालिज कासगंज में हिन्दी के प्राध्यापक। अपरिचित।]

१८६

प्रो० देवेन्द्र व्यास
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
क्रमांक

फोन : पी० पी० ५१
के० ए० कालिज कासगंज
दिनांक १८–३–१९७७

प्रतिष्ठेय डॉक्टर सा०,

सादराभिवादन।

मैं इस महाविद्यालय में हिन्दी विभाग में पिछले ५ वर्षों से कार्य रत हूँ। पिछले वर्ष ही श्री वार्ष्णेय जी के निर्देशन में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा 'हिन्दी साहित्य में सुदामा चरित की परंपरा' शीर्षक से मेरे शोध का पंजीयन हुआ है। यह पत्र शोध-विषय को लेकर ही आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अपने अन्वेषण के मध्य मैंने आपके ग्रंथ 'सरोज सर्वेक्षण' के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त किया। ग्रंथ में शोध विषयक सामग्री की प्राप्ति के लिए आपके प्रति आभारी हूँ। आपने ग्रंथ के पृ० २३६ पर कवि गिरधारी लाल त्रिपाठी का उल्लेख किया है, जिनकी ६ रचनाओं में एक रचना है सुदामा चरित्र। उक्त सुदामा चरित्र कहाँ से उपलब्ध हो सकता है तथा क्या आप डाक द्वारा इससे संबंधित सामग्री उपलब्ध करा सकते हैं। मैं निवेदन तो यही करता हूं कि आप डाक द्वारा उपलब्ध कराने की कृपा करें, फिर जैसी आपकी इच्छा।

इसके अतिरिक्त आप जैसे सुधी विद्वान के पास मेरे विषय से संबंद्ध अन्य सामग्री भी होगी तथा इस सामग्री से सम्पन्न अन्य विद्वज्जनों के बारे में भी आपको ज्ञान होगा। कृपापूर्वक यह सारी सूचना व सामग्री मुझे अपना अनुगत मानते हुए उचित निर्देश के साथ सुलभ कराने की अनुकंपा करें। आजन्म आभारी रहूँगा।

शेष शुभ।

भवदीय
देवेन्द्र व्यास
व्यास आवास
सोरों (एटा)

१८७

एटा जनपद के कवि
(हिन्दी साहित्य परिषद)

फोन : ५१
व्यास आवास, सोरों एटा

संपादक
प्रो० देवेन्द्र व्यास
हिन्दी विभाग

कोठीवाल अढ़तिया महाविद्यालय
कासगंज (एटा) उ० प्र०

पत्रांक..............

दिनांक....... ....

प्रतिष्ठा में,

डॉ० सा० सादराभिवादन।

आपका कृपापत्र मिला। मैंने जिन कवि गिरधारी लाल त्रिपाठी के विषय में आपसे जानकारी चाही, उनका उल्लेख आपने ग्रंथ के पृष्ठ २३६ पर किया है। उसका उल्लेख आपके पत्र में दिए गये संदर्भों से पुष्ट होता है और प्राप्त हो सकता है।

मुझे खोज के मध्य गिरिधारी लाल द्विवेदी सातनपुर जिला राय बरेली (वैसवारा) के एक अन्य कवि का पता लगा है, जो सुदामा चरित्र के लेखक थे। इनके विषय में कोई संदर्भ नहीं दिया गया। अतः मैं यह पता नहीं कर सका हूं कि दोनों गिरधारी लाल एक हैं या भिन्न। आपकी सूचनानुसार गिरधारी लाल त्रिपाठी

भक्त हृदय थे, जब कि गिरधारी लाल द्विवेदी ने अपने रीति ग्रंथों के साथ एक सुदामा चरित्र की भी रचना की। ऐसी स्थिति में समुचित निर्देश देकर शंका का निवारण करें।

प्रतिष्ठा में–
श्रीयुत डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त
सुघवै, वाराणसी

भवदीय
देवेन्द्र व्यास

उत्तरित
२०–८–७७

१३० डा० रामजी मिश्र, दिल्ली

[डा० राम जी मिश्र आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शिष्य हैं। उन्होंने आचार्य मिश्र को अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया था। यह दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी कालेज में प्राध्यापक (हिन्दी) हैं।]

१८८/१

१६४४ सोहन गंज, सब्जी मंडी
दिल्ली
२३-३-७७

आदरणीय डाक्टर साहब,
सादर नमस्कार।

लज्जित हूँ कि देर से पत्र लिख रहा हूँ। मुझे 'गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश' (सं० भाई कान्ह सिंह, पटियाला, १९७० ई०) में 'गिरधर' के अन्तर्गत निम्न छंद मिला—

साईं गिरिधर गिरि धर्‌यौ, गिरिधर कह सब कोय
हनूमान गिरिवर धर्‌यौ, गिरिधर कहै न कोय
गिरिधर कहै न कोय, हनू द्रोणा गिरि ल्यायो
ताते कनका गिर्‌यौ, सोउ लै कृषन उठायो
कह मिरिधर कविराय, बड़िन को यही बड़ाई
थोरे हूँ जस होत, बड़े पुरखन को साईं

पृ० ३०६

दूसरी कुण्डलियाँ प्रसिद्ध है—बिना विचारे जो करै.......।

'कुण्डलिया' के अन्तर्गत देखा। वहाँ तीन कुण्डलियाँ दिया गया है, जो कि गुरु ग्रंथ साहब से उद्धृत है।

कृपया आप लिखें कि किस शीर्षक के अन्तर्गत उक्त गिरिधर की कुण्डलियाँ संग्रहीत हैं। आपने १२२१ पृष्ठ संख्या दी है, पर उस ग्रंथ में ७०० से अधिक पृष्ठ हैं ही नहीं। कृपया ठीक सन्दर्भ देकर लिखें तो मैं पुनः प्रयास करूँ।

आशा है आपको काशी से अभिनन्दन ग्रंथ की प्रति मिल गयी होगी। डा० कन्हैया सिंह जी ने तो आदेश दिया, पर अन्यत्र से कोई आदेश अभी नहीं प्राप्त हुआ।

आपके कार्य में विलम्ब के कारण लज्जित हूँ।

भवदीय
रामजी मिश्र

१८९।२

१६४४ सोहनगंज, सब्जीमंडी
दिल्ली
३०-३-७७

आदरणीय डाक्टर साहब,

सादर नमस्कार।

भाई कान्ह सिंह के कोश में संकलित होने के कारण पं० चन्द्र कांत बाली ने अपने ग्रंथ में ३१६ पृष्ठ पर गिरिधर कविराय को पंजाबी का कवि कहा है। कोश में तो कालिदास और शेख सादी का भी विवरण है। गिरिधर कविराय और गिरधारी लाल दो कवियों का उल्लेख कोश में है।

"गिरधारी लाल—आगरा निवासी एक कवि, जो पर्याप्त समय तक कलगीधर स्वामी (दशम गुरू) के दरबार में हाजिर रहा। उसके द्वारा रचित 'पिंगल सार अखण्ड' उत्तम छन्द ग्रन्थ है।"

"गिरिधर (३) गिरिधर कविराय, जो ईसवी उन्नीसवीं सदी में हुआ है। इसका असल नाम हरिदास था। यह उदासीन साधु बहुत विरक्त और विद्वान था। गिरधर के कुण्डलिए बहुत मनोहर हैं।"

उद्धरण महान कोश का है। छंद पहले लिख भेजे हैं, आशा है इससे आपको सिद्ध हो जाएगा कि गिरिधर को पंजाबी का कवि नहीं माना गया है।

आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न है। योग्य सेवा लिखेंगे।

भवदीय
रामजी मिश्र

१९०।३

प्रेम पुस्तक भंडार
१६४४ सोहनगंज
सब्जीमंडी, दिल्ली
१८–३–७८

आदरणीय डा० साहब,

सादर नमस्कार।

आपके द्वारा संपादित और विद्वत्तापूर्ण विस्तृत भूमिका समन्वित गिरधर कविराय ग्रंथावली' प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आप गुरुवर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के सुयोग्य शिष्य सिद्ध हुए। आपकी उपलब्धियों को देखकर गर्व होता है।

गर्व इस बात पर भी कि आप हमसे बय और ज्ञान में भी इतने वृद्ध होते हुए भी हमें अपना अनुज मानते हैं। ईश्वर आपकी यह सद्इच्छा पूरी करे, मैं सचमुच आपका अनुजत्व प्राप्त करूँ।

आचार्य मिश्र अभिनन्दन ग्रंथ को फुटकल बेचने पर डाक खर्च इतना आ गया कि ४०० प्रतियाँ निकल गयी किन्तु प्राप्ति की संभावना कुल १०००० रुपया ही है। संभावना इसलिए कि कुछ महानुभावों ने १½ साल हो जाने पर भी अभी बिल का भुगतान नहीं किया है। ८००० रु० चुकाया गया है, शेष ५००० रु० मूल और २००० रु० सूद के भुगतान के लिए अभिन्दन ग्रंथ के भक्ति रीति संदर्भ को फिर से बाइंड कराकर 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य' के नाम से ३० रु० में बेचने का विचार है। इसके सम्पादक डा० स्नातक ही होंगे। गुरुवर को यह प्रस्ताव लिखते हुए संकोच हो रहा था, किन्तु उन्होंने आज्ञा दे दी है।

आपने जिन सज्जनों का पता दिया था उनमें से सिर्फ डी० ए० वी० कालेज और हरिऔध कला केन्द्र ने पुस्तकें लीं। खैर, मेरे लिए इतनी ही काफी है, जब कि बड़े-बड़े मठाधीशों ने जो संपादक-मंडल में हैं, किताबें मँगाकर चुप साध गए, पत्र का उत्तर तक नहीं देते।

आप इस अवस्था में भी अनवरत सारस्वत-साधना में लगे हैं, जबकि मुझसे कुछ नहीं हो पा रहा है, न लोक ही सधता है, न परलोक। (साहित्य साधना तो परोक्ष रूप से परलोक साधना ही है।)

मैं आपके लिए क्या कर पाया, लेकिन आपने अपनी पुस्तक में मेरा नामोल्लेख किया है, जिसे पढ़कर मन में बड़ा संकोच होता है। यह आपकी उदारता है।

कोई भी मेरे योग्य सेवा हो, तो निःसंकोच लिखियेगा।

आपका स्नेहाधीन

रामजी मिश्र

पुनश्च—

आपकी पुस्तक की साज-सज्जा और प्रूफ की त्रुटि-हीनता से आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई। रात देर तक भूमिका और छंद पढ़ता रहा। गिरधर की इन कुण्डलियों से विद्यार्थी वर्ग विशेष लाभान्वित होगा। और प्राचीन साहित्य के रसिकों को संतोष प्राप्त होगा। इस कार्य को पूरा करके आपने स्तुत्य कार्य किया है। ईश्वर आपको शक्ति दे और नीरोग रखे।

१३१. डा० केशरी नारायण शुक्ल, लखनऊ

[डा० केशरी नारायण शुक्ल पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में थे, फिर गोरखपुर एवं लखनऊ विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए।]

१९१।१

9 Way Road
Lucknow
24–3–77

प्रिय गुप्त जो,

आशा है आप सानन्द होंगे। एक दो बार काशी आने पर आपके बारे में जानना चाहा, किन्तु भेंट न हो सकी। विश्वनाथ प्रसाद जी से भी मैंने इस सम्बन्ध में चर्चा की। उन्होंने कृपा करके आपको मेरे बारे में सूचना दे दी। फलतः मुझे आपका पत्र मिल सका। इसके लिए आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे लेखन का विषय है—

"हिन्दी में साहित्य के इतिहास-लेखन का क्रमिक विकास"

इस सम्बन्ध में आप जो भी सहायता और सुझाव दे सकें, उसके लिए अनुगृहीत हूँगा। यदि आपका डी० लिट्० का शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो, तो कृपया प्रकाशन का पता मुझे लिख दें।

इस सम्बन्ध में आप कोई गन्थ-सूची बता सकें तो मुझे विशेष सहायता मिलेगी। आपका गाँव सुघवै वाराणसी में कहाँ है। क्या बनारस से वहाँ मोटर जाती है। यदि कभी काशी आऊँ तो आपसे मिल लूँ।

आपका पी-एच० डी० का प्रबंध कहाँ से प्रकाशित हुआ है ? शेष कुशल।

आपका
केशरी नारायण शुक्ल

१९२/२

9 Way Road
Lucknow
23–5–81

प्रिय गुप्त जी,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' की बहुत आवश्यकता है। आप द्वारा दिए गए पते पर मैं प्रकाशक को लिख रहा हूँ कि यह पुस्तक मुझे V. P. P. भेज दे। मेरा हवाला देते हुए एक पत्र अपने प्रकाशक को लिख दें। शेष कुशल।

आपका
केशरी नारायण शुक्ल

१३२. सरस्वती कुमार दीपक, बम्बई

[बम्बई जाने पर डा० गुप्त की इनसे भेंट स्वागत-समारोह में हुई थी। अपरिचित]

१९३

Telephone { 263484
264824

Uttar Bhartiya Sanskritik Sangh
1/3 Gola lane Dadabhoy Naoroji Road
Bombay–1

Ref. No 4/77 Date-30-3-77

श्री किशोरी लाल जी गुप्त
ग्रा० पो०—सुधवै
जिला—वाराणसी

मान्यवर महोदय,

उत्तर भारतीय सांस्कृतिक संघ शिवाजी जयन्ती १ मई १९७७ के अवसर पर महाकवि भूषण से सम्बन्धित कार्यक्रम आयोजित करने पर विचार कर रहा है। इस अवसर पर हम कवि भूषण के वंशज को (जो इस समय मौजूद है) आमन्त्रित करना चाहते हैं। कवि भूषण के विषय में आपने शोव-प्रबंध लिखा है। कृपया हमें निम्न लिखित जानकारी से अवगत करायें।

१. कवि भूषण का जन्म स्थान
२. उनके माता-पिता
३. शिक्षा
४. उनके वंशज जो इस समय मौजूद हैं। उनका पता ?
५. आपके द्वारा लिखित शोध प्रबंध का मूल्य।

कार्यक्रम के आयोजन में समय बहुत ही कम रह गया है। कृपया इस पत्र को बहुत ही अर्जेंट समझकर शीघ्र उत्तर देने का कष्ट करें।

हम आपके अत्यन्त आभारी रहेंगे।

भवदीय
सरस्वती कुमार दीपक
मन्त्री

१३३. हीरामणि मिश्र, टिहरी (गढ़वाल)

[अपरिचित]

१९४.

प्रेषक
हीरामणि मिश्र
रा० प्रताप कालेज
टिहरी

श्रद्धेय डा० साहब,

सादर अभिनन्दन ।

आपके वैदुष्य की कीर्ति से आकृष्ट होकर एक अनुसंधित्सु के नाते मैं अपने विषय से सम्बन्धित दो तीन बातों को आपसे पूछ कर कृतार्थ होना चाह रहा हूँ । आशा है कि अतिशय व्यस्त होने पर भी आप अवश्य इंगित करेंगे । प्रष्टव्य बातें ये हैं—

१. 'चन्द्रगुप्त' नाटक लिखने की प्रेरणा प्रसाद जी को कहाँ से मिली होगी ?

२. इतिहास से अधिक इस प्रकरण में वे 'मुद्रा राक्षस' से भी प्रभावित हो सकते थे ।

३. 'चन्द्रगुप्त' की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में यदि कोई आधुनिक संदर्भ ग्रंथ आप बता दें, तो बड़ी ही कृपा होती ।

४. उपर्युक्त ऐतिहासिक ग्रंथ से सम्बन्धित शोधकार्य में क्या मैं आपको गढ़वाल विश्व विद्यालय श्रीनगर के External guide के रूप में प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूं, क्योंकि वि० वि० आप जैसे सिद्ध लोगों को स्वीकार करके कृतार्थ ही होगा ।

पत्रोत्तर पाकर अनुगृहीत होने की आशा

हीरामणि मिश्र

प्राप्त

२०–४–७७

१३४. पं० सीताराम चतुर्वेदी, वाराणसी

[पं० सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ आचार्य हैं । इन्होंने डा० गुप्त को १९४३-४४ में टीचर्स ट्रेनिंग कालेज काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में पढ़ाया था । तुलसी ग्रंथावली और सूर ग्रंथावली (दोनों विक्रम परिषद काशी) में डा० गुप्त भी चतुर्वेदी जी के सहयोगी थे । चतुर्वेदी जी अब वेदपाठी भवन मुजफ्फरनगर में रहते हैं, काशी में नहीं ।]

१९५/१

॥ श्री ॥

उत्तर बेनिया बाग

प्रियवर किशोरी लाल शास्त्री, काशी २४–५–७७

सस्नेह आशीर्वाद ।

कुम्भ के बाद से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिल रहा है । बजरंगबली भी उत्कट प्रतीक्षा कर रहे थे । एक दिन श्री रामाचार्य मिल गए थे । उनसे भी मैंने समाचार कहलवाया था ।

तुमने सूर सागर की टीका का पर्यवेक्षण करने का दायित्व स्वयं ग्रहण किया है। उसका निर्वाण करके तत्काल सूचना दो।

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

सस्नेह
सीताराम चतुर्वेदी

१९६/२

सीताराम चतुर्वेदी ॥ श्री ॥ फोन : ६५७१८

[न दैन्यं न पलायनम्] ६३/४३ उत्तर बेनियावाग
काशी १-३-७८

प्रियवर डा० किशोरी लाल शास्त्री,

सस्नेह आशीर्वाद।

गिरिधर कविराय की भूमिका पढ़ गया। 'साइं' तो स्वामी का अपभ्रंश है और पंजाब में तथा सिंध में सामान्य सम्बोधन में 'आओ साइं, अच्चो साइं' कह कर किसी भी अतिथि का स्वागत किया जाता है। न तो यह गोस्वामी से जुड़ा हुआ है, न फकीरों से, न गिरिधर की पत्नी से। डा० राकेश, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार ने गिरिधर कविराय के सम्बन्ध में बहुत खोज की है और बहुत से नये पद खोज निकाले हैं। एक सज्जन तो गाजियाबाद के हैं, जो इसी का जुनून लिए हुए हैं। उन्होंने माता पिता आदि सबका पता लगा लिया है। आशा है प्रसन्न होगे।

सस्नेह
सीताराम चतुर्वेदी

क्या हुआ सीतामढ़ी के कार्यक्रम का ?

१९७/३

॥ श्री ॥

उत्तर बेनिया बाग
वाराणसी-२२१००१
२१-२-७९

प्रिय किशोरी लाल शास्त्री,

सस्नेह आशीर्वाद।

सूर ग्रंथावली का पंचम खंड छप रहा है। सूर पर प्रकाशित साहित्य की सूची भेजो।

आशा है प्रसन्न होगे।

सस्नेह
सीताराम चतुर्वेदी

१९८/४

मंगलायन मुद्रक ००० वेदपाठी भवन
पंचमुखी महादेव मार्ग
मुजफ्फरनगर
२०-३-७९

प्रियवर किशोरी लाल शास्त्री,

सस्नेह आशीर्वाद ।

तुम्हारा १४-३-७९ का लाल पत्र खुले लिफाफे में पाकर आश्चर्य हुआ कि इतने दिनों तक महाविद्यालय का प्राचार्यत्व करने का अनुभव होने पर भी खुले लिफाफे में पत्र भेज रहे हो ।

चि० रवीन्द्र गुप्त यदि २६ मार्च के पश्चात काशी में मुझे मिलें, तो सूर ग्रन्थावली का चतुर्थ खंड उन्हें दे दिया जायगा ।

सूर-साहित्य-सूची का कार्य पूरा कर दिया होगा । यदि हो गया हो तो अच्छा होता । बहुत से विश्वविद्यालयों में सूर पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गये हैं । यदि उनकी सूची भी संलग्न की जा सके, तो सूची की उपयोगिता और भी बढ़ जायेगी ।

यह बड़ा अच्छा किया कि सपरिवार रामेश्वरम् और कन्याकुमारी के दर्शन कर आए हो । अब जगन्नाथपुरी ओर द्वारकापुरी भी घूम आओ । बदरी केदार की यात्रा तो बहुत ही सरल हो गई है, जहाँ बदरी केदार से अधिक हिमालय की विभुता दर्शनीय और अभिनंदनीय है ।

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होगे ।

तुम्हारा लिफाफा तुम्हें ही सौप रहा हूँ ।

सस्नेह

सीताराम चतुर्वेदी

१९९/५

॥ श्रीः ॥

वेदपाठी भवन
मुजफ्फरनगर—२
२६-९-८१

प्रियवर किशोरी लाल शास्त्री,

सस्नेह आशीर्वाद ।

१८-९-८१ का पत्र मिला । तुम्हारा मोठ से भेजा हुआ वह पत्र ८ दिन में मिल रहा है । इसलिए उत्तर सुधवै के पते पर लिख रहा हूँ । यह जानकर प्रसन्नता हुई कि छाया तुलसी को भी तुम सजीव कर रहे हो । मुझे विश्वास है तुम्हारे इस सत्प्रयास से तुलसी की एक और गुत्थी सुलझ जाएगी । यह हर्ष की बात है कि तुम्हारा यह साहित्येतिहास-मंथन-क्रम यथापूर्व चल रहा है । किन्तु यह नहीं समझ में आया कि झाँसी के मोठ में कहाँ जा फँसे थे ।

वाल्मीकि आश्रम का क्या हाल है ? मंदिर निर्माण योजना का क्या हुआ ?

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होगे ।

सस्नेह

सीताराम चतुर्वेदी

२००/६

: श्री : वेदपाठी-भवन

मुजफ्फर नगर-२५१००२

प्रियवर किशोरी लाल शास्त्री, २८-७-८४

सस्नेह आशीर्वाद

तुम्हारा नया तुलसी का बिरवा मिला, जिसमें तुलसी ही तुलसी लदे हुए हैं। यह कार्य बहुत ही महत्व का हुआ है। सब तुलसी एक साथ मिल जाते हैं।

मैं ३ अगस्त को तुलसी-जयन्ती के प्रसंग में प्रयाग जा रहा हूँ। मुझे विश्वास है तुमसे भेंट हो जायगी।

आशा है सपरिवार स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

सस्नेह

सीताराम चतुर्वेदी

२०१।७

: श्री : वेदपाठी-भवन

मुजफ्फर नगर २५१००२

प्रियवर किशोरीलाल शास्त्री, ७-२-८५

सस्नेह आशीर्वाद।

पत्र मिला। सूर संबंधी नवीन दृष्टि का विवरण मिला।

१. सूर सारावली और साहित्य लहरी के रचयिता सूरदास का कुछ अता पता मिला है या नहीं? क्योंकि सूर सारावली के कुछ पद सूर सागर के सभी प्राप्त हस्त-लिखित ग्रंथों में मिलते हैं जैसे —

चरन कमल बंदौं हरि राई
या
वंदौ श्री हरि पद सुखदाई

उसके पश्चात का अंश ज्यों का त्यों सर्वत्र है।

२. सूर श्याम के पदों को देखो, तो 'सूर' शब्द कवि के लिए और 'श्याम' कृष्ण के लिए है।

३. सूरदास नवीन का क्या पता ठिकाना भी लगा है?

४. सूरदास नवीन के सूर सागर और महाकवि सूरदास के सूरसागर के पदों की कोई नवीन पहचान मिली क्या?

यदि प्रामाणिक सूत्र उपलब्ध हुए हों तो बहुत बड़ी बात है, क्योंकि सूरसागर के जितने पाठ मुझे मिले हैं, उनमें बहुत से ऐसे हैं, जो एक में हैं, दूसरे में नहीं, किन्तु उलट पलट कर किसी न किसी में अवश्य है।

प्रकाशन ही व्यस्था हो जायेगो। आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

सस्नेह
सीताराम चतुर्वेदी

२०२।८

॥ श्री ॥

वेदपाठी-भवन
मुजफ्फर नगर–२५१००२
३–३–८५

प्रियवर डा० किशोरी लाल शास्त्री,
सस्नेह आशीर्वाद।

सूर संबंधी साधना स्तुत्य हैं। सूर, सूरदास, सूरजदास, सूरदास नवीन केअतिरिक्त सूर स्वामी के भी कुछ पद हैं। सूरदास जी को उनके संप्रदाय वाले सूर स्वामी ही कहा करते थे। इस विषय पर भी विचार कर लेना। एक सूरदास मदनमोहन भी हैं।

रामायण मेले में अवश्य जाना। मैं भी जाने वाला था, किन्तु मुझे सहसा अहमदाबाद बंबई जाना पड़ रहा है। वास्तव में लीलात्मक सूर सागर (दशम स्कंध लीला वाला) ही सच्चा सूर सागर है। स्कंधात्मक तो तुकबंदी है, किन्तु नवम स्कंध में राम कथा वाला अंश तो सूरदास का ही है। इसी प्रकार विनय के पद भी सूरदास के ही हैं।

सूर ग्रंथावली के पुनर्मुद्रण की बात चल रही है। यदि निश्चय हुआ तो उसे प्रेस प्रेतों से बचाने का काम तुम्हें करना पड़ेगा, जैसा कि प्रयाग में वचन दे चुके हो? आशा है स्वस्थ और सपरिवार प्रसन्न होंगे।

सस्नेह
सीताराम चतुर्वेदी

अब तुम्हारा पत्र पढ़ने के लिए तुम्हें ही बुलाया जाया करेगा, क्योंकि ऐसे ब्रह्माक्षर में लिखते हो कि पूर्वापर बैठाकर शब्द का अभिज्ञान हो पाता है।

२०३।९

॥ श्री ॥

वेदपाठी-भवन
मुजफ्फर नगर २५१००२
२०–९–८५

प्रियवर डा० किशोरी लाल शास्त्री,
सस्नेह आशीर्वाद।

पत्र मिला। नवल किशोर प्रेस वाला संस्करण प्राप्त होने की सूचना मिली।

डा० अशोक कुमार, डाइरेक्टर महाराजा सवाई मानसिंह (द्वितीय) म्यूजियम ट्रस्ट, सिटी पैलेस जयपुर द्वारा श्री गोपाल नारायण बहुरा द्वारा संपादित 'पद सूरदास जी का' : दि पदाज ऑफ सुरदास प्रकाशित हुआ है। इसके ४३१ पदों में सूरदास के केवल २३९ पद हैं। यह १६३९ में संकलित किये गये हैं। इनका विवरण साथ के पत्र से मिल जायगा।

सूरदास के साथ झमेला यह है कि उन्होंने तो कुछ लिखा नहीं, संग्रहकर्ता कोई भी रहा हो, वह कभी प्रामाणिक नहीं हो सकता; और फिर किसी संग्रहकर्ता ने यह कहीं नहीं लिखा कि मैंने सूरदास जी के पास बैठकर या उनके किसी परम्परागत शिष्य के पास बैठकर लिखा है। हाँ, हवेलियों में जहाँ विट्ठलनाथ जी ने अपने पुत्रों के विग्रह स्थापित कराए हैं, वहाँ जो पद गाये जाते हैं, वे परम्परागत गाये जाने के कारण कुछ प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त लिखित पाठ जितने भी हैं सब अविश्वस्त हैं।

मैं इस पत्र के साथ 'लोक शिक्षक' का वह पृष्ठ भेज रहा हूँ जिसमें 'सूरदास के पद' की समीक्षा प्रकाशित हुई है, यदि चाहो तो प्रकाशक या संपादक से पत्र व्यवहार कर सकते हो। ३७२ पृष्ठों के इस संकलन का मूल्य भले आदमियों ने २००) रक्खा है।

आशा है प्रसन्न होगे।

सस्नेह

सीताराम चतुर्वेदी

१३५. कुसुम अग्रवाल, मुजफ्फनगर

[अपरिचिता]

२०४

२८ द्वारिकापुरी
मुजफ्फरनगर
(१९७७ ई०)

परम श्रद्धेय पिताजी,

सादर नमस्कार।

आज दो वर्ष उपरांत आपको पुनः पत्र लिख रही हूँ। आपकी प्रेरणा एवं शुभाशीष से मैंने २८ फरवरी १९७७ को अपना शोध प्रबंध 'सेनापति और उनका काव्य' Submit कर दिया था। उसकी Report समुचित रूप से आ गई है। मेरे Guide श्रद्धेय डा० ए० पी० वाजपेयी जी का Accident हो जाने के कारण अभी Viva में १ माह संभवतया लगेगा। आजकल मेरे पास कोई भी कार्य नहीं है।

आपका वरद हस्त मेरे ऊपर बना रहा, तो भावी जीवन में Employed बनाने का अवश्य प्रयत्न करिएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ७ वर्ष का Hindi Leet.

Inter classeis का अनुभव है। कुछ समय हुए किन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर मुझे त्यागपत्र देना पड़ा था। अब मुझे Service की आवश्यकता है तथा प्राप्ति में बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। यद्यपि आप मेरे वास्तविक जीवन से पूर्ण-तया अपरिचित ही हैं, यदि कभी आपके दर्शन प्राप्ति का अवसर मिला, तब उस समय मुझ पर आप दयार्द्र अवश्य होंगे, ऐसा मैं समझती हूँ। आपकी Side में भी यदि कोई Vacancy हो तो मेरे लिए प्रयास करियेगा। आगरा Kishori Raman Girls Degree College में हिन्दी प्रवक्ता की रिक्ति है। वहां की Principal मिसेज कुल श्रेष्ठ हैं। यदि आपका उनसे कोई परिचय हो तो देख लीजिएगा। आप भी सोचेंगे कि मेरे को परेशान ही कर दिया। परन्तु मुझे अन्य कोई मार्ग दिखलाई नहीं दिया। इसलिए पुनः एक बार आपको परेशानी में डाल रही हूँ। आशा है आप अपनी इस पागल बेटी को क्षमा करेंगे तथा कुछ मार्ग सुझायेंगे। पति तीन विषयों में M. A. एवं B. T. होते हुए भी C. T. grade में ११ वर्ष से कार्य कर रहे हैं, परन्तु प्रोन्नति के कोई Chance नजर नहीं आते। ऐसे में बड़ी असुविधा हो रही है।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में

आपकी बेटी
कुसुम अग्रवाल

१३६. शंभु नाथ आचार्य, फर्रूखाबाद

[१९७७ ई० में श्री शंभुनाथ आचार्य बद्री विशाल कालेज फर्रूखाबाद में प्राध्यापक थे। अपरिचित।

२०५।१

प्रो० शंभुनाथ आचार्य
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
अध्यक्ष : वागीश्वरी परिषद
तथा
भारतीय संस्कृति संस्थान
सचिव : संस्कृत विकास परिषद

दूरभाष : १९१
बद्री विशाल कालेज
फर्रूखाबाद
दिनांक ३१।१०।७७

सेवा में—
डा० किशोरी लाल गुप्त
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
प्राचार्य।
हिन्दू डिग्री कालेज
जमानियाँ, गाजीपुर

श्रद्धेय डा० साहब,

नमस्कार।

दिनांक २।१२।७७ का लिखा आपका पत्र मुझको अभी प्राप्त हुआ। आपकी सहृदयता ने मुझको आकृष्ट किया है। बड़े दिन की छुट्टी का उपयोग मैं २१ से २५ दिनांक तक ही कर सकता हूं, क्योंकि साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं का अपने यहां केन्द्र व्यवस्थापक होने से २५ दिसम्बर से प्रारम्भ होने वाली परीक्षाओं की व्यवस्था के लिए मुझको यहाँ रहना अनिवार्य है। अतः इस बीच में आप 'प्रेम पत्र' का 'रस-कलश' विशेषांक तथा अन्य ब्रजभाषा काव्य (हरिऔध का) मुझको सम्मेलन कार्यालय प्रयाग में सुलभ कराने में किसी कष्ट का अनुभव न करें, तो कृपया मुझको सूचित करने का कष्ट करें, ताकि मैं २१ तारीख को या जैसा आप लिखें, आपके पास आ सकूं।

यदि सम्मेलन में आपके निकट ठहरने का प्रबन्ध हो सके, तो भी लिखने का कष्ट करें। अन्यथा सम्मेलन की निकटस्थ किसी धर्मशाला का परिचय लिख दें, ताकि नए स्थान पर कष्ट से बच सकूं। साथ ही अपने ग्राम तक पहुँचने का मार्ग भी लिख देने का कष्ट करें।

उत्तर की प्रतीक्षा में

भवदनुग्रहार्थी

शंभु नाथ आचार्य

पुनश्च—एक पत्र सम्मेलन के पते पर भी भेजा है।

१३७. त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु', बाराबकी

[मधु जी सुकवि हैं। बाराबंकी जिला अस्पताल परिसर में रहते हैं। डा० गुप्त के स्नेही मित्र हैं। डा० गुप्त ने एक बार इनके यहाँ बाराबंकी में आतिथ्य भी ग्रहण किया है।]

२०७।१

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु' दिनांक १४-११-७७

बाराबंकी (उ० प्र०)

परम श्रद्धेय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम।

(१) रावण का विक्षोभ

(२) मधुपुरी

(३) श्री शत्रुघ्न

रजि० पार्सल के माध्यम से समर्पित कर रहा हूं। स्वीकारें। प्राप्ति-सूचना तथा अपनी प्रतिक्रिया अवश्य भेजें। विश्वास है इन काव्यों को आप पढ़ेंगे अवश्य।

आपका

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

२०८।२

राकेश शर्मा　　　　　　　　　　　　　　　　　　　दिनांक १२--१०--७८
राकेश प्रकाशन
बाराबंकी (उ० प्र०)

परम श्रद्धेय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम ।

होलपुर (बाराबंकी) निवासी स्व० लछिराम के दो ग्रंथों की चर्चा आपके सरोज सर्वेक्षण में भी है ।

इन ग्रंथों के बारे में इनके वंशज कुछ भी बताने में असमर्थ हैं ।

यह ग्रंथ कहां से देखने को मिल सकते हैं ? इसकी जानकारी हम आपसे चाहते हैं ।

आपके प्रकाशित हो रहे ग्रंथ प्रेस से बाहर आए या अभी नहीं । पढ़ने की लालसा हैं ।

अपनाएँ रहें । कृपा होगी ।

पत्र की प्रतीक्षा है ।

आपका

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

२०९।३

राकेश शर्मा　　　　　　　　　　　　　　　　　　　दिनांक ३०–१०–७८
राकेश प्रकाशन बाराबंकी (उ० प्र०)

परमश्रद्धेय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम ।

आपका १८-१०-७८ का पत्र मिला । जानकारी प्राप्त हुई । आभारी हूँ । होलपुर में अब कुछ नहीं है । प्रयत्न करके देखा ।

लछिराम जी से संबंधी खोज रिपोर्ट की प्रतिलिपि (पूरी) आप मेरे पास भेज दें । बड़ी कृपा होगी ।

गिरिधर कविराय ग्रंथावली, हजारा, सुजान शतक प्रकाशित हो गईं । मैं अब तक न पा सका ।

अमूल्य समूल्य जैसे भी हो, एक-एक प्रति मेरे लिए आप अवश्य भिजवाएँ । सुरक्षित डाक द्वारा ।

बेनी ग्रंथावली जब प्रकाश पा जाए, एक प्रति उसकी भी भेजिएगा ।

आप जब भी लखनऊ आएँ, मेरे यहाँ अवश्य आएँ । मैं सपरिवार उपकृत हो जाऊँगा ।

यदि इधर आप आए और मेरे यहाँ नहीं पहुँचे, मुझे किसी प्रकार ज्ञात हुआ, तो मैं दुखी अवश्य होऊँगा।

मैं जिला चिकित्सालय बाराबंकी में एक छोटा सा कर्मचारी हूँ। वहीं के परिसर में सरकारी क्वार्टर में रहता हूँ।

परिवार आपका ही है। उसमें आकर आप आनंदित होंगे, विश्वास है।

संप्रति गया (बिहार) निवासी पं० सोम मित्र शास्त्री के साथ मिलकर 'भूपति सतसई' को सर्व प्रथम टीका करने का कार्य कर रहा हूँ।

आपका
त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

सेवा में—
डा० किशोरी लाल गुप्त
सुधवै (वाराणसी)

२१०।४

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'
वाराबंकी (उ० प्र०)

दिनांक १-९-८२

परम श्रद्धेय डाक्टर साहब,
सादर प्रणाम

बेनी कवि असनी निवासी थे या किसी अन्य स्थान के।

वे भट्ट ब्राह्मण थे या बाजपेयी।

कुछ विवाद सामने आया। अस्तु आपसे समाधान चाहिए।

हम तो बेनी कवि को असनी निवासी भट्ट ही मानते रहे हैं।

आपका
त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

१३८. रामनरेश सिंह, कांथा उन्नाव

[अपरिचित]

२११

फोन : शाखा—४६६२३

विश्व नागरिक संस्थान, उत्तर प्रदेश
(सरकार द्वारा निर्बंधित)

रजि० प्रधान कार्यालय
ग्राम व पोस्ट—काँथा
जिला—उन्नाव

शाखा
१०४।१६४ सीसामऊ
कानपुर—१२
दिनांक ७ अप्रैल १९७८

आदरणीय गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

आजसे कई वर्ष पूर्व आपने 'शिव सिंह सरोज' पर अपना शोध-प्रबंध 'सरोज सर्वेक्षण' प्रस्तुत किया था। अभी हाल में आपका शोध ग्रंथ शिव सिंह सेंगर पुस्तकालय में देखने का सौभाग्य मिला। आप 'सरोज सर्वेक्षण' के पश्चात् स्व० सेंगर के विषय में हिन्दी साहित्य जगत में अपना योगदान नहीं दे सके।

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि श्री सेंगर के कृतित्व और व्यक्तित्व के विषय में मैंने आवाज उठानी शुरू की है तथा उस महान साहित्य सेवी के नाम को हिन्दी साहित्य जगत में एक बार फिर से उद्दीप्त कर देना चाहता हूँ। श्री सेंगर के कृतित्व की आवाज उठाने में मेरे सामने स्थानीय कठिनाइयां हैं। उस परिस्थिति में मैं आपका सहयोग और सहानुभूति चाहता हूँ।

मैं आपसे आशा करता हूं कि आप उस महान साहित्यकार तथा साहित्य सेवी का नाम हिन्दी जगत में फिर से उठाकर मेरे कार्य मैं मार्ग-दर्शन करेंगे। आपके सहयोग एवं सहानुभूति के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा। पत्र की प्रतीक्षा में आभार सहित।

भवदीय
रामनरेश सिंह
निदेशक
विश्व नागरिक संस्थान उ० प्र०
काँथा, उन्नाव

दिनांक ७ अप्रैल १९७८

१३९. रामजीदास कपूर, सीतापुर

[एक बार साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सत्यनारायण कुटीर में गुप्त जी से इनका रात भर सत्संग रहा। इन्होंने 'गंगाश्रम' नामक श्रेष्ठ काव्य रचा है। डा० गुप्त ने इसकी समीक्षा लिखी है।]

२१२

ज्ञान ध्यान प्रकाशन
लाल बाग सीतापुर
उत्तर प्रदेश
दिनांक १५-४-७८

आदरणीय डा० गुप्त जी,

सादर नमन।

१७, १८, १९ नवंबर १९७७ ई० को साहित्य सम्मेलन प्रयाग में आपके सानिध्य से धन्य हुआ था। उस समय आप अपनी पुस्तकों के प्रकाशन में व्यस्त थे।

दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो गई होगीं । कृपया दोनों पुस्तकों की एक-एक प्रति मुझे भी भेजने की व्यवस्था करा दें । मूल्य जो हो, जहाँ कहें मनीआर्डर द्वारा प्रेषित कर दूँ ।

उसी समय अपनी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'गंगाश्रम' की एक प्रति आपकी सेवा में अर्पित की थी । आशा है अब तक अपनी पैनी दृष्टि से उसका गहन अवलोकन कर लिया होगा । आपने उसपर एक विस्तृत लेख लिख देने का वचन दिया था, उसका स्मरण करा रहा हूँ । मैंने आपको इसी पुस्तक के संबंध में डा॰ व्रज लाल वर्मा सदस्य लोक सेवा आयोग उत्तर प्रदेश का एक लेख सम्मेलन की पत्रिका में प्रकाशनार्थ दिया था, पर जहाँ तक मेरी जानकारी है, वह लेख अभी तक सम्मेलन की पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ है । कृपया इस संबंध में भी प्रकाश डालने की अनुकंपा करें । इस संबंध में मैंने श्री दुबे जी को भी दो पत्र लिखे थे, पर खेद है कि उनके कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुए । पुराणों में गंगा त्रिपथगा कही गयी है । देवलोक में मंदाकिनी, भूमितल पर भागीरथी और पाताल में भोगवती नाम से अभिहित है । मंदाकिनी (सुर सरिता) और भागीरथी के संबंध में तो प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। पर भोगवती के संबंध में मेरी दृष्टि में पठनीय साहित्य नहीं आया है । आपकी दृष्टि में भोगवती के संबंध में यदि कुछ उपलब्ध हो, तो कृपया सूचित करें । मैं चाहता हूँ उसका भी अध्ययन करके कुछ इस संबंध में लिखने का प्रयास करूँ । वैसे मैंने थोड़ा सा इस संबंध में लिखा है । अब मैं यह विषय समाप्त करके कोई अन्य विषय लिखने के लिए ज्ञात करना चाहता हूँ । 'जानकी विजय' पर कुछ लिखने की सोच रहा हूँ । इस संबंध में कुछ ज्ञातव्य हो तो प्रेषित करने की कृपा करें ।

'गंगाश्रम' पर आपके लेख की अविकल प्रतीक्षा है । आशा है । स्वस्थ और सानंद होंगे ।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

कृपाकांक्षी

रामदास जी कपूर

१४०. चन्द्र कांत बाली, नई दिल्ली

[बाली जी इतिहास के विद्वान हैं । एतत्संबंधी इनके गंभीर शोधपूर्ण निबंध यदा कदा शोध पत्रिकाओं में मिल जाते है । इनका 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' अच्छा ग्रंथ है ।]

२१३.

१. ३. ७८

A–१० अमर कालोनी
लाजपत नगर, नई दिल्ली ११००२४

प्रिय मित्रवर किशोरी लाल जी गुप्त,

नमस्कार।

गत वर्ष आपके दो पत्र मिले थे! मैंने उनका उत्तर नहीं दिया था। उसका कारण बताना प्रासंगिक है। 'पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' छप जाने के पश्चात् मुझे उसकी तीव्र प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा। केवल एक बार डॉ० नगेन्द्र ने अलीगढ़ में परिषदीय अध्यक्ष पद से कुछ 'प्रेरणादायक' लिखा पढ़ा था। उसके अतिरिक्त सर्वत्र मुझे शून्य ही शून्य गोचर हुआ। मुझे उस रचना से वितृष्णा अतएव अरुचि हो गई। आपके पत्र मिलने पर यह आशंका बलवती हो उठी-'लो। एक और प्रहार होने वाला हैं। सच लिख दूँ—आपके पत्र पढ़कर भी नहीं पढ़े गए। इधर २५।३।७८ को प्रेषित आपकी रचना (गिरधर कविराय ग्रंथावली) दो दिन पश्चात् मिल गई थी। पुस्तक पढ़कर मुझे हैरानी हुई–"मेरी रचना की निष्पक्ष अतएव स्वस्थ आलोचना करने वाला भी कोई है ?" मैंने यह पुस्तक कतिपय मित्रों को भी दिखाई। उनकी भी यही राय थो–'खण्डन हो तो ऐसा हो, जिसमें कोई कटुता नहीं, स्वीकृति हो तो ऐसी हो, जिसमें कोई चापलूसी नहीं।' ये शब्द मेरे मित्रों के हैं। रचना पढ़कर ऐसा लगा–अगर ऐसो आलोचना का सामना पहले से हो जाता, तो मेरे हतोत्साह होने का अवकाश ही नहीं होता। आप देख नहीं रहे–१४ वर्ष बीत जाने पर भी पुस्तक का दूसरा भाग लिखने को जी नहीं करता।

यह सारी राम कहानी अब तक मन में छिपी पड़ी थी। आपकी 'आलोचना' उसे प्रकाश में ले आई है। मन कुछ हल्का हो गया है।

सूचनार्थ निवेदन है—जुलाई के किसी सप्ताह बनारस आने का विचार है। मैं नंद वंश पर अनुसंधान कर रहा हूँ। बनारस पहुँच कर सप्ताह भर रहूँगा। सूचित करूँगा।

आशा है आप स्वस्थ होंगे। कृपा भाव बना रहे।

श्रीमदीय

चन्द्र कान्त बाली

१४१. प्रभुदयाल मीतल, मथुरा

[मीतल जी सूर के विशेषज्ञ थे। सूर निर्णय, सूरसर्वस्त, अष्टछाय परिचय आदि आपके विशिष्ठ ग्रंथ हैं। सम्मेलन ने आपको साहित्य वाचस्पति और आगरा विश्व विद्यालय ने डी० लिट० की मानद उपाधि दी थी। डा० गुप्त मथुरा जाने पर इनसे अवश्य मिलते रहे हैं। मित्र।]

२१४।१

डैम्पियर नगर, मथुरा
ता० १६-५-७८

मान्यवर डॉ० गुप्त जी,

आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। आपकी बधाई एवं शुभ-कामनाओं के लिए में आपका अनुगृहीत हूं।

आपके जो नए ग्रंथ प्रयाग से प्रकाशित हुए हैं, उनके प्रकाशकों के नाम व पते लिखने की कृपा करें।

आप निरंतर साहित्य-साधना में रत हैं, इससे बड़ी प्रेरणा मिलती हैं। आपने हिन्दी साहित्य के लिए जितना और जैसा दिया है, उसकी तुलना मिलनी कठिन है। भगवान आपको दीर्घजीवी करे ताकि आपसे हिन्दी साहित्य की—अधिकाधिक समृद्धि हो सके। अब आप हनुमन्नाटक का संपादन कर रहे हैं, यह भी आवश्यक कार्य है। नाभाजी कृत 'भक्तमाल' के आलोचनात्मक संस्करण का क्या हुआ? मैं इन दिनों सूर संबंधी एक बृहत ग्रंथ के कार्य में लगा हुआ हूँ।

आपका

प्रभु दयाल मीतल

फोन : ६१५

२१५।२

बंदे ब्रज वसुन्धराम्

साहित्य संस्थान

ब्रज साहित्य के शोध संपादन और प्रकाशन की प्रमुख संस्था

अध्यक्ष

डा० प्रभुदयाल मीतल

डी० लिट्०, साहित्य वाचस्पति

डेम्पियर नगर
मथुरा (२८१००१)
२९।६।१९८२

प्रिय डा० गुप्त जी,

बहुत दिनों से आपका पत्र नहीं मिला। आशा हैं, आप सानन्द हैं।

श्री हरिहर निवास द्विवेदी कृत बहुचर्चित ग्रंथ 'मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी' और डा० शिव प्रसाद सिंह कृत 'सूर-पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य' आपने देखे होंगे। इनमें सूर पूर्व के एक कवि गोस्वामी विष्णु दास कृत महाभारत, रामायण, स्वर्गारोहण, रुक्मिणी मंगल और सनेह लीला ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। चूँकि यह कवि सूरदास का पूर्ववर्ती होने से उनके गेय काव्य का प्रेरणा-स्रोत माना गया है, अतः विष्णुदास के नाम को खूब उछाला गया। किन्तु बाद के अनुसंधान से निश्चय हुआ कि विष्णु दास कृत महाभारत, रामायण तो हैं, किन्तु रुक्मिणी मंगल और सनेह लीला नहीं हैं। रामायण-महाभारत दोनों कथा काव्य हैं, और वे दोहा, चौपाई छंदों में रचित

हैं, अंतः उनके सूरदास कृत गेय काव्य के प्रेरणा-स्रोत होने का प्रश्न नहीं उठता। 'रुक्मिणी मंगल' और संभवतः 'सनेह लीला' राग-रागिनी-बद्ध गेय काव्य हैं। यदि उनका रचयिता सूरदास का पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाता है, तब उसका बड़ा महत्व होगा। महाभारत का रचयिता विष्णुदास ग्वालियर के राजा डूँगरेन्द्र सिंह का आश्रित कवि और सूरदास का पूर्ववर्ती था। किन्तु 'रुक्मिणी मंगल' और 'सनेह लीला' के रचयिता विष्णुदास का कोई पता नहीं चल रहा है। डा० परमेश्वरी लाल गुप्त का कहना है कि उनमें से एक ग्रंथ का रचयिता कोई वृंदावन निवासी गो० विष्णुदास था। किन्तु वृंदावनी गोस्वामियों में भी किसी विष्णुदास की प्रसिद्धि नहीं है।

आप कवियों के जीवन-वृत का अनुसंधान करने में निष्णात हैं। कृपया बतलाने का कष्ट करें 'रुक्मिणी मंगल' और 'सनेह लीला' के रचयिता गो० विष्णुदास का जीवन-वृत और काल क्या हैं ? इन दोनों के रचयिता एक ही विष्णुदास हैं अथवा दो विभिन्न कालों के ? मुझे अपने शीघ्र प्रकाशित होने वाले 'सूर-सर्वस्व' में इसका संदर्भ देना है। अतः इसकी शीघ्र आवश्यकता है। आशा है आपका उत्तर शीघ्र प्राप्त होगा।

आपका

प्रभु दयाल मीतल

२।६।३

श्री कृष्ण

फोन : ६१५

प्रभुदयाल मीतल
साहित्य वाचस्पति
अध्यक्ष
साहित्य संस्थान

मीतल निवास, डेम्पियर नगर
मथुरा [२८१००१]
१८-७-८२

आवश्यक

मान्यवर गुप्त जी,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। उसमें आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर तत्परता और विस्तार के साथ दिया है, उसके लिए मैं आभारी हूँ।

आपने रुक्मिणी मंगल के रचयिता को महाप्रभु बल्लभाचार्य का शिष्य विष्णुदास छीपा बतलाया है। उनका नाम पहले से ही मेरे मन-मस्तिष्क में था, किन्तु उनके 'वृंदावनी' और 'गोसाइं' न होने से संदेह बना रहा, इसीलिए मैंने आपको लिखा था। आपने उनके 'वृंदावनी' न होने का जो स्पष्टीकरण दिया है उसे माना जा सकता है। किन्तु 'गोसाईं' शब्द को 'अविश्वसनीय' कहने मात्र से काम नहीं चलेगा ! बल्लभ-संप्रदाय में 'गोसाइं शब्द विट्ठल-नाथ जी के लिए प्रयुक्त होता हैं। उनके वंशज भी इसी नाम से जाने जाते हैं। किन्तु किसी अन्य व्यक्ति को 'गोसाइं' कदापि नहीं कहा जा सकता, फिर वार्ताकार उक्त विष्णुदास को स्पष्ट रूप से 'छीपा' लिखता है। ऐसी स्थिति में

उन्हें 'गोसाई. लिखे जाने का कोई स्पष्टीकरण होना चाहिए। फिर वल्लभ संप्रदाय में उन्हें कीर्तनकार और प्रकांड विद्वान माना जाता है। उनके पद कीर्तन संग्रहों में हैं। किन्तु कहीं भी उनके रचित 'रुक्मिणी मंगल' की चर्चा नहीं है। इसका समाधानात्मक उत्तर आप देने का कष्ट करें।

'सनेह लीला' का रचयिता आपने गोस्वामी हरिराय (रसिक राय) को बतलाया है। उनका रचा हुआ 'सनेह लीला' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, किंतु क्या वह विष्णुदास कृत सनेह लीला से अभिन्न हैं ? क्या आपने दोनों का मिलान किया हैं ?

गोस्वामी हरिरायजी के कई उपनाम मिलते हैं, उनमें एक रसिक राय भी है। किन्तु 'विष्णुदास' उनका कोई उपनाम नहीं है। फिर 'स्नेह लीला' को 'विष्णुदास कृत' क्यों लिखा गया है ?

मेरा एक ग्रंथ 'गोस्वामी हरि राय जी का पद साहित्य' नाम का है। इसमें 'सनेह लीला' पर विचार किया है, और उसपर 'जन मोहन' कृत (न) होने का यह स्पष्टीकरण दिया है कि मोहन अथवा मोहनदास ने 'सनेह लीला' की हस्त प्रतियाँ तैयार की होंगी। उनपर लिपिक के रूप में उसने अपने नाम का भी उल्लेख कर दिया होगा। बाद में भ्रम वश उसे उक्त रचना का रचयिता समझा गया, और उसी के नाम से प्रतिलिपियाँ होने लगीं। मैं नहीं समझता हूँ कि जन मोहन के संबंध में मेरा कथन पूर्णतया सत्य होगा। क्या इसी भांति 'विष्णुदास' को भी 'सनेह लीला' का लिपिक समझा जा सकता है ?

इस संबंध में आपके स्पष्टीकरण की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा है। छपाई के कार्य को रुकवा दिया है। आपका उत्तर आने पर उसे पुनः चालू किया जावेगा। इसलिए शीघ्र आवश्यकता है। कष्ट के लिए क्षमा।

आज कल आप किस साहित्यिक कार्य में लगे हुए हैं ?

आपका

प्रभु दयाल मीतल

२.७१४

प्रभुदयाल मीतल — फोनः ६१५

साहित्य बाचस्पति — मीतल निवास, डेम्पियर नगर

अध्यक्ष — मथुरा [२८१००१]

साहित्य संस्थान, — २८-८-८२

आदरणीय डा० गुप्त जी,

आपका २५–८–८२ का पत्र प्राप्त हुआ। उससे पहले विष्णुदास विषयक आपके दोनों पत्र यथा समय मिल गए थे मैंने आपके नाम से उनका संदर्भ अपने नूतन ग्रंथ 'सूर-सर्वस्व के उपसंहार में दिया है। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें सूर दास

संबंधी अद्यतन सामग्री और उस पर मेरी विस्तृत समीक्षा है। यह ग्रंथ वाराणसी के हिन्दी प्रचारक सस्थान द्वारा प्रस्तुत किया जा सकेगा, ऐसी आशा है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप सूर-संबंधी अपने लेखों के साथ सूर-साहित्य सूची विस्तृत रूप में प्रकाशित कराने के लिए प्रयत्नशील हैं। मेरे सूर दास संबंधी १३ छोटे बड़े ग्रंथ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इनके नाम और प्रकाशन काल का विवरण इस पत्र के साथ भेजा है। इसका उपयोग आप अपनी सूची में कर सकते हैं।

इस ग्रंथ के लिए आपने मुझसे जो 'व्रज भारती' के सूर विशेषांक की विषय सूची भेजने को लिखा है, वह भी इस पत्र के साथ संलग्न है। 'सूर संदर्भ और समीक्षा' काशी हिन्दू विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है, इसमें प्रथम लेख मेरा ही है। यह ग्रंथ आपको काशी में सहज सुलभ है। शायद आपके भी पास हो। इसलिए इसकी विषय-सूची भेजने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी है।

इधर सूर सम्बन्धी ग्रंथों के लिखने और प्रकाशिव कराने में मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है। उसके कारण मैं कुछ अस्वस्थ हूं, रक्त चाप भी बढ़ गया है। डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम करने और लिखना पढ़ना कम कर देने की सलाह दी है। थोड़ा क.र्य करने पर ही थक जाता हूँ और सिर में दर्द होने लगता है। आयु भी ८० की हो चुकी हैं। ८१ वाँ वर्ष चल रहा है।

आप सितबंर से एक माह के लिए बाहर जा रहे हैं। वापसी में यदि संभव हो तो मथुरा आइए।

आशा है, आप सानंद हैं।

आपका
प्रभु दयाल मीतल

२१८।५

फोन ६१५

वन्दे व्रज वसुन्धराम्

साहित्य संस्थान

अध्यक्ष
डा० प्रमुदयाल मीतल
डी० लिट्०, साहित्य वाचस्पति

डैम्पियर नगर
मथुरा (२८१००१)
५-११-१९८२

प्रियवर डा० गुप्त जी,

सस्नेह नमस्कार। आपका कार्ड प्राप्त हुआ। आप लम्बी यात्राएँ करके सकुशल घर वापिस आ गये हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

'सूर-सर्वस्व' में मैंने आपके साथ हुए पत्राचार और उससे विष्णुदास विषयक समस्या का समाधान होने का सधन्यवाद उल्लेख किया है। यह ग्रंथ, विगत माह में अद्योपांत छपकर तैयार हो गया था। इसकी बढ़िया जिल्दबंदी कराकर इसे बेचने का भार पहले वाराणसी के 'हिन्दी प्रचारक संस्थान' ने मेरे कहने पर स्वीकार कर लिया था। ग्रंथ के कुछ छपे हुए फार्मों के बंडल बनवा दिए गए थे, और उन्हें वाराणसी भेजा जाने वाला था कि श्री कृष्ण चन्द्र बेरी जी का अकस्मात कार्ड मिला कि उस भार को स्वोकार करने में असुविधा है। मैंने उन्हें पत्र लिखा है। संभव है वे तैयार हो जावें, अन्यथा कोई अन्य प्रबंध किया जावेगा। तभी जिल्दबंदी होगी और तभी उसकी प्रति आपको भेजी जा सकेगी।

जाने माने लेखकों का भी यह दुर्भाग्य है कि वर्षों के घोर परिश्रम से किसी उच्च कोटि के ग्रंथ की रचना करें, और फिर अपने व्यय से उसे पूरा छपवा कर तैयार करें, किन्तु बिक्री के लिए पुस्तक विक्रेताओं के द्वार खटखटाते फिरें। उनकी सभी शर्तों को मान लेने पर भी उन्हें राजी करना कठिन है। किन्तु छपे हुए ग्रन्थ को घर में तो पड़ा नहीं रखना है।

आप न मालूम किस प्रकार अपने ग्रन्थों के लिए प्रकाशक ढूंढ़ लेते हैं। यदि आप किसी भले मानुस विक्रेता को 'सूर-सर्वस्व' के वितरणार्थ तयार कर लें, तो मैं आभारी होऊँगा। उसकी शर्तें मुझे स्वीकार होंगी। उसे अपनी सुविधानुसार ग्रंथ पर आई लागत को निकाल कर देना है। यदि आप काशी या प्रयाग के किसी अच्छे विक्रेता से संपर्क कर सकें, तो यह समस्या हल हो सकती है।

आशा है आप सानंद हैं। पत्रोत्तर को प्रतीक्षा रहेगी।

आपका

प्रभु दयाल मीतल

१४२. डा० कन्हैया सिंह, आजमगढ़

[डा० कन्हैया सिंह दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय आजमगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एव उपाचार्य हैं। यह डा० गुप्त के शिबली कालेज आजमगढ़ में बी० ए० के विद्यार्थी थे। यह १९७८ में कुछ समय तक भटवली बाजार डिग्री कालेज गोरखपुर के प्राचार्य भी थे।]

२१९ विलंदपुर
(बाँसगाँव कालोनी)
गोरख पुर
१२-१०-७८

आदरणीय गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

आशा है आप सानंद है। मैं गोरखपुर के भटवली बाजार डिग्री कालेज में प्रिंसिपल के पद पर आ गया हूँ और उपर्युक्त पते पर गोरखपुर में ही रह रहा हूँ।

मैं अपनी पुस्तक 'हिन्दी पाठानुसंधान' को तैयार कर चुका हूँ। वह टाइप हो रही है। इसके अंत में जो सूची संपादनों की लगी है, उसे बहुत दिन पूर्व आपके पास भेजा था। आशा है उसे आप अद्यतन करके शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे। अब समय कम है। अतः जो कुछ भी सुझाव हों, उन्हें भी शीघ्र भेज दें। अनुगृहीत होऊंगा।

कन्हैया सिंह

१४३. घनश्याम दत्त मिश्र, वाराणसी

[अपरिचित]

२२०

१६-९-७८ वृह०

परमादरणीय डा० साहब।

श्री अभिमन्यु पुस्तकालम कमक्षा, गुरु बाग के सौजन्य से प्राप्त श्री तुलसी ग्रंथावली ३ खंड में आपका एक लेख गोसाईं तुलसी दास जीवन चरित पढ़ने को मिला। बहुत सुना था कि आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित पुस्तक गो० तुलसीदास पूज्य गोस्वामी जी के बारे में लिखित सर्वोत्तम पुस्तक है। मैंने पुस्तकालय से मँगाकर उसको बड़े मनोयोग से पढ़ा, और श्री शुक्ल जी के पांडित्य एवं आलोच्य बुद्धि प्रतिभा ने अपना हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ा, उसके कुछ समय बाद आपका यह पूर्ण मनोयोग तथा निष्पक्षता, पांडित्यपूर्ण एवं विवेकशीलता से उक्त सुन्दर लेख पढ़ने को मिला यह सुलेख पढ़कर मन को हर्ष हुआ और कार्य व्यस्त रहने पर भी ३ बार इस सुलेख को मैंने पढ़ा और प्रत्येक बार उसमें नवीनता का ही अनुभव हुआ, आपके अपने विषय के प्रतिपादन की शैली, निष्पक्षता, गंभीर पांडित्य और बिवेचना शक्ति की एक उज्ज्वल झलक मिली। बहुत समय पर एक ऐसा उत्तम सार-युक्त लेख पढ़ने को प्राप्त हुआ।

आपने रामचरित मानस के रचनाकाल की अवधि के बारे में जो युक्तियुक्त तर्कपूर्ण समाधान किया है, वह सराहनीय है। अभिनव भरत के कथन का जैसा शालीनता शिष्टता से आपने खंडन किया है, वह भी प्रशंसनीय है। अब कुछ निवेदन मेरा मूल गोसाईं चरित के बारे में हैं। जैसा कि श्रीमाम् ने भी लिखा हैं कि मूल गोसाईं चरित इस अर्थ में अप्रामाणिक है कि इसे गो० तुलसीदास जी के किसी शिष्य बाबा वेणीमाधव दास ने सं० १६८७ में नहीं लिखा। परन्तु इसमें लिखी सभी बातें अप्रामाणिक हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आपने मूल गोसाईं चरित की लिखी हुई मानस रचना काल की अवधि को ही श्री मोहन साईं के छंद उद्धृत करके पुष्ट किया है। दूसरी घटना उनकी मृत्यु-तिथि के निर्णय की है। वह भी मूल गो० चरित के अनुसार ही श्री चिंतामणि भट्ट द्वारा १६७६ में रचित भावार्थ दीपिका की प्रति में है। उस श्लोक में लिखा है कि १६८० में श्रा० कृ० ३ शनि को निर्वाण प्राप्त हुआ परन्तु श्री भट्ट जी ने यह श्लोक सं० १६७६ में ही कैसे लिख दिया, जब कि पू० गोस्वामी जी का

निधन सं० १६८० सर्वमान्य है। मालूम होता है प्रेस की गलती से ऐसा गलत संवत छप गया है।

इन दो प्रमाणों से मूल गो० चरित की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। कुछ महानुभावों ने इस पु० को अप्रामाणिक माना, है परन्तु महात्मा बालक राम जी, राय बहादुर डा० श्याम सुन्दर दास जी एवं स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ आदि मान्य महानुभावों ने इसको विश्वसनीय एवं प्रामाणिक माना है। इसके संबंध में स्व० गौड़ जो ने लिखा है। मूल गो० चरित में वे सभी बातें मौजूद हैं, जिनका अन्तःसाक्ष्य गोस्वामी जी की रचनाओं में मिलता है। यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं, जो बातें अप्राकृतिक मालूम होती हैं, उनके समान बातें भक्तों की कथाओं में संसार के सभी देशों के साहित्य में पायी जाती हैं। जो बातें घटना संबंधी असंगति लिए जान पड़ती है, उनकी सत्यता की परख उन कसौटियों पर नहीं की जा सकती, जिनको इतिहास स्वयं विश्वास योग्य नहीं ठहरा पाया हैं। बजाय इसके कि हम मू० गुसाइँ चरित की बातों को इतिहास की संदिग्ध सामग्री से परखें, क्यों न हम उस सामग्री को ही मू० गो० च० से ही जाँच करें। अच्छे से अच्छा लेखक भी अनेक बातों में अपनी स्मृति और धारणा पर विश्वास करके नेकनीयती के साथ ऐतिहासिक भूलें कर सकता हैं, परन्तु मू० गो० च० में तिथियों के देने में जो सावधानी लेखक ने बरती हैं, उससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बाबा जी ने और घटनाओं के लिखने में भी साधारणतया सावधानी बरती होगी। उनके वर्णन का मेल यदि किन्ही लेखकों से न मिले, तो हमें बेनीमाधव दास जी पर अविश्वास करने की उतावली न करनी चाहिए, बल्कि सत्यान्वेषण में अधिक प्रवृत होना चाहिए।

आपके सार गर्भित लेख एवं प्रकांड पांडित्य का मैं हृदय से बार-बार अभिनन्दन करता हूँ और हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ाने वाले आपके अन्य लेखों की हृदय से प्रतीक्षा करते हुए मैं अपना यह तुच्छ निवेदन समाप्त करता हूँ।

भवदीय

घनश्याम दत्त मिश्र

प्रेषक का नाम व पता—
घनश्याम दत्त मिश्र
डी ५।१२४ त्रिपुरा भैरवी
वाराणसी

१४४. राम प्यारे त्रिपाठी

[१९७८ में त्रिपाठी जी हरदोई में नायब तहसीलदार थे। अपरिचित।]

२२१.

हरदोई
प्रिय श्री गुप्त जी, ३०-५-७८
नमस्कार ।

मुझे 'ज्ञान प्रकाश' नामक रचना की हस्तलिखित प्रति का पता चल गया है । रचना स्फुट है, दोहों एवं सोरठों को संख्या १५० है । भाषा अवधी है, परन्तु हस्त लेख फारसी लिपि में है । लेखक का नाम मात्र 'मूसा' अधिकांश दोहों में मिलता है । रचना काल नहीं दिया है, प्रतिलिपिकार ने प्रतिलिपि काल १०४० हिजरी दिया है । आपकी इस ओर रुचि है । कृपया बताएँ कि आपको कहीं इस प्रकार की रचना की जानकारी हुई है ? इसके महत्व के प्रति बताने का कष्ट करें—यदि जानकारी हो । यह 'मूसा' कौन है ?

राम प्यारे त्रिपाठी
नायब तहसीलदार
तहसील हरदोई
जिला हरदोई

१४५. पद्मधर पाठक, जोधपुर

[पद्मधर पाठक सुप्रसिद्ध श्रीधर पाठक के पौत्र हैं । १९७९ में यह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के उपनिदेशक थे । इन्होंने डा० गुप्त के 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' को पढ़कर उनको 'मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन' (डा० मोती लाल गुप्त) की एक प्रति भेज दी थी । अपरिचित ।]

२२२।१

दूरभाष : २०२४४

राजस्थान सरकार

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्डान

प्रधान कार्यालय : जोधपुर

शाखा कार्यालय: अलवर: बीकानेर: चित्तौड़गढ़: जयपुर: कोटा: टोंक: उदयपुर

पत्रांक एफ । सर्वे । रा प्रा वि प्र । ७८।३६ दिनांक २१-२-७०

प्रिय श्री डा० साहब,

आपके 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' के अध्ययन से ज्ञात हुआ है 'मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन' नामक पुस्तक आपके देखने में नहीं आयी । इस पुस्तक के लेखक डा० मोती लाल गुप्त हैं और यह इस प्रतिष्ठान का ही एक प्रकाशन है ।

पुस्तक की एक प्रति आपको सम्मत्यर्थं भेंट करने का हमारा विचार है। इस पत्र को हम इसी उद्देश्य से लिख रहें हैं, ताकि आपके वर्तमान पते की आपके पत्रोत्तर द्वारा सम्पुष्टि हो सके।

भवदीय

डा० किशोरी लाल गुप्त,
ग्राम—सुधवै, वाराणसी (उ० प्र०)

पद्मधर पाठक
उप निदेशक

२२३।२

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
राजेन्द्र मार्ग, जोधपुर
२६।३।७९

प्रिय श्री डा० साहब,

आपको 'म० प्रदेश की हिन्दी सा० को देन' नामक पुस्तक मिल गई होगी। मैं इस सरकारी प्रतिष्ठान में पिछले १७ वर्षों से हूँ। आजकल उप-निदेशक हूँ। ठीक है, कहीं न कहीं तो रोजी रोटी कमानी ही पड़ती है। छोटा सा प्रतिष्ठान है, अतः उप-निदेशक कोई लंबा चौड़ा वेतन पाने वाला पद नहीं है। मैं स्वयं पं० श्रीधर जी पाठक का पौत्र हूँ। मैं इतिहास का विद्यार्थी रहा। अतः हिन्दी से लगाव केवल संस्कारों के कारण है। इधर मैंने पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी के ७० पत्रों को एकत्र कर एक छोटी पुस्तक लिखी है। छपने पर भेजूँगा। योग्य सेवा।

आपका
पद्मधर पाठक

१४६. डा० नरेश बंसल, कासगंज

[डा० बंसल के० ए० स्नातकोत्तर महाविद्यालय कासगंज (एटा) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। एक बार डा० गुप्त इनसे वृंदावन में मिले थे। उस समय यह वहाँ के रामदास जी के शोध सस्थान के निदेशक थे।]

२२४

॥ श्री हरिः ॥

डा० नरेश बंसल
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभागाध्यक्ष
के० ए० स्नातकोत्तर महाविद्यालय

'श्री वास'
जय-जय राम बार्ड
कासगंज (उ० प्र०)
पत्रांक..............
दिनांक १०–४–७९

परम श्रद्धेय गुप्त जी,

सादर प्रणाम ।

आशा है स्वस्थ तथा सपरिवार आनंद से हैं । आपकी अनेक रचनाओं से परिचय है किन्तु आपकी सन्निधि में बैठने का सुअवसर आज तक न मिला । इधर विभाग में भैया रामकृष्ण से आपका समाचार मिलता है, तो हृदय और बुद्धि आपके प्रति प्रणाम भाव से भर जाते हैं । आपने इतना महान कार्य किया है कि सस्थाओं के भी बूते की बात नहीं । हिन्दी के प्रति आपका उपकार क्या भूलने की वस्तु है ? मैंने आपके 'सरोज सर्वेक्षण' का काफी उपयोग किया है ।

मेरा ग्रंथ 'चैतन्य संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' विनोद पुस्तक मंदिर आगरा से मई के अंत तक प्रकाशित होकर आ रहा है । ५०० पृष्ठ के लगभग होगा । आप अवश्य मँगावें ।

इधर दयानिधि ग्रंथावली भी प्रकाशित हो रही है । मुझे विश्वास है कि आपके विशाल भंडार में इस कवि से संवद्ध सूचनाएँ तथा साहित्यांश होंगे । कृपया शीघ्र अवगत करावें और संभव हो तो प्रतिलिपि करवा कर भिजवाने की कृपा करें । आपके उदार सहयोग से उत्साह बढ़ेगा । क्या अपने ग्रंथों की सूची भिजवाने का कष्ट करेंगे । यदि आपके अनुमुद्रण मिल सकें, तो बड़ा उपकार हो ।

व्यावसायिक झंझट में समय कम मिलता है । कुछ उपयोग करने का अभ्यास भी कम है, किन्तु आप जैसों से प्रेरणा अवश्य मिलती है । मुझे वैष्णव संप्रदायों के साहित्य में बड़ी रुचि है । न खाकर और एक वक्त खाकर भी ग्रंथ एकत्र किए हैं ।

आपकी संपादन कला बेजोड़ है । प्रभु से पूरे हृदय-द्राव के साथ प्रार्थना है कि आपको स्वस्थ शतायु प्राप्त हो ।

मेरी सहधर्मिणी कन्या महाविद्यालय में हिन्दी की प्रवक्ता हैं और कविवर दयानिधि पर शोध कार्य करना चाहती हैं । दयानिधि ग्रंथावली हम दोनों के संपादन में छप रही है । उनका भी करवद्ध आग्रह है कि आपका आशीर्वाद उन्हें भी प्राप्त हो ।

श्री चरणों में प्रणाम सहित

विनयावनत कृपैषी :

नरेश बंसल

१४७. अमृत राय, इलाहाबाद

[अमृत राय जी प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद जी के द्वितीय पुत्र हैं । यह क्वींस कालेज वाराणसी में १९३६-३८ में डा० गुप्त के सहपाठी थे । मैत्री बरकरार है । अमृत जी काशी छोड़ प्रयाग में बस गए हैं । यह भी उपन्यासकार और कहानी लेखक हैं । 'कलम का सिपाही' नाम से इन्होंने प्रेमचंद का अच्छा जीवन चरित लिखा है ।]

२२५

१८ न्याय मार्ग
इलाहाबाद
२५।५।७९

प्रिय भाई,

१३।५ का पत्र मिला। आपकी कृपा से 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' भी जमानियां से आ गई थीं। मैं शायद यादव जी को सूचित करना भूल गया। बहुत बहुत धन्यवाद। काम हो जाने पर पुस्तक उनके पास भेज दूँगा।

कभी इस तरह का काम तो किया नहीं, दाँतों पसीना आ रहा है। लेकिन लगा हूँ। अपनी मेहनत में तो कसर नहीं होगी, अब देखना है कैसी किताब बनती है! आप जैसे बंधुओं का स्नेहाशीष चाहिए।

आपका
अमृत राय

१४८. रक्षा दत्ता, अमृतसर

[१९७९ में यह गुरु नानक देव अमृतसर में एम० फिल० की छात्रा थीं। अपरिचिता।]

२२६।१

हिन्दी विभाग
गुरु नानक देव विश्व विद्यालय
अमृतसर
५-९-१९७९

आदरणीय डॉ० साहिब,

सादर प्रणाम।

मैं गुरु नानक देव विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग में एम० फिल० को छात्रा हूँ और आजकल 'कालिदास हजारा और शिवसिंह सरोज के आधार पर हिन्दी साहित्य प्रारम्भिक इतिहास लेखन' पर शोध कार्य कर रही हूँ। मेरे पास आप द्वारा संपादित तीनों पुस्तकें हैं। तीनों पुस्तकों की भूमिकाएँ निःसंदेह उपयोगी हैं। अपने इस पत्र के साथ मैं अपने विषय की रूपरेखा भेज रही हूँ। आप इस विषय के अधिकारी विद्वान हैं। मेरी रूप रेखा की जांच करके कुछ सुझाव तथा संशोधन अवश्य लिखें। अगर आप अध्ययन सामग्री बता सकते हैं, तो आपकी आभारी हूँ। आशा है आप जल्दी उत्तर देंगे। मैं टिकट लगा पता दर्ज हुआ एक लिफाफा आपकी सेवा में प्रेषित कर रही हूँ।

विनीत
आपकी विश्वासपात्रा
रक्षा दत्ता

२२७१२

हिन्दी विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय
अमृतसर

आदरणीय डॉ० साहिब, १-११-१९७९

सादर प्रणाम ।

आपका लिखा पत्र मुझे मिल गया है । मुझे आप द्वारा रूप रेखा में दिए गए सुझावों से बहुत लाभ हुआ है । आपको शायद याद होगा मैं गुरु नानक देव विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में एम० फिल० की छात्रा हूं और आजकल श्री डा० महेन्द्र सिंह बेदी के निर्देशन में 'कालिदास हजारा और शिव सिंह सरोज के आधार पर हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक इतिहास लेखन' विषय पर शोध कार्य कर रही हूँ । इस विषय के संबंध में मेरे समक्ष कुछ शंकाएँ हैं । अगर आप उनके बारे में कुछ समाधान दें तो मैं आपकी आभारी रहूँगी । वे इस प्रकार हैं ।—

१. क्या आप 'शिव सिंह सरोज' के आधार ग्रंथों में 'कालिदास हजारा' की गणना करते हैं । यदि हाँ तो क्यों ?

२. 'हिन्दी साहित्य इतिहास की चेतना के आदि रूपों में आप किन संग्रहों को रखना चाहेंगे जैसे भक्तमाल, वार्ता साहित्य आदि ?

३. 'कालिदास' तथा 'शिव सिंह सरोज' साहित्येतिहास लेखन की किस परंपरा में आते हैं ? क्या यह परंपरा परवर्ती इतिहासों में जीवित रही या नहीं ?

४. 'शिव सिंह सरोज' तथा 'हजारा' का काल निर्णय किन आधारों पर हुआ है ।

इनके समाधान के अतिरिक्त 'शिवसिंह सरोज' और 'कालिदास हजारा' की कोई नई सूचना जिसे आप महत्वपूर्ण मानते हैं ।

उम्मीद रखती हूँ कि आप जल्दी उत्तर देंगे । मैं टिकट लगा पता दर्ज लिफाफा आपकी सेवा में प्रेषित कर रही हूँ ।

विनीत
आपकी विश्वासपात्रा
रक्षा दत्ता

१४९. शारदा पुरी

[१९७९ में शारदा पुरी जी गुरु नानक देव विश्व-विद्यालय अमृतसर में एम० फिल० की छात्रा थीं । अपरिचिता ।]

२२८

अमृतसर

मान्यवर, २५–१०–७९

मैं गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर हिन्दी विभाग में एम० फिल० की शोध छात्रा हूँ। मेरे शोध प्रबंध का विषय है—

"एफ० ई० की कृत 'ए हिस्ट्री आप हिन्दी लिटरेचर' का इतिहास–दर्शन तथा इतिहास-लेखन : शास्त्रीय संरचना"

आप साहित्येतिहास के अधिकारी विद्वान हैं। मुझे आशा है कि आप एफ० ई० की पर कुछ प्रारम्भिक बातें बताएंगे। प्रस्तुत विषय को लेकर मैं आपसे निम्न प्रश्नों का उत्तर चाहती हूँ—

१. एफ० ई० की के इतिहास को क्या हम हिन्दी साहित्य का इतिहास कह सकते हैं ? यदि हाँ तो क्यों ? यदि न तो क्यों ?
२. आपके मतानुसार एफ० ई० की से पूर्व के साहित्येतिहासकारों का हिन्दी में क्या और कैसा योगदान रहा है।
३. एफ० ई० की का इतिहास सामन्तसाही दृष्टिकोण प्रमुख रखकर लिखा गया है, आप सहमत हैं कि नहीं ?
४. एफ० ई० की कृत इतिहास का इतिहास-दर्शन किन-किन विन्दुओं को लेकर उठाया जा सकता है ?
५. आचार्य शुक्ल, डा० राम कुमार वर्मा तथा गणपति चंद्र गुप्त के इतिहास की पूर्व-पीठिका में क्या हम एफ० ई० की के इतिहास को रख सकते हैं।
६. पाश्चात्य विद्वानों की साहित्येतिहास परम्परा में एफ० ई० की का इतिहास कहाँ ठहरता है ?
७. एफ० ई० की के इतिहास में दिये गये काल विभाजन से क्या कोई निश्चित सिद्धांत उत्पन्न होता है या कवियों, ग्रंथों तथा सामाजिक वातावरण तथा भाषा को एक ही तुला में रख दिया है।

कृपया पत्र का उत्तर देना।

भवदीय

शारदापुरी

१५०. स्वामी वाहिद काजमी, लखनऊ

[अपरिचित]

२२९.

स्वामी वाहिद काजमी
द्वारा पं० श्री नारायण चतुर्वेदी जी

५२ खुरशेद बाग, लखनऊ
२२६००४
१४-१०-७९

आदरणीय डा० गुप्त जी,

सादर प्रणाम ।

★ प्रसिद्ध कवयित्री ताज पर मैं कुछ प्रामाणिक कार्य करना चाहता हूँ। आपके द्वारा सम्पादित 'हजारा' ग्रंथ में ताज विषयक जो जानकारी पृष्ठ २३३ पर दी गई है कृपया बतायें कि उसका आधार क्या है, जो भी पुस्तकें या ग्रंथ आपकी दृष्टि में ऐसे हों, जिनमें ताज विषयक उल्लेख मिलते हों, उनके व उनके प्रकाशकों, लेखकों के नाम मुझे लिखने का कष्ट करें, 'विनोद' और 'सरोज' में ताज के बारे में इतना कम उल्लेख हुआ है कि उसमें कोई बात स्पष्ट नहीं होती, एक शोध-प्रबन्ध में ताज को करौली (राजस्थान) की निवासिनी भी बताया गया है।

★ मुगल सम्राट अकबर के साथ उनका विवाह होना कोई साधारण बात नहीं है, इसको आधार बनाकर बहुत से तथ्यों का पता लग सकता है। अकबर कालीन इतिहास ग्रंथों में इस बात का उल्लेख अवश्य हुआ होगा, किन्तु किन ग्रंथों में ? यह लिखने की कृपा करें। महावन और कदमखंडी शायद पुराने नाम हैं, उन स्थानों के नये तथा प्रचलित नाम क्या है ? मेरा विचार है, वहाँ जाने पर कुछ (?) और जानकारी भी प्राप्त हो सकती है।

★ आशा है आप शीघ्र पत्र देने की कृपा करेंगे ।

★ शेष-प्रभु-कृपा ।

आपका
स्वामी

१५१. डा० चन्द्र भान राय, बंबई

[डा० चन्द्र भान राय, बम्बई विश्व विद्यालय के किसी कालेज में अध्यापक हैं। यह आजमगढ़ के रहनेवाले हैं। गुरु भक्त सिंह 'भक्त' पर इनका शोध प्रबन्ध है। अपरिचित ।]

२३०।१

बम्बई
२४-११-७९

आदरणीय डा० साहब,

चरण स्पर्श ।

आप द्वारा प्रेषित पत्र कल प्राप्त हुआ। आपने मेरे कार्य के लिए इतना कष्ट

उठाया, इसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ। आपके आशीर्वाद और सहयोग से मेरे कार्य में जो प्रगति हो रही है। इसके लिए मेरा रोम-रोम ऋणी है।

आशा है आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगें। 'नूर जहाँ' समीक्षा मेरे पास है।

आपका प्रिय
चंद्र भान राय

२३१।२

Dr. C. B. Rai
M. A. (Maths), M. A. (Hindi),
B. Ed., Ph. D.

A—3/12 Sundar Nagar
Malad (West)
Bombay–400064
12–11–80

आदरणीय गुप्त जी,

चरण स्पर्श।

आपके सहयोग एवं ईश्वर की असीम कृपा से मैं अपने कार्य में सफल हो गया। मेरा शोध प्रबंध बम्बई विश्वविद्यालय में स्वीकृत हो गया और मुझे पी-एच० डी० की उपाधि मिल गयी। आपके सहयोग के बिना यह कार्य असंभव था। मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में भी आपका आभार माना है। दिल्ली विश्व विद्यालय के परीक्षक डा० ओम प्रकाश आपके बारे में पूछ रहे थे कि इस समय आप कहाँ हैं? शेष सब ठीक है।

आपका प्रिय
चंद्र भान राय

१५२. डा० लक्ष्मी शंकर गुप्त

[यह काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभाग में प्रवाचक (रीडर) हैं। इन्होंने शंकर देव की पदावली का सम्पादन किया है, जो साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित है। कबीर कीर्ति मंदिर काशी में प्रायः दर्शन हो जाता है। डा० गुप्त के मित्र।]

२३२

काशी विद्यापीठ
वाराणसी २२१०००
१–१२–७९

आदरणीय डाक्टर साहब

प्रणाम।

आपके दर्शन हुए महीनों बीत गए। सुना है कई वर्ष पूर्व डा० शिव प्रसाद सिंह के शोध ग्रंथ 'सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य' में उल्लिखित अनेक कवियों

की आपने सूर से परवर्ती ठहराया है। आपका (अथवा आपके) उक्त लेख मुझे कैसे प्राप्त हो सकेंगे, मुझे इसकी जिज्ञासा है। मैं उसका (अथवा उनका) अवलोकन करना चाहता हूँ।

आशा है स्वस्थ एवं सानंद हैं।

भवदीय
लक्ष्मी शंकर गुप्त
प्राध्यापक काशी विद्यापीठ

१५३. पारस नाथ गोवर्धन, आजमगढ़

[पारस नाथ पाण्डेय नसीरुद्दीनपुर, पो० सठियाँव जिला आजमगढ़ के रहने वाले हैं, आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के भ्रातृज हैं। इनका 'दंशित आस्थाएँ एक अत्यन्य उच्च-कोटि का चिन्तनमय खण्ड काव्य हैं, जो राम कथा से सम्बन्धित है। इनके आग्रह पर डा० गुप्त ने पाण्डेय जी के हिन्दी उर्दू, हिन्दुस्तानी सम्बन्धी सभी प्रकार की रचनाओं का संकलन सम्पादन दो बड़ी जिल्दों में किया है, जो अभी तक अप्रकाशित है।]

२३३।१

प्रकाशन
१९५ सीताराम
(गौरी शंकर घाट)

आवास
ग्राम—नसीरुद्दीनपुर
पत्रा०—सठियाँव
आजमगढ़

श्रद्धेय डा० साहब

सादर प्रणाम

आशा है स्वस्थ एवं सानंद होंगे। इधर डेढ़ महीने से चारपाई पर हूँ। अब ठीक हूँ, किन्तु कमजोरी अत्यन्त है। टाइफाइड हो गया था।

राष्ट्र भाषा पुस्तकों का सम्पादन कब तक हो जायेगा? जो पुस्तकें उपलब्ध न हों, उमके विषय में लिखें। जो मेरे पास हैं, भेज दूंगा। शेष केन्द्रीय पुस्तकालय से १) प्रति पेज के हिसाब से माँग ली जायेंगी-प्रतिलिपि करा कर। सभा या सम्मेलन से उपलब्ध हों तो ठीक ही है। सात अंग्रेजी निबन्धों की प्रतिलिपि मेरे पास है, 'हिन्दी' की फाइल एवं सम्मेलन के पदाधिकारी के रूप में दिए गए भाषण भी इसी ग्रंथ में होंगे, क्योंकि विषयवस्तु एक ही है।

शेष शुभ। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में

आपका ही
पारस नाथ गोवर्द्धन
२–१–८०

२३४।२

परम श्रद्धेय डा० साहब,

सादर प्रणाम।

आशा है सपरिवार स्वस्थ एवं सानंद होंगे। इधर पत्र न दे सका, क्षमा करेंगे। कल लखनऊ से लौटा हूँ। वहाँ से डा० ज्ञानवती त्रिवेदी के पास से काफी कुछ सामग्री प्राप्त हुई है। प्रकाशित अप्रकाशित हिन्दी, अंग्रेजी लेख तथा ढेर सारे पत्रादि।

यदि आप दो चार दिनों का अवकाश लगाकर मेरे घर दर्शन दें सकें तो महती अनुकम्पा होगी। सामग्री ज्यादा है। और आपके वगैर मैं उसे खोलूंगा नहीं। आप उसे देख लें, तो आगे विषयानुसार उन्हें देखा जाय। दो एक लेख भी तैयार करना चाहता हूँ भाषा-विषयक।

और सब ठीक है। बेसब्री से आपकी प्रतीक्षा करूँगा। पत्रोत्तर एवं दर्शन की प्रतीक्षा में—

आपका ही

पारस नाथ गोवर्धन

२७-७-८१

२३५।३

श्री

नसीरुद्दीन पुर

सठियांव, आजमगढ़

१ जून ८३

परमादरणीय डा० साहब,

सादर प्रणाम।

स्वस्थ एवं सानंद रहते हुए आप सबकी कुशलता की कामना करता हूं। पत्र प्राप्त हुआ। समाचारों से अवगत हुआ।

ग्रंथावली का प्रथम खंड प्रकाशनार्थ चला गया, जानकर हर्ष हुआ। भाषा विषयक दो खंड होने ही चाहिए थे। शेष सामग्री जब कहें पहुँचा दूं। सब तैयार हो जाय तो ठीक। सात टाइप की हुई अंग्रेजी लेखों की प्रति भी संभवतः आपके पास हो।

भाई रवीन्द्र जी की सूचनानुसार मैं दो बार बनारस कबीर कीर्ति मंदिर भी हो आया। आप १४ मई से वहाँ रहने वाले थे। समयाभाव और नियमित सही सूचना के बिना सुधवै नहीं पहुँच पाया, खैर।

प्रकाशन कब तक करेंगे? प्रकाशन की शर्तों, रायल्टी आदि के विषय में कोई वार्ता हुई थी क्या? संभव है सरकार द्वारा भी प्रतियाँ (जहाँ तक एक हजार) खरीद ली जायँ। आगे देखा जावेगा।

शेष शुभ। पत्रोत्तर अविलंब देंगे। मैं चाहता हूँ कि अब समस्त कार्य पूर्ण कर लिए जायं।

'शूद्रक' और 'कालिदास' के संस्कृत उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद परमावश्यक होगा। ऐसी स्थिति में दोनों पुस्तकें क्रमशः ६ सौ एवं ११-१२ सौ पृष्ठों की हो जायेंगी। 'शूद्रक' का अनुवाद हो गया है। कालिदास का भी लगभग दो सौ पृष्ठ। आगे जैसा आप आदेश करें।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा बेसब्री से करूँगा। शेष कुशल।

आपका ही
पारस नाथ गोवर्धन
२-६-८३

२३६।४

२९।३।८५

आदरणीय डा० साहब,

प्रणाम।

आशा है कि सपरिवार स्वस्थ एवं सानंद होंगे।

आज ही दिल्ली से श्री क्षेम चंद 'सुमन' जी का पत्र आया है हैदराबाद सा० स० के अध्यक्ष पद से दिया गया स्व० पांडे जी का वह भाषण चाहिए। दो एक दिन में भेजूंगा। लखनऊ से अभी कोई समाचार नहीं आया, वैसे आज ही वहाँ भी पत्र दे रहा हूँ।

इधर मैंने एक और काव्य नाटक तैयार किया है। इस बार 'दंशित आस्थाएँ' पुस्तक पर कुछ विद्वानों की प्रतिक्रिया देना चाहता हूँ। बड़ी कृपा होगी यदि दो पंक्तियाँ लिख भेजें। वैसे एक संपूर्ण लेख की भी आशा है। आपने मुझे अपार स्नेह-मान दिया हैं, इस नाते ही यह धृष्टता कर रहा हूँ अन्यथा मैं इस योग्य कहाँ जिस पर आप जैसे आचार्यों की लेखनी उठे। पर बराबर कृपा पाने के नाते ही यह लिख रहा हूँ।

और सब ठीक है। पत्रोत्तर अवश्य और अविलंब दें।

भवन्निष्ठ
पारस नाथ गोवर्धन

१५४. उदय शंकर शास्त्री, आगरा

[शास्त्री जी पहले ना० प्र० सभा काशी में पुस्तकालयाध्यक्ष थे। डा० गुप्त का तभी से इनसे संपर्क रहा। बाद में यह कन्हैया लाल माणिक लाल हिन्दी इंस्टिट्यूट आगरा में चले गए। यह ४६ गांधी नगर कालोनी आगरा में आबाद हो गए। यह साहित्यिक सूचनाओं के भंडार थे। दिवंगत।]

२३७।१

४६ गांधी नगर कालोनी आगरा—३

उदय शंकर शास्त्री

ता० ११-१-१९८०

भाई गुप्त जी,

सप्रेम नमस्कार

आपका 'राघव दास के भक्तमाल का रचना काल' शीर्षक लेख मिला। पता लंबा चौड़ा होने से घूमता रहा। चूंकि इससे संबद्ध लेख ब्रजभारती में छप चुके हैं, इसलिए यह भी वहीं छपता तो ठीक था। ब्रज भारती के सपादक कहीं मुझसे बुरा न मानें, इसलिए आप कहें तो मैं उन्हीं के पास भेज दूं।

बहुत दिन पहिले आपने नेवाज के २० छंदों की प्रथम पंक्तियां लिख कर मुझे भेजी थीं ओर चाहा था कि इनके अतिरिक्त जो छंद मिलें, उन्हें मैं लिख भेजूं—सौ जो छंद मिले हैं, उन्हें भेज रहा हूँ—

कालिंदी न्हात हौं, आइ कहाँ ते मिल्यौ यह बांसुरी को बजवैया
न्हाइ चुकी, पै न जाय सकौं तजि मोहन की मुख-चंद जुन्हैया।
कासों 'नेवाज' कहौं, गहौं लाज, औ कैसे भला घर जाहुँ मैं दैया।
मोहनी तानन डारि के कानन, प्रानन लेत है खैंचे कन्हैया ॥१

आवत गावत देखि गली मैं, भली पहुँची हम जाइ नजीकै।
लाइ टकी अँचयौ वह रूप, अघाइ गई अँचयो जु अमी कै।
साध हती सु भई मन की, कहा होत 'निवाज' हँसे सबही कै।
लाजहिँ टारि के आँखिन सौं, ब्रजराजहिं आजु लख्यौ हम नीकै।२

लांबी लटें लटकैं सिरहाने, रह्यौ मुख फैलि प्रस्वेद कौ पानी।
सोहैं नये नख-दाग उरोजन, ओठन की छवि त्यों मुरझानी।
पौढ़ी गरे पिय के भुज मेलि कै, केलि कै प्यारी 'निवाज' अघानी।
नाह की बाँह किये तकिया, सुख सोवे तिया छतिया लपटानी ॥३

सुना है आपने किसी हजारा का सम्पादन किया है। दो हजारा १ सोने लाल का हजारा, २ हफीजुल्ला खाँ का हजारा तो मेरे संग्रह में हैं। यह क्या कालिदास का हजारा है जिसे आपने सम्पादित किया है, इसको तो प्रति का ही कहीं पता नहीं था। पुस्तक कहाँ से प्रकाशित हुई हैं और उसका मूल्य कितना है। देखने की उत्सुकता है। लिखें कि उसका मूल्य कहाँ और किसे भेजूं।

शेष तो आपकी कृपा से कुशल ही है। लखनऊ के हिन्दी संस्थान की गद्दी पर श्री राम लाल सिंह विराजमान हो गये, उनसे तो आपका परिचय होगा। शायद पढ़ते

समय भी साथ रहा हो। क्या उनके द्वारा संस्थान से ब्रजभाषा ग्रंथों का प्रकाशन सम्भव हो सकता है। आपके पास तो बहुत सी सम्पादित सामग्री सुरक्षित है।

आशा है आप सानंद हैं।

भवदीय
उदय शंकर शास्त्री

२३८/२

उदय शंकर शास्त्री

४६ गांधीनगर कालोनी, आगरा-३
ता० १९-७-१९८५

प्रिय श्री गुप्त जी,

सप्रेम नमस्कार।

'सूर सौरभ' बराबर आपकी सेवा में जाता हैं। मैं समझता हूँ कि यदि साहित्यिक पाठक पोस्टमैन का मित्र न बन गया होगा, तो अंक समय पर पहुँच ही जाते होंगे। परन्तु उसे अब तक आपका कोई लेख-रूप प्रसाद नहीं मिला। कुछ तो कृपा करिये।

बहुत दिनों से आपका कोई समाचार भी नहीं मिला और न भेंट हो पाई—आशा करता हूँ कि सपरिवार सानंद होंगे। उत्तर की प्रतीक्षा में—

भवदीय
उदय शंकर शास्त्री

२३९/३

उदय शंकर शास्त्री

४६ गांधीनगर कालोनी
आगरा-२८२००३
ता० ५-९-१९८५

श्रीमन्,

सप्रेम नमस्कार।

आपका लेख और कविता दोनों समय से मिल गये थे। इसी अंक में जा रहे हैं। व्यस्तता के कारण तत्काल सूचना न दे पाने के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

पं० सीताराम च० वाली पुस्तक के ५वें खंड में आपके द्वारा प्रस्तुत सूर सागर का विवरण देखा था। उसमें श्री कृष्णाचार्य के आधार पर राग कल्पद्रुम में प्रकाशित सूर सागर का विवरण सटीक नहीं है। नवल किशोर का संस्करण उसकी हूबहू प्रतिलिपि नहीं हैं। उसके प्रथम संस्करण से कुछ अन्तर है। नवल किशोर वाला पहला संस्करण देखा जाय, तो बात बने। उसमें एक फर्मा लगा ही नहीं है। कभी भेंट होगी, तो

चर्चा होगी। हाँ, रामादास वाली पत्रिका वाला आपका लेख मैं नहीं देख पाया। क्या उसका कोई प्रतिमुद्रण आपके पास होगा?

आपके प्रयाग जाकर सूर सागर की खोज की खबर मिली। क्या सम्मेलन अथवा भारती भवन पु० (पं० बाल कृष्ण जी का—पुस्तकालय) में भी उक्त संस्करण नहीं मिला। और काशी?

देखूं आपके लेख पर सूर साहित्य के वारिधि प्रभु दयाल मीतल की क्या प्रतिक्रिया होती है। सुनते हैं कि सूर पर उनका कोई महाग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। परन्तु मुझे आशा नहीं कि उन्होंने कोई नई बात लिखी होगी सिवाय उन घिसी पिटी बातों के—जो अन्य पुष्टिमार्गी कह चुके हैं।

आशा है आप सानन्द हैं। सौरभ (का) अपेक्षित अंक तो आपके पास पहुँच गया।

भवदीय
उदय शंकर शास्त्री

१५५. डा० महेन्द्र प्रताप सिंह, नई दिल्ली

[डा० महेन्द्र प्रताप सिंह रीतिकाल और इतिहास के विद्वान हैं। नई दिल्ली में हिन्दी के अध्यापक हैं। डा० गुप्त के मित्र हैं।]

२४०/१

महेन्द्र प्रताप सिंह
के—४६ कैलास कालोनी
नई दिल्ली–११००४८
८–२–८०

मान्यवर गुप्त जी,

आपका ४–२ का पत्र मिला। आप जैसे गुण-ग्राही के पास अंततः पुस्तक पहुँच गई, इसका मुझे हर्ष है।

'सम्मेलन पत्रिका' और हिन्दुस्तानी एकेडमी पत्रिका में मैंने पुस्तकें भेजी हैं, किन्तु ३ वर्ष होने को है, समीक्षा नहीं निकली। सम्भवतः समीक्षकों को फुर्सत नहीं। सम्मेलन पत्रिका के मालवीय जी ने किसी प्रोफेसर (इलाहाबाद) को पुस्तक दी है, किन्तु वे लिखने के मूड में नहीं हैं। यदि आपके साथ कहीं चर्चा चल पड़े, और आप लिख सकें तो इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

रीतिकाल तो अब ढहता जा रहा है। नये लोगों के लिए शीघ्र ही यह प्राकृत और अपभ्रन्स की तरह दुरूह होता जा रहा है। उस युग की सम्वेदना से अब लोग दूर ही नहीं बहुत दूर चले गये हैं। क्या किया जाय। रीतिकाल के जिस जहाज को खेने

के लिए हम लोग बैठे हैं, वही डूब रहा है, तो हम सबकी पर्वाह कोई क्यों करेगा। दूरदर्शी लोग इस तरह के कार्यों को भावुकता मानते हैं।

भगवान से यही प्रार्थना है कि पंडित जी आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को वह पूर्ण स्वस्थ कर दे। मैंने वास्तविक रूप में उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त की है। वे सच्चे रूप में सन्त हैं। आपके पत्र से उनके स्वास्थ्य-सुधार का समाचार प्राप्त कर सचमुच मुझे बहुत संतोष मिल रहा है।

इसके पहले इसी तरह का उत्साहवर्धक समाचार कुछ मित्रों से मिला है। इसे सुनकर मैंने पंडित जी को प्रणाम प्रेषित करने के लिए उनके घर के पते पर पत्र लिखा है। उस पत्र का मैं उत्तर पाने की आशा करना ठीक नहीं मानता, फिर भी पंडित जी को मेरा स्मरण करा कर जब आप मिलें, तब मेरा प्रणाम कहें। भगवान से उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थी हूँ।

इलाहाबाद के श्री उदयशंकर दुबे भी मेरे शुभचिंतक और आपके प्रशंसक हैं। आपके नाम राशि (नैनी वाले) भी रीतिकाल की ही नाव खे रहे हैं।

क्या हम लोग वर्ष में किसी बहाने से एक स्थान में एकत्र होकर इस क्षेत्र विशेष को समस्याओं और उपलब्धियों पर चर्चा कर लिया करेंगे ? यह अब अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हो रहा है। आप इस विषय में विचार करके अपने अभिमत से सूचित कीजिएगा। शेष शुभ।

आपका

म० प्र० सिंह

२४१।२

महेन्द्र प्रताप सिंह
K–४६ कैलास कालोनी
नई दिल्ली–११००४८
४–४–८०

मान्यवर गुप्त जी,

आपका ३०।३ का कृपा-पत्र मिला। इसके पूर्व मुझे श्री उदय शंकर दुबे का पत्र मिल चुका था और उन्होंने सारे समाचार मुझे दिए थे। आपने मेरे पत्र को इतना आदर दिया और मेरा प्रणाम मिश्र जी तक पहुँचाया तथा 'रीतिकाल .... । पुस्तक की समीक्षा लिखने को भी प्रस्तुत हो गए, यह सब आपकी उदारता है। अधिक क्या कहूँ।

इस अवस्था में भी आपके स्वस्थ मन और शरीर की याद करके सुख पा लिया करता हूँ। अवकाश के बाद भी आपने अवकाश ग्रहण नहीं किया है तथा पूर्ण रूप से

सक्रिय बने हुए हैं। यह भगवत्कृपा है। बड़े भाग्य से मिला करती है। बिपरीत परिस्थितियों से जूझने का सुख किसी 'सूरमा' में ही हुआ करता हैं। यही पानी है। यही जीवन की 'आब' है।

आपके नए ग्रंथों की सूचना मिली। जब ये प्रकाशित होंगे, तब इन्हें कालिज में खरीदकर पढ़ूँगा।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के संबंध में स्वर्गीय अशोक जी से बात-चीत हुआ करती थी। शुक्ल जी ने उनके साथ न्याय नहीं किया था। आगरा के उदय शंकर शास्त्री एक बात कहा करते हैं कि पाण्डेय जी चिल्लाते रहे कि हिन्दी के लोगों को ऐतिहासिक दृष्टि का विकास करना चाहिए, किन्तु लोगों ने उनकी बात सुनी तक नहीं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में इस पक्ष की चर्चा थी। इसी तरह 'गौ० ही० ओझा स्मृति ग्रंथ' के संपादकों में से एक श्री पृथ्वी सिंह मेहता मेरे परिचित हैं। वे जयचंद विद्यालंजार के साथियों में से हैं। ये सब लोग यही शिकायत करते हैं कि हिन्दी खास कर मध्य काल को अपनी ऐतिहासिक दृष्टि के न विकसित होने से इसका बहुत अहित हुआ है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि अहित हो रहा है। आप चूँकि आ० चंद्रवली पाण्डेय की ग्रंथावली का संपादन करने जा रहे हैं, अतः मौका मिलने पर इसी पृष्ठ भूमि पर मेरी पुस्तक देखिएगा। वस्तुतः मैंने ब्रजभाषा की परंपरा को नष्ट करके 'वर्नाक्यूलर' चलाने की ब्रिटिश योजना को सबसे घातक पाया है। जो विश्वविद्यालय पनप रहे हैं, वे सब इसी वर्नाक्यूलर परंपरा की देन हैं, अतः इन्हें तो रीतिकाल को ध्वस्त ही करना है। यही इनके मूल में है। हमलोग जो रीतिकाल की लड़ाई लड़ रहे हैं या उसके नाम पर एका करना चाहते हैं, उन्हें यह (रीतिकाल का प्रेम) सामाजिक विरासत के रूप में कहीं अन्यत्र से मिला है। अब यह स्रोत पूर्वतः सूख गया है। मशीनों ने उसका चिह्न भी नहीं रहने दिया। ठाकुर कवि ने कहा था—

घर घर देखियत हरख हिरानो है

'हरख' अब हमारे गांवों में कहीं नहीं रह गया। शहरों में भी नहीं आया। यह सामाजिक संदर्भ भी साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक है।

उसी तरह कभी कभी पत्र लिख दिया करें। दुबे जी बड़े जीवंत व्यक्ति हैं मिर्जापुरी कँटवासी।

आपका

म० प्र० सिंह

१५६. राजेश दीक्षित, मथुरा

[राजेश दीक्षित मथुरा में रहते हैं, कवि, लेखक, पत्रकार हैं। डा० गुप्त का थोड़ा परिचय इनसे है। डा० गुप्त इन्हें तब से जानते है जब वे १९४५-४८ में फीरोजाबाद में थे।]

२४२

राजेश दीक्षित | कृष्णा पुरी, मथुरा

कवि, लेखक, पत्रकार | ४।४।८०

सम्माननीय श्री गुप्त जी,

सादर। मेरी पुत्री 'ब्रज क्षेत्र के मंचीय हिन्दी कवियो का साहित्यिक योग दान' विषय पर (जिसमें ब्रज क्षेत्र से संबंधित रहे कविगण भी सम्मिलित हैं) तथा मेरे अनुज 'स्वातंत्र्योत्तर वीर-काव्य का शिल्पगत अध्ययन विषय पर शोध कार्य कर रहे हैं।

इन दोनों के लिए भक्त जी के संबंध में कुछ जानकारी चाहिए, मैंने भक्त जी को इस विषय में पत्र लिखा था। उन्होंने सूचित किया है कि मैं आपसे संपर्क करूँ। आपके द्वारा सभी अपेक्षित जानकारियाँ मिल जाएँगी। अस्तु यह पत्र आपकी सेवा में प्रेषित है।

मैंने सुना हैं कि भक्त जी कुछ दिनों तक एटा जिले की अवागढ़ इस्टेट में दीवान रहे थे। कृपया तथ्य की पुष्टि करें तथा उनके अवागढ़ निवास की अवधि का विवरण दें। यदि ऐसा नहीं है, तो भी सूचित कर दें।

संलग्न विवरण पत्रक को कृपया भर कर भेज दें। साथ ही श्री भक्त जी कि रचनाओं के कुछ अंश जो शिल्प की दृष्टि से विशेषता लिए हों, भिजवाने का अनुग्रह करें।

आपकी इस कृपा के लिए मैं स्वयं तथा दोनों शोधार्थी बड़े आभारी होंगे।

शीघ्रता अपेक्षित है, क्योंकि मई में ही दोनों के शोध प्रबंध पूरे होकर टाइप में जाने हैं तथा जुलाई में प्रस्तुत भी करने हैं। अतः कृपया ८-१० दिन के भीतर हो वांछित सामग्री भेजने का अनुग्रह करें। उत्तर के लिए पता लिखा लिफाफा संलग्न है।

आशा है सानंद हैं।

आपका अपना
राजेश दीक्षित

१५७. राजेन्द्र कुमार शर्मा, भिंड

[राजेन्द्र कुमार शर्मा बरहद के एक विद्यालय में अध्यापक हैं। इन्होंने सरदार कवि पर शोध किया है। इसी सिलसिले में यह जून १९८१ में सुघवै आकर १५ दिन तक डा० गुप्त के अतिथि रहे थे।]

२४३।१

भिंड

श्री ७।५।८१

परम आदरणीय डा० सा०

सादर प्रणाम ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । आगे सरदार कवि पर शोध कार्य के दौरान आपके दर्शन एक बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में श्री उदय शंकर जी के माध्यम से हुए थे । पुनः दूसरी बार भाग्य से आप ना० प्र० सभा में मिल गए थे । आपकी भेंट से मुझे अपार हर्ष हुआ था, कई बार सुयवै आकर आपको कष्ट देना चाहता था । परन्तु संकोचवश नहीं आ सका । मैं अभी तक सरदार कवि की सामग्री ढूंढ़ने में ही व्यस्त बना रहा । कुछ आलस्य और प्रमादवश लेखन कार्य नहीं कर सका । यद्यपि सामग्री पर्याप्त एकत्रित कर ली है । इसी वर्ष मुझे प्रबन्ध पूरा कर देना चाहिए । लिहाजा चिन्ता अधिक हो गई है । विश्वास के साथ आपको पत्र लिख रहा हूँ यदि आप कुछ समय दे सकें तो बड़ी कृपा होगी । वापसी पत्र में आपकी स्वीकृति की प्रतीक्षा रहेगी । आपको मैं किस समय आकर कष्ट दूँ । अवश्य लिखिएगा । मेरा अवकाश ३० जून तक है । जब भी आपकी आज्ञा होगी, मैं सुयवै चला आऊँगा । शेष कुशल है । घर में सभी को यथा योग्य कहिएगा ।

राजेन्द्र कुमार शर्मा
शोध छात्र

सुयवै किस मार्ग से पहुँचूगा, यह भी लिखिएगा ।

२४४।२

श्री

बरहद
२६-८-१९८१

आदरणीय डा० साहब,

सादर नमस्कार ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । आपका कृपा-पत्र मिला । समाचार अवगत हुए । छाया तुलसी पर कार्य पूर्ण होकर प्रकाशकों को दे दिया है, यह जानकर बहुत खुशी हुई। इलाहाबाद में २-३ दिन रुका था । डा० किशोरी लाल से भी मुलाकात हुई थी । उन्हीं पर यह शृंगार संग्रह था, जिसमें सरद का चित्र भी है । मैंने चित्र ले लिया है । यह शृंगार संग्रह उन्होंने ५०।-में खरीदा है । इसी ग्रंथ के शिवशंकर जी ने मुझसे १७५।- माँगे थे । उदय शंकर जी व शिव शंकर जी से मुझे कोई सामग्री प्राप्त नहीं हुई है ।

डा० मुंशी राम जी ने एक साथ ही समस्त शोध ग्रंथ टाइप करवाने को कहा है । मैं दशहरा और दीपावली के बीच इलाहाबाद आने की सोच रहा हूँ । तब फिर पत्र लिखूंगा । यदि कोई महत्वपूर्ण जानकारी मिले, तो अवश्य सूचित करिएगा । शेष कुशलता है ।

आपका
राजेन्द्र

१५८ नाम प्रसाद सत्संगी, आजमगढ़

[सत्संगी जी गाजीपुर के रहने वाले थे । पहले यह दयालबाग आगरा में प्राध्यापक थे । बाद में यह शिबली कालेज आजमगढ़ में कामर्स विभाग के अध्यक्ष होकर आए । यहाँ यह डा० गुप्त के सहयोगी और मित्र थे । कार्य मुक्त होने पर यह अपने पुत्रों के साथ भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहे । यह गुरु भक्त सिंह के भक्त थे और उन्हीं जैसा लिखते थे । दिवंगत ।]

२४५

रा० स्वा०

४८सी/स्ट्रीट-२/सेक्टर-७
भिलाई–१, दुर्ग (म० प्र०)
४९०००१

बंधुवर,

दिनांक २०-७-८१

नमस्कार । मैंने अपने पिछले पत्र में भक्त जी के पास लिखा था कि डा० किशोरी लाल जी तो आए रहे होंगे, उनका भी कुछ हाल लिखिएगा । भक्त जी ने आपके विषय में जो कुछ भी लिखा है, उसे मैं नीचे कोष्टक में लिख रहा हूं ।

"डा० किशोरी लाल गुप्त इधर महीनों से आजमगढ़ की ओर नहीं पधारे, पता नहीं क्यों हमसे विरक्त हैं । महापंडित का पता है—डा० किशोरी लाल गुप्त, ग्राम व पोष्ट–सुघवै, वाराणसी"

भक्त जी इस वर्ष अपनी वर्ष-गाँठ मनाने मथुरा, गोकुल, बरसाने, वृंदावन इत्यादि तीर्थ स्थानों पर जा रहे हैं । वे द्वारिकाधीश की जन्माष्टमी एवं गोकुल की षष्ठी देखकर वापस आवेंगे ।

मैं सपत्नीक यहाँ ३१ मई ८१ को वाराणसी से आ गया । १० अगस्त ८० से ५ जनवरी ८१ तक गौहाटी असम अपने दूसरे पुत्र विजय के यहाँ रहा । इस दौरान हृदय के दो घातक दौरे पड़े और डेढ़ महीना माली गांव के केन्द्रीय अस्पताल के Intensive Care Unit में रखा गया था । रेलवे के कर्मचारियों के माता पिता उनके परिवार में नहीं गिने जाते, अतः अस्पताल में रहने के कारण सैकड़ों रुपये व्यय करने पड़ गए । जरा चलने फिरने के योग्य होने पर यह सोचकर कि स्यात असम की

जलवायु अनुकूल नहीं पड़ रही है, ५ जनवरी को वाराणसी आ गया और B. H. U. के हृदय विशेषज्ञ डा० सोमानी द्वारा अपना इलाज कराता रहा ।बनारस मेरे बड़े पुत्र दयाल बाबू गये और मुझे चिकित्सा के हेतु भिलाई लिवा आये। यहाँ के अधिकारी मुझे उनके परिवार का सदस्य मानते हैं। अतः मेन अस्पताल में निःशुल्क चिकित्सा चल रही है। पहले से अब काफी स्वस्थ हूँ, पर शायद जोड़ों में Prostrate gland की शल्य चिकित्सा के लिए यहाँ के अस्पताल में आना पड़े। दयाल बाबू की माँ भी हृदय की रोगी हो गई हैं। उनकी भी दवा यहाँ हो रही है। २० अगस्त ८१ भाद्र कृष्ण पंचमी को मेरी ७५वीं वर्षगाँठ पर आपकी शुभकामनाओं की प्रतीक्षा करूँगा। श्रीमती गुप्त जी को सादर अभिवादन एवं बाल गोपालों को सस्नेह आशीर्वाद।

आपका बन्धु

नाम प्रसाद सत्संगी

१५९. लल्लन प्रसाद सिंह, उड़ीसा

[यह टेंसा, सुन्दरगढ़, उड़ीसा के स्पात हाईस्कूल में अध्यापक हैं। यह गाजीपुर जिले के रहने वाले हैं और हिन्दू डिग्री कालेज जमानियाँ में डा० गुप्त के छात्र थे।]

२४६.

टेन्सा

२५–७–८१

आदरणीय गुरुदेव,

सादर नमन्।

आपकी सेवा में कुछ दिनों पहले मैंने रजिस्ट्री द्वारा गीता का १८ अध्याय हिन्दी पद्यानुवाद दो किस्तों में भेज दिया है। किन्तु अभी तक मुझे स्वीकृति पत्र नहीं मिला है कि आपको मिला कि नहीं। मैंने साथ में पत्र भी दिया था, सो आपका इस सम्बन्ध में पत्र भी नहीं मिला। अतः मैं बहुत ही चिंतित हूँ। अतः आप कृपया एक कार्ड द्वारा मुझे सूचित करें कि आपको रचना मिली अथवा नहीं। मैं दुर्गा पूजा की छुट्टी में आपसे अवश्य भेंट करूँगा, जैसा कि मैंने पूर्व सूचना दे दिया है। शेष सब कुशल है। दूसरी रचना 'प्रणय वल्लरी' का काम चालू है। मैं परिवार सहित सानंद हूँ। आपके स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

आपके पत्र की प्रतीक्षा में—

आपका शिष्य

लल्लन प्रसाद सिंह

१६०. नर्मदेश्वर उपाध्याय, इलाहाबाद

[उपाध्याय जो जौनपुरी हैं, सुकवि हैं, आकाशवाणी इलाहाबाद से अब कार्यमुक्त हो चुके हैं। डा० गुप्त के मित्र।]

२४७.

प्रयाग
१ अगस्त १९८१

प्रिय भाई किशोरी लाल जी,

सस्नेह वंदे ।

आप जमानियाँ कालेज से अवकाश ग्रहण कर काशी के समीप निवास कर रहे हैं—यह तो पता था किन्तु यह ग्राम-स्थान सुधवै कहाँ है, इसका बोध जब आप करायेंगे तो होगा। यह पता हमें 'राष्ट्रभाषा संदेश' पाक्षिक में आचार्य द्विवेदी के सम्बन्ध में आपका मार्मिक निबन्ध पढ़ने पर मिला। लेख के अन्त में 'जो कबिरा कासी मरै, तो रामहिं कौन निहोरा' जैसे कथन से मेरा अमुमान है कि द्विवेदी जी के अंतिम समय में काशी से दिल्ली जाने वाली बात को जोड़ना संगत न होगा। जो डाक्टर उनके साथ ट्रेन में गये थे, वे या जो आत्मीय जन गए थे, संभवतः उनकी धारणा इसके विपरोत बैठती है। द्विवेदो जी बार-बार लोगों से यही कह रहे थे कि 'इस अंतिम समय में मुझे व्यर्थ काशी से बाहर मत ले जाओ।' लेकिन वे गंभीर रूप से अस्वस्थ थे और उन्हें दिल्ली ले जाना अनिवार्य था, तो प्रारब्ध उन्हें वहाँ ले गया।

हाँ ३ सितम्बर को भारतेन्दु जयन्ती पर ३० मिनट की एक विचार गोष्ठी हम प्रसारित करना चाहते हैं। उसमें पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र, डा० विजय शंकर मल्ल और डा० आनन्द कृष्ण के साथ आप भी सादर सम्मिलित होंगे। रेकॉडिंग ३१।८ को महमूरगंज स्थित वाराणसी केन्द्र पर होगी। उस तिथि में संभव है परिवर्तन भी हो, तो वाराणसी केन्द्र निदेशक श्री सुशील नारायण दुबे से फोन नं० ५२४०८ पर आप संपर्क पहले से अगली २०-२५ ता० तक अवश्य कर लेवें। विचारणीय विषय है—'युग प्रवर्तक रचनाकार भारतेंदु और उनका उदारचेता व्यक्तित्व'। आप और मल्ल जी कृतित्व की ही चर्चा करेंगे। मल्ल जी भी अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। उनके निवास पर या कहीं अन्यत्र कभी भेंट हो, तो उन्हें भी बता देंगे। अनुबन्ध पत्र का स्वीकृति-पत्र वगैरह हमारे केन्द्र पर भेज कर यह कार्य सँभालने की कृपा करेंगे।

आपका

नर्मदेश्वर उपाध्याय

१६१ जगदीश किंजल्क, छतरपुर

[जगदीश जी प्रसिद्ध साहित्यकार अंबिका प्रसाद दिव्य के पुत्र हैं, आकाशवाणी छतरपुर में कार्यरत हैं। डा० गुप्त से इनकी भेंट चिरगाँव में मुन्शी अजमेरी जी की शत वार्षिकी के अवसर पर हुई थी।]

२४८.

छतरपुर

आदरणीय गुप्त जी, २८-११-८१

सादर प्रणाम।

आपका २६-११-८१ का कृपा पत्र मिला। सूची कार्यालय को दे दी है आवश्यक कार्यवाही हेतु। मार्च के पूर्व कुछ न कुछ अवश्य संभव हो सकेगा।

आदेशानुसार पूज्य पिता जी (श्री अंबिका प्रसाद दिव्य) की पुस्तक दिव्य दोहावली के कुछ दोहे भेज रहा हूँ तथा परिचय भी। आशा है इससे आपका काम चल जायगा।

शेष कृपा है। आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं सानंद होंगे।

आपका
जगदीश 'किंजल्क'
आकाशवाणी
छतरपुर (म० प्र०)
४७१००१

१६२. डा० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, फैजाबाद

[डा० राधिका प्रसाद त्रिपाठी डा० गुप्त के बी० ए० के विद्यार्थी हैं। यह कामता प्रसाद सुन्दरलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय साकेत (फैजाबाद, अयोध्या) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने अच्छा शोध कार्य किया है।]

२४९

छायातप
नहर बाग
फैजाबाद

आदरणीय डॉ० साहब, २३।१२।८१

सादर चरण स्पर्श।

इस वर्ष की पाठ्यक्रम समिति की बैठक हो गई। आपका नाम परीक्षक सूची में उचित स्थान पर अंकित कर दिया गया है। इस बीच 'साईं दाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य' शीर्षक ग्रंथ पर संप्रदाय वालों ने मुकदमा दायर कर दिया है। उनका कहना है कि उनकी पूजा की वस्तु होने से उनकी धार्मिक भावना को चोट लगी है और उनका धार्मिक कापीराइट इन्फ्रिंज हुआ है। मुकदमें में कुछ नहीं है, परन्तु उलझन बढ़ गई है। इधर स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। मलूकदास वाली पाण्डुलिपि देखने एक बार आना है। कृपया अपने कार्यक्रम की सूचना देकर अनुगृहीत करें। मधु प्रकाशन के

'सुजान शतक' वाले आर्डर की कार्यवाही पूरी हो गई। उनका भुगतान शीघ्र ही हो जायगा। शेष कृपा। नव वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ—

आपका

रा० प्र० त्रिपाठी

१६३. हेमलता कांसरा, जालंधर

[गुरु नानक देव विश्व विद्यालय अमृतसर में १९८१-८२ में एम० फिल० की छात्रा। अपरिचिता।]

२५०

आदरणीय डाक्टर साहब,

सादर नमस्कार।

सविनय निवेदन है कि मैं गुरु नानक देव विश्वविद्यालय में एम० फिल्० की चतुर्थ पाठ्यचर्या के अन्तर्गत 'कवि ग्वाल की अज्ञात रचना कवितावली का संपादन' नामक विषय पर लघु शोध प्रबंध लिख रही हूँ। इस रचना के आरंभिक १२ पन्ने तथा बीच के मिलाकर लगभग ४० पन्ना नहीं हैं। इस रचना का नाम 'कवितावली' सरदार शमशेर सिंह द्वारा यादृच्छा दिया गया है, जब कि इस रचना में पुष्पिका भी नहीं दी गई। यह रचना 'समस्या के कवित्त', 'चित्र काव्य', 'रोजी के नाम टीका', 'प्रश्नोत्तर' 'वसंत के कवित्त', 'गोपी पच्चीसी' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त है। इस प्रकार की ग्वाल की रचना आपके पास उपलब्ध हो अथवा आपकी जानकारी में यह रचना और कहीं उपलब्ध हो, तो आप इसकी संक्षिप्त जानकारी देकर मुझे कृतार्थ करें।

मैं जानती हूँ कि आप रीतिकालीन मर्मज्ञ विद्वानों में से हैं तथा दैनंदिन कार्यों में व्यस्तता आपके साथ जुड़ी है, लेकिन फिर भी मैं आशा करती हूँ कि आप मेरे पत्र का उत्तर देकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

पत्र की इन्तजार में—

भवदीया

हेम लता कांसरा

६ कीर्तिनगर

लाडो वाली रोड

प्राप्त ३१-१२-८१ जालंधर शहर (पंजाब)

१६४. आत्माराम शर्मा 'अरुण', दिल्ली

[अरुण जी सच्चे शोधी हैं। चन्द्रशेखर वाजपेयी पर आपका शोध कार्य है। आप दिल्ली के किसी महाविद्यालय में हैं। डा० गुप्त के आप लेखनी मित्र हैं।]

२५१/१

एच-३/ए, पुराना गोविंदपुरा
गली नं० ७, परवाना रोड
दिल्ली
दिनांक ८–२–८२

आत्मा राम शर्मा 'अरुण'
एम. ए. हिन्दी, संस्कृत
पी-एच. डी.

क्रमांक..........

श्रद्धेय डा० गुप्त जी,

सादर अभिनन्दन ।

सूचनार्थं निवेदन है कि 'महाकवि चन्द्रशेखर वाजपेयी और उनका साहित्य' नामक शोध प्रबंध पर मुझे मेरठ वि० वि० से पी-एच. डी. की उपाधि मिल गई है। मेरे उक्त शोध प्रयास का बहुत श्रेय आप को भी है। आप मेरे पत्रों का यथा समय प्रत्युत्तर भी देते रहे हैं तथा समाधान परक मार्ग दर्शन करके आपने मुझे प्रोत्साहित भी किया है। अतः बधाई स्वीकार कीजिए।

परिषद पत्रिका जनवरी १९८२ में मेरा 'रत्नाकर की रचना प्रक्रिया' शोध निबंध प्रकाशित हुआ है। आप कृपया इसे गहराई से देख परखकर अपनी सम्मति भेजिए। यदि आप ठीक समझें तो अपनी प्रतिक्रिया प्रकाशनार्थं संपादक पत्रिका के नाम भी भेज दें। मुझे स्मरण है ब्रजभारती में छपे मेरे 'करणेश महापात्र' विषयक लेख पर भी आपकी प्रशंसनीय टिप्पणी ब्रजभारती में छपी थी।

रत्नाकर पर पुनर्शोध अपेक्षित है और उपयोगी भी। यह एक कटु सत्य है कि रत्नाकर ने चन्द्रशेखर (के) कृतित्व का मनमाना उपयोग किया है। अयोध्या में उनके साथी थे पं० रामनाथ जोतिसी। 'बिहारी रत्नाकर' के लिए उन्होंने जयपुर से अपेक्षित सामग्री का संकलन कर रत्नाकर जी की बड़ी सहायता की थी। इनका एक प्रकाशित काव्य 'श्री रामचंद्रोदय काव्य' भी मैंने मनोयोग पूर्वक देखा है। इस पर समीक्षात्मक पुस्तक भी लिख दी है। सत्यता है कि यह काव्य भी राम नाथ ज्योतिषी की मूल रचित कृति नहीं है। 'ज्योतिषी' उपनाम छाप कर बलपूर्वक कृत्रिम-प्रयोग ही केवल उनकी मौलिकता है। इस काव्य पर सन १९२७ में २०००/ रु० का तृतीय देव पुरस्कार भी पं० राम नाथ ज्योतिषी को मिला था। आश्चर्य है कि मूलतः तह में जाने का अभी तक भी किसी विद्वान ने प्रयास नहीं किया है।

इसी आधार को लेकर "चन्द्रशेखर वाजपेयी के कर्तृत्व के परिप्रेक्ष्य में जगन्नाथ दास रत्नाकर और राम नाथ ज्योतिषी की रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन" विषय पर मैं

डी० लिट० के लिए प्रयत्नशील हूँ। आपका आशीर्वाद और सहयोग मेरे कार्य में बड़ा भारी संबल सिद्ध होगा—यही मुझे आशा है।

विश्वास है आप सानन्द एवं स्वस्थ हैं।

आपका ही
आत्माराम शर्मा 'अरुण'
८-२-८२

पुनश्च :—

श्रद्धेय डा० विजय पाल सिंह (वाराणसी) मेरे शोध-परीक्षकों में एक रहे हैं। मौखिक परीक्षा के लिए भी वि० वि० ने उन्हें ही नियुक्त किया था। मेरे डी० लिट० के लिए प्रस्तावित शोध विषय को उन्होंने सर्वथा उपयुक्त, उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बताया है। सूचनार्थ निवेदन है।

आत्माराम शर्मा 'अरुण'

'रत्नाकर की रचना प्रक्रिया' लेख मैंने एक गोष्ठी में पढ़ने के लिए लिखा था। किसी कारण गोष्ठी नहीं हो सकी। पश्चात मैंने इसकी प्रतियाँ बहुत से उच्च विद्वानों को सम्मत्यर्थ भेजी थीं। जिनमें से ५०-५२ विद्वानों की सम्मतियाँ आ गई थीं। सभी ने मेरे उपयोगी श्रम और महत्वपूर्ण शोध की प्रशंसा की है।

आत्माराम शर्मा 'अरुण'

२५२/२

५५९।१७ अरुण शोध सदन
डा० आत्माराम शर्मा 'अरुण' विजय पार्क, मौजपुर, दिल्ली
११००५३

दिनांक ९-१-८४

आदरणीय डा० गुप्त जी,
सादर नमस्कार।

आपका २।१ का कृपा पत्र सात जनवरी की सायं मिला। वृतांत ज्ञात हुए।

रामनाथ वाजपेयी की रचना प्रकाशित हो जाय। इसमें दर-असल मेरी भी रुचि है। आपको तो पता ही है कि मैंने चन्द्रशेखर वाजपेयी के कर्तृत्व पर शोध कार्य किया है। नई खोज से ज्ञात हुआ है कि चन्द्रशेखर वाजपेयी उक्त उक्त रामनाथ वाजपेयी के पौत्र थे और मौजमाबाद निवासी थे। इस बीच मैं हरिद्वार गया था। वहाँ एक पंडे की बही से कुछ विशेष और अज्ञात तथ्य हाथ लगे हैं। मैं बही के उन उन पृष्ठों की फोटोस्टेट प्रतियाँ प्राप्त करने के प्रयास में हूँ। वे पैसा अधिक माँगते थे, उतना उस समय मेरे पास था नहीं। अतः विवश रहा।

ये घन्नी के वाजपेयी थे और उदय बाबा की आसामी थे। यह सब उक्त पंडे की बही में भी लिखा है। कवि शेखर स्वयं भी दो बार हरिद्वार गए थे। उक्त बही में उनके हस्ताक्षर भी हैं। इस वंश में लगातार ८–७ पीढ़ी तक काव्य सृजन हुआ है। इस वंश के जितने भी कवि और उनके काव्य ग्रंथ प्रकाश में आ सकें, अच्छा ही है। इस दृष्टि से मैं रामनाथ वाजपेयी के 'रस-भूषण' को प्रकाशित कराने में संलग्न हूँ। जहाँ तक भी होगा, इसे प्रकाशित कराके छोड़ूंगा। आपका आशीर्वाद और सहयोग चाहिए।

मैं चाहता हूँ कि प्रकाशित रचना १०० या कुछ अधिक पृष्ठों की हो जाए। आप परामर्श दें कि किस प्रकार यह पृष्ठ संख्या बढ़ाई जा सकती है। आपने जो कवि परिचय और ग्रंथ परिचय सम्बन्धी सामग्री तैयार की है, उसे सम्पादकीय (अथवा प्राक्कथन) में लिया जाय, मैं भूमिका (यदि आप अनुमति दें) कुछ पृष्ठ में लिख दूंगा। इसमें कवि रामनाथ वाजपेयी विषयक नई खोज के आधार पर परिचय, बेनी वाजपेयी से उनका सम्बन्ध तो आ ही जाएगा, आपका परिचय और साहित्यिक सेवा भी मैं इसमें देना चहूँगा। आप यदि अन्यथा न लें तो अपना परिचयात्मक विवरण भेज दें। पी-एच० डी० और डी० लिट्० के शोध प्रबन्ध कहाँ-कहाँ से प्रकाशित हुए, अन्य संपादित, समीक्षात्मक रचनाएं जो प्रकाशित हुईं—अप्रकाशित कौन-कौन सी हैं। ये बातें आप दे दें। मैं यह भी चाहूँगा कि आपकी साहित्यिक सेवाओं पर शोध हो। शोधार्थी के सामने अधिक विषमताएँ न आएँ, इसीलिए मुख्य-मुख्य सी बातें मैं आपके सम्बन्ध में भी इस भूमिका में देना चाहूँगा। आपसे निवेदन है कि अपना परिचय साहित्यिक सेवा आदि आप लिखकर विस्तार से भेज दें।

प्रभु ने चाहा तो आप पर भी और रामनाथ वाजपेयी पर भी मैं शोध कराने में सफल हो जाऊँगा।

दूसरे यदि रस भूषण की टीका भी कर दी जाए तो कैसा रहेगा ? छन्द के नीचे उसका अर्थ साथ-साथ दे दिया जाय, विशेष पाद टिप्पणी में टिप्पणी दे दी जाए। इससे भी कुछ पृष्ठ संख्या बढ़ जाएगी ?

पैसा चाहे मुझे लगाना पड़े, मैं उसे प्रकाशित कराके छोड़ूंगा। प्रकाशन होने पर १०० प्रतियाँ आपके पास भिजवा दूँगा। निश्चित रहें। सामग्री सब आपकी है और सुरक्षित है। यह आपके ही नाम से छपेगी। यदि आप अधिक पृष्ठ नहीं चाहते, तो जितने भी पृष्ठ हैं, मैं उन्हें ही छपवाने का उपयोग करूँगा। Copy right के विषय में भी बता दीजिए। यदि १०० प्रतियाँ आपको देना स्वीकार करके कोई प्रकाशक Copy right लेना चाहे, तो उससे क्या बातें करूँ ? जैसा आप कहेंगे, मैं तो वैसा ही कर सकता हूँ। बाद में लिखित अनुबन्ध में तो दिक्कत नहीं आएगी।

पांडुलिपि आपकी है, आपकी ही रहेगी ! यदि प्रयास करने पर किसी भी तरह प्रकाशन की बात बनती दिखाई न दे, तो वापस भेज दूँगा । विस्तार से सब बातों पर विचार करके उत्तर भेज दें, प्रतीक्षा करूँगा ।

आशा है सानंद है ।

विनीत

आत्माराम शर्मा 'अरुण'

पुनश्च :—

पुस्तक का नाम "रामनाथ वाजपेयी 'कवि राम' और उनका रस भूषण" ही मेरे विचार से ठीक रहेगा । स्फुट छन्द परिशिष्ठ में दे दिए जायेंगे ।

आत्माराम शर्मा 'अरुण'

१६५. कमल किशोर गोयनका, दिल्ली

[अपरिचित]

डा० कमल किशोर गोयनका
ए–१८ अशोक विहार, फेज–१
दिल्ली ११००५२
७ फरवरी, ८२

आदरणीय डा० गुप्त,

सादर नमस्कार ।

आशा है आप स्वस्थ सानन्द हैं । सम्भवतः मैं आपके लिए अपरिचित न हूँ प्रेम चन्द पर मेरे लेख तथा पुस्तकें, हो सकता है, आपकी नजर में गुजरे हों । इधर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के संस्मरणों का संकलन तैयार कर रहा हूँ । राष्ट्रभाषा संदेश (१० जून, ८१) में आपका संस्मरण छपा है । मैं इसे अपने संकलन में लेना चाहता हूँ । कृपया लिखें क्या आप उसमें कुछ अन्य प्रसंग जोड़ना चाहेंगे या वर्तमान रूप में ही संकलित करने की अनुमति प्रदान करेंगे ।

क्या द्विवेदी जी के साथ आपका कोई फोटो है अथवा उनके लिखे पत्र । मैं उनकी प्रतिलिपि चाहूँगा ।

राष्ट्रभाषा में आपका जो पता लिखा है, उसी पर पत्र दे रहा हूँ । कृपया उत्तर दें और अपना आशीर्वाद भी ।

सादर

आपका

कमल किशोर गोयनका

१६६. उषा प्रधान, सीधो (म० प्र०)

[यह रीवाँ के प्रसिद्ध कवि, राम कलेवा के रचयिता रामनाथ प्रधान की वंशजा हैं। अपरिचिता।]

२५४.

शास० कन्या उ० मा० विद्यालय
सोधी
पिन ४८६६६१ (म० प्र०)
दि० १५-२-८२

सेवा में,
श्रीमान डॉ० किशोरी लाल जी गुप्त
प्राचार्य
हिन्दू डिग्री कालेज, जमानिया
गाजीपुर

आदरणीय डा० साहब,
सादर प्रणाम।

निवेदन है कि मैं श्रीमान की महान कृति 'सरोज सर्वेक्षण' में उल्लिखित रीवाँ के कविवर श्री 'रामनाथ प्रधान' के बारे में शोध कार्य कर रही हूँ। सर्वेक्षण के पृष्ठ ६००, ६०५, ६०६ में इनका विवरण अंकित है तथा पृष्ठ ४२८ में भी संक्षिप्त विवरण है, पृष्ठ ९६३/८७८ में संदर्भ भी है।

सर्वेक्षण तथा मेरी खोज के अनुसार इनका कबीर बीजक की टीका करना सही है। साथ ही इन्होंने राम सुधानिधि धनुषयज्ञ, रामकलेवा, राम होरी रहस्य तथा प्रधान नीति ग्रंथ लिखे और कार्तिक माहात्म्य तथा मार्ग मास महिमा अनूदित ग्रंथ लिखे। किन्तु सर्वेक्षण के पृष्ठ ६०६ में अंकित 'अंगद रावण संवाद' को कोई जानकारी अन्यत्र कहीं से नहीं मिली। चित्रकूट शतक इनका लिखा नहीं है। अंगद रावण संवाद के संबंध में सर्वेक्षण से भी बहुत स्वल्प मात्र की जानकारी मिली, तथापि उसका परीक्षण आवश्यक है जिससे शोधकार्य सही दिशा में आगे बढ़ सके।

अस्तु श्रीमान से प्रार्थना है कि यदि वह ग्रंथ 'अंगद रावण संवाद' प्रकाशित हो तो उसका पता साथ ही उसके कुछ उद्धरण व टिप्पणी देने की कृपा की जाय, जिससे उसका अध्ययन किया जा सके।

इस सम्बन्ध में मैंने डा० भगवती प्रसाद सिंह जी से भी पत्र व्यवहार किया था और उन्होंने कृपापूर्वक आपके ग्रंथ के बारे में सुझाव दिया था।

पत्र और शुभाशीर्वाद की प्रतीक्षा में—

सुविधा के लिए पता सहित लिफाफा संलग्न है।
पता-कुमारी उषा प्रधान C/o प्राचार्य
शास० कन्या उ० मा० विद्यालय सीधी (म० प्र०)

हार्दिक कृतज्ञता पूर्वक
भवदीया
उषा प्रधान

१६७. सुरेन्द्र, सोरों

[डा० गुप्त की सुरेन्द्र जी से सोरों में ही डा० रामकृष्ण शर्मा के माध्यम से एक बार भेंट हुई थी ।]

२५५

कासगंज गेट, सोरों (एटा)

क्रम संख्या.......... दिनांक..........

पूजनीय डॉ० गुप्त,

सादर चरण स्पर्श ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु' । प्रथम प्रेषित पत्र का उत्तर न पाकर व्यथित यह शिष्य पुनः स्मरण हेतु पत्र प्रेषित कर रहा है। निश्चय ही व्यस्त साधना में अवकाश के क्षण नहीं हैं, फिर भी मैं यह विश्वास करता हूँ कि आप इस शोधार्थी के लिए अपने अमूल्य समय में से थोड़ा सा समय अवश्य देंगे ।

आप परमानंद सुहाने कृत 'षटऋतु हजारा' की भूमिका में उल्लिखित 'भूषण हजारा' से सम्बन्धित विवरण तथा रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'भूषण ग्रंथावली' का सामान्य परिचयात्मक विवरण अवश्य प्रेषित कर शोधार्थी पर उपकार करेंगे ।

आपने 'भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई' ग्रंथ में भूषण के जन्म संवत् की चर्चा नहीं की है । आपकी दृष्टि में 'भूषण' का जन्म किस संवत् के लगभग होना चाहिए ? और उसका प्रामाणिक आधार क्या माना जाय ? भूषण के नाम की चर्चा में आपने प्रारंभ में भूषण का नाम 'व्रजभूषण' स्वीकार किया था, इधर डा० प्रभात ने 'बृतांत मुक्तावली' ग्रंथ प्राप्ति की सूचना दी है, जो भूषण के सम-सामयिक हैं तथा उनका नाम व्रजभूषण व भणिता 'भूषण' है । इस ग्रंथ के संदर्भ में आपका क्या मत है ?

मुझे विश्वास है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे । शोध प्रबंध का उत्तरार्द्ध भाग लगभग पूर्ण हो चूका है । आपके निर्देश प्राप्त होने के बाद ही मैं टंकण का कार्य प्रारंभ कर दूंगा । आपके आशीर्वाद की आकांक्षा के साथ—

सुरेन्द्र सोरों

पुनश्च—

आचार्य श्री विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सूचित करने की कृपा करें । विश्वास है ईश्वर की कृपा से निश्चय ही स्वास्थ्य लाभ होगा ।

सुरेन्द्र

सुधवै डाकखाने की मुहर ८-३-८२

१६८. शीला धर्माधिकारी, बुढ़ार, शहडोल (म० प्र०)

[अपरिचिता]

२५६.

शीला धर्माधिकारी
हिन्दी व्याख्याता
शासकीय स्नातक महाविद्यालय
बुढ़ार (जि० शहडोल)
१४–४–८२

परम श्रद्धेय डाक्टर साहब,
सादर अभिनन्दन ।

यद्यपि मैं आपके लिए नितांत अपरिचिता हूँ, तथा पत्र लिखने की धृष्टता कर रही हूं, आगे कुछ निवेदन करूँ, आपकी सुविधा के लिए मैं अपना परिचय लिख रही हूँ, मेरा पूरा नाम कु० शीला जनार्दन धर्माधिकारी है, अमलाई पेपर मिल से ५ कि० मी० दूरी पर स्थित बुढ़ार के महाविद्यालय में ६ वर्षों से अध्यापन कार्य कर रही हूं, साथ ही 'मध्यकालीन राम साहित्य के सन्दर्भ में महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित राम काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध कर रही हूँ, उक्त विषय में शोध हेतु यदि आपका थोड़ा बहुत सहयोग भी प्राप्त हुआ तो उसे मैं अपना सौभाग्य समझूंगी, आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि मुझे निराश नहीं होना पड़ेगा ।

कष्ट व असुविधा के लिए क्षमा याचना के साथ,

आशीर्वाद की इच्छुक
शीला धर्माधिकारी

पत्र व्यवहार का पता :—

बी/३९, ओ० पी० मिल्स
पो० अमलाई पेपर मिल
जिला–शहडोल (म० प्र०)
पिन कोड—४८४११७

१६९. डा० शिव गोपाल मिश्र, इलाहाबाद

[डा० शिव गोपाल मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र विभाग में हैं । इनकी पत्नी डा० राम कुमारी मिश्रा (आत्मजा डा० उदय नारायण तिवारी) वहीं हिन्दी विभाग में हैं । दोनों डा० गुप्त के परिचित और मित्र हैं, दोनों साहित्यकार हैं ।]

२५७.

University of Allahabad
Department of chemistary
[U. G. C- Centre of special Assistance

२५ अशोक नगर
इलाहाबाद–१
१०-७-८२

आदरणीय गुप्त जी,

आपके पदार्पण से मेरा परिवार अत्यन्त पुलकित हुआ। यह आपकी विशाल-हृदयता ही थी कि आपने समय निकाल कर मेरे आग्रह को स्वीकार किया।

जैसा कि बातों के सिलसिले में मैंने कहा था, मुझे आपके उस लेख की प्रतिलिपि चाहिए जिसमें आपने ईश्वरदास के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

मैं तुलसीदास के छन्द प्रकाश तथा अन्य रचनाओं के लिए उद्योगशील हूँ। अगली बार जब आप प्रयाग पधारेंगे तो आपको अपनी पत्नी द्वारा लिखित बिहारी सतसई की टीका की एक प्रति दे सकूँगा।

शेष शुभ। आशा है आप कुशलपूर्वक होंगे।

आपका
शिव गोपाल मिश्र

१७०. गंगा प्रसाद बरसैयाँ

[गंगा प्रसाद जी महाराजा महाविद्यालय छतरपुर में हिन्दी विभाग में हैं। डा० गुप्त की इनसे भेंट चिरगाँव में मुन्शी अजमेरी जन्मशती वाले उत्सव में हुई थी।]

२५८.

श्री

महाराजा महाविद्यालय
छतरपुर (म० प्र०)
९–१०–८२

आ० डा० सा०

सा० नमस्कार

आपके दोनों पत्र यथा समय मिले थे। पहले पत्र के समय छतरपुर के चारों ओर घनघोर वर्षा होती रही लगभग दो सप्ताह। उस समय आपका आना ठीक नहीं था। फिर मैं अपने पारिवारिक उलझनों में फँस गया। मकान भी बदलना पड़ा, उस उम्र में यह बहुत कष्टकर और यातनादायी कार्य है। लेकिन भाग्य की विवशता है।

आपने जिस पुस्तक की जानकारी चाही है। उसका कोई पता नहीं चल रहा। भारती भवन का नाम अब सरस्वती सदन है। पुराना पुस्तकालय है किन्तु इस नाम

की पुस्तक वहाँ नहीं है। मैं अन्यत्र भी चर्चा करूँगा। आप चाहें तो इसके लिए श्री श्री निवास शुक्ल, एडवोकेट शुक्लाना छतरपुर को भी पत्र लिखें। मेरा सन्दर्भ दे दें। वे ज्यादा जानकार हैं।

विनीत
गंगा प्रसाद बरसैयाँ

१७१. श्याम मोहन त्रिपाठी, चित्रकूट

[श्याम मोहन जी पोद्दार इण्टर कालेज चित्रकूट में हिन्दी के प्रवक्ता हैं। डा० गुप्त ने चित्रकूट में इनका आतिथ्य ग्रहण किया है।]

२५९/१

चित्रकूट धाम

श्रद्धेय गुप्त जी।

आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। हम सब लोग सानंद हैं। आप श्री भागवतम् के अनुवाद में अधिक व्यस्त होंगे, फिर भी आशा करता हूँ कि अपना संस्मरण आप अवश्य भेजेंगे। मैं कुछ छन्द नीचे दे रहा हूं, जो आपके लेखन का आधार बनेंगे। प्रथम तो वे ही छंद दे रहा हूँ जो उन्होंनें नौका बिहार के समय सुनाए थे। ये ३ छन्द उनके शिवा सप्तक' के सात छन्दों में से हैं। उनकी 'श्रीमत्तगयेन्द्र महादेव माहात्म्य' नामक काव्य पुस्तक में संकलित हैं। ये शुद्ध गीता छन्द हैं—

चन्द्र मुख शिशु चंद्र चमकत, चंद्रमणि खचि चंद्रिकाम्
जटित नग नथ, निरत नवलम्, कलित कुण्डल कर्णिकाम्
माल मणि मुकतानि कंकन, कौधनो नूपुर प्रभाम्
नमः नौमि नमामि ते, प्रणमामि ते श्री शिवप्रियाम्।१।
मातु मैना पितु हिमांचल, तात गणपति भ्राजिताम्
बेलि उलही लहलही दल की दिगम्बर दीप्तताम्
केलि कौतुक कुंज कल कमनीय क्रीड़ा क्रीड़िताम्
नमः नौमि नमामि ते, प्रणमामि ते श्री शिवप्रियाम्।२।
निपुण नागरि नट नटेश्वरि, नृत्य ताण्डव नृत्यताम्
छूमि छम छम छनकि छननन, छनकि छनकत भूषणाम्
छमकि घिमि घिमि धकिट धुमकिट, ध्वनि मृदंगनि ध्वन्यताम्
नमः नौमि नमामि ते, प्रणमामि ते श्री शिवप्रियाम्।३।

काव्य ग्रंथ 'युगल तरंग' से

किरवान छन्द

इत रघुकुल चंद, उत राजैं नन्द-नन्द,
इत धनु सर वृंद, उत मुरली ललाम
इत सरजू को तीर, उत यमुना गँभीर,
इत संग सखा भीर, उत वृज की हैं वाम
इत तोतरे से बोल, उत करत किलोल
इत सुछवि अमोल, उत लाजैं कोटि काम
भज 'शंकर' कविंद, मन मुदित मिलिंद,
भज युगल पदारविंद, राम कृष्ण नाम।

काव्य 'ग्रंथ वैराग्य बत्तीसी' से

अरे मन मेरे, मोह माया तोहि घेरे फिरै,
त्याग सब दे रे, शांति सरिता वहायो कर
विश्व के कराल, विकराल भव बन्धन को
ज्ञान करवाल काटि फन्दन छुड़ावो कर
'शंकर सुकवि' हृदै कुंज, छवि पुंज,
मंजु मूरति विमंजु मृदु माधुरी बसायो कर
जग अभिराम, सुख सेय आठो याम,
श्यामा श्याम, श्यामा श्याम, श्यामा श्याम गायो कर

पत्र के उत्तर के रूप में आपका लेख ही पाना चाहता हूं, क्योंकि समय कम है। शेष शुभ।

भवदीय
श्याम मोहन

२६०/२

सुकवि शंकर अभिनन्दन समारोह

चित्रकूट धाम (बाँदा)

दि० १०-१२-८२

श्रद्धेय श्री गुप्त जी,

सादर प्रणाम

आपका पत्र मिला और प्रशंसनीय संस्मरण भी। पत्र में मार्ग दर्शन मिला है कि अभिनन्दन सुन्दर रूप में होना चाहिए भले ही कुछ देर हो जाय। वस्तुतः मैं भी ठीक ऐसा ही सोचता रहता हूँ, देखिए कैसे क्या होता है। चित्रकूट जैसी छोटी सी

बस्ती में दो चार लोग भी नहीं मिल पाते, जो सुरूचि सम्पन्न और सहृदय हों। अतः हमारे सम्मुख कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं। उनमें से प्रधान कठिनाई है अर्थ व्यवस्था की। कोई उद्योग इस दिशा में सफल होता दिखता नहीं। आप कुछ इस ओर भी हमारा मार्ग दर्शन करें। ग्रंथ अब प्रेस में जाने का समय आ गया और सामग्री भी प्रायः तैयार है, पर संकट है पैसे का। सहयोगी नगण्य से हैं। मैं क्या करूँगा, समझ नहीं पाता। आपका आशीश और निर्देश मिलता रहे, देखा जायेगा। यदि प्रयाग आना हुआ, तो भेंट करूँगा। सम्भव हो तो प्रयाग आने के बाद अपना पता सूचित करियेगा पत्र द्वारा।

जमानियाँ के किसी इण्टर कालेज में ही सम्भवतः मेरे एक मित्र अध्यापक हैं श्री श्याम सुन्दर गुप्त। यदि जानकारी में हों तो लिखियेगा। आपके सहयोग के लिए शत शत आभार। कृपा बनाये रहें। शेष शुभ।

पत्र की प्रतीक्षा में—

भवदीय
श्याम मोहन त्रिपाठी
सेठ राधाकृष्ण पोद्दार इण्टर कालेज
चित्रकूट धाम, (बाँदा)

२६१/३

आराधना

(साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठन)

चित्रकूट धाम २१२०४ (बाँदा)

दिनांक—१२-४-८६

पत्रांक—२०५९।८६

सेवा में--डा० किशोरी लाल गुप्त

माननीय महोदय,

'आराधना' संगठन के द्वारा चित्रकूट पर एक सर्वेक्षण परक संदर्भ-ग्रन्थ 'चित्रकूट दर्पण' प्रकाशित करने का विचार है, एतदर्थ आपसे 'वाल्मीकि आश्रम और चित्रकूट' विषय पर लगभग ४०० शब्दों का एक आलेख आमंत्रित करते हुए हम आशा करते हैं कि आपका कृपा पूर्वं सहयोग संगठन को अवश्य मिलेगा और हमें उक्त विषयक सामग्री १५ मई ८६ तक अवश्य उपलब्ध हो जायेगी।

इस सहयोग के लिए संगठन आपका सदैव आभारी रहेगा।

सादर—

श्याम मोहन त्रिपाठी

सम्पर्क : दिनेश चौहान
रामलीला मैदान, पुरानी बाजार
कर्वी (बाँदा) २१०२०५

१७२. बैजनाथ मिश्र, वाराणसी

[मिश्र जी डा० गुप्त के दीक्षा-गुरु श्री जगत नारायण आचार्य के जामाता हैं। इनकी पत्नी डा० किरन मिश्र भी विदुषी महिला हैं। डा० गुप्त का दोनों से बहुत अच्छा सम्बन्ध है।]

२६२.

मधुमती
बी० २।२३८ भदैनी
वाराणसी

आदरणीय डा० साहब,
सादर नमस्कार।

इधर बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला, न आपके दर्शन ही प्राप्त हुए। आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं। यहाँ भी सब कुशल है।

कुछ दिनो पूर्व आजमगढ़ में आपका भाषण हुआ था। जिसमें आपने हिन्दी साहित्य के सात तुलसियों के नाम गिनाए थे। गोस्वामी तुलसीदास और सतसईकार तुलसीदास की विशेष रूप से चर्चा हुई थी। आपने सतसईकार तुलसीदास का निवास स्थान लोलार्क और गंगा के बीच में बताया है, किन्तु परम्परानुसार यह स्थान गोस्वामी तुलसीदास का माना जाता है। अतः इस विषय में विशेष रूप से प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

दैनिक 'आज' में इस विषय में कोई रिपोर्ट प्रकाशित दिखाई नहीं पड़ी। मैंने १२-१०-८३ की N. I. P. में यह रिपोर्ट देखी थी।

आशा है आप उपर्युक्त भ्रम का निवारण करेंगे। परिवार-सहित अपना समाचार भी देंगे।

आपका
बैजनाथ मिश्र

१७३. डा० देवेन्द्र, जोधपुर

[डा० देवेन्द्र ने आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के निर्देशन में मंडन पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि ली। उसी समय से यह डा० गुप्त के सम्पर्क में आए। अब यह जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं।]

२६३

डा० देवेन्द्र
३०४, बिड़ला छात्रावास
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी–२२१००५
दि० —६-४-८३

आदरणीय डा० साहब,

सादर प्रणाम।

काफी समय से यहाँ न रहने के कारण पत्र-व्यवहार बन्द रहा, जिससे परस्पर सूचना समाचार ज्ञात नहीं हो सके। अब फिलहाल मेरे यहाँ रहने का आधार हो गया है। 'हिन्दी रीति परम्परा के विकास में बुन्देलखंड का योगदान' विषय पर कार्य करने हेतु यू० जी० सी० की 'पोस्ट डॉक्टरल फेलोशिप' के लिए मेरा चयन हो गया है। मुझे विश्वास है कि आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे पूर्ववत् मिलता रहेगा। इधर जब भी बनारस आने का कार्यक्रम बने तो कृपया सूचित करने का कष्ट करें। पत्र द्वारा अपनी साहित्यिक गति-विधियों की भी जानकारी दीजियेगा। आशा है आप सपरिवार सानन्द होंगे।

भवन्निष्ठ
देवेन्द्र

१७४. डा० राम कृष्ण शर्मा, सोरों

[डा० रामकृष्ण शर्मा कासगंज के कोठी वाला अढ़तिया महाविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। अपनी शोध के संबंध में यह एक बार डा० गुप्त से मिलने जमानियां गए थे। डा० गुप्त भी बाद में सोरों कासगंज हो आए हैं। सोरों शर्मा जी का जन्म स्थान है।]

२६४

पुष्पेन्द्र भवन
३।१२।८३ ट्यूबवेल कालोनी
कासगंज
२०७१२३

परम श्रद्धेय डॉक्टर साहब,

सादर अभिवादन

आपका कृपा पत्र मिला। आपकी व्यस्तता का अनुभव करता हूँ। फिर भी आपको पत्रोत्तर के लिए बाध्य करता रहा हूँ। गोपाल कवि कृत 'रामायण माहात्म्य' छाप रहा हूँ। मार्गशीर्ष मेला १६ से २२ दिसंबर तक चलेगा। अतः आप एक पृष्ठ की

भूमिका लिख कर भेज दें। ११-१२ दिसंबर तक भी मुझे आपका हस्तलेख मिल जाता है तो एक दिन में छपवा दूंगा। मेला २२ तक चलेगा। इसीलिए सोचा, आस्था प्रकाशन का प्रचार हो होगा। 'रामायण माहात्म्य' और प्रकाशन प्रचार। आशा है आप स्वस्थ एवं सानंद होंगे। वधू का चरण-स्पर्श। आपका आशीर्वाद हमारा मार्ग दर्शक हो। अहैतुकी कृपा करके एक पृष्ठ अवश्य भेज दें।

आपका विनीत
रामकृष्ण शर्मा

२६५

दीपावली पर शुभेच्छा

दिल का दिअना बार सखो, तम भागे आनन का
अंधकार हो दूर, गगन का, घर का, आँगन का
शारदीय-ऋतु वेणु-माधुरी से लय राग झरे
उमगे तन मन रोमांचित हो, प्राण-विहग विहरे
दीपावलि का ज्योति-पर्व मन में उत्साह भरे
सत का स्नेह, तेज की बाती, कलमष-मसक जरे
नित्य रास-उल्लास, बने आलंबन जीवन का
राधा माधव युगल नयन हों, आनँद श्री वन का

—राम कृष्ण शर्मा, कासगंज, एटा

१७५. रण विजय बहादुर सिंह, कांथा, उन्नाव

[रण विजय बहादुर सिंह सेंगर, प्रसिद्ध शिव सिंह सेंगर के वंशज हैं। शिव सिंह जी की हिन्दी संस्कृत को हस्तलिखित पुस्तकें इन्हीं के पास हैं। यह उन्नाव जिला परिषद में अध्यापक हैं। डा० गुप्त ने १९५८ एवं १९६० में दो बार कांथा जाकर इनका आतिथ्य स्वीकार किया है।]

२६६.

कांथा
२३-३-८४

आदरणीय डा० किशोरी लाल गुप्त जी,
नमस्कार।

आपके पत्र दिनांक १४-२-८२ ई० के संबंध में कहना हैं कि श्री रनजीत सिंह के द्वारा दोहावली संवत १९०५, शाके १७७० स्व निज पठनार्थं संग्रह करके लिखा है। आपने उसके अंतिम पांच दोहों का उल्लेख किया था कि लिख करके भेजें, तभी मैं बता

सकूंगा कि यह दोहावली किसकी है। और यह छपी है अथवा नहीं। मैं बीच के दोहे लिख रहा हूँ। इस दोहावली में ही केवल ५६५ दोहे हैं।

दोहों का क्रम इस प्रकार मैं लिख रहा हूँ।

क्रम नंबर १— तुलसी रघुवर को भजें, कहूँ निराले बैठि
जब चाहें तब देइँगे, काहूँ के मन पैठि २३५

× × ×

१५— भक्त हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तन भूप
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ५६०

नो० इस प्रकार से दोहों का उल्लेख करके भेज रहा था। पत्र का जवाब अवश्य देने की कृपा करें।

आपका
रण विजथ बहादुर सिंह
कांथा, उन्नाव

न. २. लाल चंद्रिका लाल कवि की है। इसमें ८५१ दोहे हैं। जो छपी है, वह लल्लू दास (लाल) की है और उसमें शायद ७२५ दोहे हैं, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित है और उसका मूल्य १००।- हैं जो मुझे डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित लखनऊ विश्व विद्यालय के द्वारा देखने को मिली थी।

नं. ३. हनुमान बाहुक गोस्वामी तुलसीदास की ५८ छंदों की मेरे पास है। जो छपी है हनुमान बाहुक वह ४४ ही छंदों की है।

न. ४. 'हनुमत वर विनय' गोस्वामी तुलसीदास की ४४ छंदों की हैं जो मेरे पास मौजूद है। जो हनुमान बाहुक सं० १९९० में गोरखपुर गीता प्रेस से प्रकाशित हुई वह हनुमत वर विनय हैं, हनुमान बाहुक नहीं मालूम पड़ती है। इसकी पुष्टि कैसे की जाय, यह अवश्य लिखें, वैसे चर्चा जारी की है। इस पर भी लिख कर जबाब देने की कृपा करना। शेष फिर।

१७६. देवेन्द्र सिंह, दिल्ली

[श्री देवेन्द्र सिंह दिल्ली में देवदार प्रकाशन के स्वामी हैं। अपरिचित।]

२६७।१

१३१।८४–८५ २९–५–८४

आदरणीय,

हमने १९८२ से हिन्दी व अंग्रेजी में साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन शुरू किया है। अब तक हमने २० पुस्तकें हिन्दी में तथा ५ अंग्रेजी में प्रकाशित की हैं। हमारे

प्रतिष्ठित लेखकों में स्व० इलाचंद जोशी, रघुवीर सहाय, डा० शिव प्रसाद सिंह, डा० विनय, डा० शशि भूषण शीतांशु, डा० प्रणव कुमार, पद्मधर त्रिपाठी, प्रताप सहगल, राजेन्द्र सिंह, योगेश गुप्त आदि हैं। लगभग ८ पुस्तकें प्रकाशन प्रक्रिया में हैं।

आप प्रसिद्ध और महान लेखक है। आपके पास आज भी ऐसी अनेक पाण्डुलिपियाँ हैं, जो अप्रकाशित हैं।

नए प्रकाशक होने के कारण हम चाहेंगे कि आपका सहयोग प्राप्त हो सके और हमारी प्रकाशन सूची में आपका नाम जुड़ सके। इससे हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

हम आपसे साहित्य की किसी भी विधा—नाटक, आलोचना, उपन्यास, कहानी आदि पर एक पांडुलिपि चाहेंगे। आपका आदेश जैसा भी होगा, पालन करेंगे।

देवदार प्रकाशन
५९ सुभाष पार्क एक्सटेंशन
दिल्ली–११००३२

भवदीय
कृते देवदार प्रकाशन
देवेन्द्र सिंह

२६८।२

१०४ — १०–९–८५

आदरणीय,

आपका कृपा पत्र मिला। जिस पत्र संख्या का हवाला आपने दिया है, उसके बाद भी मैंने आपको एक पत्र लिखा था। मैंने निवेदन किया था कि आप अपना पूर्ण रचना कार्य हमें भेज दें। हमारा संपादक सभी पाण्डुलिपियाँ देख लेगा। उसके बाद जिन पांडुलिपियों का हम कोई उपयोग नहीं कर सकेंगे, उन्हें लौटा देंगे और जिनका हम उपयोग करना चाहेंगे, उनका अनुबंध कर लेंगे।

वैसे आप जैसे विद्वान व्यक्ति का रचना-कार्य पूर्ण रूप में प्रकाशित हो सकता तो हमें प्रसन्नता होती, लेकिन वर्तमान राजनीतिक, व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य में ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं होता। यदि आप सभी कुछ न भेज सकें, तो आपके विचार में जो भी प्रकाशन योग्य हो, वह भेज दें। हम चाहते हैं कि आपके श्रम का सुधी पाठकों को लाभ मिले। आप जैसे विद्वान व्यक्ति का इस प्रकार विरक्त रहना साहित्य के लिए चिन्ता का विषय है।

आशा है आप उत्तर देंगे अथवा पाण्डुलिपि भेजेंगे।
आदर सहित

आपका
देवेन्द्र सिंह
कृते देवदार प्रकाशन
दिल्ली ११००३२

१७७. डा० बदरी नाथ कपूर, काशी

[डा० बदरी नाथ कपूर १९४७ में पाकिस्तान से किसी प्रकार भागकर अपने मामा 'शब्द-लोक' वासी श्री रामचन्द्र वर्मा के पास आये। यह भाषा विज्ञान, शब्दकोश व्याकरण के पंडित हैं। जापान सरकार के आमन्त्रण पर यह टोकियो विश्वविद्यालय में दो वर्षों के लिए हिन्दी प्रवक्ता होकर गये थे। डा० गुप्त के मित्र।]

२६९.

डा० बदरीनाथ कपूर

टोक्यो

श्रद्धेय डा० साहब, ८-७-८४

सादर वंदे।

आशा है आप सपरिवार प्रसन्न तथा स्वस्थ होंगे। पोती की शादी धूमधाम से हा गई होगी। बहुत-बहुत बधाई।

आशा है अब तक 'तुलसी और और तुलसी' अवश्य प्रकाशित हो गई होगी और उसका हिन्दी जगत ने उचित समादर भी किया होगा। आपकी कर्मठता भी धन्य है और आपका अन्वेषण-चिंतन भी धन्य है। ईश्वर से प्रार्थना है वह आपको सदा स्वस्थ रखे, जिससे आप माँ भारतो का कोष भरते रहे। ठहाका सदा गूंजता रहे।

आपकी कृपा से हम लोग यहाँ मजे में हैं। १० मास व्यतीत हो गये हैं, १४ मास शेष। वैसे जापान का समय अत्यन्त द्रुतगति से भागता है, इसलिए यहाँ समय का विशेष भान नहीं हुआ। अब ग्रीष्मावकाश १५ जुलाई से होगा। कुछ महत्वपूर्ण स्थानों के दर्शन की सोच रहा हूँ। यहाँ सब कुछ महँगा है, परन्तु यात्रा-भाड़ा और होटल-वास तो बहुत ही महँगा है। विदेशियों के लिए भाषा की तथा शाकाहारियों के लिए भोजन की समस्या भी अत्यन्त विकट है। समुद्र में अजनबियों की तरह भटकना पड़ता है।

आशा है लाजपत नगर, राम कटोरा, कबीर चौरा, नागरी प्रचारिणी सभा पूर्ववत् आना जाना होगा। सभी को मेरा नमस्कार।

विनीत

बदरी नाथ कपूर

१७८. ज्ञानचंद, गोरखपुर

[ज्ञान चंद वयोवृद्ध हैं, पत्रकार रहे हैं। यह मोदी जी के 'आरोग्य' के संपादक है। इतिहास में अच्छी रुचि हैं। डा० गुप्त को यह मित्र मानते हैं।]

ज्ञानचंद, गोरखपुर

२७०

तार का पता : नेचर (NATURE) फोन नं० : ६१६९

आरोग्य आम बाजार

पो० आरोग्य मंदिर

स्वास्थ्य संबंधी मासिक पत्र २७३००३ गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रिय गुप्त जी, ५।२

एक दिन आप प्रयाग गए थे। मैं भी प्रयाग ही में था और आपके चले आने से थोड़ी ही देर बाद अशोक जी के यहाँ पहुँचा। भेंट न हो सकी। वहाँ ठहरे हैं, पता रहता तो आ जाता।

एक जिज्ञासा है :

तिमिर लंग लइ मोल, चली बब्बर के हलके

वाला कवित्त किसका है ? कुछ समय पूर्व कहीं लेखक का नाम छपा भी था। उस समय प्रमाद-वंश नोट नहीं किया और अब भूल गया।

आशा है सानंद होंगे और कष्ट के लिए क्षमा करेंगे।

आपका

ज्ञान चन्द्र

१७९. डा० हरी बाबू गुप्त, फिरोजाबाद

[हरी बाबू गुप्त श्री रामचन्द्र कन्हैयालाल महाविद्यालय फिरोजाबाद में कार्यालय अधीक्षक हैं। इन्होंने आचार्य चन्द्रबली पांडेय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इसी सिलसिले में एक बार यह सुधवै भी आए थे। डा० गुप्त की इनसे फीरोजाबाद में भी बाद में भेंट हुई।]

२७१

फिरोजाबाद

२६-२-८४

३१७ गांधीनगर, फिरोजाबाद

(आगरा)

आदरणीय डा० साहब,

सादर चरण स्पर्श

अत्र कुशलं तत्रास्तु। जैसा कि आपको विदित है कि मैं 'आचार्य चन्द्र बली पांडेय का हिन्दी को योगदान' पर शोध कार्य कर रहा था। आपके आशीर्वाद व शुभ-

कामनाओं के परिणाम स्वरूप दिनांक ३१-२-८४ को शोध कार्य पूर्णतः सम्पन्न हो गया था। उसी दिन मैंने शोध प्रबंध वि० वि० में जमा कर दिया था। कल दिनांक २५-२-८४ तक सारी कार्यवाही सम्पन्न हो चुकी है। आशा है कि मार्च ८४ में होने वाले वि० वि० दीक्षान्त समारोह में उपाधि भी प्राप्त हो जायेगी।

आपने मुझे जो मार्ग दर्शन दिया व मेरा उत्साह बढ़ाया, उसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी रहूँगा।

घर के सभी सदस्यों को यथा योग्य प्रणाम पहुँचे।

आपका
हरी बाबू गुप्त
(एस० आर० के० कालेज)
फिरोजाबाद, (आगरा)

१८०. क्षेम चन्द्र सुमन, दिल्ली

[क्षेम चंद्र सुमन दिल्ली में हैं, प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। डा० गुप्त से इनका साक्षात्कार कभी नहीं हुआ। पर दोनों में प्रचुर पत्राचार हुआ है।]

२७२

अत्यावश्यक

दूरभाष : २००००६
अजय निवास, जी १०,
दिलशाद कालोनी
(पुरानी सीमा पुरी के निकट), शाहदरा
दिल्ली ११००३२
२२ मार्च ८५

क्षेम चंद्र 'सुमन'

आदरणीय बंधु,

मुझे महाकवि हरिऔध तथा आचार्य चंद्रबली पांडेय के उन भाषणों की आवश्यकता है जो उन्होंने क्रमशः अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दिल्ली और हैदराबाद के अधिवेशनों में अध्यक्ष पद से दिए थे। सम्मेलन को पत्र लिखकर मैं थक गया। वे कोई उत्तर ही नहीं देते। विवश होकर आपका द्वार खटखटाया है। कहा भी है—'येषां क्वासि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः'। आशा है आप निराश न करेंगे? आपके उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी। वे भाषण कहाँ से उपलब्ध हो सकेंगे, कृपया सूचित करके उपकृत करें।

क्षेम चंद्र सुमन

१८१. सत्य नारायण द्विवेदी 'श्रीश', फैजाबाद

[श्रीश जी गोसाई गंज (फैजाबाद) के एक इण्टर कालेज में अध्यापक थे। यह अच्छे कवि हैं। आजमगढ़ में रहते समय (१९४८-६२) डा० गुप्त की इनसे कवि सम्मेलनों में प्रायः भेंट हो जाया करती थी। बहुत दिनों बाद एक बार साहित्य सम्मेलन प्रयाग में दोनों की विह्वल भेंट हुई—दोनों पुराने, फिर नये हुए। इनके पुत्र श्री वेद प्रकाश द्विवेदी भी सुकवि और पंडित हैं।]

२७३

श्री हरिः

साहित्य सदन सेठवा
फैजाबाद
२० मई १९८५

आदरणीय बंधुवर डा० श्री गुप्त जी,

सादर सप्रेमाभिनंदन।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) भवन में 'सतसई' वाले तुलसी के ग्रंथ प्रकाशन की बात, (किताब महल) बताई थी। मैं झंझटों में घर चला आया, न आपसे भेंट हुई—और न पुस्तक ही मिल पाई। ब्रजभाषा की भी कोई पुस्तक छपी होगी, उधर चित्त लगा है। आशा है आप सायुध, सवाहन, सपरिवार सानंद हैं।

यह जानकर आपको कष्ट होगा कि मेरा पैर चार महीने पहले टूट गया था। अभी भी घर पर चिकित्सा हो रही है। इसी बीच एक अनिवार्य कार्य आ गया। आप तक पहुँचने में सर्वथा असमर्थ हूँ। अस्तु अपने छोटे बच्चे प्रिय रत्न प्रकाश को भेज रहा हूँ।

इस समय घर पर यही छोटा बच्चा है। अस्तु इसे ही भेज रहा हूँ। अपना तथा परिवार का समाचार देंगे।

चिरमंगलाकांक्षी
आपका भाई
सत्यनारायण द्विवेदी 'श्रीश'

१८२. त्रिभुवन नाथ शर्मा, मथुरा

[अपरिचित]

२७४

त्रिभुवन नाथ शर्मा
श्री भवन
गली कसेरान

मंडी रामदास
मथुरा (उ० प्र०)
१७-७-८५

आदरणीय डा० गुप्त जी,

सादर राधे राधे।

मैं 'हिन्दी का डायरी साहित्य' का शोधार्थी हूँ। डा० जय कुमार मुद्गल जी से आपके बारे में जानकारी मिली है। हिन्दी में प्रकाशित डायरियों के बारे में जानकारी देने की कृपा करें।

अगर संभव हो प्रकाशक और पुस्तक का नाम लिखकर भेज दें ताकि मैं उसको उपलब्ध करने का प्रयत्न करूँ।

आशा है कृपाकर अनुगृहीत करेंगे।

आपका
शुभाकांक्षी
त्रिभुवन नाथ शर्मा

१८३. डा० महादेव साहा, दिल्ली

[प्रसिद्ध विद्वान। डा० गुप्त की इनसे दो बार भेंट हुई है। एक बार अमृत राय जी के आवास पर काशी में, दूसरी बार ना० प्र० सभा काशी में।

२७५।१

12 Windsor place
New Delhi 110001

प्रिय डा० गुप्त,

बहुत वर्षों के बाद उस दिन नागरी प्रचारिणी में मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। साहित्य-साधना करते जा रहे हैं, यह भी हर्ष की बात है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने चार तुलसी दासों का पता लगाया है और उन पर लिखा भी है। मैं आपकी इस रचना को देखना चाहता हूँ। आफ प्रिंट हो तो भेजें। न हो तो रामायण वाले तुलसी को छोड़कर बाकी तीन का संक्षिप्त परिचय लिखें। इनमें से किसी ने अगर दोहा चौपाई आदि में 'भक्ति तरंगिणी' नामक काव्य लिखा हो तो वह भी लिखें।

पोथियों के पंचमांश को ही नकल करने के नियम को बदलवाना चाहिए।

आशा है सपरिवार सकुशल हैं।

शिव सिंह सरोज के प्रकाशक को लिखें कि ऊपर के पते पर एक प्रति वी० पी० पी० से भेजें।

नमस्कार।

आपका
महादेव साहा

२७६।२

१२ विंडसर प्लेस
नई दिल्ली ११०००१
२--८--८५

प्रिय डाक्टर गुप्त,

२२/७ के कृपा पत्र के लिए बहुत बहुत धन्यवाद। पुस्तकों का नाम और प्रकाशकों का पता मिल गया। अब मँगाने में सुविधा होगी।

अत्यन्त मूल्यवान और महत्वपूर्ण काम किया है। आशा है इसके लिए उचित यश मिलेगा।

सूरों पर काम कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती है, बधाइयाँ लें। स्नेह और शुभ कामनाएँ।

महादेव साहा

१८४. डा० गंगा सागर राय

[डा० गंगा सागर राय, रामनगर दुर्ग में काशिराज न्यास में कार्यरत हैं। हैं। डा० गुप्त के पूर्ण परिचित।]

२७७।१

All India Kashi Raj Trust
Fort Ramnagar
Varanasi

आदरणीय श्री गुप्त जी,

आप जब विगत वर्ष रामनगर आये थे, तो मैंने काशिराज के हिन्दी कवि या काशीराज के यहाँ हिन्दी की सेवा या कार्य विषयक एक निबन्ध लिखने की प्रार्थना की थी और आपने आश्वस्त किया था कि आप लिखेंगे, काशिराज का पुस्तकालय और साहित्य आप द्वारा सुपरिचित और सुपरीक्षित है, अतः आपसे अधिक प्रामाणिक कदाचित कोई लेखा जोखा प्रस्तुत करने वाला धीर सहिष्णु विद्वान् भी उपलब्ध न हो, अतः आपसे प्रार्थना है कि उस प्रतिश्रुत निबन्ध को लिखने और प्रेषित करने की कृपा करें। आशा है आप सकुशल एवं प्रसन्न होंगे। सादर

भवदीय

गंगा सागर राय
काशिराज न्यास
दुर्ग रामनगर, वाराणसी

२७८।२

आदरणीय डा० साहब,

प्रणाम । १४-८-८५

आपका सारस्वत कृपा प्रसाद प्राप्त हुआ। निबन्ध को टाइप कराया जायगा और यदि कहीं असुविधा होगी, तो जिज्ञासा की जायेगी।

आपके पत्र के प्राप्त होते पर श्रीमान् काशी नरेश जी से मैंने सूचना दी थी, तो उन्होंने तुरन्त कहा कि एक बड़े कार्य के लिए-हिन्दी पुराण सम्बन्धी-आपसे अनुरोध किया है। मैंने कहा कि यह थोड़ा समय साध्य है। अवकाश मिलने पर आप उसे पूर्ण करेंगे। आशा है आप स्वस्थ एवं सानन्द हैं।

इस निबन्ध के लिए आपको अनेकशः धन्यवाद।

भवदीय

गंगा सागर राय

पुनश्च

निबंध टंकित होने पर आपकी सेवा में प्रेषित कर दिया जायगा।

१८५. डा० सीता किशोर सेंवढ़ा

[डा० सीता किशोर सेंवढ़ा जिला दतिया के महाविद्यालय में हिन्दी विभाग में हैं। डा० गुप्त ने एक बार सेंवढ़ा में इनका आतिथ्य ग्रहण किया है। सेवढ़ा प्रसिद्ध रसनिधि जी और अक्षर अनन्य जी का स्थान है। स्थल अत्यन्त रमणीय है।

२७९.

डा० सीता किशोर सेंवढ़ा

पूज्य बाबू जी ।। आदर सहित चरन छूना ।।

* २३--९--८५ का स्नेह पूर्ण पत्र मिला। बेहद अच्छा लगा, इत्ता अच्छा, इत्ता अच्छा—जैसे मेरे बाप ने मेरी पीठ थपथपा दी हो। इस स्नेह से महीनों भरा-भरा रहूँगा। मेरा दुर्भाग्य कि बडों का स्नेह-दुलार कम मिला। माँ ढाई बरस का छोड़ गयी थी और समझदार बनने के पहले बाप चल बसे। उसके बाद समझ आ पाई या नहीं, मानने को कोई है ही नहीं। आत्मीय की सराहना का 'बल' ही कुछ और होता है।
* पिछले डेढ़ माह से न तो स्वस्थ हूँ और न सानन्द। भयंकर सरदर्द है मठासुर का। इस कस्बे के कालेज पर 'छिछोरी राजनीति' हावी है। दिन काटते हुए जो भी हो पा रहा है, करता जा रहा हूँ।
* कभी-कभी पत्र लिख दिया कीजिए।

★ दतिया रियासत की पत्र पांडुलिपियाँ (१८५७ ई० तक) ढूंढ़ रहा हूँ। काम पूरा होते-होते फिर लिखूंगा।

★ इस विश्वास के साथ कि पत्र आएगा—

सेंवढ़ा (दतिया) म० प्र०
१–१०–८५

चरण सेवक
सीता किशोर

१८६ डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह, वाराणसी

[डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह ने खडग विलास प्रेस बांकीपुर पटना की साहित्य सेवा पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। अब यह 'आज' के संपादकीय विभाग में हैं। डा० गुप्त के परिचित और मित्र।]

२८०।१

के ४।३७ लालधाट
वाराणसी
२५-१०-८५

आदरणीय डाक्टर साहब,

प्रणाम।

आपसे इधर वहुत दिनों से भेंट नहीं हो पाई। हिन्दी दिवस पर श्री बेरी जी के यहाँ आयोजित कार्यक्रम में आप दिखाई पड़े थे, पर भाग दौड़ के कारण भेंट नहीं हो पाई।

आपने 'सुन्दरी तिलक' के बारे में जो सुझाव दिया था उसे पूरा करने में लगा हूँ। इस कारण प्रकाशन में भी विलंब हो रहा है।

मेरी एक कठिनाई है, प्रथम संस्करण ३९ तथा द्वितीय संस्करण २८ छंदों के कवियों के बारे में जानकारी नहीं मिल सकी। मैं इस संबंध में आपसे केवल एक आग्रह करना चाहता हूँ। संलग्न सूची में केवल संख्या के आगे कवि के नाम संकेत कर दें, तो काम थोड़ा सहज हो जायगा। आशा है आप इसे अन्यथा न लेंगे। इस कार्य के लिए आपका आभारी रहूँगा।

साथ ही आपने रामनगर के राजा साहब के संग्रह से महाकवि की जिस रचना का संकेत किया था, उसका नाम भूल गया हूं कृपया नाम अवश्य लिखेंगे। शायद उसकी प्रतिलिपि आपके पास है।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे

ससद्भाव,

स्नेहाकांक्षी
धीरेन्द्र नाथ सिंह

२८१।२

डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह ४।३७ लाल घाट
एम० ए०, पी-एच० डी० वाराणसी

आदरणीय डाक्टर साहब,

प्रणाम ।

आज डाक से आपका पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई, कवियों के संकेत मिल जाने से अब कार्य सुगम हो गया, आपकी इस सहृदयता के लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

आशा है स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे।

स्नेहाकांक्षी
धीरेन्द्र

१८७. देशराज सिंह, अलीगढ़

[अपरिचित]

२८२.

टाइप III १।१० पुरानी कालोनी
कासिमपुर (अलीगढ़)
पिन–२०२१२७
दि० १६–११–८५

श्रद्धेय गुप्त जी,

सादर प्रणाम

'महाकवि शंकर स्मृति ग्रन्थ' के लिए आपका महत्वपूर्ण लेख 'कविता कामिनी-कांत शंकर की वसंत सेना' आज ही प्राप्त हुआ। आभारी हूँ। आशा है चैत्र शुक्ल पंचमी (अप्रैल ८६) में महाकवि शंकर स्मृति समारोह पर आप अवश्य पधारने की कृपा करेंगे। शेष कृपा बनी रहे।

देशराज सिंह

१८८. डा० विद्याधर मिश्र, रानीगंज बर्दवान

[डा० विद्याधर मिश्र ज्ञानपुर के पास भगवानपुर के रहने वाले हैं। इन्होंने 'चिन्तामणि : कवि और आचार्य' पर पी-एच० डी० इलाहाबाद से प्राप्त की है। प्राचीन काव्य के प्रति इनका प्रगाढ़ अनुराग है। यह डा० गुप्त के मित्र हैं और सुधवै यदाकदा उनसे मिलने आया करते हैं। अब आप बर्दवान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं।]

२८३.

रानीगंज

श्रद्धेय डा० साहब, १८-१२-१९८५

सादर प्रणाम

आशा है कि आप स्वस्थ एवं सानंद होंगे। गांव से लौटने के बाद अस्वस्थ हो गया, अस्तु आपको पत्र नहीं लिख सका तथा कलकत्ता भी नहीं जा सका। १५ जनवरी तक कलकत्ता जाऊँगा, तभी 'राम प्रताप' के प्रकाशन की सूचना दे पाऊँगा। 'राम प्रताप' के सम्पादन का पूरा श्रेय आपको ही है। यदि आपने अपना अमूल्य समय न दिया होता तो निश्चय ही ग्रन्थ अभी तक अधर में ही लटका रहता। उक्त ग्रन्थ के सम्पादन के सन्दर्भ में कई विद्वानों से सम्पर्क किया। कुछ ने तो स्पष्ट कह दिया कि मेरी पकड़ से बाहर है, कुछ ने समयाभाव के नाम पर सायास टाल-मटोल किया। सच तो यह है कि स्व० आ० वि० प्र० मिश्र के पश्चात उनके अभाव की पूर्ति में इस क्षेत्र में आप जैसे दो एक ही लोग हैं। हमलोग समस्याओं के निराकरण के लिए किसके पास जायँ?

'चिंतामणि कवि और आचार्य' शोध प्रबन्ध प्रकाशन ७२, पूरा वल्दी, कीडगंज इलाहाबाद से छप रहा है। अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में 'रस विलास' की पांडुलिपि है। उसके प्रथम पृष्ठ की छाया प्रति प्रकाशित होने वाले ग्रंथ में देना चाहता हूँ। 'मंडन मिश्र' पर काम करने वाले, जिन्होंने संभवतः आपके सान्निध्य में रहकर शोध कार्य सम्पन्न किया था, सम्प्रति बीकानेर के किसी महाविद्यालय में प्रवक्ता हैं। उनका पता देने का कष्ट करें। मेरे लिए सुविधा की दृष्टि से यदि आप उन्हें ग्रंथ के प्रथम पृष्ठ की फोटो (जोरेक्स नहीं क्यों कि कहीं-कहीं लाल स्याही का भी उपयोग है वह स्पष्ट नहीं आ पाएगा) कापी के लिए लिखें तो अच्छा होगा। आपके शोध छात्र हैं, आपके पत्र का विशेष प्रभाव होगा। मेरे यहाँ अथवा प्रकाशक के यहाँ छाया प्रति संबंधित व्यय के लिए निःसंकोच वे मुझे लिखें। धनादेश द्वारा उन्हें तत्काल भेज दूँगा तथा पूरे ग्रंथ की जीरेक्स कापी में क्या खर्च लगेगा, उसे भी लिखें। चिन्तामणि ग्रंथावली में काम आएगा।

आपसे प्रेरणा एवं संबल पाकर चिन्तामणि की ग्रंथावली का कार्य कर रहा हूँ। ग्रंथावली आपके नाम से समर्पित करूँगा। गुरु दक्षिणा के रूप में इसे ही दूंगा। आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि इसकी सहर्ष स्वीकृति देने का कष्ट करें।

प्रतिष्ठा में
डा० किशोरीलाल गुप्त
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.
सुधवै, वाराणसी
उ० प्र०

स्नेहाधीन
विद्याधर मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
रानीगंज गर्ल्स कालेज
रानीगंज

पोस्ट बाक्स नं० २
जिला—वर्दवान प. ब.

नित नित नूतन आस मिले
जीवन का विश्वास मिले

विद्याधर

नव वर्ष की मंगल कामनाओं सहित

१८९. नरेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ

[अपरिचित]

२८४.

लखनऊ
(१९८६)

पूज्य गुरु जी,

चरण स्पर्श ।

आपका पत्र मिला, पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । आपके निर्देशानुसार मुझे अपने कार्य में काफी सफलता मिली ।

मैं आपसे समय-समय पर सहयोग और आपकी कृपा दृष्टि चाहता हूँ ।

आप हमें डा० बाबू राम सक्सेना के निवास स्थान का पता पत्र द्वारा बताने का कष्ट कीजिएगा । मेरी तरफ से अपना नित्य का चरण स्पर्श स्वीकार हो ।

सतत आपका ही

नरेन्द्र प्रताप सिंह

बल्दी खेड़ा, कानपुर रोड
पो०—चंदर नगर, आलम बाग
लखनऊ

१९०. डा० जय प्रकाश, चंडीगढ़

[डा० जय प्रकाश पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ में हिन्दी विभाग में रीडर हैं । अपरिचित ।]

२८५.

डा० जय प्रकाश
रीडर

फोन : २५०२२
हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय

चंडीगढ़

दिनांक..... ... .
३०७३ सेक्टर ३४ डी
चंडीगढ़—१६००३६

माननीय डॉ० साहब,

प्रणाम स्वीकार करें। यह पत्र स्वार्थवश लिख रहा हूँ, क्षमा करेंगे।

'सरोज सर्वेक्षण' के पृष्ठ संख्या ३१५ पर आपने जीव नाथ भाट की रचना 'वसंत पचीसी' का विवरण दिया है। इसकी पाण्डुलिपि कहीं मिल सकती है क्या? इस कवि के बारे में या इसकी रचना के बारे में सामग्री कहाँ से उपलब्ध हो सकती है? आपके पास जो सूचनाएँ हों, उनको बताने की कृपा करें।

विश्वास है कि इस संदर्भ में आप मेरी सहायता अवश्य करेंगे। महाराज बाल कृष्ण का इतिवृत्त भी कहाँ से मिल सकता है? आप जैसे तपस्वी विद्वान ही कुछ रोशनी दे सकते हैं।

आदर के साथ

आपका
जय प्रकाश

१९१. डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, बाँदा

[डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित बाँदा महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में हैं। परिचय तो नहीं, डा० गुप्त ने उन्हें रामायण मेला चित्रकूट में मंच संचालन करते देखा है। अच्छे वक्ता हैं। कई प्राचीन काव्य ग्रंथों का संपादन प्रकाशन किया है।]

२८६।१

आदरणीय बंधुवर,

५-१-८६ का पत्र प्राप्त हुआ। आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी का पूरा पता लिखें, उन्हें अपने द्वारा संपादित लाल दास कृत 'अवध विलास (सं० १७३३) चंददास (चन्दबरदायी) कृत रामविनोद (सं० १८०४), मीता ग्रंथावली (सं० १७८०) आदि कृतियाँ भेंट स्वरूप भेजना चाहता हूं।

यह 'सूर मंजरी' नामक हस्तलेख चन्ददास शोध संग्रहालय बाँदा में उपलब्ध है। जो वर्ष ७३ के आस पास मेरे द्वारा खोजा गया था, जिससे सूरसागर के विशिष्ट पदों का संकलन है। कुछ पद ऐसे भी हैं, जो सूरसागर में नहीं उपलब्ध होते। इन पदों को पंडित जी संकलित करना चाहते थे, खेद है कि मैं नहीं भेज पाया था। कोई व्यक्ति जो इस कार्य को करना चाहता हो, आकर सामग्री का उपयोग कर सकता है।

आप कृपया सूचित करें प्रयाग वि० वि० वाले डा० किशोरी लाल जो हैं, अथवा वाराणसी वाले।

शेष कुशल है।

आपका ही
चंद्रिका प्रसाद दीक्षित
निदेशक चंददास साहित्य संस्थान
सिविल लाइन्स (बाँदा) उ० प्र०

२८७।२

२५-७-८६
बांदा (उ० प्र०)

आदरणीय डाक्टर साहब,

सादर अभिनन्दन।

मैं आपके कृतित्व से परिचित हूँ और आपका परोक्ष प्रशंसक भी। आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी की विशेष कृपा हम पर है।

आप जब कभी इधर बाँदा पधारें, अवश्य मेरा आतिथ्य ग्रहण करें। आप जिस सामग्री का उपयोग करना चाहते हैं, मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। अपनी प्रकाशित कृतियाँ चंददास (चन्दबरदायी) कृत रामविनोद (१८वीं शताब्दी), लाल दास कृत 'अवधविलास' (सं० १७३२), मीता ग्रंथावली भी आपको भेंट करना चाहता हूँ। आकांक्षा है कि आप इन दुर्लभ कृतियों का उपयोग भी अपने इतिहास ग्रंथों में करें। 'तुलसी का युगलध्यानपद' एक छोटा सा ग्रंथ चित्रकूट से प्राप्त हुआ था। अपनी कृतियाँ सस्थान में भिजवा सकें तो कृपा होगी। इधर माँ के निधन और अपनी बीमारी से अस्त व्यस्त रहा।

आपका ही
चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित
निदेशक चंददास
शोध संस्थान
सिविल लाइन्स (बाँदा) उ० प्र०

१९२. अवधेश नारायण मिश्र, वाराणसी

[यह दिवंगत सभाजीत मिश्र 'अश्रु' के भागिनेय हैं। साहित्यिक अभिरुचि और सुरुचि के नवयुवक साहित्यकार हैं। डा० गुप्त से अनेक बार मिल चुके हैं।]

२८८.

वाराणसी
२०-२-८६

आदरणीय,

सादर नमन ।

बहुत दिनों बाद लिख रहा हूँ । आशा है स्वस्थ रहकर अपनी सारस्वत-साहित्य-साधना में रत होंगे । काशी विद्यापीठ में डा० लक्ष्मी शंकर गुप्त जी से आपकी कुशलता का समाचार मिल जाता था ।

एक साहित्यिक सेवा के लिए पुनः आपको कष्ट देना है । पुण्य श्लोक डा० रामकुमार वर्मा पर आर्य भाषा संस्थान की ओर से एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना है । सहयोगी निबन्धकारों द्वारा प्राप्त निबन्धों की सूची संलग्न है ।

कृपया डा० वर्मा जी की सारस्वत साधना के विविध आयामों में से किसी छूटे पक्ष पर, संभव हो तो भाषा पक्ष पर, एक निबन्ध यथाशीघ्र भेजने की कृपा करें ।

आदर के साथ

कृपाकांक्षी
अवधेश नारायण मिश्र
बी २/१४३ए, भदैनी
वाराणसी-२२१००१

१९३. रश्मि खुराना, जालंधर

[आकाशवाणी में कार्यरत साहित्यिक अभिरुचि की अपरिचिता महिला ।]

२८९.

जालंधर
१९–३ ८६

आदरणीय डा० साहब,

सादर नमस्ते ।

मैं आकाशवाणी में कार्यरत होने के साथ-साथ हिन्दी की शोध-छात्रा हूँ । मेरा शोध का विषय है 'साठोत्तरी हिन्दी खण्ड काव्यों के विरह का स्वरूप' । डा० मुरारी लाल शर्मा 'सुरस' मेरे निर्देशक हैं । आपसे अनुरोध है कि आपकी यदि इस विषय से संबंधित कोई खंड काव्य रचना हो तो मुझे उसका नाम व प्रकाशक लिखें, ताकि मैं उसे अपने शोध प्रबन्ध में शामिल कर सकूं । अन्य किसी कवि की ऐसी रचना का नाम यदि आपको पता हो तो कृपया वह लिखें । आपकी अपनी कृति की कोई कापी आपके पास हो तो वी० पी० पी० द्वारा भेजने का कष्ट करें ।

मैं अति आभारी होऊँगी ।

भवदीया
रश्मि खुराना

१९४. सूरत सहाय लाल 'ध्रुव' आजमगढ़

[शैदा कवि मंडल आजमगढ़ के अध्यक्ष, प्रसाद गुण पूर्ण कवि, रामचरितमानस के विशिष्ट अध्येता, डा० गुप्त के परिचित और मित्र ।]

२९०.

सूरत सहाय लाल 'ध्रुव'
४५ शांती कुटीर
सदावरती (चौक)
आजमगढ़

आदरणीय डा० साहेब,

सादर अभिवादन स्वीकार करें ।

प्रार्थी अवकाश प्राप्त एक राजकीय कर्मचारी है, जो साम्प्रतम आजमगढ़ नगर में ही रह रहा है । मेरी पुत्रवधू मोहनी देवी के 'आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय' के शोधकार्य के सिलसिले में डा० कन्हैया सिंह एवं मयंक जी के साथ आप मेरे आवास पर गत वर्ष आ चुके हैं । बचपन से ही यह अकिंचन 'मानस' का प्रेमी रहा । मानस के पाठ-भेद, अर्थ-भेद एवं कथा विसंगति पर कुछ लिखने की धृष्टता की है । इच्छा होती है कि आप जैसे मानस मर्मज्ञ संत सरल चित्त से उसके अवलोकन संशोधन हो जाने के उपरांत ही प्रकाशन की बात सोची जाती, तो बड़ी उत्तम बात होती । शैदा-साहित्य-मंडल के कर्मनिष्ठ सदस्यों की भी यही इच्छा है । आभार मानूंगा यदि आप इसके लिए अपनी सुविधानुसार समय निश्चित करें ।

भवदीय
सूरत सहाय लाल 'ध्रुव'

प्रतिष्ठा में—
डा० किशोरी लाल गुप्त डी० लिट्०
अवकाश प्राप्त प्राचार्य
जमानियाँ महाविद्यालय गाजीपुर

१९५. श्रीकांत जोशी, खंडवा (म० प्र०)

[जोशी जी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय खंडवा के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं । अपरिचित मित्र ।]

२९११

श्रीकांत जोशी

जवाहर गंज, खंडवा ४५०००१, म० प्र० दि०–६–१०–८६

आदरणीय गुप्त जी, (विशेष पत्र)

मेरा पत्र पाकर आपको आश्चर्य होगा, पर सचाई यह है कि मैं १९७१-७२ से आपकी खोज में हूँ। प्रेम नारायण जी टंडन की सम्पादित पुस्तक में प० माखन लाल चतुर्वेदी के एक मात्र नाटक कृष्णार्जुन युद्ध पर आपकी सारगर्भित समीक्षा पढ़ कर मैं मुग्ध रहा हूँ। बड़ी ही सशक्त और सम्पूर्ण समीक्षा है वह। मैं आपसे यह आग्रह करना चाहता रहा हूं कि आप माखन लाल साहित्य को अपने विशेष अध्ययन के अन्तर्गत लेकर उप पर विशेष ग्रंथ लिखें। १९८९ में उनकी शताब्दी है—उस समय जिन दो चार लेखकों द्वारा यह महत् कार्य ईमानदारी और अपेक्षित गरिमा के साथ सम्पन्न हो सकता है, उनमें से मेरी दृष्टि में आप एक हैं।

आपका पता मुझे डा० श्रीराम वर्मा से प्राप्त हुआ। यदि प्रत्युत्तर मिला, तो मुझे खुशी होगी और हम मिलकर कुछ ठोस कार्य करेंगे। सानन्द होंगे।

विनीत

श्रीकांत जोशी

२९२१२

श्रीकांत जोशी

जवाहर गंज, खंडवा ४५०००१, म० प्र०

मान्य गुप्त जी,

दीपोत्सव नमन।

कृपा पत्र मिला डा० प्रेम नारायण टंडन जी की सम्पादित कृति में कृष्णार्जुन युद्ध पर आपका लेख अद्वितीय है। आपकी साहित्य और समय की सूक्ष्म पकड़ उसमें व्यक्त हुई है। मैं चाहता हूँ आप चिंतक माखन लाल पर विशेष लेख लिखें। माखन लाल जी का चिंतक राष्ट्र-सीमा में परिबद्ध कभी नहीं रहा, न उनका काव्य ही भारत की सीमा तक उत्कर्षाकांक्षी रहा। वे भारत के स्वातंत्र्य की आकांक्षा विश्वाकांक्षा से प्रेरित होके ही आजीवन करते रहे। अब तो उनकी रचनावली दस भागों में उपलब्ध है। इसे कृपया अपने महाविद्यालय में मँगवा लें। आपके निष्कर्ष बहुत महत्वपूर्ण होंगे, ऐसी आशा मुझे है।

फिल हाल वाराणसी मैं नहीं जा पा रहा हूँ। रचनावली महाविद्यालय को मात्र ५००) में मिल जायेगी, यद्यपि उसका मूल्य Rs. 750 है उसे आप बहुत पसन्द करेंगे।

रचनावली के प्रकाशक का पता :—
श्री अशोक माहेश्वरी C/o वाणी प्रकाशन ४६९७।५।२१ ए
दरियागंज, दिल्ली–२

सानन्द होंगे ।

श्रीकांत जोशी

२९३।३

दिनांक ७।११

श्रीकांत जोशी
जवाहरगंज, खंडवा ४५०००१ म० प्र०

मान्य गुप्त जी : सादर प्रणाम ।

आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता है । पं० माखन लाल जी पर आप जो भी उचित समझें, जब भी समय पा सकें, लिखने का कष्ट करें । मैं आपकी व्यस्तता का अभिनन्दन करता हूं । आपके प्रकाशित हुए हों, तों कृपया सूचित करें ।

सानन्द होंगे ।

विनीत
श्रीकांत जोशी

मंगल दीपावली
श्रीकांत जोशी

प्राध्यापक : हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खंडवा, म० प्र०

१९६. डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित, लखनऊ

[डा० दीक्षित लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। 'साहित्यिकी' नामक एक अच्छी साइक्लोस्टाइल शोध पत्रिका के सम्पादक हैं । इनका यह काम महत्वपूर्ण है । प्रसाद जन्मशती समारोह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में २७ फरवरी ८९ को गुप्त जी से प्रथम भेंट ।]

२९४

डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित
हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

साहित्यिकी
डी ५४ निराला नगर
लखनऊ २२६००७

आदरणीय डा० साहब,

आपने तोषनिधि और बेनीद्वय के सम्बन्ध में बड़ी उपयोगी जानकारी दी है । हमें आशा है—अब इन दोनों का उद्धार हो जाएगा ।

मेरी दो छात्राएँ इन पर शोध ग्रंथ लिख रही हैं। वे आपकी सेवा में आकर ग्रंथावली से अपनी सामग्री का मिलान करना चाहती हैं। बेनी वाजपेयी पर भी एक शोधार्थी कार्यरत हैं। आप इतनी उदारता अवश्य बरतेंगे—ऐसा विश्वास है। कृपया अनुकूल समय सूचित करेंगे। शेष फिर।

साभिवादन
सूर्य प्रसाद दीक्षित
१०-१०-८६

१९७. बाबू लाल गोस्वामी, दतिया

[गोस्वामी जी बिहारी जी का मन्दिर दतिया में रहते हैं, विद्वान पुरुष हैं। डा० गुप्त अपनी दूसरी दतिया यात्रा में इनसे मिल चुके हैं।]

२९५।१

श्रीहरिः

२१-९-८६

श्री बिहारी जी का मंदिर
बिहारी जी का मार्ग
दतिया (म० प्र०)
४७५६६१

मान्यवर,

'आपने कहीं 'नेही नागरीदास' को पलेहरा (ओरछा) का लिखा है। मैंने कहीं पढ़ा था। परन्तु अब याद नहीं आ रहा कि कहाँ पढ़ा था। अस्तु आपसे निवेदन है कि उस ग्रंथ अथवा आलेख का सन्दर्भ भेजने की कृपा करें और यदि कुछ विस्तार से लिखेंगे तो मैं आभारी रहूँगा।

मेरे योग्य सेवा लिखते रहें।

भवदीय
बाबू लाल गोस्वामी

२९६।२

श्रीहरिः

श्री बिहारी जी का मंदिर
दतिया ४७५६६१
१४-१०-८६

प्रिय डा० गुप्त,

भगवत मुदित की रसिक अनन्यमाल के आधार पर वृंदावन में श्री चन्द्र प्रकाश शर्मा नेही नागरीदास पर शोध प्रबंध लिखने में प्रवृत्त हुए हैं। नेही नागरी दास को वेरछा का पमार लिखा है तथा 'भागमती भावज हू आई' लिख कर भगवत मुदित ने नेही नागरीदास को भागमती का देवर होने का संकेत किया है। 'भागमती की परचई' में भागमती को राजा चिंतामणि की बड़ी रानी लिखकर तथा नागरीदास को ओरछा में पहुँचना तथा किसी प्रवीण-कुशल सखी द्वारा भागमती को नागरीदास का परिचय देना, कुछ गड़बड़ा देता है। 'रानी रहे देस ओड़छे' से लगता है कि भागमती ओड़छा-राज-कुल की थीं, जो वेरछा के पमार राजा चिंतामणि को व्याही थी। ओड़छा-दतिया बुन्देला राजाओं के वैवाहिक सम्बन्ध बेरछा के पमारों से होते रहे हैं। और वह बेरछा निश्चय ही सिंध तट स्थित बेरछा है, जिस पर वीर सिंह देव ने आक्रमण किया था। बांदा जिले का बेरछा नहीं है। दतिया जिले का ही बेरछा है, जो मुप्रवायां के पुण्य पवार के एक पुत्र को जागीर में प्राप्त हुआ था। नागरी दास की वाणी में बुन्देली शब्दों की भरमार भी इसी कारण है।

प्रश्न पलेहरा (पस्नेला) का है? पलेरा ओड़छा की जागीर थी। मधुकर शाह के भाई अमानदास की १२ हजारी जागीर। भगवत मुदित के 'रानी रहे देस ओड़छे' कहने से लगता है कि भागमती ओड़छा राज्य में कहीं रहती थी। और इसका अर्थ ओड़छा खास भी हो सकता है। नागरी दास और भागमती का मिलन जिस प्रकार भगवत मुदित ने किया है, वह कुछ अटपटा सा है। नागरीदास की यदि भागमती भावज थी, तब वे सीधे भावज के ही यहाँ क्यों नहीं गए। किसी प्रवीण सखी द्वारा ही क्यों बुलाए गए? राजा चिंतामणि के अपनी छोटी रानी इन्दुमती के साथ भागमती की छाती पर रमण करने में भी कुछ खर कथ्य? मालूम होता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि नागरीदास और भागमती में देवर भाभी के परिवेश में कामोत्तेजक प्रेम गहरा गया हो? तत्कालीन ओड़छा के राजाओं की वंशावली में किसी बेटी का नाम नहीं मिलता। हो सकता है कि भागमती पलेरा के जागीरदार (१२ हजारी) की बेटी हो और कभी नागरीदास इसी कारण पलेरा गए हों? ये ऐसे प्रश्न है, जिनका समाधान मुझे करना है और शोध छात्र को समझाना है। आशा है आप समय निकाल कर विस्तार से नहीं तो संक्षेप में ही एक नोट बनाकर भेजने की कृपा करेंगे।

राजा चिंतामणि के पिता, बाला का नाम तो मिल गया है। बेरछा के मीर मुंशियों ने अब उज्जयिनी में मकान बनवा लिए हैं। ये लोग बहुत सा रेकार्ड भी साथ में ले गए हैं। उनसे सम्पर्क करने पर यथार्थ तक पहुँचने में सहायता मिलेगी।

आपका ग्रंथ 'नागरी दास ग्रंथावली' क्या अब भी उपलब्ध है? लिखने का

कष्ट करें। यदि उपलब्ध हो तो श्री उदय शंकर दुबे को सूचित कर दें। वे क्रय करके मेरे पास भेज देंगे।

आशा है आप सानन्द स्वस्थ हैं।

भवदीय शुभेच्छु
बाबू लाल गोस्वामी

१९८. डा० वीरेन्द्र शर्मा, नई दिल्ली

[अपरिचित। डा० गुप्त के 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' के प्रशंसक।]

२९७.

डा० वीरेन्द्र शर्मा

१०९ सेक्टर १२
रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली–२२
११००२२
१५ मई ८७

श्रद्धेय डा० गुप्त जी,

सादर नमस्कार।

आपकी पुस्तक—'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास'—पढ़ी। इसमें आपके मौलिक एवं निर्भीक चिंतन सम्बन्धी वैदुष्यपूर्ण विवेचन से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ—कहना होगा अभिभूत हूँ, बड़ी रोचक तथा प्रेरणादायक है यह पुस्तक, अतः साधुवाद एवं प्रशंसा के भावों को अभिव्यक्त करना अपना परम कर्तव्य मानता हूँ।

उपसंहार के रूप में आपने ठीक ही लिखा है—

"इस प्रकार मैथिली, ब्रजबुली, राजस्थानी दक्खिनी और उर्दू का हिन्दी के वृहत इतिहास में उचित समावेश होना चाहिए।"

आज हिन्दी न केवल भारत की, प्रत्युत विश्व की भाषा है, भारत के बाहर मारीशस, फीजी, सूरीनाम आदि अनेकों देशों में हिन्दी साहित्य का निरन्तर सृजन-प्रकाशन हो रहा है, इन देशों की हिन्दी का एक विशिष्ट स्वरूप है. इस सम्बन्ध में मेरा विनम्र निवेदन है कि हिन्दी के वृहत् इतिहास में इन देशों के साहित्यकारों को भी समुचित सम्मानास्पद स्थान दिया जाना चाहिए।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की त्रैमासिक पत्रिका 'भाषा' के मार्च १९८७ में प्रकाशित अपनी कविता—'स्थापना और समीकरण'—की एक प्रति आपकी सेवा

में, प्रतिनिधि कृति के रूप में, भेजते हुए सोभाग्य एवं आनन्द की अनुभूति कर रहा हूँ।

मंगल कामनाएँ एवं पुनः अभिवादन।

स्नेहाधीन
वीरेन्द्र शर्मा

१९९. कौशल तिवारी, एटा

[अपरिचित। डा० रामकृष्ण सोरों के माध्यम से पत्राचार।]

२९८।१

२९-५-८७

सिया सदन
१२४ शिवपुरी
कर्बला रोड, एटा, उ० प्र०
२०७००१

परमादरणीय डाक्टर साहब,

सादर प्रणाम।

आपके शुभाशीष के फलस्वरूप यह अकिंचन पं० चतुर्भुज मिश्र कृत आल्हा रामायण के साहित्यिक मूल्यांकन विषय पर शोध उपाधि पी-एच० डी० प्राप्त करने में सफल हो गया हैं आपका आशीर्वाद अपेक्षित है तथा निवेदन है कि यह अकिंचन सदैव आपका कृपा पात्र बना रहे।

शेष शुभ। आशा है आप सानंद होंगे।

आपका पुत्रवत्
कौशल तिवारी
२७-७-८७

२९९।२

परम पूजनीय डाक्टर साहब,

सादर चरण स्पर्श।

मेरा पूर्व प्रेषित पत्र मिला होगा। संभवतः समयाभाव के कारण मुझे पत्र न भेज सके होंगे। यह पत्र एक विशिष्ट उद्देश्य से आपको लिखकर कष्ट दे रहा हूँ। मेरी इच्छा D. Litt. की ओर जाने की है। आपका भी आदेश ऐसा ही था। इस संबंध में मूलाधार प्रदान करें। विषय का चयन आप स्वयं कर मुझे इस सम्बन्ध में आशीष प्रदान करें। वैसे मेरा विचार समकालीन कथा साहित्य पर है, क्योंकि इस विधा ने स्वयं अपने आपको अभिव्यक्ति के क्षेत्र में इतना सशक्त और सुदृढ़ कर लिया है कि इसके स्थान पर कोई अन्य विधा नहीं ठहर सकती।

शेष शुभ है आपके कृपा-पत्र की प्रतीक्षा में—

सिया सदन, १२४ शिवपुरी
कर्वला रोड, एटा, उ० प्र० २०७००१

आपका पुत्रवत
कौशल तिवारी
१३-७-८७

२००. श्री कृष्ण राय 'हृदयेश' गाजीपुर

[हृदयेश जी सुकवि हैं, साथ ही पत्रकार और नेता भी। यह भक्त जी के मित्र थे और इनके आमन्त्रण पर आजमगढ़ के कवि सम्मेलनों में सदल-बल पधारा करते थे। डा० गुप्त का इनसे तभी से परिचय है, जो अब डा० गुप्त के बार बार गाजीपुर आते जाते रहने से प्रगाढ़ मैत्री में बदल गया है।]

३००

श्री कृष्ण राय 'हृदयेश'

हृदयेश पथ, नखास
गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)
८-४-८७

प्रिय बंधु,

नमस्कार।

आशा है आपने अपना भारी भरकम बोझ हल्का कर लिया होगा। स्वस्थ होंगे।

बुद्ध चरित (आप जो उचित समझें नाम दें) की पांडुलिपि को जब साफ कर रहा था, अनुभव हुआ कि इस नीरस सामग्री को भी, जब कि आप अस्वस्थ थे, बड़े ध्यान से देखा है। इसके लिए कृतज्ञ हूँ।

११।४ को वाराणसी से जम्मू के लिए प्रस्थान है। २० या २२ अप्रैल तक दिल्ली आ जाऊँगा। अतः यदि असुविधा जनक न हो, तो आप इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपने विचार, जिसे पुस्तक की भूमिका का रूप दिया जा सके, दिल्ली के पते पर भेज दें। संभव है आपके नाम काम और पुस्तक सम्बन्धी विचार से कोई प्रकाशक प्रभावित हो जाय। दिल्ली का मेरा पता होगा—द्वारा डा० एस० के० गौतम, ए-१३/३ प्रताप बाग, दिल्ली-पिन ११०००७। दिल्ली केवल दो या तीन दिन रुकना चाहूंगा। तबियत ढीली चल रही है। वापिस आने पर लखनऊ का कार्यक्रम बनेगा। दिल्ली में पत्र की प्रतीक्षा रहेगी।

आपने जो काम हाथ में ले रखा था, उसकी क्या स्थिति है। सूचित करिएगा। निश्चय ही बहुत बड़ा काम है। बंधु। आपको प्रकृति ने बहुत ऊर्जा प्रदान की है। ईश्वर से प्रार्थना है, आप शतायु हों और हिन्दी की श्री वृद्धि करें।

आपके सुखद स्वास्थ्य की कामना के साथ—

शुभाकांक्षी
हृदयेश

२०१. शिव अवतार सरस, मुरादाबाद

[सरस जी मुरादाबाद के एक महाविद्यालय में हिन्दी विभाग में हैं। अपरिचित।]

३०१

साहित्यकार स्मारक समिति (उ० प्र०)
मालती नगर, मुरादाबाद
२४४००१
9 May 1987

श्रद्धेय डा० श्री गुप्त जी,
सादर अभिवादन।

आगे निवेदन है कि आपका शुभ परिचय श्री केशव नाथ जी तिवारी के माध्यम से ज्ञात हुआ। उन्हीं के माध्यम से आपने हमारा लघु प्रयास राष्ट्र कवि श्री गुप्त जी संवद्ध स्मारिका के रूप में देखा होगा। वह नितांत व्यक्तिगत एवं प्रथम प्रयास था। आर्थिक संतुलन के लिए विज्ञापनों का सहारा लेना पड़ा था। संभवतः आपकी सेवा में पत्र भी लिखा था। यदि उसी समय आपके बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हो सकते, तो अब श्रद्धेय संतराम बी० ए० से सम्बन्धित शताब्दी अभिनंदन स्मारिका में लाभ उठाया जा सकता था। स्मारिका प्रकाशन में हैं। अतः आपके सुझावों का अधिक लाभ तो उठा न पायेंगे, फिर भी आपका शुभाशीष पाकर कुछ न कुछ लाभ तो अवश्य ही होगा। अतः विनम्र निवेदन है कि स्मारिका हेतु शुभाशीष देकर कृतार्थ करें।

विगत १०–२–८७ को उन्होंने अपने यशस्वी जीवन के १०० वर्ष पूर्ण किए हैं, साहित्य एकेडमी ने उनका अभिनंदन किया है और अब असहाय स्थिति में अपनी सुपुत्री श्रीमती गार्गी चड्ढा के पास ५१ नवजीवन बिहार नई दिल्ली ११००१७ में रहते हैं, निरंतर सुपुत्री द्वारा संपर्क बना हुआ है।

डा० भगवती लाल भारतीय पंजाब वि० वि०, डा० राष्ट्र बंधु सं० बाल–साहित्य-समीक्षा १०९।३०९ रामकृष्ण नगर कानपुर, डा० राम चरण महेन्द्र नयापुर कोटा राजस्थान, श्री अखिल विनय (बंबई), जैसे साहित्यकारों के लेख व संदेश प्राप्त हो चुके हैं।

कृपया अपना पूर्ण परिचय एवं सहयोग देकर कृतार्थ करें। पुनः बरेली तक आना हो तो यहाँ भी दर्शन देकर अनुगृहीत करें। आपका सहयोग इस समिति के सत्कार्य में सहायक और अनुप्रेरक ही सिद्ध होगा।

शेष फिर।

कृपाकांक्षी
शिव अवतार सरल
मालती नगर, मुरादाबाद
२४४००१

२०२. डा० जनार्दन उपाध्याय, अयोध्या

[डा० उपाध्याय का० सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय फैजाबाद में हिन्दी विभाग में हैं, रहते अयोध्या में है। अयोध्या जाने पर डा० गुप्त का इनसे बराबर मिलना होता है।]

३०२

डा० जनार्दन उपाध्याय
एम० ए०, डी० फिल०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
का० सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय
फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)

आवास :-
हँसवर कोठी
रामकोट
अयोध्या—२२४१२३
दिनांक २२-६-८७

श्रद्धेय डॉ० साहब,
सादर प्रणाम,

जमानियां कालेज के लाइब्रेरियन महोदय के द्वारा आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। उनका हित-साधन अधिकतम जितना संभव होगा, अवश्य करूँगा।

उनके आने के दो तीन महीने पहले आपका स्मरण आया था और एक आवश्यकता वश आपको पत्र लिखने ही वाला था। कार्य यह है कि मेरे निर्देशन में अवध विश्वविद्यालय से शोध विषय का पंजीयन हुआ है—'पं० रामनाथ ज्योतिषी—जीवन और साहित्य' इसके पहले मैंने ज्योतिषी जी के श्री राम चन्द्रोदय काव्य पर एम. ए. का लघु प्रबंध लिखवाया था। ये चूँकि अयोध्या के ही राजकवि थे और मैंने अपने निर्देशन में सारे विषय ऐसे ही दिए हैं। जो अवध क्षेत्र की हिन्दी-साहित्य-साधना से संबंधित हैं, अतः यह मुझे प्रिय लगा। जब रचनाओं की खोज में प्रयत्न हुआ, तो उनकी राम चन्द्रोदय के अतिरिक्त कोई अन्य रचना अब तक हाथ नहीं लगी। शोध-छात्र बहुत निराश हो गया है और मैं भी बहुत बोर हूँ। उनके कुटुम्बी और समकालीन साहित्य प्रेमी भी उनकी अन्य रचनाओं में से कुछ भी नहीं उपलब्ध करा पा रहे हैं। यदि आपके पास कुछ हो तो हम लोगों की सहायता कीजिए। उनकी प्राप्ति का कोई तरीका हो तो वह भी बताइए। पांडुलिपि भी खरीदी जा सकती है और फोटो कापी तैयार करके एक प्रति प्रदान करने वाले से लेकर शेष उसे दी जा सकती है। यह भी पता नहीं है कि श्री राम चन्द्रोदय के सिवा उनकी कोई अन्य रचना छपी थी या नहीं।

शोध संग्रह और अनुशीलन में सारा जीवन अर्पित करने वाले आप जैसे मनीषी ही इसमें मार्ग-दर्शन कर सकते हैं। बड़ी आशा से यह पत्र लिख रहा हूँ। हिन्दी साहित्य कोश भाग २ में उन पर जो टिप्पणी छपी है, उसके लेखक डा० सत्य नारायण

त्रिपाठी हैं। उसकी टिप्पणी में उनकी १६ रचनाओं के नाम हैं। डा० त्रिपाठी को भी पत्र लिखा है, पर अभी कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। १६ रचनाओं की नामावली सेवा में प्रेषित हैं। मैं बड़ी व्यग्रता से पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

उत्तम स्वास्थ्य एवं अध्यवसाय को पूरी शक्ति के साथ आप ७२वें वर्ष में प्रविष्ट हो गए हैं, यह बड़े हर्ष और गौरव की बात है। इस उपलक्ष में मेरी सप्रणाम शुभ-कामना स्वीकार करें। शीघ्र ही अब अयोध्या आने का एक कार्यक्रम बनाइए। आपके प्रिय शिष्य और हमारे आदरणीय गुरु डा० राधिका प्रसाद त्रिपाठी जो सपरिवार सानंद हैं। कन्या के विवाह कीतैयारी में हैं। जाड़े में शादी होगी, ऐसी आशा हैं।

शेष कुशल मंगल। प्रत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

कृपाकांक्षी

जनार्दन उपाध्याय

५. लेखांजलि

१. क्रियासिद्धिः सत्वे, भवतु महताम् नोपकरणे।

(क्रिया की सिद्धि सत्व—सप्राणता, जीवंतता, जीवट—से होती है। केवल उपकरणों से कोई महान नहीं होता।)

२. साईं इतना दीजिये, जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

३. नहिँ जाँचै, नहिँ संग्रहै, सीस नाइ नहिँ लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहिँ, को वारिद बिनु देइ॥

१. हिंदी शब्दकोश एवं व्युत्पत्ति

डा० लक्ष्मीशङ्कर गुप्त, उपाचार्य, हिंदी, विभाग,
काशीविद्यापीठ, वाराणसी

शब्दकोश और व्याकरण भाषा की आधार-शिलाएँ हैं। शब्द और अर्थ का संबंध नित्य नहीं है। यदि यह संबंध नित्य होता, तो कोई विशिष्ट शब्द देशकाल-निरपेक्ष रह कर एक ही अर्थ देता। न फारसी और हिंदी में 'मन'[१] के अर्थ में भिन्नता होती, न अँगरेजी, अरबी, और हिंदी में 'सन'[२] के अर्थ में। फिर संस्कृत और अरबी में 'समर'[३] के अर्थ में भिन्नता क्यों होती ? 'काम' 'साहस' आदि का जो अर्थ पुरानी भाषा संस्कृत में है, वही उससे विकसित हिंदी में भी होता। शब्द पर अर्थ आरोपित रहता है। फिर भी शब्द और अर्थ का संबंध बड़ा घनिष्ठ है। इसी कारण कवियों ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ.......[४]

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।[५]

शब्दकोशों में शब्दों के अर्थ और प्रयोग दिए रहते हैं। उनमें व्युत्पत्ति का भी विचार रहता है। अँगरेजी आदि योरोपीय भाषाओं के जितने अच्छे और विविध उद्देश्यों से प्रस्तुत किए गए कोश विद्यमान हैं, वैसे कोशों का हिंदी में नितांत अभाव है। हिंदी में जितने कोश विद्यमान हैं, उनमें अर्थ, प्रयोग और संदर्भोल्लेख की दृष्टि से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'हिंदी शब्दसागर' सर्वश्रेष्ठ है। उसमें शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गई है। कोश में किसी शब्द का अर्थ और प्रयोग देखने से उसके परिधान अथवा वेश का परिचय मिलता है, उस शब्द से वह विशिष्ट अर्थ ही क्यों गृहीत होता है, इसका पता नहीं चलता। इसका पता तो तभी चल पाता

१— फा० मन = मेरा, मेरी, मेरे; हिं० मन = अंतःकरण की संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति।

२— अंगरेजी—सन = पुत्र, सूर्य; अरबी—सन = वर्ष; हिंदी—सन = सनई अथवा उसका रेशा।

३— संस्कृत—समर = संग्राम; अरबी—समर = कथा, कहानी, बात।

४— कालिदास, रघुवंशम् १/१

५— रामचरितमानस १/१८

है जब उस शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञात हो, उसके उद्गम, प्रकृति, प्रत्यय, धातु, धात्वर्थ आदि का ज्ञान हो। जब तक किसी शब्द के विषय में यह सब जानकारी नहीं होती, तब तक उसके मर्म का पता नहीं चलता, उसके अंतस्तल का ज्ञान नहीं होता। संस्कृत में 'शब्दकल्पद्रुम' अथवा 'वाचस्पत्यम्' नामक जो विशाल शब्दकोश हैं, उनमें शब्दों की निरुक्ति इसी प्रकार दी गई है, जिससे उनका अंतस्तल उद्घाटित हो जाए। हिंदी शब्द-सागर में यह प्रयास नहीं है। हिंदी के जो शब्द संस्कृत से स्पष्टतः विकृत होकर बने हैं उनका संस्कृत मूल ज्ञात हो जाने से बड़ी सुविधा हो जाती है, क्योंकि उस मूलभूत शब्द को संस्कृत कोशों में देख लेने पर उसकी प्रकृति, प्रत्यय आदि का निर्णय हो जाता है, जिससे उसकी अंतरात्मा का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ 'घाम' शब्द के मूल 'घर्म' के विषय में आप्टे-कृत संस्कृत-अंगरेजी कोश में अधोलिखित उल्लेख है—

घरति अङ्गात्; घृ-सेके कर्तरि मक्। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि 'घर्म' शब्द 'घृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—'सींचना'। इसमें कर्तृवाचक प्रत्यय है। अतः अर्थ हुआ—जो अंगों को सींचे, उसका नाम है—घर्म। घृ धातु का अर्थ 'स्रवित होना' तथा 'आच्छादित करना' भी होता है—प्रस्रवणे छादने च। अतः 'घर्म' का अर्थ यह भी हो सकता है कि 'जो सूर्य से झड़े' अथवा 'जो सभी वस्तुओं को आच्छादित कर ले'। 'धाप' 'धर्म' ही का ध्वन्यात्मक विकास है, अतः इसमें भी वही अर्थ सन्निहित है। शब्द का सटीक प्रयोग तभी संभव है, जब उसकी अंतरात्मा का ठीक ज्ञान हो। इसी प्रकार शब्द-प्रयोग की उपयुक्तता अथवा चमत्कार भी तभी समझ में आता है, जब उसकी अंतरात्मा का परिचय हो। बिना चमत्कार समझे कितने अलंकार भी समझ में नहीं आते। 'देह' और 'शरीर' हैं तो पर्यायवाची शब्द, पर उनकी आत्मा में अंतर है। संस्कृत में 'देह' की निरुक्ति इस प्रकार है—'देग्धि प्रतिदिनं, $\sqrt{}$दिह + घञ्। दिह् धातु उपचय अथवा वृद्ध्यर्थक है, अतः 'देह' का अर्थ हुआ 'वर्धनशील'। 'शरीर' की निरुक्ति है— $\sqrt{}$शॄ + ईरन्। शॄ धातु का अर्थ है— खंड खंड करना, नष्ट करना आदि। अतः शरीर का अर्थ हुआ—'अपचयशील', 'ह्रासोन्मुख'। यदि किसी उभड़ते युवक को देख कर कोई कहे कि "इसका 'शरीर' अच्छे विकास पर है" तथा किसी वृद्ध की प्रशंसा में कहे कि 'इनकी देह में अभी बड़ी तेजस्विता है', तो इन वाक्यों को सुन कर क्या शब्द-शास्त्रज्ञ बिना हँसे रह सकेगा? निष्कर्षतः शब्द के मूल और उसके वास्तविक अर्थ का ज्ञान आवश्यक है। इसीलिए कहा गया है—एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति।[१]

हिंदी शब्दसागर में बहुत से शब्दों के संस्कृत मूल का तो नहीं, उनके संस्कृत प्रतिशब्द का उल्लेख है। प्रतिशब्द से शब्द का मूलार्थ समझने में सहायता नहीं मिल सकती। अतः उनका उल्लेख निरर्थक है। उदाहरणार्थ—

१— महाभाष्य, प्रथम आह्निक में उद्धृत

टिकिया [सं० वटिका] चक्राकार छोटी मोटी वस्तु, जैसे दवा की टिकिया।
टिकोरा [सं० वटिका] आम की बतिया।
टिसुआ [सं अश्रु] आँसू।
टोना [सं० तंत्र] मंत्र तंत्र का प्रयोग; जादू।

शब्दसागर में कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति बताने के प्रयत्न में उन्हें संस्कृत से इस प्रकार जोड़ा गया है कि उसे दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न ही कहा जाएगा। अनेकत्र न तो यही समझने का प्रयत्न किया गया है कि संस्कृत में वैसे प्रयोग होते हैं अथवा नहीं और न यही विचार किया गया है कि उन शब्दों की कोई सार्थकता भी संभव है। उदाहरणार्थ—

अचकन [सं० कंचुक] एक प्रकार का लम्बा अंगा।
गुड्डी [सं० गुरु + उड्डीन] पतंग
टनमना [सं० तन्मनस्] जो शिथिल न हो; अनमना का उलटा।
टाँड़ी [सं० तत् + डीन = उड़ान] टिड्डी।

कुछ ध्वन्यात्मक संगति बैठ जाने से ही कोई शब्द मूल नहीं हो जाता। अर्थ की संगति भी बैठनी चाहिए।

शब्द सागर में 'टाँगा' (लकड़ी काटने का कुल्हाड़ा) का मूल दिया गया है-- टंग। ध्वन्यात्मक दृष्टि से 'टंग' से 'टाँगा' बड़ी आसानी से बन जाता है, पर यह भी देखना चाहिए कि संस्कृत में 'टंग' का अर्थ क्या है। आप्टेकृत संस्कृत-अँगरेजी-कोश 'टंग' का अँगरेजी प्रतिशब्द दिया गया है—ए स्पेड, हो; ए काइंड ऑव् सोर्ड (फावड़ा, चौड़े फल तथा लंबे दस्ते की कुदाल, एक प्रकार की कृपाण)। फिर यह 'टाँगा' का मूल कैसे हो सकता है ? आप्टे ही के कोश में एक शब्द है—टंक। उसका अर्थ दिया गया है—ए हैचेट, ऐन् ऐक्स् (एक हाथ से चलाने योग्य कुल्हाड़ी)। स्पष्ट है कि 'टंक' ही को 'टाँगा' का मूल मानना चाहिए, क्योंकि यह ध्वनि तथा अर्थ दोनों ही दृष्टियों से 'टाँगा' का मूल होने में समर्थ है।

'वटिका' शब्द अर्थ की दृष्टि से उपरिचर्चित 'टिकिया' का मूल हो सकता है, पर ध्वनि की दृष्टि से इसकी संगति नहीं बैठती। अतः यह व्युत्पत्ति ठीक नहीं है। सस्कृत में एक शब्द है—टिक्किका। आप्टे-कृत कोश में इसका अर्थ है—दि व्हाइट् मार्क (ऑन् दि फोरहेड ऑव् ए हॉर्स ऐंड सेट्रा) [(घोड़े आदि के माथे का) श्वेत चिह्न]। ध्वनि की दृष्टि से इससे 'टिकिया' बड़ी आसानी से बन जाएगी। यदि उक्त चिह्न को वृत्ताकार माना जाए तो अर्थ की भी संगति—आंशिक रूप से—बैठ जाती है। 'टिकिया' में मोटाई भी होती है, पर इतना अर्थ तो आरोपित हो सकता है।

शब्दसागर में बहुत से शब्दों का मूल बलात् संस्कृत में ढूंढने को चेष्टा की गई है, जबकि वे फारसी से व्युत्पन्न हैं। उदाहरणार्थ—'डिब्बा' की व्युत्पत्ति बताई गई है 'तैलंग या सं० डिब=गोला' से। मेरी जानकारी में 'तैलंग' के दो अर्थ होते हैं—तेलंगाना अथवा कर्नाटक प्रदेश और वहाँ के निवासी। कदाचित व्युत्पत्तिकार के मन में इसका अर्थ रहा 'तैलपात्र'। इससे 'डिब्बा' का ध्वन्यात्मक मेल नहीं है। 'डिंब' का अर्थ 'गोला' होता है, किन्तु इससे 'डिब्बा' की व्युत्पत्ति मानने पर अनुस्वार का लोप मानना पड़ेगा जो कदाचित् ही हो सकता है। यह वस्तुतः फारसी के 'दब्बः' या 'दुब्बः' से व्युत्पन्न हैं। फारसी में कुप्पे को हो 'दब्बः' कहते हैं। जरा खालिकबारी का मुलाहजा फरमाएँ—

जामः कप्पड़, टाट तप्पड़, दब्बः कूपा ॥१८॥

इसी दब्बः से 'डब्बा' और 'डिब्बा' बन गए। अर्थ-विस्तार इतना हुआ कि रेलगाड़ी का 'कम्पार्टमेंट' भी 'डिब्बा' बन गया। हिन्दी ने अल्पार्थ में 'डिब्बी' और 'डिबिया' भी बना ली। 'दब्बः' के अन्त में विसर्ग से मिलती-जुलती ध्वनि को फारसी में 'हाएँ मुख्तफी (असली)' कहते हैं।[1] इसका उच्चारण हिन्दी में 'आ' हो जाता है; जैसे—'बच्चः' का 'बच्चा'। 'दब्बः' का इसी प्रकार 'डब्बा' हो गया है। कोई 'दब्बः' सं० 'डिंब' से माने तो उसकी इच्छा।

शब्दसागर में 'मोचना' (बाल उखाड़ने की चिमटी) की व्युत्पत्ति संस्कृत 'मोचन' से बताई गई है। जिसका अर्थ है—छुटकारा दिलाने वाला। क्या अर्थ ? जो बालों से छुटकारा दिला दे ? वास्तविकता यह है कि यह फारसी के 'मूचीनः' से व्युत्पन्न है। फारसी में 'मू' का अर्थ होता है—केश, बाल, और 'चीन' अथवा 'चीं' का चुनने वाला'। 'गुलचीं' (=फूल चुनने वाला) से हिन्दी के विद्वान् परिचित हैं, जिसमें 'चीं' प्रत्यय का प्रयोग है। 'चीन' के अन्त में जो विसर्ग जैसी ध्वनि है, वह फारसी का तत्संबद्धार्थक प्रत्यय है, जिसे हाएँ मुख्तफी (वसली) कहते हैं।[2] मूचीनः से मूचिना > मूचना > मोचना बन गया। इसी प्रकार 'रोदा' (धनुष् की प्रत्यंचा) का मूल दिया गया हैं—'सं० रोध = किनारा'। भला 'प्रत्यंचा' का 'किनारा' से क्या मतलब ? वस्तुतः यह शब्द फारसी के 'रोदः' से बना है। फारसी में इसका अर्थ होता हैं—आंत अथवा तांत। ताँत आँतों को ही बट कर बनाई जाती है। मजबूती के लिए कमान की डोरी ताँत से बनाते थे। धुनको में अब भी ताँत का प्रयोग होता है।

फारसी से व्युत्पन्न बहुत से शब्दों को 'देशज' की उपाधि देकर भी जान बचाई गई हैं। उदाहरणार्थ 'मलाई' को देशज लिखा गया है, किंतु यह फारसी के 'बालाई'

१–मिफ्ताहुल क़वायद फ़ारसी, पृ० ३०

२–तत्रैव, पृ० ३०–३१

शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका वही अर्थ होता हैं। हिन्दी में 'बा' के स्थान पर 'म' हो गया है। फारसी में 'बाला' का अर्थ होता है—ऊपर। उसी में उक्त भाषा का तत्संबद्धार्थक प्रत्यय 'ई' जुड़ गया है, जिसे 'याय मारूफ़ निस्बती' कहते हैं। अर्थ हुआ—ऊपर का या की, ऊपर वाला या वाली।[1] यही स्थिति 'लुतरा' (चुगलखोर, पिशुन) की है। यह भी फारसी के समानार्थी शब्द 'लुत्रः' से बना है। हिंदी ने इससे स्त्री॰ 'लुतरी' भी बना लिया है। हिंदी का 'लूगा' (वस्त्र, कपड़ा) भी शब्दसागर के अनुसार देशज है। यह भी फारसी के 'लुंग' अथवा 'लुंगक' से बना हैं, जिसका वहाँ अर्थ होता है—लुंगी, तहमद, अँगौछा, जाँघिया आदि।

हिंदी के नामी कोशों में बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति के स्थान पर प्रश्नचिन्ह लगा कर छोड़ दिया गया है, पर उनमें से अधिकांश की व्युत्पत्ति लगा दी जाएगी, यदि इस कार्य के लिए अवसर और साधन उपलब्ध हों। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) जोन्हरी (ज्वार नामक अन्न)–यह समानार्थी सं॰ शब्द 'यौनल' अथवा 'यवनाल' से विकसित है। हिंदी ने इसमें स्त्रीप्रत्यय 'ई' का योग कर दिया है।

(२) रेह––इसकी व्युत्पत्ति वैदिक संस्कृत से है। लौकिक संस्कृत में एक धातु है 'लिह्', जिसका अर्थ हैं– चाटना। √ लिह् आस्वादने। इसके लिए वैदिक संस्कृत में √ रिह् है।[2] जैसे √ लिह् से लेह्य' (= चाटने योग्य वस्तु) बनता हैं वैसे ही √ रिह् से 'रेह्य' भी बनेगा। इसी से 'रेह' बन जायगा। चौपायों को जब नमक की आवश्यकता होती है, तब वे ऊसर में जाकर लेहन-क्रिया करते है, इसीलिए उसमें प्राप्त क्षार 'लेह्य' है। वैदिक धातु से विकसित 'रेह' शब्द बहुत पुराना है। यह फारसी में भी प्राप्त है। वहाँ इसका उच्चारण 'रोह' है।[3]

३—''हिजड़ा—इसकी व्युत्पत्ति भी हमारे कोशकारों को नहीं मिली[4]। वस्तुतः 'हिंजड़ा में 'ड़ा' तो हैं हिन्दी का स्वार्थक प्रत्यय[5] और प्रकृति है 'हीज़'। फारसी में 'हीज़' गुदमैथुन कराने वाले लड़के को कहते हैं। उस क्रिया का नाम है 'हीज़ी'।

१–तत्रैव, पृ॰ ३१-३२

२—आप्टे-कृत संस्कृत-अँगरेजी-कोश, पृ॰ १३४२।

३—स्टोनगास-कृत पर्सियन-अँगरेजी-कोश, पृ॰ ६०५।

४—मानक हिन्दी कोश, खंड ५, पृ॰ ५४८।

५—प्रत्यय-योग होने पर शब्द स्वार्थक नहीं रह जाता। द्रष्टव्य—लेखक-कृत 'व्रज भाषा-दर्शन', अनु॰ ७३ अप्रकाशित।

शब्दसागर में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनकी व्युत्पत्ति तो दी गई है, किन्तु उसके आगे प्रश्न-चिह्न लगा दिया गया है । 'पहिया' ऐसा ही शब्द है । उसकी व्युत्पत्ति के स्थान पर परिधि लिखा गया है । 'पहिया' का मूल 'प्रधि' या 'उपधि' है । प्रधि का अर्थ चक्र की परिधि होता है तथा उपधि का सम्पूर्ण चक्र । 'पहिया' में 'आ' (या) खड़ी बोली का पुंप्रत्यय है । उपधि के 'उ' का लोप करने से तथा 'आ' की 'या' श्रुति होने पर 'पहिया' बन जाता है ।

यहाँ प्रामाणिक माने जाने वाले शब्दसागर तथा मानक हिन्दी कोश से बानगी के रूप में जहाँ-तहां से चुने हुए थोड़े से ऐसे शब्द उद्धृत किए जा रहे हैं जिनकी व्युत्पत्ति या तो लगी ही नहीं हैं अथवा अशुद्ध है । ये शब्द हैं—

कठौता, कबड्डी, गुड्डी, गुब्बारा, चिनरोख, चौराई, जड़हन, जूस (दो से विभाज्य), जेवरी, टुर्री, ढिंढोरा, तावा, दलहन, घीया, नीवँ, बंदर, बकुचा बनौरी, बमपुलिस,बिनौला, बिस्तुइया, रिकवँछ, लात, साँसत, सीप

ऐसे शब्द सहस्रों हैं । ये शब्द शब्दसागर के सन् १९२४- ९२८ ई० वाले संस्करण से चुने गये हैं तथा १९६६ ई० में प्रकाशित मानक हिन्दी कोश में भी वैसे ही हैं । इस बीच शब्दसागर के कितने संस्करण हुए तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मानक हिन्दी कोश भी प्रकाशित कर दिया। मानक हिन्दी कोश के सम्पादक श्री रामचन्द्र वर्मा के अनुसार उनके संपादन में शब्दार्थ का विस्तार भी किया गया है,[१] किन्तु व्युत्पत्ति के विषय में ढाक के वही तीन पात ही रह गये हैं । उपरिलिखित सूची के सारे शब्दों की कोश लिखित तथा स्वचिंतित व्युत्पत्ति यहाँ प्रस्तुत की जा सकती है, किंतु प्रस्तुत निबन्ध के कलेवर का ध्यान रखकर सम्प्रति इसे छोड़ा जा रहा है । यदि अवसर मिला तो इसके लिए स्वतन्त्र निबंध लिखा जायगा ।

भाषा में धातु का महत्त्व सर्वाधिक होता है, क्योंकि उनसे अनेक कृदंत रूप बनते हैं । मेरी समझ में इन कोशों में धातुओं की व्युत्पत्ति तो और भी अटकलपच्चू है । नीचे कुछ धातुओं की कोश लिखित तथा स्वचिंतित व्युत्पत्ति दी जा रही है । सुधी इनकी यथार्थता का निर्णय स्वयं कर सकते हैं ।

१—मानक हिंदी कोश, प्रथम खंड, आरम्भिक निवेदन, पृ० ९

१—आगे की तालिका में प्रयुक्त संकेतों का विवरण—

अंग० = अंगरेजी।	अनु० = अनुकरण शब्द।	अ० पु० = अन्य पुरुष।
ए० व० = एक वचन।	क० = करना	तुल० = तुलनीय।
दे० = देखिए।	प्रा० = प्राकृत।	फ़ा० = फ़ारसी।
मा० को० = मानक हिंदीकोश।	शब्द० = हिन्दी शब्दसागर।	सं० = संस्कृत।
हिं० = हिंदी।	हो० = होना।	० (अक्षर के पूर्व) =

पूर्व शब्द में लिखित अंतिम अक्षर को छोड़ कर शेष का द्योतक

धातु	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
करोद[1]	खरोचना, खुरचना, करोना	शब्द० – कर्त्तन	सं० क्रोड (पेड़ का खोड़र; गढ़ा, पोला स्थान; √क्रुड्- घनी-भावे संज्ञायां घञ्) > करोद > √करोद = खुरच कर गढ़ा क०। तुल०– अंग० कोरोड (Corrode)।
कुन	खरादना, खुरचना, छीलना	शब्द० – सं० क्षुणन या धुणन = घुमाना	सं० कुंद (खरादने का यंत्र) > कुन्न > कून > √कून, कुन।
कुरला	करुण स्वर में बोलना, आर्त नाद क०	मा० को०— सं० करुणा	सं० कुरल (कुररी पक्षी जिसकी ध्वनि बड़ी करुणोत्पादक होती है) > √ कुरला।
कुलबुला	छोटे जीवों का एक समूह में हिलना-डोलना, चंचल हो०, अकुलाना	शब्द०—अनु० कुलबुल। कुलबुल—अनु०	सं०√कुल् (निर्बाध आगे बढ़ना या जाना + सं०√बुल् (डूबना, डुबकी लेना) = √कुलबुला। यह संयुक्त धातु है।

१. यहाँ शुद्ध धातु रूप दिया गया है, क्रियार्थक संज्ञा रूप नहीं, क्योंकि हिंदी की विभिन्न बोलियों के इस रूप में अंतर है। हिंदी का कोश खड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य बोलियों का भी है।

धातु	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
कूक	घड़ी, ग्रामोफोन आदि में चाबी भरना	शब्द०—हिं० कुंजी। मा० को०—अनु०	फ़ा० कोक [वाद्य यंत्र का स्वर मिलाना, घड़ी की चाल का नियमन (रेगुलेशन; आधुनिक बोलचाल), घड़ी का अथवा कोई अन्य कमानी से चालित यंत्र] > √कूक।
केरा	सूप से छोटे बड़े दानों को अलग - अलग क० अथवा दानों से मिट्टी, कंकड़ी अलग क०	शब्द०—सं० किरण अथवा हिंदी—गिराना	सं० √ केल् (हिलाना, खेलना)–केलति[१] >केरइ>√केर, केरा अथवा नामधातु—केलायते (क्रीडा करता है)> केरायए> केरावए>√ केराव, केरा
कोंच	चुभाना, गोदना, गड़ाना	शब्द०–सं० कुच = लिखना, खरोचना। टिप्पणी–आप्टे-के कोश में 'कुच' का तो नहीं, √कुच् का अर्थ टु राइट् (लिखना), डेलिनिएट् (आकार या प्रारूप बनाना) है, पर यह 'चुभाना' के अर्थ के निकट नहीं है।	सं॰ √कृत् (काटना, विभक्त क०, खंड खंड क०, नष्ट क०) का कर्मवाच्य रूप—कृत्यते>कुच्चए >कोचय >√कोच, कोंच। कुच्चए>√कूँच भी।

१– यहाँ और आगे सर्वत्र संस्कृत के तिङंत रूप लट् लकार, अ० पु०, ए० व० के ही हैं।

धातु	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
कोड़	गोड़ना, मिट्टी को कुछ खोद कर उलटना	शब्द० तथा मा० को०—सं० कुंड = खंडित एक । टिप्पणी—'खंडित एक' का क्या अर्थ ? मा० को० में बिना विचार किए मक्षिका स्थाने मक्षिका रख दिया गया है । आप्टे के कोश में √कुंड् का अर्थ टु मेम् (सदोष=क.), म्युटिलेट् (अंग-भंग क०, अपूर्ण क०) दिया गया है, किन्तु इनका 'गोड़ना, से क्या संबंध ?	सं० √क्षुर् (काटना, खरोंचना रेखा या सीता बनाना) अथवा सं० √खुर् (काटना, खरोंचना, टुकड़े क०) > √खुर, खोर > √कोर > √कोड़ । इसी √कोर से बोलियों में √करो भी । अथवा 'क्षुरित' से भी ।
कोस	शाप के रूप में दुर्वचन कहना	शब्द० तथा मा० को०—सं० क्रोशष । टिप्पणी—मुझे 'क्रोशष' नहीं मिला ।	सं०√क्रुश् (आह्वाने रोदने च, पुकारना, रोना)—क्रोशति > कोसइ > √कोस अथवा क्रोशन
कौंध	बिजली (तडित्) का चमकना	शब्द० तथा मा० को०—सं० कनन = चमकना + अंध या सं० कबंध ।	सं० कव (अल्पता आदि अर्थों का उपसर्ग) √ अन्ध् (दृष्ट्युपघाते उपसंहारे च, दृष्टि में व्याघात पहुँचाना, दृष्टि समाप्त क०)—कवान्धति-०ते > कवंधइ, ०ए >

धातु-	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
		टिप्पणी—आप्टे के कोश के अनुसार— कनन = एकाक्ष, काना (चमकना नहीं); कवंध = शीर्ष-विहीन धड़; धूम-केतु; बादल; राहु; पेट; पेट के आकार का पात्र; जल; एक राक्षस।	कौंधइ, ०ए > √कौंध (व्युत्पत्ति-लब्ध अर्थ—अल्पकालिक अंधत्व उत्पन्न क०)।
खँगार	हलका धोना, थोड़ा धोना, सब कुछ उड़ा ले जाना, खाली कर देना	शब्द०— क्षालन	कद् (अल्प, खराब आदि अर्थ का उपसर्ग) √क्षल् (धोना, बहा ले जाना, पोंछ लेना या डालना)— कद्क्षालयति— ०ते > कक्खालयइ— ०ए > √कक्खाल > √खक्खाल > √खग्घाल > √खग्गाल > √खंगाल > √खँगार।
खंद	खोदना	व्युत्पत्ति नहीं है।	फ़ा० कंदन (= खोदना) > कंदना > खंदना > √खंद। यह सं० √खन् > हिं० √खन तथा हिं० √खोद के मिश्रण अथवा √खन में 'द' के आगम से भी बन सकता है।
खजमजा	जी भारी लगना, अस्व-स्थवत् अनुभव क०	मा० को०— अनु०	सं० √खद् (स्थैर्यहिंसाभक्षणेषु, दृढ़ होना, स्थिर हो०, भोजन क०) + य (विशेषण बनाने वाला प्रत्यय) = खद्य + मांद्य (दृढ़ता तथा

धातु	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
			बुभुक्षा का शैथिल्य) = खद्यमांद्य > खज्जमाज्ज > √खजमज ।
खटा	खट्टा होना	शब्द०—हिं० खट्टा । खट्टा—शब्द० सं० कटु	सं० तक्र (मट्ठा) > टक्क > टक (= खट्टा – बंगला) > कट्ट > खट्ट, खट्टा > √खटा टर्नर-कृत नेपाली कोश में 'खट्टी' (= खट्टा) का सं० मूल 'खट्टः' दिया गया है, किंतु यह आप्टे के कोश में नहीं है ।
खटा	निर्वाह हो० टिकना, निभना, परीक्षा में ठहरना	शब्द०—सं० स्कभ, स्कब्ध, प्रा० खड्ड = ठहरा हुआ	सं० √खद् (दे० 'खजमजा' के अंतर्गत)–कर्मवाच्य रूप-खद्यते > खड्डए > खट्टए (पैशाची में वर्गीय घोषों का अघोष हो जाता है) > √ खटाय > √ खटा विशेष—खड्डए > खड़ए > √खड़ (खड़ा होना) । पंजाबी में इस धातु का व्यवहार है—इत्थे गड्डी खड़दी है (यहाँ गाड़ी खड़ी होती है) ।
खत्तिया	खाते में पृथक् पृथक् लिखना	शब्द०–हिं०खाता —खातासं० खात	अरबी—ख़त्तहा > खत्ता > खाता > √खतिया
खसक	शनैः शनैः अन्यत्र जाना, सरकना	शब्द० अनु०	सं √कस् (गतिशील हो०)— कसति > कसइ > √कस > √खस + क (धातुओं में संयुक्त होने वाला आकस्मिकता बोधक प्रत्यय) > √खसक ।

धातु	अर्थ	कोशगत व्युत्पत्ति	स्वचिंतित व्युत्पत्ति
खिरिद	सूप में अन्न तेलहन आदि को इस प्रकार हिलाना कि अनुत्तम दाने अलग हो जाएँ	मा० को०—सं० कीर्णन	सं० खलित [√खल् (हिलाना, गति देना) + क्त] > थरित > खिरिद् > √खिरिद अथवा सं० क्षरित [√क्षर् (फिसलाना, सरकाना, आगे बढ़ाना, वायु में तैराना आदि) + क्त] > खरित आदि ।
खिरिर	यथोपरि	शब्द०—अनु०	हिं० √खिरिद (दे० ऊपर 'खिरिद' के अंतर्गत) > √खिरिड > √खिरिड़ > √खिरिर ।

हमारे विद्वान् एवं निष्ठावान् पुरखों ने उस विदेशी शासन और साधन-न्यूनता के युग में जो शब्दसागर प्रस्तुत किया, वह निश्चय ही बहुमूल्य है, इसमें संदेह नहीं है। अर्थ, व्याख्या, प्रयोग, उदाहरण आदि की दृष्टि से यह कोश अत्युत्तम है, किंतु इसमें व्युत्पत्ति संबंधी खोट बहुत अधिक है। यह समय, साधन, ज्ञान, अथवा निष्ठा के अभाव के कारण हुई, यह नहीं कहा जा सकता। शब्दसागर के अनेक संस्करण हुए, उसकी सामग्री के आधार पर मानक हिन्दी कोश की भी रचना हुई, किंतु खेद है कि व्युत्पत्ति-दोष का मार्जन नहीं हो पाया। मानक हिन्दी कोश के संपादक श्री रामचन्द्र वर्मा का कथन है कि उन्होंने उक्त कोश में "हजारों शब्दों की व्युत्पत्तियाँ ठीक की हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी का एक देहाती बहुप्रचलित शब्द 'बेहरी' है, जिसकी व्युत्पत्ति हिंदी शब्दसागर में कुछ नहीं दी गई है और कोष्ठक में केवल प्रश्न-चिह्न लगा कर छोड़ दिया गया है। मेरी समझ में यह शब्द सं० व्याहृति से व्युत्पन्न है, जिसका एक अर्थ (वि + आहरण) किसी से जबरदस्ती कुछ ले लेना भी है।"[१] वर्मा जी की उक्ति में मुझे संदेह नहीं है। उन्होंने व्युत्पत्ति सम्बन्धी सुधार अवश्य किया होगा, किन्तु उन्हें उचित सम्मान देते हुए मैं यह लिखने के लिए क्षमा चाहता हूँ कि उन्होंने जो 'बेहरी' का मूल 'व्याहृति' को बताया है, वह मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। 'व्याहृति' में जो 'हृ' धातु है, उसके आधार पर 'व्याहृति' का उक्त अर्थ भले ही कर लिया जाए, किन्तु यह जबरदस्ती है। यहाँ 'हृ' धातु में 'वि' और 'आ' उपसर्ग लगे हुए हैं। इनके

१—मानक हिन्दी कोश, खंड १, आरंभिक निवेदन, पृ०८।

योग से 'हृ' धातु का मूल अर्थ 'हरण करना' यहाँ रह नहीं गया है। आप्टे के कोश में √व्याहृ के अधोलिखित अर्थ दिए गए हैं—

'टु स्पीक्, से, अटर्, टेल्, नैरेट्, डिक्लेयर्;.......२—टु ऍक्सप्लेन; ३—टु क्राइ, स्क्रीम्, शाउट; ४—टु आन्सर्; ५—टु स्पोर्ट, इन्जॉइ; टु कट् ऑफ्, सेवर्।'[1]

इनमें मूल अर्थ कहाँ है? संस्कृत व्याकरण का सामान्य छात्र भी जानता है कि—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

अब आप्टे ही के कोश में 'व्याहृति' का भी अर्थ देख लीजिए—

१—अटरैंस, स्पीच्, वर्ड्स; २—स्टेटमेंट्, ऍक्सप्रेशन्; ३—भूर्, भुवम् ऐण्ड स्वस् ऑर् स्वर्..........।[2]

इनमें 'ग्रहण' अर्थ तो कहीं नहीं है। फिर यह शब्द 'बेहरी' का मूल कैसे होगा? मेरा विचार है कि इसका मूल 'व्यावहारिका' है, जो 'व्यवहारिक' का स्त्री० रूप है जिसका एक अर्थ है—'यूज़ुअल्, कस्टमरी'[3] (प्रायिक, पारम्परिक, रिवाजी)। गावों में सामूहिक पूजा—जैसे ब्रह्म या देवी की पूजा—अथवा सार्वजनिक निर्माण—जैसे देवी-स्थान का चबूतरा, हनुमान् जी के मन्दिर का मंडप आदि—के लिए घर-घर से चन्दा एकत्र किया जाता है, उसे 'बेहरी' कहते हैं। ऐसे कामों के लिए अर्थ-संग्रह की यह पद्धति चिरकाल से चली आ रही है। वह पारंपरिक (कस्टमरी) है।

मानक हिन्दी कोश में किन-किन शब्दों की व्युत्पत्ति जोड़ी गई है अथवा सुधारी गई है, इसका पता लगाना तो बहुत कठिन है, क्योंकि उनकी सूची तो दी नहीं गई। मानक हिन्दी कोश में मुझे एक और शब्द मिल गया है; जिसकी व्याख्या में शब्द-सागर से भिन्नता है। यह शब्द है—चूहा। शब्दसागर में इसकी व्युत्पत्ति है—'अनु० चूं+हा (प्रत्य०)'। मानक हिन्दी कोश में व्युत्पत्ति तो नहीं दी गई है, कोष्ठक में अधोलिखित उल्लेख है—

१—१. बोलना, कहना, उच्चारित क०, कथन क०, वर्णन क०, घोषित क०;....
२. समझाना; ३. रोना, चिल्लाना, चीखना ४. उत्तर देना; ५. खेलना, मनोरंजन क०, काट फेंकना, काट देना।

२—१. कथन, भाषण, शब्द २. उत्कथन, अभिव्यक्ति; ३. भूर्, भुवस् तथा स्वस् अथवा स्वर्........।

३—आप्टे-कृत संस्कृत-अँगरेजी-कोश, पृ० १५१९

फा० चुवा, बं० चुया, उ० चुआ, पं० चूहा, सिं० चूहो, गु० चुहो, ने० चुहा, मरा० चुवा।[1] यह सब टर्नर-कृत नेपाली कोश से उद्धृत प्रतीत होता है। अन्तर इतना ही है कि उसमें फारसी का प्रतिशब्द नहीं है तथा गु० चुवो और मरा० चुहा है। स्टीनगास-कृत फारसी-अँगरेजी-कोश में मुझे 'चुवा' शब्द नहीं मिला। डाँ० भोलानाथ तिवारी ने अपने बृहत् पर्यायवाची कोश में 'चूहा' का एक पर्याय 'चूसा' भी दिया हूँ।[2] संस्कृत में 'चूषा' का एक अर्थ 'चूसने वाला भी है।[3] वैज्ञानिकों का मत है कि चूहा पानी नहीं पीता। सम्भव है, वह द्रव पदार्थ पीता न हो, चूसता हो। इसी कारण इसका नाम 'चूषा' पड़ा हो, जिससे 'चूसा' और 'चूहा' बन जाना सम्भव है।[4]

व्युत्पत्ति-निर्धारण का काम बहुत कठिन है। यह विविध भाषाओं, व्याकरण शास्त्र, भाषाविज्ञान, साहित्य, सामाजिक परम्परा, विविध विषयों के ज्ञान तथा व्युत्पत्ति-निर्धारण के क्षेत्र में अनुभव की अपेक्षा रखता है। वस्तुत: व्युत्पत्ति-निर्धारण की एक विशिष्ट प्रतिभा अथवा अन्तर्दृष्टि होती है, जो बिरले लोगों को ही मिलती है। इसके साथ-साथ रुचि, अध्यवसाय और निष्ठा भी आवश्यक है। यह समयसाध्य काम है। इसमें जल्दबाजी नहीं चलती।

देश की स्वतंत्र हुए चार दशक बीत चुके हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा है, किन्तु इसके कोश की यह स्थिति है। भारत सरकार हिन्दी के विकास के लिए प्रभूत धनराशि व्यय कर रही है, किन्तु कोश-रचना की ओर उसका ध्यान नहीं है। योरोप, अमेरिका आदि में कोश-निर्माण का स्थायी विभाग होता है, जो कोश में निरन्तर परिवर्धन, संयोजन, संशोधन, व्युत्पत्ति आदि का कार्य करता रहता है। वह छोटे, बड़े अनेक आकार के कोश, पर्याय-कोश, विलोम-कोश, ऐतिहासिक कोश, लोकोक्ति-कोश आदि तैयार करता रहता है। जीवित भाषा में शब्दागम होता रहता है। कितने शब्द प्रयोग से हटते भी जाते हैं। नए शब्द भी बनते रहते हैं, जिनमें बहुत से पारिभाषिक भी होते हैं। उनके उच्चारण, अर्थ, प्रयोग, लिंग आदि में परिवर्तन और विकास होता रहता है। इस कारण कोश में परिवर्तन और सुधार अपेक्षित होता है। हमारे देश में भाषाओं के कोश-विभाग नहीं हैं, जो परम आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य हैं।

१—बं० = बंगला, उ० = उड़िया, पं० = पंजाबी, सिं० = सिंधी, गु० = गुजराती, ने० = नेपाली, मरा० = मराठी।

२—ग ५३२, पृ० ९२

३—द्रष्टव्य—आप्टे-कृत संस्कृत-अँगरेजी-कोश, खण्ड २, पृ० ७१५

४—अपने 'बिहारी-सतसई-निरूक्त' में मैंने इन प्रामाणिक कोशों को लीक से हट कर सैकड़ों शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार किया है। वे वहीं द्रष्टव्य हैं। उक्त ग्रंथ अभी अप्रकाशित है।

इस संक्षिप्त निबन्ध का प्रतिपाद्य इतना ही है कि हिन्दी के प्रामाणिक कोशों में जो संस्कृतेतर शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है, उनमें लगभग एक चौथाई शब्द ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति या तो लगी ही नहीं है, अथवा अशुद्ध या भ्रामक है। शब्दसागर का निर्माण होने के पश्चात् विविध संस्थाओं द्वारा अथवा व्यक्तिगत प्रयास से कितने छोटे-बड़े कोश बने, बोलियों के भी कोश प्रस्तुत किए गए, किन्तु व्युत्पत्ति से प्रायः सर्वत्र जान बचाई गई है। व्युत्पत्ति के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयास से इनी-गिनी पुस्तकें प्रस्तुत हुई हैं, जो हिन्दी के शब्द भांडार को देखते हुए अपर्याप्त हैं। कोश-निर्माण में भी वणिक-वृत्ति का प्रभाव है। अन्त में मेरा निवेदन है कि यदि भारत सरकार संप्रति कोश-विभाग स्थापित नहीं कर सकती, तो एक योजना बनाकर शब्दों की व्युत्पत्ति तो ठीक करा दे, नवागत शब्द तो जुड़वा दे और कोश में अन्य आवश्यक सुधार तो करा दे। वृद्ध, अनुभवी और आस्थावान् विद्वान् प्रातःकालीन उडुगण के समान विलीन होते जा रहे हैं, कई कारणों से युवा विद्वानों की रुचि इस ओर दिखाई नहीं पड़ रही है। ऐसी स्थिति में सरकार तथा हिन्दी की स्वयंसेवी संस्थाओं का कर्तव्य है कि हिन्दी के इस आधारभूत काम को इस क्षेत्र में गति रखने वाले मनीषियों से करा लें। भारत सरकार से आशा की जाती है कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए वह अर्थकृच्छ्रता नहीं होने देगी।

अन्त में यह लिखते हुए मुझे क्लेश हो रहा है कि जितने श्रम से योरोपीय विद्वानों ने हमारी भाषाओं का अध्ययन किया, हम उसका दशमांश भी नहीं कर रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में हम चाहे जितनी प्रगति कर गए हों, भाषा के क्षेत्र में जहाँ के तहाँ हैं। यह स्थिति चिंत्य भी है और लज्जाजनक भी।

२. हिन्दी के आदि कवि सरहपाद

डॉ० द्विजराम यादव, रीडर, हिन्दी विभाग, शि० ने० का० आजमगढ़

अपभ्रंश भाषा संस्कृत और हिन्दी के बीच की वह कड़ी है, जहाँ से हिन्दी भाषा अपनी अलग पहचान बनाने लगी। अपभ्रंश अपने युग की बोलचाल, विचार, भावाभिव्यक्ति और जीवन के विकास की सशक्ततम माध्यम थी। इसके साथ ही साथ यह विशाल भारतीय वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इतना समृद्ध साहित्य कुछ दिनों तक अप्राप्य होने के कारण 'अंधकारयुग' के नाम से जाना जाता था। परन्तु पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के अथक प्रयास से यह अंधकार युग प्रकाश में आया। जर्मन विद्वान् डॉ० रिचार्ड पिशेल, डॉ० हरमन याकोबी, तथा भारतीय विद्वान् महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, चिमनलाल डाह्याभाई दलाल, डॉ० पांडुरंग गुणे, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० प्रबोध चन्द्र बागची, मुनि जिन विजय जी, पंडित राहुल सांकृत्यायन आदि के प्रयास से अपभ्रंश साहित्य की विपुल सामग्री विद्वानों के सम्मुख आयी। इन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत प्रशस्त मार्ग का अनुसरण कर डॉ० रामसिंह तोमर, डॉ० नामवर सिंह, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० हरिवंश कोछड़, डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० वीरेन्द्र श्रीबास्तव आदि ने हिन्दी में तथा डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० मणीन्द्र मोहन बसु ने आदि बँगला में पाठ एवं आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं। इधर कुछ नया कार्य हुआ है, जिसमें मेरा और डॉ० रणजीत कुमार साहा, डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय, डॉ० शंभूनाथ पाण्डेय आदि का नाम जोड़ा जा सकता है। गुलेरीजी ने इस साहित्य को 'पुरानी हिन्दी' के नाम से अभिव्यक्त किया था, परन्तु डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'पुरानी हिन्दी' नाम का निराकरण करते हुए अपभ्रंश-हिन्दी के सम्बन्ध में कहा 'अपभ्रंश को अब कोई भी पुरानी हिन्दी नहीं कहता। परन्तु जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है, निःसंदेह हिन्दी का पूर्ववर्ती साहित्य अपभ्रंश साहित्य से क्रमशः विकसित हुआ है।'[१] आचार्य द्विवेदी ने अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी का 'मूलरूप और प्राणधारा' तक कहा है। अपभ्रंश साहित्य के प्रमुख दो भेद मिलते हैं—पूर्वी अपभ्रंश और पश्चिमी अपभ्रंश। डॉ० तगारे ने एक और भेद—दक्षिणी अपभ्रंश किया है। पूर्वी अपभ्रंश में बौद्धों की रचनाएँ आती हैं, पश्चिमी अपभ्रंश में कालिदास, जोइंदु, मुनि रामसिंह, धनपाल, हेमचन्द्र के दोहे आदि आते हैं। दक्षिणी अपभ्रंश में पुष्पदन्त (महापुराण), मुनि कनकामर आदि की रचनाएँ आती हैं।

पूर्वी अपभ्रंश में चौरासी सिद्धों की रचनाएँ आती हैं। पूर्वी अपभ्रंश साहित्य की खोज करने वालों में म० म० हरप्रसाद शास्त्री, ब्रिअन होगसन (Brian Hodg-

---

१. हिन्दी साहित्य; उद्भव और विकास पृ० १७।

son), युजेन बुनरुफ (Eugene Burnouf), बेण्डल सीसेल, पण्डित राहुल सांकृत्यायन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इन्हीं विद्वानों के प्रयासस्वरूप चौरासी सिद्धों की रचनाएँ प्रकाश में आयीं। परन्तु चौरासी सिद्धों की अधिकांश रचनाएँ विलुप्त हो गयी हैं केवल उनके तिब्बती अनुवाद मिलते हैं। ये अनूदित रचनाएँ 'तिब्बती त्रिपिटक' में संकलित हैं। इसके दो भाग हैं—कग्युर (व्कऽग्युर) तथा तन्ग्युर (ब्स्तनऽग्युर)। तिब्बती त्रिपिटक के दो संस्करण नर्थङ्ग और देर्गे प्राप्त होते हैं। तन्ग्युर का र्ग्युद (तंत्र) खण्ड वज्रयान के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है। चौरासी सिद्धों की रचनाएँ इसी खण्ड में संकलित हैं। ये सारी रचनाएँ अपभ्रंश से तिब्बती भाषा में अनूदित हैं।[1] इसी में सरहपाद की कृतियों के अनुवाद भी मिलते हैं।

वज्रयानी सिद्धों की जीवनी से संबंधित दो ग्रन्थ तिब्बती भाषा में मिलते हैं, जिनका संकलन तिब्बती त्रिपिटक के खण्ड ६९, पृष्ठ १३९–१४१ तथा खण्ड ८७ पृष्ठ २०३ पर मिलता है। इन ग्रन्थों के नाम हैं—गुब-थोब-बर्ग्यद्-चु-र्च-बशीअि-तोयस्-पअि-सजोङ्पोशेस्-ब्य-ब (चतुराशीति-सिद्धसंबोधिहृदयनाम) तथा गब्-थोब-व्ग्यद्-र्च-बशीअि-लो-ग्युस् (चतुराशीतिसिद्धप्रवृत्ति)। पहले ग्रन्थ में सरहपाद का नाम आठवें स्थान पर है तथा दूसरे ग्रन्थ में छठें स्थान पर। इन दोनों ग्रन्थों में लुईपा को प्रथम स्थान मिला है। लुईपा सरहपा के शिष्य थे परन्तु गुरु की अपेक्षा शिष्य को अधिक ख्याति प्राप्त थी, फलस्वरूप जनश्रुति के आधार पर लुईपा को सूची में प्रथम स्थान मिला होगा। सिद्धों की जीवनी के सम्बन्ध में कोई ठोस सामग्री प्राप्त नहीं होती। जो सामग्री मिलती है, उसमें अतिरंजित, अलौकिक एवं आश्चर्यजनक घटनाएँ अत्यधिक मात्रा में मिलती हैं, फलस्वरूप प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करना असंभव है। सिद्ध सरहपाद की जीवनी के सम्बन्ध में भी यही समस्या सामने आती है। भोट (तिब्बती) भाषा में अभी तक चार ऐसी रचनाएँ मिली हैं, जिनका सहारा लेकर सरह की जीवनी पर प्रकाश डाला जा सकता है। ये रचनाएँ हैं—

१. गुब-थोब-बर्ग्युद्-र्च-बशीअि-ली-ग्रर्यस (चतुराशीतिसिद्धप्रवृत्ति)
२. दपग्-बसम-ल्जोन-ब्सङ् (कल्पवृक्ष, आर्यदेश, महाचीन, तिब्बत और मंगोल में धर्म की उत्पत्ति)
३. छोस्-अबयुङ्-बस्तन-पअि-पद्म-र्गयस्-पअि-जिन्-ब्येद-चेस-ब्यब्र बशुगस सो (धर्मोद्भव-शास्त्र के कमल को प्रकाशित करने के लिए दिनकर)
४. दम-पअि-छोस्-रिनपोछे-अफगस्-पअि-युल-द्रु-जिल्तर-दर बअि-छल-ग्सल्-बर-स्तो-

१. विस्तृत विवरण के लिए देखिए–वज्रयानी सिद्ध सरहपाद–पृ० १०–१३।

नप-द्गोस-अदोद्-क्रुनाअब्सुङ्-शेसबयब-व-शुगस्-सो (भारत में महायान बौद्ध-धर्म का धार्मिक तथा सामाजिक इतिहास–)–लामा तारानाथ ।

इन चारों ग्रंथों के आधार पर सरह की जीवनी इस प्रकार है—गुरु सरहपाद का जन्म पूर्व भारत के राज्ञी नामक स्थान पर हुआ था । राज्ञी नामक स्थान रोलीया के नाम से भी प्रसिद्ध था । सरहपाद ब्राह्मण थे, परन्तु उनकी आस्था बौद्ध धर्म में थी। इसी क्रम में एक दिन उन्होंने कलाली का दिया हुआ मद्यपान कर लिया, फलस्वरूप ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध हुए । उन पर अभियोग लगाया गया और उन्हें सम्राट् रत्नपाल के सम्मुख दण्ड देने के लिए लाया गया । परन्तु सरहपाद ने कठिन और अलौकिक परीक्षा के पश्चात् सिद्ध कर दिया कि वे सिद्ध पुरुष हैं । बाद में सरहपाद नालंदा विश्वविद्यालय छोड़कर एक तीर बनाने वाली के साथ रहने लगे । इसी कारण उनका नाम सरह पड़ा । 'श्रीपर्वत' भी उनकी साधना स्थली के नाम से प्रसिद्ध है। सरहपाद का बचपन का नाम राहुलभद्र था । इनकी शिक्षा-दीक्षा नालन्दा महाविहार में हुई थी । बहुत दिनों तक नालन्दा महाविहार के आचार्य पद पर भी थे । इनका समय सातवीं शताव्दी का उत्तरार्द्ध या आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । जहाँ तक सिद्ध सरहपाद के महत्त्व का प्रश्न है, वह निर्विवाद हैं, क्योंकि अपनी साधना पद्धति, रचनाओं आदि के कारण सिद्ध सरहपाद बौद्ध परम्परा में प्रतिष्ठित हैं। आज भी तिब्बती लोग बड़े सम्मान के साथ सरह का स्मरण करते हैं । इनकी रचनाओं के संबन्ध में जो विचार प्रस्तुत किए गए हैं, उनका आधार कोर्दिये की सूची है। तिब्बती त्रिपिटक की छानबीन करने के पश्चात् मैंने यह निष्कर्ष निकाला है । मूल रूप में प्राप्त (प्रकाशित) रचनाएँ:–

१. दोहाकोशगीति (दो-ह-म्जोद-क्यी-ग्ल) देवनागरीलिपि, बंगलालिपि तथा तिब्बती अनुवाद (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ६८)
२. दोहाकोश (खण्डित प्रति)–यह प्रति सिद्ध तिल्लोपाद के दोहाकोश की हस्तलिखित प्रति के साथ मिली है ।[1]
३. दोहाकोश (यह भी सिद्ध तिल्लोपाद के दोहाकोश की प्रति के साथ मिली है[2])
४. चार चर्यागीत ।[3]
५. त्रैलोक्यवशंरावलोकितेश्वर साधन–मूल संस्कृत में, तिब्बती अनुवाद (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ८०, पृ० १४१–१४२ तथा संस्कृत पाठ साधनमाला भाग–१ में उपलब्ध ।)

---

१. चर्यागीतिकोषः सं० डॉ० बागची, पृ० ८६ ।

२. वही, पृ० १८७

३. वही, पृ० क्रमशः ७५, १०५,१२४,१२७, (२२, ३२,३८,३९ गीत सं०)

६. त्रैलोक्यवशंकरलोकेश्वर साधन (तिब्बती अनुवाद तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ८०, पृ० २६३ तथा संस्कृत पाठ साधनमाला भाग–१ में उपलब्ध है)

७. सेकोद्देश टीका में सरह के कई दोहे उद्धृत हैं।[१]

तिब्बती भाषा में अनूदित रचनाएँ :––

१. श्रीबुद्धकपालसाधन (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ५८ पृ० १०२)
२. सर्वभूतबलिविधि (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ५८ पृ० १०४)
३. श्रीबुद्धकपालनाममण्डलविधिक्रमप्रद्योतन (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ५८, पृ० १०५)
४. दोहाकोश नाम चर्यागीति (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० ४८)
५. दोहाकोश उपदेशगीति नाम (विब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० ८५)
६. कखस्य दोहानाम (तब्बती त्रिपिटक, खण्ड, ६९, पृ० ९८)
७. कखस्य दोहाटिप्पण (विब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० ९९–१०३)
८. कायकोश अमृतवज्रगीता (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १०३-१०६)
९. वाक्कोशरुचिरस्वरवज्रगीता (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १०६-१०७।
१०. चित्तकोश अजवज्रगीता (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १०७–१०८)
११. कायवाकचित्तमनसिकारनाम (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १०८)
१२. दोहाकोशनाममहामुद्रोपदेश (विब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० ११०)
१३. द्वादशोपदेशगाथा (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १२७)
१४. स्वाधिष्ठानक्रम–(तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १२७)
१५. तत्त्वोपदेशशिखर दोहागीति नाम (तब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १२७
१६. भावनादृष्टिचर्याफल दोहाकोशगीतिका नाम (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९ पृ० १९१)
१७. वसंततिलक दोहाकोशगीतिका नाम (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १९२)
१८. सरहगीतिका–(तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १९३–७ बी[१])
१९. सरहगीतिका (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० १९३–७ बी)
२०. महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीति (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९, पृ० २१८–२२१)
२१. त्रैलोक्यवशंकरलोकेश्वर साधन (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ८०, पृ० १७०)
२२. त्रैलोक्यवशंकरलोकेश्वर साधन नाम (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ८०, पृ० १७०)
२३. अधिष्ठानमहाकाल साधन नाम (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ८६, पृ० १६८)
२४. महाकालस्तोत्र (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ८६, पृ० १७७)

---

१. G. O. S. Vol. X. C. $\frac{४८}{१}$, $\frac{४८}{४}$, ६३

२५. श्री वज्रयोगिनी साधन (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ५३, पृ० २८०)

२६. श्रीबुद्धकपालतंत्रस्यपंजिकाज्ञानवती नाम (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड ५८, पृ०५०)

इन रचनाओं के अतिरिक्त कोर्दिये और जापानी सूची में सरह की निम्नलिखित रचनाओं के नाम मिलते हैं, परन्तु वास्तव में ये सरह की रचनाएँ नहीं हैं।

१. योग संक्षेप (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ८२, जापान से प्रकाशित तिब्बती त्रिपिटक में लेखक का नाम शान्तिगुप्त तथा अनुवादक का नाम निर्वाण श्री और तारानाथ है। कोर्दिये की सूची के अनुसार यह सरह की रचना है)

२. ममोपदेश-तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड ६९। लेखक महाशबर।

३. डाकिनीवज्रगुह्यगीति (ति० त्रि०, खण्ड ६८, लेखक का नाम कमलशील है परन्तु रचना के अन्त में सरह का नाम मिलता है।

४. व्यक्तभावानुगततत्त्वसिद्धि (ति० त्रि० मि, ६६ बी, ७-७२ बी·४ × LVI-७। इसमें सहजयोगिनी चिन्ता का नाम मिलता है। कोर्दिये की सूची के अनुसार यह सरह की रचना है।

अतः इन चारों कृतियों के सम्बन्ध में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि ये किसकी कृतियाँ हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सरहपाद के ग्रन्थों की संख्या २९ है तथा चर्यागीतों की संख्या ६ हैं। चूँकि सभी रचनाएँ अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं इसलिए अन्तिम रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें कितनी अपभ्रंश की कृतियाँ हैं और कितनी संस्कृत की।

भारतीय साधना, चिन्तनधारा एवं भावधारा को समझने के लिए चौरासी सिद्धों की रचनाओं में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। हिन्दी साहित्य का नाथ एवं संत साहित्य सिद्ध साहित्य की आधारशिला पर निर्मित हुआ है, फलस्वरूप सिद्ध साहित्य के अध्ययन के बिना नाथ और संत साहित्य का अध्ययन-मनन अपूर्ण रह जाता है। सरहपाद आदि सिद्ध थे, फलस्वरूप उनकी साधना, चिन्तन-धारा एवं भावधारा का गहरा प्रभाव अन्य सिद्धों पर पड़ा है। सरह की रचनाओं में प्रमुखतः दो प्रकार की भावधारा मिलती हैं—

१. वज्रयान (बौद्ध) मत के सिद्धान्तों का विशद विवेचन।

२. उपदेशात्मक, प्राचीन रूढ़ियों एवं कर्मकाण्ड का खण्डन-मण्डनात्मक विवेचन।

यही दोनों भावधाराएँ सरहपाद की रचनाओं में विभिन्न वर्ण्य विषयों में अभिव्यक्त हुई हैं—रहस्यवाद, बाह्याचारों-रूढ़ियों-पाखण्डों का खण्डन, तन्त्र-मन्त्र देवतादि की निरर्थकता, सहज मार्ग पर विशेष बल, भोग में ही योग अथवा निर्वाण की सिद्धि, काया ही तीर्थ, गुरु की महत्ता, सहज साधना, संयम आदि।

णउ तम्बाअहि गुरु कहइ, णउ तम्बुज्झइ सीस।
सहजामिअरसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ।। रहस्यवाद
किन्तह तित्थ तपोवण जाइ, मोक्ख कि लब्भइ पाणी ह्लाइ ।।
मट्टी (पाणी कुस लइ पढन्तं, घरहीं बइसी) अग्गि हुणन्तं ।।
कज्जे बिरहिअ हुअवह होमें, अक्खि डहाविअ कड़ुएँ धुमें ।।
एक दण्डि त्रिदण्डी भअवँ वेसें, विणुआ होइअइ हंस उएसें ।।
मिच्छेंहि जग वाहिअ भुल्लें, धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें ।।[1]

सरहपाद ने अन्तः साधना पर विशेष बल दिया है तथा वाह्याचार, रूढ़ियों, पाखण्डों का कड़ा विरोध किया है । उन्होंने ब्राह्मणों के खोखले ज्ञान का उल्लेख करते हुए कहा है—

बम्हणेहि म जाणन्तहि भेउ, एवइ पढ़िअउ ए च्चउ वेउ ।।[2]

तंत्र-मंत्र की निःसारता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है—

मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण, सब्बवि रे बढ विब्भमकारण ।[3]

गुरु की महत्ता सरहपाद के लिए सर्वोपरि थी, इसीलिए गुरु और गुरु-उपदेश को उन्होंने प्राथमिकता दी है—

गुरु-उवएसें अमिअ-रसु, धावहि ण पीअउ जेहि ।
बहु सत्थत्थ मरुत्थलिंहिं, तिसिए मरिअउ तेहि ।।[4]

परम महासुख एवं सहजानन्द की प्राप्ति के लिए सच्चे गुरु की शरण ही एक मात्र साधन है । जो व्यक्ति सहजानन्द का मार्ग प्रकाशित करे, सद्-मार्ग निर्देशित करे, जिसके उपदेश में 'अमृत रस' हो, चित्त का स्फुरण हो, अपने पराये का भेद न हो, विशुद्ध चित्त सम्पन्न हो, वही व्यक्ति गुरु है । ऐसे गुरु की 'वाणी' में 'सहजामृत' का वास रहता है ।

सरहपाद ने वाह्याचार, कर्मकाण्ड, दिशाहीन शास्त्रज्ञान, भावहीन पूजा, मन्त्र, मन्दिर, तीर्थाटन आदि का भयंकर रूप से खण्डन किया है । इसके विकल्प में सहजानन्द की प्राप्ति का मार्ग 'सहज साधना' बतलाया है । 'समरसता' की प्राप्ति सहज मार्ग से ही हो सकती है । शरीर को कष्ट देने से ही इसकी उपलब्धि हो यह आवश्यक नहीं है । भोग में भी निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है ।

---

१. चर्यागीतिकोष : सं० प्रबोधचन्द्र बागची, १९५६, पृ० १८७, १८८
२. वही, पृ० १८८
३. वही, पृ० १८९
४. चर्यागीतिकोष : सं० बागची पृ० १९१

घरहिं म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि भण परिआण ।
सअलु णिरन्तर वोहि-ठिअ, कहिं भव कहिं णिव्वाण ।।[1]

जिस प्रकार साधना के क्षेत्र में सरहपाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में भी सरहपाद को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। दोहा और गीत परवर्ती कवियों ने भी लिखा है, परन्तु उनपर सरह की छाप विद्यमान है। कबीरदास पर सरह और अन्य सिद्धों का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है।

जहिं मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि बढ़ चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ।। सरह
जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उड़े नहिं जाइ ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या लौ लाइ ।। कबीर

वज्रयानी सिद्ध सरहपाद का युग, संघर्ष का युग था। सामाजिक असमानताएँ धार्मिक भ्रष्टाचार आदि समाज में अपनी जड़ जमा रहे थे। जाति-पाँति के आधार पर लोगों को धर्म-वंचित रहना पड़ता था। नाना प्रकार के पाखण्डपूर्ण धार्मिक कर्मकाण्डों के द्वारा जनता को ठगा जा रहा था। सरह पहले सिद्ध थे, जिन्होंने इसका विरोध किया।

सरहपाद के एक चर्यागीति के साथ अपनी बातें समाप्त कर रहे हैं—

काअ णावड़ि खाण्टि मण केड़आल
सद्गुरु वअणे धर पतवाल ।।
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।
आन उपाये पार ण जाइ ।।
नौवाही नौका टाणअ गुणे ।
मेलि मेलि सहजे जाउ ण आणें ।।
वाटत भअ खाण्ट बि बलआ ।
भव उलोलें सब बि बोलिआ ।।
कूल लइ खरे सोन्तें उजाअ ।
सरह भइण गअणें समाअ ।। चर्यागीतिकोषः पृ० १२४ ।।

अर्थात् संसार रूपी सागर को पार करने के लिए शरीर रूपी नौका और मन रूपी पतवार का सहारा लो। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। इस कार्य हेतु सद्गुरु का उपदेश अवलम्ब है। सहजमार्ग छोड़कर टेढ़ा मार्ग मत अपनाओ। इस मार्ग में भी भय है, जलदस्यु रूपी विषयवासनाएँ हैं। सहज मार्ग अपना कर विषय-वासनाओं से मुक्त होकर आगे बढ़ो। इस मार्ग पर अग्रसर होते हुए गगन (निर्वाण) में लीन होंगे।

---

१. वही, पृ० १९५

३. फारसी-लिपि में लिखित हिन्दी-ग्रन्थों की सम्पादन-समस्या

डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

मध्यकालीन साहित्य की पोथियों को संकलित और उजागर करने का श्रेय बहुत कुछ यूरोपीय विद्वानों को है। उन्होंने बिना किसी भेद-भाव के अरबी-फारसी भाषा के ग्रन्थों के साथ-साथ नागरी, कैथी और फारसी लिपि में लिखित हिन्दी-उर्दू की पोथियाँ भी एकत्र कीं और अपने देश ले गये। वे आज वहाँ के अनेक पुस्तकालयों और संग्रहालयों में संरक्षित हैं।

उनके इस प्रयास से प्रेरणा प्राप्त कर काशी की नागरी प्रचारणी सभा ने १९०० ई० में हिन्दी पोथियों की खोज का काम अपने हाथ में लिया। तब से वह पोथियों की खोज का काम करती आ रही है। कुछ काल पूर्व तक वह खोज में ज्ञात पोथियों का समुचित विवरण भी प्रकाशित करती रही। उसका यह कार्य एक सीमा तक ही सराहनीम कहा जा सकता है। उसके इस कार्य में मुख्य रूप से दो दोष थे। एक तो यह कि उसका ध्यान केवल पोथियों की जानकारी प्राप्त करने तक ही सीमित रहा। उनके संरक्षण की दिशा में उसने किसी प्रकार का प्रयास नहीं किया। इसका परिणाम आज यह है जिन पोथियों का विवरण उसकी खोज–रिपोर्टों में उपलब्ध है, उनमें से अधिकांश का आज पता नहीं है। कहा नहीं जा सकता कि वे क्या हुईं, कहाँ गयीं। दूसरा दोष यह था कि उसने कभी इस बात के जानने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया कि हिन्दी ग्रन्थों की प्रतियाँ अरबी-फारसी लिपि में भी हैं। उसकी खोज रिपोर्टों में इस प्रकार की एक भी प्रति का उल्लेख नहीं है, जब कि तथ्य यह है कि इंग्लैण्ड और यूरोप के पुस्तकालयों में फारसी लिपि में लिखित तुलसीकृत रामचरित मानस और सूरदास के सूरसागर की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं। दुखहरनदास की पुहुपावती की एक प्रति फारसी लिपि में कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में है। इसी प्रकार सूरदास (पंजाबवाले) के नलदमन की भी एक प्रति फारसी में ज्ञात है, जो बम्बई के प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय में है। उन्हीं की एक दूसरी रचना राधा-कृष्ण की प्रति भी फारसी लिपि में है और वह अलीगढ़ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं। इसकी जानकारी किसी को भी किसी रूप में नहीं है। फारसी लिपि में उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं हैं। अनेक शृंगार काव्य यथा—केशवदास की रसिक प्रिया, बिहारी कृत सतसई आदि की भी प्रतियाँ इस लिपि में लिखी मिलती हैं। रसिक-प्रिया की जो फारसी प्रति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है वह उसकी प्राचीनतम प्रति है। वह औरंगजेब के शासन-काल के आठवें वर्ष में तैयार की गयी थी। इस

प्रसंग में यही ज्ञात है कि रसिक-प्रिया की ज्ञात सभी नागरी प्रतियाँ इस काल के बहुत बाद की हैं।

काशी नागरी प्रचारणी सभा ने जिस संकुचित दृष्टिकोण के साथ अपनी खोज का कार्य नागरी-कैथी प्रतियों तक ही सीमित रखा, उसी संकुचित दृष्टि से कतिपय संस्थाओं ने भी अरबी-फारसी लिपि में लिखित ग्रन्थों के संकलित करने का कार्य किया। इस कार्य में उनका ध्यान मुख्यतः अरबी-फारसी भाषा के ग्रन्थों पर ही केन्द्रित रहा। उर्दू-साहित्य का वास्तविक विकास-प्रसार अधिक पुराना न होने के कारण उनके सामने उर्दू के ग्रन्थ-संग्रह जैसी कोई बात ही नहीं रही, जिसके बहाने वे फारसी लिपि में लिखे हिन्दी के ग्रन्थों का भी संग्रह करते। फिर भी इन संग्रहों में अरबी-फारसी ग्रन्थों के साथ हिन्दी के ग्रन्थ भी भूले-भटके पाये जाते हैं, किन्तु उनके वास्तविक स्वरूप के जानने पहचानने को ओर ध्यान नहीं दिया गया। उदाहरणार्थ—कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उपलब्ध केशवदास के रसिक प्रिया की जिस प्रति का उल्लेख हमने ऊपर किया है, वह वहाँ के अरबी-फारसी ग्रन्थों के बीच रखी गयी है और पुस्तक सूची में उसका उल्लेख रश्क-ए-परियाँ नाम से हुआ है और उसे परियों की कहानी से सम्बन्धित रचना अनुमान किया गया है।

मुसलमान कवियों की जिन रचनाओं को हिन्दी का समझा और कहा जाता है, उनसे हमारा परिचय पहले पहल उनकी नागरी-कैथी प्रतियों के माध्यम से ही हुआ। उसमान कृत चितरावली (चित्रावली) को जगन्मोहन वर्मा ने कैथी की एक प्रति के ही आधार पर ही प्रकाशित किया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सम्मुख मलिक मुहम्मद जायसी के पदमावत का सम्पादन करते समय नागरी—कैथी की ही प्रतियाँ रहीं। फलतः हमारे साहित्यिक-जनों के बीच कुछ ऐसी धारणा घर कर गयी है कि इन मुसलमान कवियों की रचनाओं की मूल प्रतियाँ भी नागरी लिपि में ही प्रस्तुत की गयी थीं; अर्थात् उन्होंने उन्हें नागरी लिपि में ही लिखा था। फलतः उनकी फारसी लिपि में प्रस्तुत प्रतियाँ हमारी दृष्टि से ओझिल हो गयीं। यदि कभी किसी ग्रन्थ की फारसी प्रति सामने आयी भी तो उसे उसी दृष्टि से देखा गया कि वह नागरी प्रति से रूपान्तरित मात्र है और उसमें नागरी लिपि जनित विकृतियाँ हैं। यह कभी सोचने समझने की चेष्टा नहीं हुई कि जो नागरी-कैथी प्रतियाँ हमारे सामने हैं, वे वस्तुतः फारसी लिपि की प्रतियों से रूपान्तरित हैं और उनमें फारसी-लिपि के समुचित पाठोद्धार के अभाव से जनित विकृतियाँ हैं। इसका परिणाम यह है कि इन रचनाओं के जो संस्करण हमारे सामने जिस रूपमें भी प्रस्तुत किये गये, उसे ही हम आँख मूंद कर मूल पाठ मानते और पढ़ते पढ़ाते रहे। यदि कहीं पाठ के समझने में कठिनाई

आयी तो उसके मूल में पाठ-विकृति होने की सम्भावना की ओर ध्यान न देकर शब्द के उसी रूप के साथ कुश्ती करते और खींच-तानकर मनमाना अर्थ प्रस्तुत करते रहे।

मुसलमान कवियों की रचनाओं की नागरी-कैथी की जो प्रतियाँ आज उपलब्ध हैं, उनके वास्तविक मूल्य और महत्त्व के आँकने की ओर अब तक समुचित ध्यान नहीं गया है। यदि हमारे सामने फारसी लिपि से सीधे रूपान्तरित ऐसी एक से अधिक प्रतियाँ हों, जिन्हें एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया गया हो, तभी हम जान सकेंगे कि नागरी लिपि में रूपान्तरित पाठ मूल के कितने निकट पहुँचते हैं। और तब उनके परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध प्रतियों का वास्तविक मूल्यांकन किया जा सकेगा।

संयोग से हमारे सम्मुख आज मौलाना दाऊद कृत चन्दायन के दो ऐसे प्रकाशित संस्करण हैं जो समान रूप से एक ही एक फारसी प्रति पर आधारित हैं और जिन्हें एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन संस्करणों में एक तो उसके कुछ अंशों तक ही सीमित है और उसे विश्वनाथ प्रसाद और माता प्रसाद गुप्त सदृश भाषा-शास्त्र के उद्भट विद्वानों ने प्रस्तुत किया है और कन्हैया लाल, माणिक लाल मुंशी हिन्दी तथा भाषा विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है। दूसरा संस्करण इस अकिंचन द्वारा प्रस्तुत किया गया है और उपलब्ध सभी फारसी प्रतियों के आधार पर समूचे काव्य के उपलब्ध अंशों को सँजोया गया है। इन दोनों संस्करणों के पाठों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं--

वि० प्रसाद का पाठ	मेरा पाठ
१. आन बिरहमिस बुंदका परा। (पृ० ४०)	जान परहिं मसि बुंदका धरा। ८५।१
२. मुखक सोहाग भयो मनको।	मुखक सोहाग भयउ तिल संगू।
पदम विभासन बैठ भजन को ।। (पृ० ४०)	पदम पुहुप सिर बैठ भुजंगू ।। ८५।२
३. तिल बिरहिन बन कलेजैं जरी।	तिल बिरहें बन घुंघची जरी।
आध कार आधे रस भरी ।। (पृ० ४०)	आधी कार आधी रत फरी ।। ८५।४
४. राजा कैंकै सुनहि निकाई। (पृ० ४०)	राजा गिय कै सुनहु निकाई। ८६।१
५. लिहौं सराहन तत सो गोरी।	देउ सराहंहि तैसों गोरी।
केउँ अपछर कै लीन्ह अजोरी। पृ० ४१	गिय उचार गह लिहसि अजोरी ८६।३
६. असकै मनसा आहि न कामू। पृ० ४१	अस गिय मनुसंहि दीख न काहू ।। ८६।४
७. है सराप राजा कर सीस कंठ अँकवारि। पृ० ४१	हिये सिरान राजा कर सुनसि कंठ अँकवारि। ८६।६
८. अपना देस मुद्रिका भली। पृ० १४	उपना देस मँदिर गा भरी। १६१।३
९. पत्रन्ह केहि तर यह गिन पाता। पृ० ४७	पतरिह कँह तुरै बन पाता। १८०।१

मा० प्र० गुप्त का पाठ	मेरा पाठ
१. चन्द्र अलात धरा जनु लाये ।	चँदर लिलार धरा जनु लाई ।
जेहि नग बैठे अतिय सुहाये ।। पृ० ११	चमक बतीसी अतैं सुहाई ।। १४१।२
२. ताती रात बिछवाई, हस्ति चढ़ा दुख आन	ताती रात पिछौरी, हस्ति चढ़ा दिखाउ ।
घेरसि पाग सलोनी, तब जियहि कटारि सुहानि। पृ० १४	कस सर पाग सलोने, तिरछि कटार सुहाउ ।। १४६।८
३. मेले बुद्धि कह आछ जनावा । पृ० १६	मेलि बरह कै आपु जनाबा । २९१।७
४. कार झटक भरि कै चाली । पृ० १४	कार अंग पहिर कै चाले ।। २९४।१
५. सुनु सरि माहि मानुष कर बाता ।	कहौं सखि माँह माँस कै बाता ।
अइसइ रंग सबहि धन राता । पृ० ४७	करबि राँग सबै धनि राता ।। ५४।१

इसके साथ ही चन्दायन के अपने पाठ से कुछ ऐसे नमूने भी प्रस्तुत करना उचित होगा, जो अब स्वयं मुझे संदिग्ध लगते हैं और मैं उन्हें नये रूप में देखता हूँ ।

मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
१. सरवर एक सफरि भर रहा ।	सरवर एक सुभर भर रहा । २१।१
२. बनलेउ सुवन घना जल छाये ।	पील् सोन घना जल छाये । २२।३
३. देखि फिरे आछे पैराऊ ।	डुबुखि बहिरे आछे पैराऊ । २४।३
४. राजकुरी कै बीस इठाती ।	राजकुरी गै बइस अथाई ।
हम पुनि तहाँ भैठहि जाती ।।	हम फुनि ठाढ़ भये तिह जाई ।। २७।१
५. परवा राम रमायन कहहीं ।	बठवा राम रमायन कहहीं । २९।२
६. अगर चन्दन अन्तोंले, अछर सुहावन वास ।	अगर चन्दन उबटनाँ, अहै सुहावन बास । ३१।६

इन पाठों में वैषम्य स्पष्ट है । इस प्रकार पाठ वैषम्य को देखकर तथ्य से अपरिचित किसी के लिए भी विश्वास करना सहज न होगा कि ये दोनों ही पाठ किसी एक ही प्रति पर आधारित हैं अथवा हो सकते हैं । इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में अब यह सहज भाव से समझा जा सकता है कि जिन नागरी-कैथी प्रतियों को प्रामाणिक मानकर किसी ग्रन्थ का पाठ प्रस्तुत किया गया है अथवा किया जाता है, उनके प्रस्तोता, कितने भी प्रबुद्ध क्यों न रहे हों, उनके पाठ भी इसी ढंग के होंगे या हो सकते हैं । और तब हमारे लिए उनके किसी भी पाठ का फारसी प्रतियों के साथ सीधा सम्बन्ध मानना सहज ग्राह्य न होगा ।

इन नागरी-कैथी प्रतियों में पाठ की कितनी भ्रष्टता है या होगी अथवा उन पर अप-पाठ की कितनी मोटी काई जमी है, होगी अथवा हो सकती है, इसका बहुत कुछ अनुमान पदमावत के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत पाठ (जो नागरी-कैथी

प्रतियों पर आधारित है) और माता प्रसाद गुप्त द्वारा फारसी प्रतियों की सहायता से सम्पादित पाठ के तुलनात्मक परीक्षण से किया जा सकता है। शुक्ल जी के पाठ में अप-पाठों की बहुलता के कारण ग्रन्थ के समझने और उसकी व्याख्या करने में जो जटिलता और दुरुहता थी, वह बहुत कुछ माता प्रसाद गुप्त द्वारा प्रस्तुत पाठ में छँट गयी है और पाठ सहज और निखरे रूप में सामने आया है। सम्प्रति यह तो नहीं कहा जा सकता है कि माता प्रसाद गुप्त अपने संस्करण-प्रयास में जायसी द्वारा प्रणीत पदमावत के मूल रूप तक पहुँचने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं, किन्तु यह बात तो सामने उभर कर आती ही है कि नागरी-कैथी प्रतियों से ऐसे ग्रन्थों की प्रस्तुति में कितनी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। और उनकी प्रस्तुति के लिए उन फारसी प्रतियाँ का कितना मूल्य और महत्त्व है। अतः मध्य-कालीन हिन्दी साहित्य के उद्धार करने और उसे पूर्णरूप से प्रकाश में लाने की दृष्टि से अरबी-फारसी लिपियों में लिखी प्रतियाँ, चाहे वे हिन्दी कवियों की रचनाओं की हों चाहे मुसलमान, किसी भी प्रकार उपेक्षणीय नहीं हैं। उनकी ओर समुचित ध्यान देने और उनकी खोज के प्रति जागरूक होने की नितान्त आवश्यकता है।

हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि देश के विभाजन के साथ-साथ भाषा का भी विभाजन हो गया। उर्दू पाकिस्तान की भाषा बन गयी और भारत में वह साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर मुसलमानों के बीच सीमित हो गयी। हिन्दी के साहित्यिक जनों के बीच अरबी-फारसी लिपि (उर्दू लिपि) का जानकार आज पुरानी पीढ़ी का कोई वृद्ध शेष हो तो हो, युवा पीढ़ी को अपनी रोजी-रोटी के लिए उसके पढ़ने जानने की आवश्यकता नहीं रही। ऐसी स्थिति में यदि किसी में अरबी-फारसी लिपि में लिखित मध्य कालीन साहित्य के पठन और सम्पादन का उत्साह जागृत हो तो उसके लिए केवल लिपि का ज्ञान पर्याप्त न होगा। उस के साथ उसकी प्रकृति और प्रवृति से भी परिचित होना आवश्यक है, जो काफी अभ्यास से ही सम्भव होगा।

इस प्रसंग में प्रमुख रूप से ध्यातव्य है कि अरबी-फारसी (उर्दू) लिपि ध्वन्यात्मक न होकर संकेतात्मक है। नागरी लिपि की वर्णमाला की तरह ध्वनियों की अभिव्यक्ति के लिए इसमें अपनी स्वतन्त्र क्षमता नहीं है। अनुमान के सहारे ही उनको पढ़ा जा सकता है। इस कारण इस लिपि में लिखी गयी किसी भी भाषा को अपने मूल रूप में रूपान्तरित कर पाना काफी दुरुह कार्य है। उसके लिए काफी सूझ-बूझ और लिखित विषय के भीतर पैठ की आवश्यकता होती है।

इस लिपि में अनेक ध्वनियों को एक ही अक्षर संकेत से व्यक्त किया जाता है। यही नहीं, शब्दों के प्रयोग के समय अनेक अक्षरों के रूप, अपनी वर्णमाला के मूल रूप से भिन्न होते हैं। शब्दों के प्रयोग के निमित्त आदि, मध्य और अन्त की दृष्टि से

तीन भिन्न रूप हैं और उनका प्रयोग मुख्यतः नुक्तों (बिन्दुओं) पर आधारित है। नुक्तों के प्रयोग के सम्बन्ध में यह अनिवार्यता भी नहीं है कि वे जिस अक्षर की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं, वे उस अक्षर के अभीष्ट स्थान पर ही रखे जांय। लिपि सौन्दर्य अथवा लिपिकार की इच्छा के अनुसार आगे-पीछे ऊपर-नीचे कहीं भी रखे जा सकते हैं। इस लिपि के लेखन में नुक्तों का लोप भी कोई दोष नहीं समझा जाता। फारसी-लिपि में लिखित प्रतियों में इस प्रकार की उपेक्षा प्रायः देखी जाती है। इन तथा इन्हीं की तरह की अन्य प्रवृत्तियों के कारण उनके रूपान्तरण का कार्य जटिलता-पूर्ण हैं। उसे समझ पाने के लिए आवश्यक है कि उसके सभी पक्षों से विस्तृत रूप से परिचित हुआ जाय।

स्वर की अभिव्यक्ति के लिए इस लिपि में केवल **चार** अक्षर--अलिफ, वाव, छोटी ये और बड़ी ये हैं। इन्हीं के संयोग से कुछ अन्य स्वर बनते हैं, कुछ के लिए इन्हीं अक्षरों के ऊपर या नीचे जेर, जबर, पेश के संकेत-चिन्हों से काम लेते हैं। **अलिफ** का प्रयोग **अ**, आ, **इ** और **उ** के लिए समान रूप से किया जाता है और शब्द के आरम्भ में उसके अन्य अक्षरों से स्वतन्त्र लिखा जाता है। **आ** की अभिव्यक्ति के लिए **अलिफ** के ऊपर एक चिह्न मरकज, इ के लिए अलिफ के नीचे **जेर** और **उ** के लिए उसके ऊपर **पेश** का चिह्न लगा देते हैं।

पर जैसा ऊपर कहा गया है लेखन में इनकी अनिवार्यता नहीं है। मात्र **अलिफ** को अनुमान के सहारे प्रसंगानुसार अ, **आ, इ** अथवा **उ** पढ़ लिया जाता है। शब्द के अन्त में **अलिफ** का प्रयोग केवल मात्रा के रूप में **आ** का बोध कराने के लिए ही किया जाता है। वहाँ वह व्यंजन के साथ जुड़ा होता है। यदि शब्द के मध्य में आकारान्त व्यंजन है तो शब्द को खण्डों में विभाजित कर लिखा जायेगा। इस प्रकार सम्बन्धित खण्ड एक स्वतन्त्र आकारान्त खण्ड बन जाता है। उदाहरणार्थ यदि **अगर** लिखना हो तो **अ** का **अलिफ** आगे के **गर** से स्वतन्त्र लिखा जायेगा। आशा लिखना हो तो आरम्भ के **आ** का **अलिफ** अलग और **श** का मात्रा बोधक **अलिफ शीन** के साथ संयुक्त रहेगा इसी प्रकार इलाहाबाद लिखने में आरम्भ के **अ** के **अलिफ** का एक खण्ड, **लहा** का दूसरा खण्ड होगा, जिसमें **लाम** (ल) के साथ **अलिफ** जुड़ा होगा; तीसरा खण्ड **बा** का होग, उसमें **बे** के साथ **अलिफ** लगा होगा। अन्त में **द** के लिए **दाल** का चौथा एक स्वन्तत्र खण्ड होगा। इस व्यवस्था के अपवाद तीन व्यंजन दाल (द), वाव (व) और रे (र) है। इनके साथ **अलिफ** संयुक्त नहीं किया जाता है। यदि किसी शब्द में इन व्यंजनों के साथ प्रयोग हो तो वे सदैव अलग-अलग लिखे जायेंगे। यथा--आदमी। इसमें **आ** का **अलिफ** और **द** का **दाल** दोनों शब्द के दो स्वतन्त्र खण्ड होंगे। इसी प्रकार **अलिफ** का मात्रा के रूप में प्रयोग होने पर भी दोनों अक्षर

स्वतन्त्र रूप से लिखे जायेंगे। यथा--राम। यह **रे**, **अलिफ** और **मीम** के रूप में एक दूसरे से स्वतन्त्र तीन खण्डों में लिखा जायेगा।

इसी प्रसंग में एक अन्य अक्षर **ऐन** का भी उल्लेख अपेक्षित है। इसका प्रयोग अरबी-फारसी और उर्दू में व्यंजन के रूप में **अ** से भिन्न कुछ **अ-अ** सरीखी ध्वनि के लिए किया जाता है, किन्तु हिन्दी पठन-पाठन की दृष्टि से उसे स्वर ही कहना उचित होगा। जब इस अक्षर का प्रयोग किसी शब्द के आदि या मध्य में होता है, तो हम उसे नागरी लिपि में **अ** के रूप में ग्रहण करते हैं। यथा अब्दुल्ला, मुअज्जम। किन्तु जब उसका प्रयोग शब्द के अन्त में होता है तो उसे आ की मात्रा मानते हैं। यथा-- **काफ, लाम, ऐन** से लिखे शब्द का मूल पाठ होगा--**किल अ** किन्तु हम उसे **किला** पढ़ते हैं। लिखने की दृष्टि से इस अक्षर के आदि, मध्य और अन्त के लिए तीन भिन्न रूप हैं। आदि के लिए अक्षर के आदि अंश का प्रयोग किया जाता है। अन्त में वह बहुत कुछ अपने पूर्ण रूप में लिखा जाता है। मध्य के लिए उसका अपना स्वतन्त्र रूप है। यह रूप कुछ ऐसा है कि उससे चं-वर्ग के अक्षरों के मध्यवर्ती रूप का भ्रम हो सकता है।

वाव का प्रयोग सामान्य रूप में स्वर और व्यंजन दोनों रूपों में किया जाता है। स्वर के रूपों में वह **अ** और **ओ** का और व्यंजन के रूप में **व** का संकेत प्रस्तुत करता है। स्वर के रूप में इसका प्रयोग मात्रा--बोध के निमित्त ही किया जाता है और व्यंजन के साथ जोड़कर लिखा जाता है। किन्तु **दाल** और **रे** के साथ मात्रा-बोध कराते हुए भी वह उनसे अलग ही लिखा जाता है। शब्द के आरम्भ में ऊ और **ओ** की अभिव्यक्ति के निमित्त इस अक्षर की अपनी कोई स्वतन्त्र क्षमता नहीं है। उसके लिए उसे **अलिफ** का सहारा लेना होता है; अर्थात् **वाव** को **अलिफ** के साथ **अलिफ वाव** के रूप में लिखा जायेगा। और तब वह ऊ, **ओ**, औ, **अउ** कुछ भी पढ़ा जा सकता है। यथा--ऊपर, ओकर, औरत, आउत, आवत। प्रसंग के अनुसार पाठ-निर्धारण होता है। कभी-कभी उ के लिए भी **वाव** का प्रयोग देखने में आता है। ऐसे स्थलों पर उसका उच्चारण समझ-बूझकर ही करना पड़ता है। वैसे उ के लिए अपना कोई अक्षर नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति के लिए व्यंजन के ऊपर पेश लगा दिया जाता है। शब्द के आरम्भ में उ आने पर अलिफ में पेश लगा देते हैं। कभी कदा **वाव** शब्दान्त में उ का भी बोध कराता है। यक्ष चलउ, गयउ।

व्यंजन के रूप में व के लिए वाव का प्रयोग शब्द के आरम्भ में तो स्वतन्त्र रूप से होता है; किन्तु शब्द के मध्य या अन्त में आये **व** के लिए **वाव** का प्रयोग स्वर-प्रयोग की तरह ही पूर्ववर्ती अक्षर के साथ ही जुड़े रूप में किया जाता है। और वहाँ उसे प्रसंग के अनुसार व्यंजन **व** अथवा मात्रा ऊ या **ओ** के रूप में पढ़ा जाता है।

यथा—**बे, हे, याव, नून**=भवन; **काफ, वाव, टे**,=**कूट; मीभ, वाव, ते, ये**=मोती। आकारान्त शब्द-खण्ड के बाद व्यंजन **व** के लिए **वाव** के प्रयोग को बहुधा स्वर **ऊ** अथवा **ओ** पढ़ने की भूल की जाती हैं। इस प्रकार का एक मनोरंजक उदाहरण मेरे सामने है। मैंनचेष्टर के रीलैण्ड पुस्तकालय में जायसी के अखरावट की एक प्रति है। उसका शीर्षक फारसी लिपि में **अलिफ, काफ, हे रे, अलिफ**, वाव, ते अपने समुचित रूप में लिखा गया है। किन्तु अंगरेजी में लिखे पुस्तक-सूची में, उसका उल्लेख 'अखरोट' के रूप में हुआ है। यहाँ आव (अलिफ, वाव) को ओ पढ़ा गया है। इस कारण उत्पन्न भ्रान्ति के कारण कोष्टक में उसे अंग्रेजी में 'दवालनट ट्री कहा गया है।

बड़ी ये (ट) सामान्यतः समझा जाता है कि उसका प्रयोग ए और ऐ के लिए ही किया जाता है और 'ई' की अभिव्यक्ति के लिए छोटी ये (ऽ) है। किन्तु व्यवहार में यह सर्वांश में सत्य नहीं है। प्रायः बड़ी ये (ट) का प्रयोग प्राचीन प्रतियों में ई के लिए भी हुआ है। इस तथ्य की ओर ध्यान न देने से पाठ-सम्पादकों ने भयंकर भूलें की हैं। इस प्रकार का एक भयंकर उदाहरण वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत पदमावत के संस्करण में देखा जा सकता है। उसमें एक पंक्ति है—

दुँहु दिसि गँटुआ और मल सूई।
काँचे पाठ भरा धुनि रूई।

इसमें 'काँचे' शब्द दृष्टव्य है। फारसी प्रतियों में यह काक, अलिफ, नून, चे आरे बड़ी ये के रूप में लिखा पाया गया है। बड़ी ये (ट) को ए के रूप में ग्रहण करने की सामान्य धारणा के कारण इस पाठ में कोई दोष नजर नहीं आता। अतः नागरी-कैथी प्रतियों के अनेक प्रस्रोताओं ने इसी रूप में ग्रहण किया है और माता प्रसाद गुप्त ने भी इसी पाठ को ग्रहण किया है। इसी पाठ को वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी स्वीकारा है और उक्त पंक्ति की व्याख्या प्रस्तुत की है—दोनों ओर लम्बे तकिये (गड़ुआ) और गोल चपटे तकिये (गल सुई) लगे थे और उनमें कच्चे (काँचे) रेशम की रूई भरी थी। यहाँ विचार करने की बात यह थी कि कच्चा रेशम न तो रूई की तरह होता है और न वह रूई की तरह भरा जा सकता है। इस तथ्य पर ध्यान देते ही यह बात समझ में आ जाती है कि काँचे पाठ का कोई औचित्य नहीं है। यहाँ ये को लेकर ऐ के रूप में लेकर ई के रूप में ग्रहण करना और शब्द को काँची पढ़ना चाहिये। और तब सहज भाव से बात सामने आती है कि जायसी कच्चे रेशम (काँचे पाठ) की नहीं काँची-पाठ (काँजीवरम् के रेशमी कपड़े) की बात कह रहे हैं।

एक उदाहरण ऐसा ही शिव सहाय पाठक के कन्हावत संस्करण से भी लीजिये उसकी एक पंक्ति है—

देखो नगर सुहावन ढले पुहुप जस बास ।

अपने रूप में इस पाठ में कोई दोष नहीं है; किन्तु विवेक के साथ विचार करने पर पाठ संदिग्ध हो उठता है । पुहुप (पुष्प) का बास (महक) ढलता नहीं फैलता है । बास के ढलने की बात अपने आप में हास्यास्पद है । पाठ होना चाहिये—

देखी नगर सुहावन, देहली द्रुत जस पास ।

कहने की आवश्यकता नहीं ढले और देहली दोनों की कर्तनी एक सी है और बास पास में केवल नुक्तों की बात है । इस पर ध्यान देते ही दूसरा अर्थ सार्थक हो उठता है ।

बड़ी ये का प्रयोग ए आई के लिए हुआ है इसका निर्णय क्रिया प्रयोगों में करना सहज नहीं हो पाता । ऐसी ही स्थिति जायसी के पदमावत के इस पंक्ति की है—

सन नौ से सैतालिस अहे ।
कभी अरम्भ बैन कवि कहे ।।

कुछ प्रतियों में अन्तिम शब्द अही और कही अहै पाया जाता है । लेखन और पाठ की दृष्टि से, दोनों ही पाठ अपनी जगह ठीक और सार्थक हैं; किन्तु कवि का भाव क्या था, यह निर्णय सम्भव नहीं है । इस कारण ये पंक्तियाँ पहेली बनकर रह गयी हैं । यहाँ विवेक भी साथ नहीं देता । पर ऐसे समस्या मूलक स्थान कम ही होंगे; फिर भी पाठ-सम्पादक के लिए सिरदर्द तो हैं ही ।

बड़ी ये (ट) के ई के प्रयोग किये जाने के कारण यह भ्रान्त धारणा भी देखने में आती है कि छोटी ये (ट) का प्रयोग ए और ऐ के लिए भी किया जा सकता है । वस्तुतः छोटी (ऽ) का प्रयोग सदैव ई के लिए ही होगा; ए और ऐ के लिए कदापि नहीं ।

शब्द के अन्त में बड़ी ये (ट) और छोटी ये (ऽ) अपने पूर्ण रूप में ही लिखे जाते हैं । अन्यत्र प्रयोग में ये के दोनों रूपों के लिए एक ही संकेत हैं । उनकी अभिव्यक्ति शब्दों के बीच में यथा स्थान अपेक्षित अक्षर के शीशे के नीचे दो नुक्ते (बिन्दु) लगाकर की जाती है और प्रसंग के अनुसार ए, ऐ अथवा ई पढ़ा जाता है । शब्द के आरम्भ में ये की अपनी कोई सत्ता नहीं है । शब्द के आरम्भ में ए ऐ और ई की अभिव्यक्ति के लिए ये के संकेत (शीशे के नीचे दो नुक्ते) के पूर्व अलिफ का प्रयोग किया जाता है । कभी कदा अलिफ की उपेक्षा कर केवल ये संकेत दो बिन्दुओं से ही काम चला लिया जाता है ।

व्यंजन य के लिए ये का अस्तित्व तो है किन्तु अपने मूल रूप में उसका प्रयोग नहीं होता । शब्द के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में सर्वत्र उसके सांकेतिक रूप (शीशे के नीचे दो बिन्दु) का ही प्रयोग होता है और प्रसंग के अनुसार य पढ़ा जाता

है। अपवाद रूप कभी कदा शब्द के अन्त में य के लिए छोटी ये का प्रयोग देखने में आता है।

आज हमारा परिचय जिस फारसी लिपि से है, और जी उर्दू लिखने के काम आती है, उसमें व्यंजन के २८ अक्षर हैं। उनमें कुछ अक्षर ऐसे हैं जिनका प्रयोग मध्य-कालीन फारसी लिपि में लिखित प्रतियों में देखने में नहीं आता। एक ही अक्षर से दो ध्वनियों का काम लेते थे। यथा--**क** और **ग** लिखने के लिए आज **काफ** और **गाफ** दो स्वतन्त्र अक्षर हैं। पहले केवल **काफ** से ही **काफ** और **गाफ** का काम लेते थे और अनुमान और अभ्यास के सहारे यथास्थान क अथवा **ग** के रूप में उच्चारण करते थे। इस प्रकार **ते** और **टे**, रे और ड़े तथा **दाल** और **डाल** में से केवल ते, रे और दाल का प्रयोग होता और वे दो ध्वनियों का काम देते थे। इस प्रकार **त** और **ट** के लिए **ते** का, **र** और ड़ के लिए **रे** का, **द** और **ड** के लिए **दाल** ही लिखा मिलता है। इसके विपरीत **से**, स्वाद, सीन और शीन चार ऐसे अक्षर हैं जिनका प्रयोग लगभग एक सी ध्वनि के लिए होता है। नागरी लिपि में पहले तीन अक्षरों का बोध अकेले **स** से करते हैं और **शीन** को **श** के रूप में ग्रहण करते हैं।

ख़े, ज़ाल, ज़्वाद, ज़ो, ग़ैन, फ़े, क़ाफ़--ये सात अक्षर ऐसे हैं जिनकी अपनी फारसी ध्वनि है और फारसी-अरबी जनित शब्दों के लिखने में ही प्रयुक्त होते हैं। नागरी अक्षरों में इनकी ध्वनि की अभिव्यक्ति कुछ काल पूर्व निकटतम ध्वनि वाले अक्षरों के नीचे एक बिन्दु लगा कर किया करते थे, किन्तु अब बहुधा ऐसा नहीं किया जाता और मध्य-कालीन नागरी-कैथी प्रतियों में भी यह बात देखने में नहीं आती। नागरी लिपि में ख़े को ख; ज़ाल, 'ज़्वाद' और ज़ो को समान रूप से ज; ग़ैन को ग, फे को फ, क़ाफ़ को क के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। पढ़ते समय उनकी मूल ध्वनि को ध्यान में रखना आवश्यक हो सकता है, किन्तु पाठ-सम्पादन करते समय यह बहुत आवश्यक नहीं है।

फारसी लिपि के अन्य व्यंजन और उनके ध्वनि-प्रयोग इस प्रकार हैं--बे (ब), पे (प), ते (त), से (स), टे (ट), जीम (ज), चे (च), हे (ह) ख़े (ख), रे (र), ड़े (ड़), डाल (ड), डाल (ड), स्वाद (स), तो (त), काफ (क), गाफ (ग), लाम (ल), मीम (म), नून (न), सीन (स), शीन (श) दो चश्मी हे (ह)। इनमें केवल रे, लाम, मीम, काफ, (गाफ) और हे ऐसे व्यंजन हैं, जिनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। शेष सभी नुक्तों पर आश्रित हैं। बे, पे, ते, टे, से के मूलरूप एक से हैं, उनकी ध्वनि की भिन्नता नुक्तों के सहारे ही व्यक्त की जाती है। इसी प्रकार जीम, चे, हे, ख़े, का रूप भी एक सा है, उनका भी अन्तर नुक्तों के सहारे किया जाता है। नून भी नुक्तों पर आश्रित है। किन्तु लेखन

में नुक्तों (बिन्दुओं) का व्यवहार कम ही होता है। अक्षरों की ध्वनियों को प्रसंगानुसार अनुमान के सहारे ही पकड़ा जाता है। इस कारण उनको सहज भाव से पढ़ पाना सुगम नहीं होता। इस कारण एक लोकोक्ति है—नुक्ते के हेर फेर से, खुदा, जुदा हुआ।

लोकोक्ति के इस कथन का तात्पर्य यह है कि नुक्तों की इस अव्यवस्था के कारण एक ही शब्द एकाधिक रूप में पढ़ा जा सकता है। यथा फल, भल, पहल, बहल, बहुत सब ही एक सरीखे ही लिखे जाते हैं और यदि नुक्ते यथास्थान न हों तो वे कुछ भी पढ़े या समझे जा सकते हैं। प्रसंग की जानकारी के अभाव में इनमें से किसी को भी गलत नहीं कहा जा सकता। यह तो हुई शब्दों की बात। अब एक उदाहरण वाक्य का लें—मालिन गजरा ले चली। इस वाक्य को नुक्तों के अभाव में इन रूपों में भी पढ़ा जा सकता है--

मारिन कचरा ले चली
बारिन गजरा ले चली
बारिन कचरा ले चली।

और मूल रूप में इनमें से किसी को भी दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता। किन्तु यदि प्रसंग गजरा (फूलों की माला) का है, तो संगत पाठ मारिन (मालिन) ही होगा। बारिन (घर में काम करने वाली नोकरानी) का नहीं। इसी प्रकार यदि प्रसंग बारिन से सम्बन्ध रखता है तो दूसरा शब्द कचरा ही होगा, गजरा नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि समूचे वाक्य के शुद्ध होने पर भी एक शब्द के नुक्तों के ठीक पकड़ न होने के कारण अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इसका मनोरंजक किन्तु भयावह उदाहरण कन्हावत के शिव सहाय पाठक द्वारा सम्पादित संस्करण में देखा जा सकता है। प्रसंग है--गोपियाँ कृष्ण की शिकायत लेकर यशोदा के पास आती हैं। तब कृष्ण अपनी सफाई उपस्थित करते हैं--

देखा हरि विवाद जो लागा। लीन्हि काढ़ि माथे कर पागा।।
रोवत पास नन्द के आवा। देखहु हौं यह बहुत खिझावा।।
काहू दौरि धरी मेरि जोनी। काहू खेंचत देहि धरी छोनी।।
काहू आनि मटकि सिर देहीं। केहू वरबसहि लाइ कंठ लेहीं।।

इसमें तीसरी पंक्ति की पहली अर्धाली का जोनी शब्द द्रष्टव्य है। पाठक अपने इस शब्द के पाठ की शुद्धता के सम्बन्ध में इतने आश्वस्त हैं कि उन्होंने इस शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या की आवश्यकता अनुभव की और उसे इस रूप में स्पष्ट किया है--जोनी–योनि > जोनो = जननेन्द्रिय। यदि पाठक के जोनी पाठ को शुद्ध मान लिया जाय

तो इस अर्धाली का अर्थ होगा कि कृष्ण के योनि थी। ध्यातव्य है कि योनि स्त्रियों को होती है, पुरुष के लिंग होता है। अर्थात् वे नारी थे और गोकुल की गोपियों के बीच केलि-कौतूहल में योनि खींचने का प्रचलन था। और कृष्ण इतने धृष्ट और निर्लज्ज थे कि उन्हें अपनी माँ (यशोदा) से यह कहते तनिक भी संकोच नहीं हुआ। कवि का अभिप्राय निश्चय ही यह कदापि न रहा होगा। पाठक यहाँ नुक्तों के चक्कर में मारे गये हैं। उन्हें चे के तीन नुक्तों के स्थान पर जीम का एक नुक्ता दिखाई पड़ा और प्रसंग पर गम्भीरता से विचार न कर पाठ को ले उड़े और जिसे चूनी पढ़ना चाहिए था, जोनी पढ़कर अपने को हास्यास्पद स्थिति में ला खड़ा किया है। यदि वे तनिक विचार करते, तो उन्हें यह समझने में कठिनाई न होती कि कृष्ण अपनी चूनी (चुंदी, चोटी) खींचे जाने की बात कह रहे हैं।

पाठ-प्रसंग पर विचार न किये जाने का एक अन्य उदाहरण माता प्रसाद गुप्त सम्पादित पद्मावत से प्रस्तुत है--

खरग धनुक चक्र बान दुई, जग मारन तिंह नाँउँ।
सुनिकै परा मुरछि कै राजा, मों कँह भये एक ठाँउँ॥

यह नख-सिख प्रसंग के ललाट वर्णन वाले कड़वक का घत्ता है। इसकी व्याख्या वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस प्रकार की है--नासिका रूपी खड्ग, भौं रूप धनुष, पुतलियाँ रूपी चक्र, और कटाक्ष रूप दो बाण, इनमें प्रत्येक जग के मारने के लिए प्रसिद्ध हैं। यह सुनते ही राजा मूछित हो गया। हाय! मेरे मारने के लिए ये सब अस्त्र तिलक रूपी प्रतिद्वन्दी राजा के पास एकत्र हो गये हैं। किन्तु ध्यातव्य यह है कि इन पंक्तियों में न तो किसी प्रतिद्वन्दी राजा का उल्लेख है और न मारने की भावना व्यक्त करने वाला ही कोई शब्द है। अपने वर्तमान रूप में पंक्तियों का सीधा अर्थ यही निकलता है—ये अस्त्र मेरे लिए एक जगह एकत्र हो गये हैं, यह जानकर राजा मूछित हो गया। वस्तुतः समूचे कड़वक में कवि ने सीधे सादे ढंग से तिल के लिए उपमा दी है कि वह ललाट पर इस प्रकार शोभित है मानों सोने के सिंहासन पर कोई राजा अस्त्रों से सजधज कर बैठा हो। समूचे कड़वक पर विचार करने पर स्पष्ट प्रकट होता है कि यहाँ 'मो कँह भये एक ठाँउँ' पाठ की कोई संगति नहीं है। निश्चय ही यह अपपाठ है। नागरी प्रति में मिले इस पाठ के कारण माता प्रसाद गुप्त आश्वस्त हो गये। उन्होंने फारसी प्रतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता न अनुभव की, यद्यपि उनके सामने एडिनबरा वाली प्रति थी। उसमें पाठ है--मो कँह हने कुठाँउँ। नुक्तों के हेर-फेर से ही नागरी प्रतियों में यह--'मो कँह भये एक ठाँऊँ' हो गया है।

नुक्तों के अभाव या हेर-फेर के कारण नागरी प्रतियों में अपपाठों का बाहुल्य

देखने में आता है। उन सबकी चर्चा न करके यही कहना अभीष्ट है कि पाठ सम्पादन में इस पर सतर्कता के साथ ध्यान की अपेक्षा बहुत अधिक है।

नुक्तों की इस प्रकार की अव्यवस्था के साथ-साथ यह बात भी ध्यान में रखने की है कि फारसी लिपि में व्यंजनों का नागरी लिपि की तरह अर्ध-ध्वनियों के लिये अपना कोई संकेत नहीं है। उन्हें अक्षरों के पूर्ण रूप में ही लिखा जाता है और अनुमान के सहारे ही उनका रूप पहचाना और रूप निर्धारित किया जाता है। इस कारण जहाँ अर्ध अक्षर पढ़ा जाना चाहिये वहाँ पूर्ण और जहाँ पूर्ण अक्षर पढ़ा जाना चाहिये वहाँ अर्ध अक्षर की कल्पना कर ली जाती है। इसका एक नमूना कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में संगृहीत रसिक प्रिया के शीर्षक के पाठ में देखा जा सकता है। वहाँ उसे रश्क-ए-परियाँ पढ़ा गया है। यहाँ रसिक का स आधा और प्रिया का प्रि पर पढ़ा गया है। इस तरह की भूल पाठ-सम्पादक बहुधा कर जाते हैं।

फारसी (उर्दू) लिपि में ख, घ, छ, झ, ठ, ढ़, थ, ध के लिए अपना कोई स्वतन्त्र अक्षर रूप नहीं है। सम्बद्ध वर्ग के अन्य अक्षरों में दो चश्मी हे जोड़ कर इन्हें रूपायित किया जाता है। यथा-ख काफ में हे, छ चे में हे मिलाकर लिखते और पढ़ते हैं। इस तथ्य पर ध्यान न देने के कारण बहुधा दोनों अक्षरों को अलग-अलग पढ़ लिया जाता है और जहाँ दोनों अक्षरों को अलग-अलग पढ़ना चाहिये, वहाँ एक पढ़ लिया जाता है। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दुखहरन दास के पुहपावती की जो प्रति है उसमें प को नुक्तों के अभाव में ब मानकर ह के साथ जोड़कर मान लिया और ग्रन्थ के नाम को भावती पढ़ा गया है। इसी प्रकार स्पेंगर के पास कन्हावत की जो प्रति थी, उसमें कन्हावत विन्दुओं के हेर फेर से कहनावत लिखा हुआ है। स्पेंगर ने कह को घ और अर्ध न को पूरा न मानकर पुस्तक की चर्चा घनावत नाम से की है, जिसे हिन्दी साहित्य के इतिहासकार आँख मूंद कर स्वीकार रहे हैं। उसके कन्हावत होने का अनुमान तभी हो सका, जब ग्रंथ के कृष्ण सम्बन्वित होने की जानकारी पाठप्रस्तुत करते समय हुई।

चन्दायन, मिरगावती और कन्हावत की फारसी प्रतियों से पाठोद्धार करते तथा सम्पादन कार्य के बीच जो समस्यायें मेरे सामने आईं उनमें कुछ हमने उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की हैं। उद्देश्य केवल यह बताना है कि फारसी प्रतियों से पाठोद्धार करते समय शब्द के समझने और उनका रूप निर्धारण करने में कैसी और किस प्रकार की कठिनाइयाँ आती और आ सकती हैं। कभी-कभी माथा-पच्ची करते रहिये, शब्द पकड़ में नहीं आता कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम शब्द को तो ठीक-ठीक पढ़ रहे हों, पर अर्थ अथवा प्रसंग-ज्ञान के अभाव में उनके मन में संशयात्मक भाव बना रहे।

सारे श्रम के बावजूद पाठ-सम्पादक निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह ग्रन्थ के मूल रूप के उद्धार करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ है। उसके पाठ में कुछ न कुछ विकृति बनी रह सकती है। उनका निवारण तो बार-बार की आवृति और एक से अधिक फारसी प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से ही सम्भव है। इसके साथ ही यह बात भी भुलायी नहीं जा सकती कि नागरी कैथी प्रतियों में ऐसे शुद्ध पाठ हो सकते हैं जिन्हें फारसी प्रतियों के आधार पर ठीक-ठीक न पढ़ पा रहे हों। ऐसे स्थलों पर उनका महत्त्व कम नहीं है। पर तभी जब दोनों लिपियों की प्रतियाँ उपलब्ध हों।

ग्रन्थ के विषय विस्तार आदि सम्बन्धी पूर्व जानकारी न होने पर सारी क्षमता रखते हुए भी पाठोद्धार सहज नहीं होता। अधूरी प्रतियाँ या पृष्ठों की व्यतिक्रम वाली प्रतियाँ अधिक जटिलता उत्पन्न कर देती हैं। अतः पाठोद्धार के साथ-साथ ग्रन्थ को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना भी अपने आप में महत्त्व रखता है।

फारसी लिपि में लिखे ग्रन्थों में, नागरी-कैथी प्रतियों में, कड़वकों और छन्दों का संख्या-क्रम देने की प्रथा नहीं है। उनमें पृष्ट-संख्या के अंकन का भी अभाव होता है। उनके स्थान पर प्रायः पृष्ठ के अन्त में नीचे कोने में अगले पृष्ठ के प्रथम पंक्ति का पहला शब्द लिख देते हैं। इसे तर्क कहते हैं। तर्क के सहारे पृष्ट सँजोये जा सकते हैं। किन्तु एक ही शब्द वाले अनेक तर्क हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में विषय का समझना आवश्यक है, जो बिना पाठोद्धार के जाना नहीं जा सकता और बिना विषय-प्रसंग-ज्ञान के पाठोद्धार सहज नहीं होता। यदि किसी प्रति में तर्क का अभाव हुआ, तो क्रमबद्धता की कठिनाई और बढ़ जाती है। ऐसे में यदि पृष्टों पर समान रूप से संख्या में एक सी पंक्तियाँ हैं तो छन्द की पंक्ति-संख्या के आधार पर क्रमबद्ध करने की चेष्टा की जा सकती है। यथा किसी काव्य में सात पंक्तियों के बाद दो पंक्तियों की घत्ता हो और किसी पृष्ट पर उसकी केवल पाँच पंक्तियाँ हों, तो शेष दो पंक्तियाँ और घत्ता अगले पृष्ट पर होगा। ऐसी स्थिति में उन पृष्टों की खोज करनी होगी, जिसके ऊपर के भाग में कड़वक की निचली चार पंक्तियाँ हों। पर ऐसे अनेक पृष्ट हो सकते हैं। अतः यहाँ भी प्रसंग-ज्ञान की समस्या सामने आती है।

इन कठिनाइयों के साथ-साथ प्राचीन प्रतियों के कीड़े खाने के कारण भी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। यह कठिनाई फारसी प्रतियों में अधिक होती है। कीड़े जिस तरह पृष्ठों को खाते हैं, उनसे बहुधा फारसी अक्षरों का भ्रम होता है। और सही पाठ प्रस्तुत करने में यह एक बहुत बड़ी बाधा है। यह बाधा तब और बढ़ जाती है, जब मूल प्रति के स्थान पर उसके माइक्रोफिल्म या फोटो कापी से पाठ-प्रस्तुत करना पड़ता है। इसे ध्यान में रखना उतना ही आवश्यक है जितना कि फारसी अक्षरों के लिखित स्वरूप को।

इन सारी समस्याओं के साथ प्रत्येक प्रति के साथ जुड़ी अपनी भी समस्याएँ होती हैं या हो सकती हैं। उन्हें पाठ-सम्पादक को स्वयं समझना और निराकरण करना होता है। उनका वर्णन किसी सामान्य भाव से नहीं किया जा सकता।

यहाँ हमने उन्हीं समस्याओं की चर्चा की है, जो हमें मौलाना दाऊद कृत चन्दायन, कुतबन कृत मिरगावती और जायसी कृत कन्हावत के पाठोद्धार के समय सामने आईं अथवा पदमावत के अध्ययन के समय पाठ-त्रुटियों में दृष्टिगोचर हुईं। प्रस्तुत लेख समस्याओं का समाधान प्रस्तुत न कर उनकी ओर इंगित मात्र करता है। आशा है फारसी-प्रतियों के अध्येता इन्हें ध्यान में रखेंगे और लाभान्वित होंगे।

इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ रिसर्च
इन न्यूमिस्मेटिक स्टडीज,
अँजनेरी, नासिक (महाराष्ट्र)
४२२२१३,

४. प्राचीन कृतियों का सम्पादन और अर्थसमस्या

डॉ० किशोरी लाल

वस्तुतः प्राचीन कृतियों का सम्पादन अत्यन्त जटिल और अपने-आप में अति श्रम-साध्य कार्य है । सम्पादन-गत कठिनाइयों को वही समझते हैं, जो मरजीवा की भाँति अनगढ़ और भ्रष्ट पाठों की अतल गहराई में प्रविष्ट होकर कवि-अभीष्ट शब्दों की मुक्तावलियों को ऐसी कुशलता से प्रस्तुत कर देते हैं, जिन्हें देखकर पाठकों की आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं । पाठ-शोधन की यह विधि भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही साहित्यों में अपनायी गई है । भारतीय साहित्य में सबसे पहले यह कार्य पूना में महाभारत के सम्पादन के सिलसिले में आरम्भ हुआ । वहाँ महाभारत के सैकड़ों हस्त-लेखों और मुद्रित संस्करणों को आधार बनाकर एक वैज्ञानिक पाठ-शोधन की प्रणाली ग्रहण की गई । इसमें सन्देह नहीं कि इस विधि से संशोधित महाभारत का एक अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण संस्कृत अध्येता के समक्ष सर्वप्रथम प्रस्तुत हुआ और इसकी तुलना में उसके अन्य संस्करण नगण्य और तुच्छ प्रतीत हुए । संस्कृत की तुलना में हिन्दी के प्राचीन काव्य ग्रन्थों का सम्पादन अपेक्षाकृत अधिक दुरूह और साधना-सापेक्ष्य है । वैसे सम्पादन कार्य तो बहुत हो रहा है, पर उसे सम्पादन की संज्ञा दी जा सके, यह दूसरी बात है । हिन्दी में पुराने ग्रन्थों का सम्पादन अपने ढंग से होता था । उसके सम्पादकों के पास आज जैसी वैज्ञानिक दृष्टि का सर्वथा अभाव था । प्रतिलिपि कर्ता या सम्पादक विभिन्न पाठों में से कोई पाठ चुन लेता था, पर उसका कोई आधार नहीं होता था । जिसे वह समझता था, वही पाठ मान्य होता था, पुनः पढ़ने और पाठों को विविध प्रणालियों से जाँचने-परखने के साधन भी उस समय बहुत नहीं थे । आज तो बहुत से पाठों को माइक्रोफिल्म के द्वारा हम पढ़ लेते हैं और उनके विकृत अंशों को बहुत अधिक समझ लेते हैं, पुराकाल में ऐसे साधन सुलभ नहीं थे । यही नहीं, वे पुराने पण्डित जो संस्कृत के मर्म को तो जानते थे, पर जिनकी जानकारी प्राचीन हिन्दी की विशेषताओं से शून्य होती थी, वे व्रजभाषा या अवधी के प्रयुक्त दन्त्य स को तालव्य श के रूप में बदल देते थे । प्रमाण के लिए आप वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में मुद्रित ग्रन्थों को देख लें, वहाँ इस प्रकार की करतूतें बहुत मिलेंगी । हिन्दी में सर्वप्रथम वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई, लाइट प्रेस बनारस और नवल किशोर प्रेस लखनऊ के संस्करणों से खीझकर मान्यवर डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन ने सम्पादन के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की । यद्यपि ग्राफ-प्रणाली से वैज्ञानिक सम्पादन की शुरूआत काशी नरेश की प्रेरणा से काष्ठ जिह्वा स्वामी ने रामचरित मानस में कर दी थी । किन्तु इसका सम्यक् विकास आगे नहीं हो सका । इस दृष्टि से ग्रियर्सन को ही वैज्ञानिक सम्पादन-

विधि से कार्य करने का श्रेय मिला। उन्होंने रामचरित मानस और पद्मावत के वैज्ञानिक सम्पादन के साथ ही एक अच्छा संस्करण लालचंद्रिका का भी प्रस्तुत किया जिसमें जसवन्त सिंह कृत भाषाभूषण भी संलग्न था। ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत ऐसे सम्पादन कार्य को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने एक ऐसी दिशा दी, जो पूर्ववर्ती सम्पादन कार्यों से कहीं श्रेष्ठ और उत्तम थी। सन् १९४२ से हिन्दी सम्पादन ने एक नया मोड़ ग्रहण किया, जिसे विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणाली की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस सम्पादन-विधि के प्रमुख विद्वान् डा० माता प्रसाद गुप्त कहे जाते हैं। निश्चय ही डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने अथक परिश्रम और साधना के द्वारा जिन प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन किया है, वे अपने-आपमें बेजोड़ और अप्रतिम हैं। उनकी दृष्टि पाठों को ही वरीयता देने में उलझ गई, वे विज्ञान की जड़ प्रणाली को ही सर्वोपरि महत्त्व देने के पक्ष में इस प्रकार अडिग और अटल हो गये थे कि साहित्यिक दृष्टि से सम्पादित ग्रन्थों को बहुत ही तुच्छ दृष्टि से देखा करते थे। साहित्यिक सरणियों से सम्पादित ग्रन्थों की मूल विशेषता यह होती थी कि उनमें सम्पादक शब्द या पाठ पर विचार करते समय अधिक बल अर्थानुसंगतियों पर देता था और इसके विपरीत अर्थ का ठीक से न ग्रहण करने के कारण कभी ऐसे पाठों को चयित कर लिया जाता था, जो सर्वथा अनुपयुक्त और कवि की अभीष्ट भाव-व्यंजना के विपरीत होता था। केवल पाठों का वंश-वृक्ष कायम कर देने मात्र से वैज्ञानिक-सम्पादन की क्रिया सम्पन्न हो गई, यह सत्य नहीं है। अधिक प्रतियों को प्राप्त कर लेने से और उनका सम्पादन में उपयोग कर देने से पाठ अपने परिष्कृत रूप में मिल गया, यह बहुत तर्कसंगत बात नहीं है। उदाहरणार्थ आप पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित काव्यनिर्णय को ले लें और उसकी तुलना आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित काव्य निर्णय से करके देख लें। आपको दोनों के सम्पादन में महदन्तर प्रतीत होगा। चतुर्वेदी जी का सम्पादन इतना भोंड़ा और हास्यास्पद लगता है कि उन्होंने कवि-अभीष्ट पाठों को ठीक से ग्रहण करने का प्रयास नहीं किया।

अर्थ को न समझने के कारण कभी-कभी पाठों को बदल देने के साथ ही उनकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध समझ ली जाती है। यथा, सूर के एक प्रसिद्ध पद में प्रयुक्त 'ग्रीवारंध्र' शब्द को लेकर पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने उक्त पद को प्रक्षिप्त स्वीकार कर लिया। अपने कथन के साक्ष्य में यह बताया कि कथित पद केवल लखनऊ वाली प्रति में मिलता है, अन्यत्र यह प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार सम्प्रति एक विद्वान ने बहुत ठोस प्रमाण के बिना ही सूर के बहुत से पदों को प्रामाणिक होने से इनकार कर दिया है। उनका कथन है कि अमुक पद सूर का नहीं है और अमुक सूरकृत है—केवल कथा या प्रबन्ध की अनुसंगतियों के आधार पर ही किसी पद को अप्रामाणिक कह देना

यह उनके मन की कपोल-कल्पना के सिवा और क्या कहा जा सकता है। मैं साहित्यिक सम्पादन की प्रणाली को अधिक सजीव और महत्त्वपूर्ण इसलिए मानता हूँ कि उसमें सम्पादक की दृष्टि और उसके विवेक की भी परीक्षा होती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वैज्ञानिक सम्पादन विधि को एक जड़ प्रक्रिया की अभिधा दी है। इस सम्बन्ध में उनके विचार अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे क्या कहते हैं, इसे देखें—

"यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि कोरी वैज्ञानिक प्रक्रिया से मानस क्या, हिन्दी के किसी ग्रन्थ का ठीक सम्पादन नहीं हो सकता। उसके लिए साहित्यिक सम्पादन की सरणि का परित्याग अहितकर है। वैज्ञानिक प्रक्रिया भारतीय दार्शनिक दृष्टि से विज्ञान होने से जड़ है। साहित्यिक प्रक्रिया दर्शन होने से चेतन है। मूल ग्रन्थ के लेखक से लेकर सम्पादक तक सभी चेतन प्राणी होते हैं। जड़ की गतिविधि जितनी व्यवस्थित होती हैं, उतनी चेतन की नहीं। अतः चेतन का प्रयास सर्वत्र नियत नहीं होता। वैज्ञानिक प्रक्रिया शब्द पर अधिक ध्यान देती है और साहित्यिक प्रक्रिया शब्द पर ध्यान देते हुए भी अर्थ पर विशेष दृष्टि रखती है।[1]

आचार्य मिश्र जी के अनुसार संपादक को अर्थ के ग्रहण करने में अपनी पूरी क्षमता और सूझ-बूझ का परिचय देना चाहिए। विभिन्न प्राप्त पाठों में कौन सा पाठ कवि का है, उसे वही बतला सकेगा, जिसकी तथ्य ग्राहिणी-प्रतिभा मूलार्थों तक पहुंचाकर आपको आश्चर्य-चकित कर देगी। यह बात प्रायः मान्य है कि डा० माता प्रसाद गुप्त ने पद्मावत के सम्पादन में अपने अथक श्रम और वैदुष्य का अधिक विनियोग किया था, पर यत्र-तत्र उनकी साहित्यिक-पकड़ की दुर्बलता अर्थ-संपुष्ट पाठों को चयित न कर सकी। यथा पद्मावत का भाष्य लिखते समय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने डा० गुप्त के द्वारा गृहीत एक निरर्थक पाठ पर फिर से बिचार किया और सिद्ध कर दिया कि बिना अर्थ समझे मूल पाठों से भेंट नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में डा० अग्रवाल के विचार महत्वपूर्ण हैं। हम उन्हें अविकल रूप में उद्धृत कर रहें हैं--

'पाठ और अर्थों के निश्चय करने में भरसक सावधानी रखने पर भी मुझसे कुछ भूलें रह गई थीं, जिनकी ओर शुद्धि पत्र में ध्यान दिलाया गया है। पाठक कृपया उन्हें सुधार कर इस टीका का उपयोग करेंगे, ऐसी प्रार्थना है। इस प्रकार की एक भ्रांति का मैं सविशेष उल्लेख करना चाहता हूँ, क्योंकि वह इस बात का अच्छा नमूना है कि कवि के मूल पाठ के निश्चय करने में संशोधन शास्त्र के नियमों के पालन को आवश्यकता है और उसकी थोड़ी अवहेलना से भी कवि के अभीष्ट अर्थ को हम किस तरह खो बैठते हैं। १५२।४ का शुक्लजी का पाठ इस प्रकार है--

---

१. रामचरिमानस सं० अचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूमिका भाग, पृ० २५,२६

सांस डांडि मन मथनी गाढ़ी । हिये चोट विनु फूट न साढ़ी ।

माता प्रसादजी को डांडि के स्थान पर वेध, वोठ, बैठ, वोइरा, दूध, दहि, दधि दवाले डीढ इतने पाठान्तर मिले । संभव हैं और प्रतियों में अभी और भी भिन्न पाठ मिलें । मनीरशरीफ की प्रति में ओढ़ पाठ है । गुप्त जी को इनमें से किसी भी पाठ से संतोष नहीं हुआ । अतएव उन्होंने अर्थ की आवश्यकता के अनुरूप अपने मन में 'दहेंड़ि' इस पाठ का सुझाव दिया, पर उसके आगे प्रश्न चिह्न लगा दिया--स्वांस दहेंड़ि (?) मन मथनी गाढ़ी । हिये चोट बिनु फूट न साढ़ी । मैंने इस प्रश्न चिह्न पर उचित ध्यान न ठहराकर साँस दही की हाँड़ी है, मन दृढ़ मथानी है । ऐसा अर्थ कर डाला । प्रसंगवश श्री अम्बा प्रसाद सुमन के साथ इस पंक्ति पर पुनः विचार करते हुए इसके प्रत्येक पाठान्तर को जब मैं देखने लगा तो 'दवालै' शब्द पर ध्यान गया । श्री सुमनजी ने सुनते ही कहा कि अलीगढ़ की बोली में द्वाली-चमड़े की डोरी या तस्मे को कहते हैं । कोश देखने से ज्ञात हुआ कि फारसी में दवाल या दुवाल रकाब के तस्मे को कहते हैं ।' × × × × इस प्रकार इस पंक्ति का कविकृत पाठ यह हुआ--सांस दुवालि मन मथनी गाढ़ी ।[1]

उससे सिद्ध है कि यदि डा० अग्रवाल को दुवाल शब्द का अर्थ न मिलता तो शुद्ध पाठ अर्थात् कवि अभीष्ट पाठ की कल्पना ठीक-ठीक न कर सकते। इसी प्रकार एक बार देव कवि के कठिन तुक पर विचार किया जा रहा था । मेरे साथ इस पर विचार करने वालों में स्व० पं० उमाशंकर शुक्ल भी थे । देव के जिस छन्द में यह पाठ प्राप्त हुआ, वह अर्थ न समझने के कारण प्रकृत पाठ के न होने का भ्रम पैदा कर रहा था । उक्त छन्द का तुक के रूप में प्रयुक्त वह पाठ यों था--पुरहूतना, नूतना, पूतना, हरिजूतना । यहाँ अन्य शब्दों का अर्थ तो लग गया, पर 'हरिजूतना' का जब अर्थ नहीं लगा, तो स्व० शुक्ल जी ने इस पाठ को विकृत पाठ मान कर छोड़ दिया । पर थोड़ी ही देर में जब मैंने उसका अर्थ समझ लिया, तो शुक्ल जी ने अपनी पूर्व धारणा बदल दी और मैंने बड़ी सावधानी बरतते हुए कहा कि पंडितजी यह पाठ 'हरि जू तन' है और तुकाग्रह के कारण तन का तना कर दिया गया है, अतः पूरे शब्द का अर्थ होगा श्री कृष्णजी की ओर । इस बात को सुनकर शुक्लजी गद्‌गद् हो गये । और स्वीकारा कि बिना अर्थ बोध के पाठों के औचित्य पर विचार नहीं किया जा सकता ।

जिन पाठों की परम्परा मौखिक रही है और उनके लिपिबद्ध पाठ नहीं मिलते, उन्हें स्थिरता प्रदान करना एक टेढ़ी खीर है । कबीर के पाठों में हेर-फेर अधिक इसीलिए हुआ कि उनके पद लिपिबद्ध बहुत कम हुए हैं । सूरदास के भी पाठों की एक

१. पद्मावत-संजीवनीभाष्य, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, भूमिका भाग, पृ० ३६ द्वि० सं० ।

परम्परा गायकों या कीर्तनियों के यहाँ संरक्षित रही है। इसके कारण पाठ कहीं-कहीं अधिक अविश्वसनीय और अप्रमाणिक सिद्ध हुए हैं। स्व० पं० जवाहर लालचतुर्वेदी जी ने सूरसागर के कुछ पदों का एक सुन्दर संस्करण बहुत पहले प्रस्तुत किया था और यह प्रयास किया था कि इन पदों की सम्प्रति व्रजप्रदेश में बोली जाने वाली व्रजभाषा के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया जाय। उनका यह प्रयास इतना बचकाना और भोंड़ा प्रमाणित हुआ कि उसे देखकर सूर की प्रकृत भाषा-शैली से परिचित सूर का पाठक चौंक पड़ता है। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि चतुर्वेदी जी ने जिन पाठों को ग्रहण किया है, वे अर्थ की कसौटी पर सर्वथा विफल सिद्ध हुए हैं। यही नहीं यदि उन पाठों के आधार पर आप उनका अर्थ निकालना चाहें, तो एक विचित्र तमाशा खड़ा होगा। उदाहरणार्थ एक नमूना दिया जा रहा है-—

हरि-कर, राजत माँखन्ह रोटी।
जँनु बारिज सों बैर माँन जिय, गह्यौ सुधा-ससि घोटी[१]

एक विद्वान ने 'गह्यौ सुधा-ससि-घोटी' पाठ के आधार पर एक विचित्र व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी। उनके अनुरूप मानो कमल ने शत्रुतावश अमृत एवं चन्द्रमा की लड़की (घोटी) को पकड़ लिया है। अर्थ न समझने के कारण पाठों की भी क्या दुर्गति हो जाती है, यह इस पंक्ति से स्पष्ट है। अत्र शुद्ध पाठ क्या है और उसके आधार पर इसकी शुद्ध व्याख्या क्या होगी, उसे देखें—

हरि कर राजत माखन रोटी।
मनु बारिज ससि बैर जानि जिय, गह्यौ सुधा ससुधौटी।

श्री कृष्ण के हाथ में मक्खन-रोटी शोभा दे रही है। ऐसा मालूम होता है मानो (हाथ रूपी) कमल ने (मुख रूपी) चन्द्रमा को अपने में शत्रु समझकर उसके (मक्खन रूपी) अमृत की (रोटीरूपी) अमृत-पात्र के सहित पकड़ लिया है (ले लिया है)।

प्रायः देखा यह जाता है कि जिनके पास एक वैज्ञानिक की तटस्थ दृष्टि है, उनमें साहित्यिक सरसता का अभाव है और जो साहित्यिक सरसता से सम्पन्न हैं, उनके पास एक वैज्ञानिक की दृष्टि नहीं है। ये दोनों ही स्थितियाँ ग्रन्थों के सम्पादन में भयावह सिद्ध हो सकती हैं। यदि वैज्ञानिक विधि का विनियोग करने के साथ ही वह काव्य के मर्म को समझता है, भाषा के वैशिष्ट्य से परिचित है, गूढ़-भाव-व्यंजना का भी पारखी है, तो निश्चय ही उसका सम्पादन अधिक ग्राह्य और विश्वसनीय होगा, अन्यथा उसकी एकांगिता अपने आप में सिद्ध है। वास्तव में सम्पादक होने के लिए बहुज्ञता नितान्त अपेक्षित है, उसे चतुर्दिक दृष्टि फैलानी चाहिए, उसे पूरी काव्य

१. सूरसागर—सं० पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी, पृ० २७३।

रूढ़ियों और काव्य-परम्पराओं से परिचित होना चाहिए। पुरानी पीढ़ी के सम्पादकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, उनकी सरणियों का विनियोग करने वाले आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कुछ ऐसी ही कोटि के सम्पादक थे, जिनका लोहा आज भी माना जाता है। प्रत्येक शब्द में रमने की, उसके अनुद्घाटित मर्म को विश्लेषित करने की, जैसी क्षमता उनमें थी, वह आज कहाँ है ? मशीनरी पद्धति प्रस्तुत सम्पादन कार्य किसी लक्ष्य तक आप को नहीं पहुँचा सकता, स्वबुद्धि और स्वचेतना का विनियोग किए बिना आप जो भी पाठ स्वीकार करेंगे, उनमें बहुत बड़ी सम्भावना यही होगी कि 'कवि सुन्दर कोप नहीं सपने' की जगह आप 'कवि सुन्दर को पनहीं सपने' जैसा पाठ भी स्वीकार कर सकते हैं। अतः सिद्ध है कि पाठों की प्रामाणिकता और शुद्धता अर्थ की कसौटी पर ही खरी उतरती है।

१६०, नैनी बाजार, इलाहाबाद

५. भवानीदास कृत गोसाइँ चरित का रचनाकाल

उदयशंकर दुबे, एम० ए०

डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने तथाकथित बेनीमाधव दास के गोसाइँ चरित की पहचान भवानीदास की रचना के रूप में की और इसे गोसाइँ तुलसीदास की समकालीन रचना न मानकर उन्होंने इसका रचनाकाल संवत् १८०८ के बाद का बताया है। उनका कहना है कि भवानीदास के गुरु रामप्रसाद विंदुकाचार्य का जीवन काल श्रावण शुक्ल ७ सं० १७६० से श्रावण श्यामा तीज सं० १८६१ है। अतः भवानीदास ने गोसाइँ चरित की रचना इसी बीच किसी समय की होगी। पुनः भवानीदास ने कांधला निवासी लालजी दास की भक्तमाल की उरवसी नामक फारसी टीका की भी चर्चा की है। उक्त फारसी टीका ११५८ हिजरी (सं० १८०८ वि०) में रची गई। अतः गोसाइँ चरित की रचना १८०८ वि० के बाद किसी समय हुई।

इधर मुझे १९७५ में चित्रकूट रामायण मेले में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय मुझे चित्रकूट स्थित चरखारी राज के मन्दिर से भवानीदास द्वारा प्रतिलिपित रामचरित मानस की एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रति मिली थी। इसके अयोध्याकाण्ड वाले अन्तिम पृष्ठ की पुष्पिका वाला अंश यह है—

सोरठा

भरथ चरित करि नेम, जे सप्रेम सादर सुनहिं ॥
सीयराम पद प्रेम, अवस होहि भव रस विरति ॥

इती श्री रामचरितमानसे सकल कल कलुष विध्यंसने विमल वैराग्य संपादनो नाम द्वतियो सोपान ॥ ईती अजुध्य कांड संपूर्न समाप्त ॥
हस्ताक्षर मानीदास के ॥ १ ॥

असाढ वद ११ सः १८७५ मु० वीमलावा

यह पुष्पिका दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो इसमें प्रतिलिपिकर्ता भवानीदास का हस्ताक्षर है। दूसरे इसमें प्रतिलिपिकाल सं० १८७५ दिया हुआ है। इससे सिद्ध है कि भवानीदास १८७५ के बाद तक जीवित रहे।

डा० गुप्त के अनुसार गोसाइँ चरित १८०८ के बाद की रचना है। यह रचना गुरु राम प्रसाद विन्दुकाचार्य के आदेश से हुई थी, अतः इसका रचनाकाल निश्चय ही १८६१ के पूर्व है। अब यह कहा जा सकता है कि यह रचना १८५० के आस-पास हुई और भवानीदास का जन्मकाल १८०० के आस पास हुआ माना जा सकता है।

हस्तलेख में 'मानीदास' है; 'भवानीदास' नहीं। पर बुन्देलखण्ड में 'व' का 'म' होता है, यथा प्रतिपदा के लिए काशी में 'परवा' का प्रयोग होता है, बुन्देलखण्ड में इसे 'परमा' कहते हैं।

इस लघु लेख से डा० गुप्त के अनुमान की किंचित् पुष्टि होती है।

—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

5

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।